अगस्त १९६० (भाद्रपद १८८२ शक)

साढ़े सात रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली–८ द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें अक्टूबर १९०३ से जून १९०५ तककी सामग्री दी गई है। इस समय गांधीजी जोहानिसबर्गमें थे और उनका समय तथा ध्यान धन्धेसे सम्बन्धित कार्यों और सार्वजनिक सेवामें बँटा रहता था। उनकी वकालत बहुत अच्छी चल रही थी और आमदनी भी खासी थी। एक पत्र-पुस्तिकामें उनके एक हजार पत्र उपलब्ध हैं। इनमें से ज्यादातर मुवक्किलोंके नाम हैं और सारेके-सारे लगभग तीन महीनेके अरसेमें लिखे गये हैं। उन दिनों वे अपने घरसे दफ्तरतक ६ मील रोज साइकिलपर जाया करते थे और पीछे तो पैदल ही जाने लगे थे। इससे मालूम होता है कि उन दिनों भी उनका जीवन कितना सादा था।

जून १९०३ में डर्बनसे साप्ताहिक *इंडियन ओपिनियनका* प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। वह गांधीजीकी उदारतापूर्ण आर्थिक सहायतासे चालू रखा गया और अक्टूबर १९०४ में तो उन्होंने उसे पूरी तरह अपने हाथोंमें ले लिया। पत्रमें उनके समय और शक्तिका बड़ा भाग ही नहीं, वरन् उनकी सम्पत्ति भी लगातार खपती रही। उन्होंने गोखलेको लिखा था (जनवरी १३, १९०५) कि उनका दफ्तर अखबारके हितकी दृष्टिसे चलाया जा रहा है और वे अबतक ३,५०० पौंडकी जिम्मेदारी उठा चुके हैं।

सन् १९०५ की दो प्रमुख घटनाएँ थीं — जोहानिसबर्गमें प्लेग और फीनिक्स बस्तीकी स्थापना। गांधीजीने उस समय इन दोनों घटनाओंका जो उल्लेख किया है, वह उनके द्वारा *आत्मकथामें* अधिक तटस्थ वृत्तिसे दिये गये विवरणकी पृष्ठभूमि है। इन दोनों उल्लेखोंमें कुछ मनोरंजक असमानता भी दिखाई देती है। जब मार्चमें जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमें प्लेग फैला तब गांधीजीने बीमारीका विस्तार रोकने और बीमारोंकी सार-सँभालके लिए तत्काल जोरदार कार्रवाई प्रारम्भ कर दी। उनकी यह कार्रवाई इतनी दूरदर्शितापूर्ण और प्रभावकारी थी कि उसकी तुलना उनके प्रथम जीवनी लेखक रेवरेंड जे० जे० डोकने "उस गरीब आदमी" से की है "जिसने अपनी बुद्धिमत्तासे नगरकी रक्षा की थी" (*एक्लीज़ियास्टिक्स* ९, १५)। इसके कई साल बाद जब गांधीजीने इस घटनाकी बात लिखी, तब उन्होंने अपने साहसके बारेमें स्वयं थोड़ा संतोष व्यक्त किया; क्योंकि उससे लोगोंकी सेवा हुई थी और लोगोंपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा था। देखिए *आत्मकथा* (भाग ४, अध्याय १५, १६, १७)। किन्तु उस समय *इंडियन ओपिनियनमें* गांधीजीने जो लेखमाला प्रकाशित की और समाचारपत्रोंमें उनकी जो मुलाकातें और चिट्ठियाँ छपीं उनसे इस बातका एक दूसरा ही पहलू प्रकट होता है। उनमें गांधीजीने भारतीयोंके जबरदस्त कामपर जोर दिया है और पूरी तरहसे इस बातको सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि प्लेग फैलनेका मुख्य कारण नगर-परिषदकी लापरवाही थी। गांधीजी इस दुःखजनक विषयपर दीर्घ कालतक निरन्तर लिखते रहे। अपने इस कामके विषयमें उन्होंने एक जगह कहा है कि वे इसे करते हुए "सत्य, लोक-कल्याण और स्वदेशवासी" इन त्रिदेवोंकी आराधना कर रहे हैं।

उन्होंने समाचारपत्रोंको प्लेगके सम्बन्धमें जो पत्र लिखे और इसी कालमें निरामिष भोजनके विषयमें जो दिलचस्पी ली उनसे हेनरी एस० एल० पोलकका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। श्री पोलक *क्रिटिक* नामक पत्रके उपसम्पादक थे। दोनोंका स्वभाव समान होनेके कारण वे जल्दी ही एक-दूसरेके मित्र बन गये। दूसरे सज्जन अल्बर्ट वेस्ट इसके पहले

ही छपाईका अपना धन्धा छोड़कर *इंडियन ओपिनियनमें* आ चुके थे। उन्होंने देखा कि पत्रकी आर्थिक स्थिति गाधीजी जितनी समझते थे उससे भी अधिक कमजोर है, किन्तु फिर भी उन्होंने गाधीजीको विश्वास दिलाया कि लाभ हो या न हो, वे वहाँ वने रहेंगे। तव गाधीजी इस स्थितिकी जाँच करनेके विचारसे ओर यदि सभव हो तो उसमे सुधार करनेके उद्देश्यसे तत्काल जोहानिसवर्गसे डर्वनको रवाना हो गये। उन दिनो गाधीजी जोहानिसवर्गमे रहकर वकालत करते थे और *इंडियन ओपिनियन* डर्वनमे छपता ओर प्रकाशित होता था। पोलक उनको छोडनेके लिए स्टेशनपर आये और उन्होने गाधीजीको यात्रामे पढनेके लिए रस्किनकी पुस्तक *अनटू दिस लास्ट* दी। रेल-यात्रा पूरे २४ घटोकी थी। गाधीजीने यात्रामे इस पुस्तकको पढा और उनके मनपर इसका जादूका-सा प्रभाव पडा, उससे उनके जीवनमे "तत्काल और व्यावहारिक क्रान्ति" हो गई। वादमे उन्होने इस पुस्तकका गुजरातीमे *सर्वोदय* नामसे अनुवाद किया। यह पुस्तक लोककल्याणकी दृष्टिसे जीवनको रचनेवालोकी मार्गदर्शिका है।

गाधीजी सत्यकी खोज कर्मके पथपर चलकर करते थे और व्यावहारिक क्षेत्रमे सफल होनेपर ही वे किसी विचारको मूल्यवान मानते थे। रस्किनके उपदेशोमे गाधीजीके गम्भीर विश्वासोकी छाया तो थी ही, साथ ही उनमे शरीर-श्रम अथवा अपने हाथोसे काम करनेका जो गोरव वताया गया था, उनमे गाधीजीको *इंडियन ओपिनियनको* स्वावलम्बी वनानेकी तात्कालिक समस्याका हल भी दिखाई दिया। गाधीजी इसके एक या दो सप्ताह पहले अपने चचेरे भाइयो और भतीजोके पास टोंगाट गये थे। वहाँ उनकी दूकानके पीछे एक सुन्दर वाग था (प्रभुदास गाधीकी गुजराती पुस्तक *जीवननुं परोढ* पृष्ठ ६३)। उस समय उन्होने सोचा कि वगीचा सुन्दरताके साथ-साथ, दूकानकी तरह आमदनीका विश्वस्त साधन भी हो सकता है। इस तरह इस पुस्तकके पठन और उसकी पृष्ठभूमिमे मननका परिणाम यह हुआ कि गाधीजीने १,००० पौडमे डर्वनसे १४ मील दूर १०० एकडकी एक जमीन खरीदी ओर उसमे फीनिक्स वस्तीकी स्थापना की। शक्ति-चालित मशीनोपर निर्भर न रहना पडे, इसलिए साप्ताहिकका आकार घटाकर 'फुलस्केप' कर दिया गया। २४ दिसम्वर १९०४के अकमे प्रकाशित "अपनी वात" शीर्षक लेख ३१ दिसम्वरके अकमे फिरसे छापा गया। इसमे इस साहसिक कार्यके सिलसिलेमे गाधीजीके प्रयत्नोका कोई उल्लेख नही है, किन्तु नेटाल भारतीय काग्रेस, ब्रिटिश भारतीय सघ और उन निष्ठावान् कार्यकर्ताओके सहयोगकी मुक्त-कण्ठसे सराहना की गई है, जिन्होने इस "नवल और क्रान्तिकारी योजनाको स्वीकार कर लिया था।" गाधीजीने इस घोषणामे *इंडियन ओपिनियनके* उद्देश्य इस प्रकार दोहराये है "सम्राट एडवर्डकी यूरोपीय और भारतीय प्रजाओमे निकटतर सम्बन्ध स्थापित करना, लोकमतको शिक्षित करना, गलतफहमीके कारणोको दूर करना, भारतीयोके सामने उनके अपने दोष रखना और उन्हे, जव कि वे अपने अधिकारोकी प्राप्तिका आग्रह कर रहे है, उनका कर्त्तव्य-पथ दिखाना।"

उन दिनो दक्षिण आफ्रिकामे ब्रिटिश भारतीय अनेक वडी-वडी निर्योग्यताओसे त्रस्त थे। एक उपनिवेशमे जो निर्योग्यताएँ थी, दूसरेमे उनका रूप कुछ वदल जाता था और कुछका रूप कालान्तरसे भी वदलता रहता था। इन निर्योग्यताओमे प्रवास और व्यापार करने, रेल-गाडियो और घोडागाडियोमे सफर करने, पैदल-पटरियोपर चलने, वस्तीके वाहर रहने और व्यापार करने तथा अचल सम्पत्ति खरीदने आदिपर प्रतिवन्ध शामिल थे। गोरोकी व्यापारिक ईर्ष्या और कौमी दम्भ, एशियाई विभागकी कारगुजारियो, विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत परवाना अधिकारियों तथा नगर-परिषदोके सनक-भरे फैसलो और पहरेदार सघो तथा श्वेत-सघोंकी उत्तेजक कार्रवाइयोंके रूपमे प्रगट होते रहते थे। वोअरोके समयके वुरे कानूनोका,

ब्रिटिश शासन-कालमें और भी कठोरतासे पालन किया जा रहा था। जनवरी १९०४के "सिंहावलोकन" शीर्षक लेखमें और दिसम्बर १९०४ के "सालाना लेखा-जोखा" शीर्षक लेखमें गांधीजीने भारतीयोंके आसपास छाई हुई घोर घटाओंका चित्र खींचा है और उन शुभ लक्षणोंका भी उल्लेख किया है जो उन्हें मानव स्वभावके प्रति अपने अटूट विश्वासके कारण दिखाई देते थे। उन्होंने कहा कि आपत्ति मनुष्यको शोध कर खरा बनाती है। वे कहते हैं: "हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवान पर छोड़ दें, जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नहीं हिलता।"

गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंकी समस्याके सम्बन्धमें इस समयतक गांधीजीका रुख सख्त हो चुका था। उन्होंने भारत-सरकारके इस निर्णयका स्वागत किया कि जबतक ट्रान्सवालमें पहलेसे आबाद भारतीयोंकी अवस्थामें सुधार नहीं किया जाता तबतक भारतसे और अधिक मजदूरोंके प्रवासकी अनुमति नहीं दी जायेगी। उन्होंने गिरमिटिया एशियाई मजदूरोंका आयात करने और स्वतन्त्र एशियाइयोंको अमानुषताके साथ दास बनाये रखनेके प्रयत्नोंका विरोध किया। किन्तु इसका कारण कोई कोरी आदर्शवादी कल्पना नहीं थी, बल्कि वे भावी पीढ़ियोंके कल्याणकी गहरी चिन्ता और उनके प्रति हार्दिक सहानुभूतिसे प्रेरित होकर यह करनेपर विवश हुए थे। किसी राजनीतिक या आर्थिक सिद्धान्तसे नहीं, उन्होंने मानव-जातिके प्रति अपने प्रेमके कारण श्री स्किनरकी खानोंमें काम करनेवाले चीनी मजदूरोंके सम्बन्धमें पेश की गई रिपोर्टकी आलोचना की। उसी विचारसे प्रेरित होकर उन्होंने श्री क्रेसवेलके सोनेकी खानकी कम्पनीकी मैनेजरीसे इस्तीफा देनेपर सराहना भी की। श्री क्रेसवेलने इस्तीफा इसलिए दिया था कि मालिक अच्छे वेतनपर गोरे मजदूरोंकी नियुक्तिका विरोध करते थे और केवल मुनाफेकी चिन्तामें बाहरसे लाये हुए मजदूरोंको कम मजदूरी देकर कामपर लगाना चाहते थे ("श्री क्रेसवेलका बमगोला", २६–११–१९०३)। गांधीजी साधारणतया आफ्रिकियों या रंगदार लोगोंके कष्टोंकी चर्चा कभी-कभी ही किया करते थे। युवक नेता गांधीके आचरणमें स्वदेशीकी भावना समा गई थी और उनका व्यवहार, साथी कार्यकर्ताओंके व्यवहारकी वे जितनी जिम्मेदारी ले सकते थे, उसीसे मर्यादित होता था।

गांधीजी सदा समझौतेके लिए तैयार रहते थे — ऐसे समझौतेके लिए, जिससे यूरोपीयोंकी उचित इच्छाओं और हितोंकी पूर्ति भी पूर्ण रूपसे होती हो। उन्होंने इस बातका ध्यान रखकर ही प्रवास और व्यापारिक परवानोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीय संघके उचित और नरम प्रस्तावोंका स्वागत किया। देशमें भारतीयोंकी "बाढ़" की सम्भावनाको रोकनेके उद्देश्यसे केपके कानूनके नमूनेका प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम सुझाया और भारतीयोंके कारण यूरोपीय व्यापारको अनुचित रूपसे हानि न हो इसलिए उन्होंने सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलके अधिकारके साथ, परवानोंपर नगरपालिकाओंके नियन्त्रणका सिद्धान्त स्वीकार किया। ("पत्र: *स्टारको*," ३–९–१९०४)। उन्होंने लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोंको टाउन क्लार्ककी हिदायतोंपर अमल करने और अपनी दूकानें जल्दी बन्द करनेकी सलाह दी, ताकि यूरोपीयोंका विरोध समाप्त हो जाये। जब दीर्घकालीन और कठिन संघर्षके बाद हबीब मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमें भारतीय व्यापारियोंकी जीत हो गई, तब भी गांधीजीने उन्हें समझाया कि यद्यपि कानूनने उन्हें चाहे जहाँ व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता दे दी है, तो भी वे इसका पूरा लाभ न उठायें; बल्कि अपनी जीतके फलोंका उपभोग "धीरज और दूरदर्शितापूर्ण संयमसे" करें। अंग्रेजोंकी न्याय-भावनाकी सराहना करते हुए उन्होंने लिखा: "ब्रिटिश राज्यमें द्वेषभाव कितना ही तीव्र क्यों न हो, सर्वोच्च न्यायालयोंके रूपमें सुरक्षाका एक आश्रय स्थान हमेशा उपलब्ध है।" ("सुयोग्य विजय", १४–५–१९०४)। पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदारों" को हिंसा और

उत्तेजनासे दूर रहनेकी अपील करते हुए उन्होंने लिखा: "ब्रिटिश शासनका इतिहास सांविधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश झंडेके नीचे कानूनकी इज्जत करना लोगोंके स्वभावका हिस्सा बन गया है" ("पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार", २४–१२–१९०४)।

गांधीजीने इस समयके लेखों और विशेषत: दादाभाई नौरोजीको लिखे गये अपने पत्रोंमें बार-बार अंग्रेजोंसे विवेक रखकर अपने पिछले वचनों और आश्वासनोंपर कायम रहनेकी अपील की है। किन्तु कभी-कभी उनका रुख कठोर हो जाता है; जैसे उस समय, जब वे ट्रान्सवालके सम्बन्धमें कहते हैं: "यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे देशसे खदेड़ दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी किन्तु वह संखियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कहीं अधिक सदय होगी" (८–१०–१९०४)। कुछ महीनोंके बाद गांधीजीने देखा कि यदि ब्रिटिश भारतीय, कानूनसे प्राप्त अपने अधिकारोंके मुताबिक मनचाही जगह व्यापार करना चाहते हों और अपने "व्यापार, सम्पत्तिके स्वामित्व और आवागमनके अधिकारोंके सम्बन्धमें यूरोपीयोंके समान आधारपर रखे जानेके दावेकी पूर्ति" चाहते हों तो उन्हें जीवन-मरणके संघर्षमें उतरना पड़ेगा (२८–६–१९०५)

उन्होंने अपनी दृष्टिको एक क्षणके लिए भी विद्वेष, रोष या ओछेपनके कारण धुँधला नहीं होने दिया। व्यक्तियों और राष्ट्रोंमें जो गुण था उसे स्वीकार किया। यहाँतक कि सर जॉन रॉबिन्सन, डॉ० जेमिसन और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगर जैसे विवादास्पद व्यक्तियोंमें उन्होंने कुछ-न-कुछ सराहनीय गुण देखे। राष्ट्रपति क्रूगर उनकी दृष्टिमें एक महान और ईश्वरपरायण व्यक्ति थे, जो "कभी-कभी गलत दिशामें जानेवाली एकनिष्ठ देशभक्ति" का एक उदाहरण छोड़ गये हैं ("स्वर्गीय श्री क्रूगर", २३–७–१९०४)।

तफ़सीलकी छोटीसे-छोटी बात उनके लिए छोटी नहीं थी। अन्यायसे युद्ध करते हुए "सामान्य जीवनकी छोटी-छोटी बातोंकी" उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। १७ और १९ अप्रैल १९०५ को छगनलाल गांधीके नाम लिखे गये पत्रोंमें उन्होंने बाहरसे आये हुए काम और अखबारकी नि:शुल्क भेजी जानेवाली प्रतियोंकी लम्बी सूचीके सम्बन्धमें बड़ी फिक्रके साथ पूछताछ की है; और अच्छी रोटी बनानेके लिए मैदे और घीके विधिवत् मिश्रणके सम्बन्धमें तफ़सीलवार हिदायतें भी दी है।

राजनीतिक सफलता और असफलताके समस्त उतार-चढ़ावोंसे गुजरते हुए गांधीजीने प्रारम्भसे ही *इंडियन ओपिनियनका* उपयोग "सम्पादक और पाठकोंके बीच हार्दिक और स्वच्छ सम्बन्धोंकी स्थापना" के लिए किया। उनका लेखन सोद्देश्य और सही दिशामें होता था। उन्होंने गुजराती और अंग्रेजी दोनोंमें एक ही विषयसे सम्बन्धित लेख लिखे हैं, किन्तु गुजराती लेख अपेक्षाकृत विविध ज्ञानपूर्ण और लोक-कल्याणकी भावनासे भरे हुए हैं, जब कि अंग्रेजीमें लिखे हुए लेख सैद्धान्तिक अधिक है। इन दोनोंकी तुलना करनेसे यह विदित होता है कि पाठकोंका लेखनकी शैली निश्चित करनेमें कितना बड़ा हाथ होता है। उनके "आत्मत्याग" और "फुटकर मिनिटोंका सच्चा मूल्य" शीर्षक लेख, उनके धर्म-सम्बन्धी व्याख्यानोंकी भाँति ही, यह जाहिर करते हैं कि वे अपने धन्धे या सार्वजनिक कार्योंमें कितने ही व्यस्त क्यों न रहे हों, किन्तु उनके कारण उनकी दृष्टिमे जीवनके आधारभूत सत्य कभी ओझल नहीं होते थे।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें जो प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र दिये गये हैं और जिनकी संख्या इससे पहले खण्डोंकी अपेक्षा कम है, गांधीजीके लिखे हुए माने गये हैं। इस मान्यताके कारण कुछ विस्तारसे पहले खण्डकी भूमिकामें बताये जा चुके हैं। गांधीजी *इंडियन ओपिनियनमें* लिखते थे, इसके सम्बन्धमें उनकी सामान्य साक्षी उनके आत्मकथा-सम्बन्धी लेखोंसे मिलती है। इसके अतिरिक्त उनके पुराने साथी श्री एच० एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीकी राय एवं, जहाँ कहीं मिली वहाँ, अन्य साक्षीको विशेष लेखोंके लेखकत्वका निर्णय करनेमें उचित महत्त्व दिया गया है।

अंग्रेजी सामग्रीसे अनुवाद करनेमें हिन्दीको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधार कर अनुवाद किया गया है और मूलमें व्यवहृत शब्दोंके संक्षिप्त रूप हिन्दीमें पूरे करके दिये गये हैं।

गुजरातीसे अनुवाद करनेमें मुख्य उद्देश्य यह रखा गया है कि अनुवादमें मूल सामग्री सही-सही उतार दी जाये। किन्तु उसकी भाषामें हिन्दीपन लानेका प्रयत्न अवश्य किया गया है जिससे वह पढ़नेमें अच्छी हिन्दी लगे।

प्रत्येक लेखकी लेख-तिथि, यदि वह उपलब्ध है, दाहिने कोनेमें ऊपर दी गई है। यदि मूल लेखमें कोई तिथि नहीं थी तो चौकोर कोष्ठकोंमें अनुमानित तिथि, जहाँ आवश्यक हो वहाँ कारणोंके साथ, दे दी गई है। सूत्रके साथ अन्तमें दी गई तिथि प्रकाशनकी है। पत्रोंमें, वे जिन्हें लिखे गये हैं उनके नाम और पते, मूलमें उपलब्ध हैं तो, सिरेपर बायें कोनेमें दिये गये हैं।

मूलकी भूमिकामें और मूल सामग्रीके भीतर चौकोर कोष्ठकोंमें जो-कुछ सामग्री दी गई है, वह सम्पादकीय है। गोल कोष्ठक जहाँ मूलमें आते हैं, कायम रख लिये गये हैं। गांधीजीने लेखोंमें, कभी-कभी अपने ही लेखों या पत्रोंसे उद्धरण दिये हैं। ये हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

मूल पाठको समझनेमें सहायक अधिकांश जानकारी पादटिप्पणियोंमें दी गई है। उनमें इसी खण्डमें अन्यत्र प्रकाशित सामग्रीके सन्दर्भमें विशेष लेखोंके शीर्षकों और उनकी तिथियोंका उल्लेख कर दिया गया है। सन्दर्भ पहले खण्डके अगस्त १९५८ के संस्करणसे लिये हैं। आत्मकथाके सन्दर्भ गांधीजीकी मूल गुजराती पुस्तक *सत्यना प्रयोगो* अथवा *आत्मकथाकी* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित १९५२ की नवीं आवृत्तिसे लिये हैं। उनमें सम्बन्धित अंश और अध्याय मात्र दिये गये हैं, क्योंकि विभिन्न आवृत्तियोंमें पृष्ठ-संख्याएँ विभिन्न हैं।

इस खण्डकी सामग्रीके साधन-सूत्र और इसके कालसे सम्बन्धित तारीखवार जीवन-वृत्तान्त खण्डके अन्तमें दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें एस० एन० संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, जी० एन० गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और सी० डब्ल्यू० सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय द्वारा प्राप्त कागज-पत्रोंका सूचक है। संकेतोंमें कहीं कहीं सी० एस० ओ० "कलोनियन सेक्रेटरीका ऑफिस" के लिए और "सी० ओ०" कलोनियन ऑफिसके लिए आते हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम इन संस्थाओं और व्यक्तियोंके ऋणी हैं: गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका पुस्तकालय, नई दिल्ली; नवजीवन ट्रस्ट और साबरमती आश्रम संरक्षक व स्मारक ट्रस्ट और संग्रहालय, श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; भारत सेवक समिति, पूना; कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इंडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन; प्रिटोरिया और पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सार्वजनिक पुस्तकालय, केपटाउन; सार्वजनिक पुस्तकालय, जोहानिसबर्ग; श्री अरुण गांधी, बम्बई और *इंडिया*, *इंडियन ओपिनियन*, *आउटलुक* और *स्टार* समाचारपत्र।

अनुसन्धान और सन्दर्भकी सुविधाओंके लिए गांधी स्मारक संग्रहालय तथा इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय तथा सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; ब्रिटिश म्यूजियम पुस्तकालय, लन्दन; राजकीय पुस्तकालय, प्रिटोरिया और विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जोहानिसबर्ग हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. नेटालका प्रवासी–प्रतिबन्धक अधिनियम

अभीतक हम जिसे प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके[1] रूपमें जानते थे, उसपर सम्राट्की मंजूरी मिल गई और वह सरकारी *गज़टमें* कानूनके रूपमें प्रकाशित कर दिया गया है। अब वह पूरी शक्ति और प्रभावसहित उपनिवेशमें लागू हो गया है। ब्रिटिश सरकारसे उसके मंजूर होनेमें कभी किसीको शंका नहीं रही। अब उपनिवेश बहुत शक्ति-सम्पन्न बन गये हैं और दिन-प्रतिदिन और भी अधिक शक्तिशाली बनते जा रहे हैं। इसलिए सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंके लिए तो उन सब नियन्त्रणोंके सामने धैर्य और शान्तिसे सर झुकाना ही रहा, जो उपनिवेशी उनपर लादना पसन्द करें। बस, हम भी लॉर्ड मिलनरके[2] साथ-साथ यह आशा लगाये रहें कि "समय बीतने पर, और बातचीतकी मददसे," उपनिवेशी खुद ही अपने तरीकोंकी भूल समझ लेंगे और इस महान शक्तिशाली साम्राज्यके एक अंगके निवासियोंके नाते हमारे प्रति अपने कर्त्तव्योंको पहचानकर महसूस करने लगेंगे कि उन्हें उनका पालन करना चाहिए। पुराने और नये कानूनके बीच खास फर्क कहाँ-कहाँ है, यह इस मौकेपर दिखाना अच्छा होगा।

पुराना

(१) भाषा-विषयक शर्त यह थी कि कानूनके साथ अर्जीका जो एक साधारण नमूना दिया गया था उसके अनुसार एक अर्जी यूरोपकी किसी भी भाषाकी लिपिमें लिख सकनेकी योग्यता अर्जदारमें हो।

नया

(१) प्रवासी-अधिकारी किसी भी अर्जीका मजमून बोलता जायेगा। वही अर्ज-दारको लिखना होगा।

पुराना

(२) अधिकारी प्रवासियोंके नाबालिग बच्चे, जो २१ वर्षसे अधिक उम्रके नहीं होंगे, उपनिवेशमें उनके साथ आ सकेंगे। बच्चोंके लिए भाषाकी कोई कसौटी नहीं होगी।

नया

(२) अब बालिग होनेकी उम्र मनमाने तौरपर १६ वर्ष निश्चित कर दी गई है।

पुराना

(३) हर-कोई आदमी, जो यह सिद्ध कर सके कि वह दो वर्षसे उपनिवेशमें रह रहा है, उपनिवेशका निवासी होनेका प्रमाणपत्र पानेका अधिकारी होगा और इसलिए उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं होगा।

नया

(३) यह अवधि अब बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी गई है।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३८७–८८ तथा पृष्ठ ४२४–२५।

२. सर अल्फ्रेड मिल्नर, केप कालोनीके हाई कमिश्नर और गवर्नर (१८९७–१९०१), ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके (१९०२–१९०५)।

पुराना

(४) अपने मित्रों अथवा मुख्तियारोंके द्वारा अर्जी देनेपर अर्जदारोंको अस्थायी प्रवेशपत्र दे दिये जाते थे।

नया

(४) अब यह आग्रह रखा जाता है कि अर्जदार खुद हाजिर होकर अर्जी दे।

पुराना

(५) कानून इस बारेमें कुछ नहीं कहता था कि अपनी पाँच सालकी गिरमिटकी अवधि-भर उपनिवेशकी सेवा कर चुकनेवाला गिरमिटिया मजदूर उपनिवेशका निवासी माना जायेगा या नहीं।

नया

(५) जहाँतक कानूनसे सम्बन्ध है, इस तरह पाँच वर्षतक उपनिवेशमें जो रह चुका है वह उपनिवेशका बाशिन्दा नहीं माना जायेगा।

इस तरह इस विधेयकके खिलाफ ब्रिटिश भारतीयोंके युक्तिसंगत आपत्ति करनेपर भी पाँच आवश्यक बातोंमें उपनिवेशके कानूनमें नियन्त्रण अधिक सख्त बना दिये गये हैं और उसका भी कोई भरोसा नहीं कि अब आगे और कुछ नहीं होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

२. श्री वायबर्ग और एशियाई मजदूर

ट्रान्सवालके खान-आयुक्त श्री वायबर्गकी श्रम-आयोगके समक्ष दी गई गवाही अबतकके गवाहों द्वारा प्रयुक्त भूमिकाकी अपेक्षा अधिक ऊँची भूमिकापर स्थित है, और यद्यपि वे विधानपरिषदके सदस्य हैं, फिर भी उन्होंने कुछ खरी-खरी बातें कहनेमें संकोच नहीं किया है। ट्रान्सवालमें एशियाई मजदूरोंको लानेके कट्टर और अथक विरोधी श्री क्विनके प्रश्नोंके जवाबमें उन्होंने जो बातें कहीं, उनमें से कुछ अत्यन्त प्रभावकारी बातें हम नीचे दे रहे हैं।

श्री वायबर्गने कहा :

> खानोंमें अकुशल गोरे मजदूरोंसे काम लेनेके जो प्रयोग हुए हैं उनके बारेमें मुझे प्रत्यक्ष कोई जानकारी नहीं है; परन्तु मैं इस विवादका बहुत दिलचस्पीके साथ अध्ययन करता रहा हूँ। गोरे मजदूरोंके उपयोगके बारेमें मेरी राय इस प्रसिद्ध लोकोक्तिमें आ गई है कि 'जहाँ चाह है वहाँ राह भी है'। अगर गोरे मजदूरोंके उपयोगकी इच्छा लोगोंमें बहुत प्रबल हो तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि वैसा होकर रहेगा। मैं तो इसे मुख्यतः एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न समझता हूँ। यह सब इसपर निर्भर है कि हम किस नीतिपर चलना चाहते हैं।
>
> इस प्रश्नका निर्णय पूर्णतः खानोंके मालिकोंको करना है कि खानोंमें गोरे मजदूरोंसे काम लिया जाये, या स्थानीय अथवा बाहरके रंगदार जातिके मजदूरोंसे। वे अपने

इंजीनियरोंसे कह दें, 'हम चाहते हैं कि आप गोरे मजदूरोंको लानेका पूरा प्रयत्न करें और उनसे अधिकसे-अधिक और अच्छेसे-अच्छा काम किस तरह लिया जाये यह जो बतायेगा उसे खूब इनाम दिया जायेगा।' अगर मालिक ऐसा करें तो मेरा खयाल है, गोरे मजदूरोंसे काम लेनेकी जोरोंसे कोशिशें होने लगेंगी और इसमें सफलता भी मिलने लगेगी। इसके विपरीत, अगर खान-मालिक यह कहते रहेंगे, 'हम गोरे मजदूरोंको पसन्द नहीं करते' तो मेरा खयाल है, इंजीनियर कभी गोरे मजदूरोंको लानेका प्रयत्न करने और उसे सफल बनानेकी पर्याप्त प्रेरणा नहीं पायेंगे और इंजीनियरके रूपमें उन्हें ऐसी प्रेरणा मिलनी भी नहीं चाहिए।

श्री व्हाइटसाइडके जवाबमें श्री वायवर्गने आगे कहा :

लड़ाईसे पहलेके दिनोंमें सार्वजनिक कामोंमें मुझे बहुत दिलचस्पी थी और किसी समय मैं दक्षिण आफ्रिकी संघका अध्यक्ष भी था। संघकी नीति यह थी कि जितने भी अधिक अंग्रेजोंको ट्रान्सवालमें लाया जा सके, लाना चाहिए। मेरी, और मैं समझता हूँ, हर अंग्रेजकी, तब यही नीति थी। इस बारेमें कहीं दो रायें हो ही नहीं सकती थीं कि अंग्रेजोंको यहाँ आकर बसनेके लिए जितना अधिक प्रोत्साहन दिया जा सके, देना चाहिए। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। मैं समझता हूँ कि देशके हर वफादार आदमीका उद्देश्य यही होना चाहिए। परन्तु वफादार और गैर-वफादारकी बात अभी छोड़ दीजिए। मैं तो कहता हूँ कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाको कैनडा और आस्ट्रेलियाकी भाँति, जो गोरोंके देश हैं, साम्राज्यका महत्त्वपूर्ण भाग बनाना चाहते हैं तो हमको यही करना चाहिए। नहीं तो इसकी भी स्थिति जमैका, ब्रिटिश गियाना अथवा उष्ण कटिबन्धके समीपस्थ अन्य देशोंकी जैसी हो जायेगी, जहाँ गोरे काम लेनेवाले मालिक हैं और अधिकांश असली निवासी गुलामोंसे कुछ ही अच्छे हैं। हमें इस स्थितिसे बचना चाहिए। इस दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ अधिकांश आबादी गोरोंकी हो जाये और ये गोरे ऐसे हों जो अपना सारा काम खुद करें। यह रुख बड़ा पतनकारी है कि अगर हमको दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार मजदूर काफी नहीं मिलते तो हम इनकी पूर्ति किसी दूसरे जरियेसे कर लें।

श्री वायवर्गके इन प्रभावकारी वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रायमें एशियासे लाये जानेवाले गिरमिटिया मजदूरोंकी स्थिति गुलामोंसे कुछ ही अच्छी होगी। वे सरकारी सहायतासे एशियासे मजदूर लानेका जो विरोध कर रहे हैं उसका एक आधार यह भी है। अब, यह रुख ऐसा है जिसपर किसी भी समझदार आदमीको आपत्ति नहीं हो सकती। हम तो यही आशा करते हैं कि उनकी गवाही महत्त्वपूर्ण समझी जायेगी और जो सज्जन उचित और अनुचितका विचार छोड़कर केवल अपने लाभकी खातिर एशियाई मजदूरोंका शोषण करनेके लिए उत्सुक हैं, उनके मनसूबे विफल कर दिये जायेंगे। स्पष्ट ही श्री वायवर्ग एक सिद्धान्तप्रिय पुरुष हैं और अपने सिद्धान्तोंके इतने पक्के हैं कि वे धन लेकर भी स्वार्थी वर्गोंके दबावका मुकाबला कर सकते हैं, क्योंकि श्री क्विनने उनसे यह तथ्य उगलवा लिया कि उन्हें संयुक्त स्वर्णखान (कांसालिडेटेड गोल्डफील्ड्स) को इसीलिए छोड़ना पड़ा। खान-मालिक श्री वायवर्गसे अपेक्षा करते थे कि वे अपने राजनीतिक विचारोंको दबा दें, या बदल दें। एक दिलचस्प बात और भी ध्यानमें रखने लायक है — श्री वायवर्ग यह नहीं मानते कि यहाँ देशी मजदूरोंकी किसी प्रकार

भी कमी है। जब श्री विवनने उनसे कहा कि आपके पहले जो गवाहियां गुजरी हैं उनसे आपके ये कथन मेल नहीं खाते, तब श्री वायवर्गने कहा :

> यहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देखने-समझनेकी मुझे असाधारण सुविधाएँ प्राप्त हैं और मेरा तो खयाल है कि इन बाहरके जिलोंमें तत्काल बहुत अधिक मजदूरोंकी माँग होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

३. ऑरेंज रिवर कालोनीमें ईश्वरका मजाक

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हैमिल्टन जॉन गूल्ड-ऐडम्सने अपने दस्तखतोंसे घोषणा प्रचारित की है कि इस मासका अन्तिम रविवार नम्रता और प्रार्थनाका या कृतज्ञता-प्रकाशन-का — जैसी भी स्थिति हो — दिवस नियत किया गया है, "ताकि हम अपने आपको परमात्माके सामने नम्र बनायें और उससे विनती करें कि वह इस देशको अनावृष्टिके कोपसे बचाये और यहां विपुल और स्फूर्तिदायिनी वर्षा करे।" घोषणामें आगे कहा गया है कि "अगर सर्वशक्तिमान प्रभुकी इच्छासे इससे पहले ही वर्षा हो जाये तो मैं घोषित करता हूं कि यह दिन कृतज्ञता-प्रकाशनका दिन मनाया जाये।" यह विधिका विधान है कि इस घोषणाके तुरन्त बाद ही एक नई घोषणा हुई है, जिसमें तमाम रंगदार लोगोंके लिए चेचकके टीके लगवाना अनिवार्य घोषित किया गया है और कहा गया है कि, अगर वे इसमें गफलत करेंगे तो उन्हें पाच पौंड जुर्माना देना होगा, अथवा उसके बदले १४ दिनकी कड़ी कैदकी सजा भुगतनी होगी। इन दो घोषणाओंका साथ-साथ प्रकट होना तो निःसन्देह विशुद्ध संयोगकी ही बात है। चेचकके खिलाफ इस साव-धानीको हम तो आवश्यक ही मानते हैं, और जहांतक रंगदार जातियोंके लिए यह टीका खास तौरपर अनिवार्य कर देनेका सवाल है, उसपर भी हमें कोई बहुत भारी शिकायत नहीं है। परन्तु चूंकि यह दूसरी घोषणा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें हो रही है, अतः यह रंगदार जातियोंके प्रति उस अत्यन्त विरोधी नीतिका नमूना है, जो उपनिवेशको पुरानी सरकारसे विरासतके रूपमें मिली है।

फिर पहली घोषणाका अर्थ क्या रहा? प्राचीन कालमें जब मनुष्य अपने आपको नम्र बनाते थे, तब कुछ त्याग करते, बहुत बड़ा आत्म-निरीक्षण करते, अपने पापोंका प्रायश्चित्त करते और इस तरह जीवनका नया अध्याय शुरु करते थे। इस घोषणाका मसविदा श्री एच० एफ० विल्सनने बनाया है और लेफ्टिनेंट गवर्नरने उसपर दस्तखत किये हैं। क्या इन दोनों सज्जनोंको कभी, क्षण भरके लिए ही सही, यह भी खयाल हुआ है कि इसमें उनका प्रायश्चित्त करनेका कहीं कोई इरादा नहीं है, अथवा जिस सरकारका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उसकी नीतिको — चाहे वह पाप-भरी या कैसी भी रही हो — बदलनेका कोई विचारतक नहीं है? हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि उपनिवेशमें रंगदार जातियोंके प्रति अन्धा और बुद्धिहीन द्वेष भरा पड़ा है। जिन ब्रिटिश भारतीयोंकी सहायता आवश्यकताके समय उपनिवेशियोंने खुशीसे ली थी, उनके लिए उन्होंने उपनिवेशके द्वार जान-बूझकर बन्द कर दिये हैं। याद रहे, ईश्वरके समक्ष यह एक राष्ट्रीय पाप है। जबतक यह नीति जारी रखी जाती है तबतक उपनिवेशमें सर्वशक्ति-

मान ईश्वरकी दृष्टिमें जो स्वीकार हो सके ऐसी नम्रता आ ही नहीं सकती, क्योंकि वह तो मनुष्यकी चमड़ीके रंगको नहीं, उसके गुणावगुणोंको देखेगा और तव निर्णय करेगा। हमारे सामने तो एशियाके पैगम्वर — हजरत ईसाका प्रमाण है। वे भी रंगदार जातिके ही थे। उन्होंने कहा है कि केवल तोतेकी तरह दुहराई गई प्रार्थना स्वर्गमें स्थान नहीं दिलाती। उनके शब्द हैं: "जो आदमी 'हे प्रभु, हे प्रभु!' कहकर मुझे पुकारते हैं वे सभी स्वर्गके राज्यमें प्रविष्ट नहीं होंगे, किन्तु वहाँ वही प्रवेश पायेगा जो मेरे पिताकी इच्छाका अनुसरण करता है।" प्रार्थना वही है, जिसके साथ अनुरूप क्रिया भी हो, अन्यथा वह व्यर्थ तोतारटन्त-मात्र है। वाइविल कहती है: "पृथ्वी परमात्माकी है।" उपनिवेशवासियोंने इस मूल वचनको वदल दिया है। वे कहते हैं: "पृथ्वी हमारी है।" अतः जवतक ईश्वरकी आज्ञाओंको पैरों तले कुचला जाता है तवतक प्रार्थनाका दिन निश्चित करना निरा ढोंग है। फिर भी हम स्वीकार करेंगे कि घोषणा द्वारा ईश्वरका मजाक वुद्धिपूर्वक नहीं किया जा रहा है। यह तो संकट और जरूरतके समय ईश्वरके नाम निकली हुई हृदयकी पुकार है। परन्तु साथ ही यह हमारी स्वभावगत कमजोरीका एक सुन्दर उदाहरण भी है। हम ईश्वरको अपने नापसे नापते हैं और भूल जाते हैं कि उसके तरीके हमारे तरीकोंसे अलग हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो जिसे हम भूलसे नम्रता और प्रार्थनाका नाम देते हैं उसके वावजूद हमसे वहुतसी चीजें छिन गई होतीं। प्रभु सर्वज्ञ है। उसका सूरज भले और वुरे सवको समान रूपसे प्रकाश देता रहता है।

परन्तु क्या हम परमश्रेष्ठ और उनकी सरकारसे क्षणभर रुकने और सोचनेके लिए नहीं कह सकते? घोषणासे इतना तो प्रकट है कि हृदयमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा है। जिस हृदयमें ऐसी श्रद्धा निवास करती है, क्या उसके लिए एक समस्त जातिको, महज इसलिए कि उसकी चमड़ीका रंग उससे जुदा है, निन्दित वताना सुसंगत है, जवकि दोनों एक ही राजाके प्रति राजभक्तिके वंधनोंसे वँधे हैं? क्या ब्रिटिश भारतीयोंने ऐसी कोई वुराई की है, जिससे वे इतने अपमानित किये जानेके योग्य ठहरें, जितने अपमानित वे उपनिवेशमें किये जाते हैं? किन्तु अगर रंगदार जातियोंके प्रति इस जिहादको जारी ही रखना है, तो झूठमूठ नम्रताका नाम लेकर प्रार्थनाके लिए दिन मुकर्रर करके ईश्वर और मानवताके प्रति अपराध क्यों करते हैं?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

४. एशियाई मुहकमा

अन्यत्र हम *बारबर्टन गोल्डफील्ड्स न्यूज़*के संवाददाताका पत्र छाप रहे हैं, जिसे हमारे सहयोगी *रैंड डेली मेल*ने उचित ही ज्ञानवर्धक बताया है। ट्रान्सवालकी वर्तमान सरकारने उपनिवेशके कार्योंके प्रबन्धपर जो भारी खर्च किया है, उसकी चर्चा उस पत्रमें बहुत साफ-साफ भाषामें की गई है। अगर संवाददाताके बताये अंक अतिरंजनीय नहीं हैं, तो यह बिलकुल साफ है कि पिछली बोअर-सरकार हमारी वर्तमान सरकारके मातहतोंसे कुछ भी नहीं सीखती। *गोल्डफील्ड्स न्यूज़*के लेखकने जो लम्बी सूची दी है उसमें हम एशियाई मुहकमाको भी पाते है, जिसपर सालाना १०,००० पौंड खर्च किये जाते हैं, और उसपर भी एशियाइयोंको उसका तिलभर भी लाभ नहीं मिलता। पिछली सरकारके जमानेमें इस तरह ऐसा कोई खर्च नहीं था, क्योंकि वह भारतीय हितोंकी चाहे कितनी ही विरोधी रही हो, परन्तु उसने अलग एशियाई मुहकमा कभी नहीं खोला था। पाठकोंको याद होगा कि सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकने[1] इस फी-आदमी एक पौंडके भारी अपव्ययका सख्त विरोध किया था, क्योंकि ट्रान्सवालमें पूरे १०,००० भारतीय भी शायद ही हों। फिर जब हम यह खयाल करते हैं कि यह खर्च उन लोगोंके नियन्त्रणके लिए किया जा रहा है जो संसारमें सबसे अधिक निर्दोष हैं तथा जो कभी पुलिसको परेशान नहीं करते, तो आश्चर्य होता है कि ट्रान्सवाल सरकार उसके औचित्यको कैसे सिद्ध कर सकती है। खैर, सुन रहे हैं कि छँटनी आ ही रही है। उपनिवेशके सारे असैनिक प्रशासनकी सफाई की जानेको है। हमारा तो खयाल है कि एशियाई मुहकमा एक ऐसा मुहकमा है, जिसे सबसे पहले छाँट दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

५. जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने परिषदके सम्मुख एक प्रतिवेदन पेश किया है जिसे हम *स्टार*से लेकर अन्यत्र छाप रहे हैं। इसे पढ़कर दुःख होता है। अगर उस समितिकी सिफारिशोंको नगर-परिषद मान्य कर लेती है और सरकार भी इनके आधारपर दिये गये सुझावोंपर अपनी मंजूरी दे देती है, तो ट्रान्सवालमें बसे अधिकांश भारतीयोंकी किस्मतका फैसला हमेशाके लिए हो जाता है। यह स्मरणीय है कि ट्रान्सवालमें जितनी भारतीय आबादी है उसमें से आधीसे भी अधिक जोहानिसबर्गमें है। नगर-परिषदने जिस बस्तीको हालमें ही जब्त कर लिया है उससे कोई एक मीलके फासलेपर काफिरोंकी वर्तमान बस्ती है, जिसे हमने देखा भी है। समितिकी अपेक्षा है कि जिन लोगोंको पुरानी बस्तीसे स्थान-वंचित किया गया है केवल उन्हींको नहीं, बल्कि जोहानिसबर्ग शहरमें बसे भारतीयोंको भी वहाँ रहनेके लिए मजबूर किया जाये। उनके लिए स्वास्थ्य-समितिने यही जगह चुनी है। साफ-साफ शब्दोंमें स्वास्थ्य-समितिका सुझाव यह है कि ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंके मुँहकी रोटी छीन ली जाये। वहाँ जानेपर

१. ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।

आपसमें वे जो कुछ देन-लेन करें सो बात दूसरी है; परन्तु व्यापारके नामसे वहाँ कुछ भी होना सम्भव नहीं हो सकेगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर हमें आश्वासन दे ही रहे हैं कि *बाजारोंके* लिए ऐसे स्थान चुने जायेंगे जिनमें भारतीयोंको शहरकी गोरी और काफिर — दोनों आबादियोंके व्यापारका काफी हिस्सा मिल सकेगा। यह स्पष्ट नहीं है कि समितिने पहलेके ५० × ५० के बजाय अब जो ३० × २० के बाड़े बनानेका सुझाव दिया है वह भारतीय बस्तीपर भी लागू है या नहीं। देखें, सरकार इस अन्यायपूर्ण प्रस्तावके बारेमें क्या कहती है। ट्रान्सवालमें काम बहुत जल्दी-जल्दी होते हैं। करोड़पति चाहते हैं कि थोड़े वर्षोंमें ही यहाँका सब सोना निकाल लें। नगर-परिषदने हजारों निर्दोष लोगोंकी जमीनें बातकी बातमें छीन ली हैं; इसलिए स्वास्थ्य-समितिके नीचे लिखे शब्दोंका अर्थ क्या है, सो हम ठीक तरहसे समझ सकते हैं:

> **बर्गर्सडॉर्पकी पुरानी भारतीय मजदूर बस्ती और अस्वच्छ क्षेत्रके दूसरे हिस्सोंसे जिन एशियाइयोंको हटाया जायेगा, उनको बसानेके लिए तुरन्त स्थानका प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। अतः यह जरूरी है कि इस योजनाको जल्दसे-जल्द हाथमें लिया जाये।**

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

६. ट्रान्सवालके लिए परवाने

परवानोंके नियमोंके सम्बन्धमें एक विज्ञापन हमने पिछले अंकमें छापा था। हम अपने भारतीय पाठकोंका ध्यान उस विज्ञापनकी तरफ दिलाना चाहते हैं। इतने सीधे-सादे, फिर भी कारगर नियम बनानेपर हम मुख्य परवाना-सचिव कप्तान हैमिल्टन फाउलको बधाई देना चाहते हैं। पाठक देखेंगे कि अब उन्हें परवाने प्राप्त करनेके लिए छः-छः जगहोंपर नहीं दौड़ना होगा। पहले अर्जदारोंको भिन्न-भिन्न शहरोंके परवाना-दफ्तरोंमें जाना पड़ता था। अब इसकी जरूरत नहीं रह गई है। हमारी रायमें यह कल्पना बहुत अच्छी और मौलिक है। अब तो शरणार्थीको सिर्फ इतना करना होगा कि वह परवानेके लिए अर्जीका एक फार्म प्राप्त कर ले, उसे भर दे, मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिमें उसपर अपने दस्तखत कर दे और मुख्य परवाना-सचिवके पास उसे भेज दे। बस, इसके जवाबमें उसे इस अर्जीकी पहुँच लौटती डाकसे मिल जायेगी और फिर उसकी बारी आनेपर ट्रान्सवालमें प्रवेश पानेका अधिकारपत्र उसके पास पहुँच जायेगा। तब वह खुद जोहानिसबर्ग जाये और ट्रान्सवालमें बसनेका स्थायी अधिकारपत्र ले ले। कुछ लोगोंको शायद यह कुछ कठिन प्रतीत हो कि जो लोग ट्रान्सवालके दूसरे हिस्सोंमें बसना चाहते हैं उन्हें भी पहले जोहानिसबर्ग आना पड़ेगा; परन्तु यहाँ दो विकल्पोंमें से एकके चुनावकी बात थी। एक तो यह कि परवाने प्राप्त करनेके दफ्तर भिन्न-भिन्न शहरोंमें हों और दूसरा यह कि सब जोहानिसबर्ग आयें। सो इन दोनोंमें से दूसरा विकल्प हमें कम असुविधाजनक प्रतीत होता है; क्योंकि इन आनेवालोंका बहुत अधिक प्रतिशत तो जोहानिसबर्गकी तरफ ही आकर्षित होता है। अर्जदारोंको याद रखना चाहिए कि ट्रान्सवालमें प्रवेशका अधिकारपत्र मिलनेके बाद उन्हें निश्चित समय मिलेगा, जिसके अन्दर उन्हें वहाँ जरूर पहुँच जाना होगा। इसलिए उन्हें इस बातका खास तौरपर ध्यान रखना होगा कि वे वहाँ अवधि बीत जानेपर देरसे न पहुँचें। इन परवानोंके नियमोंमें शरणार्थियोंके लिए तो एक नया युग-सा शुरू हो गया है। जो चीज उन्हें बगैर किसी परेशानी और खर्चके आसानीसे मिल जानी चाहिए थी, उसको पानेकी कोशिशमें

पहले उनकी गाढ़ी कमाईका बहुत-सा पैसा लुट जाता था। इसलिए हम अर्जदारोंको यह भी स्मरण दिलाते हैं कि "अर्जीके फार्म या परवानेके लिए कोई शुल्क या कीमत नहीं देनी है और अगर अर्जदारको अनुमतिपत्रके दफ्तरके किसी कर्मचारीके खिलाफ कभी कोई शिकायत हो तो वह सीधा मुख्य परवाना-सचिवको सूचित करे।" शरणार्थियोंको ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें अपनी दरख्वास्तें किसी मुख्तियारके मार्फत नहीं, सीधे खुद मुख्य परवाना-सचिवके पास भेजनी हैं। अब अगर वे मुख्तियारों या वकीलोंपर बेकार पैसा खर्च करेंगे तो उसमें दोष उन्हींका होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

७. पॉचेफस्ट्रूमका व्यापार-संघ

पॉचेफस्ट्रूमके व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री हार्टलेने सभाको दिये अपने भाषणमें नीचे लिखी बातें कही हैं:

> कुलियोंके सवालपर संघ गंभीरतापूर्वक सोचता रहा है। हमारी कोशिश यह रही है कि अब नये परवाने न जारी किये जायें। और नये आये हुए लोगोंको उनके लिए बने *बाजारोंतक* ही सीमित रखा जाये। फिर भी हम देखते हैं कि शहरके अनेक भागोंमें नई दूकानें खुल गई हैं। और स्थानीय अधिकारियोंसे हमें इस सवालका कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिलता कि इस मामलेको निपटानेके लिए जो नया अध्यादेश जारी किया गया है उसपर अमल क्यों नहीं हो रहा है। दूसरे संघोंसे भी हमारी चिट्ठी-पत्री चल रही है कि हम सब मिलकर इस मामलेमें आगे बढ़ें। संघके सदस्योंसे मैं जोरदार अनुरोध करना चाहता हूँ कि कुलियोंके आव्रजनको रोकनेके लिए हर तरहकी कोशिश करनी चाहिए; क्योंकि यूरोपीय व्यापारियोंके लिए वे भयंकर खतरेका कारण साबित होनेवाले हैं।

स्पष्ट ही पॉचेफस्ट्रूमके सज्जन पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार संघ[1] (ईस्ट रैंड विजिलेंट्स) का अनुकरण कर रहे हैं। उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता है कि पॉचेफस्ट्रूम नगरका एक-एक भारतीय दूकानदार एक ऐसी पृथक बस्तीमें भेज दिया जाये, जहाँ उसे कोई धंधा ही न मिल सके। संघकी बैठकमें श्री हार्टलेने यह घोषित किया कि:

> कुलियोंके प्रश्नके बारेमें मैं कह सकता हूँ कि यह मामला उच्च अधिकारियोंके विचाराधीन है, और मुझे जो-कुछ बताया गया है, उससे मुझे विश्वास होता है कि अच्छा होगा यदि अभी तीन महीने इसे हम जैसाका-तैसा छोड़ दें। इस अवधिमें मेरा खयाल है कि सरकार गोरे व्यापारियोंको सन्तोष देने योग्य कुछ कदम उठायेगी।

हम भली भाँति अनुमान कर सकते हैं कि ये उच्चाधिकारी कौन हो सकते हैं जिन्होंने श्री हार्टलेको आश्वासन दिया है कि तीन महीनेके अन्दर-अन्दर पॉचेफस्ट्रूम नगरमें से भारतीयोंको निकाल

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४०३।

बाहर कर दिया जायेगा। और इन पृथक बस्तियोंके बारेमें हम जैसा सुन रहे हैं, अगर वे ऐसी ही रहीं तो इन गरीब दूकानदारोंकी क्या खूब दशा होगी! ध्यान देनेकी बात है, जैसा कि श्री हार्टलेके बयानसे स्पष्ट है, कि पॉचेफस्ट्रूमके यूरोपीय व्यापारी अपने साथी भारतीय व्यापारियोंके विरोधी हैं। इसलिए अगर सरकार उनकी बात मंजूर कर लेगी तो कहना होगा कि सारा व्यापार खुद ही हड़पनेकी इच्छा रखनेवालोंके स्वार्थपूर्ण आन्दोलनकी विजय हो गई। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंपर अगले वर्ष क्या-क्या मुसीबतें आयेंगी इसका पहले ही अनुमान हो जानेपर कुछ महीने हुए परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तको एक दरखास्त भेजी गई थी। इसपर परमश्रेष्ठ क्या जवाब देते हैं, यह जाननेके लिए हम अत्यन्त आतुर हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

८. चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्किनरकी रिपोर्ट

खानमालिकोंके संघने श्री एच० रॉस स्किनरको संसारके उन तमाम भागोंके दौरेपर भेजा था, जिनका चीनके साथ कुछ भी सम्पर्क है। वे लौट आये हैं और उन्होंने अपना प्रतिवेदन संघके सम्मुख पेश कर दिया है। वह जोहानिसबर्गके अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है। उसमें मजदूरोंके हितोंकी चर्चाका एक भी अनुच्छेद ढूँढ़े नहीं मिलता। प्रतिवेदन योग्यतापूर्वक लिखा गया है और अंकों तथा तथ्योंसे भरा पड़ा है। तथापि भावनाके सर्वथा अभावके कारण वह एक अत्यन्त निराशाजनक विवरण है। खान-उद्योगसे सम्बन्धित मजदूरोंके प्रश्नपर एक भावनाशून्य और विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिके अलावा किसी दूसरे प्रकारकी आशा तो हमने उनसे की भी नहीं थी। उनके सामने एकमात्र प्रश्न यही था कि खानोंके लिए मजदूर[1] कैसे प्राप्त करें, जिससे उद्योगको अधिकसे-अधिक और मजदूरोंको कमसे-कम लाभ हो। उन्होंने जोहानिसबर्ग *स्टारमें* छपे अपने साढ़े पाँच कालमवाले सारे प्रतिवेदनमें इसी प्रश्नका उत्तर देनेका यत्न किया है।

श्री स्किनर मजदूरोंपर नीचे लिखी शर्तें लगाना चाहेंगे:

(१) कुछ वर्षोंकी निश्चित अवधितक काम करनेका शर्तनामा।

(२) कुछ वर्गोंके मजदूरों और निवासस्थानोंपर प्रतिबंध।

(३) इस अवधिमें उनके किसी प्रकारके व्यापार करने और कोई जमीन-जायदाद खरीदने या पट्टेपर लेनेपर प्रतिबन्ध।

(४) अगर शर्तकी अवधि नहीं बढ़ी तो अनिवार्य रूपसे वापस लौट जाना।

(५) अंग्रेजी कानून और आरोग्यके नियमोंका पालन आवश्यक। ये दोनों चीनकी परम्पराओंसे एकदम भिन्न हैं।

पहली और पाँचवीं शर्तको छोड़कर शेष सारी शर्तें इस हेतुसे लगाई जायेंगी कि अपने मालिककी इजाजतसे अधिक कोई चीनी अपने शरीर या बुद्धिका लाभदायी उपयोग न करने पाये। इसके साथ-साथ श्री स्किनर इनपर अहातोंकी प्रथा भी लागू कर देना चाहते हैं। इस प्रकार मजदूर एक निरा कैदी बन जायेगा। जैसा कि *लीडरने* गम्भीरतापूर्वक सुझाया

१. ट्रान्सवालके खान-उद्योग मालिकोंने चीनसे २,००,००० गिरमिटिया मजदूर बुलानेका प्रस्ताव किया था। देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८३।

है, अब तो केवल एक काम रह जाता है कि इन शर्तोंके साथ मजदूरोंको लानेकी इस योजनाको विधानसभा अपनी मंजूरी प्रदान कर दे, तो ट्रान्सवालकी मजदूर-समस्या हल हो जायेगी। श्री स्किनरके मन्तव्यके विपरीत हम आशा करते हैं कि यदि इस आशयका कानून मंजूर भी हो जाये — जिसके बारेमें हमें बहुत सन्देह है — तो भी जिनको एतदर्थ शर्तनामे लिखने हैं वे लोग आरकाटियों (लेबर-एजेंटों) द्वारा प्रस्तुत सारे प्रलोभनोंको ठुकरा देंगे और ऐसी असमान शर्तोंपर कान नहीं देंगे। तब खानोंके उद्योगका प्रश्न अपने आप और आहिस्तासे गोरे उप-निवेशियों तथा देशी निवासियों दोनोंके लिए लाभदायक रूपमें हल हो जायेगा, और चीनी या अन्य किसी एशियाई देशके सहायक मजदूरोंकी परेशानी-भरी समस्या भी सामने नहीं आयेगी। सच तो यह है कि खुद श्री स्किनरको डर है कि मजदूर कहीं सामूहिक हितोंके लिए अपना संगठन आदि न बना लें। उनके प्रतिवेदनका वह हिस्सा उन्हींके शब्दोंमें हम नीचे दे रहे हैं:

> चीनियोंमें फ्रीमेसनरियोंके समान पारस्परिक सहयोगकी एक समर्थ प्रणाली होती है। एकताके सामर्थ्य और लाभोंको वे भली-भाँति जानते हैं। सैनफ्रांसिस्कोमें ऐसे छः संगठन हैं। अधिकांश प्रवासी चीनी उनमें से किसी-न-किसीके सदस्य हैं और उसे चन्दा देते रहते हैं। यह प्रणाली बहुत व्यापक है, परन्तु कुल मिलाकर इसका प्रभाव लाभप्रद ही होता है। ये संगठन अपने सदस्योंकी तरफसे और उनके नामपर अनेक प्रकारके व्यवसाय करते हैं, मजदूरोंकी देख-भाल करते हैं, पैसेका लेनदेन करते हैं, या उसे चीन भेजना हो तो उसका प्रबन्ध भी कर देते हैं। ये चीनियोंकी हर प्रवृत्तिमें दिलचस्पी रखते हैं और उनके हितोंकी रक्षा करते हैं। ये एक और काम भी करते हैं कि यदि कोई चीनी मर जाये तो कहनेपर मृतककी अस्थियां उसके रिश्ते-दारोंके पास चीन भेज देते हैं। जिनका कार्य-क्षेत्र इतना व्यापक है ऐसी संस्थाएँ अगर रैंडमें भी स्थापित हो जायें तो यहाँके प्रवासी चीनियोंपर उनका गहरा प्रभाव पड़ेगा। कई बातोंमें, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनका प्रभाव हितकारी हो सकता है। परन्तु अगर कहीं उन्हें यह खयाल हो गया कि साधारण मजदूरीके विषयमें खानें पूर्णतः उन्हींपर अवलम्बित हैं, तो इसमें खतरा भी है। इस कठिनाईको टालनेके लिए स्पष्ट ही यह आवश्यक है कि अभी हम काफिर मजदूरोंकी संख्या बढ़ानेके लिए जो यत्न कर रहे हैं, वह बराबर और जोरोंके साथ जारी रखा जाये, ताकि खानोंमें चीनी, काफिर और अन्य साधारण मजदूरोंकी संख्यामें एक प्रकारका सन्तुलन बना रहे। चीनके भिन्न-भिन्न भागोंसे लाये हुए मजदूरोंपर भी यह सिद्धान्त लागू किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, अनुभव यह हुआ है कि उत्तरी भागोंके चीनी दक्षिणी भागोंके चीनियोंके साथ शायद ही सहयोग करते हैं।

इस तरह श्री स्किनर "फूट फैलाकर राज करो" वाली चालसे काम लेना चाहते हैं। परन्तु हमारा खयाल है कि संगठनोंको तोड़नेमें विधानसभाके बनाये कानून मददगार होंगे, ऐसा अगर श्री स्किनरको विश्वास हो, तो वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। उत्तर और दक्षिणी चीनके निवासी अपने देशमें भले ही लड़ रहे हों, किन्तु यहाँ आनेपर समान विपत्ति उनमें एकता पैदा कर देगी और उन्हें अहातोंकी कैद तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके अपहरणके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति प्रदान कर देगी। श्री स्किनरकी योजनाकी तफसीलोंको देखें तो वे दिलचस्प होते हुए भी हमारी रायमें एकदम अव्यावहारिक हैं। ज्यों ही वे चीनी डॉक्टरों तथा जमादारोंको लायेंगे त्यों ही श्री स्किनर

देखेंगे कि वे अपने लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहेंगे और अनियन्त्रित रूपसे अपने दिमागका उपयोग भी करना चाहेंगे। वह दृश्य बड़ा मनोरंजक होगा, जब दो समान बुद्धिवाली जातियोंमेंसे एक जाति दूसरीकी बुद्धिके विकासको कुंठित करनेकी कोशिश करेगी। तफसीलें हम नीचे दे रहे हैं। पाठक खुद ही सोचें कि सर रिचर्ड सॉलोमनका बनाया कोई भी कानून श्री स्किनर द्वारा इतनी लापरवाहीसे बनाई गई कागजी नीतिको सफल करनेमें कहाँतक कामयाब हो सकता है।

एक खानके लिए नियोजित चीनी मजदूरोंके जत्थेकी बनावट इस प्रकार होगी:

(१) एक मुखिया, जो अहातेके प्रबन्धकके साथ काम करेगा और मजदूरों तथा प्रबन्धकर्ताओंके बीच दुभाषियेका काम भी करेगा।

(२) चार उपमुखिया, दो खानके अन्दर और दो ऊपर काम करनेके लिए, जो अंग्रेजी बोल सकते हों या इस काबिल हों कि बहुत थोड़े समयमें काम चलाऊ अंग्रेजी सीख सकें।

(३) हर तीस मजदूरोंके ऊपर देखभाल करनेवाला एक जमादार होगा, जिस प्रकार काफिरोंके जत्थोंपर देखभाल करनेवाले होते हैं।

(४) पचास आदमियोंके हर समूहके लिए एक रसोइया होगा, और हर रसोइएकी मददके लिए एक जवान कुली सहायक।

(५) एक चीनी डॉक्टर, जो स्थानीय खान डॉक्टरके मातहत एक मुखियाकी भाँति काम करेगा और अस्पताल उसके सुपुर्द रहेगा। बहुत-से चीनी, खास तौरपर शुरू-शुरूमें, आग्रह करेंगे कि वे अपने देशके डॉक्टरसे भी इलाज करा सकें। इसके लिए कुछ चीनी दवाएँ भी संग्रहमें रखनी होंगी।

प्रत्येक खानपर कुशल गोरे और साधारण काफिर, अथवा कुशल गोरे और साधारण चीनी मजदूर होंगे। चीनी और काफिर मजदूरोंको एक साथ किसी खानपर मिलने नहीं दिया जायेगा। वैसे यदि सम्भव हो तो उनका जिलोंमें मिलना भी रोकना चाहिए। अधिक बड़ी संख्यामें चीनी कुलियोंको लानेसे पहले जो कुछ हजार चीनी मजदूर लाये जायेंगे उनके साथ ऐसे भी आदमी लाये जायेंगे जो चीनियोंसे वाकिफ हों, ताकि उनसे काम लेनेमें सहूलियत हो और जो खानें चीनियोंसे काम लेना चाहें उन्हें चीनियोंको समझनेमें मदद मिले, ताकि एकाएक उनके सामने कोई ऐसी नई परिस्थिति खड़ी न हो जाये, जिसका सामना करनेके लिए वे तैयार न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

९. जोहानिसबर्गका वह अस्वच्छ क्षेत्र

गत ७ तारीखको मुख्य मार्ग, जोहानिसबर्गमें एक आम सभा हुई। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने जिन जमीनोंपर अधिकार कर लिया है उनके मुआवजे और उस रकबेकी जमीनोंके पुराने मालिकोंको दिये जानेवाले किरायेके बारेमें उनके रुखपर इस सभाके वक्ताओंने अपने विचार प्रकट करनेमें किसी प्रकारकी रू-रियायत नहीं की। बड़ी सख्त भाषाका उपयोग किया गया। नगर-परिषदके कार्यको एक बलात्कार माना गया। सभाके अध्यक्ष श्री मार्क गिलनने कहा, "नगर-परिषदका कार्य सचमुच लज्जाजनक है, और यह एक लादा हुआ बोझ है जिसे सहन नहीं करना चाहिए।" दूसरे वक्ताने तो इस जमीन लेनेको "जमीनें जब्त" करनेकी संज्ञा दी। नगर-परिषदके सदस्योंपर खुलकर बुरे उद्देश्योंके आरोप तक लगाये गये। हम नहीं मानते कि वे इन विशेषणोंके पात्र हैं। जबतक हमारे सामने कोई निश्चित प्रमाण नहीं है, हम यह विश्वास नहीं करेंगे कि श्री विवन और उनके साथियोंका हेतु शुद्धके अतिरिक्त कुछ और रहा होगा। परन्तु अस्वच्छ क्षेत्रकी समितिके पक्षमें इससे अधिक हम और कुछ नहीं कह सकते। उनका हेतु अत्यंत संकीर्ण रहा है, इसमें तो हमें तिल-भर भी सन्देह नहीं है और चूंकि भारतीयोंने एक बड़ी संख्यामें मुआवजेके लिए अपने दावे पेश कर रखे हैं, इसलिए यह उचित होगा कि समितिपर वक्ताओंने जो दो आरोप लगाये हैं, उनकी भी हम जांच कर लें। इस सम्बन्धके तथ्य अपने आपमें इतने गम्भीर हैं कि यदि वक्ता केवल तथ्य सामने रख देते तो भी उनका कर्तव्य पूरा हो जाता। नगर-परिषदके खिलाफ सबसे बड़ा प्रमाण तो प्रत्यक्ष उसीकी यह स्वीकृति है कि १,२०० दावेदारोंमें से केवल १६८ ने नगर-परिषद द्वारा दिया गया अत्यन्त अपर्याप्त मुआवजा स्वीकार किया है। इसपर शायद यह कहा जा सकता है कि दूसरे आदमियोंकी अपेक्षा खुद दावेदार अपने लाभ-हानिको अधिक अच्छी तरह जानते हैं; अतः परिषद द्वारा निश्चित मुआवजेका उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाना ही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि निश्चित मुआवजा बहुत वाजिब था। लेकिन यह दलील पेश करनेवाले इस मुख्य बातको भूल जाते हैं कि नगर-परिषद और दावेदार समान भूमिकापर नहीं हैं। दावेदार बहुत गरीब हैं। वह जमीन उनकी आजीविकाका एकमात्र साधन थी। साहूकार शायद उन्हें अलग तंग कर रहे होंगे। ऐसी सूरतमें उनकी इच्छा हो या न हो, उन्हें तो अपने प्रतिपक्षीसे, जिसके पास अक्षय खजाना पड़ा है, समझौता करना ही था। अस्वच्छ क्षेत्रके गरीब निवासियोंके मुकाबलेमें नगर-परिषदके साधन निश्चित रूपसे असीम हैं। इसलिए हम तो मानते हैं कि इन थोड़ेसे दावोंका निपटारा भी नगर-परिषदके पक्षमें पेश नहीं किया जा सकता। बल्कि जब हम देखते हैं कि अनिर्णीत दावोंकी संख्या बहुत अधिक है तब यह उसके खिलाफ सबसे बड़ा और उसीका पेश किया गया प्रमाण है। दावोंके रूपपर विचार करते हुए हमें ज्ञात हुआ है कि जायदादोंकी कीमतका निर्णय करनेमें किसी पद्धतिसे काम नहीं लिया गया है। कुछ जमीनें ऐसी हैं, जिनपर बड़ी सुथरी इमारतें खड़ी हैं। जिन जमीनोंपर भद्दे, नंगे ढाँचे-भर खड़े हैं, उनकी कीमतें भी इनके समान ही कूती गई हैं। याद रहे कि इन दोनों प्रकारकी जमीनोंकी कीमतें इमारतोंको छोड़कर समान ही हैं; क्योंकि वे उसी बस्तीमें और एक-दूसरेसे लगी हुई हैं। और ऐसे उदाहरण इक्के-दुक्के नहीं हैं। ऐसे बहुत-से उदाहरण पेश किये जा सकते हैं कि जब पिछली बार वे बिके थे तब उनकी कीमतें अच्छी आई थीं, किन्तु परिषदके

निर्णायकोंने उनकी कीमतें उससे कम आँकी हैं। यह कहना कोई मानी नहीं रखता कि मालिकोंने अत्यधिक मुआवजेकी माँगें की हैं। सम्भव है यह सही हो, या गलत भी हो, किन्तु गलत प्रकारकी इस मक्खीचूसपनेकी नीतिका अवलम्बन करके परिषद अपने करदाताओंकी कुसेवा ही कर रही है। शायद परिषदके सदस्योंने ऐसा करते हुए अपने कर्तव्यको बहुत बढ़ाकर समझ लिया है। सर्वसाधारण रूपसे वे अपने करदाताओंका पैसा बचानेकी धुनमें अपने ही उन गरीब करदाताओंके साथ बहुत भारी अन्याय कर रहे हैं, जिन्हें यदि उदारता नहीं तो न्यायकी बहुत जरूरत है। जब इस क्षेत्रमें आवश्यक सुधार हो जायेंगे तब यहाँका किराया बढ़ जायेगा। परन्तु कानूनने मालिकोंसे यह लाभ छीन लिया है। इस बातकी कोई शिकायत नहीं कि यह सारी विशेष आय करदाताओंकी ही मानी जायेगी। परन्तु इतनेपर भी नगर-परिषदसे यह तो अपेक्षा अवश्य की गई थी कि वह इन अस्वच्छ क्षेत्रोंकी जमीनोंके मालिकोंके साथ शोभनीय और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगी। जहाँतक जमीनोंके मालिकोंसे किराया लेनेवाले नगर-परिषदके प्रस्तावसे सम्बन्ध है, हम समझते हैं कि जो लोग इसका विरोध कर रहे हैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेसे अपने आपको रोकना बड़ा कठिन है। सभाके वक्ताओंका यह कथन अक्षरश: सही है कि बहुतसे लोगोंकी आजीविकाका एकमात्र साधन जायदादें ही हैं। शायद नगर-परिषदकी 'सेरभर मांस' वाली अपनी ज़िद कानूनकी दृष्टिसे उचित भी हो। परन्तु ऐसे मामलोंमें कानूनी अधिकार, अगर उसमें दया-धर्मका खयाल नहीं रखा गया है तो, क्रूरता बन जाता है। बेदखल लोगोंके रहनेके लिए जमीनें ढूँढ़नेका प्रश्न अनिश्चित कालके लिए आगे ढकेल दिया गया है। इसलिए जबतक उनके रहनेकी पूरी-पूरी व्यवस्था नहीं हो जाती और अगर मालिकोंको अपनी जायदादोंका अस्थायी रूपसे उपयोग नहीं करने दिया जाता या किराया वगैरह नहीं लेने दिया जाता तो वे गुजर कैसे करेंगे—खासकर ऐसे कठिन और चिन्ताके समयमें? बारिश बहुत ही पिछड़ गई है। परमात्मा जाने, दक्षिण आफ्रिकापर उसकी कृपा कब होती है। उद्योग-धन्धे ठप्प हैं, पैसे-टकेका बाजार भी मन्दा है, और हम अखबारोंमें पढ़ते हैं कि जोहानिसबर्गमें हजारों आदमी एकदम बेकार हैं। ऐसी परिस्थितियोंमें इन निर्दोष लोगोंसे उनकी जीविकाका एकमात्र साधन छीन लेना एक ऐसा काम है जिसका किसी प्रकार भी समर्थन नहीं किया जा सकता। परिषद अभीतक नामजद ही है। अत: शायद वह लोक-भावनाका निरादर कर सकती है। परन्तु हमारी मान्यता है कि परिषद जनताके प्रति सीधी जिम्मेदार नहीं है, इस कारण उसका यह कर्तव्य दूना हो जाता है कि अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोंके प्रति अपने व्यवहारमें न्याय और औचित्यका पूरा-पूरा ध्यान रखे। और अगर वह यह नहीं कर सकती या करना नहीं चाहती तो जबतक निर्वाचित परिषद नहीं बन जाती—जैसी कि वह बहुत जल्दी ही बन जायेगी — तबतक यह कार्रवाई रोक रखी जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१०. जोहानिसवर्गकी पृथक वस्ती

हमें नगर-परिषदके नाम जोहानिसवर्गके निवासियों और करदाताओं द्वारा भेजी गई उस अर्जीका समर्थन करनेमें कोई हिचक नहीं, जिसमें भारतीय वस्तीको यहांसे हटाकर किसी अधिक उपयुक्त स्थानपर ले जानेकी मांग की गई है। उस अर्जीका एक अंश हम गत ९ तारीखके *ट्रान्सवाल लीडरसे* यहां उद्धृत करते हैं, जिससे प्रकट होता है कि यह अर्जी नागरिकोंमें घुमाई जा रही है। अर्जीमें जोहानिसवर्ग नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिके उस प्रस्तावका हवाला दिया गया है जिसमें कहा गया है कि अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इनसेनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रियेशन ऑर्डिनेन्स) के अनुसार जिस भारतीय वस्तीके निवासियोंको बेदखल किया गया है उसे काफिरोंकी वस्तीकी जगह और काफिरोंकी वस्तीको और भी आगे हटा दिया जाये। हम स्वीकार करते हैं कि जिन कारणोंको लेकर करदाता उस सुझावका विरोध कर रहे हैं, हमारे कारण उनसे भिन्न हैं। उस अर्जीपर हस्ताक्षर करनेवाले स्पष्टतया यह चाहते हैं कि भारतीयोंको हटाकर काफिरोंकी वर्तमान वस्तीसे भी कहीं आगे वसाया जाये। हमारी राय है कि यह काफिर वस्ती ही जब्त किये गये रकबेसे इतनी अधिक दूर है कि उसका भारतीयोंके लिए कोई उपयोग नहीं हो सकेगा। दूसरे, खुद कानून यह कहता है कि जबतक अस्वच्छ क्षेत्रके इन लोगोंको नजदीक ही कहीं वसनेका स्थान नहीं बना दिया जाता तबतक उन्हें अपने वर्तमान स्थानसे न हटाया जाये। हम जानते हैं कि परिषद द्वारा जब्त की गई जगहसे काफिर वस्ती एक मीलसे भी अधिक दूर है, और हम नहीं समझते कि वेदखल लोगोंको अपनी आजकी जगहसे पूरे एक मीलसे भी दूर ले जाना वेदखली कानूनकी मंशाके अनुकूल माना जायेगा। इसलिए या तो उन लोगोंको अपनी जगहसे हटाया ही नहीं जाना चाहिए, या कोई दूसरा कम आपत्तिजनक स्थान वताया जाना चाहिए। अर्जदारोंके प्रस्तावके समर्थनमें केप टाउनका दृष्टान्त दिया गया है और इस तर्कके वलपर ब्रिटिश भारतीयोंको जोहानिसबर्गसे दूर हटानेका औचित्य सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है कि काफिरोंको तो ठेठ मेटलैंडसे केप टाउनमें लाया गया था। परन्तु इन दो उदाहरणोंके वीच जरा भी समानता नहीं है। अगर वस्तीमें रहनेवाले सारे भारतवासी निरे मजदूर होते तव शायद केप टाउनका अनुकरण जोहानिसवर्गमें भी करनेके पक्षमें कुछ कहा जा सकता था; परन्तु जव हम देखते हैं कि उनमें से अधिकांश व्यापारमें लगे हुए स्वतन्त्र लोग हैं और कुछकी आजीविका पूर्णतया वस्तीके व्यापारपर ही निर्भर है, तो यह वात तुरन्त ध्यानमें आ सकती है कि नई वस्ती शहरके इतने नजदीक होनी चाहिए कि कमसे-कम वह देशी तथा गोरे ग्राहकोंको समान रूपसे आकर्षित करनेकी उचित अनुकूलताएँ प्रदान कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

११. श्री बालफ़रका मन्त्रिमण्डल

पाँसा फेंक दिया गया है और श्री सेंट जॉन ब्रॉड्रिक भारतके सिरपर मढ़ दिये गये हैं। श्री ब्रॉड्रिककी योग्यताके बारेमें सर्वत्र यही राय है कि युद्ध-कार्यालयका संचालन पूर्णतः बिगाड़नेमें वे सफल रहे हैं, और मन्त्रीका स्थान सँभालनेमें अपने आपको उन्होंने अयोग्य साबित कर दिया है। परन्तु श्री बालफ़रने देखा कि वे श्री ब्रॉड्रिकको धता तो नहीं बता सकते, इसलिए उनको ऐसे पदपर बैठा दिया, जिसके खिलाफ कोई जोरदार आवाज नहीं उठ सकती। भारत-कार्यालयमें श्री ब्रॉड्रिकके बैठानेसे श्री बालफ़रको अपना एक भी वोट खोनेका डर नहीं है। इस नियुक्तिका भारत भले ही सर्वानुमतिसे विरोध करता रहे, परन्तु लोकसभाके सदस्योंके चुनावमें तो भारतका मत नहीं लिया जाता; वहाँ उसकी कुछ नहीं चलती। इसीलिए श्री ब्रॉड्रिक अपने आपको बचानेके लिए यह बेहूदा प्रस्ताव लानेकी हिम्मत कर सके कि दक्षिण आफ्रिकी फौजोंका पाँच लाख पौंडका पूरा वार्षिक खर्च भारत दे। इस योजनाका इतना विरोध हुआ कि अन्तमें उसे छोड़ ही देना पड़ा; परन्तु इसका भी उनपर कोई असर नहीं हुआ। इस नियुक्तिके अन्याय और हृदयहीनताको दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंने भी महसूस किया है। *ट्रान्सवाल लीडरके* अग्रलेख लिखनेवालेने जितनी कड़ी भाषामें इस नियुक्तिकी निन्दा की है उससे अधिक सख्त भाषाका प्रयोग हम नहीं कर सकते थे। इस नियुक्तिके बारेमें वह लिखता है:

> श्री ब्रॉड्रिकने *पालमालसे* विदा ली, यह तो निश्चय ही एक बड़े लाभकी बात हुई। परन्तु हमें शक है कि अपने काम-काजके शीर्षस्थानपर उनकी नियुक्तिसे भारतकी जनता खुश होगी। इस सर्वसम्मत निर्णयको मानना ही पड़ेगा कि वे पूर्णतः अयोग्य व्यक्ति हैं और ऐसी सूरतमें उन्हें चुपचाप गैर-सरकारी जिन्दगीमें उपेक्षापूर्वक डाल देना चाहिए। निश्चय ही मामलेकी सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होना तो असम्भव ही है। परन्तु भारतमें वाइसराय लॉर्ड कर्जन हैं जो लॉर्ड डलहौजीके बाद सबसे अधिक योग्य और दृढ़ निश्चयी वाइसराय हैं। इसलिए श्री ब्रॉड्रिकको निश्चय ही ऐसे गुप्त आदेश दे दिये गये होंगे कि वे हर बातमें लॉर्ड कर्जनकी रायका आदर करें और नाम-मात्रको भारत-मन्त्री बने रहें। हम आशा करते हैं कि बात ऐसी ही होगी। क्योंकि, उन्होंने अबतक जो भी प्रयोग किये वे सब इतनी बुरी तरह असफल हुए हैं कि अब कोई पूर्वके नाजुक मामलोंमें उनका फूहड़पन पसन्द नहीं करेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१२. भारतकी साम्राज्य-सेवा

इंडियाके एक ताजा अंकमें भारत द्वारा साम्राज्यकी सेवाओंके सम्बन्धमें रोचक ब्योरे छपे हैं। इन सेवाओंका क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है और इनका प्रारम्भ १८६० से होता है। *इंडियाने* लिखा है कि भारतने सन् १८६० में दो और १८६१ में एक सैन्यदल न्यूजीलैंड भेजे। सन् १८६७ में अबीसीनियाकी चढाईमें भारतने सोलह पैदल सैन्यदल, पांच रिसाले, सात इंजीनियरोंकी कम्पनियाँ, पाँच तोपखाने और सेनापति तथा अन्य कर्मचारी भेजे। सन् १८७५ में पेराककी सारी चढ़ाईमें भारतीय ही भारतीय थे। सन् १८७८ और १८७९ के अफगान युद्धमें ६०,००० और ७०,००० के बीच भारतीय सिपाही खेत रहे। सन् १८८२ में मिस्रकी चढ़ाईमें पांच पैदल सैन्यदल, तीन रिसाले, इंजीनियरोंकी दो कम्पनियाँ और दो तोपखाने भेजे गये। सन् १८८५ और १८८६ में सूडान और सुआकिनकी चढाइयोंमें भेजी गई सारी फौजें भारतीय थीं। उनमें से एकको छोड़कर सारा साधारण खर्च भारतने ही दिया। अफगान-युद्धके खर्चमें १,८०,००,००० पौंड भारतने दिये, जब कि ग्रेट ब्रिटेनने केवल ५०,००,००० पौंड दिये थे। मिस्रकी चढ़ाईमें भारतने साधारण खर्च तो दिया ही, इसके अलावा ८,००,००० पौंड अतिरिक्त खर्च भी उसीने उठाया। सन् १८६० से पहलेवाले अफगान युद्धमें भारतने जो सहायता दी है वह भी उनके साथ जोड़ दी जानी चाहिए। उस युद्धमें हजारों भारतीय सिपाही बर्फके नीचे दबकर मर गये थे और जनरल साईको अपनी भारतीय फौजोंकी वीरताके कारण नाम कमानेका अवसर मिल गया था। इस आश्चर्यजनक विवरणमें हालकी चीनकी चढाई, दक्षिण आफ्रिकाको सर जॉर्ज व्हाइट और उनके १०,००० भारतीयों द्वारा ऐन मौकेपर दी गई बहुमूल्य सहायता और सोमालीलैंडमें चल रहा वर्तमान युद्ध भी जोड़ दिये जाने चाहिए। अपने किसी पिछले अंकमें हमने भारतको "साम्राज्यकी दासी (सिन्ड्रेला[1])" के रूपमें वर्णित किया है, और हम अपने पाठकोंसे पूछना चाहते हैं कि क्या हमारा किया वह वर्णन किसी भी तरह खींचा-ताना हुआ है? हमारा तो यहाँतक खयाल है कि साम्राज्यके इतिहासमें और खास तौरपर औपनिवेशिक विस्तारके इतिहासमें हमने ऊपर जो वर्णन दिया है उसकी तुलनामें रखने लायक कहीं भी कुछ नहीं मिलेगा। अन्य उपनिवेशोंने कभी भारत-जितनी सहायता नहीं की है, या उनसे कभी इस तरह सहायता माँगी ही नहीं गई है। और यद्यपि उपनिवेशोंने गत महायुद्धमें उदारतापूर्वक जो हाथ बँटाया नि:सन्देह वह साम्राज्यके हर सदस्यके लिए गौरवकी बात है, तथापि भारतने जो-कुछ दिया है और जो-कुछ सहा है, उसके मुकाबलेमें यह सब कुछ-नहींके बराबर है। क्योंकि यह सत्य भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अन्य उपनिवेशोंने जो-कुछ छोटीसे-छोटी भी सेवा की है उसका पूरा-पूरा मुआवजा उनको दिया गया है। और अगर इजाजत हो तो हम बतायें कि आस्ट्रेलियाके मन्त्री तो यहाँतक बढ़ गये कि ब्रिटेनके खाते उन्होंने जो रकम खर्च की उसपर उन्होंने ब्याज और दलाली तक वसूल की, मानो उनके मातृदेश और आस्ट्रेलियाके बीच केवल आसामी और आढ़तियाका सम्बन्ध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९०३

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४०९।

१३. देर आयद दुरुस्त आयद

ट्रान्सवालके *गवर्नमेंट गज़टके* एक ताजा अंकमें हमने पढ़ा कि जर्मिस्टनका एशियाई दफ्तर उठा दिया गया। दिन चढ़े सही, लेकिन इस जागनेपर सरकार भारतीय समाजकी तरफसे बधाईकी पात्र है। जबसे यह दफ्तर खुला था तभीसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय बराबर कहते आये हैं कि यह शुद्ध अपव्यय है। सरकारने अपने इस कदम द्वारा सिद्ध कर दिया कि उनकी बात सही थी। हम आशा करते हैं कि सरकार एक कदम और आगे बढ़कर मुहकमेको ही पूरी तरहसे उठा देगी। उसमें भला किसीका नहीं है। उलटे, वह ब्रिटिश भारतीयोंको काफी असुविधा और उनकी भावनाओंको चोट पहुँचाता है। अनुमतिपत्रोंका सारा काम उसके पाससे कम हो जानेके बाद, सवाल यह है कि उसके पास अब क्या काम रह जाता है? आर्थिक नियन्त्रण उसके हाथोंमें नहीं है। और परवाने जारी करनेके लिए परवाना-अधिकारी हैं। एशियाइयोंके नाम दर्ज करनेके लिए मुख्य अनुमतिपत्र सचिव हैं। इस तरह कल्पना नहीं की जा सकती कि इस मुहकमेकी उपयोगिता आखिर है किस बातमें?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१४. पत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर १९, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आपके १ तारीखके पत्रके सन्दर्भमें मैं आपको विनम्रतापूर्वक याद दिलाता हूँ और संघकी ओरसे प्रार्थना करता हूँ कि परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल[1] की भेंटके लिए कोई तिथि निश्चित कर दें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़: एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२-१९०६।

१. सबसे पहले २५ सितम्बरको यह प्रार्थना की गई थी कि परवानोंके सम्बन्धमें स्थिति पर विचारके लिए एक शिष्टमण्डलको मिलनेकी अनुमति दी जाये।

१५. ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र

मुख्य सचिवने पिछले महीनोंमें जारी हुए अनुमतिपत्रोंके अंक प्रकाशित किये हैं, जो जोहानिसबर्गके अखबारोंमें छपे हैं। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह पत्रक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प है। इस अवधिमें जारी किये गये अनुमतिपत्रोंकी कुल संख्या ३२,३५१ है। उसमें से पुराने निवासियोंको दिये गये अनुमतिपत्र केवल ७८२७ हैं और शेष २४,५२४ नये आगन्तुकोंको दिये गये हैं। यह संख्या केवल ट्रान्सवालकी है। जनवरी और मार्चके बीच ११,८६५, अप्रैल और जूनके बीच ११,८४४ और जुलाई तथा सितम्बरके बीच ८,६४२ अनुमतिपत्र जारी हुए। इन आकड़ोंमें उन भूतपूर्व निवासियोंको शामिल नहीं किया गया है जिन्होंने लड़ाईके दिनोंमें अपने अनुमतिपत्र लौटा दिये थे या जिन्हें वापस लौटनेकी इजाजत दे दी गई थी। इसलिए इस संख्यामें केवल वही यूरोपीय शामिल हैं, जो बोअर नहीं हैं; क्योंकि याद रखनेकी बात है कि एशियाइयोंके अनुमतिपत्र उनमें शुमार नहीं किये गये हैं। अकसर ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंको न आने देनेका कारण यह बताया जाता है कि अगर उनके प्रवेशपर कोई रोक नहीं लगाई गई तो उपनिवेशमें वे-ही-वे हो जायेंगे। ये अंक आरोपका माकूल जवाब हैं। सरकारी कागज बताते हैं कि उस समय ट्रान्सवालके उपनिवेशमें शायद पूरे १०,००० भारतीय भी नहीं होंगे, जब कि जोहानिसबर्गके एक पत्रके अनुसार ट्रान्स-वालमें नागरिकों सहित ५,००,००० यूरोपीय हैं। इसलिए अभी कोई ऐसा आसन्न भय तो नहीं नजर आता कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालको पदाक्रान्त कर देंगे। परन्तु ये अंक एक दूसरी दुःखदायी कहानी भी सुना रहे हैं कि, जहाँ यूरोपीय शरणार्थियोंसे तीन गुने नये यूरोपीयोंको ट्रान्सवाल प्रवेशके अनुमतिपत्र दिये गये हैं वहाँ गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोंको अनुमतिपत्र अगर दिये भी गये हों तो बहुत कम, भले ही विशेष रूपसे उनका खयाल किये जानेके कितने ही प्रबल कारण रहे हों। हमें ऐसे बीसियों लोगोंका पता है, जिनको ट्रान्सवालमें काम दिया जानेका आश्वासन दिया गया। परन्तु चूँकि वे शरणार्थी नहीं थे, इसलिए उन्हें अनुमतिपत्र नहीं मिले और इस कारण वे इन आश्वासनोंका लाभ नहीं उठा सके। हर हफ्ते केवल सत्तर अनुमतिपत्र एशियाइयोंको मिलते हैं। हमारा खयाल है, इनमें चीनी भी शामिल हैं। और जिन गैर-शरणार्थी भारतीयोंने अर्जियाँ दी हैं, उनको यह जवाब मिला है कि जबतक शरणार्थी भारतीयोंकी सारी अर्जियाँ खत्म नहीं हो जातीं, उनकी अर्जियोंपर विचार नहीं हो सकेगा। अब अनुमतिपत्रोंका सारा मुहकमा अनुमतिपत्रोंके मुख्य सचिवके मातहत हो गया है। क्या हम आशा करें कि स्पष्ट रूपसे यूरोपीयोंकी — चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या नहीं — अर्जियोंके प्रति जो उदारता वे प्रकट कर रहे हैं, वही भारतीयोंकी अर्जियोंके प्रति भी करेंगे? हम एक क्षणके लिए भी यह नहीं सुझाना चाहते कि वे हजारों गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश दे दें। पहले तो ट्रान्सवालमें आनेके इच्छुक लोग हजारोंकी संख्यामें हैं भी नहीं, और मान लीजिए कि हजारों भारतीय ट्रान्सवालमें आना चाहते हैं, तो हम खुद जानते हैं कि उनकी अर्जियोंपर विचार नहीं हो सकता। परन्तु जो लोग ट्रान्सवालमें पहलेसे ही बस गये हैं उनकी मददके लिए अगर नये आदमियोंकी जरूरत है, अथवा जो लोग काफी पढ़े-लिखे हैं और जिनकी आजीविकाके स्वतन्त्र साधन हैं और संभवतः जिनके अच्छे ताल्लुकात हैं, उनकी अर्जियोंपर तो अवश्य उदा-

रतापूर्वक विचार होना चाहिए। लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको[1] आश्वासन दिया है कि पुराने कानूनपर ट्रान्सवालकी सरकार पहलेकी तरह सख्तीसे अमल नहीं करेगी। उनके इस कथनका हमने आदरपूर्वक प्रतिवाद कर दिया है, क्योंकि वास्तविकता इसके विरुद्ध है। भारतीयोंके प्रवेशका प्रश्न हमारे कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योंकि, पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोंके प्रवेशपर जहाँ किसी प्रकारकी रोक नहीं थी, वहाँ अब शरणार्थियोंको भी बहुत मुश्किलसे कहीं इक्के-दुक्के लौटने दिया जाता है। और गैर-शरणार्थी भारतीयोंके लिए तो ट्रान्सवालके दरवाजे एकदम बन्द हैं। इस प्रकार ट्रान्सवाल-सरकार केवल पुराने एशियाई-विरोधी कानूनसे ही आगे नहीं बढ़ जाती है, बल्कि इस विषयमें तो उसने नेटाल और केपके कानूनोंको भी बहुत पीछे छोड़ दिया है। नेटाल और केपके उपनिवेशोंमें जो भारतीय बस गये हैं वे जब चाहें, स्वतन्त्रतापूर्वक अपने उपनिवेशसे बाहर जा सकते हैं, और लौट भी सकते हैं। और जो यूरोपीय भाषाओंमें से कोई एक भी भाषा जानते हैं वे — चाहे पहले उपनिवेशके निवासी रहे हों या न भी रहे हों — इन दोमें से किसी भी उपनिवेशमें आकर बस सकते हैं। लॉर्ड मिलनरने सुझाया है कि ट्रान्सवालके १८८५ के कानून ३ की जगह नेटाल-कानूनके नमूनेपर कानून बनाया जाये। इसलिए क्या हम सुझायें कि कमसे-कम अभी तत्काल नेटाल और केपके कानूनोंके अनुसार जो अर्जदार प्रवेश पानेके अपात्र न हों, उन्हें बगैर रोक-टोकके ट्रान्सवालमें आने दिया जाये? और शरणार्थियोंको भी उनकी तरफसे अर्जी आते ही प्रवेश मिल जाया करे? केप और नेटालके कानूनोंमें एक और सुविधा यह है कि जो पहलेके निवासी नहीं हैं और जो किसी यूरोपीय भाषाकी आवश्यक शैक्षणिक योग्यता नहीं रखते, किन्तु अन्य प्रकारसे प्रवेश पानेके योग्य हैं, उन्हें भी विशेष आज्ञासे प्रवेश मिल सकता है। इसके अलावा, ऐसे लोगोंको भी, उदाहरणार्थ, पुराने निवासियोंके लिए आवश्यक घरेलू नौकरों और दूकानोंके लिए गुमाश्तों वगैराको भी, स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेशकी अनुकूलता होनी चाहिए। हम समझते हैं कि ये माँगें अत्यन्त उचित हैं। इनसे भारतीयोंकी भावनाओंको बड़ा समाधान मिलेगा। और जैसा कि हम पहले ही सुझा चुके हैं, भारतीयोंके अनियन्त्रित प्रवेशका अथवा गैर-शरणार्थी अर्जदारोंकी बाढ़के आनेका कोई प्रश्न ही नहीं है, हम आशा करते हैं कि सरकार इन सुझावोंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०३

१. जोजेफ़ चेम्बरलेन (१८३६-१९१४), उपनिवेश-मंत्री, १८९५-१९०३; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

१६. आस्ट्रेलियाका ब्रिटिश तथा भारतीय साम्राज्य-संघ

आस्ट्रेलियामें स्थापित उपर्युक्त संस्थाका घोषणापत्र हमें मिला है। यह एक शुभ चिह्न है कि जो ब्रिटिश भारतवासी संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जा बसे हैं वे सम्राटकी प्रजाके नाते अपने अधिकारोंकी रक्षाके हेतु अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणोंका प्रतिकार करनेके लिए सुसंगठित हो रहे हैं। संस्थाके पदाधिकारियोंके नाम पढ़नेसे ज्ञात होता है कि आस्ट्रेलियामें बसे हमारे देशभाई कुछ प्रभावशाली यूरोपीयोंका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त कर सके हैं। उनमें सर्वश्री टेप्हाल, जी० थॉरबर्न, पास्कल, क्विन इत्यादिके नाम हैं। और अगर समितिके सदस्योंकी सूची संस्थाके साधारण सदस्योंकी निर्देशिका मानी जाये तो हम कह सकते हैं कि संस्था सभी वर्गोंके भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करती है।

मालूम हुआ है कि श्री चार्ल्स फ्रान्सिस सीवराइट संस्थाके एक संस्थापक हैं। *इंडियन डेली न्यूज़*के अनुसार ये सज्जन मेल्बोर्नके निवासी और वहाँके बैरिस्टर श्री मार्किंस सीवराइटके दूसरे पुत्र हैं। संस्थाने श्री सीवराइटको राष्ट्रीय महासभा (नेशनल कांग्रेस) के आगामी अधिवेशन और मुस्लिम शिक्षा-परिषदके लिए अपने प्रतिनिधिके रूपमें चुना है। वे अपने साथ उन महान संस्थाओंके नाम अपनी संस्थाकी तरफसे अर्जियाँ भी ले जा रहे हैं, जिनमें उनसे अपने प्रवासी भाइयोंका खयाल रखनेकी विनती की गई है। यह एक सही कदम है, और हम श्री सीवराइटके प्रयत्नोंको बारीकीसे समझते रहेंगे, क्योंकि यद्यपि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रश्नके अपने स्वतन्त्र और स्थानीय पहलू हैं और, इसलिए, श्री सीवराइटके उद्दिष्ट कार्यका उसपर शायद बहुत असर न भी पड़े, फिर भी वह एक साम्राज्यका ही प्रश्न है, इसलिए डाउनिंग स्ट्रीटके अधिकारी आस्ट्रेलियामें जो-कुछ करेंगे वह बहुत हदतक दक्षिण आफ्रिकापर भी लागू होगा।

संस्थाके उद्देश्य ऐसे हैं, जिन्हें सब पसन्द करेंगे। उसका उद्देश्य है "कॉमनवैल्थ सरकारकी ऐसे कानूनोंके पालनमें मदद करना, जो अनिष्ट प्रकारके —— उदाहरणार्थ अज्ञानी, दरिद्र और अनैतिक वर्गोंके —— अवांछित आगन्तुकोंसे सम्बन्ध रखते हैं।" इसके अलावा उसका उद्देश्य "ब्रिटिश भारतसे आये अधिक सुसंस्कृत व्यापारी-वर्गके खिलाफ जो हानिकर रुकावटें लगी हुई हैं उन्हें दूर करना" भी है। संस्था यह भी चाहती है कि "आस्ट्रेलियाके भारतीय नागरिकोंका सामाजिक रुतबा बढ़ाये। ऐसा करनेसे भारतीयोंको और, उनके साथ-साथ, वहाँके जीवनमें वे जिनके दैनिक सम्पर्कमें आते हैं, उनको भी लाभ पहुँचानेका दोहरा काम होगा।" घोषणा आगे कहती है:

> **हम सब मिलकर काम करेंगे। कोई सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थकी अभिलाषा नहीं रखेगा और सब दूसरी तमाम बातोंको छोड़कर, जिसमें सभी सदस्योंका हित होगा, उसीका सर्वोपरि ध्यान रखेंगे। हम दत्तचित्त और निःस्वार्थ रहेंगे। संस्थाके विभिन्न ऊँचे पदोंकी नियुक्तिमें किसी वर्ग या गुटका विचार नहीं करेंगे। एक संगठनके नाते हमारा लक्ष्य सारे राष्ट्र-कुटुम्ब (कॉमनवैल्थ) में ब्रिटिश भारतीयोंके लिए न्याय प्राप्त करना होगा।**

ये उद्देश्य प्रशंसनीय हैं और ऐसे हैं जिनपर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। और जिस भावनासे संस्थाके सदस्य काम करना चाहते हैं, वह तारीफके लायक है। और यदि वे अपने घोषणा पत्रमें लिखित मार्गपर चलते रहे तो उनकी सफलता निश्चित है। हम इस संस्थाकी

स्थापनाका स्वागत करते हैं और कामना करते हैं कि वह अपने जीवनको सार्थक करे और चिरायु हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०३

१७. रपट पड़ेकी हर गंगा

जोहानिसबर्गके पत्रोंसे ज्ञात होता है कि आखिर यही निश्चय होने जा रहा है कि खानोंके लिए चीनी मजदूर न लाये जायें। श्री स्किनरके अंक[1] बताते हैं कि गहरी खानोंमें चीनी मजदूर लाभदायक सावित नहीं होंगे। उनके प्रतिवेदनसे यह भी ज्ञात होता है कि वे आसानीसे आयेंगे भी नहीं। प्रस्तावित शर्तोंपर आवश्यक संख्याको राजी करनेके लिए बहुत अधिक खुशामद करनी पड़ेगी। यदि ये समाचार सही हैं तो इस मुक्तिपर दक्षिण आफ्रिकाके लोग अवश्य अपने आपको बधाई दे सकते हैं। हमें आश्चर्य नहीं होगा, अगर यहाँके करोड़पति एकाएक घोषणा कर दें कि इस मन्दीका मजदूरोंके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके कारण दूसरे ही हैं। और यह कि चीनसे मजदूर न आयें तो भी खानें बराबर चलती रहेंगी। परन्तु यह तो रपट पड़ेकी हर गंगा हुई। वे यह कह सकते थे, "चाहे हमें खानें बन्द कर देनी पड़ें तो भी हम शर्तबन्द एशियाई मजदूरोंको लेकर श्रमिक-वर्गके साथ अन्याय न करेंगे और वह काम न करेंगे जो तत्वतः दासोंका क्रय-विक्रय है।" अगर वे ऐसा करते तो उनकी स्थिति ज्यादा गौरवास्पद हुई होती और वे श्रमिक-वर्गके प्रिय बन गये होते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०३

१८. असली रूपमें

डंडी नगर-परिषदकी हाल ही में हुई एक बैठकका यह विवरण *नेटाल मर्क्युरीसे* लिया गया है:

परवाना-अधिकारीने एक भारतीयको, जिसने अपने व्यापारके लिए एक इमारत खड़ी कर ली थी, परवाना दे दिया। परवाना-अधिकारीके इस कार्यका परिषद-सदस्य श्री विलसनने विरोध किया। उन्होंने इस कार्यको अत्यन्त अनुचित बताया; क्योंकि यूरोपीयों द्वारा बनाई शानदार दूकानोंके किरायेदार भारतीयोंको ऐसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया था। उन दूकानोंकी तुलनामें इस भारतीयकी इमारत झोंपड़ेके समान कही जायेगी।

परिषद-सदस्य जोन्सने इस विषयपर बड़ा जोरदार भाषण दिया और उन्होंने इस कार्यको लज्जाजनक बताया। क्योंकि, परिषदने साफ इच्छा व्यक्त की थी कि अब भारतीयोंको परवाने न दिये जायें।

१. देखिए "चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्किनरकी रिपोर्ट" १५-१०-१९०३।

परवाना-अधिकारीने अपनी बुद्धिका उपयोग करके जो निर्णय किया उसे परिषद-सदस्य जोन्सने साहसके साथ "लज्जाजनक" कहा। और परिषद-सदस्य विल्सनके विचारसे वह "अनुचित" है। बेशक अपील सुननेवाले न्यायालयके ये न्यायाधीश क्या खूब हैं! ध्यान देनेकी बात है कि परवाना देनेवाले अधिकारीके निर्णयके विरोधमें की गई अपीलोंको सुननेका अधिकार डंडी नगर-परिषदको दिया गया है। ऊपरके विवरणका अर्थ यह हुआ कि अब डंडीके परवाना-अधिकारीको परवानेके लिए जो अर्जियां आयें उनपर अपनी तरफसे कोई निर्णय नहीं देना चाहिए। उसे तो केवल नगर-परिषदका भोंपू बनकर केवल उसकी आज्ञाओंका पालन करते रहना चाहिए। फिर भी इस अंग्रेजी उपनिवेशमें हमसे कहा जाता है कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके[1] अन्दर अर्जदारोंको अपील करनेका अधिकार है। हम तो कहना चाहेंगे कि वास्तवमें परवाना अधिकारीका कार्य नहीं, बल्कि नगर-परिषदके उक्त दोनों सदस्योंके, जो खुद ही डंडीके दूकान-दार हैं, उद्गार ही लज्जाजनक हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

१९. एशियाई "बाजार"

हमारे सहयोगी *वेस्टर्न ट्रान्सवाल ऐडवर्टाइज़र* और *ज़ीरस्ट एक्सप्रेसने* एशियाई *बाजारोंके* प्रश्नपर जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हें हम हर्षके साथ नीचे दे रहे हैं।

व्यापारी-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) की बैठकके विचारणीय विषयोंके बारेमें लिखते हुए हमारा सहयोगी अपने अग्रलेखमें कहता है:

> **एशियाई *बाजारोंका* तीसरा प्रश्न एक ऐसा विषय है, जिसपर काफी चर्चा करनेकी जरूरत है। व्यापारी संघ इस विषयमें इतना जोर क्यों लगा रहा है, यह अभीतक हमारी समझमें नहीं आया। हमें कहा तो सिर्फ इतना ही गया है कि अगली बैठकमें उसपर विचार होगा, किन्तु हमारा अनुमान यह है कि इस बैठकमें सरकारसे विनती की जायेगी कि वह अध्यादेशपर अमल करनेके लिए तुरन्त कदम उठाये। हमें कुछ भी नहीं मालूम कि एशियाई व्यापारियोंको शहरसे बाहर हटानेके लिए कुछ-न-कुछ करनेके लिए संघ इतना उतावला और अधीर क्यों हो रहा है और हम समझते हैं कि हमारे शहरकी धूलभरी सड़कोंपर बहस करना इससे अधिक संगत है।**

हमारे सहयोगीको इस प्रश्नपर इतनी समझ-भरी दृष्टिसे विचार करते हुए देखकर हमें प्रसन्नताका अनुभव हुआ है और हम सहयोगी *ऐडवर्टाइज़रकी* रायसे सहमत हैं कि व्यापारी-संघ भारतीय व्यापारियोंको ज़ीरस्टसे हटानेके लिए अत्यन्त आतुर है। हमें ज्ञात हुआ है कि ज़ीरस्टमें पहलेसे ही एक पृथक् बस्ती है, जिसे पुरानी हुकूमतने बसाया था। और यह कि, वर्तमान सरकारने उसका पुनः सर्वेक्षण किया है और उसे वह *बाजारका* नया नाम देकर उन तमाम भारतीय व्यापारियोंको वहाँ हटाना चाहती है, जिनके पास लड़ाईके पहले परवाने नहीं थे। हमारी राय है कि यह कार्य सरकारके द्वारा जारी की गई अपनी सूचनाके[2] अनुरूप

१. कानूनकी धाराओंके लिए देखिये खण्ड ३, पृष्ठ ३८३–३८६।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३१४।

भी नहीं होगा; क्योंकि सूचनामें साफ कहा गया है कि ट्रान्सवालमें *बाजार* शहरके अन्दर ही स्थापित किये जायेंगे; और लॉर्ड मिलनरका आश्वासन है कि ये *बाजार* शहरके अन्दर ही ऐसी जगहपर होंगे कि जिससे ब्रिटिश भारतीयोंको गोरे व्यापारका भी कुछ हिस्सा मिल सके। अब, अगर जीरस्टकी पुरानी बस्ती, जो शहरके भीतर नहीं बाहर है, दूसरे शहरोंमें बननेवाले *बाजारोंका* नमूना हो तो हमारी रायमें यह एक अत्यन्त गम्भीर बात होगी। हर हालतमें उन लोगोंके लिए अपना सारा कारोबार हटाना बड़े संकटकी बात होगी, जिनका व्यापार जम गया है। अतः हमें अब भी आशा है कि निहित स्वार्थोंको छेड़नेका ऐसा काम नहीं किया जायेगा। परन्तु एक तरफ पड़ी हुई ऐसी बस्तियोंमें व्यापार करना नये अर्जदारोंके लिए भी एकदम असम्भव होगा। चूँकि वर्ष समाप्त होने जा रहा है, इस मामलेका निर्णय करना दिन-ब-दिन अधिकाधिक जरूरी होता जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

२०. भारतसे गिरमिटिया मजदूर

पिछले हफ्ते हमने प्रवासियोंके कार्यवाहक संरक्षकके सन् १९०२ के मनोरंजक प्रतिवेदनके एक हिस्सेपर विचार किया था। उस वर्ष सोलह जहाजोंने — ग्यारहने मद्राससे और पाँचने कलकत्ता से — ४,३७३ भारतीयोंको उतारा, जिनमें २,९४० पुरुष थे और १,०६९ स्त्रियाँ थीं। इस वर्ष प्रवेशके लिए १८,००० अर्जियाँ आई थीं। इनके अलावा १,९०२ अविचारित अर्जियाँ सन् १९०१ की पड़ी हुई थीं। इस प्रकार सन् १९०२ के अन्तमें इस प्रतिवेदनके अनुसार १७,५०० मनुष्य ऐसे थे जो भेजे नहीं जा सके। प्रतिवेदन आगे कहता है:

> अगर भारतमें मजदूरोंकी भरती और उन्हें भेजनेका काम जोरोंसे आगे नहीं बढ़ाया गया तो भारतीय मजदूरोंकी आवश्यक संख्या हमें ढाई वर्षसे पहले नहीं मिल सकेगी। भारतीय मजदूरोंकी माँग इतनी अधिक बढ़नेका कारण वतनी मजदूरका, खास तौरपर खेतीके काममें, अविश्वसनीय होना है।

इस असाधारण माँगके दूसरे कारण ये बताये गये हैं:

> लड़ाईके दिनोंमें इन वतनी आदमियोंको ऊँची मजदूरी मिलती रही है। रिक्शा चलाकर वे प्रतिदिन एक-एक पौंड कमा लेते हैं। फिर गोरी आबादी ९,००० बढ़ गई है। इसलिए बहुतसे मजदूरोंको उनके पास काम मिल गया होगा। मजदूरोंकी इस कमीके कारण वतनी आदमियों और स्वतन्त्र भारतीयोंको खूब ऊँची मजदूरी मिल रही है। यह सातवाँ वर्ष है, जब उनको हर महीने साठ-साठ शिलिंग पड़ जाते हैं।

इस प्रकार प्रतिवेदनसे प्रकट है कि उपनिवेशकी समृद्धिके लिए भारतीयोंकी कितनी अधिक आवश्यकता है। हर जगह उनकी जरूरत है और फिर भी अखबारोंमें लेखक शिकायतें कर रहे हैं कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी बाढ़ आ रही है। हमारा सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़र* तो और आगे बढ़कर उपनिवेशके प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और गिरमिटिया मजदूरोंके प्रवेश-सम्बन्धी कानूनोंके भेदको भी भुला देता है और लिखता है कि भारतीयोंका प्रवेश रोकनेमें प्रवासी-

प्रतिबन्धक अधिनियम एकदम असफल रहा है। हम सहयोगीको याद दिलाना चाहते हैं कि गिरमिटिया मजदूरोंपर प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम लागू नहीं होता और इस प्रकार स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रवेश-नियन्त्रणका गिरमिटिया मजदूरोंके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। विचाराधीन वर्षमें ३२९ पुरुष और १०५ स्त्रियां भारत लौटे। और सन् १८९१ के गिरमिटिया मजदूरोंके कानूनका संशोधन करनेवाले अधिनियमके मातहत ६४३ पुरुषों और २१६ स्त्रियोंने अपनी पांच वर्षकी अवधि पूरी होनेपर पुनः नये शर्तनामेपर दस्तखत किये हैं। १,६५५ पुरुषों और ४५१ स्त्रियोंने ३ पौंडका व्यक्ति-कर अदा किया है और इस तरह, उपनिवेशको ६,३१८ पौण्डकी सालाना आय दी है। इतने पुरुषों और स्त्रियोंका सालाना कर अदा करना यह भी सिद्ध करता है कि स्वतन्त्र भारतीय मजदूरोंकी भी यहां अत्यधिक मांग है।

> **फिर रसोइये, हजूरिये, धोबी इत्यादि विशेष प्रकारके नौकरोंकी मांग पहलेके समान ही है। बहुतसे स्वतन्त्र भारतीय ऊँची मजदूरीपर ट्रान्सवाल चले गये हैं और अब एक मामूली रसोइया ६ पौंड प्रतिमास वेतन देनेपर भी भीतरके उपनिवेशोंमें नहीं जाता। खास प्रकारकी योग्यता रखनेवाला आदमी तो १६ पौंड मासिक तककी मांग करता है। मजदूरों और नौकरोंके वेतन इतने बढ़ जानेके कारण साधारण लोगोंका इस वर्गके स्वतन्त्र भारतीयोंको अपने घर नौकर रखना लगभग असम्भव हो गया है। गिरमिटिया मजदूर मिलें, केवल तभी इस तरहके नौकरोंको रखा जा सकता है।**

इस आखिरी वाक्यसे सिद्ध है कि एक प्रकारकी गुलामी जारी है तभी यहांके जरूरतमन्द लोगोंको बाजारकी दरोंकी आधीसे भी कम दरोंपर नौकर मिल सकते हैं। फिर भी जो लोग अपनी सेवाएँ इतनी कम दरोंपर पांच-पांच वर्ष अथवा इससे भी अधिक समयके लिए देते हैं, उनको अपनी आजादीकी कीमत ३ पौंड वार्षिक कर चुका कर देनी पड़ती है।

उपनिवेशका भारतीय विवाह-विषयक कानून भी अभीतक अत्यन्त असन्तोषजनक है।

> **विचाराधीन वर्षमें १,०५३ विवाह दर्ज हुए, जब कि इससे पहलेवाले वर्षमें ४०३ विवाह दर्ज हुए थे। इनमें से ५२७ तो भारतीयोंके यहां पहुँचनेके बाद, उनके वितरणसे पहले दर्ज हुए थे। शेष नेटालमें दर्ज थे। इसमें अब एक सवाल खड़ा किया गया है कि यदि वधू या वरमें से कोई एक भी १८९१ के २५ वें कानूनकी धारा ७१ के अनुसार अपना विवाह दर्ज करानेसे इनकार करे तो ऐसे धार्मिक विवाह जायज माने जायेंगे अथवा नहीं। इसमें शक नहीं कि अविवेकशील लोगोंमें बहुत-सी बुराइयाँ फैली हुई हैं। जैसे, वे अपने बच्चोंकी शादी बहुत छोटी उम्रमें कर देते हैं। और जब वे बड़े होते हैं तब लड़कीको पतिके घर भेजनेमें बाधाएँ उपस्थित करते हैं। कभी-कभी पैसे लेकर उसे दूसरे आदमीके साथ जानेके लिए ललचाते भी हैं। और चूँकि इस धारामें धार्मिक विधिकी आवश्यकता नहीं है इसलिए पंजीयनकी हदतक इसका कोई मूल्य नहीं होता।**

यह कठिनाई तबतक बनी रहेगी, जबतक विवाह विषयक कानूनका उपनिवेशके कानूनके साथ सामंजस्य स्थापित नहीं हो जाता और वर-वधूके धर्मके अनुसार हुए विवाहोंको मान्यता नहीं दे दी जाती। विवाहोंको दर्ज करानेके खिलाफ भारतीयोंके मनमें बड़ा गहरा विरोध है। वे विवाहको केवल एक इकरारनामा नहीं, बल्कि एक धार्मिक विधि मानते हैं। उनके लिए वह एक अत्यन्त पवित्र वस्तु है। बहुत-सी जातियोंमें तो विवाहका बन्धन अटूट होता है। उनमें

तलाक है ही नहीं। ऐसे लोगोंकी दृष्टिमें सरकारी कागजोंमें शादियोंका दर्ज किया जाना एक तमाशा है, और जैसा कि संरक्षक (प्रोटेक्टर)ने कहा है :

> **उच्च वर्गके भारतीयोंमें स्वभावतः शायद ही कभी कोई कठिनाई पैदा होती है। ये कठिनाइयाँ तो केवल वहीं खड़ी होती हैं, जहाँ माता-पिता लड़कीको धन कमानेका साधन मानते हैं। पंजीयनके लिए गये लोगोंमें से बहुत-सी औरतें शपथपूर्वक यह नहीं कह सकीं कि उनके पति मर चुके हैं। इसलिए उनकी शादियाँ दर्ज नहीं की गईं।**

इस बुराईको कम करनेके दो ही रास्ते हैं। एक तो यह कि भारतसे रवाना होनेसे पहले प्रत्येक स्त्री और पुरुषके बारेमें निश्चित जानकारी प्राप्त कर ली जाये कि वह विवाहित है या नहीं। और दूसरा यह कि, वर-वधूके धर्मके अनुसार जो विवाह हुए हों उनको उपनिवेशमें मान्यता दे दी जाये। यदि उपनिवेशके साधारण कानूनके विरुद्ध कोई बात हो—जैसे, किसी मनुष्यकी एकसे अधिक पत्नियाँ हों, या वे विवाहके योग्य वयकी न हों—तो ऐसी शादियोंको मान्यता न दी जाये। इसके लिए आवश्यक है कि भारतीय विवाहोंकी जाँचके लिए ऐसे अधिकारी नियुक्त कर दिये जायें, जिनकी सचाईपर किसीको शक न हो। उन्हें सब भारतीयोंके विवाहोंके सम्बन्धकी जानकारी एकत्र करनेका काम सौंप दिया जाये। और भारतीयोंके मान्य पुरोहितोंको यह जानकारी तैयार करनेका काम दिया जाये। यद्यपि ऐसे नियम बनानेसे कठिनाई पूरी-पूरी तरह तो हल नहीं होगी, फिर भी हमें इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वह बहुत हदतक कम जरूर हो जायेगी।

कहा जाता है, जो १,४१२ भारतीय भारतको लौटे, वे अपने साथ १६,५२२ पौंड नकद और ४,८०९ पौंड कीमतके जेवर ले गये। यह एक आदमीके पीछे १५ पौंडसे कुछ ज्यादा पड़ा। यह उसकी पाँच वर्षकी बचत है, अर्थात् एक वर्षकी बचत ३ पौंड हुई। इस रकमको यदि दक्षिण आफ्रिका आनेवाले भारतीयोंकी बचतका नमूना मान लिया जाये तो इससे प्रकट है कि शर्तकी अवधि भारतमें समाप्त करनेका प्रस्ताव अत्यन्त हानिकर है। यह रकम इतनी छोटी है कि उस व्यक्तिको कोई सहारा नहीं दे सकती। पाँच वर्षके कठिन परिश्रमके बाद १५ पौंडकी बचत भारत जैसे गरीब देशमें भी उसे बहुत सहायक नहीं होगी। इतनी छोटी पूंजीसे वह न तो व्यापार कर सकता है, न और कोई काम-धन्धा।

मद्रासके निवासी बहुत मितव्ययी होते हैं। ध्यान देनेकी बात है कि यह उन्होंने एक बार और सिद्ध कर दिया। वे अपने साथ १२,६०० पौंड ले गये, जब कि उनके कलकत्तावाले भाई केवल ८,७०० पौंड ले जा सके। ३१ दिसम्बरको कुल प्रवासी भारतीयोंकी संख्या ८७,००० थी। इनमें से १५,००० उपनिवेशमें पैदा हुए थे। हम देखते हैं कि सोनेकी खानोंमें भी अभी तक भारतीयोंको लिया जा रहा है, यद्यपि यह प्रयोग पूरी तरह सफल साबित नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्हें जाड़ेके मौसममें कामपर बुलाया गया। यह मौसम उन्हें अनुकूल नहीं पड़ता। जिन्हें जमीनके अन्दर काम करना होता है, उनकी मजदूरी ड्योढ़ी होती है, अर्थात् १० शिलिंगके बजाय मासिक १५ शिलिंग।

> **संरक्षकके मुहकमेकी मार्फत २३३ भारतीयों द्वारा २,६७६ पौंड १२ शिलिंग और पोस्ट ऑफिसके द्वारा १,०५,८८९ पौंड भारत भेजे गये। ३१ दिसम्बरको नेटाल सेविंग्स बैंकमें १,७८७ भारतीयोंके ४६,३०९ पौंड जमा थे। जब कि इससे पहलेके वर्षमें १,३१० भारतीयोंके ३४,१०८ पौंड जमा थे।**

संरक्षक कहता है "यह निवेदन करते हुए प्रसन्नता होती है कि कुल मिलाकर भारतीय कानूनोंका अच्छी तरह पालन करते है।" दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि कानूनका पालन करनेकी यह अच्छी वृत्ति दक्षिण आफ्रिकामें दबाई जा रही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०३

२१. लेडीस्मिथके भारतीय

लेडीस्मिथके व्यापार-संघकी एक दिलचस्प बैठकका सच्चा-सच्चा विवरण हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* छापा है। महापौर श्री डी० स्पार्क्सने भारतीय परवानोंके बारेमें अपने भाव प्रकट करते हुए कहा

> अरब व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक देते है, जब कि गोरे दूकानदारोंको बीस-बीस पौंड और कभी-कभी इससे भी अधिक देना पड़ता है। भारतीयोंके पास भी व्यापारके परवाने है। परन्तु वे यूरोपीय दूकानदारोंके रिवाजोंकी परवाह नही करते और अपनी दूकानें चौबीसों घंटे खुली रखते है। क्या आप लोग पसन्द करेंगे कि आपके आदमी सुबह पांच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक दूकानोंपर काम करते रहें? इस प्रश्नका अब हमपर प्रत्यक्ष असर पड़ने लगा है। इसलिए इस मामलेमें हमें जल्दीसे-जल्दी कोई कदम उठाना चाहिए। इसीमें लेडीस्मिथ शहर, जिले और हमारी आनेवाली पुश्तोंकी भलाई है। किन्तु अगर हम समयपर नहीं चेते और ढील-पोल चलती रही तो लेडीस्मिथका यह ऐतिहासिक शहर एक एशियाई शहर बन जायेगा।

ऊपरके भाषणमे योग्य महापौर जितनी गलत बातें गिनतीके पांच-सात वाक्योंमे चतुरताके साथ कह गये है, शायद ही कोई इतने थोडे वाक्योंमे इतनी गलत बातें कह सके। श्री स्पार्क्सको हम चुनौती देते है कि ऊपर उन्होंने जो बात सबसे पहले कही है, अर्थात् यह कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक वेतन देते है, सिद्ध करके बतायें। भारतीय व्यापारी-व्यवसायी अपने कारकुनो और विक्रेताओंको जो वेतन देते है उसकी कुछ-कुछ जानकारी रखनेका हम दावा कर सकते है। और श्री स्पार्क्सको यह बताते हुए हमे बहुत खुशी हो रही है कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको मासिक २५ पौंडतक अथवा इसके बराबर वेतन देते है; अर्थात्, ये आदमी १२ से १५ पौंड तो नकद पाते है और इसके अलावा उन्हे भोजन तथा मकानकी सहूलियत दी जाती है। हम यह भी बता दे कि उत्तम आदमियोंको अपनी सेवाकी अवधिके अन्तमे खासा इनाम भी दिया जाता है। इसके आधे दर्जन उदाहरण तो हम अभी दे सकते है और अगर श्री स्पार्क्स ४ पौंड मासिक वेतन पानेवाले अच्छेसे-अच्छे आदमियोंके नाम बतानेकी कृपा करें तो हमने जो वेतन बताया है उसके पानेवालोंके नाम हम भी खुशीसे उन्हे बता सकेंगे। यह बिलकुल सही है कि कुछ कारकुन और नौकर सचमुच ४ पौंड मासिक वेतन पाते है। परन्तु जिनको यह वेतन मिलता है, वे अकसर इससे अधिक पानेके पात्र भी नही होते। जो आदमी एकदम नये है, जिनको काम सिखानेकी जरूरत है, और अंग्रेजी भाषाका ज्ञान न होनेके कारण जिनका बहुत उपयोग नही हो पाता, वे बहुत अच्छे वेतनकी आशा भी नही कर सकते। फिर यह नही भुलाया जा सकता कि जिनको ४ पौंड मासिकका भी वेतन मिलता है, उन्हे हमेशा वेतनके अलावा भोजन और मकानकी सुविधा दी जाती

है। हम यह नहीं कहते कि भारतीय कम वेतन स्वीकार ही नहीं करते। सच तो यह है कि वे अकसर बहुत थोड़ा वेतन स्वीकार कर लिया करते हैं। परन्तु जब कोई बात बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है तो हमें उसका प्रतिवाद करना ही पड़ता है। क्योंकि, उपनिवेशमें भारतीयोंके प्रति पहले ही काफी दुर्भाव भरा पड़ा है। ऐसी गलत बातोंसे वह और भी बढ़ जाता है। भारतीयोंकी आदतें सीधी-सादी और रहन-सहन कम खर्चीला है। इसलिए वे थोड़े वेतनमें भी सन्तोष मान लेते हैं। फिर, हमारी समझमें नहीं आता कि जहाँ इतनी अधिक होड़ है, और सबके लिए खुली होड़ है, वहाँ वेतनके बारेमें किसीको क्यों शिकायत हो। हम यह स्वीकार करनेको तैयार हैं कि भारतीय दूकानें — बहुतसी, सब नहीं — यूरोपीय दूकानोंकी अपेक्षा अधिक समयतक खुली रहती हैं। परन्तु यह कहना तो सरासर गलत है कि वे सुबह पाँच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक खुली रहती हैं। और, जहाँतक ऐतिहासिक शहर लेडीस्मिथके एशियाई बन जानेका डर है, क्या हम महापौर महोदयको याद दिलायें कि अगर सर जॉर्ज व्हाइटका प्रमाणपत्र सही है तो उसे बोअरोंके हाथमें जानेसे—चाहे वह कितने ही थोड़े समयके लिए क्यों न हो—प्रभुसिंह[1] नामक अकेले एक भारतीयकी बहादुरीने बचाया था। वह प्रभुसिंह ही था जो अपनी जानको खतरेमें डालकर एक पेड़पर चढ़कर बैठ गया था, और ज्यों ही अम्बुलवाना टेकड़ीपर बोअर तोप दागी जाती, वह घंटा बजाकर उसकी सूचना दिया करता था। प्रभुसिंहका यह काम इतना महत्त्वपूर्ण माना गया कि सर जॉर्जने इसका खास तौरपर उल्लेख किया और लेडी कर्ज़नने उसे विशेष मान्यता दी और इनामके तौरपर उन्होंने उसके लिए एक चोगा भेजा, ताकि वह डर्बनमें उसे सार्वजनिक रूपसे भेंट किया जाये। इसलिए श्री स्पार्क्सके मुँहसे यह ताना शोभा नहीं देता। परन्तु जहाँ लेडीस्मिथके महापौर और वहाँके व्यापार-संघके अन्य सदस्योंके शब्द हमारी रायमें अनुचित हैं, वहाँ लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियों और दूकानदारोंको भी हम चेतावनी देना चाहते हैं। पहले श्री स्पार्क्सने, और बादमें इतनी अच्छी तरह और सौम्य भाषामें परवाना अधिकारी श्री जी० डब्ल्यू० लाइन्सने, भारतीयोंके यूरोपीय दूकानदारोंकी अपेक्षा अधिक समयतक दूकानें खुली रखनेकी जो शिकायत की, उसके प्रति हम अपनी सहानुभूति प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। श्री उमर एक व्यापारी हैं। उनका यह कहना वाजिब है कि भारतीयोंके और यूरोपीयोंके व्यापारमें अन्तर है। भारतीय व्यापारियोंके ग्राहक ऐसे वर्गके लोग हैं, जिनके लिए अधिक समयतक दूकानें खुली रखना जरूरी होता है। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि इस मामलेमें बीचका कोई रास्ता निकल सकता है। और यूरोपीय दूकानदारोंकी माँगपर जरूर उचित विचार होना चाहिए। ऐसी बातोंमें, और जहाँ समस्त समाजकी भलाईका सवाल हो वहाँ, हमें तमाम उचित सुझावों और सलाहोंका, बिना किसी दबावके, अवश्य स्वागत करना चाहिए। यह बिलकुल सम्भव है कि दूकानें आम तौरपर किस समयसे किस समयतक खुली रहें, इस बारेमें कानून बन जाये। परन्तु इससे कहीं अधिक शोभाजनक और लाभदायक यह होगा कि भारतीय व्यापारी खुद ही इस विषयमें पहल करके आवश्यक सुधार कर लें। तब हम जाहिर कर सकेंगे कि जब-कभी किसी वाजिब शिकायतकी तरफ हमारा ध्यान दिलाया जाता है, हम उसे दुरुस्त करनेके लिए और यूरोपीयोंके साथ सहयोग करनेके लिए तैयार रहते हैं। इसलिए श्री लाइन्ससे मिलनेवाले भारतीयोंने उन्हें जो वचन दिया है कि वे उनके मध्यमार्गीय प्रस्तावपर विचार करेंगे, अवश्य ही उसका अच्छा परिणाम होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०३

१. गांधीजीने इस घटनाका वर्णन *दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह*, नवाँ अध्याय पृष्ठ १०३–४ में किया है।

रखना चाहती है। परन्तु इन अनमोल *बाजारोंके* बारेमें कौमके विरुद्ध जो सूचनाएं निकाली गई हैं, वे तो इस आश्वासनके एकदम विपरीत हैं। अगर सरकार भारतीयोंको परेशान करनेवाले कानून बनाकर यहाँसे निकाल बाहर करना चाहती है तो वह उन्हें एक बारमें बोरिया-बिस्तर समेत उपनिवेशसे बाहर क्यों नहीं कर देती? ऐसा करना उनके प्रति दया होगी। वे अपनी स्थिति जान जायेंगे और सरकारको अपने कार्योंके लिए झूठमूठके बहाने भी नहीं ढूंढने पड़ेंगे। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी पुरानी सरकारकी भांति वह साफ-साफ कह दे कि "यद्यपि आप लोग ब्रिटिश प्रजाजन हैं, तथापि हम आपसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहते, क्योंकि आपकी चमड़ीका रंग गेहुँआ है।" ऐसा करना सख्त कार्रवाई है, और शायद ब्रिटिशोंके लिए अशोभनीय भी। परन्तु इसमें ईमानदारी है। और यदि सरकार सचमुच भारतीयोंपर मेहरबान है और उल्लिखित आश्वासनोंपर अमल करना चाहती है तो अबतक बरती जानेवाली अपनी नीतिमें वह जितनी जल्दी परिवर्तन कर सके, सबके लिए उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०३

२४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

हम ट्रान्सवालके तथा-कथित भारतीय *बाजारोंके* प्रश्नपर वापस आनेके लिए कोई क्षमा-याचना नहीं करते। वहाँ ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त नाजुक है, और यह देखते हुए कि इस समय प्रश्नका यह सबसे कमजोर हिस्सा है, हम इसीपर अधिक ध्यान केन्द्रित करना अपना कर्तव्य समझते हैं। हम दूसरे स्तम्भमें स्टैन्डर्टनके मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोंसे युक्त एशियाई लोगोंके नाम निकाली गई सूचना पुनः छापते हैं। इसमें स्पष्ट रूपमें वह भावना व्यक्त होती है, जिससे ब्रिटिश भारतीयोंसे व्यवहारके सम्बन्धमें एशियाई विभागकी नीति सचालित होती प्रतीत होती है। सूचनाके अनुसार *बाजारमें* बाड़ोंके पट्टेके लिए दरख्वास्तें माँगी गई थीं जिनकी सूची गत मासकी ३० तारीखको बन्द होनी थी। प्रार्थियोंको अपनी दरख्वास्तोंमें यह बताना है कि "किन्हीं विशेष बाड़ोंकी आवश्यकता उन्हें क्यों है और उनको पट्टेपर देनेके लिए उनके दावोंके आधार, यदि उनके पास हों तो, क्या है।" फिर मजिस्ट्रेट दी हुई तारीखपर दरख्वास्तोंपर विचार करेगा और प्रार्थियोंमें बाड़ोंको निम्नलिखित नियमोंके अनुसार बाँट देगा:

(क) किसी भी ऐसे व्यक्तिको कोई बाड़ा न दिया जायेगा जो वस्तुतः शहरमें नहीं रहता है या व्यापार नहीं करता है और जिसे अपने निवास या व्यापार-सम्बन्धी कार्योंके लिए बाड़ेकी आवश्यकता नहीं है।

(ख) किसी भी व्यक्तिको जितने बाड़े वस्तुतः उसके निवास या व्यापारके लिए आवश्यक हों, उससे अधिक बाड़े न दिये जायेंगे।

(ग) यदि किसी विशेष बाड़ेके लिए एकसे अधिक प्रार्थी है तो, किसी दावेदारके पास विशिष्ट व्यवहारके लिए अच्छा दावा न होनेकी अवस्थामें, उस बाड़ेका निर्धारण कानून द्वारा या किसी अन्य तरीकेसे किया जायेगा, जिसका फैसला मजिस्ट्रेट करेगा।

अब, जैसा हम इन स्तम्भोंमें कई बार बता चुके है, १८८५का कानून ३ भारतीयोंको मुहल्लों, *बाजारों*, या बस्तियोंमें, जो उनके लिए निर्धारित किये जायें, भूमि-सम्पत्ति रखनेका

असीमित अधिकार देता है; किन्तु उनके इस अधिकारके गिर्द, शहरसे बहुत दूरकी बस्तियोंके सम्बन्धमें, जहाँ व्यापार करना अत्यन्त असंभव और रहना बहुत खतरनाक होगा, अत्यन्त परेशान करनेवाली शर्तोंकी बाधाएँ खड़ी कर दी गई हैं। जो शर्तें लगाई गई हैं, उनकी हद दर्जेकी कठोरता समझनेके लिए यह तथ्य ध्यानमें रखना होगा कि ये बाड़े महज जमीनके खाली टुकड़े हैं। पट्टेदारोंको इनकी पैमाइशकी फीस और किराया ही नहीं देना है, बल्कि उन्हें इनके ऊपर अपने मकान-दूकान भी बनाने हैं। तभी वे इन बाड़ोंको अपने निवास या व्यापारके लिए ले सकते हैं, और वे केवल ऐसे ही कामोंके लिए काफी होंगे, दूसरे कामोंके लिए नहीं। सरकार यह आशा कैसे करती है कि प्रत्येक भारतीय पट्टा ले लेगा, उसपर बाड़ा बना लेगा और शायद उसे किरायेपर न उठा सकनेपर भी वहाँ रहेगा। यह बात समझना बहुत कठिन है। सूचनामें दी गई हास्यास्पद शर्तोंका पालन किया जा सके, इसके लिए प्रत्येक भारतीयको विशाल साधन-सम्पन्न व्यक्ति होना आवश्यक है। किन्तु दुर्भाग्यसे वह ऐसा है नहीं। फिर यदि वह सुन्दर इमारत नहीं खड़ी कर सकता, या केवल टीनकी खोली खड़ी कर लेता है, तो दोष उसके सिरपर मढ़ा जायेगा और वह इसलिए घृणा और तिरस्कारका पात्र बनाया जायेगा, कि वह महज खोलियोंमें रहता है, यद्यपि स्थिति बिलकुल उसकी उत्पन्न की हुई नहीं, बल्कि सरकारकी उत्पन्न की हुई होगी। ट्रान्सवालमें भी कई स्थानोंमें न्यूनाधिक इसी भाषामें ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ भेजी गई हैं। उनमें दी गई शर्तें लगानेमें परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयका कोई हाथ है, इसमें हमें बहुत अधिक सन्देह है। वस्तुतः यह देखते हुए कि प्रत्येक सूचनाके शब्द दूसरीसे भिन्न हैं, सत्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। अतः यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट संभवतः प्रधान कार्यालयसे प्राप्त बहुत ही सामान्य निर्देशोंके आधारपर अपने आप ही यह कार्रवाई कर रहे हैं। यदि ऐसी बात है तो इससे एक बार फिर हमने जो स्थिति ग्रहण की है उसका औचित्य सिद्ध हो जाता है। वह स्थिति यह है — भारतीयोंके सम्बन्धमें कोई सम्बद्ध निश्चित नीति नहीं है और वे न्यूनाधिक मजिस्ट्रेटों या अन्य अफसरोंकी दयापर निर्भर हैं, जो भारतीयोंके प्रति या विरुद्ध, अपने पक्षपातके अनुपातसे, नरम या कड़ा व्यवहार करते हैं। ऐसी स्थिति अधिक दिन नहीं टिक सकती; अतः आशा की जाती है कि सर आर्थर लॉली[1], जिनका हृदय विशाल है, अपने बहुविध कर्तव्योंसे कुछ समय बचायेंगे और इस मामलेमें स्वयं दिलचस्पी लेंगे। भारतीय गत दो वर्षसे अनिश्चय और दुविधाकी अवस्थामें रहनेके लिए विवश हो रहे हैं। उनको अपने दर्जेकी स्पष्ट व्याख्याकी आशा रखनेका अधिकार है। इस बीच, जैसा गतांकमें कह चुके हैं, हम विश्वास करते हैं कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय धैर्यपूर्वक घटनाओंकी प्रतीक्षा करेंगे और बाजारोंसे कोई सरोकार रखनेसे इनकार कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०३

१. लेफ्टिनेंट गवर्नर।

२५. ईस्ट लन्दन और उसके भारतीय निवासी

हम अन्य स्तम्भमें *ईस्ट लंदन डिस्पैचका* एक लेख उद्धृत कर रहे हैं, जो नगरमें भारतीयों द्वारा भूमि-सम्पत्ति रखनेके प्रश्नपर लिखा गया है। हमारे सहयोगीने यह लेख एक भारतीयके साथ, जिसने वहाँकी एक प्रधान सड़कपर भूमिका एक टुकड़ा खरीदा था और उसकी ऊँची कीमत दी थी, घटित घटनाके आधारपर लिखा है। हम अपने सहयोगीसे पूर्णत: सहमत हैं कि नगर-परिषद भवन-निर्माण कानूनोंको कठोरतासे लागू करे, और हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि यदि नगर-परिषद इस दिशामें अपने कर्त्तव्यका पालन करे तो सदासे सीधे-सादे और नियम-पालक भारतीय उन कानूनोंको भंग करके कभी मकान न बनायेंगे। अपने इस कथनकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप हम भारतीय व्यापारियों द्वारा डर्बनमें ग्रे स्ट्रीटपर और अन्यत्र बनाई गई शानदार इमारतोंका हवाला देते हैं। मुख्य बात यह है कि भारतीयोंके साथ सज्जन और बन्धु प्रजाजनका-सा व्यवहार किया जाना चाहिए। हमें इसमें सन्देह नहीं कि भारतीयोंके विरुद्ध अनुचित या ओछी स्पर्धा और अन्य दोषोंके जो आरोप प्राय अनुचित रूपसे लगाये जाते हैं, उनका कारगर इलाज यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

२६. प्लेग और लाल-फीताशाही

हमें कई संवाददाताओंसे इस आशयकी शिकायतें मिली हैं कि यद्यपि नेटालसे ट्रान्सवाल जानेवाले भारतीयोंपर से प्लेग-सम्बन्धी रुकावटें हटा ली गई हैं; फिर भी प्रामाणिक ब्रिटिश भारतीयोंको १० शि० ६ पें० खर्च करके डॉक्टरी प्रमाणपत्र लेने पड़ते हैं और फोक्सरस्टमें अब भी उनकी डॉक्टरी परीक्षा की जाती है। चिकित्सा-अधिकारी उन्हें मजिस्ट्रेटके नाम पत्र दे देता है कि इस दिनतक उनको डॉक्टरी निगरानीमें रखा जाये। हमें यह लाल–फीताशाहीका अतिरेक प्रतीत होता है। यदि नियमोंके हटाये जानेके बाद भी ये परेशानियाँ जारी रहती हैं तो हम नहीं जानते, ट्रान्सवाल-सरकारकी प्लेग-सम्बन्धी सूचनाको रद करनेका अर्थ क्या है। डॉक्टरी प्रमाण-पत्र लेना और उसके लिए आधी गिन्नी देना गरीब शरणार्थियोंपर बिलकुल अनावश्यक कर है। अत: ट्रान्सवालकी सरकार अपने अधिकारियोंको जितनी जल्दी आवश्यक निर्देश भेज देगी, भारतीय शरणार्थियोंके लिए उतना ही अच्छा होगा। वस्तुस्थिति यह है कि इन गरीबोंको पिछले नौ माससे सफाई और स्वास्थ्य-सम्बन्धी सावधानीके नामपर अनन्त कष्टों और असुविधाओंका लक्ष्य बनाया जा रहा है; जबकि दूसरे हजारों लोग तनिक भी डॉक्टरी निरीक्षण या व्यवस्थाके बिना मुक्त रूपसे नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रविष्ट होने दिये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

२७. "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और उसके तथ्य

बताया जाता है कि स्पेलोनकेन जिलेमें भारतीयोंको परवाने दिये गये हैं। इस विषयपर हमारे सहयोगी ईस्ट रैंड *एक्सप्रेसने* अपने श्रेष्ठ साप्ताहिकके हालके एक अंकमें "गुप्त कारगुजारियाँ" शीर्षकसे एक सम्पादकीय उपलेख प्रकाशित किया है। सहयोगी कहता है:

> स्पेलोनकेनमें वास्तवमें जो कुछ हो रहा है वह जानना एक दिलचस्प बात होगी। पता चला है कि इस तथ्यके बावजूद कि युद्धसे पहले वहाँ भारतीयोंको परवाने नहीं दिये जाते थे, अब अधिकारियोंने कुछ भारतीय व्यापारियोंको वहाँ कारोबार करनेके लिए परवाने दिये हैं। सन् १९०३ की सूचना ३५६ का क्या हुआ, यदि उसकी धाराएँ इतनी खुल्लम-खुल्ला तोड़ी जा सकती हैं? उस सूचनाकी उपधारा २ में स्पष्ट कहा गया है: 'किसी भी एशियाईको निर्दिष्ट *बाजारोंके* अतिरिक्त अन्यत्र व्यापार करनेके नये परवाने न दिये जायेंगे।' अब स्पेलोनकेनमें तो *बाजार* नहीं हैं। वह तो एक ऐसा विस्तीर्ण क्षेत्र है, जहाँ मुख्यतः वतनी लोग बसे हैं। प्रतीत होता है, सरकार जान-बूझ कर अपनी घोषणाका उल्लंघन कर रही है और एशियाइयोंके लिए असीमित स्पर्धाका द्वार खोल रही है। यदि सरकार एशियाइयोंके सम्बन्धमें नेटाली कानूनोंको लागू करनेका इरादा रखती है, तो वह खुल्लम-खुल्ला ऐसा करे। तब हम अपना कर्तव्य सोच लेंगे; किन्तु जैसी गुप्त कार्रवाईका ऊपर जिक्र किया गया है, वैसी कार्रवाइयोंका हमें अन्त कर देना चाहिए।

अब, हमें जो सूचना मिली है वह ऊपरकी सूचनाके विपरीत है। हमें ज्ञात हुआ है कि दो भारतीय अपने पुराने परवानोंसे वंचित होते-होते बचे। संयोगसे हमें यह बात भी ज्ञात है कि पीटर्सबर्ग जिलेसे ही, जिसके अन्तर्गत स्पेलोनकेन स्थित है, भारतीय व्यापारियोंकी अधिकांश मुसीबतें शुरू होती हैं। हमारा विश्वास है कि हमारे सहयोगीको जो सूचना दी गई है वह वफादार भारतीयोंके ऊपर और अधिक मुसीबतें लानेमें मदद देनेका एक प्रस्ताव-मात्र है। हमारे सहयोगी और हमारे बीच भारतीयोंके प्रश्नपर एक सच्चा मतभेद है; किन्तु हमारा खयाल है कि हमारा सहयोगी इसपर विचारके समय तथ्योंको गलत रूपमें पेश करना नहीं चाहता। अतः हम उससे कहते हैं कि वह इस बातकी जाँच करे कि हमने जो कुछ ऊपर कहा है वह तथ्योंका सही विवरण है या नहीं?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

२८. ट्रान्सवालमें यात्रा

हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरने* वतनी रेल-यात्रियोंके सम्बन्धमें एक सनसनीदार [illegible] खबरको प्रमुखता दी है और एक स्थानीय रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमें वतनी यात्रियोंको स्थान देनेकी रेलवे-अधिकारियोंकी गुस्ताखीपर बहुत रोष प्रकट किया है। कथित संवाददाताके लेखानुसार बात यह दिखाई देती है कि उसको जॉर्ज गॉचसे आनेवाली रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमें चार वतनी यात्री बैठे मिले। अन्य सब डिब्बोंमें यूरोपीय यात्री बैठे थे। संवाद-दाताके पास पहले दर्जेका टिकट था और वह भी उसी गाड़ीसे जाना चाहता था। जब उसको दूसरे किसी डिब्बेमें स्थान न मिला तब, ऐसा प्रतीत होता है कि, वह उस डिब्बेके पाससे निकला जिसमें वतनी यात्री बैठे थे। यह उसकी सहिष्णुताकी सीमासे परे था। वह नहीं समझ सकता था कि वे पहले दर्जेमें यात्रा क्यों करते हैं। उन्होंने भी किराया दिया है, यह प्रश्न उसके लिए विचारणीय न था। वह गार्डके पास गया और गार्डने यह कहा प्रतीत होता है कि वतनी यात्रियोंने भी पहले दर्जेका किराया दिया है, अतः उनको भी उस गाड़ीके पहले दर्जेमें यात्रा करनेका उतना ही अधिकार है, जितना स्वयं संवाददाताको। गार्डके इस उत्तरके कारण वह संवाददाता अखबारोंमें शिकायत छपाने दौड़ पड़ा। अपने पत्रमें उसने वतनी लोगों और भारतीयोंको मिलाजुला दिया है। ऐसा ही हमारे सहयोगीने भी किया है। इस महादेशमें निस्सन्देह यह असाधारण बात नहीं है। इससे उस खतरेका पता चलता है, जिसका सामना हमारे देशवासियोंको दक्षिण आफ्रिकामें सामान्यतः, और ट्रान्सवालमें मुख्यतः, करना है। यहाँ "वतनी, कुली और भारतीय" शब्दोंका ऐसा प्रयोग करनेकी एक प्रवृत्ति है, मानो ये सब एक ही हों। *लीडरने* रेलवे अधिकारियोंसे अपील की है कि वे वतनी लोगोंको और कुलियोंको — ब्रिटिश भारतीयोंको वह इसी नामसे पुकारना पसन्द करता है — पहले दर्जेमें यात्रा करनेसे तुरन्त वर्जित कर दें। वह यह भूल जाता है कि रेलवेके नियमोंमें इस समय न तो भारतीयोंका और न वतनी लोगोंका पहले दर्जेमें यात्रा करना वर्जित है। और केवल वतनी लोगोंके सम्बन्धमें यह व्यवस्था है कि वे अपनी अर्जी गाड़ी रवाना होनेके विज्ञापित समयसे कमसे-कम आधा घंटा पूर्व दें। यदि वे चार या चारसे ज्यादा एक साथ यात्रा करनेवाले होंगे, तो उनकी अर्जीपर विशेष रूपसे विचार किया जायेगा। हम अपने सहयोगीको स्मरण दिला सकते हैं कि पुराने शासनमें भी भारतीयोंकी पहले दर्जेमें यात्रा वर्जित न थी। हम उसे यह तथ्य भी याद दिलाना चाहते हैं (यद्यपि हमें बतलाया जाता है कि अखबारोंके इतिहासमें पूर्व उदाहरणोंका कोई मूल्य नहीं होता) कि *ट्रान्सवाल लीडर* युद्धसे पूर्व रंगदार लोगोंके अधिकारोंका समर्थक था। इस पत्रकी सम्पादकीय कुर्सीको सुशोभित करनेवाले श्री पेकमैनकी अपेक्षा अधिक सहानुभूति रखनेवाला उनका कोई दूसरा मित्र नहीं था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

२९. लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदार

नेटाल विटनेस और *टाइम्स ऑफ नेटालने* लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोंके प्रति श्री लाइन्सकी कार्रवाईपर और इस धमकीपर, कि यदि वे यूरोपीयोंके साथ अपनी दूकानें वन्द करना मंजूर न करेंगे तो उनके परवाने नये न किये जायेंगे, जो टिप्पणियाँ लिखी हैं, उनको स्थान देते हुए हमें वहुत प्रसन्नता होती है। *टाइम्स ऑफ नेटाल* अपने सदाके तरीकेसे ब्रिटिश भारतीयोंकी निन्दा करनेके वाद आगे कहता है:

> किन्तु, इस सवके वावजूद, प्रश्न यह है कि लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सकी यह कार्रवाई कहाँतक उचित है कि वे सव अरव व्यापारियोंको इकट्ठा करें और उनको अपनी दूकानें उन्हीं समयोंपर वन्द करनेका आदेश दें जिनपर उनके यूरोपीय साथी वन्द करते हैं; और उनको वे ही छुट्टियाँ भी मनानेको कहें; और अन्यथा करनेपर उनके परवाने वापस लेनेकी धमकी दें। यह एक परवाना-अधिकारीके अधिकारोंका वहुत ही मनमाना उपयोग प्रतीत होता है। जव कोई व्यक्ति एक वार परवाना ले लेता है और सामान्यतः देशके और मुख्यतः अपनी नगरपालिकाके उपनियमोंका पालन करता है तव यह किसी भी स्थानीय अधिकारीके अधिकारोंके वाहर होना चाहिए कि वह उसको इतनी वुरी तरहसे वरवाद कर सके, जैसा श्री लाइन्स कहते हैं; क्योंकि यदि इस नवीनतम अफसरशाही उदाहरणका उचित निष्कर्ष निकाला जाये तो लेडीस्मिथका यह निरंकुश अधिकारी और ऐसे ही पदोंपर नियुक्त उपनिवेशके अन्य अधिकारी किसी भी यूरोपीयको अपनी दूकान जिस समय चाहें उस समय वन्द करनेका आदेश दे सकते हैं। यह एक नाजुक विषय है, आप इसे पसन्द करें या न करें; किन्तु 'अंग्रेजका घर उसका गढ़ है', यह पुरानी उक्ति लेडीस्मिथमें इस विषयको हल करनेसे पूर्व ध्वस्त कर देनी पड़ेगी।

यह कथन निस्सन्देह उचित है और विशुद्ध कानूनी और ब्रिटिश दृष्टिकोणसे भी श्री लाइन्सका प्रस्ताव मनमाना और अत्याचारपूर्ण है। फिर भी हम उस मतपर दृढ़ हैं, जो हमने व्यक्त किया है। श्री लाइन्सने जो मनमाना ढंग अख्तियार किया उसके वावजूद लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह वहुत ही गौरवास्पद होगा कि वे श्री लाइन्सके सुझावोंको मान लें। निस्सन्देह शर्त यह है कि वे व्यावहारिक हों। यदि वे ऐसा कर सकें तो उनके हाथोंमें आत्म-रक्षाका एक वहुत अच्छा हथियार होगा और इससे लेडीस्मिथमें उनका वहुत-सा विरोध कम-जोर पड़ जायेगा। जवतक विक्रेता-परवाना अधिनियम वर्तमान रूपमें उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंमें मौजूद है तवतक भारतीय समाजको जागरूक रहना आवश्यक होगा और जहाँ झुकना उचित हो वहाँ झुकना भी पड़ेगा, भले ही उसमें कुछ आर्थिक हानि भी उठानी पड़े; क्योंकि वे (अर्थात् भारतीय व्यापारी) पूर्णतः परवाना-अधिकारियों, नगर-परिषदों या स्थानीय निकायोंकी दयापर निर्भर हैं, जैसा वार-वार संकेत किया जा चुका है। कुछ इक्के-दुक्के उदाहरण ऐसे हो सकते हैं जिनमें इंग्लैंडके अधिकारियोंसे सहायता मिल सकती है। फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह तन्त्र वड़ी मन्द गतिसे चलता है। अतः सवसे सुरक्षित वात यह है कि जैसी

स्थिति है उसे स्वीकार किया जाये। इस कानूनको हटानेके उद्देश्यसे सब प्रयत्न किए जायें और इस दरमियान इस विधिसे कार्य किया जाये जिससे यह प्रकट हो जाये कि हमारे ऊपर जो निर्योग्यताएँ लगाई गई हैं, वे किस प्रकार अत्यन्त अनुचित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

३०. पत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२१ व २४ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ७, १९०३

सेवामे
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आपका तारीख ४ का पत्र[1] क्रमांक २१३१, मिला।

जैसा कि मैं कह ही चुका हूँ, इस वर्षकी विज्ञप्ति ३५६ को लेकर ब्रिटिश भारतीय संघने जो प्रतिवेदन[2] किया था उसके सम्बन्धमे परमश्रेष्ठके उत्तरोंके मामलेपर बल देनेकी मेरी कोई इच्छा नही है। किन्तु मैं यह आशा करनेकी धृष्टता अवश्य करता हूँ कि परमश्रेष्ठके सम्मुख प्रस्तुत तथ्योंको देखते हुए सघकी विनीत प्रार्थनापर कृपापूर्ण विचार किया जायेगा। और इस सम्बन्धमें मुझे परमश्रेष्ठका ध्यान लॉर्ड मिलनर द्वारा श्री चेम्बरलेनको भेजे गये खरीतेकी ओर आकर्षित करनेकी अनुमति दी जाये। यह खरीता[3] ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें उदार नीति निश्चित करता हुआ लगता है।

मैं हूँ,
आपका विनम्र सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज: एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

१. यह पत्र गांधीजीके २ नवम्बरके पत्रका उत्तर था। गांधीजीका पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. लेफ्टिनेंट गवर्नरने लिखा था कि उनके उत्तरोंके अर्थोंमें किसी अन्तरकी कोई गुंजाइश नहीं है। उन्होंने लिखा: "हर जगह बरते गये शब्द साफ और स्पष्ट हैं और वे सूचनाके अंतर्गत ऐसे छूट पानेवालोंकी संख्याको साफ तौरपर सीमित करते हैं जो युद्धके पहले व्यापार करनेके परवाने रखते थे।"

३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४५२–५३।

३१. टिप्पणियाँ[1]

जोहानिसबर्ग
नवम्बर ९, १९०३

ट्रान्सवालके भारतीय प्रश्नपर टिप्पणियाँ; ९ नवम्बर १९०३ तक

इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न, इस वर्षकी सूचना ३५६ पर, जो कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाके नामसे मशहूर है, अमलका है।

वर्ष समाप्त होनेवाला है, इसको देखते हुए ब्रिटिश भारतीयोंका एक शिष्टमण्डल परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरसे मिलने गया था।[2] वह उन्हें इस बातके लिए तैयार करना चाहता था कि जो ब्रिटिश भारतीय इस समय नियमपूर्वक मिले हुए परवानोंके सहारे उपनिवेशमें व्यापार कर रहे हैं उन सबके परवानोंको मान लिया जाये।

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि, उक्त सूचनापर कठोरतासे अमल किया गया तो इस वर्षकी समाप्तिके पश्चात् बस्तियोंसे बाहर वे ही लोग व्यापार कर सकेंगे, जिनके पास युद्ध छिड़नेके समय परवाने थे।

इसलिए दो प्रकारके भारतीय व्यापारियोंके मामलोंपर विचार होना बाकी है। पहले वे, जो युद्धसे पहले व्यापार तो करते थे, परन्तु जिनके पास परवाने नहीं थे; और दूसरे वे, जिन्हें ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात् ब्रिटिश अधिकारियोंने शरणार्थी होनेके आधारपर परवाने दिये थे।

बाजार-सम्बन्धी सूचनाके विषयमें परमश्रेष्ठके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उससे आशा हो चली थी कि पहले प्रकारके लोगोंके परवानोंके सम्बन्धमें कोई कठिनाई नहीं खड़ी होगी, क्योंकि युद्धसे पहले प्रायः सभी ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमें परवानोंके बिना ही (क्योंकि वे दिये ही नहीं जाते थे), परवाना शुल्कके वादेके आधारपर या गोरे मित्रोंके नामपर व्यापार करते थे; और उस समयकी सरकार भी इसे जानती थी।

परन्तु ब्रिटिश भारतीयोंके दुर्भाग्यसे परमश्रेष्ठने इसका दूसरा ही अर्थ लिया और कहा कि उनका मतलब संघको यह सूचित करनेका कदापि नहीं था कि अगले ३० दिसम्बरके पश्चात् बस्तियोंसे बाहर उनको छोड़कर किसीको व्यापार न करने दिया जायेगा, जिनके पास युद्धसे पहले भी सचमुच ऐसा करनेके परवाने थे।

परन्तु जब परमश्रेष्ठको यह ज्ञात हुआ कि युद्धसे पहले सैकड़ों भारतीय ब्रिटिश सरकारके संरक्षणके कारण परवानोंके बिना व्यापार करते थे, तब उन्होंने कहा कि इस प्रश्नपर वे कार्यकारिणी-परिषदकी बैठकमें विचार करेंगे।

इसलिए आशा की जा सकती है कि प्रथम प्रकारके परवानेदारोंको कुछ राहत मिल जायेगी।

परन्तु आजकल हमें इतनी अधिक निराशाओंका सामना करनेका अभ्यास हो चुका है कि यदि हम यहाँ स्थितिका स्पष्ट वर्णन करके यह बतला दें कि इन लोगोंको *बाजारों* या बस्तियोंमें भेज देनेका परिणाम क्या होगा, तो शायद गलती नहीं होगी।

१. गांधीजीने ये टिप्पणियाँ दादाभाई नौरोजीको भेजी थीं। दादाभाई नौरोजीने बदस्तूर इनकी एक प्रति भारत-मन्त्रीको भेजी थी और *इंडियाने* इन्हें खरीतेके रूपमें अपने ४-१२-१९०३ के अंकमें प्रकाशित किया था।

२. ३० अक्टूबरको।

यद्यपि प्रामाणिक संख्या बतलाना कठिन है, फिर भी ऐसा अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है कि ५० प्रतिशतसे अधिक परवानेदार प्रथम श्रेणीमें आयेंगे।

उनमें से बहुतसे दस या इससे भी अधिक वर्षोंसे व्यापार कर रहे हैं, उन्होंने जिन दूकानोंको सजा रखा है, उनके पट्टे वे बड़ी-बड़ी मियादोंके लिए लिये हुए हैं, और वे काफी मात्रामें मालका आयात करते हैं, क्योंकि उनके ग्राहक गोरे और काफिर दोनों हैं। क्या उन्हें युद्धकी समाप्तिपर बस्तियोंमें जाना पड़ेगा; यद्यपि सम्राट्की सरकारने भी बेशक उन्हींके लिए इतने प्रयत्नपूर्वक लड़े थे, और उन्होंने सफलता भी प्राप्त की थी?

उन्हें परवानोंके बिना बस्तियोंसे बाहर व्यापार करने दिया जाता था, क्योंकि पिछली सरकारके लिए ब्रिटिश सरकार बहुत बलवान सिद्ध हुई थी। और, अब उन कुछ भाग्यशाली भारतीयोंके साथ असाधारण व्यवहार क्यों किया जाये, जिन्होंने बोअर-सरकारसे परवाने ले लिये थे? निश्चय ही, उनका मामला, प्रथम श्रेणीके उन अभागे लोगोंसे किसी भी प्रकार अधिक मजबूत नहीं है, जिनको अब बस्तियोंमें जानेकी सूचना दी जा चुकी है।

इन कुछ लोगोंको युद्धसे पहले परवाने क्यों मिल गये थे, उसका कारण निम्नलिखित है:

जब ब्रिटिश सरकारके साथ लम्बे-चौड़े पत्र-व्यवहारके बाद बोअर-सरकारने अनुभव कर लिया कि वह ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियोंमें नहीं ढकेल सकती तब १८९९ में यह निश्चय किया गया कि उस वर्षसे पहले जो ब्रिटिश भारतीय बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे, उन्हें परवाने दे दिये जायें। उस समय जो समर्थ थे उन्होंने तो परवाने ले लिये, परन्तु जो १८९८में कुछ समयके लिए ट्रान्सवालसे बाहर चले गये थे वे रह गये, और उस समय भी सबको परवाने एक साथ नहीं दिये गये थे।

बोअर-सरकारका काम बड़ा सुस्त था। परवाना-अधिकारी फुर्सतसे या हिदायतोंके अनुसार कदाचित् ही काम करते थे। फल यह हुआ कि दूर-दूरके कस्बोंमें प्रार्थनापत्र देनेपर भी बहुतसे भारतीयोंको परवाने नहीं मिल पाये। परन्तु फिर भी उनके व्यापारमें विघ्न नहीं डाला गया।

तो क्या अब उनको, किसी कसूरके बिना, बस्तियोंसे बाहरके नगरोंमें व्यापार करनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जायेगा?

अब दूसरी श्रेणीके लोगोंके परवानोंपर विचार करना शेष रह गया।

इन लोगोंको, उपनिवेशपर ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात्, बिना किसी शर्तके परवाने मिले थे। लॉर्ड मिलनरके ही खरीतेमें लिखा है कि १८८५ के कानून ३ को लागू करनेका विचार इसी वर्ष किया गया था। पिछले वर्ष, पिछली सरकारके एशियाई-विरोधी अब्रिटिश कानूनोंपर अमल करनेका विचारतक किसीके मनमें नहीं आया था। ये लोग शरणार्थी थे, उनमें से बहुत-से युद्धसे पहले किसी-न-किसी स्थानपर व्यापार भी करते थे, और ब्रिटिश अधिकारी, जो स्थानीय विद्वेष-भावनामें शिक्षित नहीं हुए थे, स्वभावतः यह नहीं समझ सकते थे कि जब विदेशियोंतक को व्यापार करनेके परवाने दिये जा रहे हैं तब ब्रिटिश प्रजाजनोंको क्यों न दिये जायें?

यह काम एशियाई दफ्तरके लिए ही सुरक्षित था कि वह एशियाई-विरोधी कानूनोंको खोदकर निकाले और उन्हें लागू करनेका सुझाव दे। स्वार्थी लोगोंने ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध

१. एस० जे० पॉल क्रूगर (१८२५–१९०४), ट्रान्सवालके प्रेसीडेंट, १८८३–१९००। देखिए "स्वर्गीय प्रेसीडेंट क्रूगर" २३–७–१९०४।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९१।

जो आन्दोलन छेड़ा, उससे इस दफ्तरका बल और भी बढ़ गया, और परिणाम यह हुआ कि अब हमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका सामना करना पड़ रहा है।

पिछली जनवरीमें जब ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनसे मिला था[1] तब वे समझ ही नहीं सकते थे कि जो परवाने एक बार दिये जा चुके, उन्हें वापिस किस प्रकार लिया जा सकता है?

इसके अतिरिक्त, दूसरी श्रेणीके व्यक्तियोंकी संख्या बहुत कम है; उनके हाथमें भी बहुत माल रुका पड़ा है और किसी-किसीने दूकानोंके पट्टे भी ले रखे हैं। इन सबको यदि *बाजारोंमें* जानेके लिए विवश किया गया तो उसका मतलब इनका पूर्ण विनाश कर डालना होगा।

सरकारने जिन इलाकोंमें *बाजारोंके* लिए स्थानका चुनाव करना उचित समझा है, उनमें से कइयोंके व्यापार-पेशा लोगोंसे ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) सच्चे हालात जाननेका यत्न कर रहा है। अबतक प्राप्त विवरणोंके अनुसार इनमें से एक भी स्थान ऐसा नहीं है — जहाँ 'गोरे' या काफिर ग्राहक जाना पसन्द करेंगे — यद्यपि लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लॉली, दोनोंने हमें विश्वास दिलाया था कि उनका चुनाव शहरोंके अन्दर और ऐसे स्थानोंपर किया जायेगा, जहाँ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको गोरे और काफिर, दोनों प्रकारके ग्राहकोंसे व्यापार करनेकी उचित सुविधाएँ मिल सकें।

हरएक मामलेमें *बाजारोंको* रास्तोंसे दूर हटाकर कायम किया गया है, और यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे वे शहरकी हदमें हैं, तथापि उसके बसे हुए भागोंसे अवश्य ही दूर हैं। एक मामला तो ऐसा था कि वर्तमान बस्तीको और भी परे हटानेका यत्न किया गया था। यहाँ यह भी ज़िक्र कर देना चाहिए कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने हमारे शिष्टमण्डलसे कहा था कि उनकी सम्मतिमें *बाजारोंके* स्थानोंका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और जिन लोगोंको वहाँ जाना पड़ेगा उन्हें व्यापार करनेका अच्छा अवसर मिलेगा।

परमश्रेष्ठका अत्यन्त आदर करते हुए हम कहना चाहते हैं कि इस सम्बन्धमें सर्वथा निष्पक्ष तथा अच्छा स्थानीय अनुभव रखनेवाले लोगोंकी रिपोर्टें और अपना सारा जीवन व्यापारमें बिताये हुए लोगोंकी सम्मतियाँ आखिरकार परमश्रेष्ठकी सम्मतिसे कहीं अधिक विश्वसनीय हैं।

बाजारके स्थानके बारेमें निम्नलिखित रिपोर्ट नमूनेके लायक है।

श्री जे० ए० नेसिर, जे० पी०, वकील, क्लार्क्सडॉर्प *बाजारके* बारेमें कहते हैं:

> मेरी सम्मतिमें प्रस्तावित स्थान व्यापारके लिए उपयुक्त नहीं है; क्योंकि यह सम्भावना नहीं कि नगरके निवासी इतना फासला तय करके वहाँ खरीदारी करनेके लिए जायेंगे . . . पुराने शासनमें पृथक् भारतीय *बाजार* कोई नहीं था।

डॉ० जुप, एम०बी०, बी०एस०सी० कहते हैं:

> मेरी सम्मतिमें इस समय जो स्थान *बाजारके* लिए अंकित किया गया है वह स्वच्छताकी दृष्टिसे निन्दनीय है।

इस लेखके लिखे जा चुकनेके पश्चात्, वहाँके जिला-सर्जनने भी उक्त स्थानकी निन्दा की है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९२।

३२. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और अश्वेत-कानून

गवर्नमेंट गजटके अभी हालके एक अंकमें बिलकुल स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार रंगदार लोगोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेवाले विधानोंपर अमल करनेसे किन्हीं भी बातोंके विचारसे रुकनेवाली नहीं है। २३ अगस्तके *गजटमें* नगरपालिका कानूनमें संशोधनके लिए एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित किया गया है। उसमें नगरपालिकाओं के चुनावोंमें मतदाताओंकी निर्योग्यताओंके सम्बन्धमें यह भाग है :

> **ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो १८९३ के कानून ८ की धारा ८ के अनुसार रंगदार व्यक्ति है, और जो किसी गोरे पिताके रंगदार माताके साथ या किसी रंगदार पिताके गोरी माताके साथ वैध विवाहकी सन्तान नहीं है या जिसने ऐसी सन्तान होनेपर भी कानूनके ३४ वें अध्यायकी धाराओंके अन्तर्गत इस उपनिवेशमें अचल सम्पत्तिका स्वामित्व या अधिकार प्राप्त नहीं किया है, मतदाता होनेके अयोग्य है।**

अब १८९३ के कानून ८ की धारा ८ के अन्तर्गत,

> **जो 'रंगदार व्यक्ति' शब्द इस कानूनमें आते हैं उनमें, जबतक किसी प्रकरणमें स्पष्ट निषेध न हो तबतक, ये लोग सम्मिलित होंगे : दक्षिण आफ्रिकाकी किसी भी वतनी जातिके १६ वर्षकी आयु या अनुमानित आयुसे ऊपरके एक या अनेक पुरुष या स्त्री, सब रंगदार लोग और वे सभी लोग जो किसी भी नस्ल या जातिके हों, किन्तु कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार माने जाते हों, या रंगदार लोगोंकी भाँति व्यवहार पाते हों।**

अतः यह परिभाषा इतनी व्यापक है, जितनी कल्पनामें आ सकती है और इसमें ब्रिटिश भारतीय भी सम्मिलित हैं। यह धारा स्वतः अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल-सरकारने अभी हालमें ही सभी रंगदार लोगोंका नगरपालिकाओंके चुनावोंमें भाग लेनेका अधिकार छीन लिया है। ब्रिटिश भारतीयोंकी यह निर्योग्यता निश्चय ही उनपर लगी निर्योग्यताओंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है; किन्तु जब हम इसे ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध सरकारकी जान-बूझकर अख्तियार की गई शत्रुतापूर्ण नीतिके उपलक्षणके रूपमें देखते हैं तब यह कोई कम महत्त्व नहीं रखती। उपनिवेश सरकार भूतकालीन परम्परासे बिलकुल विमुख नहीं हो सकती। पुराने कानूनोंमें परिवर्तन होना भी है तो बुराईकी दिशामें ही। श्री चेम्बर-लेनने लॉर्ड मिलनरको प्रेषित खरीतेमें उनकी एशियाई गिरमिटिया मजदूरोंकी माँगका उत्तर देते हुए दोनों उपनिवेशोंके भारतीय-विरोधी कानूनोंका उल्लेख किया है और यह आशा व्यक्त की है कि वे निर्दिष्ट दिशामें राहत देंगे। हमने ऊपर जिस धाराका उल्लेख किया है, और वे धाराएँ जिनका उल्लेख हम करनेवाले हैं, उस खरीतेके ऑरेंज रिवर उपनिवेश द्वारा दिए गये उत्तर हैं। जो उपनिवेश उपनिवेश-कार्यालयके अधीन और उसके सीधे नियन्त्रणमें है, उसकी सरकार किस प्रकार उस कार्यालयके प्रधान-अधिकारीके आदेशोंका उल्लंघन करती है और किस प्रकार ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें पिछले कानूनोंको हटानेसे इनकार ही नहीं करती जाती, बल्कि ब्रिटिश भारतीयोंको बाँधनेवाली रज्जुको और भी कड़ा करती जाती है, यह अकल्पनीय

है। अध्यादेशके इसी मसविदेमें पीछे हम कुछ धाराएँ वस्तियोंके सम्बन्धमें भी देखते हैं। हाशियेपर अंकित टिप्पणीमें "वतनी वस्तियों" का उल्लेख है; किन्तु धारा स्पष्ट रूपसे "सभी रंगदार लोगों" पर लागू होती है। वह इस प्रकार है:

> परिषदको अधिकार है कि वह नगर-पालिकाओंकी भूमिके उस भाग या भागोंपर, जहाँ वह उचित समझे, वस्तियाँ स्थापित करे, जिनमें अपने मालिकोंके मकानोंमें रहनेवाले घरेलू नौकरोंके अतिरिक्त अन्य सभी रंगदार लोग रहनेके लिए वाध्य किये जा सकेंगे। वह समय-समयपर इन बस्तियोंको बन्द कर सकती है और नई वस्ती या बस्तियाँ वसा सकती है। परिषदको इन लोगोंके उचित नियंत्रणके लिए नियम बनानेका अधिकार भी दिया जाता है। कोई भी पुरुष या स्त्री, जिसकी अनुमानित आयु सोलह वर्षसे अधिक हो, या साठ वर्षकी अनुमानित आयुसे कम हो, इन वस्तियोंमें अड़तालीस घंटेसे अधिक न रहेगा, जबतक
>
> (क) वह वस्तुतः नगरपालिकाकी सीमामें या नगरपालिका-क्षेत्रकी सीमासे वाहर पाँच मीलके घेरेमें रहनेवाले किसी गोरे मालिक का कर्मचारी न हो और उसके पास इस आशयका नगर-परिषदका परवाना न हो। या जवतक
>
> (ख) उसने सन् १८९३ के कानून ८ की धारा ३ के अनुसार अपनी ओरसे काम करनेकी अनुमतिका प्रमाणपत्र न ले लिया हो और वस्तुतः उस कार्यमें लगा हुआ न हो। या जवतक
>
> (ग) वह ऐसा व्यक्ति न हो, जिसने रंगदार जन-राहत अध्यादेश (कलर्ड पर्सन्स रिलीफ़ ऑर्डिनेन्स), १९०३ की धाराओंके अन्तर्गत अपवादपत्र प्राप्त कर लिया हो। या जवतक
>
> (घ) वह किसी ऐसे पुरुषकी वैध पत्नी न हो जो पहले कही धाराओंके अन्तर्गत ऐसी वस्तीमें रह रहा हो।

उन उपधाराओंका निचोड़ यह है कि एक वस्तीकी सीमामें, जो अस्तवल या काँजीहौसकी तरह परिषदकी इच्छासे हटाई जा सकती है, रहनेके लिए भी एक रंगदार व्यक्तिको पूर्वानुमति लेनी आवश्यक है और वह एक छोटा नौकर होना चाहिए, अर्थात् वह उपनिवेशमें तवतक नहीं रह सकता जवतक वह विशुद्ध मजदूर न हो। हमारे पाठक कहीं यह कल्पना न कर लें कि इन उल्लिखित कानूनोंमें रंगदार चर्मधारियोंके लिए वड़े-वड़े विशेषाधिकार सुरक्षित हैं, अतः हम यहां यह जिक्र कर दें कि १८९३ के कानून ८ की धारा ३ में यह विधान है: स्थानीय निकाय ५ शिलिंग प्रतिमास शुल्क देनेपर रंगदार व्यक्तिको अपनी सेवाएँ जिसको चाहे उसको वेचनेकी अनुमति दे सकते हैं, वशर्ते कि वह ऐसा करनेके लिए आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त कर ले। रंगदार जन-राहत अध्यादेशमें इसकी जो योग्यताएँ वताई गई हैं वे वहुत ऊँची हैं। इन योग्यताओंसे रंगदार व्यक्ति व्यक्तिगत परवाना रखनेसे, जिसे समय-समयपर नया कराना पड़ता है, और जिसका निश्चित शुल्क देना पड़ता है, छूट प्राप्त करनेका अधिकारी हो सकता है। यह महँगी छूट वहुत ही अप्रिय विधि-विधानोंमें से गुजरनेके वाद दी जाती है और इसमें वस्तुतः मामूली परवानेकी जगह छूटका प्रमाणपत्र होता है। इससे अधिक इस अध्यादेशसे कोई राहत नहीं मिलती। और ऐसे छूट-प्राप्त व्यक्तिपर अन्य सभी निर्योग्यताएँ — जैसे व्यापार करने, खेती करने, अचल सम्पत्ति खरीदने, वस्तियोंके वाहर रहने आदि पर लगाई निर्योग्यताएँ

—ज्यों-की-त्यों रह जाती है। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारका रंगदार लोगोंके प्रति ऐसा रवैया है। अतः जबतक उपनिवेश-कार्यालय साम्राज्यकी रंगदार प्रजाओंकी रक्षाके मामलेमें अपने विशेषाधिकारका प्रयोग करनेका मार्ग नहीं अपनाता, तबतक उन लोगों ब्रिटिश भारतीयोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनी आजीविका कमानेके उद्देश्यसे प्रवास करने और बसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि ब्रिटिश भारतीयोंके इंग्लैंडवासी मित्र हमारी इन बातोंको देखेंगे, उनका अध्ययन करेंगे और हमारी रक्षा करेंगे एवं उपनिवेश-कार्यालयसे आग्रह करेंगे कि वह सम्राटकी राजभक्त प्रजाके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करे। अपने राजस्व-सम्बन्धी आन्दोलनमें श्री चेम्बरलेनने बड़ी सरगर्मीसे इस तथ्यपर जोर दिया है कि भारतमें लड़ाकू शक्तिका अपार भण्डार सुरक्षित है, जिसका उपयोग आवश्यकताके समय साम्राज्य रत्ती-भर भी हिचकके बिना कर सकता है। हाँ, भारत समस्त साम्राज्यकी सेवामें अपना भाग अदा करनेके लिए सदैव तैयार है। क्या परम माननीय महानुभाव उपनिवेशोंको भी अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेके लिए समझानेमें अपने प्रभावका उपयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०३

३३. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन

मृत्युने स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनके रूपमें हमारे बीचमें नेटालके एक निर्माताको उठा लिया है। उत्तरदायी शासनमें प्रथम प्रधानमन्त्रीके रूपमें उन्होंने अपने पीछे उपनिवेशकी उपयोगी सेवाका एक ऐसा लेखा छोड़ा है, जिससे आगे बढ़ना दूर, बराबरी करना भी किसीके लिए सरल न होगा। जैसा अभी हालकी घटनाओंसे सिद्ध हो चुका है, यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात थी कि जब उपनिवेशको स्वशासन दिया गया, जिसकी प्राप्तिमें सर जॉनका हाथ प्रमुख था, तब उसका शासन उनको और उनके ही जैसे उनके योग्य साथी स्व० परम माननीय श्री हैरी एस्कम्बको सौंपा गया। उन्होंने इसका कार्य जिस उत्तम रूपसे आरम्भ किया, उसके बिना उत्तरदायी शासनमें नेटालकी जो स्थिति होती उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। सम्पादकसे प्रधानमन्त्री बनना बहुत बड़ी उन्नति है। इससे उस व्यक्तिकी खरी योग्यता प्रकट होती है, जो अब हमारे बीचमें नहीं है। अपनी योग्यता, उत्साह और उद्देश्य-निष्ठासे उन्होंने *नेटाल मर्क्युरीको* नेटालकी एक शक्ति बनानेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने उपनिवेश सरकारपर उन सब गुणोंका और भी उत्कृष्ट रूपमें प्रभाव डाला। इसके लिए सम्राटने उनको के० सी० एम० जी० की उपाधि प्रदान करके मानो उनकी योग्यताको मान्यता प्रदान की थी। ब्रिटिश भारतीय इन माननीय महानुभावको मताधिकार अपहरण विधेयकके[1] निर्माताके रूपमें भली भाँति याद रखेंगे। ब्रिटिश भारतीयोंका उस समय उनके विचारोंसे मतभेद था। और इसका कारण था; किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करनेमें वे ऊँचे इरादोंके अतिरिक्त किन्हीं और बातोंसे प्रेरित थे। वह विधेयक, जो बादमें परिवर्तित हुआ, उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंका अभीतक अंग है। अच्छा होता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करते समय उन्होंने जो

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९।

शब्द कहे थे वे भी उस कानूनका अंग होते। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि ब्रिटिश भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित करनेमें विधानसभाके प्रत्येक सदस्यने अपने ऊपर एक गंभीर दायित्व लिया है और वह उनका न्यासी हो गया है। यदि उस विधानकी रचनामें, जो बादमें बना, हमारे विधायकोंकी ऐसी ही भावना रही होती तो शिकायतकी बात बहुत कम रह गई होती। सर जॉनके हृदयमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति प्रेमका भाव था, यह इस तथ्यसे सिद्ध हो जाता है कि जब वे अपनी गम्भीर बीमारीसे अच्छी तरह उठे भी न थे तभी अपने स्वास्थ्यकी बड़ी कुर्बानी करके उन्होंने लेडीस्मिथकी मुक्तिका उत्सव मनानेके लिए कांग्रेस-भवनमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता करनेका नेटाल भारतीय-कांग्रेसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था[1]। जैसा उनका सामान्य नियम था, उन्होंने कार्यक्रममें पूरे हृदयसे भाग लिया और नेटालके भारतीय आहत-सहायक दलकी उदारतापूर्वक सराहना की।[2] उन्होंने उस अवसरपर जो सुन्दर भाषण दिया था उसको हम पूराका-पूरा दूसरे पृष्ठपर पुनः छापते हैं। हम लेडी रॉबिन्सन और उनके परिवारको उनके इस वियोगमें, जो समस्त उपनिवेशके लिए शोककी बात है, अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रेषित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३४. क्लार्क्सडॉर्पमें एशियाई "बाजार" के लिए प्रस्तावित जगह

हमें ज्ञात हुआ है कि ट्रान्सवालकी सरकारने अनेक शहरोंमें एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहें पसन्द की हैं वे उपयुक्त हैं या नहीं, इसके बारेमें उन शहरोंके ब्रिटिश भारतीयोंने रिपोर्टें तैयार कराई हैं। क्लार्क्सडॉर्पके भारतीयोंने भी ऐसा ही किया है, और जिन डॉक्टर महानुभावने भारतीयोंकी ओरसे अपनी रिपोर्ट दी है, उन्होंने सफाईकी दृष्टिसे उन जगहोंको निन्दनीय ठहराया है। इस रिपोर्टका समर्थन भी बहुत विचित्र क्षेत्रोंसे हुआ है। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*के इसी ३ तारीखके अंकके अनुसार, स्थानीय जिला चिकित्सा-अधिकारीने भी उस जगहके विरुद्ध राय दी है और स्वास्थ्य-निकायने मंजूर किया है कि चूंकि सरकारने उस जगहको पसन्द कर लिया है, इसलिए वह इस मामलेमें असमर्थ है। यह बात दुःखजनक है, अन्यथा इसपर सभीको हँसी आती। अगर सम्भव होता तो निकाय कह देता कि इस पसन्दगीमें उसका कोई हाथ नहीं है; परन्तु उसके दुर्भाग्यसे *बाजार*-विषयक सरकारी सूचनाके अनुसार सरकार प्रस्तुत जगहके बारेमें बगैर स्वास्थ्य-निकायसे सलाह लिये शायद निर्णय नहीं कर सकती थी। फिर राजधानी प्रिटोरियामें होनेके कारण सरकार एक बार बहाना भी कर सकती है कि आरोग्यकी दृष्टिसे वह जगह अनुपयुक्त है, इसका उसे ज्ञान नहीं था। परन्तु स्वास्थ्य-निकायके पास ऐसा कोई बहाना नहीं है, क्योंकि उसके सदस्य सब वहींके रहनेवाले हैं और उन्होंने आँखें खूब खोलकर ही इस जगहकी सिफारिश की होगी। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*में यह प्रतिवेदन जिस तरह प्रकाशित हुआ है, उसे हम ज्योंका-त्यों यहाँ पेश कर देना ही सबसे अच्छा समझते हैं:

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १४६।
२. वही खण्ड, पृष्ठ १७१।

—ज्यों-की-त्यों रह जाती है। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारका रंगदार लोगोंके प्रति ऐसा रवैया है। अतः जबतक उपनिवेश-कार्यालय साम्राज्यकी ओरसे प्रजाओंकी रक्षाके सम्बन्धमें अपने विशेषाधिकारका प्रयोग करनेका मार्ग नहीं अपनाता, तबतक उन लोगों ब्रिटिश भारतीयोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनी आजीविका कमानेके उद्देश्यसे प्रवास करने और बसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि ब्रिटिश भारतीयोंके इंग्लैंडवासी मित्र हमारी इन बातोंको देखेंगे, उनका समर्थन करेंगे और हमारी रक्षा करेंगे एवं उपनिवेश-कार्यालयसे आग्रह करेंगे कि वह सम्राटकी राजभक्त प्रजाके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करे। अपने राजस्व-सम्बन्धी आन्दोलनमें श्री चेम्बरलेनने बड़ी मजबूतीसे इस तथ्यपर जोर दिया है कि भारतमें लड़ाकू शक्तिका अक्षय भण्डार सुरक्षित है, जिसका उपयोग आवश्यकताके समय साम्राज्य रत्ती-भर भी झिझकके बिना कर सकता है। हाँ, भारत समस्त साम्राज्यकी सेवामें अपना भाग अदा करनेके लिए सदैव तैयार है। क्या परम माननीय महानुभाव उपनिवेशोंको भी अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेके लिए समझानेमें अपने प्रभावका उपयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३३. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन

मृत्युने स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनके रूपमें हमारे बीचसे नेटालके एक निर्माताको उठा लिया है। उत्तरदायी शासनमें प्रथम प्रधानमन्त्रीके रूपमें उन्होंने अपने पीछे उपनिवेशकी उपयोगी सेवाका एक ऐसा लेखा छोड़ा है, जिससे आगे बढ़ना दूर, बराबरी करना भी किसीके लिए सरल न होगा। जैसा अभी हालकी घटनाओंसे सिद्ध हो चुका है, यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात थी कि जब उपनिवेशको स्वशासन दिया गया, जिसकी प्राप्तिमें सर जॉनका हाथ प्रमुख था, तब उसका शासन उनको और उनके ही जैसे उनके योग्य साथी स्व० परम माननीय श्री हैरी एस्कम्बको सौंपा गया। उन्होंने इसका कार्य जिस उत्तम रूपसे आरम्भ किया, उसके बिना उत्तरदायी शासनमें नेटालकी जो स्थिति होती उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। सम्पादकसे प्रधानमन्त्री बनना बहुत बड़ी उन्नति है। इससे उस व्यक्तिकी खरी योग्यता प्रकट होती है, जो अब हमारे बीचमें नहीं है। अपनी योग्यता, उत्साह और उद्देश्य-निष्ठासे उन्होंने *नेटाल मर्क्युरीको* नेटालकी एक शक्ति बनानेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने उपनिवेश सरकारपर उन सब गुणोंका और भी उत्कृष्ट रूपमें प्रभाव डाला। इसके लिए सम्राटने उनको के० सी० एम० जी० की उपाधि प्रदान करके मानो उनकी योग्यताको मान्यता प्रदान की थी। ब्रिटिश भारतीय इन माननीय महानुभावको मताधिकार अपहरण विधेयकके[1] निर्माताके रूपमें भली भाँति याद रखेंगे। ब्रिटिश भारतीयोंका उस समय उनके विचारोंसे मतभेद था। और इसका कारण था; किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करनेमें वे ऊँचे इरादोंके अतिरिक्त किन्हीं और बातोंसे प्रेरित थे। वह विधेयक, जो बादमें परिवर्तित हुआ, उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंका अभीतक अंग है। अच्छा होता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करते समय उन्होंने जो

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९।

शब्द कहे थे वे भी उस कानूनका अंग होते। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि ब्रिटिश भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित करनेमें विधानसभाके प्रत्येक सदस्यने अपने ऊपर एक गंभीर दायित्व लिया है और वह उनका न्यासी हो गया है। यदि उस विधानकी रचनामें, जो बादमें बना, हमारे विधायकोंकी ऐसी ही भावना रही होती तो शिकायतकी बात बहुत कम रह गई होती। सर जॉनके हृदयमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति प्रेमका भाव था, यह इस तथ्यसे सिद्ध हो जाता है कि जब वे अपनी गम्भीर बीमारीसे अच्छी तरह उठे भी न थे तभी अपने स्वास्थ्यकी बड़ी कुर्बानी करके उन्होंने लेडीस्मिथकी मुक्तिका उत्सव मनानेके लिए कांग्रेस-भवनमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता करनेका नेटाल भारतीय-कांग्रेसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था[1]। जैसा उनका सामान्य नियम था, उन्होंने कार्यक्रममें पूरे हृदयसे भाग लिया और नेटालके भारतीय आहत-सहायक दलकी उदारतापूर्वक सराहना की।[2] उन्होंने उस अवसरपर जो सुन्दर भाषण दिया था उसको हम पूराका-पूरा दूसरे पृष्ठपर पुनः छापते हैं। हम लेडी रॉबिन्सन और उनके परिवारको उनके इस वियोगमें, जो समस्त उपनिवेशके लिए शोककी बात है, अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रेषित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३४. क्लार्क्संडॉर्पमें एशियाई "बाजार"के लिए प्रस्तावित जगह

हमें ज्ञात हुआ है कि ट्रान्सवालकी सरकारने अनेक शहरोंमें एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहें पसन्द की हैं वे उपयुक्त हैं या नहीं, इसके बारेमें उन शहरोंके ब्रिटिश भारतीयोंने रिपोर्टें तैयार कराई हैं। क्लार्क्संडॉर्पके भारतीयोंने भी ऐसा ही किया है, और जिन डॉक्टर महानुभावने भारतीयोंकी ओरसे अपनी रिपोर्ट दी है, उन्होंने सफाईकी दृष्टिसे उन जगहोंको निन्दनीय ठहराया है। इस रिपोर्टका समर्थन भी बहुत विचित्र क्षेत्रोंसे हुआ है। *क्लार्क्संडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*के इसी ३ तारीखके अंकके अनुसार, स्थानीय जिला चिकित्सा-अधिकारीने भी उस जगहके विरुद्ध राय दी है और स्वास्थ्य-निकायने मंजूर किया है कि चूंकि सरकारने उस जगहको पसन्द कर लिया है, इसलिए वह इस मामलेमें असमर्थ है। यह बात दुःखजनक है, अन्यथा इसपर सभीको हँसी आती। अगर सम्भव होता तो निकाय कह देता कि इस पसन्दगीमें उसका कोई हाथ नहीं है; परन्तु उसके दुर्भाग्यसे *बाजार*-विषयक सरकारी सूचनाके अनुसार सरकार प्रस्तुत जगहके बारेमें बगैर स्वास्थ्य-निकायसे सलाह लिये शायद निर्णय नहीं कर सकती थी। फिर राजधानी प्रिटोरियामें होनेके कारण सरकार एक बार बहाना भी कर सकती है कि आरोग्यकी दृष्टिसे वह जगह अनुपयुक्त है, इसका उसे ज्ञान नहीं था। परन्तु स्वास्थ्य-निकायके पास ऐसा कोई बहाना नहीं है, क्योंकि उसके सदस्य सब वहींके रहनेवाले हैं और उन्होंने आँखें खूब खोलकर ही इस जगहकी सिफारिश की होगी। *क्लार्क्संडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*में यह प्रतिवेदन जिस तरह प्रकाशित हुआ है, उसे हम ज्योंका-त्यों यहाँ पेश कर देना ही सबसे अच्छा समझते हैं:

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १४६।
२. वही खण्ड, पृष्ठ १७१।

> जिला चिकित्सा-अधिकारीका पत्र पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने लिखा है कि वे एशियाई *बाजारके* लिए चुनी गई जगहको अनुपयुक्त मानते हैं, क्योंकि बरसातके दिनोंमें वहाँ पानी भर जाता है। यह बताया गया कि *बाजारके* २०० बाड़े होंगे, जिनमें से कमसे-कम तीन-चौथाईकी जरूरत वर्षोंतक नहीं पड़ेगी, और यह कि यद्यपि कुछ बाहरी बाड़े नीची जमीनपर हैं, तथापि अधिकांश तो बहुत ही सुन्दर जगहपर हैं। फिर, यह प्रश्न स्वास्थ्य-निकायके अधिकार-क्षेत्रसे बाहरका है, क्योंकि सरकार उस जगहको पसन्द कर चुकी है, उसका सर्वेक्षण करा चुकी है और उसकी *बाजारके* रूपमें घोषणा भी कर चुकी है।

दूसरे शहरोंमें भी *बाजारोंकी* सिफारिश करनेवाले स्वास्थ्य-निकाय उसी कोटिके हैं। फिर भी लॉर्ड मिलनरने उपनिवेश-कार्यालयको यह आश्वासन दिया है कि *बाजारोंके* लिए अच्छे स्थान चुने जायेंगे, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और व्यापारकी दृष्टिसे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

३५. श्वेत-संघ और ब्रिटिश भारतीय

गत ५ तारीखको जोहानिसबर्गके अन्तर्गत फोर्ड्सबर्गमें श्वेत-संघके तत्वावधानमें एक सभा हुई थी, जिसमें कई प्रश्नोंपर बहस हुई। अखबारोंमें छपे समाचारोंसे ज्ञात होता है कि कार्रवाई "अत्यधिक सजीव" रही, "बीच-बीचमें शोर-गुल भी हुआ।" श्री ए० मैक-फार्लेन सभापति थे और लगभग अस्सी व्यक्ति उपस्थित थे। सभापतिने अपने प्रारम्भिक भाषणमें एशियाइयोंके प्रवासपर कुछ विस्तारके साथ अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा :

> श्वेत-संघकी स्थापना एक वर्ष पहले इस भावनाके कारण हुई थी कि जोहानिसबर्गमें अवांछनीय श्रेणीके विदेशियोंकी बाढ़-सी आ गई है। वे छोटी-छोटी दूकानों तथा व्यापारी हल्कोंमें भरे जा रहे हैं और बहुत-से मामलोंमें हमारी जातिके उन लोगोंका स्थान ले रहे हैं, जो लड़ाईके कारण यहाँ नहीं आ पाये और जिन्होंने लड़ाईका पूरा धक्का सहा। . . . उन्होंने भाषणमें बताया कि लड़ाईके बाद लौटनेके लिए एशियाइयोंको आसानीसे अनुमतिपत्र मिलते जा रहे हैं, ब्रिटिशोंको उन्हें पानेमें कठिनाई हो रही है और एशियाई उनके लिए बेईमानीके तरीकोंसे भी काम ले रहे हैं। ट्रान्सवालके कानूनके अनुसार चीनी और भारतीय परवाने रखनेके अधिकारी नहीं हैं। परन्तु वर्तमान सरकारने वह कानून उन चीनियों और भारतीयोंके लिए मुल्तवी कर दिया है, जो लड़ाईसे पहले गैर-कानूनी तौरपर व्यापार कर रहे थे। . . . यहाँ यह सवाल पूछा जा सकता है कि जब भारत-सरकारने हमें रेलवेके कामके लिए अपने यहाँ मजदूरोंकी भरती करनेकी आज्ञा देनेसे इनकार कर दिया है तब क्या हम यह माँग नहीं कर सकते कि यहाँ जितने भी भारतीय हैं उन सबको वापिस भारत भेज दिया जाये, क्योंकि व्यापारियोंके रूपमें उन्होंने इस देशकी वास्तविक उन्नतिमें बाधा पहुँचानेका काम किया है?

ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें श्री मैक-फारलेनके ये विचार हैं। अब वास्तविकताको देखिए। सरकारी कागजातके अनुसार जनवरी और अक्तूबरके बीच जहाँ यूरोपीयोंको २८,००० अनुमतिपत्र जारी किये गये, वहाँ ब्रिटिश भारतीयोंको युद्ध-विरामकी घोषणाके बादसे लेकर अभीतक १०,००० से भी कम अनुमतिपत्र दिये गये हैं। इसके अलावा, हम पहले ही जो अंक प्रकाशित कर चुके हैं उनसे ज्ञात होगा कि ये सबके-सब २८,००० यूरोपीय गैर-शरणार्थी हैं। दूसरी तरफ, कुछ दर्जन ब्रिटिश भारतीयोंको छोड़कर सारेके-सारे अनुमतिपत्र पानेवाले भारतीय शरणार्थी हैं। अब, अनुमतिपत्रोंके लिए एशियाइयोंपर मनमाने तरीके काममें लानेके विषयमें हम सुयोग्य सभापतिका ध्यान केवल उन मामलोंकी तरफ दिलाना चाहते हैं, जो हाल ही में कैप्टन हैमिल्टन फाउलने कितने ही यूरोपीयोंपर बगैर अनुमतिपत्रके ट्रान्सवालमें आने अथवा अनुमतिपत्रोंका अवैध व्यापार करनेके अपराधमें दायर किये हैं। यूनानके सहायक उप-राजप्रतिनिधि पर अवैध अनुमतिपत्र बेचनेके अपराधमें भारी जुर्माना हुआ था। हमारा खयाल है कि वे केवल यूरोपीयोंके लिए ही अनुमतिपत्र प्राप्त करनेका काम करते थे। सभापतिका यह सुझाव उनके भाषणके सम्पूर्ण भावके अनुरूप ही है कि जो भारतीय ट्रान्सवालमें वर्षोंसे बसे हुए हैं और जिन्होंने यहाँ जमीन-जायदाद ले ली है और जो उपनिवेशमें स्वतन्त्र आदमीकी हैसियतसे आये हैं, उनको तुरन्त स्वदेश भेज दिया जाये; क्योंकि गुलामीकी-सी शर्तोंपर भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजनेसे इनकार कर दिया है। मौजूदा सरकारपर इन्हीं महानुभावोंके विरोधका असर पड़ता है। इन्हींकी प्रेरणासे *बाजार*-सूचनाएँ जारी हुई हैं, जिनकी वजहसे सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय दूकानदार इस वर्षके अन्ततक भिखारी बना दिये जायेंगे। इस सभाका सम्पूर्ण ब्योरा *डेली मेल*से हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं, जिससे पाठकोंको पता चलेगा कि ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ किस प्रकारका विरोध काम कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३६. भारतीय और "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

हमारा सहयोगी अभीतक भारतीय प्रश्नमें उलझा हुआ है। उसके एक ताजा अंकमें आधेसे अधिक कालम एक भारतीय द्वारा ईस्ट रैंड जिलेमें जमीनके एक टुकड़ेकी खरीदके मामलेसे भरा है। तथ्य जो उसमें दिये गये हैं काफी सही हैं। हमारे पास भी सारी हकीकत है। तथापि, हम अपने सहयोगीको एक बहुत ही आवश्यक बातकी याद दिलाना चाहेंगे; वह यह कि, इस जमीनकी खरीदारी पूर्णतः सही तरीकेसे हुई है। जब ट्रान्सवालपर अंग्रेजोंने अधिकार किया तब लोगोंने — जिनमें सरकारी अधिकारी, सर्वसाधारण जनता और स्वयं भारतीय भी शामिल हैं — समझ लिया कि पुराने भेदभाव-भरे कानून अब नहीं रह गये हैं। लॉर्ड मिलनरके खरीते और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोंके भाषण लोगोंके दिमागमें ताजा थे। उनको ध्यानमें रखकर वे इस स्वाभाविक नतीजेपर पहुँचे कि जिस बुराईको दूर करनेके लिए पिछली लड़ाई लड़ी गई थी, वह अब नहीं रही होगी। ब्रिटिश साम्राज्यके दूसरे किसी भी भागमें ब्रिटिश प्रजाजनोंके विरुद्ध ऐसे दुर्भांति करनेवाले कानून नहीं हैं। इसलिए, उस भारतीयने जमीन खरीद ली और उस गोरे मनुष्यने पूरी तरह यह समझकर वह उसे बेच दी कि जमीनकी रजिस्ट्री हो जायेगी। यही नहीं, रजिस्ट्रारके दफ्तरमें रजिस्ट्रीकी दरखास्त पेश भी हो गई। जब यह पता लगा कि

भारतीयोकी आशाएँ पूरी नही होनेवाली है, और एक भारतीयके नामपर जमीन दर्ज नही हो सकती, तब केवल यही एक मार्ग रह गया कि वह किसी गोरेके नाम दर्ज करा दी जाये। इसलिए उस गरीबने एक गोरे मित्रसे प्रार्थना की कि वह जमीन अपने नामपर करवा ले, ताकि जब जमीन बिके तो उसमें उसे नुकसान न उठाना पड़े। उस गोरे मित्रने यह मंजूर कर लिया और इस तरह मामला समाप्त हो गया। हमें तो इससे दुःख हुआ, परन्तु अगर इस हालतपर हमारे सहयोगीको सन्तोष होता है तो उसे वह सन्तोष मुबारक हो। हम तो केवल इतना ही कहेंगे कि यह अत्यन्त अब्रिटिश है। किन्तु इस छोटेसे प्रश्नके प्रति जो रुख प्रकट हुआ है उस-पर हमें आश्चर्य नही है, क्योंकि इसी लेखमें लिखा है कि ईस्ट रैंडके लोगोंका आगे यह कार्यक्रम होगा: (१) शहरके बाहर *बाजारोंको* छोड़कर अन्यत्र कोई एशियाई व्यापार नही होगा, जैसी कि कानूनकी आज्ञा है। (२) किसी जमीन या स्थावर सम्पत्तिका स्वामित्व एशियाइयोंको न हो, इस सम्बन्धमें वर्तमान कानूनका पूरा-पूरा समर्थन किया जायेगा। (३) तमाम एशियाइयोंको काफिरोंके समान माना जायेगा। अपने सहयोगीकी स्पष्टवादिताकी हमने सदैव सराहना की है। इस मामलेमें भी हमें उसके वही गुण दिखलाई पड़ते हैं। वह कटु सत्य कहनेमें संकोच नही करता। सरकारसे माँग की जानेवाली है कि वह शहरोंके बाहर *बाजार* बना दे। सच पूछिए तो इस बातकी आवश्यकता ही नही है, क्योंकि जहां जगहोंका चुनाव हो गया है वहां सरकारने पहलेसे ही ऐसा कर दिया है। हम नही समझते कि ईस्ट रैंडका कोई कट्टरतम व्यक्ति भी, स्वयं अपनी दृष्टिसे इनसे अधिक उपयुक्त जगहोंका चुनाव कर सकता था। ये जगहें ऐसे हिस्सोंमें हैं, जहाँ व्यापार लगभग असम्भव और निवास खतरेसे भरा है। दूसरी माँग भी अनावश्यक ही है, क्योंकि सरकार वर्तमान कानूनके पालनमें जरा भी रू-रियायत करना नही चाहती। उलटे, उसका तो रुख नियन्त्रणोंको जितना भी सख्त बनाया जा सके उतना सख्त बनानेका है। तीसरी माँग सबसे अधिक स्पष्ट है। और अगर ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेका सवाल अनिश्चित कालके लिए ताकमें रखा जा सका तो यह प्रश्न हमेशाके लिए हल है। सारे एशियाइयोंको एक ही स्तरपर ले आना बहुत सरल उपाय है। परन्तु मुश्किल तो यह है कि ट्रान्सवालकी सरकार पुरानी सभी घोषणाओंको चाहे कितना ही पैरों तले कुचलनेकी इच्छा करे, और तैयार हो जाये, हमारा अनुमान है कि हमारे सहयोगी द्वारा सुझाये गये मार्गका अवलम्बन करनेमें उसे भी हिचक होगी। उसका अर्थ होगा सन् १८८५ के कानून ३ को रद कर देना और उसके स्थान-पर ऐसा कानून बनाना, जो उसने पिछली हुकूमतको कभी पास नही करने दिया। भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरने कई बार प्रयत्न किया कि लन्दन-समझौतेकी १४वी धाराको इस तरह बदल दिया जाये कि "दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंमें" तमाम एशियाइयोंको भी शामिल कर लिया जाये, और चाहा कि उसपर स्वर्गीया सम्राज्ञीकी सरकार अपनी मंजूरी दे दे। परन्तु लॉर्ड डर्बी दृढ़ रहे और उन्होंने ऐसे किसी प्रस्तावपर विचार करनेसे इनकार किया। इसलिए ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रति न्याय करनेकी भावनाका जबतक लवलेश भी बचा रहेगा, हमारे सह-योगीकी योजना यद्यपि बड़ी सरल है, तथापि उसके कार्यान्वित होनेमें कुछ कठिनाई अवश्य होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३७. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर १४, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आज जिनके पास व्यापारिक परवाना है उन्हें हटानेका प्रश्न उन लोगोंके लेखे इतना महत्त्वपूर्ण और गंभीर है कि मैं फिर परमश्रेष्ठका ध्यान बँटानेका साहस कर रहा हूँ।

शिष्टमण्डलने परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन किया था कि लॉर्ड मिलनरका श्री चेम्बरलेनके नाम तारीख ११ मईका खरीता ब्रिटिश भारतीयोंके इस मतकी पुष्टि करता है कि इस वर्षकी सूचना ३५६से वर्तमान परवानों पर असर नहीं पड़ेगा। मैं समर्थनमें विनयपूर्वक खरीतेसे निम्न अंश उद्धृत कर रहा हूँ:

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (क़ानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हें क़ानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे। . . . लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं। और, यूरोपीय लोग बिना सोचे-समझे परवाने देते जाने और एशियाइयोंको उनके लिए ही विशेष रूपसे पृथक बनाई गई बस्तियोंतक सीमित रखनेका कानून लागू करनेमें सरकारकी लापरवाहीके विरुद्ध निरन्तर प्रतिवाद और अधिकाधिक तीव्र रोष प्रकट कर रहे हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है। . . . जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों, या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि लॉर्ड मिल्नरके मनमें ख्याल यह है कि व्यापारिक परवाने नवागन्तुकोंको दिये गये हैं, अतएव केवल उन्हें ही बस्तियों या *बाजारोंमें* हटाया जाना चाहिए। किन्तु जैसा कि शिष्टमण्डलने निवेदन किया है, जिन्हें *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये गये हैं, अगर उनमें कोई नवागन्तुक है, तो उनकी संख्या बहुत कम है।

लॉर्ड मिल्नर फिर कहते हैं :

> **प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों अथवा सुसभ्य एशियाइयों पर हम कोई निर्योग्यताएँ लगाना नहीं चाहते। . . . वह (सरकार) तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें इन एशियाइयोंके प्रति रियायत दिखा रही है, जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखाई थी।**

इन बातोंमें से एक है ऊँचे तबके के एशियाइयोंकी बारे विशेष कानूनसे छूट। जहाँतक केवल निवासियोंको इनके दिये जानेका सवाल है मैं निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि जो स्वच्छता और अन्य नियमोंका अनुसरण करते हैं, उन्हें नया कानून बननेतक अपना व्यापार अबाध रूपसे करने देना चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज : एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

३८. टिप्पणियाँ[1]

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १६, १९०३]

नवम्बर १६, १९०३ को समाप्त होनेवाले सप्ताहका विवरण

स्थिति अब भी वैसी ही है। पिछले सप्ताह जो संक्षिप्त विवरण[2] भेजा गया था वह लॉर्ड मिलनर द्वारा मई २, १९०३ को श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये खरीतेके आधारपर अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है।

यद्यपि लॉर्ड मिलनर कहते हैं, सरकार इस बातके लिए चिन्तित है कि कानून इस तरह लागू हो, जिसमें उपनिवेशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका पूरा खयाल रखा जाये, फिर भी पिछले सप्ताह यह प्रकट हो गया कि भारतीयोंका कितना कम खयाल रखा गया है।

उन भारी हितोंको, जो जोखिममें हैं, देखते हुए यह आवश्यक है कि लॉर्ड मिलनरके खरीतेसे और उद्धरण चुने जायें, जिनसे प्रकट होगा कि वह अमलमें आनेवाले वर्तमान तरीकोंसे वस्तुतः कितना भिन्न है। लॉर्ड मिलनर कहते हैं :

> **लड़ाईके पहले जो एशियाई उपनिवेशमें थे, केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे; परन्तु**

१. गांधीजीने यह विवरण दादाभाई नौरोजीको भेजा था, जिन्होंने इसकी एक प्रति भारतमन्त्रीको भेजी थी। यह दिसम्बर ११, १९०३के *इंडियामें* छपा था।
२. देखिए "टिप्पणियाँ," नवम्बर ९, १९०३।

यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने भी माँगते रहते हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

लॉर्ड महोदय आगे कहते हैं:

> जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और, युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों, या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

अब, उपर्युक्त कथनके अनुसार उन लोगोंकी राहमें, जो युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे, कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए; साथ ही उन लोगोंकी भी, जो युद्धके पहले इस देशमें बस गये थे, चाहे फिर वे युद्धके पूर्व व्यापार करते रहे हों, या नहीं। खरीतेके अनुसार *बाजार*-सूचनाका असर केवल उन्हीं नये आगन्तुकोंपर होना चाहिए, जिनके बारेमें कहा गया है कि वे यहाँ आकर भर गये हैं। वास्तवमें, जैसा कि पिछले विवरणमें बताया गया है, नये आगन्तुक तो बहुत ही कम हैं; क्योंकि देशमें केवल शरणार्थियोंको आने दिया गया है। इसलिए खरीतेपर भरोसा कर निष्क्रिय बैठे रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा। समय भागता जा रहा है, खरीतेके अनुसार यह अत्यन्त आवश्यक है कि बेचारे ब्रिटिश भारतीयोंको आश्वासन दिया जाये कि उनके परवानोंका सम्मान किया जायेगा।

लॉर्ड मिलनर आगे कहते हैं:

> प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यताएँ नहीं लादना चाहते।

और, परमश्रेष्ठ आगे कहते हैं:

> इसलिए, तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें सरकार एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है, जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखलाई थी।

उक्त मामलोंमें से एक है उच्च वर्गके एशियाइयोंको सभी तरहके विशेष विधानोंसे मुक्त करना। यह रियायत, निवासस्थानको छोड़कर, जो कुछ महत्त्व नहीं रखता, अन्यत्र अभी तक नहीं दी गई है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है देशका कानून स्वीकार करनेवाले लोगोंके व्यापारमें रोड़े न अटकाना। बस्तियोंसे बाहर निवासस्थानके अधिकारपर निःसन्देह बहुत जोर डाला जाता है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टिसे निवासस्थानका अधिकार तो भावनासे सम्बन्धित है और व्यापारका अधिकार रोटीसे।

जहाँतक *बाजारोंके* लिए स्थानोंके चुनावका सम्बन्ध है, भारतीयोंकी केवल एक राय है — अर्थात् उनके कट्टर विरोधी इनसे बुरे स्थान नहीं चुन सकते थे। व्यापारके लिए ये स्थान सर्वथा बेकार हैं। ज्यादातर मामलोंमें ये उजाड़ भूमि-खण्ड हैं, जो व्यापारिक केन्द्रोंसे दूर पड़ते हैं। निष्पक्ष पेशेवर लोगोंने प्रमाणित किया है कि व्यापारिक दृष्टिसे उनका कोई मूल्य नहीं है।

रस्टेनबर्ग *बाजार*के सम्बन्धमें स्वास्थ्य-निकायके एक सदस्यतक ने यह कहनेमें संकोच नहीं किया कि वहां व्यापार नहीं हो सकता, और तो भी लॉर्ड मिलनरने श्री नेसरक्लेनको लिखा है

> जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहे चुनी थीं, उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं, क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थीं। बहुतसे शहरोंमें जगहे चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारों*के लिए उपयुक्त जगहे चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोंके जाने-आनेके लायक हों। मुझे विश्वास है कि वहां रहनेके लिए जानेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहां *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम इतनी ही अच्छी तरह वहां अपना व्यापार कर सकेंगे।

उक्त उद्धरण यह प्रकट नहीं करता कि लॉर्ड मिलनरके इरादे अच्छे नहीं हैं, बल्कि बताता है कि *१८८५ के कानून ३ के प्रशासनका उत्तरदायित्व जिनपर है, वे उन इरादोंपर अमल नहीं* कर रहे हैं। वास्तवमें वे इस कानूनको ऐसे ढंगसे अमलमें ला रहे हैं जो भारतीयोंके अत्यन्त विरुद्ध है, क्योंकि कानून सरकारको मजबूर नहीं करता कि वह *बाजारोंको* दूर-दराज जगहोंमें चुने, बल्कि वह उसे अधिकार देता है कि वह एशियाइयोंको रहनेके लिए सड़कें, मुहल्ले तथा बस्तियाँ बताये। लॉर्ड मिलनरने स्वयं पृथक सड़कें स्थापित करनेके बारेमें विचार किया था। उसी खरीतेमें उन्होंने कहा है: "उन्हें उन सड़कों या *बाजारोंमें* जाना होगा, जो इस मतलबके लिए चुने गये हैं।"

हम देखते हैं कि लॉर्ड मिलनरका वक्तव्य, जहाँतक सम्भव हो सकता है, निश्चित है। इसलिए सरकारसे जो न्यूनतम अपेक्षा की जाती है, यह है कि लॉर्ड मिलनरकी घोषणाको पूर्ण रूपसे अमल मे लाये और ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके परवानोंको नया करके उन्हें बरबाद होनेसे बचाये। यदि सरकार चाहे तो नये अर्जदारोंके साथ भिन्न तरीकेसे बरताव किया जा सकता है।

भारतीय हितोंके प्रति प्रशासनकी उदासीनता, या वैरभावको सिद्ध करनेके लिए बारबर्टनके स्वास्थ्य-निकायकी कार्रवाईका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसा कि पिछले सप्ताह बताया जा चुका है, वहाँ वर्तमान बस्तीको नगरसे और दूरके स्थानपर हटानेका प्रयत्न किया गया था। उसके बाद सरकारने लिखा है कि, वर्तमान बस्तीके उपकरणोंको ज्योंका-त्यों रहने दिया जायेगा, क्योंकि स्वास्थ्य-निकाय न तो उनको हटानेका हर्जाना दे सकता है, और न उसपर होनेवाले खर्च ही। किन्तु जो एक हाथसे दिया गया है, उसे दूसरे हाथसे छीन लिया गया है, क्योंकि अभी-अभी स्थानिक मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोंसे एक सूचना निकली है, जिसके जरिये वर्तमान पट्टेदारोंकी पट्टेदारीपर नई और असाधारण शर्तें लगा दी गई हैं। ये शर्तें गैर-सरकारी पक्षोंके बीच भी नहीं सुनी गई थीं। इसका मतलब यह है कि यदि वे नई बस्तियोंमें नहीं जाना चाहते तो उन्हें अपनी जगहोंमें उप-किरायेदारको और, यहातक कि, किसी अभ्यागतको भी रखनेका हक न होगा। यदि वे न मानें तो उन्हे "बेदखलीका खतरा" उठाना होगा और, "नियत तारीखको किराया न देनेपर पट्टेदारी समाप्त कर दी जायेगी।" वर्तमान परवानेदारोंके सिवा न तो किसी अन्य व्यक्तिके नाम परवाने बदले जा सकते हैं और न किसी अन्य स्थानके लिए नये कराये जा सकते हैं। इस प्रकार निकायको, यदि उसका निर्णय बहाल रहा तो, एक भी पैसा खर्च किये बिना ही भारतीयोंको वर्तमान बस्तियोंसे हटानेका सन्तोष प्राप्त हो जायेगा।

यह सारे-का-सारा, स्पष्ट रूपसे, १८८५ के कानून ३ के खिलाफ है; क्योंकि, कुछ हो, बस्तियोंके अन्दर तो ब्रिटिश भारतीयोंको भी वैसे ही अधिकार होंगे जैसे कि किसी साधारण व्यक्तिको। यह मामला सरकारके सामने पेश किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

३९. ट्रान्सवालके "बाजार"

अच्छा हो कि ब्रिटिश भारतीयोंके लन्दन-स्थित मित्र ११ मईको श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी तुलना ट्रान्सवालके अधिकारियोंके उस रुखके साथ करें जो उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारी परवानोंके बारेमें धारण कर रखा है। इन दूकानदारोंके बारेमें लॉर्ड मिलनर अपने खरीतेमें लिखते हैं:

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे।

इस वक्तव्यको पढ़कर स्वभावत: मनुष्यका यही खयाल हो सकता है कि जितने भी भारतीय इस समय परवाने प्राप्त करके उपनिवेशमें व्यापार कर रहे हैं, उन्हें छेड़ा नहीं जायेगा और उन्हें बस्तियोंमें जानेपर मजबूर नहीं किया जायेगा। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। कुछ बहुत थोड़े लोगोंको छोड़कर, जिनको लड़ाईके पहले व्यापारी परवाने मिल सके थे, शेष सबको, यद्यपि वे लड़ाईके पहले बगैर परवानोंके व्यापार करते थे, बस्तियोंमें जाना होगा मानो इन लोगोंका कोई निहित स्वार्थ है ही नहीं। इसलिए ट्रान्सवालकी वास्तविक जानकारीके अभावमें इंग्लैंडमें लोगोंको यह गलत खयाल हो सकता है कि ट्रान्सवालकी स्थिति चिन्ता करने लायक नहीं है और, यह कि, जिनके पास परवाने हैं उनको वर्षके अन्तमें छेड़ा नहीं जायेगा। इसलिए हम उन्हें सावधान कर देना चाहते हैं कि अगर उन्होंने अपने दिमागमें ऐसा कोई खयाल बना लिया हो तो उसे हटा दें। लॉर्ड मिलनरके खरीतेके उपर्युक्त उद्धरणके बावजूद वे निश्चयपूर्वक जान लें कि इस समय इन निर्दोष लोगोंको बचानेके लिए भगीरथ-प्रयत्नकी जरूरत है। अगर वह नहीं किया गया तो इस वर्षके अन्तमें सैकड़ों भारतीय व्यापारी बरबाद हो जायेंगे। लॉर्ड मिलनरके खरीते-पर हम जितना ही अधिक विचार करते हैं, उतना ही हमें लगता है कि वह गुमराह करनेवाला है। लॉर्ड महोदय कहते हैं:

> जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे, उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान, और युद्ध-विरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके

रस्टेनबर्ग *बाजार*के सम्बन्धमे स्वास्थ्य-निकायके एक सदस्यतक ने यह कहनेमे सकोच नही किया कि वहा व्यापार नही हो सकता, और तो भी लॉर्ड मिलनरने भी सेल्बर्नको लिखा है

> जैसा कि आप जानते है, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहे चुनी थीं, उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं, क्योकि शहरके व्यापार-केन्द्रोसे वे दूर पडती थी। बहुतसे शहरोमें जगहे चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारों*के लिए उपयुक्त जगहे चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोके जाने-आनेके लायक हो। मुझे विश्वास है कि वहां रहनेके लिए जानेवाले लोगोकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहां *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम इतनी ही अच्छी तरह वहां अपना व्यापार कर सकेंगे।

उक्त उद्धरण यह प्रकट नही करता कि लॉर्ड मिलनरके इरादे अच्छे नही है, बल्कि बताता है कि १८८५ के कानून ३ के प्रशासनका उत्तरदायित्व जिनपर है, वे उन इरादोपर अमल नही कर रहे है। वास्तवमे वे इस कानूनको ऐसे ढगसे अमलमे ला रहे है जो भारतीयोके अत्यन्त विरुद्ध है, क्योकि कानून सरकारको मजबूर नही करता कि वह *बाजारोंको* दूर-दराज जगहोमे चुने, बल्कि वह उसे अधिकार देता है कि वह एशियाइयोंको रहनेके लिए सडके, मुहल्ले तथा बस्तिया बताये। लॉर्ड मिलनरने स्वय पृथक सडके स्थापित करनेके बारेमे विचार किया था। उसी खरीतेमे उन्होने कहा है. "उन्हे उन सडको या *बाजारोंमें* जाना होगा, जो उस मतलबके लिए चुने गये है।"

हम देखते है कि लॉर्ड मिलनरका वक्तव्य, जहाँतक सम्भव हो सकता है, निश्चित है। इसलिए सरकारसे जो न्यूनतम अपेक्षा की जाती है, यह है कि लॉर्ड मिलनरकी घोषणाको पूर्ण रूपसे अमल मे लाये और ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके परवानोको नया करके उन्हे बरबाद होनेसे बचाये। यदि सरकार चाहे तो नये अर्जदारोके साथ भिन्न तरीकेसे बरताव किया जा सकता है।

भारतीय हितोंके प्रति प्रशासनकी उदासीनता, या वैरभावको सिद्ध करनेके लिए बारबर्टनके स्वास्थ्य-निकायकी कार्रवाईका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसा कि पिछले सप्ताह बताया जा चुका है, वहाँ वर्तमान बस्तीको नगरसे और दूरके स्थानपर हटानेका प्रयत्न किया गया था। उसके बाद सरकारने लिखा है कि, वर्तमान बस्तीके उपकरणोको ज्योका-त्यो रहने दिया जायेगा; क्योकि स्वास्थ्य-निकाय न तो उनको हटानेका हर्जाना दे सकता है, और न उसपर होनेवाले खर्च ही। किन्तु जो एक हाथसे दिया गया है, उसे दूसरे हाथसे छीन लिया गया है, क्योकि अभी-अभी स्थानिक मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोसे एक सूचना निकली है, जिसके जरिये वर्तमान पट्टेदारोकी पट्टेदारीपर नई और असाधारण शर्ते लगा दी गई है। ये शर्ते गैर-सरकारी पक्षोंके बीच भी नही सुनी गई थी। इसका मतलब यह है कि यदि वे नई बस्तियोमे नही जाना चाहते तो उन्हे अपनी जगहोमे उप-किरायेदारको और, यहातक कि, किसी अभ्यागतको भी रखनेका हक न होगा। यदि वे न माने तो उन्हे "बेदखलीका खतरा" उठाना होगा और, "नियत तारीखको किराया न देनेपर पट्टेदारी समाप्त कर दी जायेगी।" वर्तमान परवानेदारोंके सिवा न तो किसी अन्य व्यक्तिके नाम परवाने बदले जा सकते है और न किसी अन्य स्थानके लिए नये कराये जा सकते है। इस प्रकार निकायको, यदि उसका निर्णय बहाल रहा तो, एक भी पैसा खर्च किये बिना ही भारतीयोको वर्तमान बस्तियोसे हटानेका सन्तोष प्राप्त हो जायेगा।

यह सारे-का-सारा, स्पष्ट रूपसे, १८८५ के कानून ३ के खिलाफ है; क्योंकि, कुछ हो, बस्तियोंके अन्दर तो ब्रिटिश भारतीयोंको भी वैसे ही अधिकार होंगे जैसे कि किसी साधारण व्यक्तिको। यह मामला सरकारके सामने पेश किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

३९. ट्रान्सवालके "बाजार"

अच्छा हो कि ब्रिटिश भारतीयोंके लन्दन-स्थित मित्र ११ मईको श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी तुलना ट्रान्सवालके अधिकारियोंके उस रुखके साथ करें जो उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारी परवानोंके बारेमें धारण कर रखा है। इन दूकानदारोंके बारेमें लॉर्ड मिलनर अपने खरीतेमें लिखते हैं:

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे।

इस वक्तव्यको पढ़कर स्वभावतः मनुष्यका यही खयाल हो सकता है कि जितने भी भारतीय इस समय परवाने प्राप्त करके उपनिवेशमें व्यापार कर रहे हैं, उन्हें छेड़ा नहीं जायेगा और उन्हें बस्तियोंमें जानेपर मजबूर नहीं किया जायेगा। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। कुछ बहुत थोड़े लोगोंको छोड़कर, जिनको लड़ाईके पहले व्यापारी परवाने मिल सके थे, शेष सबको, यद्यपि वे लड़ाईके पहले बगैर परवानोंके व्यापार करते थे, बस्तियोंमें जाना होगा मानो इन लोगोंका कोई निहित स्वार्थ है ही नहीं। इसलिए ट्रान्सवालकी वास्तविक जानकारीके अभावमें इंग्लैंडमें लोगोंको यह गलत खयाल हो सकता है कि ट्रान्सवालकी स्थिति चिन्ता करने लायक नहीं है और, यह कि, जिनके पास परवाने हैं उनको वर्षके अन्तमें छेड़ा नहीं जायेगा। इसलिए हम उन्हें सावधान कर देना चाहते हैं कि अगर उन्होंने अपने दिमागमें ऐसा कोई खयाल बना लिया हो तो उसे हटा दें। लॉर्ड मिलनरके खरीतेके उपर्युक्त उद्धरणके बावजूद वे निश्चयपूर्वक जान लें कि इस समय इन निर्दोष लोगोंको बचानेके लिए भगीरथ-प्रयत्नकी जरूरत है। अगर वह नहीं किया गया तो इस वर्षके अन्तमें सैकड़ों भारतीय व्यापारी बरबाद हो जायेंगे। लॉर्ड मिलनरके खरीतेपर हम जितना ही अधिक विचार करते हैं, उतना ही हमें लगता है कि वह गुमराह करनेवाला है। लॉर्ड महोदय कहते हैं:

> जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे, उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान, और युद्ध-विरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके

> लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई है कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

लड़ाईसे पहले कुछ भारतीय परवानोंके बगैर व्यापार करते थे। दूसरे ऐसे भारतीय शरणार्थी भी हैं, जो लड़ाईसे पहले किन्हीं जिलोंमें व्यापार नहीं करते थे। परन्तु बादमें उन्हें वहां व्यापार करनेके लिए परवाने दे दिये गये हैं। उनको छेड़ा जायेगा या नहीं, इस विषयमें उपर्युक्त वक्तव्यमें एक शब्द भी नहीं आया है। लॉर्ड मिलनरके अनुसार प्रश्न एकमात्र नये आनेवालोंका है। अगर *बाजार*-सूचना केवल उन नये आनेवालों पर लागू होती, जिनके पास अस्थायी परवाने हैं, तो शायद बहुत कहने-सुननेकी बात नहीं होती। परन्तु यह लगभग निर्विवाद रूपसे सिद्ध किया जा सकता है कि सारे वर्तमान परवानेदार शरणार्थी हैं, जो लड़ाईसे पहले यहाँ रहते थे।" और फिर भी, इन सबको "उनके लिए निश्चित सड़कोंपर या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।" "सड़कों" शब्दपर ध्यान दीजिये। और उसे नीचे लिखे सन्दर्भके साथ पढ़िए।

लॉर्ड महोदय कहते हैं :

> जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारोंके* लिए जो जगहें चुनी थीं उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं, क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थीं। बहुतसे शहरोंमें जगहें चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारोंके* लिए उपयुक्त जगहें चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोंके जाने-आनेके लायक हों। मुझे विश्वास है कि वहां रहनेके लिए जानेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहां *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम, इतनी ही अच्छी तरह वहां अपना व्यापार कर सकेंगे।

इन शब्दोंको पढ़नेपर स्वभावतः किसी भी आदमीको यही खयाल हो सकता है कि इन *बाजारोंकी* जगहें सचमुच बड़ी अच्छी और पिछली गणराज्य-सरकारने जो चुनी थीं उनसे बिलकुल भिन्न प्रकारकी होंगी। और यह कि, यह सड़कोंकी अदला-बदली मात्र है। परन्तु जिन्हें ट्रान्सवालके हालातका पता नहीं है उन्हें हम बता दें कि वहाँ इन *बाजारोंका* चुनाव ऊपर लिखी भावनासे नहीं किया गया है। किसी भी मामलेमें कोई सड़क भारतीयोंके व्यापार या निवासके लिए निश्चित नहीं की गई है। प्रायः सभी बस्तियाँ शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे जितनी भी अधिक दूर रखी जा सकती थी, उतनी दूर रखी गई है। हम अन्यत्र वे प्रतिवेदन प्रकाशित कर रहे हैं जो हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे गये हैं। प्रतिवेदन ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघकी प्रेरणासे इस उपनिवेशके अपने पेशेमें अच्छी स्थितिके सज्जनों द्वारा तैयार किये गये हैं। ये सब सज्जन एक रायसे कह रहे हैं कि चुनी हुई जगहें व्यापारके लिए किसी कामकी नहीं हैं। लॉर्ड मिलनरने यह तो खुद ही स्वीकार किया है कि पिछली हुकूमतने जो जगहें चुनी थीं वे व्यापारके लिए अत्यन्त अनुपयुक्त थीं। किन्तु हम पूर्ण निश्चयके साथ कहते हैं कि वर्तमान सरकार द्वारा चुनी गई जगहें प्रायः उनसे दूनी खराब हैं। पिछली सरकार द्वारा चुनी हुई बस्तियोंकी जगहोंको और भी दूर ले जानेका प्रयत्न किया गया है और एक दो बस्तियोंको छोड़ कर, जिनकी जगहें पुरानी थीं शेष सब उन्हीं दूरकी जगहोंमें कायम रखी गई है। आज तो प्रायः ये सारे स्थान निरे रेगिस्तान हैं, जहाँ सफाई और पानीका कोई प्रबन्ध नहीं है। मकान भी नहीं बने हैं। ट्रान्सवालसे ५,००० मीलकी दूरीपर बैठे हुए लोगोंको शायद हमारी बातोंपर विश्वास न हो, परन्तु अक्षरशः सत्य तो यह है कि जिन लोगोंको इन *बाजारोंमें* जाकर बसना है उन्हें

वास्तवमें एक नये नगरकी स्थापना करनी होगी। उन्हें जमीनोंके पट्टे लेने होंगे, अपने खर्चेसे उनपर मकानात खड़े करने होंगे और अगर उनमें क्षमता हो, नये सिरेसे व्यापारको जमाना होगा। 'अपने खर्चेसे' शब्दपर हम इसलिए जोर दे रहे हैं कि इन वाड़ोंके लिए होड़ उन्हीं लोगोंके बीच होगी जिन्हें अपने व्यापार और निवासके लिए वहाँ मकान बनाने हैं। इसलिए स्पष्ट है कि छोटे व्यापारी वहाँ अच्छे मकान बनानेके लिए ३०० से ४०० पौंड तक नहीं जुटा सकेंगे। *बाजारोंकी* जगहोंका निश्चय अभी-अभी हुआ है। वहाँपर उनको तुरन्त मकान बनाना शुरू कर देना चाहिए और पहली जनवरीसे पहले उसे पूरा करके इस तारीखको अपने नये निवास-पर रहनेके लिए चले जाना चाहिए। लॉर्ड महोदय फर्माते हैं कि "*बाजार* समाजके सब वर्गोंके लोगोंके आने-जाने लायक होंगे।" अगर इन शब्दोंका अर्थ यह हो कि इन *बाजारोंपर* पीला झंडा और आस-पास काँटेदार तार नहीं लगाये जायेंगे तो उनका कहना जरूर सही होगा। परन्तु अगर वे इन शब्दोंके द्वारा यह कहना चाहते हों कि सभी वर्गोंके लोग वहाँपर सौदा खरीदनेके लिए आसानीसे जा सकेंगे, तो हमें फिर कहना होगा कि यह एकदम गलत है। शहरसे बाहर, व्यापार-केन्द्रसे एक मीलके फासलेपर, रास्तेसे हटकर भारतीय *बाजारोंमें* सौदा खरीदनेके लिए जानेसे लोग इनकार करेंगे। और फिर भी लॉर्ड महोदय आशा रखते हैं कि भार-तीयोंका व्यापार जिस प्रकार चल रहा है, अगर उससे अधिक अच्छी तरह नहीं तो वैसा तो जरूर चलता ही रहेगा। परिस्थितिकी यह हृदयहीनता वर्णनसे परे है। अभी तो केवल इसी आशाके सहारे लोग टिके हैं कि वर्ष समाप्त होनेसे पहले सरकारसे कुछ राहत मिलेगी और वर्तमान परवानेदारोंको छेड़ा नहीं जायेगा। खरीतेके बारेमें और भी कुछ कहना शेष है। इंग्लैंडसे और भारतसे आये समाचारपत्रोंमें हमने देखा है कि खरीतेका यह प्रभाव पड़ा है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और मुख्य एशियाइयोंपर *बाजार*-सूचनाका असर नहीं पड़ेगा? क्योंकि लॉर्ड मिलनर कहते हैं:

> **प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यतायें नहीं लगाना चाहते। . . . इस विषयमें पिछली हुकूमतने जो कानून बना दिया था वर्तमान सरकार फिलहाल उसे कायम रख रही है। परन्तु तीन बहुत महत्त्वपूर्ण बातोंमें वह एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखलाई थी।**

लॉर्ड महोदयने इसमें वर्तमान कालका प्रयोग किया है, जो ध्यान देनेकी बात है। इन तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें से एक तो उच्च वर्गके एशियाइयोंकी सभी विशेष कानूनोंसे मुक्ति है। भारत और इंग्लैंडके अपने पाठकोंको हम पुनः विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस मुक्तिके सिद्धान्तको भी मान्यता नहीं मिली है। फिर, वह मुक्ति कानूनका भाग नहीं है। और केवल निवाससे सम्बन्ध रखती है। और अगर कभी वह रियायत मिलेगी भी तो भविष्यमें किसी दिन, जिसका पता नहीं है। तबतक प्रतिष्ठित भारतीयों और अन्य सबका भाग्य एक जैसा है और उन्हें बगैर किसी रू-रियायतके बस्तियोंमें जाकर बसने और वहीं — केवल वहीं — व्यापार करनेके लिए मजबूर किया जायेगा। वास्तविक स्थिति जिसे हम जानते हैं और बता रहे हैं उसमें और लॉर्ड मिलनर द्वारा खींची गई एशियाइयोंकी स्थितिकी तसवीरमें यह महान अन्तर है। एक तसवीर लोगोंको वस्तुस्थितिसे अन्धा बना सकती है। दूसरी तसवीर वस्तुस्थितिका सही-सही चित्रण है, और हम विचारपूर्वक कहते हैं कि इसमें तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की गई है। हम जो बातें खुद जानते हैं और जिनका ब्योरा हमको मिला है उसीके आधारपर हम यह कह रहे हैं। परिस्थिति इतनी नाजुक, और अब्रिटिश है कि हम केवल यह आशा करते हैं कि शायद इन आखिरी घड़ीमें भी उसमें कोई परिवर्तनकी सूरत निकल आये, और नवीन

वर्ष भारतीय व्यापारियोंके लिए इतनी उदासी लेकर न अवतरित हो, जितना कि इस समय वह प्रतीत हो रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

४०. भारतके पितामह

भारतकी ताजा डाकमें आये अखबारोंमें श्री दादाभाई नौरोजीकी[1] साल-गिरहपर बहुत लम्बे-लम्बे लेख है। निश्चय ही श्री दादाभाईका भारतमें वही स्थान है जो इंग्लैंडमें श्री ग्लैड्स्टनका था। उन्होंने अपने ७९वें वर्षमें प्रवेश किया है और उनकी यह वर्षगाठ सारे भारतमें जैसे मनाई जानी चाहिए थी उसी तरह मनाई गई है। लाखों-करोड़ों मनुष्योंने परमात्मासे प्रार्थनाएँ की कि वह उस वृद्ध पुरुषपर अपने आशीर्वादकी वृष्टि करे, और उसे चिरायु करे। हम भी उन करोड़ोंकी प्रार्थनामें शामिल हैं। हिन्दूकुशसे लेकर कन्याकुमारीतक और कलकत्तासे लेकर करांचीतक श्री दादाभाईके प्रति जनताका जितना प्रेम है उतना और किसी जीवित व्यक्तिके प्रति नही है। उन्होंने अपना सारा जीवन अपनी जन्मभूमिकी सेवामें अर्पित कर दिया है और यद्यपि वे पारसी है, फिर भी सारे देशके हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और अन्य सब उनके प्रति उतना ही आदर और श्रद्धा रखते है जितना कि पारसी खुद। भारतकी सेवाके लिए उन्होंने अपने सुख-वैभवको तिलाजलि दे दी और एक निर्वासितका जीवन स्वीकार किया। उन्होंने तो अपना धन भी इसी काममें लगा दिया है। उनकी देशभक्ति शुद्धतम है और उसकी प्रेरणाका एकमात्र स्रोत मातृभूमिके प्रति कर्तव्यकी भावना ही है। यही नहीं, उनका व्यक्तिगत चरित्र पूर्णतः आदर्श रहा है, जिसका उठती पीढीको हर दृष्टिसे अनुकरण करना चाहिए। जहाँतक हमारा खयाल है, उनके सारे राजनीतिक कार्योंकी बुनियादमें एक प्रबल धार्मिक उत्साह रहा है, जिसे कोई मिटा नही सकता। जो देश दादाभाई जैसे पुरुषको जन्म दे सकता है, उसका भविष्य निःसन्देह अत्यन्त उज्ज्वल है। इंग्लैंडकी लोकसभाके लिए एक ब्रिटिश क्षेत्रसे चुने जानेवाले वे पहले भारतीय हैं। अपने इस चुनावके बाद जब वे भारत आये तो उनका स्वागत बड़ी धूमधामसे किया गया। बम्बईसे लाहौरकी उनकी इस विजय-यात्राको जिन्होंने देखा, वे कहते हैं कि उनके स्वागतोत्सवमें जो उत्साह दिखाई दिया, उसकी बराबरी अगर किसी उत्साहसे हो सकती है तो वह चिरस्मरणीय लॉर्ड रिपनके उस समयके सत्कारका उत्साह ही था, जब वे अपने वाइसरायके पदसे निवृत्त हुए थे। ऐसे पुरुषका सम्मान करके निश्चय ही राष्ट्रने अपना ही सम्मान किया है। श्री दादाभाईका जीवन अपार कठिनाइयोंसे भरा पड़ा है (जैसा कि हमारे बहुत-से पाठकोंको ज्ञात है); परन्तु उन सबके बावजूद वे अनुपम श्रद्धा और निःस्वार्थ भावसे अपने लक्ष्यपर डटे रहे हैं। देश और जातिकी सेवामें जो धीरज उन्होंने बताया है, दक्षिण आफ्रिकामें हमारे लिए वह एक सबक लेनेकी वस्तु है। राजनीतिक संघर्षोंमें विजय कभी एक दिनमें नहीं मिल जाती। जो इनमें पड़ते हैं उन्हें अक्सर निराशाओंका ही सामना करना पड़ता है। दक्षिण आफ्रिकामें हम इसका अनुभव कर ही रहे हैं। फिर अगर हम यह स्मरण कर लें कि श्री दादाभाई गत चालीस वर्ष या इससे भी अधिक समयसे इस

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

संघर्षमें पड़े हुए हैं तो उससे हमें बड़ा संतोप मिलेगा। क्योंकि, हमारी लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई है और, फिर, हम पर जो मुसीवतें आई हैं उनमें तो कहीं कहीं आशाकी किरणें भी दिखाई दे जाती हैं। अपने तमाम कामकाजके बीच श्री दादाभाई दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर भी बरावर ध्यान देते रहे हैं और वे हमारे पक्षके अत्यन्त लगन-भरे संरक्षकोंमें से हैं। परमात्मासे हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है कि वह श्री दादाभाईको शरीर और मनसे पूर्णतः स्वस्थ रखे, ताकि वे चिरायु होकर अपनी मातृभूमिकी गौरवमयी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०३

४१. लॉर्ड हैरिस और ब्रिटिश भारतीय

भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजने और इस तरह उसकी मदद करनेसे तबतकके लिए इनकार कर दिया है, जबतक ट्रान्सवाल-सरकार वहाँकी भारतीय आवादीकी शिकायतोंको दूर करनेके लिए तैयार नहीं होती। हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरको* प्राप्त सामुद्रिक तारके अनुसार, कहा जाता है, वम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिसने दक्षिण आफ्रिकाकी संयुक्त स्वर्ण-क्षेत्रों (कान्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्षकी हैसियतसे ट्रान्सवालके मजदूरों-सम्बन्धी प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करते हुए भारत-सरकारके इस रुखपर असन्तोष प्रकट किया है। लॉर्ड हैरिस बड़े प्रतिष्ठित पुरुष हैं; परन्तु उनके उद्गारोंसे, अगर वे सही हैं, प्रकट होता है कि स्वार्थ मनुष्यको कितना अन्धा बना देता है। लॉर्ड महोदय अब वम्बईके गवर्नर तो रहे नहीं; इसलिए भारतके दृष्टिकोणसे इस प्रश्नपर विचार करनेकी उन्हें जरूरत ही नहीं मालूम होती। वे एक बहुत बड़ी सोनेकी कम्पनीके पूंजीदाता और अध्यक्ष हैं और उसके हिस्सेदारोंको मुनाफा दिलाना उनकी जिम्मेवारी है। इसलिए जब वे देखते हैं कि उनकी कम्पनी मजदूरोंकी कमीसे कठिनाईमें फँस गई है, तब भारत-सरकारके इस रुखपर उन्हें रोप आता है कि वह अपने आश्रितोंकी रक्षा करनेका प्रयास करती है। उनकी कम्पनीको मुनाफा न मिलनेकी संभावना उनकी नजरोंमें सबसे बड़ी चीज है। ट्रान्सवालके भारतीयोंपर लगी निर्योग्यताएँ और गिरमिटिया मजदूरोंके लिए प्रस्तावित शर्तें कितनी ही पक्षपात-भरी क्यों न हों वे उसकी तुलनामें कुछ नहीं हैं। इस घटनासे यह भी प्रकट होता है कि इंग्लैंडमें ब्रिटिश भारतीयोंके जो मित्र और संरक्षक हैं उनको कितनी सावधानीसे ब्रिटिश भारतीयोंके हितोंपर निगाह रखनेकी जरूरत है; परन्तु हम लॉर्ड महोदयसे कहेंगे कि वे अपने पिछले जीवनपर निगाह डालें जब वे वम्बईके गवर्नर थे। हम उनसे अपने देशभाइयोंकी तरफसे यह भी अपील करेंगे कि वे एक सच्चे खिलाड़ीके भावसे उनका खयाल जरूर रखें। पिछली बार इस उपनिवेशसे गुजरते समय भारतीयोंके प्रतिनिधियोंसे डर्बनमें उन्होंने यह कहा भी था कि वे अपने हृदयमें भारतीयोंके लिए सदा प्रेमपूर्ण स्थान बनाये रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०३

४२. राष्ट्रीय कांग्रेस और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

इंडियन ओपिनियनके इस अंकके भारत पहुंचते-पहुंचते राष्ट्रीय कांग्रेसके आगामी अधिवेशनकी तैयारियाँ बहुत आगे बढ़ चुकेंगी। इस अधिवेशनके मनोनीत सभापति श्री लालमोहन घोष[1] हैं। हमें जरा भी संदेह नही कि देशके प्रति उनकी दीर्घकालीन और सुयोग्य सेवाओं एवं अद्वितीय वक्तृत्व-कलासे इस अधिवेशनमें विशाल जन-समूह आकर्षित होगा। श्री लालमोहन घोष सजे हुए राजनीतिज्ञ हैं और अपने देशभाइयों तथा सरकारमें सहानुभूतिका भाव जागृत करना भली-भाँति जानते हैं। वे इंग्लैंडकी अनेक सभाओंमें श्रोताओंपर अपना सिक्का बैठा चुके हैं और हमें जरा भी शक नही कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रश्नको वे बहुत ही योग्यताके साथ सँभालेंगे। इस महान सभाके कार्यकी आवश्यक मर्यादाओंका हमें पूरा-पूरा खयाल है। अभी तो यह सरकारके लिए एक स्वेच्छा-संगठित सलाहकार परिषद मात्र है; परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, और उसका आकार, बल, ज्ञान और मानसिक सन्तुलन अबतकके ही समान बढ़ता जायेगा, वह जो भी विचार सरकारके सामने रखेगी, सरकार उसका आदर किये बिना न रह सकेगी। उसपर उसे ध्यान देना ही पड़ेगा। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका प्रश्न उन थोड़े-से प्रश्नोंमें से एक है जो दलगत राजनीतिसे बिलकुल अलग हैं और जिनके विषयमें कांग्रेस तथा शक्तिशाली आंग्ल-भारतीय दलके बीच किसी प्रकारका मत-भेद नही है। अतः उसके लिए दोनों पक्ष कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर काम कर सकते हैं और एक ही मंचसे सरकारसे सर्व-सम्मत अपील भी कर सकते हैं। इसके अलावा, इस प्रश्न-विशेषके बारेमें सरकारकी खुशामद करनेकी भी जरूरत नही है, क्योंकि लॉर्ड कर्जनने अनेक बार कहा है कि वे इस प्रश्नपर *उपनिवेशोंके रुखको बहुत अधिक नापसन्द करते हैं।* इसलिए *भारतमें तो केवल इतना ही* आवश्यक है कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नमें लॉर्ड महोदयके हाथोंको मजबूत करनेके लिए लगातार आन्दोलन किया जाता रहे। हमें आशा है कि इस महान देशभक्तके नेतृत्वमें कांग्रेस हम दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंको नही भुलायेगी, यद्यपि भारतके करोड़ों लोगोंकी तुलनामें हम बहुत थोड़े हैं। हमारी निर्योग्यताओंके इस प्रश्नकी तहमें एक महान साम्राज्य-सम्बन्धी सिद्धान्त है, जिसकी सम्भावनाओंका ठीक-ठीक अन्दाजा लगाना भी बड़ा कठिन है। बहुतसे ख्यातनामा आंग्ल-भारतीयोंने भारतीयोंको उनकी साहसिकताकी कमी और मानसिक संकीर्णतापर कोसा है, क्योंकि वे काफी बड़ी संख्यामें, अपने देशको छोड़कर किस्मत आजमाईके लिए कहीं नही जाते हैं। अब, यह बिलकुल स्पष्ट हो गया है कि भारतसे बाहर जानेपर उनको ब्रिटिश प्रजाजनोंका पूरा दर्जा नही मिल सकता। दूसरे देशोंको उनके मुक्त रूपसे प्रवास करनेके मार्गमें यह एक कठिन बाधा है। किन्तु जैसे-जैसे देशमें पाश्चात्य शिक्षाका प्रसार होगा, साहसी भारतीय प्रवासियोंकी शक्तिको बाहरकी ओर प्रवाहित करनेका मार्ग खोलना ही होगा। इन प्रवासियोंका क्या हो, यह प्रश्न छोटा या महत्त्वहीन नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०३

१. लालमोहन घोष (१८४९–१९०९) वकील, लेखक और भारतको स्वराज देनेके प्रबल समर्थक।

४३. अत्याचारका इतिहास

कई वर्षोंसे और लड़ाईके वहुत पहलेसे, ब्रिटिश भारतीय वारवर्टनकी वस्तीमें रह रहे हैं। उस वस्तीकी स्थापना पिछली सरकारने की थी। वहाँके स्वास्थ्य-निकायने *बाजार*-सूचनासे प्रोत्साहित होकर अब किसी-न-किसी वहाने ब्रिटिश भारतीयोंको उस वस्तीसे हटाकर शहरसे और भी दूर एक स्थानमें भेजनेका निश्चय किया है। इसके लिए स्वास्थ्य-निकायको सरकारकी स्वीकृति लेनी अनिवार्य थी, जो उसे तुरन्त दे दी गई। परन्तु इस शर्तपर कि, वर्तमान वस्तीको स्वास्थ्य-निकाय अपने खर्चेसे नई जगहपर ले जायेगा या केवल मकानोंकी कीमतका वाजिव मुआवजा मालिकोंको दे देगा। इसके अनुसार काविज लोगोंको सूचनाएँ भी दे दी गईं और वे परिस्थितिको समझ कर पूरे निश्चयके साथ काममें लग गये। उन्होंने सरकारसे दरखास्त की कि उन्हें वहाँसे हटाया न जाये। कई अर्जियाँ गुजारीं। इसपर जाँच की गई। अर्जदारोंके विरोधके आधार ये थे: पहला यह कि, वे वर्तमान वस्तीमें वहुत लम्बे अर्सेसे रह रहे हैं और अपने व्यापार-व्यवसायमें एक साख वना चुके हैं। दूसरा यह कि, ऐसे लोगोंके लिए वहाँसे हटने और नई वस्तीमें जानेसे वहुत वड़ा नुकसान होगा। तीसरा यह कि, नई वस्ती ऐसी जगह नहीं है जहाँ वे कुछ भी व्यापार कर सकें। फिर वह वर्तमान वस्तीकी अपेक्षा शहरसे और भी ज्यादा दूर है और ऐसी जगह है जो स्वास्थ्यप्रद नहीं है। इसके अलावा उन्होंने इस प्रश्नपर एक विशेष प्रतिवेदन भी तैयार कराया। शहरके प्रसिद्ध सर्वेक्षक श्री वर्टियरने उसमें लिखा कि शहरके चौक वाजारसे छोटेसे-छोटे रास्तेसे भी वस्तीकी नई जगह १ मील और ९३० गजकी दूरीपर है।

> वस्तीकी जमीन उसी किस्मके काले पत्थरकी है, जैसी कि पड़ोसके अस्पतालकी छोटी टेकड़ीकी है और वास्तवमें वस्तीका एक हिस्सा तो वस्तुतः उस टेकड़ीके ढालपर ही पड़ता है। इस वातको ध्यानमें रखते हुए, यह भी गम्भीर रूपसे विचारणीय है कि इस जमीनमें दीमक बहुत हैं, जिन्होंने उक्त पहाड़ीपर अस्पतालकी इमारतोंको बहुत नुकसान पहुँचाया है।

अपने वर्तमान स्थानसे वस्तीको हटाना वांछनीय है या नहीं, इस प्रश्नकी विस्तारके साथ चर्चा करते हुए श्री वर्टियरने स्पष्ट रूपसे वताया है कि यह वांछनीय नहीं है। वे लिखते हैं:

> वस्तीके वर्तमान स्थानमें, जो वारवर्टनसे काप घाटीको जानेवाले मुख्य मार्गके बिलकुल नजदीक है, कुछ हदतक व्यापारकी अनुकूलता है। फासला भी इतना है कि शहरके साथ भी व्यापार-व्यवसाय चल सकता है। किन्तु नया स्थान तो मुख्य मार्गसे दूर एक कोनेमें सिरेपर पड़ेगा। शहरका फासला भी वढ़ जाता है। इस कारण व्यापार-व्यवसायमें कठिनाइयां और भी वढ़ जायेंगी। फिर बस्ती और उपनगरोंके बीच मुसाफिरोंके लिए सरकारी वसोंकी व्यवस्था भी नहीं है। अस्पतालकी टेकड़ीके पूर्वमें होकर जो भी रास्ता नई वस्तीमें जायेगा वह स्वास्थ्य-निकायकी जमीनसे एक सौ गजके अन्दर-अन्दर ही पड़ेगा, जहां कि खच्चरोंका अस्तवल है, पाखाने और कूड़े-करकटकी गाड़ियां खड़ी की जाती हैं और बाल्टियां तारकोल लगाकर जमा रखी जाती हैं।

इस सबका सरकारने जवाब भेजा है कि वह नये स्थानको आरोग्यके लिए हानिकर नहीं मानती। उसने इस बातको टाल ही दिया है कि बस्तीको हटाना नितान्त अनावश्यक है। फिर भी, वह कहती है कि चूंकि स्थानिक निकाय मुआवजा देनेके लिए अथवा बस्तीको हटानेका खर्च उठानेके लिए भी तैयार नहीं है, इसलिए वहां रहनेवालोंको अभी छेड़ा नहीं जायेगा। किन्तु अब उनपर नई शर्तें लादी जा रही हैं, जो अत्यन्त सन्तापकारक हैं। अगर ये शर्तें न लादी जातीं तो आज ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति है, उसे देखते हुए, उसे समझौता ठीक कहा जा सकता था। परन्तु बस्तीके निवासियोंको वर्तमान बस्तीमें रहनेकी इजाजत जिन शर्तोंपर दी जायेगी उनको देखते हुए तो यह समझौता बिल्कुल निकम्मा बन गया है। जो चीज एक हाथसे दी गई है, वह दूसरे हाथसे छीन ली गई है। इन गरीबोंको भेजी गई नई सूचनामें लिखा है:

> **बस्तीमें केवल वर्तमान परवानेदारोंको और उनकी स्त्रियों तथा बच्चोंको ही रहनेकी छूट होगी। निश्चित तारीखपर वाजिब किराया अदा नहीं किया गया तो उनकी किरायेदारी खत्म कर दी जायेगी। कोई परवानेदार अपने बाड़ेमें उप-किरायेदार न रखेगा और अन्य किसीको नहीं रहने देगा, अन्यथा वह बेदखल कर दिया जायेगा। इसी प्रकार वर्तमान बस्तीके लिए नये परवाने जारी नहीं होंगे और न दिये हुए परवाने दूसरे किसीके नामपर बदले जायेंगे।**

ये शर्तें अत्यन्त सन्तापकारी हैं। किरायेदार दुर्भाग्यवश हम भी हैं, परन्तु हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे मकान मालिकने ऐसी कोई शर्तें नहीं लगाई हैं और अन्य किसी पट्टेमें भी हमने इस तरहकी शर्तें नहीं देखी हैं। इससे तो कहीं अच्छा होता, अगर निकाय सीधा कह देता कि "हम आपको कोई मुआवजा नहीं देना चाहते। फिर भी, आपको नये स्थानपर जाना ही होगा।" परन्तु लोगोंको इस तरह टेढ़े-मेढ़े तरीकोंसे उनके स्थानोंसे खदेड़नेकी नीति उसके निर्माताओंके लिए प्रतिष्ठाकी सूचक नहीं। यह प्रत्यक्ष है कि बारबर्टनका स्वास्थ्य-निकाय ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्धित कानूनकी कोई परवाह नहीं करना चाहता। वह जगह, जहाँ ब्रिटिश भारतीय रहते हैं, सन् १८८५ के कानून ३ के अनुसार या तो पृथक बस्ती है, या नहीं है। अगर वह पृथक बस्ती है, और कानूनको समझनेमें हम कोई भूल नहीं करते, तो हर ब्रिटिश भारतीयको परवानेकी फीस भर देनेपर न केवल वहाँ रहनेका, बल्कि उप-किरायेदारको, और निश्चित रूपसे मेहमानोंको भी, अपने यहाँ रखनेका तथा बस्तीके किसी भी भागमें, जिसमें वह चाहे, व्यापार करनेका भी अधिकार अवश्य है। परन्तु जैसा कि पाठकोंने देख लिया होगा, नई शर्तोंके अनुसार निकाय भारतीयोंको अपने यहाँ मेहमान रखनेसे भी मना करेगा और अगर वे रखेंगे तो उनको "बस्तीसे निकाल देगा।" हमें ज्ञात हुआ है कि मामला सरकारके विचाराधीन है। चिन्ताके साथ हम सरकारके निर्णयकी प्रतीक्षा करेंगे। हम जानना चाहेंगे, बारबर्टनका स्वास्थ्य-निकाय जो-कुछ करना चाहता है, उसके बचावमें लॉर्ड मिलनर क्या कहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०३

४४. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २३, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी,
वाशिंगटन हाऊस,
७२, एनर्ले पार्क,
लंदन, एस० ई०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

मैंने गत सप्ताह[1] ट्रान्सवालके भारतीय व्यापारियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें आपको लिखा था और सुझाया था कि संभव हो तो श्री ब्रॉड्रिक या श्री लिटिलटनसे निजी मुलाकात माँगी जाये। इस मामलेमें जितना सोचता हूँ उतना ही मुझे विश्वास होता है कि ऐसी कोई कार्रवाई करना नितान्त आवश्यक है। इस मुलाकातमें बातचीत केवल अत्यावश्यक प्रश्न — अर्थात्, वर्तमान परवानेदारोंके अधिकारोंतक सीमित रखी जाये। *इंडियन ओपिनियन*के इसी अंकमें आप *बाजारों*के लिए प्रस्तावित स्थानोंके बारेमें जिम्मेदार लोगोंके प्रतिवेदन देखेंगे। अधिकांश मामलोंमें सरकारने उत्तर दिया है कि ये प्रतिवेदन गलत हैं और यह कि सम्बन्धित शहरोंमें केवल ये ही स्थान उपलब्ध हैं। मुझे पूर्ण विनम्रतासे यह कहनेमें कोई हिचक नहीं है कि ये स्थान व्यापारके लिए बिलकुल बेकार हैं और, सच कहा जाये तो, सरकार इस विषयमें विवादमें नहीं पड़ना चाहती, बल्कि इस तर्कका आश्रय लेती है कि, कोई अन्य स्थान उपलब्ध ही नहीं है। कुछ भी हो, जो इस समय बस्तियोंके बाहर व्यापार कर रहे हैं, उनके लिए वहाँ हटाये जानेका बिलकुल प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। मैं लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी चर्चा कर ही चुका हूँ। उससे प्रकट हो जायेगा कि कमसे-कम उन्होंने इन लोगोंको, जो शरणार्थी हैं, हटानेकी कभी कल्पना न की थी। श्री चेम्बरलेनने गत जनवरीमें शिष्टमण्डलको जो वचन दिया था, उसका आशय भी यही है। ब्रिटिश भारतीयोंके सामान्य दर्जेके प्रश्नके अतिरिक्त मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उपनिवेश-कार्यालय और भारत-कार्यालय पर्याप्त दबाव डालें तो इन गरीब लोगोंको न्याय मिलनेकी पूरी संभावना है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५८) से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ," नवम्बर १६, १९०३।

४५. पत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

पी० ओ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २५, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

ब्रिटिश भारतीयोंके पासके व्यापारिक परवानोंसे सम्बन्धित मेरे तारीख १८ के पत्रके उत्तरमें आपका तारीख २४ का पत्र, क्रमांक ९७/२, मिला।

जोहानिसबर्गमें परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधिमण्डलकी भेंटकी तारीखके बादसे अबतक उपनिवेश-सचिवकी ओरसे उस प्रश्नसे सम्बन्धित कोई पत्र नहीं आया है।

परमश्रेष्ठने प्रतिनिधिमण्डलसे कृपापूर्वक ऐसा कहा था कि इस मामले पर किसी पासकी तारीखपर कार्यकारिणी परिषदकी बैठकमें विचार किया जायेगा और तब संघको उत्तर भेजा जायेगा।

जानना चाहता हूँ कि क्या संघको उक्त उत्तर मिलेगा?

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज: एल० जी० ९७/२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

४६. इंग्लैंड और रूस

एक तुलना

श्री स्क्राइनने ७ जुलाई, १९०३ को इम्पीरियल इन्स्टिटयूटमें "इंग्लैंड और रूस द्वारा एशियाइयोंपर शासन" विषयपर एक मनोरंजक भाषण दिया था, जिसे ईस्ट ऐंड वेस्टने अपने अक्टूबरके अंकमें छापा है। इस विषयमें हम दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंको बौद्धिक ही नहीं, बल्कि उससे कुछ अधिक दिलचस्पी है। अनन्त एशिया और उसकी हजारों जातियोंपर, जिनमें बहुत-सी बातोंमें जमीन-आसमानका अन्तर होते हुए भी, कुछ ऐसी समानता है, जिसकी व्याख्या नहीं हो सकती, इन दोनोंमें से किसी एकके शासनकी सफलता या असफलताके बारेमें अन्तिम निर्णय देना राष्ट्रोंके इतिहासमें अभी बहुत जल्दी करना होगा। वक्ताने कहा था:

> रूसी सम्राट् — ज़ार — के कई करोड़ बौद्ध और मूर्ति-पूजक प्रजाजन हैं और २०,७०,००,००० हिन्दू भारत-सम्राट्की सत्ता स्वीकार करते हैं, किन्तु पूर्वमें केवल इस्लाम इन दोनोंके अधिकारियोंके सम्मुख एक जैसी समस्याएँ प्रस्तुत करता है। . . . ब्रिटिश भारतमें नबीके कमसे-कम ५,३८,०४,००० अनुयायी हैं। सन् १८९७ की जनगणनाके अनुसार, रूसके महान्, गौर वर्णीय ज़ारके शासनाधीन मुसलमानोंकी संख्या १,८७,०७,००० है। . . . इसके विपरीत, मैं कह दूं कि, तुर्कीमें खलीफाके प्रजाजन, जो उनका धर्म मानते हैं, १,८५,००,००० से कम हैं।

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि श्री स्क्राइनने अपनी तुलनाकी सुनिश्चित मर्यादाएँ बना ली हैं, इसलिए यद्यपि उनके भाषणका व्यापक अर्थ लगानेकी गुंजाइश नहीं है, फिर भी वह पठनीय है। भारतीय शासनको कहीं "उदार निरंकुशता"का नाम दिया गया है। यद्यपि इन शब्दोंमें परस्पर विरोधाभास है; किन्तु कदाचित् वे भारतमें अंग्रेजी राजकी अवस्थाको बहुत कुछ यथार्थ रूपमें व्यक्त करते हैं। जबतक अंग्रेजी राजकी प्रभुतामें हस्तक्षेप नहीं होता, तबतक भारतके लोगोंके प्राचीन कालसे चले आते हुए रीति-रिवाजोंका लिहाज किया जाता है और उन्हें अछूता रहने दिया जाता है। उनको अपने देशके मामलोंमें न्यूनाधिक मोटे तरीकेका स्वशासन प्राप्त है। सन् १८५७[1] की ऐतिहासिक घोषणा और उसके बाद एकके बाद दूसरे वाइसरायोंकी घोषणाएँ बताती हैं कि उनके पीछे जाति, रंग और धर्मके सब भेदभावोंको समाप्त करने और साम्राज्यके समस्त प्रजाजनोंको समान अधिकार देनेका इरादा है। इसलिए यदि स्वयं भारतमें इन घोषणाओंपर पूरा अमल नहीं हो पाता तो इसका कारण यह नहीं कि अधिकारी उन्हें पूरा करना नहीं चाहते, बल्कि यह है कि व्यवहारमें ब्रिटिश शासनकी सर्वोच्चताके सम्बन्धमें अनुचित भय या शासितोंके सम्बन्धमें अनिश्चित सन्देहसे उनके हाथ रुकते हैं। इसलिए अस्थायी स्खलनोंके बावजूद यह आशा करनेके लिए पर्याप्त आधार है कि ज्यों-ज्यों लोगोंकी स्वाभाविक राजभक्तिकी परीक्षाके अवसर आते जायेंगे त्यों-त्यों सन्देह या भय धीरे-धीरे विलुप्त होते जायेंगे और उनका स्थान विश्वास लेता जायेगा। दक्षिण आफ्रिकाकी अभी हालकी लड़ाई और चीनके अभियानसे भारतीय शासकोंके मनपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है और भारतीय दृष्टिकोणसे

१. प्रत्यक्षतः १८५८ के बजाय भूलसे लिखित।

४७. "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और हम

ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें हमारे विचारोंकी तरफ हमारा सहयोगी बराबर ध्यान देता रहता है। इसे हम अपना सम्मान ही समझते हैं। हम यह भी मानते हैं कि भारतीयोंकी बहुत-सी कठिनाइयोंकी जड़में गलतफहमियाँ हैं और समझके साथ विचार-विनिमयसे गलतफहमियाँ दूर भी हो सकती हैं। इसलिए हमारे सहयोगीने गत १८ तारीखके अंकमें जो लिखा है उसका जवाब देते हुए हम उस प्रश्नपर फिर वापस आते हैं। सहयोगीने लिखा है कि पीटर्सबर्ग शहरमें लड़ाईसे पहलेकी अपेक्षा भारतीय परवानेदारोंकी संख्या अब कुछ बढ़ गई है। हम इसे स्वीकार करते हैं, परन्तु जहाँतक स्पेलोनकेन जिलेसे सम्बन्ध है, हम अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहते हैं कि वहाँ परवानोंकी संख्यामें बहुत ही कम वृद्धि हुई है। उस जिलेमें जो भी भारतीय दूकानदार इस समय व्यापार कर रहे हैं वे अपनी अपनी जगहोंमें दस-दस, बल्कि इससे भी अधिक, वर्षोंसे व्यवसाय करते हैं। सहयोगीको हम यह भी बता दें कि उन्हें अपने परवानोंको नये करवानेके लिए बहुत अधिक जद्दोजहद करनी पड़ी है। परन्तु ये तो इक्के-दुक्के मामले हैं और व्यापक रूपसे फैली हुई बीमारीके लक्षण-मात्र हैं। *एक्सप्रेसके* इन शब्दोंमें सारा मर्म आ जाता है:

> **साफ-साफ बात कहना अच्छा होता है, इसलिए हम स्वीकार करते हैं कि सम्भव हो सके तो ट्रान्सवाल अपनी सीमाके अन्दर स्वतन्त्र एशियाइयोंको नहीं चाहता। उसका कारण, जैसा कि कुछ हलकोंमें खयाल मालूम होता है, यह नहीं है कि हम पढ़े-लिखे भारतीयोंको हीन मानते हैं; बल्कि यह है कि कानून-सम्मत शर्तोंपर गोरोंके लिए उनके सम्मुख होड़में टिकना असम्भव है। व्यापारियोंकी हेसियतसे नेटालमें सारे व्यापारपर उनका तेजीसे एकाधिपत्य होता जा रहा है। वे कुशल व्यापारी तो हैं ही; परन्तु इसके साथ अत्यन्त मितव्ययी भी हैं। इस कारण अपने तमाम प्रतिस्पर्धियोंके मुकाबलेमें वे हर चीज कम कीमतमें बेच सकते हैं। अगर कहीं उनके पैर यहाँ जम गये तो यहाँ भी वही हाल होगा। इसीलिए हम ईस्ट रैंडवासी लोग एशियाइयोंको व्यापारिक या सामाजिक दर्जा देनेके इतने विरोधी हैं। हमें तो सिर्फ एक प्रकारके एशियाईकी जरूरत है, और वह है अकुशल गिरमिटिया मजदूर। आत्मरक्षा प्रकृतिका पहला कानून है। उसका तकाजा है कि यहाँ अन्य सभी लोग वर्जित निवासी हों, भले ही यह कठोरता दिखाई दे। जिन लोगोंके अधिकार फिलहाल यहाँ हैं उनके अधिकारोंकी यथासम्भव रक्षा की जाती रहेगी, परन्तु यहाँ रियायतें तो बन्द होनी ही चाहिए।**

भारतीयोंके प्रति उपनिवेशमें जो दुर्भाव है, उसका असली कारण इसमें आ जाता है। इसके जवाबमें बहुत कुछ कहा जा सकता है; परन्तु उसे हम थोड़ेसे-थोड़े शब्दोंमें कहनेकी कोशिश करेंगे। ऊपरके कथनमें नेटालका उदाहरण दिया गया है; परन्तु अगर जरा भी गहराईसे उसकी जाँच की जायेगी तो उससे यह प्रकट हो जायेगा कि इससे तो उलटी ही बात सिद्ध होती है। नेटालमें भारतीय व्यापारी बड़ी संख्यामें जरूर हैं; परन्तु व्यापारका सर्वोत्तम भाग तो यूरोपीयोंके ही हाथोंमें है और आगे भी रहेगा। भारतीय व्यापारी जहाँ अपने गुजर-बसरके लिए नेटालमें अच्छी कमाई कर सके हैं, वहाँ उनमें से एकको भी अभी वह दर्जा प्राप्त नहीं हो सका

है, जो हारवे, ग्रीनेकर ऐंड कम्पनी — अथवा एस० बूचर ऐंड सन्सको, अथवा अन्य बड़े व्यापारी संस्थानोंको प्राप्त है, यद्यपि कुछ भारतीय व्यापारियोंने भी अपने व्यापारका प्रारम्भ उन्हीं दिनों किया था, जिन दिनों इन पेढ़ियोंने। वस्तुतः हम खुद एक भारतीय व्यापारीका उदाहरण जानते हैं, जो अपने साथ पूंजी लेकर आया था। यहाँ उसने एक अध्यवसायी यूरोपीयको अपना साझीदार बना लिया। दोनों गहरे दोस्त बन गये, और आज भी दोनोंके आपसी सम्बन्ध बहुत सन्तोषजनक हैं। फिर भी व्यापार शुरू करते समय जिस यूरोपीयके पास अपनी पूंजी भी नहीं थी, वह दौड़में अपने पुराने साझीको बहुत पीछे छोड़ गया है और अब उपनिवेशमें उसकी स्थिति प्रथम श्रेणीकी है। किन्तु इस घटनाकी व्याख्या बिलकुल स्पष्ट है। भारतीय व्यापारीकी आदतें यूरोपीयके मुकाबले कम खर्चीली हैं; परन्तु उसमें यूरोपीय व्यापारीकी संगठनशक्ति, अंग्रेजी भाषाकी जानकारी और उसके यूरोपीय सम्बन्धोंसे प्राप्त व्यापारिक लाभकी कमी सहज है। हमारी रायमें भारतीय व्यापारीकी तरह किफायतशारी न होनेकी कमी यूरोपीय व्यापारी इन गुणोंसे पूरी ही नहीं कर लेता, बल्कि उसको इनका और भी अधिक लाभ मिलता है। खुद भारतमें बड़े-बड़े भारतीय व्यापारी संस्थान हैं; परन्तु वहाँ बड़ी-बड़ी यूरोपीय पेढ़ियाँ इन गुणोंसे ही उनका मुकाबला कर रही हैं। आज भी सबसे अधिक कमाई देनेवाले व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोंके ही हाथोंमें हैं; यद्यपि भारतीयोंकी योग्यता तथा साहसिकताको वहाँ पूरा-पूरा अवकाश प्राप्त है। इसलिए, चाहे दक्षिण आफ्रिका हो या अन्य कोई देश, भारतीय व्यापारियोंने तो मध्यस्थ या आढ़तियोंका ही काम किया है। हम यह स्वीकार करनेके लिए स्वतन्त्र हैं कि अपवाद रूपमें वे छोटे यूरोपीय दूकानदारोंके मुकाबलेमें कहीं-कहीं सफलता प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु वहाँ भी, जैसा कि सर जेम्स हलेटने कहा है, कुल मिलाकर यूरोपीय व्यापारी ही नफेमें रहते हैं; क्योंकि दूसरे क्षेत्रोंमें उनकी साहसिकताके लिए खूब अवकाश रहता है। यदि भारतीय नेटालमें न आये होते तो जो यूरोपीय व्यापारी काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले छोटे-छोटे दूकानदार बने रहते वे ही आज या तो थोकके बड़े व्यापारी हैं, जिनके मातहत पचासों आदमी काम कर रहे हैं, या खुद ऐसे थोक व्यापारके संस्थानोंमें लगे हुए हैं। आज यहाँ उनकी अपनी करमुक्त जायदादें हैं, और वे बेरिया [डर्बनमें धनीमानी और शौकीन लोगोंके मुहल्ले] में अपेक्षाकृत सुख-चैनकी जिन्दगी बिता रहे हैं। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि भारतीयों की सादगी और किफायतशारीका जरूरतसे ज्यादा तूल बाँधा गया है। परन्तु क्या इस विषयमें साम्राज्यकी दृष्टिसे कुछ भी कहनेको नहीं रह जाता? भलेके लिए हो या बुरेके, और भारतीय कितने ही छोटे क्यों न हों; परन्तु वे आखिर साम्राज्यके हिस्सेदार तो हैं ही। ऐसी सूरतमें उनकी योग्यता या मिहनत उन्हें जितनेका अधिकारी ठहराये, उतना मुनासिब हिस्सा क्या उन्हें देनेसे इनकार करना उचित है? हमारा सहयोगी चाहता है कि ट्रान्सवालमें भारतीय केवल गिरमिटिया मजदूरोंकी हैसियतसे ही आयें, उससे ज्यादा अन्य किसी हैसियतसे नहीं। आत्मरक्षा अवश्य प्रकृतिका पहला कानून हो सकता है; परन्तु हम नहीं मानते कि प्रकृति किसीको यह भी सिखाती है कि जिसकी सहायतासे वह ऊपर चढ़ा हो उसकी हस्तीको ही मिटा दे। शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे यह क्षम्य हो सकता है कि आप एक सम्पूर्ण प्रजातिके लिए उपनिवेशके दरवाजे बन्द कर दें। परन्तु प्रकृतिके किसी भी कानूनके साथ इस व्यवहारका मेल बैठाना बहुत मुश्किल मालूम होता है कि एक आदमीका दूसरेके स्वार्थके लिए उपयोग कर लिया जाये और जब उसकी जरूरत समाप्त हो जाये तब उस गरीबको ठोकर मारकर हटा दिया जाये। परन्तु दक्षिण आफ्रिकाका वर्तमान संघर्ष उन लोगोंके अधिकारोंकी पूरी रक्षाके लिए है, जो दक्षिण आफ्रिकामें पहलेसे ही बसे हुए हैं। इस बातको हमारा सहयोगी स्वीकार करता है; परन्तु

साथ ही "यथासम्भव" जैसा सुरक्षित तथा संदिग्ध शब्द जोड़ देता है; पर यह तो इस बातपर निर्भर करेगा कि इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देखा जाता है और यह "यथासम्भव" शब्द भारतीय समाजकी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति की हदतक जाता है या नहीं। हमारा खयाल है, पत्रकारकी हैसियतसे हमारी भाँति हमारे सहयोगीका भी कर्तव्य है कि हम लोकमतको इस तरह शिक्षित करें, जिससे इस कठिनाईको पार करनेका उत्तम मार्ग निकल सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०३

४८. श्री क्रेसवेलका बमगोला

श्री क्रेसवेल अभी कुछ पहलेतक 'विलेज मेन रीफ गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड' के प्रबन्धक थे, जिससे उन्होंने अब इस्तीफा दे दिया है और वह मंजूर कर लिया गया है। उन्होंने अपना इस्तीफा देते हुए कम्पनीके सेक्रेटरी श्री विलब्रोको जो लम्बा पत्र लिखा था वह जोहानिसबर्गके पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजा है। जोहानिसबर्गमें वतनी श्रम-आयोगके सामने अपना चौंका देनेवाला बयान देते हुए उन्होंने जो खयाल पैदा किया था उसीकी पुष्टि इस लम्बे पत्रसे होती है। इस बयानमें उन्होंने अत्यन्त निश्चयात्मक रूपसे बताया था कि इस बड़े खान-निगमकी खानोंकी खुदाईके लिए गिरमिटिया एशियाई मजदूर लानेका प्रयत्न आर्थिक आवश्यकताकी अपेक्षा एक राजनीतिक चाल अधिक है। पाठकोंको याद होगा कि उस समय श्री क्रेसवेलने अपने कथनकी पुष्टिमें अपने नाम लिखा गया श्री टारबटका एक पत्र पेश किया था, जिसमें बताया गया था कि इन दिनों गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका जो प्रयोग चल रहा है उसे अधिकांश खान-कम्पनियाँ पसन्द नहीं करतीं। यह पत्र पेश करनेके कारण ही श्री क्रेसवेलसे जवाब तलब किया गया था। श्री विलब्रो लिखते हैं: "आपके द्वारा श्री टारबटके २३ जुलाई १९०२ के व्यक्तिगत पत्रका प्रकाशन संचालकोंकी दृष्टिमें अक्षम्य है।" श्री क्रेसवेलके लिए यह सम्भव न था कि वे यह डंक सहकर चुप बैठ जाते। कम्पनीको लिखा वह लम्बा पत्र उसीका परिणाम था। श्री क्रेसवेलके प्रति किसीको भी सहानुभूति हुए बगैर नहीं रह सकती। सब कठिनाइयाँ सहकर भी उन्होंने अपनी खानोंपर गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। वे इसे पूरे दिलसे पसन्द भी करते थे; परन्तु वे वस्तुतः अकेले पड़ गये। अधिक उत्पादन और अधिक मुनाफेकी जोरदार माँग पूरी करनेमें वे पिछड़ गये। जैसा कि हम इन कालमोंमें पहले अनेक बार लिख चुके हैं, हम तो यही कह सकते हैं कि इस विषयमें श्री क्रेसवेलने जो रुख ग्रहण किया है, आनेवाली पुश्तोंका लाभ उसीमें है। समय ही बताएगा कि उपनिवेशमें खान-उद्योगके तथाकथित विकासके लिए अगर एशियासे कभी गिरमिटिया मजदूर लाये गये तो यह एक गलत कदम होगा, जिससे आनेवाली पुश्तें दुःखी होंगी और इस योजनाके बनानेवालोंकी बेझिझक निन्दा करेंगी। श्री क्रेसवेलका त्यागपत्र तो एक छोटी और व्यक्तिगत बात है। इससे उन्हें आर्थिक कष्ट हो सकता है, या शायद न भी हो। परन्तु वहाँसे उनके हट जानेसे सुधारकोंका काम और भी कठिन हो जाता है। इस दृष्टिसे उनके हट जानेसे उन लोगोंकी बड़ी हानि हुई है, जो न केवल वर्तमान पीढ़ीके कल्याणके लिए चिन्तित हैं, बल्कि भावी पीढ़ियोंके हितोंका भी उतना ही खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०३

४९. क्लार्क्सडॉर्पका एशियाई "बाजार"

कुछ दिन पहले हमने क्लार्क्सडॉर्पकी एशियाई वस्तीके वारेमें लिखा था। उसके जवावमें हमारे सहयोगी *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकर्डने* जो बहुत ही संयत लेख लिखा है उसे हम हर्षके साथ अन्यत्र दे रहे हैं। इसमें निकायका यह आश्वासन है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंके साथ असमानता और अन्यायका व्यवहार करनेकी उसकी इच्छा नहीं है। हम उसके लिए निकायके कृतज्ञ हैं। परन्तु हम यह कहनेकी अनुमति चाहते हैं कि सहयोगीने अपने लेखमें कुछ वातें खुद स्वीकार की हैं, जिनसे प्रकट है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति कितनी कठिन है और प्रस्तावित नये स्थानके वारेमें उनका मन्तव्य कितना उचित है। यह भी साफ तौरपर स्वीकार किया गया है कि प्रस्तावित स्थानके कमसे-कम कुछ हिस्सेको तो जिला-सर्जनके प्रतिवेदनमें भी बुरा वताया गया है। उस आपत्तिका यह कोई जवाव नहीं कि सारे स्थानकी एक साथ जरूरत नहीं होगी। अगर उसकी जरूरत नहीं है तो वह नक्शेमें शामिल ही क्यों किया गया था? अगर आवासी मजिस्ट्रेट ही कुछ नीची भूमिवाले बाड़े अर्जदारोंको दे देते तो उन्हें कौन रोकनेवाला था? सरकारने तो इन बाड़ोंके बँटवारेके सम्बन्धमें वहुत अधिक सत्ता अपने हाथोंमें रख छोड़ी है। वह आग्रह कर सकती थी कि सबसे पहले निचले हिस्सोंको ही निपटायेगी। अब भी हमारा खयाल यही है कि निकायके लिए ऐसा रुख अख्तियार करना और यह कहना ठीक नहीं कि एक वार स्थानका निश्चय हो जानेके वाद उसके हाथोंमें कुछ नहीं रह जाता। आखिर स्थानोंका चुनाव करनेमें उसका भी तो हाथ था ही। इसलिए हमें यह खयाल अवश्य होता है कि अगर जिला-सर्जनके प्रतिवेदनको पानेके वाद वह निचले हिस्सोंको *बाजारकी* जमीनमें शामिल करनेका विरोध करता तो यह उसके लिए वहुत शोभाजनक होता। सहयोगी आगे लिखता है:

> **उल्लिखित स्थान शहरमें उपलब्ध एकमात्र स्थान है। अब केवल तीस बाड़े बचे हैं, जिनको अभी कब्जेमें नहीं लिया गया है; परन्तु किसी भी हालतमें एशियाई वस्तीके तौरपर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। वर्तमान बस्तीके पास शहरके उत्तर और पश्चिममें कुछ बाड़े जोड़े जा सकते थे; किन्तु उससे लगे हुए बाड़ोंके मालिक स्वभावतः इस कार्रवाईका विरोध करेंगे।**

अब, यह स्पष्ट रूपसे लाचारीकी स्वीकृति है और साथ ही इस वातकी भी कि निश्चित किया गया स्थान शहरसे वड़ी दूरीपर है। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कोई स्थायी स्थान निश्चित करनेके सिद्धान्तको थोड़ी देरके लिए अगर अलग रख दिया जाये, तो हमारा खयाल है कि अगर निकाय कोई ऐसा उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं कर सकता, जहाँ ब्रिटिश भारतीय उतनी ही सुविधासे व्यापार कर सकें जितनी सुविधासे वे शहरमें अवतक कर रहे थे, तो वह उनको जहाँ अभी वे है वहीं पड़े रहने दे। परन्तु एक वार उन्हें अलग रखनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके वाद अपने पड़ोसमें ब्रिटिश भारतीयोंको रखनेपर आपत्ति करनेवाले लोग मिल ही जाया करेंगे। तब क्या शहरी निकाय इसी तरह अपनी लाचारी वताकर ब्रिटिश भारतीयोंको शहरोंसे इतनी दूर फेंक देना चाहते हैं, जहाँ व्यापार करना उनके लिए असम्भव हो जाये? अंग्रेज स्वभावतः निहित स्वार्थोंको छेड़ना पसन्द नहीं करते, और अपने विरोधीके साथ भी न्यायका व्यवहार

साथ ही "यथासम्भव" जैसा सुरक्षित तथा संदिग्ध शब्द जोड़ देता है; पर यह तो इस बातपर निर्भर करेगा कि इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देखा जाता है और यह "यथासम्भव" शब्द भारतीय समाजकी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति की हदतक जाता है या नहीं। हमारा खयाल है, पत्रकारकी हैसियतसे हमारी भांति हमारे सहयोगीका भी कर्तव्य है कि हम लोकमतको उस तरह शिक्षित करें, जिससे इस कठिनाईको पार करनेका उत्तम मार्ग निकल सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

४८. श्री क्रेसवेलका बमगोला

श्री क्रेसवेल अभी कुछ पहलेतक 'विलेज मेन रीफ गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड' के प्रबन्धक थे, जिससे उन्होंने अब इस्तीफा दे दिया है और वह मंजूर कर लिया गया है। उन्होंने अपना इस्तीफा देते हुए कम्पनीके सेक्रेटरी श्री बिलब्रोको जो लम्बा पत्र लिखा था वह जोहानिसबर्गके पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजा है। जोहानिसबर्गमें बतनी श्रम-आयोगके सामने अपना चौंका देनेवाला बयान देते हुए उन्होंने जो खयाल पैदा किया था उसीकी पुष्टि इस लम्बे पत्रसे होती है। इस बयानमें उन्होंने अत्यन्त निश्चयात्मक रूपसे बताया था कि उस बड़े खान-निगमकी खानोंकी खुदाईके लिए गिरमिटिया एशियाई मजदूर लानेका प्रयत्न आर्थिक आवश्यकताकी अपेक्षा एक राजनीतिक चाल अधिक है। पाठकोंको याद होगा कि उस समय श्री क्रेसवेलने अपने कथनकी पुष्टिमें अपने नाम लिखा गया श्री टारबटका एक पत्र पेश किया था, जिसमें बताया गया था कि इन दिनों गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका जो प्रयोग चल रहा है उसे अधिकांश खान-कम्पनियाँ पसन्द नहीं करतीं। यह पत्र पेश करनेके कारण ही श्री क्रेसवेलसे जवाब तलब किया गया था। श्री बिलब्रो लिखते हैं: "आपके द्वारा श्री टारबटके २३ जुलाई १९०२ के व्यक्तिगत पत्रका प्रकाशन सचालकोंकी दृष्टिमें अक्षम्य है।" श्री क्रेसवेलके लिए यह सम्भव न था कि वे यह डंक सहकर चुप बैठ जाते। कम्पनीको लिखा वह लम्बा पत्र उसीका परिणाम था। श्री क्रेसवेलके प्रति किसीको भी सहानुभूति हुए बगैर नहीं रह सकती। सब कठिनाइयाँ सहकर भी उन्होंने अपनी खानोंपर गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। वे इसे पूरे दिलसे पसन्द भी करते थे; परन्तु वे वस्तुतः अकेले पड़ गये। अधिक उत्पादन और अधिक मुनाफेकी जोरदार माँग पूरी करनेमें वे पिछड़ गये। जैसा कि हम इन कालमोंमें पहले अनेक बार लिख चुके हैं, हम तो यही कह सकते हैं कि इस विषयमें श्री क्रेसवेलने जो रुख ग्रहण किया है, आनेवाली पुश्तोंका लाभ उसीमें है। समय ही बताएगा कि उपनिवेशमें खान-उद्योगके तथाकथित विकासके लिए अगर एशियासे कभी गिरमिटिया मजदूर लाये गये तो यह एक गलत कदम होगा, जिससे आनेवाली पुश्तें दुःखी होंगी और इस योजनाके बनानेवालोंकी बेझिझक निन्दा करेंगी। श्री क्रेसवेलका त्यागपत्र तो एक छोटी और व्यक्तिगत बात है। इससे उन्हें आर्थिक कष्ट हो सकता है, या शायद न भी हो। परन्तु वहाँसे उनके हट जानेसे सुधारकोंका काम और भी कठिन हो जाता है। इस दृष्टिसे उनके हट जानेसे उन लोगोंकी बड़ी हानि हुई है, जो न केवल वर्तमान पीढ़ीके कल्याणके लिए चिन्तित हैं, बल्कि भावी पीढ़ियोंके हितोंका भी उतना ही खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

४९. क्लार्क्संडॉर्पका एशियाई "बाजार"

कुछ दिन पहले हमने क्लार्क्संडॉर्पकी एशियाई बस्तीके बारेमें लिखा था। उसके जवाबमें हमारे सहयोगी *क्लार्क्संडॉर्प माइनिंग रेकर्डने* जो बहुत ही संयत लेख लिखा है उसे हम हर्षके साथ अन्यत्र दे रहे हैं। इसमें निकायका यह आश्वासन है कि क्लार्क्संडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंके साथ असमानता और अन्यायका व्यवहार करनेकी उसकी इच्छा नहीं है। हम उसके लिए निकायके कृतज्ञ हैं। परन्तु हम यह कहनेकी अनुमति चाहते हैं कि सहयोगीने अपने लेखमें कुछ बातें खुद स्वीकार की हैं, जिनसे प्रकट है कि क्लार्क्संडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति कितनी कठिन है और प्रस्तावित नये स्थानके बारेमें उनका मन्तव्य कितना उचित है। यह भी साफ तौरपर स्वीकार किया गया है कि प्रस्तावित स्थानके कमसे-कम कुछ हिस्सेको तो जिला-सर्जनके प्रतिवेदनमें भी बुरा बताया गया है। उस आपत्तिका यह कोई जवाब नहीं कि सारे स्थानकी एक साथ जरूरत नहीं होगी। अगर उसकी जरूरत नहीं है तो वह नक्शेमें शामिल ही क्यों किया गया था? अगर आवासी मजिस्ट्रेट ही कुछ नीची भूमिवाले बाड़े अर्जदारोंको दे देते तो उन्हें कौन रोकनेवाला था? सरकारने तो इन बाड़ोंके बँटवारेके सम्बन्धमें बहुत अधिक सत्ता अपने हाथोंमें रख छोड़ी है। वह आग्रह कर सकती थी कि सबसे पहले निचले हिस्सोंको ही निपटायेगी। अब भी हमारा खयाल यही है कि निकायके लिए ऐसा रुख अख्तियार करना और यह कहना ठीक नहीं कि एक बार स्थानका निश्चय हो जानेके बाद उसके हाथोंमें कुछ नहीं रह जाता। आखिर स्थानोंका चुनाव करनेमें उसका भी तो हाथ था ही। इसलिए हमें यह खयाल अवश्य होता है कि अगर जिला-सर्जनके प्रतिवेदनको पानेके बाद वह निचले हिस्सोंको *बाजारकी* जमीनमें शामिल करनेका विरोध करता तो यह उसके लिए बहुत शोभाजनक होता। सहयोगी आगे लिखता है:

> **उल्लिखित स्थान शहरमें उपलब्ध एकमात्र स्थान है। अब केवल तीस बाड़े बचे हैं, जिनको अभी कब्जेमें नहीं लिया गया है; परन्तु किसी भी हालतमें एशियाई बस्तीके तौरपर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। वर्तमान बस्तीके पास शहरके उत्तर और पश्चिममें कुछ बाड़े जोड़े जा सकते थे; किन्तु उससे लगे हुए बाड़ोंके मालिक स्वभावतः इस कार्रवाईका विरोध करेंगे।**

अब, यह स्पष्ट रूपसे लाचारीकी स्वीकृति है और साथ ही इस बातकी भी कि निश्चित किया गया स्थान शहरसे बड़ी दूरीपर है। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कोई स्थायी स्थान निश्चित करनेके सिद्धान्तको थोड़ी देरके लिए अगर अलग रख दिया जाये, तो हमारा खयाल है कि अगर निकाय कोई ऐसा उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं कर सकता, जहाँ ब्रिटिश भारतीय उतनी ही सुविधासे व्यापार कर सकें जितनी सुविधासे वे शहरमें अबतक कर रहे थे, तो वह उनको जहाँ अभी वे हैं वहीं पड़े रहने दे। परन्तु एक बार उन्हें अलग रखनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके बाद अपने पड़ोसमें ब्रिटिश भारतीयोंको रखनेपर आपत्ति करनेवाले लोग मिल ही जाया करेंगे। तब क्या शहरी निकाय इसी तरह अपनी लाचारी बताकर ब्रिटिश भारतीयोंको शहरोंसे इतनी दूर फेंक देना चाहते हैं, जहाँ व्यापार करना उनके लिए असम्भव हो जाये? अंग्रेज स्वभावतः निहित स्वार्थोंको छेड़ना पसन्द नहीं करते, और अपने विरोधीके साथ भी न्यायका व्यवहार

करना चाहते है। परन्तु ब्रिटिश भारतीय तो विरोधी भी नही है। वे तो सह-प्रजाजन है। इसलिए हमारी राय है कि जहापर उन्होंने अपना व्यापार-व्यवसाय जमा लिया है वहासे उन्हे हटाकर, उनकी भलाईका विचार न करके, एक रेगिस्तान जैसी निर्जन जगहपर फेक देना किसी भी प्रकार न तो उचित है और न न्याययुक्त। बस सारे प्रश्नका मर्म यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०३

५०. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे विनती

हमे जो पत्र मिले है, उनसे मालूम होता है कि अगले दिसम्बर महीनेमे मद्रासमे होनेवाली कांग्रेस ब्रिटिश उपनिवेशोमे बसे हुए भारतीयोकी स्थितिपर विचार करेगी। इस खबरसे हमे धीरज बाँधना चाहिए और देखना चाहिए कि वहा क्या होता है। उपनिवेशोमे भारतीयोको होनेवाली तकलीफोके बारेमे भारतीय काग्रेस पिछले पाच-छ सालसे आवाज उठा रही है और छुटकारा मिले, इस हेतु उसने प्रस्ताव[1] भी पास किये है, जिससे सरकारका और लोगोका ध्यान इस ओर जाये। इसके लिए उपनिवेशोमे रहनेवाले भारतीय इस सस्थाका उपकार मानते है और आशा करते है कि वह चिन्तापूर्वक इस विषयमे अपने विचार प्रकट करती रहेगी, ताकि परिणाम अच्छा निकले।

यह साल उपनिवेशोमे रहनेवाले भारतीयोके लिए बहुत महत्त्वका है। आस्ट्रेलियाके लश्कर[2] सम्बन्धी व्यवहारसे भारतकी जनताकी आंखे बहुत खुली है। इस देश (दक्षिण आफ्रिका) मे भी हर तरफसे खुल्लमखुल्ला जुल्म बढने लगा है। केपमे जो प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) बना, उसपर बगालके व्यापार-सघ (चेम्बर ऑफ कामर्स) ने वाजिब कदम उठाकर सरकारका ध्यान खीचा है। केप टाउन, जोहानिसबर्ग और डर्बनमे भारतीयोकी जो बड़ी सभाएँ हुई, उनके विवरणसे भारतकी जनता परिचित है, लेकिन ऐसा मालूम होता हे कि सरकार किसी उलझनमे पडी, है, और उसके कारण लॉर्ड मिलनर है। लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको जो खरीता भेजा है, उसका असर हमारे खिलाफ बहुत हुआ हे — अर्थात् जान पड़ता है कि लॉर्ड मिलनरकी सद्भावनाके कारण भारत-सरकारका कुछ ऐसा खयाल बन गया है कि कानूनोका अमल नरमीके साथ होता होगा, और भले आदमियोको कुछ भी तकलीफ नही होती होगी। यह मानना कितना गलत है, सो तो हम हमेशा बताते रहे है।

१८९७ मे नेटालमे विधान बननेके बाद उससे होनेवाली परेशानियोंकी चर्चा १९०२ तक चलती रही थी। लेकिन केप उपनिवेशमे नया प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून बना, ट्रान्सवालमे *बाजार*-सम्बन्धी सूचना निकली, ऑरेंज रिवर कालोनी आँख मूँदकर अत्याचारपूर्ण कानून बनाती ही चली जा रही है. नेटालमे नगरपालिकाओने ट्रान्सवाल जैसे कानून शुरू करनेकी माँग की हे, और सरकारने गिरमिटिया मजदूरोके बारेमे नया कानून पास किया हे, इसलिए स्थितिकी गम्भीरता बहुत बढ गई है, जिसकी ओर हम भारतके अपने भाइयोका ध्यान खास तौरपर खीचते है। अगर भारतकी सरकार एकदम जाग्रत होकर कड़े कदम नही उठायेगी तो, हमे डर लगता हे कि, नया साल शुरू होते ही यहाँकी भारतीय जनतामे हाहाकार मच जायेगा। यहाँतक संभावना

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१४ और खण्ड ३, पृष्ठ २२८–३२।
२. ईस्ट इंडियन नाविक

है कि न जाने कितने लोग जो १९०३ के दिसम्बरतक अच्छे व्यापारी माने जाते रहे हैं, १९०४ के जनवरी महीनेमें दिवालिया अथवा भिखारी बन जायेंगे। आशंका यह भी है कि ट्रान्सवालमें और उसी तरह नेटालमें भी १९०४ के जनवरी महीनेमें थोड़े-बहुत व्यापारियोंको भी व्यापार करनेके सालाना परवाने नहीं मिलेंगे, और अगर ऐसा हुआ, तो जहाँ-तहाँ हाहाकार मच जायेगा। इसपरसे भारतके हमारे भाई देखेंगे कि समय बहुत नाजुक है, और उसे सँभालनेकी बड़ी जरूरत है। यहाँकी पुकार विलायत या भारततक पहुँचनेमें देर लगती है, और पहुँचती है, तो पूरे जोरसे नहीं। इस बातको ध्यानमें रखकर यदि भारतीय कांग्रेस अपने कर्तव्यके अनुसार कड़ा विरोध करे और भारतकी सरकारके कान खोले, तो आशा है कि कुछ राहत मिलेगी। कांग्रेस प्रस्ताव पास करे और फिर हरएक इलाकेके कुछ अगुआ लोग गवर्नरोंसे प्रतिनिधिमण्डलोंके रूपमें मिलें, और एक प्रतिनिधिमण्डल खुद लॉर्ड कर्जनसे रूबरू मिलकर जनताकी भावना उनपर प्रकट करे, और साथ ही विनती करे कि वे तत्काल तार द्वारा ऐसा सन्देश भेजें, जिससे अत्याचारोंकी रोक हो, तो हमें विश्वास है कि इस देशमें बढ़ते जानेवाले अत्याचारोंकी रोक होगी और देरसे ही सही, पर भारतके लोगोंको इन्साफ मिलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०३

५१. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ३०, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी,
वाशिंगटन हाउस,
७२, एनर्ले पार्क
लंदन, एस० ई०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

गत सप्ताह सरकारसे एक पत्र मिला था, जिसमें कहा गया था कि वह विधान परिषदसे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें इस आशयका संशोधन करनेके लिए कहेगी कि जो लोग लड़ाई आरम्भ होनेपर परवाने लेकर या परवानोंके बिना व्यापार कर रहे थे, वे *बाजारों* या बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके अधिकारी होंगे। इससे कुछ राहत मिलेगी, किन्तु बहुत कम। समस्त वर्तमान परवानोंके सम्बन्धमें आश्वासनसे कम किसी चीजसे न्यूनतम न्यायके उद्देश्य पूरे नहीं होते। इसके अतिरिक्त, "लड़ाई आरम्भ होनेपर व्यापार" शब्द भी कई उलझनें पैदा करेंगे। उदाहरणके लिए, उनका क्या होगा जो १८९९ के आरम्भमें या उससे पूर्व व्यापार तो करते थे, किन्तु ११ अक्तूबरको ट्रान्सवालमें न तो मौजूद थे और न व्यापार ही कर रहे थे? यद्यपि, मुझे यह प्रतीत होता है कि दोनोंका एक समान ही खयाल रखा जाना चाहिए।

वस्तुतः जिस व्यक्तिने लड़ाई आरम्भ होनेसे ठीक दो मास पूर्व व्यापार करना आरम्भ किया हो वह उनकी अपेक्षा बहुत कम अधिकारी है जो ट्रान्सवालमें दो सालसे व्यापारमें लगे थे; किन्तु युद्धके आरम्भ होनेपर व्यापार नहीं कर रहे थे। जैसा मैं कह चुका हूँ, कि उन तथाकथित *बाजारोंमें* किसी भी वर्तमान परवानेदारके लिए अपना व्यापार चलाना नितान्त असम्भव है। अतः मैं यह विश्वास करता हूँ कि आप श्री बॉड्रिक या श्री लिटिल्टनसे मुलाकात कर सकेंगे और इस तारके अनुसार कार्य आरम्भ कर देंगे।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२५१) से।

५२. पत्र : कांग्रेसको

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर १, १९०३

सेवामें,
माननीय सचिवगण
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
मद्रास

प्रिय महोदयगण,

मैं बुकपोस्ट (रजिस्टर्ड) से उस बयानकी[1], जो यहाँके भारतीयोंने गत वर्ष श्री चेम्बरलेनको उनके डर्बन आनेपर दिया था, और उस प्रार्थनापत्रकी[2], जो स्थानीय विधानसभाको प्रवासी-विधेयक स्वीकार करनेके विरोधमें दिया था, कुछ प्रतियाँ भेजता हूँ।

बयानसे आप नेटालमें १९०२ के अन्ततक भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंकी उचित कल्पना कर सकेंगे। तभीसे नेटाल ट्रान्सवाल द्वारा समुपस्थित उदाहरणके अनुकरणका प्रयत्न कर रहा है। मैं यहाँकी एक विशाल सभाकी कार्रवाईका[3] भी उल्लेख कर दूँ जो *इंडियन ओपिनियनमें* छपी थी।

प्रवासी विधेयक हमारे विरोधके बावजूद दोनों सदनोंसे पास हो गया है और उसपर राजकीय स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है।

इंडियन ओपिनियन आपको अंग्रेजीमें ताजीसे-ताजी खबरें और गुजरातीमें कुछ सुझाव भी देता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उसके मालिकने आपको पत्रके सब अंकोंकी कुछ प्रतियाँ भेजी हैं।

यदि भारत-सरकार मजबूत रुख इख्तियार नहीं करेगी, और वह भी तत्काल, तो मुझे भय है, नव वर्षमें दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से भारतीय बरबाद हो जायेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २८६।

२. वही खण्ड, पृष्ठ ३७०।

३. देखिए *इंडियन ओपिनियन*, ४-६-१९०३।

आशा है, आपकी कमेटी स्थितिकी गम्भीरताका अनुभव करेगी और जल्दी ही राहत प्राप्त करनेका प्रयत्न पूरे उत्साहसे करेगी।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१०६) से।

५३. बम्बईके लॉर्ड बिशप और भारत

अपने उपनिवेशवासी पाठकोंके लाभार्थ हम नीचे डॉक्टर मैकार्थरके उस विदाई-भाषणका कुछ अंश दे रहे हैं, जो बम्बईमें पाँच वर्षसे कुछ ऊपर बिशपके पदपर रहनेके बाद इंग्लैंडके लिए रवाना होनेसे पहले, उन्होंने बम्बईके टाटा मैंशनमें दिया। डॉ० मैकार्थर भारतमें बहुत अधिक नहीं रहे। उसमें भी बीमारीके कारण उन्हें बीचमें बाहर जाना पड़ा था। किन्तु इस थोड़े समयमें भी उन्होंने वहाँके तमाम वर्गोका प्रेम प्राप्त कर लिया था। और यद्यपि वे इंग्लिश चर्चके प्रमुख थे तथापि हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और उन तमाम जातियोंको, जो उनके धर्मको नहीं मानतीं, अपनी तरफ आकर्षित करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई (यह काम किसी प्रकार आसान नहीं था)। उनकी इस असाधारण सफलताका रहस्य, जैसा कि न्यायमूर्ति श्री चन्दावरकर[1] ने अपने स्वागत-भाषणमें कहा था, उनकी नम्रताकी भावना है, जो उनकी प्रत्येक प्रवृत्तिको प्रेरित करती रही है। विद्वान न्यायाधीशने आगे कहा:

> इसका कारण उनकी समझमें यही था कि सबसे पहले बिशप मैकार्थरके अन्दर नम्रताका असली धार्मिक गुण प्रचुर मात्रामें है। उन्होंने इसे धार्मिक गुण बताया; परन्तु हाल ही में उन्होंने कहीं पढ़ा था कि नम्रता इस युगकी वैज्ञानिक वृत्तिका भी प्राण है। इस तरह नम्रता एक ऐसा तत्त्व है जिसे विज्ञान और धर्म दोनों गुण कहते हैं। और बिशप मैकार्थरके पास यह गुण प्रचुर मात्रामें है।

बिशप मैकार्थरने इसका जवाब देते हुए नीचे लिखे सारगर्भित शब्द कहे:

> श्री मेहताने बिशपके पदके बारेमें अपने विचार बड़ी योग्यतापूर्वक प्रभावोत्पादक भाषामें प्रकट किये हैं। मुझे लगता है कि भारतमें बिशपका स्थान या तो बहुत नगण्य और छोटा है, अथवा फिर वह अनेक प्रकारसे बहुत बड़ा और भव्य है। यह बात उसके बारेमें व्यक्तिकी अपनी कल्पना और उसके प्रति रुखपर निर्भर करती है। जब मैं भारतमें आया तब मेरे मनमें बड़ी झिझक और चिन्ता थी। और इस महान पदका मैं किस प्रकार निर्वाह कर सकूँगा इसके बारेमें, अपने प्रति वास्तवमें आत्मविश्वासका अभाव अनुभव कर रहा था। भारतमें बिशप बनकर आनेवाले किसी व्यक्तिके प्रति भारतीयोंका रुख क्या होगा, इसका भी मैं अन्दाजा नहीं लगा सकता था। . . . परन्तु भारतीयोंके रुखने मेरी सारी चिन्ताओंको भगा दिया और मैं अनुभव करने लगा कि भारतीयोंके

१. सर एन० जी० चन्दावरकर प्रमुख शिक्षा-शास्त्री, समाजसुधारक और बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश थे। सन् १९०० में कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनके सभापति हुए थे।

बीच काम करनेका एक सुन्दर और अनूठा अवसर मेरे सामने है। . . . भारतीयोंके मानसका अध्ययन करनेमें मुझे अधिकसे-अधिक आनन्द आने लगा। भारतीयोंके मानस और अनुभूतिके कुछ अंग ऐसे हैं जिनके प्रति मेरे हृदयमें अत्यधिक आदर है। भारतीयोंकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र, सूक्ष्म और सुसंस्कृत है। इससे उत्तम कोटिके भारतीय कैसे होते हैं इसका परिचय हो जाता है। फिर उनकी आत्मानुशासन और स्वावलम्बनकी वृत्ति भी अत्यन्त अद्भुत है। इसके अतिरिक्त उनमें एक गहरी और सच्ची धार्मिक सहज-बुद्धि भी होती है। मेरा खयाल है कि इन विशेषताओंके कारण मानव जातिके भविष्य-निर्माणमें भारत बहुत बड़ा योग दे सकता है। मैं उन लोगोंमें से हूँ जो विश्वास करते हैं कि कुछ अच्छी और बुनियादी बातें ऐसी हैं जो सभी धर्मोंमें पाई जाती हैं; और संसारके सभी महान धर्मोंमें अच्छे नतीजे देनेकी क्षमता है। मैं भारतके जिन धर्मोंके सम्पर्कमें आया उन सभीके उत्तम फल भी मैंने देखे। आत्माकी आकांक्षाओंको प्रकट करने तथा अध्यात्म-जगतके ऊँचे प्रदेशोंमें मार्गदर्शन करनेकी क्षमताएँ इन धर्मोंमें हैं। और मुझे लगता है कि इन सब धर्मोंका आचरण मनुष्योंको इन शक्तियोंके प्राप्त करनेमें मदद करता है। इसलिए इनकी त्रुटियोंके बारेमें लोगोंका चाहे जो खयाल हो यह मानना ही पड़ेगा कि इन धर्मोंमें ऐसी शक्ति और क्षमता जरूर है। तब कोई संकीर्णता और अश्रद्धाके साथ उनकी आलोचना करनेकी बात कैसे सोच सकता है? मेरी समझमें धर्मान्तर करानेवालेका काम मैंने यहाँ कभी किया ही नहीं। मैंने कभी किसी पढ़े-लिखे पुरुष या स्त्रीसे अपने धर्मकी शरण लेनेके लिए भी नहीं कहा। . . . यह कल्पना गलत है कि अंग्रेज भारतमें इसलिए आये हैं कि उसकी मददसे वे अपना कोई स्वार्थ-साधन करें। इसमें किसी भी प्रकारके स्वार्थ-साधनका हेतु नहीं है। अगर भारतकी सेवा, उसके सामाजिक जीवनको प्रगतिशील बनाना और संसारके कल्याण-साधनमें वह जिस-किसी प्रकार भी उपयोगी हो सकता है उसमें उसकी सहायता करना अंग्रेजोंका उद्देश्य नहीं है तो उन्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए। अगर अंग्रेजोंको इसमें जरा भी संदेह हो कि वे इस देशका भला नहीं कर रहे हैं तो उन्हें यहाँ सत्ताधारी बनकर रहनेका कोई अधिकार नहीं है। वे यहाँ धन और सत्ता प्राप्त करनेके लिए नहीं आये हैं। यहाँ तो वे न्यासी (ट्रस्टी) हैं। यहाँपर उनका काम और धंधा यह है कि वे आनेवाले वर्षोंमें भारतीयोंको ऐसा महान अवसर प्रदान करें, जिससे वे भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक वैभव प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा वे मानवताकी सेवा कर सकें, जिसका मुझे विश्वास है।

यह तनिक लम्बा उद्धरण हमने इसलिए दिया है कि हमारे खयालसे बिशपके शब्द काफी प्रभावशाली हैं — उनके पद और उनके अपने निजी महत्त्वके कारण भी। उनका सारा भाषण और सभाकी कार्रवाई मनन करने लायक है — खास तौरपर दक्षिण आफ्रिका जैसे देशमें, जहाँ भौतिक महत्त्वाकांक्षाओ और स्वार्थलिप्साने मनुष्यके मानसपर इतना अधिकार कर रखा है। डॉ० मैकार्थरके विचारोंकी विशालता, उदात्तता और नम्रताका हमारे मनोंमें लवलेश भी हो तो जीवन आजकी अपेक्षा कहीं अधिक सह्य बन सकता है। हमारे यूरोपीय मित्रोंके लिए ये शब्द विशेष रूपसे स्वागत करने योग्य हैं, क्योंकि ये उनके अपने धर्माचार्यके मुखसे निकले हैं; और ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति सही रुख क्या हो सकता है उसका निर्णय करनेमें इनसे

बड़ी मदद मिल सकती है। वे अवश्य अपने हितोंका ध्यान रखें और उनकी रक्षा करें किन्तु यदि वे बिशप मैकार्थरकी उदारताको अपना सकें तो उन दो समाजोंके मतभेद मिटनेमें बड़ी सहायता मिले, जिन समाजोंको प्रकृतिने एक झंडेके नीचे लाकर खड़ा कर दिया है। मनुष्य तब तक वास्तवमें सभ्य नहीं बन सकते, जब तक कि वे अपनी सभ्यता और भलाईमें जीव-मात्रको शामिल नहीं कर लेते। और इस प्रश्नपर हम धार्मिक, वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक — चाहे जिस दृष्टिसे विचार करें — इसमें कोई शक नहीं कि बिशपने तत्त्वकी बात कही है। वह सबके सँजोकर रखने लायक है। और जैसाकि हमने अखबारोंमें पढ़ा है, अगर एक आदमी पाँच बरसोंके थोड़े-से समयमें दो जातियोंको पहलेकी अपेक्षा अधिक नजदीक लानेकी दिशामें इतना अधिक काम कर सका है तो कल्पना कीजिए कि अगर यह वृत्ति एक झंडेके नीचे रहनेवाली समस्त जनताके मनोंमें फैल जाये तो उसका कितना कल्याणकर परिणाम हो सकता है? इमर्सनने कहा है, संसार अधिकांशमें सहिष्णुता और समझौतेके आधारपर ही चल रहा है, इसमें कोई शक नहीं कि अभीष्ट अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक पक्षको कुछ देना और कुछ लेना पड़ता है। हमारी कामना है कि बिशपका यह भाषण अधिकसे-अधिक पाठकोंके हाथोंमें पहुँचकर उनपर अच्छा प्रभाव डाले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५४. ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिव

श्री डब्ल्यू० ई० डैविडसनके त्यागपत्र दे देनेपर उनके स्थान पर नये उपनिवेश-सचिव श्री पैट्रिक डंकनकी नियुक्तिकी घोषणा सरकारी *गज़टमें* की गई है। ट्रान्सवालके हमारे देश-भाइयोंको इस नियुक्तिमें कोई दिलचस्पी न हो ऐसा नहीं है। हम नहीं जानते कि उन्हें इस परिवर्तनपर बधाई दें या नहीं। क्योंकि एशियाई प्रश्नके बारेमें श्री डंकनके रुखका हमें कुछ पता नहीं है। इस समय एशियाई विभाग सीधा उपनिवेश-सचिवके मातहत है; जिन्होंने यह काम अपने सहायक श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके सुपुर्द कर रखा है। इसलिए हम इन माननीय सज्जनको याद दिलानेका साहस करते हैं कि उनके हाथोंमें एक अत्यन्त पवित्र काम सौंपा गया है; अर्थात् वे एक ऐसी अल्पसंख्यक कौमके हितोंके संरक्षक हैं जिसे एक शक्ति-शाली बहुसंख्यक कौमकी दुर्भावनासे संघर्ष करना पड़ रहा है। आजका जमाना आगे चलकर ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिको नया मोड़ देनेवाला सिद्ध होगा। एशियाई-विरोधी कानूनों और बाजार-सूचनाओंसे सम्बन्धित अनेक प्रश्नोंपर उन्हें अपने निर्णय देने होंगे। अतः सामने पेश होनेवाले तमाम पेचीदा प्रश्नोंको सुलझानेके लिए उन्हें अपनी सारी शक्ति और सिद्धान्त-निष्ठासे काम लेना होगा। यदि साथ ही वे थोड़ीसी सहानुभूति और सहृदयता भी इनमें जोड़ दें तो हमें निश्चय है वे अपने आपको ट्रान्सवालके भारतीयोंकी कृतज्ञताका पात्र बना लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५५. व्यापार-संघ और युद्ध-क्षतिका मुआवजा

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें यह खबर छपी है कि सरकार बड़ी पेढ़ियों या कम्पनियोंको, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजनोंकी हों या अन्यकी, मुआवजा देनेमें इनकार-सम्बन्धी अपने निर्णयपर अब भी पुनर्विचार करनेमें इनकार कर रही है। सर आर्थर लालीके इस कार्यको व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री जॉर्ज मिचल विश्वासघातके समान समझते हैं। वे कहते हैं कि श्री चेम्बरलेनने निश्चित रूपसे यह वचन दिया था कि जिन-जिनको भी लड़ाईमें नुकसान हुआ है, उन्हें मुआवजा दिया जायेगा। इसलिए उनका खयाल है कि सरकारको छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच भेद करनेका कोई अधिकार नहीं है। हम इस विचारसे अपनी सहानुभूति प्रकट करना चाहते हैं। आखिर छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच जो भी भेद किया जायेगा वह मनमाना और पूर्णतः अवैज्ञानिक होगा। और जिन्हें व्यापारका थोड़ा भी ज्ञान है वे आसानीसे समझ सकते हैं कि जो पेढ़ियाँ बड़ी दिखाई देती हैं उनको, संभव है, दी जा सकनेवाली हर मददकी जरूरत हो; क्योंकि उनके कामका फैलाव बहुत होता है। और ऐसी काफी पेढ़ियाँ होंगी जिनपर इस लड़ाईका असर उन छोटी पेढ़ियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक गम्भीर हुआ हो, जिनका कारोबार छोटा होनेसे नुकसान भी थोड़ा ही होता है। फिर हम अपने निजी अनुभवसे भी जानते हैं कि छोटी पेढ़ियाँ बगैर मुआवजा मिले भी अपने कर्ज देनेवालोंकी माँगोंका सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकी हैं। परन्तु जिन्हें अपनी साख बचानी है वे ऐसा नहीं कर सकतीं। इसलिए उनपर दोहरी मुसीबत आई है। अनेक कम्पनियोंने अपने साहूकारोंको ब्याज-सहित रकम अदा की है। और अब उनके सामने सरकारका निर्णय है कि उन्हें उनके हकका मुआवजा नहीं दिया जायेगा। श्री मिचलने यह धमकी दी है कि वे इंग्लैंडकी सरकार तथा ब्रिटिश संसदतक अपनी पुकार भेजेंगे। परन्तु हमारा खयाल है कि अगर यहाँकी सरकार इस माँगपर अनुकूलतापूर्वक विचार करनेके लिए राजी नहीं है, तो इंग्लैंडकी सरकारसे दरखास्त करके भी लाभकी बहुत कम सम्भावना है। फिर भी हमारी हार्दिक कामना है कि व्यापार-संघको उसके प्रयत्नोंमें यश मिले और वह इंग्लैंडकी सरकारके सामने अपनी माँगका औचित्य सिद्ध कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-१२-१९०३

५६. श्रम-आयोगका प्रतिवेदन

श्रम-आयोगका प्रतिवेदन प्रकाशित हो गया है। फिलहाल हम श्री क्विन और श्री व्हाइट-साइडके अल्पसंख्यक प्रतिवेदनपर ही विचार करना चाहते हैं। हम जानते हैं कि ये सज्जन बड़ी कठिन लड़ाई लड़ रहे हैं। फिर भी हमें यह कहना चाहिए कि उनके निर्णय न्यायपूर्ण हैं; इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने कथनकी पुष्टिमें कुछ आँकड़े या, अपने मन्तव्योंका समर्थन करनेके लिए, बहुत-से गवाह पेश किये हैं; बल्कि हमारा खयाल है कि, उनकी पुष्टिके लिए ऐसी किन्हीं चीजोंकी जरूरत ही नहीं है, क्योंकि उनके कथन लगभग स्वयंसिद्ध सत्य हैं। जो स्वार्थ और दुर्भावसे अन्धे नहीं हैं, उन्हें इन दो आयुक्तोंकी निम्नलिखित राय माननेमें कोई आपत्ति नहीं होगी:

> हमारी राय है कि जो लोग इस उपनिवेशमें स्थायी रूपसे नहीं बसना चाहते और जो इस उपनिवेशके स्थायी वैभव अथवा भावी परिणामोंका बगैर विचार किये आज ही अपने उद्योगका विस्तार करना चाहते हैं, उनकी बातोंकी बहुत सावधानीसे जाँच करके ही उद्योगके लिए आवश्यक वतनी मजदूरोंकी निश्चित संख्या तय की जा सकेगी, इसके बगैर नहीं।

गवाहियोंका जिन्होंने थोड़ा भी अध्ययन किया है उन्हें यह समझनेमें कठिनाई नहीं होगी कि ये शब्द कितने यथार्थ हैं। फिर उनकी "आवश्यकताओं" की परिभाषा भी हमारी रायमें आदर्श है। इसके बाद इन "आवश्यकताओं" की पूर्तिके लिए देशमें पर्याप्त मजदूर हैं या नहीं यह जाननेके लिए हजारों प्रश्न करनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। आयुक्त आगे कहते हैं:

> इसलिए हम आवश्यकताओंका यह अर्थ लेते हैं कि उत्पादन और व्ययकी दृष्टिसे लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालके उद्योग जिस अच्छी अवस्थामें थे उनको उस हालतमें लानेके लिए तथा इस उपनिवेशके गोरे और रंगदार दोनों प्रकारके निवासी किस प्रकार वैभव-शाली हो सकते हैं इस बातको ध्यानमें रखते हुए इन उद्योगोंका अधिकसे-अधिक विस्तार करनेके लिए कितने मजदूरोंकी जरूरत होगी।

यही सारी परिस्थितिका मर्म है। अगर पूंजीपतियों और केवल वर्तमान पीढ़ीके लाभके लिए उपनिवेशका शोषण करके उसे वैभवशाली बनाना है तो इसमें कोई शक नहीं कि आयोगके बहुसंख्यक सदस्योंका प्रतिवेदन पूर्णतः उपयुक्त है। परन्तु यदि उपनिवेशका विकास क्रमशः करना है तो इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि उपनिवेशके अन्दर ही जितने और जैसे मजदूर मिल सकें उनसे उसे सन्तोष मानकर काम चलाना चाहिए। अस्वाभाविक तरीकोंकी मददसे बनावटी तौरपर लाई गई वृद्धि और स्वाभाविक क्रमिक विकास इन दोनोंमें जमीन-आसमानका अन्तर होता है। पहली वस्तु अस्वाभाविक परिस्थितियोंकी उपज होगी, देखनेमें सुन्दर और लुभावनी होगी, परन्तु परिणाममें हलाहल। दूसरी चीज निश्चय ही देखनेमें इतनी लुभावनी नहीं होगी, परन्तु उसका फल स्थायी लाभ पहुँचानेवाला होगा। प्रयत्न करके गिरमिटिया मजदूरोंके हमलेको रोकना संभव होगा या नहीं, इसमें हमें सन्देह है, तथापि हम यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि श्री क्विन और श्री व्हाइटसाइडने अपने कर्तव्यका पालन निर्भयतापूर्वक कर दिया है, जिसके लिए वे हार्दिक बधाईके पात्र हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५७. ट्रान्सवालमें एशियाइयोंका संरक्षक

प्रिटोरिया स्थित एक संवाददाताने हमारे पास एक छपा हुआ फार्म भेजा है जिसपर सहायक उपनिवेश-सचिव श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके दस्तखत हैं और तारीख ५ नवम्बर पड़ी है। इसमें प्रिटोरियामें रहनेवाले तमाम एशियाइयोंको सूचित किया गया है कि

> **प्रिटोरियाके एशियाई *बाजारमें* जमीनोंके लिए तारीख १ जनवरी १९०४से लेकर इक्कीस वर्ष अथवा इससे कम अवधिके लिए जो पट्टे लेना चाहें उन्हें अपनी अर्जियाँ तारीख ३० नवम्बर १९०३की दोपहरतक एशियाइयोंके संरक्षक श्री चैमनेके पास दे देनी चाहिए, जो अर्जियोंपर विचार करके जमीनोंका वितरण करेंगे।**

इसके बाद वे शर्तें हैं जिनके आधारपर विचार और वितरण होगा। अपने पिछले अंकोंमें हम बता चुके हैं कि एशियाइयोंको जबरदस्ती अलग बसाने और इन *बाजारोंके* लिए चुने गये स्थानोंके बारेमें हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। प्रिटोरियाके *बाजारोंके* बारेमें भी वही बात लागू होती है। यह पृथक बस्ती कोनेमें एक तरफ है और उसके तथा शहरके बीच एक नाला पड़ता है। भारतीयोंका सारा व्यापार बहुत दूर प्रिन्सलू स्ट्रीटमें केन्द्रित है। वहांसे अपने कारोबारको उठाकर इस बस्तीमें जाना अपने हाथ अपने पांवपर कुल्हाड़ी मारना है। परन्तु आज प्रश्नके इस पहलूपर नहीं, हम श्री चैमनेके पदपर कुछ कहना चाहते हैं। हमें बताया गया है कि उन्हें भारतका बड़ा विशाल अनुभव है। उनके विचार उदार हैं और जिनका उन्हें संरक्षक नियुक्त किया गया है उनके प्रति उनके हृदयमें सहानुभूति बहुत बड़ी मात्रामें है। सबसे पहले तो हम यह बता दें कि इस पदका नाम हमें बहुत अच्छा नहीं लगता। उससे हमें गिरमिटिया मजदूरीसे सम्बन्धित गंध आती है। और दक्षिण आफ्रिकामें तो इस पदका अर्थ यही लगाया जाता है कि नेटालमें जिस प्रकार गिरमिटिया मजदूरोंके हितोंकी देखभाल करनेवाला अधिकारी होता है उसी तरहका यह भी कोई अधिकारी होगा। परन्तु हम नामपर भी नहीं झगड़ना चाहते। मुद्देकी बात तो यह है कि क्या श्री चैमने भारतीयोंको सन्तोष हो, इस प्रकार अपना काम कर रहे हैं? अब अगर हमारे संवाददाताका कहना सही है तो श्री चैमने भारतीयोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करनेकी इच्छा रखते हुए भी ऐसा नहीं कर सकेंगे। क्योंकि उन्हें कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। एशियाई मुहकमेका सम्पूर्ण प्रबन्ध और संचालन उपनिवेश-सचिवके हाथोंमें है और श्री चैमनेको केवल उनके हाथके नीचे काम करना है। अगर बात यही है तो हमें यह कहना पड़ेगा कि हालत बड़ी अजीब है। नेटालमें प्रवासियोंके संरक्षकके हाथोंमें भी कहीं अधिक सत्ता है और इस पदका वहाँ वजन और प्रभाव है। वहाँ वह गवर्नरके प्रति जिम्मेदार है; परन्तु प्रिटोरियामें काम दूसरे ढंगसे होता है। एक भले आदमीको संरक्षक तो बना दिया, किन्तु उसे काम करनेमें पहलका अधिकार नहीं दिया गया। अगर हमें गलत जानकारी मिली है तो सरकारने उनके लिए जो कानून और नियम बना दिये हैं उनका तनिक भी उल्लंघन किये बिना मनुष्य-मनुष्यके बीच सम्मानपूर्वक न्याय करनेका सुवर्ण अवसर श्री चैमनेके सामने उपस्थित है। रास्ता चलता आदमी भी एक निगाहमें जान सकता है कि जिन लोगोंके पास आज *बाजारोंसे* बाहर व्यापार-व्यवसाय करनेके परवाने हैं ऐसे सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंको इस वर्षके अन्तमें उन बस्तियोंमें भगा देना बहुत बड़े कलंककी बात है।

बहुत धीरजके साथ इस प्रश्नकी जाँच होनी चाहिए। और हमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि यूरोपीयोंका विरोध मोल लिये बिना मामला शान्तिके साथ सुलझ सकता है। अगर श्री चैमनेके हाथोंमें सत्ता है तो क्या वे इस अवसरके अनुरूप काम करेंगे? अगर उनके हाथोंमें यह सत्ता नहीं है तो क्या सरकार भारतीयोंके सामने यह निरर्थक नाम और पद झुलाते रहना बन्द करनेकी कृपा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५८. एक अपील[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ७, १९०३

सेवामें,
सम्पादक
लीडर

महोदय,

कुछ भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे, जिनकी किस्मत इस वर्षकी सूचना ३५६ से सम्बन्धित सरकारके निर्णयपर लटक रही है, मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है इसे प्रकाशित करके आप अवश्य मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाने देंगे।

प्रस्तुत सूचनाका तकाजा है कि इस वर्षके अन्ततक सारे भारतीय *बाजारोंमें* चले जायें और वहीं व्यापार करें या रहें। तथापि वह उन लोगोंको इससे बरी करती है जिनके पास लड़ाई शुरू होते समय *बाजारों* और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। कुछ एशियाइयोंको निवासके बारेमें अपवाद-स्वरूप बरी रखा जा सकता है, इसका हम इस समय जिक्र नहीं करेंगे, क्योंकि यहाँ वह प्रश्न अप्रस्तुत है। सभी जानते हैं कि लड़ाईसे पहले बहुत-से भारतीय बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे। ब्रिटिश मन्त्रालय (डाउनिंग स्ट्रीट) के आदेशानुसार ब्रिटिश एजेंटकी छायाके कारण वे ऐसा कर पा रहे थे। अर्थात्, सरकार ऐसे व्यापारियोंका अपवाद करनेकी जरूरत मानती है, जिनके पास परवाने नहीं थे, परन्तु जो सिद्ध कर सकते हैं कि वे लड़ाई छिड़नेके समय पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे।

एक वर्गके लोग और रह जाते हैं, जो लड़ाईके पहले व्यापार तो नहीं करते थे, परन्तु जिन्हें शरणार्थी होनेके नाते पिछले वर्ष बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने ब्रिटिश अधिकारियोंने दे दिये थे और जिनपर ऐसा करते समय किसी प्रकारकी शर्तें या बन्दिशें नहीं लगाई गई थीं। इनमें से अधिकांश लोग जोहानिसबर्गमें हैं। मेरी नम्र राय है कि इनके निहित स्वार्थोंकी भी उसी प्रकार रक्षा की जानी चाहिए, जैसे कि उन अन्य अधिक भाग्यशाली भाइयोंकी जो लड़ाईसे पहले व्यापार करते थे। इनका व्यापार भी काफी अच्छा जम गया है। मुझे यह कहनेकी

१. *ट्रान्सवाल लीडरमें* प्रकाशित।

जरूरत नही है कि उनके लिए अपने व्यापारको पृथक बस्तियोंमें ले जाना, जहाँ कोई आबादी नही है और जहाँ चीजें खरीदनेके लिए लोगोंको आकर्षित नही किया जा सकता, असंभव है। उन्हें वहाँ जानेके लिए मजबूर करनेका अर्थ उनके मुँहका कौर छीनना है। और यह काम ट्रान्सवालकी जनताके नामपर किया जा रहा है। मैं कदापि नही मान सकता कि उस देशके बहुसंख्यक लोग ऐसी (जिस कृतिकी धमकी दी जा रही है उसके वर्णनमें सही शब्दका प्रयोग करनेपर अगर मुझे क्षमा किया जाये) अमानुषता कर सकते है। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ और मेरे पास इसके लिए अच्छे सबूत है कि जोहानिसबर्गके बहुत-से व्यापारियोंने जब सरकार-से पिछली गणराज्य-सरकारके एशियाई-विरोधी कानूनोंपर अमल करनेका आग्रह किया था तब उनका उद्देश्य यह कदापि नही था कि, जिनके पास कानूनके अनुसार परवाने है ऐसे वास्तविक शरणार्थियोंको किसी प्रकार हानि पहुँचे। वे चाहते थे — और उसमें वे सफल भी हो गये है — कि नये अर्जदारोंको परवाने न दिये जाये, नही तो और नये स्वार्थ निर्मित हो जायेंगे। यह एक अजीब बात होगी कि एक ऐसे राष्ट्रके निवासी, जो निहित स्वार्थोंका इतना आदर करते है कि गुलामोंके मालिकों और होटलोंके मालिकोंके हितोंको भी — जिन्हें अगर अनैतिक कहे तो अनुचित नही होगा — मान्यता दे सकते है, उन निर्दोष व्यापारियोंके हितोंकी अवगणना करें।

फिर मेरी इस प्रार्थनाको राज्यके ऊँचेसे-ऊँचे अधिकारीके दिये गये वचनका आधार है। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों पहले-पहल यह धमकी दी गई थी कि उन भारतीयोंको अपने परवाने नये करवानेका हक नही होगा। इस ओर श्री चेम्बरलेनका ध्यान आकर्षित किया गया। उस समय उन्होंने कहा था कि वे विश्वास नही कर सकते कि उस धमकीपर अमल किया जायेगा। यह उनकी बात है जिन्होंने "एक ब्रिटिश अधिकारीका लिखा पुर्जा बैंक-नोटके समान है" ये प्रसिद्ध शब्द कहे थे। वे समझ रहे थे कि यह सूचना एक स्थानीय अधिकारीकी भूलसे जारी हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि परवाने नये कर दिये गये, यद्यपि इसके लिए दुःखदायक संघर्ष करना पड़ा और सो भी केवल शुरूमें पिछले जून मास और बादमें उस मासकी ३१ तारीखतक के लिए। इसलिए मिली हुई राहतको स्थानीय अधिकारियोंने जब पहली बार तात्कालिक बताया तब लॉर्ड मिलनरसे विनती की गई। उन्होंने इस विषयपर अपने विचार श्री चेम्बरलेनको भेजे गये खरीतेमें प्रकट किये है। इसमें (यदि मैंने आशय ठीक समझा है तो), परमश्रेष्ठने कहा है कि, वर्तमान भारतीय परवानेदारोंमें से केवल उनको पृथक बस्तियों-में जाना होगा जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें नही रहते थे। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि ये भारतीय वास्तविक शरणार्थी है।

"लड़ाई छिड़नेके वक्त" ऐसे शब्द है, जिनके कारण अनन्त कठिनाइयाँ और भद्दे भेदभाव पैदा होंगे। इसलिए आप इस प्रश्नपर चाहे जिस दृष्टिसे विचार कीजिए, इसका सरल हल यही है कि इस समय जिन लोगोंके पास परवाने है उन सबको मान्यता दे दी जाये। अगर जरूरत हो तो यह शर्त लगाई जा सकती है: "जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे।"

मेरे देश भाइयोंपर अनुचित होड़का आरोप लगाया जाता है। मैं यहाँ तो उसका संक्षेप-में ही जवाब दे सकता हूँ। हाथ कंगनको आरसीकी जरूरत नही होती। क्या यह सत्य नही है कि इस होड़के बावजूद यूरोपीय व्यापारी ही सर्वत्र प्रबल है? यह सच है कि भारतीय रहन-सहन मितव्ययी और सादा होता है। परन्तु वह अपने व्यापारमें भी सीधा-सादा और संगठन-की योग्यतामें गरीब है। उसके इस कलामें निपुण बनने और उसकी होड़से भय होने योग्य परिस्थिति आनेमें बहुत दिन लगेंगे। कहा जा सकता है कि यदि भारतीयोंका आगमन बेरोक-टोक जारी रहा तो उनकी संख्या बढ़ जायेगी और तब उसका असर अवश्य होगा। परन्तु मैं तो

केवल उनकी तरफसे अपील कर रहा हूँ, जो अभी व्यापारमें लगे हुए हैं। ब्रिटिश भारतीयोंने यह भी सुझाया है कि परवानोंका नियन्त्रण नगर-परिषद अथवा जिला-निकायके हाथोंमें दे दिया जाना चाहिए, ताकि उनका दुरुपयोग न होने पाये। आरोग्य और नगरकी सुन्दरताकी दृष्टिसे सफाई और इमारतोंसे सम्बन्धित अन्य उचित जरूरतोंकी पूर्ति भारतीय बहुत खुशीसे करेंगे।

मेरी विनती यह है कि ट्रान्सवालमें जो ब्रिटिश नागरिक बस गये हैं, उनकी सहानुभूतिका मेरे देशभाइयोंको अधिकार है। लड़ाईके पहले उनसे मदद चाही गई और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दी। डचेतर गोरा-समिति (एटलांडर कमिटी) के तत्कालीन सदस्योंने, जिनकी बात सरकार सुनती है, कहा था कि ज्यों ही प्रिटोरियामें ब्रिटिश झंडा लहराने लगेगा, उसकी हवाके झकोरोंसे भारतीयोंकी सारी तकलीफें और निर्योग्यताएँ उड़ जायेंगी; क्योंकि, क्या वे ब्रिटिश प्रजाजन नहीं हैं? इस समय मैं निर्योग्यताओंका सामान्य प्रश्न नहीं उठाना चाहता। उस समय जो बहुत बड़े-बड़े वचन दिये गये थे, उनमें से मैं इस समय एक बहुत छोटी चीज माँग रहा हूँ। क्या वह भी स्वीकार नहीं होगी?

अन्तमें एक बात और कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि पिछली लड़ाईमें अपना नम्र हिस्सा अदा करनेमें भारतीय पीछे नहीं रहे हैं। शासकीय खरीतोंमें उनके कामका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है। तब पंचने गाया था: "आखिर हम सब साम्राज्यके पुत्र हैं।" उनकी प्रशंसामें यह जो कहा गया है और इसमें जो अर्थ भरा पड़ा है उसे झुठलाने लायक कोई काम मेरे देशभाइयोंके द्वारा उसके बादमें हुआ हो, ऐसी खबर मुझे नहीं है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०३

५९. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल-परिषदको[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ८, १९०३

सेवामें,
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
ट्रान्सवाल विधान-परिषद

ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय-संघकी समितिके अध्यक्ष अब्दुल गनीका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि,

उपनिवेश-सचिवने सूचना दी है कि वे आगामी तारीख ९ को एशियाई *बाजारों*के सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पेश करनेवाले हैं। आपका प्रार्थी उसी सम्बन्धमें माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित हो रहा है।

प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करता है कि नये प्रस्तावके द्वारा दी जानेवाली राहत न्यायकी आवश्यकताओंके मानसे पूर्णतः अपर्याप्त होगी।

१. यह १०-१२-१९०३ के *इंडियन ओपिनियनमें* भी प्रकाशित हुआ था।

बाजारों अथवा पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेवाले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको तीन वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है:

पहला : जिनके पास युद्ध छिड़नेके समय *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे।

दूसरा : वे जो बिना परवानोंके उसी तरह व्यापार करते थे।

तीसरा : वे जो लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार नहीं करते थे, परन्तु जिन्हें उसके पहलेसे ट्रान्सवालके सच्चे निवासी होनेके कारण पिछले वर्ष ब्रिटिश अधिकारियोंने बगैर किसी शर्त या प्रतिबन्धके *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये थे।

इनमें दूसरे वर्गके व्यापारियोंकी संख्या सबसे अधिक है।

तीसरे वर्गके व्यापारियोंकी संख्या बहुत छोटी है और उनमें से अधिक जोहानिसबर्गमें ही बसे हुए हैं।

तीसरे वर्गवालोंके लिए *बाजारोंमें* हटाया जाना बड़ी गंभीर बात होगी। वहां उनके लिए किसी प्रकारका भी व्यापार कर सकना असम्भव है। और उस समय गोरे निवासियों और काफिरोंके बीच उनका जो व्यापार फैला हुआ है और जिसके लिए उनके पास कानूनी परवाने हैं उसे तो वे किसी प्रकार वहाँ नहीं चला सकेंगे।

बाजारकी जगहोंकी अनुपयुक्तताके अलावा भी प्रार्थी उस माननीय सदनका ध्यान नीचे लिखी बातोंकी तरफ खींचना चाहता है.

पिछले वर्ष लगभग इन्हीं दिनोंकी बात है, पीटर्सबर्गमें ऊपर बताये गये तीसरे वर्गके तमाम ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ मिली थीं कि उनके परवानोंकी अवधि पूरी हो जानेपर वे नये नहीं किये जायेंगे। इसलिए तत्कालीन परममाननीय उपनिवेश-मन्त्रीका ध्यान उनकी ट्रान्सवाल-यात्राके समय इस प्रश्नकी तरफ खींचा गया था। उन्होंने कहा था कि उस धमकीपर अमल नहीं हो सकेगा। और इसके फलस्वरूप अबतक ये परवाने नये किये जाते रहे हैं।

परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरने भी तारीख ११ मई १९०३ को परम माननीय श्री चेम्बरलेनको भेजे गये अपने खरीतेमें इस प्रश्नपर जोर दिया था।

परमश्रेष्ठ कहते हैं:

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंका — जहां इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक विचार रखते हुए, करे। . . . लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहां तो नये आनेवालोंका तांता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने मांगते रहते हैं . . . ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

इसी खरीतेमें परमश्रेष्ठने आगे लिखा है:

> जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहलेसे यहां जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उनको सरकार स्वीकार करनेके लिए तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर १९०३ तकके लिए बढ़ा

दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें उनके लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चला जाना होगा।

प्रार्थीकी नम्र रायमें खरीता उन तमाम वर्तमान ब्रिटिश भारतीय परवानेदारोंको, जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें रहते थे, साफ तौरसे *बाजार*-सूचनाके अमलसे बरी करता है।

प्रार्थीके संघने सन् १८८५ के कानून ३ के अमलका सदा आदरपूर्वक विरोध किया है, क्योंकि वह स्वर्गीया महारानीकी सरकार और पिछली गणराज्य-सरकारके बीच मतभेदका विषय रहा है। वह पिछली लड़ाईके कारणोंमें से एक कारण था और ब्रिटिश संविधानके विपरीत है।

परन्तु अभी प्रार्थी इस सामान्य प्रश्नको उठाना नहीं चाहता। अभी तो वह यही आशा लेकर उपस्थित हुआ है कि यह माननीय सदन वर्तमान परवानेदारोंके साथ किसी प्रकारकी छेड़छाड़ नहीं होने देगा।

प्रार्थीके संघके पास जो जानकारी है उसके अनुसार जिन्होंने लड़ाईसे पहले कभी व्यापार नहीं किया, उनकी संख्या सम्भवतः एक सौसे अधिक न होगी। *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके लिए उनके परवाने भी अगर नये कर दिये गये तो *बाजार*-सूचनाके सिद्धान्तको कोई आँच नहीं आनेवाली है; परन्तु स्वयं उन आदमियोंके लिए तो यह जीने और मरनेका सवाल है।

इसके अतिरिक्त "लड़ाई छिड़नेके समय या उससे तुरन्त पहले" इन शब्दोंके अमलसे बहुत भारी कठिनाइयाँ और ईर्ष्या-भरे भेदभाव उत्पन्न हो जायेंगे।

प्रार्थीके संघकी विनम्र राय है कि जो व्यक्ति सन् १८९९ के मध्यमें व्यापार करते थे उन्हें परवाने दे दिये जायें, परन्तु जो १८९८ के अन्तमें तो व्यापार करते थे और १८९९ के प्रारम्भमें नहीं, उन्हें इनकार कर दिया जाये, तो यह सरासर अन्याय होगा। फिर, यह भी सम्भव है कि सन् १८९९ में भी एक पेढ़ीके दो साझेदार रहे हों। अगर दोनों परवानोंके लिए अर्ज करें तो एकको दूसरेपर तरजीह देना आसान बात नहीं होगी।

ये केवल उन बहुत-सी कठिनाइयोंके उदाहरण हैं जो इस सूचनाके कारण कानूनको अमलमें लानेके वक्त उत्पन्न होंगी।

ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की राजभक्त प्रजा हैं और वे शराबसे परहेज करनेवाले, मेहनती और कानूनके मुताबिक चलनेवाले माने गये हैं।

इसलिए प्रार्थीका संघ नम्र निवेदन करता है कि यह माननीय सदन इस विषयके पक्षमें विचार करे और सूचनामें ऐसा संशोधन करे कि आजके भारतीय परवानोंको मान्यता दी जा सके, बशर्ते कि परवानेदार यह सिद्ध कर सके कि लड़ाईके पहले वह ट्रान्सवालका निवासी था। यह न्यायपूर्ण और उचित तो होगा ही, माननीय श्री चेम्बरलेन और परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरकी उल्लिखित घोषणाओंके अनुरूप भी होगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपका प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेगा।

जोहानिसबर्ग, आज तारीख ८ दिसम्बर, उन्नीस सौ तीन।

अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : मूल अंग्रेजी प्रति की फोटो-नकल (पिटिशन एल० सी० ४/०३) से।

६०. लॉर्ड हैरिस और भारतीय मजदूर

जोहानिसबर्ग स्टारने लॉर्ड हैरिसका वह भाषण उद्धृत किया है जो उन्होंने गत १२ नवम्बरको केनन स्ट्रीट होटल, लंदनमें दक्षिण आफ्रिकाके संयुक्त स्वर्ण-क्षेत्रों (कान्सॉलिडेटेड गोल्ड फील्ड्ज़) के हिस्सेदारोंकी साधारण सभामें दिया था। इस भाषणसे एशियाई मजदूरोंके प्रश्नपर लॉर्ड महोदयके विचारोंका हमें अधिक अच्छी तरह पता लग सकता है। हमें स्वीकार करना पड़ता है कि इस भाषणको पढ़कर हमें बड़ी निराशा हुई है और उनके प्रति सम्पूर्ण आदर रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि जिन आर्थिक स्वार्थोंका वे प्रतिनिधित्व करते हैं उनकी रक्षाकी अत्यधिक चिन्ताने उनके विचारोंको ढक लिया है। लॉर्ड हैरिस भारतीयोंको ऐसी शर्तों-पर लाना चाहते हैं जो उन्हें यहाँ अपने दिमागका, अगर ऐसी कोई चीज वे रखते हों, उपयोग करनेसे रोकें और गिरमिटकी अवधि पूरी हो जानेपर उनको जबरदस्ती वापस कर दें। इसमें इस बातका कोई खयाल नही किया जायेगा कि वे यहाँ अधिक अच्छी कमाई कर सकते हैं या नहीं। लॉर्ड हैरिसने यह खोज की है कि इसमें वास्तवमें मजदूरोंका बहुत बड़ा हित होगा। लॉर्ड महोदय कहते हैं :

> मुझे लगता है कि खानोंके लिए मजदूरोंकी भरती करनेकी इजाजत तब मिलेगी जब हम व्यापारीवर्गके साथ अधिक अच्छा व्यवहार करनेका वचन देंगे — इस शर्तमें कुछ अदूरदर्शिता मालूम होती है। . . .
>
> कुली कोई बहुत पढ़े-लिखे तो होते नहीं। वे तो केवल शरीर-श्रम करनेवाले लोग होते हैं। भारतकी खानोंमें जिस प्रकारका व्यवहार मजदूरोंके साथ होता है उससे बुरा तो नहीं, बल्कि शायद अच्छा ही व्यवहार हम उनके साथ करेंगे। और ऊँची जातियोंके लोग उन्हें जिस तरह भारतमें रखते हैं उससे तो निश्चय ही हमारा व्यवहार बहुत अच्छा होगा। . . .
>
> मेरा तो खयाल है कि अगर इस तरह मजदूरोंको भारतसे बाहर जाने और वापस लौटनेके लिए उत्साहित किया जायेगा तो सारे भारतके लोगोंको उससे बड़ा लाभ होगा।

हम इन बातोंका जवाब कुछ सीधे प्रश्न पूछ कर देना चाहते हैं :

क्या लॉर्ड महोदयको यह पता है कि भारतमें नीचेसे-नीचे वर्गका आदमी धीरज और अध्यवसायके बलपर ऊँचेसे-ऊँचे स्थानपर पहुँच सकता है? क्या वे जानते हैं कि अनेक भारतीय एक साधारण मजदूरकी स्थितिसे बहुत सम्मानित पदोंपर पहुँचे हैं? क्या यह सत्य नहीं है कि भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको जबरदस्ती स्वदेश लौटानेका कारण यह है कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर व्यापार और दूसरे व्यवसायोंमें वे यूरोपीयोंके साथ होड़ करने लग जायेंगे? क्या यह कहनेमें अप्रत्यक्ष रूपसे भारत-सरकारकी निन्दा नहीं है कि भारतीय मजदूरोंके साथ खुद भारतमें जैसा व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा ट्रान्सवालमें अधिक अच्छा व्यवहार होगा? (व्यक्तिगत रूपसे हम नहीं मानते कि शारीरिक व्यवहारका प्रश्न यहाँ उठता भी है, क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि ट्रान्सवालमें मजदूरोंके साथ काफी अच्छा व्यवहार होगा।) क्या लॉर्ड महोदय सचमुच मानते हैं कि यदि ऊँची जातिके लोग भारतमें नीची जातिके लोगोंके साथ विवेकपूर्ण बरताव नहीं करते हैं तो, इसी कारण, एक उदार शासनके

मातहत यहाँ भी — भले कुछ बदले हुए रूपमें ही क्यों न हो — ऐसा भेदभाव बरतना उचित है? और क्या वे यह नहीं जानते कि भारतकी ऊँची जातियोंके लोगोंमें जो भी कमियाँ हों, कमसे-कम वे अपने स्वार्थ-साधनके लिए तो परिवर्तित रूपमें गुलामीकी प्रथाको आश्रय नहीं देते? ट्रान्सवालमें बरसों रह लेनेके बाद और उसे भारतकी अपेक्षा अधिक अपना घर बना लेनेके बाद यदि ये मजदूर जबरदस्ती भूखों मरनेके लिए भारत भेज दिये जायेंगे तो क्या उससे इनका या भारतके अन्य निवासियोंका आर्थिक लाभ होगा? क्या यह किसी भी अर्थमें उचित कहा जा सकता है कि मनुष्योंके एक समाजको महज इस आशंकासे बौना बना दिया जाये कि वह मनुष्योंके दूसरे समाजसे स्पर्धा करने लगेगा? इस परिस्थितिको रोकनेका क्या यह रास्ता अधिक सीधा नहीं है कि गिरमिटिया मजदूरोंको लाना ही बन्द कर दिया जाये और उपनिवेशको अपने स्वाभाविक क्रमसे धीरे-धीरे विकसित होने दिया जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–१२–१९०३

६१. लेडीस्मिथमें भारतीयोंके परवाने

लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सने शहरके परवाना-अधिकारीकी हैसियतसे शहरके भारतीयोंको सूचनाएँ भेजी हैं। उनमें विक्रेता-परवाना अधिनियमकी वे धाराएँ बताई गई हैं जिनमें व्यापारके परवाने देनेकी शर्तोंका उल्लेख है। साथमें प्रार्थनापत्रोंके फार्म भी भरनेके लिए भेजे हैं, जिनमें निम्न महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद आया है:

> **मैं पाबन्द होता हूँ कि शनिवारको छोड़कर किसी भी दिन शामको पाँच बजे बाद अपनी दूकानको व्यापारके लिए खुला न रखूँगा। मैं अपने कारोबारकी जगहको सरकारी छुट्टीके सब दिनोंमें बन्द रखनेके लिए भी पाबन्द होता हूँ।**

कुछ सप्ताह पूर्व ही हमने श्री लाइन्स और लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोंकी मुलाकातकी खबर छापी थी, जिसमें श्री लाइन्सने धमकी दी थी कि यदि ब्रिटिश भारतीय अपनी दूकानें शामको पाँच बजे बन्द करना स्वीकार न करेंगे तो वे उनके परवाने अगले वर्षके लिए नये न करेंगे। अब उन्होंने कदम आगे बढ़ाया है, और स्पष्टतः धमकी अमलमें लायी जायेगी। हम अपना यह मत व्यक्त कर ही चुके हैं कि यदि सम्भव हो तो लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोंके लिए श्री लाइन्सके प्रस्तावको मान लेना ठीक होगा। हमें सन्देह नहीं, इससे अन्तमें बहुत भलाई होगी। निःसन्देह यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय व्यापारी पाँच बजे सायंकाल अपनी दूकानें बन्द करके अपना व्यवसाय कर सकेंगे। सम्भव है उनका अधिकांश व्यवसाय केवल पाँच बजे बाद ही होता हो। इस स्थितिमें इस माँगकी पूर्ति उनके लिए असम्भव होगी; किन्तु यदि ऐसी बात हो और यह अन्ततः सिद्ध भी किया जा सके तो, हमारा खयाल है, श्री लाइन्समें इतनी न्यायबुद्धि अवश्य होगी कि वे पाबन्दीकी शर्तको छोड़ ही दें। यह पूर्णतः आपसी समझौतेका मामला है। हमें भरोसा है कि लेडीस्मिथके भारतीय काफी संयमसे काम लेंगे और यह देखेंगे कि जो मार्ग हमने सुझाया है उसका अवलम्बन करनेमें उनका हित है। यदि दूकानें बन्द करनेका यह नियम समस्त व्यापारियोंपर लागू न होता हो तो निःसन्देह उक्त आश्वासन

किसी भी अवस्थामें नहीं दिया जा सकता। इस सम्बन्धमें हम उनका ध्यान भी लाइसेंसकी सूचनामें दी गई निम्न धाराकी ओर आकर्षित करते हैं:

> उन दूकानों-मकानोंके सम्बन्धमें कोई परवाने न दिये जायेंगे जो निर्दिष्ट व्यापारके लिए अनुपयुक्त होंगे या जिनमें स्वास्थ्य और सफाईकी उचित और आवश्यक व्यवस्था न होगी, या दोनों कामोंके लिए व्यवहृत होनेवाली इमारतोंके मामलेमें विक्रेताओं, मुहर्रिरों या नौकरोंके लिए गोदाम-घरों या उन कमरोंके अतिरिक्त, जिनमें माल और सामान रखा जा सके, पर्याप्त और योग्य स्थान न होगा।

यह निःसन्देह ऐसी व्यवस्था है जिसकी पूर्तिमें कोई भी हिचक या कठिनाई न होनी चाहिए। सचाई यह है कि लेडीस्मिथके अधिकतर भारतीय गोदाम उस प्रकारकी सभी आपत्तियोंसे मुक्त हैं, यह हम जानते हैं, किन्तु यह बताना अच्छा है कि उल्लिखित धारा भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे कार्यान्वित की जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०३

६२. सरकार तथा बारबर्टनके भारतीय

४ दिसम्बरके ट्रान्सवालके सरकारी *गजट*में श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके हस्ताक्षरोंसे एक सूचना छपी है जिसके द्वारा भारतीयोंकी वर्तमान बस्ती ही *बाजारकी* जगह निश्चित कर दी गई है। उसमें यह असाधारण अनुच्छेद भी है:

> इस *बाजारमें* माहवारी किरायेदारीपर बाड़े *केवल* उन्हीं एशियाइयोंको दिये जायेंगे जो वर्तमानमें वहाँ रह रहे हैं या व्यापार कर रहे हैं। मियादी पट्टे नहीं दिये जायेंगे और किरायेदारोंको उपकिरायेदार रखनेका अधिकार नहीं होगा ('केवल' खुद सूचनामें ही दूसरे टाइपमें है)।

इस प्रकार बारबर्टनके आवासी मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई सूचनाके जिस अत्यन्त आपत्तिजनक अंगकी तरफ कुछ समय पहले हमने पाठकोंका ध्यान खींचा था, उसे सरकारने कायम रखा है। अब बस्तीको बन्द करनेके विरोधमें आपत्ति करके वास्तविक न्याय पानेका प्रयत्न करनेपर भारतीयोंके सामने सम्भावना यह आती है कि उपकिरायेदार न रखनेकी नई शर्तके कारण उन्हें बगैर मुआवजेके बस्ती छोड़ नये *बाजारमें* जानेके लिए मजबूर होना पड़ेगा। पाठकोंको ज्ञात है कि इस नये *बाजारके* खिलाफ भी गंभीर आपत्तियाँ उठाई गई हैं। अगर वहाँ नहीं जाना है तो उन्हें बारबर्टनको ही छोड़ देना होगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर कहते हैं कि बोअरोंके शासनकालमें भारतीयोंके साथ जैसा व्यवहार होता था उसकी अपेक्षा अब उनके साथ कहीं अच्छा व्यवहार हो रहा है!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०३

६३. "मॉर्निंग पोस्ट" और एशियाई मजदूर

अभी हमारे हाथोंमें जोहानिसबर्गके जो समाचारपत्र आये हैं उनमें *मॉर्निंग पोस्ट* द्वारा भारत-सरकारसे गिरमिटिया मजदूर भेजनेके सम्बन्धमें की गई अपीलका समाचार छपा है। *डेली मेलका* संवाददाता कहता है कि पराये चीनियोंके बजाय ब्रिटिश भारतीय मजदूरोंसे खानोंकी खुदाई करवानेकी आशा अभी इस पत्रने छोड़ी नहीं है। उसने लिखा है कि यह पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्यके हितमें है कि भारत-मन्त्री श्री ब्रॉड्रिक भारतके वाइसराय लॉर्ड कर्ज़नसे ट्रान्सवालके साथ भारतीय मजदूरोंके बारेमें कोई समझौता करनेका आग्रह करें, जिसमें कुलियोंके साथ अच्छे व्यवहारका आश्वासन तो हो, परन्तु उन्हें राजनीतिक अधिकार देनेका नहीं। हम नहीं जानते कि "राजनीतिक अधिकार" से *मॉर्निंग पोस्ट* क्या समझता है, परन्तु हमें बड़ा भय है कि दक्षिण आफ्रिकामें इन शब्दोंका प्रयोग एक ऐसे नये अर्थमें करनेका विचार किया जा रहा है, जिसमें ब्रिटिश प्रजाजनोंके घूमने-घामने, व्यापार करने और रहनेके मामूली अधिकार भी सम्मिलित हो जायें। ब्रिटिश भारतीय मताधिकारकी आकांक्षा नहीं करते, परन्तु व्यापार करनेकी और जहाँ उनकी इच्छा हो वहाँ बसनेकी पूर्ण स्वतन्त्रताका — जहाँतक वह रंग-भेदके बगैर किये गये सफाईके प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी रिवाजोंके विरुद्ध न पड़ती हो — आग्रह जरूर रखते हैं। अगर *पोस्ट* हमारी बताई इन बातोंको अच्छे व्यवहारका अंश मानता है तो हमें उसकी अपीलके विरोधमें कुछ भी नहीं कहना है; परन्तु जैसा कि ट्रान्सवालके लोग जोर दे रहे हैं, यदि इन मजदूरोंको जबरदस्ती स्वदेश लौटाया जानेवाला है, और उनपर दूसरे नियन्त्रण लगाये जानेवाले हैं, तो हमें कहना होगा — जैसा कि हमने बहुधा कहा है — कि इन व्यापारियोंके अधिकार हमें बहुत ही महँगे पड़ेंगे। और जब *मॉर्निंग पोस्ट* जैसा प्रभावशाली अखबार भी ट्रान्सवालके लिए भारतीय मजदूरोंकी जरूरतपर जोर देता है तो भारतीयोंके हितैषी इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकाकी घटनाओंपर जितनी भी सावधानीसे नजर रखें उतनी थोड़ी ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०३

६४. "बाजार"-सूचनामें संशोधन[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ११, १९०३

सरकारका विचार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें एक संशोधन पेश करनेका है, उसके फलस्वरूप ट्रान्सवालके कुछ ब्रिटिश भारतीय विशेष रूपसे पृथक बनाये गये *बाजारों* या बस्तियोंमें ही अपना व्यापार चलानेकी पाबन्दीसे मुक्त हो जायेंगे।

परन्तु इस संशोधनमें सब वर्तमान परवानेदार नहीं आते। संशोधित कानूनका असर फिर भी यह रह जायेगा कि कोई एक सौ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको बस्तियोंमें जाना पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि ये सब व्यापारी बिलकुल बरबाद हो जायेंगे।

इसलिए यहाँ ब्रिटिश भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया कि जबतक ट्रान्सवालके भारतीय-विरोधी कानूनोंमें वह परिवर्तन नहीं कर दिया जाता, जिसका वादा किया गया है, तबतक सभी वर्तमान परवानेदारोंकी रक्षा की जाये।

विधान-परिषद प्रस्तावित संशोधनपर आगामी सोमवार, १४ दिसम्बरको विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १८-१२-१९०३

६५. तार: ब्रिटिश समितिको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १२, १९०३

सेवामें
इनकाज़

सरकार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचना संशोधन लाना और सब वर्तमान परवानोंको शामिल न करके केवल कुछ भारतीयोंको *बाजारमें* व्यापारकी पाबन्दीसे मुक्त करना चाहती है। इसका अर्थ है लगभग सौ व्यापारियोंको बस्तियोंमें अनिवार्यत: हटाना और उनकी बिलकुल बरबादी। अत: ब्रिटिश भारतीयोंकी सामूहिक सभामें प्रस्ताव द्वारा प्रार्थना की गई कि सब वर्तमान परवानेदारोंको भारतीय-विरोधी कानूनोंमें परिवर्तन होने तक संरक्षण दिया जाये। परिषदमें संशोधन पर विचार सोमवारको होगा। कृपया सहायता करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ५७/१९०४।

१. यह "एक संवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

६६. एक सामान्य पत्र[1]

[दिसम्बर १७, १९०३के पूर्व]

महोदय,

परिषदके कार्यक्रममें इस वर्षकी *बाजार*-सूचना ३५६ के संशोधनपर माननीय उपनिवेश-सचिवके नामपर जो प्रस्ताव पेश है, उसके सम्बन्धमें विधान-परिषदके विचारार्थ एक प्रार्थनापत्र[2] पहले ही भेजा जा चुका है। मेरे संघकी विनती है कि श्रीमान उसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

तथापि कुछ बातें ऐसी हैं जिनका उल्लेख प्रार्थनापत्रमें ठीक तरहसे नहीं किया जा सकता था। इसलिए मेरा संघ यह निवेदन आपकी सेवामें प्रस्तुत करनेकी अनुमति चाहता है।

प्रार्थनापत्रमें जिस विषयकी चर्चा की गई है वह भारतीय समाजके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और अगर यूरोपीय व्यापारियोंके दृष्टिकोणसे देखा जाये तो उनके लिए उसका कोई तुलनात्मक महत्त्व नहीं है।

अगर माँगी गई राहत नहीं मिलती तो आगामी १ जनवरीको ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अत्यन्त संकटग्रस्त हो जायेगी।

आप परिस्थितिको पूरी तरह समझ सकें, इस उद्देश्यसे सरकारके प्रति सम्पूर्ण आदर प्रकट करते हुए मैं कहता हूँ कि *बाजारों*के लिए जो स्थान चुने गये हैं वे व्यापारकी दृष्टिसे निकम्मे हैं। लगभग प्रत्येक स्थान शहरसे बहुत दूर है और वहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं हैं। वहाँ जानेका मतलब भारतीयोंके लिए बिलकुल नये कस्बे या गाँव बसाने जैसा ही होगा।

इस बातका अधिक विस्तार करना आवश्यक है, क्योंकि आप देशसे परिचित हैं, और कमसे-कम कुछ *बाजारों*के स्थानोंकी स्थिति भी जानते हैं। इसलिए अन्य कारणोंसे नहीं तो केवल इसी कारणसे सही, निवेदन यह है कि वर्तमान परवानेदारोंको छेड़ना उनके लिए अत्यन्त संकटावह होगा।

मेरे संघको पता है कि परिषदके कुछ माननीय सदस्य मानते हैं कि उपनिवेशमें लड़ाईसे पहले जितनी भारतीय आबादी थी उसकी अपेक्षा अब बहुत अधिक है और उपनिवेशमें ऐसे बहुत-से भारतीय घुस आये हैं जो पहले यहाँ नहीं रहे हैं। मैं आपको निश्चय दिलाना चाहता हूँ कि वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। कुछ नये लोग देशमें जरूर आ गये हैं; परन्तु परवानोंके सिलसिलेमें पिछले दिनों जो मुकदमे चलाये गये थे उनके फलस्वरूप बहुत-से लोगोंको देशकी सीमासे बाहर कर दिया गया है और उन नये लोगोंमें से तो शायद ही किसीके पास परवाना हो।

इसलिए मेरे संघकी यह विनती नये लोगोंकी तरफसे नहीं, परन्तु सच्चे शरणार्थियोंकी तरफसे है। उन्हें *बाजारोंमें* भेजनेके इस प्रयासका एकमात्र कारण यह है कि लड़ाईसे पहले वे ट्रान्सवालमें व्यापार नहीं करते थे या विशेषतः जिन स्थानोंमें व्यापार करनेके परवाने अब उनके पास हैं उनमें वे लड़ाईके पहले व्यापार नहीं करते थे। यह एक ऐसा भेद है कि उसका औचित्य समझमें आना कठिन है। असलमें छोटे-छोटे शहरोंमें भारतीय व्यापारियोंकी तथाकथित होड़का भय इस कदमकी जड़में है। परन्तु मेरे संघका नम्र निवेदन तो यह है कि ऐसे छोटे शहरोंमें बहुत कम भारतीय व्यापारी हैं। इनमें से अधिकांश तो मुख्यतः जोहानिसबर्गमें

१. यह ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवाल विधान-परिषदके सदस्योंको लिखा था।

२. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल-परिषदको," दिसम्बर ८, १९०३।

हैं, जहाँ कि यह दुर्भाव इतना तीव्र नहीं है और न वहां ऐसी भारी होड़ ही अनुभव की जा रही है, क्योंकि वहाँ यूरोपीय व्यापारियोंकी संख्या बहुत अधिक है। तब क्या इन थोड़े-से गरीब भारतीय व्यापारियोंकी रोटी छीनना ठीक है, क्योंकि जितनी भी बार यह कहा जाये, थोड़ा ही होगा कि भारतीयोंका *बाजारोंके* बाहर जो व्यापार है उसे सफलताकी सम्भावनाके साथ बस्तियोंमें ले जाना असम्भव है? मेरा संघ इस सम्बन्धमें कुछ उदाहरण पेश करना चाहता है:

उदाहरणके लिए, रस्टेनबर्गमें केवल एक भारतीय व्यापारी व्यापार कर रहा है, यद्यपि वह लड़ाईसे पहले वहाँ व्यापार नहीं करता था। यहाँ क्षेपक रूपमें कहा जा सकता है कि वह जोहानिसबर्गमें जरूर वर्षोंतक व्यापार करता रहा है। क्या यह अकेला भारतीय *बाजारमें* चला जाये जो कि लगभग बियाबान जंगल-सा है, जहां कोई आवागमन नहीं और जहाँ अकेले एक आदमीका रहना भी खतरनाक है? और क्या केवल इस आदमीको हटा देनेसे आज शहरमें जो दूसरे व्यापारियोंका व्यापार चल रहा है उसमें कोई कहने लायक अन्तर पड़ जायेगा?

श्वीज़र रेनेककी बात तो इससे भी गम्भीर है। वहाँ दो व्यापारी हैं, जो लड़ाईसे पहले वहाँ व्यापार नहीं करते थे, यद्यपि उनमें से कमसे-कम एक लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें व्यापार करता था। इस जगह बहुत कम मकानात हैं और आबादी भी बहुत विरल है। क्या ये दो आदमी उस बस्तीमें जाकर कुछ भी व्यापार कर सकेंगे, जो बहुत दूर है और जहाँ आज एक भी आदमी नहीं रहता?

इस तरहके बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। उनसे प्रकट है कि प्रयोगमें लाये जानेवाले साधन और प्राप्त किये जानेवाले परिणामके बीच हद दर्जेका अनमेलपन है। संघका मत है कि इन देशभरमें बिखरे व्यापारियोंको *बाजारोंमें* भेजना बीमारीको भगानेका अत्यन्त उग्र उपाय है और इससे वह बीमारी अच्छी नहीं होगी, जो मौजूद बताई जाती है। हाँ, अगर नये आनेवाले भारतीयोंको *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेकी इच्छा हो तो इसको मेरा संघ पूरी तरह समझ सकता है। फिर भी जिनका व्यापार-व्यवसाय निःसन्देह जम गया है उनके प्रति उपेक्षापूर्ण रुखको सहन करना बहुत कठिन है, क्योंकि पिछले वर्ष जो परवाने दिये गये थे वे भारतीयोंने खुले तौरपर जायज तरीकेसे प्राप्त किये थे। ब्रिटिश अधिकारियोंने भी उनको ये परवाने यह जानते हुए कि वे भारतीय हैं और लड़ाईसे पहले अपने क्षेत्रोंमें व्यापार नहीं करते थे, इस आधारपर दिये थे कि वे शरणार्थी हैं। इन परवानोंको जारी करते समय कोई शर्तें भी नहीं लगाई गई थीं।

इसलिए मेरा संघ आदरपूर्वक पूछता है कि क्या इन मुट्ठीभर भारतीयोंको इस तरह परेशान करना वाजिब है, जिन्होंने अपना व्यापार अच्छी तरह जमा लिया है, जिनके भण्डारोंमें बहुत-सा माल पड़ा है और जिनमें से कुछने अपने कब्जेकी जगहोंके लम्बे पट्टे लिखा रखे हैं? मेरा संघ मानता है कि आप केवल यूरोपीयोंके हितोंका ही नहीं, बल्कि उन सबके हितोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, जो इस उपनिवेशमें बस गये हैं; और विशेष रूपसे उनका, जो ब्रिटिश प्रजाजन हैं। इसलिए मेरा संघ आशा करता है कि उसने आपके सामने जो प्रश्न रखा है उसका अध्ययन करनेके लिए आप जरूर समय निकालेंगे और न्यायोचित निर्णयपर पहुँचेंगे।

आशा है आप कष्टके लिए क्षमा करेंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०३

६७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसवर्गके अखवारोंमें हमने पढ़ा कि ट्रान्सवालकी विधान-परिषदकी कार्रवाई प्रार्थना-पूर्वक शुरू हुई। अपने भाषणके अन्तमें परमश्रेष्ठ परिषद-अध्यक्षने सदस्योंको "सर्वशक्तिमान परमेश्वरके मार्गदर्शनमें" सौंपा और उससे "अत्यन्त भावभरी प्रार्थना की कि उनकी सारी मन्त्रणाएँ उसकी महिमाको वढ़ायें और राज्यको समृद्ध वनायें।" और, उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि "उन्हें अपने कार्यमें परमात्माका अनुग्रह प्राप्त होगा।" यह सव वहुत धर्ममय है और यहाँतक तो वहुत संतोषजनक भी है। जो ईश्वरका भय मनमें रखकर प्रत्येक कार्य करते हैं और अपने प्रत्येक कार्यमें उसका मार्गदर्शन चाहते हैं, उनसे भय करनेकी कोई वात नहीं है। परन्तु दुर्भाग्यसे इस तरहकी वातें वहुत-कुछ रूढ़ वन गई हैं। हम प्रार्थना इसलिए करते हैं कि वह रिवाजमें आ गई हैं; हम ईश्वरकी मदद भी इसीलिए माँगते हैं कि वह भी एक रिवाज हो गया है, इसलिए नहीं कि हम उसे कोई विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं या उसके पीछे सचमुच ऐसी कोई भावना होती है, जो उसकी मदद प्राप्त करनेके लिए जरूरी है। हमें वहुत भय है कि, जव परमश्रेष्ठने प्रार्थना पढ़ी या अपने भाषणको समाप्त किया तव शायद उन्होंने अपने-आपसे यह प्रश्न भी नहीं पूछा कि परिषदके विचारणीय विषयोंमें कोई ऐसी वात तो नहीं है, जो सम्भवतः प्रभु-महिमाको वढ़ानेवाली न हो। खैर, हम तो वस्तुस्थितिको ही जाँचें। उपनिवेश-सचिव श्री पी० डंकनने नीचे लिखे प्रस्तावकी सूचना दी :

> एशियाइयोंके व्यापारके लिए *वाजारोंकी* तजवीज करनेके सम्वन्धमें ८ अप्रैल १९०३ की शासकीय सूचना ३५६की उपधारा ३ में 'लड़ाई' शव्दके वाद नीचे लिखे शव्द जोड़ दिये जायें —— इसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें उन एशियाइयोंको परवाने दिये जायें, जो लड़ाई शुरू होते समय अथवा उसके तुरन्त पहले ऐसी जगहोंमें व्यापार करते थे, जिनको सरकारने विशेष रूपसे निश्चित नहीं किया था — भले ही उनके पास उस समय ऐसे व्यापारके लिए कानूनके अनुसार आवश्यक परवाने न भी रहे हों। वे तमाम व्यापारी, जो इस उपधाराके मातहत परवाने पानेकी माँग करें, इस सम्वन्धमें अपना सवूत राजस्व-अधिकारीके सामने पेश करें और उसको सन्तोष करा दें कि उनके सम्वन्धमें उपर्युक्त शर्तें पूरी हो जाती हैं।

इस प्रस्तावके वारेमें ब्रिटिश भारतीय क्या सोचते हैं, यह वतानेके लिए *इंडियन ओपिनियन*के इस अंकमें पाठकोंको काफी सामग्री मिलेगी। इन स्तम्भोंमें हम अनेक वार वता चुके हैं कि *वाजार*-सम्वन्धी सूचना अनावश्यक है और वह स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियों तथा श्री चेम्वरलेन द्वारा समय-समयपर दिये गये वचनोंके विपरीत है; परन्तु इस समय हम वह प्रश्न नहीं उठाना चाहते। हम तो ब्रिटिश भारतीय अर्जदारोंने अपनी दरख्वास्तमें जो स्थिति अपनाई है, केवल उसीकी जाँच करेंगे।

परन्तु ऐसा करनेसे पहले हम इस अवसरपर अपने ट्रान्सवालवासी देशभाइयोंको वधाई देते हैं कि, उन्होंने ऐसी सराहनीय क्रियाशीलता दिखाई है और इतने व्यवस्थित ढंगसे अपने प्रार्थनापत्र अधिकारियोंके सामने पेश किये हैं। उसी हफ्तेके मंगलवार और शुक्रवारके वीच विधानसभाको प्रार्थनापत्र देना, सदस्योंको एक लम्वा गश्तीपत्र भेजना और सफल सार्वजनिक

सभा करना, जिसमें लगभग पाँचसौ लोग उपस्थित हों, बहुत ही सराहनीय काम है, और हम नेटाल-वासी भारतीयोंके लिए अनुकरणीय है।

अब हम प्रस्तुत विषयपर आते हैं। संक्षेपमें स्थिति यह है:

बाजार-सूचना उन ब्रिटिश भारतीयोंके परवानोंमें हस्तक्षेप नहीं करती, जो यह दिखा सकते हैं कि लड़ाई छिड़ते समय उनके पास *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। अब सरकार यह संरक्षण उन लोगोंको भी देना चाहती है जो लड़ाई छिड़ते समय बिना परवानोंके व्यापार करते थे। फिर तो केवल वे भारतीय शेष रह जाते हैं जो यद्यपि लड़ाईसे पहले व्यापार तो नहीं करते थे, परन्तु शरणार्थी होनेके कारण ब्रिटिश अधिकारियोंसे परवाने प्राप्त कर सके थे। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंने विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र दिया है और विनती की है कि इस अन्तिम वर्गके व्यापारियोंको भी संरक्षण दिया जाये। उनका तर्क कुछ इस प्रकार है:

जिन लोगोंको आप संरक्षण नहीं देना चाहते उनकी संख्या बहुत छोटी है और जहाँ तक यूरोपीयोंकी भावनाका प्रश्न है, वह विचार करने योग्य भी नहीं है। करीब छः सौ परवाने हैं। इनमें से उक्त अर्थमें नये प्रकारके व्यापारियोंको अलग करके आप करीब सौ आदमियोंको बस्तियोंमें खदेड सकेंगे। इससे होडमें मुश्किलसे कोई अन्तर पडेगा। आपने इन परवानेदारोंकी रक्षा करनेका बार-बार वचन दिया है। श्री चेम्बरलेनने यह वचन दिया है, और लॉर्ड मिलनरने भी दिया है। लडाईसे पहले ब्रिटिश एजेंटोंने गणराज्यकी हुकूमतसे कारगर अर्जी-पुर्जा करके ब्रिटिश भारतीयोंको व्यापार दिलाया था। इसलिए यद्यपि आपने सिंहके समान शक्ति पा ली है, फिर भी आपको अपनी इस शक्तिका उपयोग इन थोड़ेसे आदमियोंको कुचल कर उनका अस्तित्व मिटा देनेमें नहीं करना चाहिए। हमने कोई अपराध नहीं किया है। आप हम पर ऐसे दोषोंका आरोप कर रहे हैं, जिनकी अगर उचित जाँच की जाये तो आप देखेंगे कि वे कोई दोष ही नहीं हैं, और व्यापारिक ईर्ष्याको भी इतना बढ़ावा नहीं देना चाहिए कि उससे निहित अधिकार खतरेमें पड जायें।

हमें ऐसा मालूम होता है कि ऐसी दलीलका, जैसी यह है, कोई जवाब नहीं है और जोहानिसबर्गमें वेस्ट ऐंड हॉलकी बड़ी सभामें वक्ताओंने जो तथ्य बताये, वे सही हैं। तो क्या सरकारने जो रुख धारण किया है वह परमश्रेष्ठकी विधान-परिषदके सदस्योंको ईश्वरके मार्ग-दर्शनमें सौंपनेकी बातसे मेल खाता है? और क्या उसकी "परिषदके सदस्योंकी मन्त्रणाएँ ईश्वरकी महिमाको बढ़ायें," इस भावभरी प्रार्थनासे कोई संगति है? हम स्पष्ट रूपसे कहते हैं कि इसमें हमें ईश्वरका हाथ दिखाई नहीं देता। हम यह भी नहीं मानते कि सैकड़ों निर्दोष व्यापारियोंको बरबाद कर देनेसे किसी प्रकार भी ईश्वरकी महिमा बढ़ सकती है, या राज्य समृद्ध बन सकता है।

उधर हम देखते हैं कि पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार-संघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स) उपर्युक्त सशोधन करनेकी हिम्मत करनेपर सरकारके खिलाफ डंडा लेकर खड़ा हो गया है। वह इस बातपर आगबबूला हो रहा है कि जिस सरकारने लड़ाईसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंको पिछली प्रजातन्त्री सरकारके कानूनोंका भंग करके भी बगैर परवानोंके व्यापार करनेमें मदद दी, वही अब उन परवानोंको कानूनी मानकर उन्हें वही संरक्षण दे रही है और विलम्बसे ही सही, उनके साथ न्याय कर रही है। इसलिए उन्होंने विधान-परिषदको एक अर्जी भी भिजवाई है। इस तरह सरकारके सामने एक तरफ ब्रिटिश भारतीयोंकी अत्यन्त युक्तिसंगत विनती है, जिसमें सरकारसे एक बहुत छोटा न्याय माँगा गया है, और दूसरी तरफ पूर्वी ट्रान्सवालके पहरेदार-संघके सदस्य विरोधी हैं, जिनकी माँग है कि भारतीयोंके साथ किसी प्रकार भी न्याय न किया जाये। बॉक्स-बर्गके इन भले आदमियोंकी दलीलपर दुःख होनेके साथ-साथ हँसी भी आती है। उनका खयाल

है कि अगर सरकारने *बाजार*-सूचनामें किसी प्रकारका भी संशोधन किया तो यह ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंके साथ विश्वासघात होगा। क्या ये भले आदमी क्षणभर यह विचार भी करनेका कष्ट करेंगे कि इस तरहकी दलील देकर वे अपने आपको कितनी हास्यास्पद स्थितिमें रख रहे हैं, क्योंकि सरकारके लिए भारतीयोंके प्रति पहले घोर विश्वासघात किये बगैर गोरे निवासियोंको किसी प्रकार भी वचन देना असम्भव है? हमारे ये मित्र यह उम्मीद कैसे कर रहे हैं कि सरकार भारतीयोंको निश्चित रूपसे बस्तियोंमें भेजनेका निश्चित वचन दे, जब कि साम्राज्य-सरकारने इसी प्रश्नको लेकर युद्धकी घोषणातक कर दी थी? *बाजार*-सूचना निकल चुकी है, यह सही है। परन्तु हमने जो-जो बातें कही हैं उनको ध्यानमें रखते हुए इसका अर्थ यह तो नहीं लगाया जा सकता कि वह गोरे निवासियोंको किसी प्रकारका वचन है, यद्यपि हम यह स्वीकार करते हैं कि इस सूचनाको जारी करना सरकारकी कमजोरीका चिह्न है। परन्तु सूचना निकलनेपर यह तर्क असंगत है कि अब सरकारको उसमें अपनी पसन्दके मुताबिक किसी प्रकार भी संशोधन करनेका अधिकार नहीं है। हमारी तो विनीत राय है कि ट्रान्सवालकी शक्तिशाली सरकारके सामने सीधा रास्ता यह है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोंको जो वचन दिये हैं उनका वह पालन करे; और केवल यही नहीं, इन वचनोंके अलावा भी उसका यह कर्तव्य है कि वह बलवान पक्ष अर्थात् यूरोपीयोंके विरोध और दुर्भावोंसे कमजोरों अर्थात् भारतीयोंकी रक्षा करे, क्योंकि स्वार्थ बलवानोंकी न्याय-भावनाको अन्धा कर सकता है। इसलिए सरकारको उनके विरोधसे विचलित नहीं होना चाहिए — भले ही वह जोरदार भी क्यों न हो — बल्कि परस्पर-विरोधी स्वार्थोंके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रख कर विशुद्ध न्याय ही करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०३

६८. जोहानिसबर्गमें भारतीयोंकी आम सभा

पिछले शुक्रवारकी सुबह जोहानिसबर्गमें हमारे भाइयोंकी एक बड़ी सभा हुई थी। उसमें २४ घंटेकी सूचनापर गांव-गांवसे प्रतिनिधि शामिल हुए, जिसके लिए उन्हें शाबाशी दी जानी चाहिए। विख्यात पेढ़ी मुहम्मद कासिम कमरुद्दीनके संचालक सेठ अब्दुल गनी सभाके अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रभावशाली भाषण दिया और साबित किया कि सरकार कानूनमें जो फेरफार करनेवाली है वे काफी नहीं हैं। इस समय ट्रान्सवालमें भारतीय व्यापारी तीन तरहके हैं: (१) जो लड़ाईसे पहले परवाने लेकर व्यापार कर रहे थे; (२) जो बगैर परवाना लिए व्यापार करते थे; और (३) ब्रिटिश शासन आनेके बाद जिन्हें परवाने दिये गये। लड़ाईसे पहले जो परवाने लेकर व्यापार करते थे उन्हें नये परवाने दिये जा रहे हैं। अब सरकार यह सुधार करना चाहती है कि दूसरे वर्गके लोगोंको, अर्थात् लड़ाईसे पहले जो व्यापार करते थे, परन्तु जिनके पास तब परवाने नहीं थे, उन्हें भी परवाने दे दिये जायें। इस सभाका उद्देश्य यह था कि तीसरे वर्गके व्यापारियोंके साथ भी न्याय हो; अर्थात् जो लोग पहले व्यापार नहीं करते थे परन्तु जिन्हें ब्रिटिश अधिकारियोंने परवाने दे दिये थे उन्हें भी परवाने दिये जायें। स्वयं चेम्बरलेनने भी कहा था कि परवाने उन्हें भी जरूर दिये जाने चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०३

६९. एक सामान्य पत्र[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२१–२४, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १७, १९०३

महोदय,

इस वर्षकी एशियाई *बाजार*-सूचना ३५६ में प्रस्तावित संशोधनके सम्बन्धमें प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर ऑफ कॉमर्सकी बैठक समीप आ रही है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए मैं ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) की ओरसे एक संक्षिप्त विवरण आपके विचारार्थ नम्रतापूर्वक प्रस्तुत करता हूँ।

परम माननीय श्री चेम्बरलेन जब ट्रान्सवाल आये थे, तब उनसे ब्रिटिश भारतीयोंका एक शिष्टमण्डल मिला था। उन्होंने शिष्टमण्डलके सदस्योंको परामर्श दिया था कि वे यथासंभव उपनिवेशवासी यूरोपीयोंसे एकमन होकर चलें। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरा संघ जिस समुदायका प्रतिनिधित्व करता है उसके सदस्योंकी सदा यही अभिलाषा रही है।

मैं समझता हूँ कि भारतीयोंके विरुद्ध आम आपत्ति उनके रहन-सहनके तरीकेके सम्बन्धमें है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि, वे इस दिशामें क्या कर सकते हैं — अभीतक उन्हें यह दिखानेका अवसर ही नहीं दिया गया है। उनकी स्थितिकी व्याख्या कभी स्पष्ट रूपसे नहीं की गई। वे अनिश्चितताकी स्थितिमें रहनेके लिए बाध्य किये गये हैं। कुछ भी हो, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सफाई या व्यवसाय-स्थानोंकी निवास-स्थानोंसे पृथकताके सम्बन्धमें जो भी नियम बनाये जायेंगे, भारतीय उनको तत्काल मान लेंगे। वस्तुतः मेरे संघने सरकारकी सेवामें निवेदन-पत्र भेजा है कि नये प्रार्थियोंको व्यापारिक परवाने देना नगरपालिकाके नियन्त्रणमें रहे; किन्तु सत्ताके दुरुपयोगके विरुद्ध संरक्षण देनेके निमित्त उन्हें अदालतमें अपीलका अधिकार रहे। यह बात भारतीय समाजको बिलकुल स्वीकार होगी।

उपनिवेशके बहुतसे लोगोंके मनमें यह भय है कि भारतीयोंका उपनिवेशमें प्रवास अनियंत्रित रहेगा तो वे अपने संख्या-बलसे ही गोरी आबादीको दबा लेंगे। मेरा संघ इस आशंकासे परिचित है। यद्यपि मेरा संघ इस प्रकारके प्रत्येक भयको निराधार समझता है, फिर भी अपनी यूरोपीयोंके साथ सहयोगकी इच्छाकी सचाई बतानेके लिए उसने कुछ परिवर्तनोंके साथ केप-अधिनियमके आधारपर प्रवासपर रोक लगानेवाले विधानका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है।

परन्तु प्रस्तावित संशोधनपर विचारके लिए आम सवालपर गौर करना शायद ही जरूरी है। उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावमें *बाजार*-सूचना ही अमलमें लाई गई है, हालाँकि मेरे संघकी विनीत सम्मतिमें उससे न्यायका मूल सिद्धान्त तबतक पूरा नहीं होता जबतक

१. यह पत्र, जो प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्सके सदस्योंको संबोधित किया गया था, २४–१२–१९०३ के *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुआ था। यह दादाभाई नौरोजीको भी भेजा गया था, जिन्होंने इसकी एक प्रति भारत-मंत्रीको भेजी थी।

उसकी कमीकी पूर्ति संघकी प्रार्थनाके अनुसार नहीं की जाती। उसमें उन ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थोकी रक्षाकी बात है जो बोअरोंके शासनमें ब्रिटिश प्रतिनिधिके हस्तक्षेपसे बस्तियों या *बाजारों*के बाहर परवानोंके बिना व्यापार करते थे। अगर आप उसी संरक्षणको अब भी जारी रखनेका विरोध करेंगे जब ब्रिटिश सरकार उसे देनेकी अधिक अच्छी स्थितिमें है तो मुझे इससे दुःख और आश्चर्य ही होगा।

और यदि आप सब उपनिवेश-सचिवके वर्तमान परवानेदारोंको संरक्षण देनेके प्रस्तावको मंजूर करेंगे तो, आप उस प्रस्तावकी पूर्ति ही करेंगे।

उपनिवेशमें कदाचित् *बाजारोंसे* बाहर ६०० से अधिक एशियाई परवानेदार नहीं हैं। इनमें से ५०० पर *बाजार*-सूचना और प्रस्तावित संशोधनका असर नहीं होगा। इसलिए केवल १०० परवानेदार ऐसे रहेंगे जो सूचनाके अन्दर नहीं आते हैं। तर्क यह है कि इन १०० परवानेदारोंके अधिकार भी उतने ही ध्यान देने योग्य हैं जितने दूसरोंके। क्योंकि वे सभी ट्रान्सवालके ही भूतपूर्व निवासी हैं और उनको ब्रिटिश अफसरोंने किसी प्रकारके प्रतिबन्धके बिना गत वर्ष परवाने दिये थे। इसलिए यदि आप ५०० परवानेदारोंपर से अपनी आपत्ति हटा लेंगे तो शेष परवानोंको भी उसी कोटिमें रखनेसे न्यूनतम न्यायकी पूर्ति ही होगी।

कदाचित् आप लड़ाईसे पहले डचेतर गोरा समितिके सदस्य थे। यदि ऐसी बात है तो मैं यह कह सकता हूँ कि ठीक युद्धसे पूर्व समितिने बड़ी प्रसन्नतासे अपने विचारोंके प्रसारके लिए भारतीयोंका सहयोग प्राप्त किया था। भारतीयोंको समान उद्देश्यकी पूर्तिके लिए साथ लेनेके पक्षमें समितिका एक तर्क यह था कि अंग्रेजोंका अधिकार होनेपर भारतीयोंको १८८५के कानून ३ द्वारा लगाई गई निर्योग्यताओंसे पीड़ित न होना पड़ेगा। इसलिए निवेदन है कि मेरा संघ इस आश्वासनपर अमलकी आशा करनेका अधिकारी है।

भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं। भारतको ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने ब्रिटिश ताजका अत्यन्त प्रकाशमान रत्न बताया है। वह साम्राज्यकी लड़ाइयाँ लड़नेके लिए सदैव उद्यत है। नेटालमें कदाचित् भारतीय सेनाने ही स्थिति बिगड़नेसे बचाई थी। स्थानीय भारतीय भी अपना हिस्सा अदा करनेमें पीछे नहीं रहे थे। उसी समाजके सदस्योंके लिए मेरा संघ आपकी सहानुभूतिकी प्रार्थना करता है और वह भी उस मामलेमें, जो भारतीयोंके लिए तो बहुत अधिक महत्त्वका है, फिर भी आपके लिए अपेक्षाकृत महत्त्वहीन है। इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि असोसिएटेड चेम्बर्स अपनी बैठकमें समस्त वर्तमान भारतीय परवानोंकी रक्षाके लिए सिफारिश करेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

अब्दुल गनी

अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ५७/१९०४।

७०. ट्रान्सवालके व्यापार-संघ और ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा ट्रान्सवालके व्यापार-संघोंके सदस्योंके नाम भेजे गये गश्तीपत्रको[1] ज्योंका-त्यों प्रकाशित कर रहे हैं। उनका सम्मेलन गत १८ तारीखको प्रिटोरियामें हुआ था और *रैंड डेली मेलने* उसकी कार्रवाईका विवरण प्रकाशित किया है। उसे पढ़नेपर ज्ञात होगा कि सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधियोंपर उस गश्तीपत्रका कोई असर नहीं हुआ। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उपनिवेश-सचिवने प्रस्तावित संशोधनपर विचार मुल्तवी करनेका निर्णय बहुत देरसे — ऐन वक्तपर — किया था, इसलिए गश्तीपत्र भी बहुत देरसे भेजा गया। गश्तीपत्रमें यह विशेष स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि यदि लड़ाईसे पहले बगैर परवाने व्यापार करनेवाले भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षा करना उचित है, तो लड़ाईके बाद पैदा हुए ऐसे स्वार्थोंकी रक्षा करना और भी अधिक उचित है। पत्रमें युद्ध-पूर्वकी उचेतर गोरा समितिको भारतीय समाजने जो सहयोग दिया था, उसका भी उल्लेख था। उसका असर भी सदस्योंपर होना चाहिए था। अपनी निजी जानकारीके आधारपर हम कह सकते हैं कि समितिके नेता बहुत चाहते थे कि इंग्लैंडकी सरकारको आवेदनपत्र भेजनेमें भारतीय उनका साथ दें। उस समय भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंपर विशेष रूपसे चर्चा हुई थी और सब इस बातको मानते थे कि अगर लड़ाई हुई तो ये निर्योग्यताएँ खत्म हो जायेंगी। इसलिए सम्मेलनके सदस्योंको यह शोभा नहीं देता कि अब वे उलट पड़ें और भारतीयोंके विरुद्ध ऐसी कड़ी कार्रवाईका सुझाव दें जिसका लड़ाईसे पहले बुरेसे-बुरे दिनोंमें सपनेमें भी खयाल नहीं था। इस प्रकारके सुझावोंके पक्षमें सदस्योंने जो दलीलें पेश की वे अत्यन्त लचर थी, और कुछ तो विकृत तथ्योंपर आधारित थी। हम यह खयाल पैदा करना नहीं चाहते कि तथ्योंकी यह तोड़-मरोड़ जान-बूझकर की गई थी। उसका कारण शायद यह भी हो कि वक्ता किसी चीजको निष्पक्ष दृष्टिसे देखनेमें असमर्थ ही थे; परन्तु हम तो कहते हैं कि वक्ताओं द्वारा कही गई कुछ बातें बिलकुल निराधार थी। जिम्मेवार पदोंपर काम करनेवाले आदमी अपनी सार्वजनिक हैसियतमें ऐसी-ऐसी बातें गढ़ लें, जिन्हें खानगी रूपमें बिना जाँच-पड़ताल किये कहनेमें उन्हें खुद बड़ी लज्जा अनुभव हो, यह समयका ही प्रतीक है। खबर है कि, सम्मेलनके अध्यक्षने कहा :

> **बारबर्टनके धनी भारतीय शहरके प्रमुख व्यापारियोंके पास गये थे। इन भारतीयोंने उनसे विनती की थी कि वे मकानात और परवाने प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने नामोंका उपयोग करने दें। एक भारतीयने यहाँतक डींग हाँकी कि अगर उसे परवाना मिल जाये तो वह एक वर्ष भरके अन्दर-अन्दर काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरेका बोरिया-बिस्तर बँधवा देगा।**

अब हम बगैर किसी झिझकके कह सकते हैं कि इस कथनमें रत्ती भर भी सत्य नहीं है। बारबर्टनमें धनिक भारतीय है ही नहीं। वहाँ भारतीय व्यापारी बहुत थोड़े हैं। और जो हैं, वे केवल बस्तीमें ही रहते है। शहरके अन्दर कोई भी भारतीय व्यापारी नहीं बसा है। जो गिनतीके भारतीय व्यापारी बस्तीमें कुछ व्यापार कर रहे है, वे इतने गरीब हैं कि व्यापार-संघके

१. देखिए पिछला शीर्षक।

अध्यक्षने उनपर जिस महत्त्वाकांक्षाका आरोप लगाया है, वे उसका सपना भी नहीं देख सकते। बस्तीके अधिकांश निवासी फेरीवाले हैं; इसलिए व्यापार-संघके अध्यक्षको हमारी चुनौती है कि वे उस भारतीयका नाम बतायें जिसने, कहा जाता है, बारह महीनेके अन्दर-अन्दर काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरे दूकानदारको निकाल बाहर करनेकी डींग हाँकी है। अध्यक्षने यह पँवाड़ा भी गाया :

> उनका इरादा यह नहीं है कि वे किसी दुश्मनीके भावसे . . . सरकारसे इसकी शिकायत करें। परन्तु उनका रुख पूरी तरहसे देशप्रेमी और मित्रका-सा होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें मानो वे कहना चाहते हैं — 'सज्जनो! आप क्या करनेवाले हैं, इसका जरा ध्यान रखिए। अच्छा हो, आप सावधान रहें, क्योंकि यह बड़ी गम्भीर बात है। इस विषयमें इस देशकी जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गहरी हैं; उसका आपको गुमान नहीं है। यह ऐसा प्रश्न है, जिसपर सारे देशकी जनता सरकारके खिलाफ एक हो सकती है। अगर सरकार गोरोंके विरोधमें रंगदार जातियोंका पक्ष ग्रहण करती है तो यह अत्यन्त गम्भीर मामला हो जाता है।'

ये भले आदमी व्यापारी हैं और इस मामलेमें इनका अपना स्वार्थ भरा पड़ा है। ये अगर बना सकते तो तमाम प्रतिस्पर्धियोंका बहिष्कार करनेके लिए अपना एक गिरोह बना लेते। इनको ऐसी बातें कहते देखकर हमें हँसी आती है। ऐसी भाषामें सारे समाजकी तरफसे ये बोल रहे हैं मानो, खरीदारोंके और इनके स्वार्थ एक ही हों। अध्यक्ष कहते हैं कि इस विषयमें जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गम्भीर हैं, उसका किसीको विश्वास भी नहीं हो सकता। परन्तु वे भूल जाते हैं कि भारतीयोंका व्यापार एक बहुत बड़ी हदतक गोरे ग्राहकोंपर ही निर्भर करता है। अगर उनकी भावनाएँ इतनी तीव्र हैं तो वे अभीतक इन भारतीय व्यापारियोंको अपना सहारा कैसे देते हैं? अगर भारतीयोंका बहिष्कार करना इन व्यापारियोंके हाथोंमें है, तो भारतीयोंको तंग करके उपनिवेशसे भगा देनेके उद्देश्यसे भला इस तरह कानूनोंका सहारा लेनेकी क्या जरूरत है? बहुत-से पाठकोंके लिए यह एक नई खबर होगी कि सरकार रंगदार जातियोंका पक्ष करने लग गई है। अब लॉर्ड मिलनर कह सकते हैं कि वे चक्कीके दो पाटोंके बीच पिस रहे हैं; क्योंकि एक तरफ भारतीय कहते हैं कि लड़ाईसे पहले उनके साथ जैसा व्यवहार होता था अब सरकार उनके साथ उसकी अपेक्षा कहीं बुरा व्यवहार कर रही है और, उधर, इस सम्मेलनके सदस्य कहते हैं कि सरकारने भारतीयोंको आश्रय दे रखा है।

भारतीय व्यापारी तो मुट्ठी भर हैं, परन्तु उनकी उपस्थितिसे उत्पन्न परिस्थितिको तिलका ताड़ बना दिया गया है। रंगदार गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें उपनिवेशपर जिस गम्भीर बुराईके छा जानेका खतरा है उसकी हलकेपनसे उपेक्षा कर दी गई है। क्योंकि, सर जॉर्ज फेरारने अध्यक्षको वस्तुतः यह आश्वासन दे दिया है कि इन गिरमिटिया मजदूरोंको स्थायी रूपसे यहाँ हरगिज नहीं बसने दिया जायेगा और इसके लिए हर सम्भव सावधानी बरती जायेगी। हम तो समझते हैं कि अगर इस देशकी जनताको एक आवाजसे सरकारका किसी मामलेमें विरोध करना चाहिए तो वह निस्सन्देह यह गिरमिटिया मजदूरोंका मामला है।

सम्मेलनमें जो प्रार्थनापत्र भेजनेका निश्चय किया गया और जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, उनके बारेमें हम कुछ भी नहीं कहेंगे। वहाँ विभिन्न वक्ताओंने जो भाषण दिये, उनके ये दोनों बातें अनुरूप ही हैं। प्रार्थनापत्रमें "गोरी और रंगदार जातियोंके मिश्रण" पर बहुत कुछ कहा गया है। क्या हम इस सम्मेलनके सदस्योंको बता दें कि जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका

सम्बन्ध है यह बात वस्तुत: कही नही पाई जाती? अगर भारतीयोंका किसी बातपर सबसे अधिक आग्रह है तो वह एक बात — जातिकी शुद्धता — ही है। परन्तु आप इस बातको विवादका विषय क्यों बनाते हे? हम तो बहुत जानना चाहते हैं कि अखबारका पिछला इतिहास क्या है और प्रार्थनापत्र भेजनेवालोका अनुभव क्या हे?

स्वीकृत प्रस्तावोंमे से एक "किसी विधानको, जो ऐसे सिद्धान्तको वृथा बना दे, अत्यन्त भय और घृणासे देखता हे।" यह वस्तुत. बहुत ही हँसीके लायक बात है। सदस्य एक ऐसी बातसे अत्यन्त भयभीत है जिसका कही अस्तित्व ही नही है। लॉर्ड एलेनबरोने कहा था कि अफगान युद्धके दिनोंमे कुछ लोग ऐसे थे जिनको गुबरीलेकी आवाज सुनकर खयाल होता था कि उन्होंने तोपोंकी गड़गड़ाहट सुनी है। इस सम्मेलनके सदस्योंकी हालत प्रत्यक्षत. कुछ ऐसी ही हो गई जान पड़ती है; क्योंकि अभीतक तो ऐसा कोई कानून जनताको नही दिया गया है और जहाँतक हमे पता हे जिस कानूनकी बडी आशाये दिलाई जा रही है वह अगर बन भी गया तो वह भारतीयोंकी दृष्टिसे वर्तमान कानूनकी अपेक्षा कही बुरा होगा। सदस्योंने यह तो खयाल कर ही लिया होगा कि अभी उपनिवेश-सचिवने जो सशोधन रखा है, वह यह कानून नही है — मुख्यत: तब जब कि उपनिवेश-सचिवने बहुत स्पष्ट रूपसे बता दिया था कि इस *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका व्यापक प्रश्नपर सचमुच क्या असर पडेगा।

ट्रान्सवालके विभिन्न व्यापार-सघोके सदस्योंसे हमारा आग्रहपूर्वक अनुरोध है कि वे ब्रिटिश भारतीय-सघ द्वारा भेजे गये गश्तीपत्रके प्रारम्भिक अनुच्छेदोंपर निर्विकार चित्तसे विचार करें। उसमे जो दो बाते कही गई हैं वे यूरोपीय दृष्टिकोणसे बिलकुल कारगर समझी जानी चाहिए। नगर-परिषदो अथवा नगर-निकायोंमे अधिकतर व्यापारी ही हैं। भारतीय कहते हैं — "परवानोंके विषयमे हमारा पक्ष इतना न्यायोचित है कि हमे अपने मामलोंका निर्णय आपके हाथोंमें सौपने और उसको माननेमे जरा भी सकोच या झिझक नहीं है, बशर्ते कि आप अपने निर्णयके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेके हमारे अधिकारको छीन न लें। जहाँतक नये बसनेवालोंका सवाल है, हम बिलकुल सहमत हैं कि श्री चेम्बरलेनने उपनिवेशोंके प्रधान-मन्त्रियोंके समक्ष भाषण देते हुए जो बातें कही थी उनकी दिशामें उनपर अवश्य उचित नियन्त्रण लगाये जा सकते हैं। अगर आप इस नीतिपर चलेंगे तो न्यूनाधिक परिमाणमें आप ब्रिटिश परम्पराओंकी रक्षा कर लेंगे।"

हमारी विनीत सम्मतिमें, इस स्थितिपर किसीको विरोध नही हो सकता। हम व्यापार-संघोंसे विनती करेंगे कि कुछ समय निकाल कर वे इस प्रश्नपर विचार करें और उसके बाद अपने-आपसे खुद ही पूछे कि क्या यह समझौता उचित नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–१२–१९०३

७१. अपने संशोधनपर श्री डंकन

ट्रान्सवालके एशियाई विरोधी कानूनका जो योग्यतापूर्ण, सहानुभूति-भरा और ऐतिहासिक विवेचन उपनिवेश-सचिवने[1] किया, उसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। अपने संशोधनके पक्षको जोरदार बनानेमें स्वभावत: उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। बड़े विश्वासजनक ढंगसे उन्होंने बताया कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमें कानूनके खिलाफ भी जो व्यापार कर सके, उसका एकमात्र कारण श्री क्रूगरके शासन-कालमें उन्हें ब्रिटिश सरकारकी तरफसे प्राप्त संरक्षण था। इसलिए अगर उन्हें बस्तियोंमें ठेल देना उचित भी हो, तो भी अब सरकार अपने कदमोंको वापस लेकर ऐसा नहीं कर सकती। जैसा कि उन्होंने बताया, यह प्रश्न भावुकता या नीतिका नहीं, विशुद्ध न्यायका है। इसलिए उन्होंने सदस्योंसे, और उनके द्वारा सामान्यत: ट्रान्सवालके लोगोंसे भी, अनुरोध किया कि वे इस प्रश्नपर निर्विकार चित्तसे विचार करें और यह सोचें भी नहीं कि वर्तमान सरकार भारतीयोंके साथ धोखा कर सकती है। दयनीय बात तो यह है कि, सरकारको यह सब पहले नहीं सूझा। यह बात भी आसानीसे समझमें नहीं आती कि वह एक शासन-सम्बन्धी मामलेमें इतनी दौड़धूप क्यों करती है और *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें संशोधन करनेके लिए परिषदमें क्यों जाती है। श्री डंकनने खुद स्वीकार किया है कि कानूनकी दृष्टिसे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका कोई महत्त्व ही नहीं है, क्योंकि उसे कानूनका अंग नहीं समझा जा सकता। हम यहाँ उन्हींके शब्द देते हैं:

> सबसे पहले उनको यह याद रखना चाहिए कि यह कानून नहीं बल्कि एक सूचना-मात्र है। इसमें वह नीति बताई गई है, जिसपर सरकार देशके कानूनकी व्याख्याके मामलेमें चलना चाहती है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि इस प्रश्नको परिषदमें ले जानेकी जरा भी जरूरत नहीं थी। साधारण मनुष्योंके लिए विधान-परिषदके विभिन्न कार्योंके भेदोंको समझना कठिन है। वे क्या जानें कि कानूनकी-सी सत्ता रखनेवाले परिषदके कार्य कौन-से हैं, और दूसरे कार्य कौन-से हैं, जो ऐसी सत्ता नहीं रखते, बल्कि परिषदका केवल मत प्रकट करते हैं। साधारण मनुष्यके विचारमें तो ऐसी सारी सूचनाएँ देशके कानून ही हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि पहले भारतीयोंको वास्तवमें जो अधिकार प्राप्त थे, वे इस सूचना द्वारा छिन गये हैं और नया संशोधन उनमें से कुछ अधिकार वापस दिलानेके लिए पेश किया गया है। वे इसे एक रियायत मानते हैं और इसलिए इसका विरोध करते हैं। उनके साथ आप चाहे कितनी ही दलील कीजिए या उन्हें कितना ही समझाइए, उनके दिमागमें जो खयाल पैदा हो गया है वह नहीं हटेगा। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि पहले तो सरकारने यही गलती की कि वह *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाको परिषदमें ले गई। उसने खुद अपनी मर्जीसे अपने हाथ-पैर बाँध लिये हैं और एक अनिष्ट आन्दोलनको पैदा होनेका मौका दिया है। हाँ, अगर सरकारका हेतु यही रहा हो कि ऐसा आन्दोलन सचमुच पैदा हो, ताकि एशियाई-विरोधी नीतिपर अमल करनेमें उसके हाथ मजबूत हों, तो बात दूसरी है। परन्तु उपनिवेश-सचिवका भाषण इस तरहकी राय बनानेसे हमें रोकता है।

फिर, अपने प्रस्तावके पक्षमें इतना कायल कर देनेवाली दलील देनेके बाद समझमें नहीं आता कि उपनिवेश-सचिवने अपवादोंमें उन भारतीयोंको भी क्यों नहीं शुमार कर लिया,

१. श्री पैट्रिक डंकन।

जिन्हें पिछले वर्ष बगैर किसी शर्तके परवाने दे दिये गये थे, यद्यपि वे लड़ाईसे पहले व्यापार नहीं करते थे। उन्होंने अपने प्रभावशाली तर्कका आधार ब्रिटिश सरकारके पिछले कार्योंको बनाया। वही दलील अभी ऊपर बताये व्यापारियोंके मामलेमें और भी अधिक अच्छी तरह लागू होती है, जिनके लिए जोहानिसबर्गका ब्रिटिश भारतीय संघ इतना प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहा है। पिछले वर्ष जिन भारतीयोंको परवाने दिये गये थे, अगर उनको बस्तियोंमें भेजा गया तो वह भी ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये एक कार्यको पलटना ही कहा जायेगा। श्री नेम्बरलेनने हमें आश्वासन दिया है कि एक ब्रिटिश अधिकारीके लेखका वही महत्त्व होता है, जो बैंकके नोटका होता है। सो, इन व्यापारियोंके परवाने नोट हैं, जिनपर दस्तखत करनेवाले ब्रिटिश अधिकारी ही थे। हमने इनमें से बहुत-से परवाने देखे हैं और एकपर भी हमने किसी प्रकारकी शर्त नहीं पाई है। तब उनको दूसरे परवानोंसे अलग क्यों माना जाता है? ये बातें ऐसी हैं जिनपर सरकारको विचार करना उचित था। हम पहले कह चुके हैं कि सरकारको न्याय करनेमें डर लगता है और चूंकि प्रस्तावित संशोधनपर बॉक्सबर्ग और बारबर्टनमें इतना शोर-गुल हो रहा है, इसलिए बहुत सम्भव है, सरकार सोचती हो कि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ समानता और न्यायका व्यवहार करनेके झगड़ेमें पड़कर उसे अब लोगोंका बुरा नहीं बनना चाहिए। परन्तु ब्रिटिश झंडेको अपना कहनेवाली सरकारोंकी परम्परा तो ऐसी नहीं है; इसलिए हम अब भी आशा करते हैं कि जिन गरीब व्यापारियोंको बस्तियोंमें चले जानेकी हिदायतें दी गई हैं, उनके परवाने बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके लिए नये कर दिये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–१२–१९०३

७२. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

ट्रान्सवालमें लगातार ऐसी उद्वेगकारी घटनाएँ हो रही हैं कि अभी कुछ समय और हमको अपना ध्यान उनकी ओर देना पड़ेगा और दूसरी बहुत-सी बातोंको छोड़ देना होगा, यद्यपि हम उन्हें कुछ स्थान देना चाहेंगे। गत २२ तारीखको विधान-परिषदमें जो बहस हुई वह अत्यन्त मनोरंजक और शिक्षाप्रद थी। ट्रान्सवाल-सरकारके भारतीयोंकी स्थितिसे सम्बन्धित रुखकी हमने अनेक बार शिकायत की है। इसलिए इस बार उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावपर उसने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर उसे हम तुरन्त धन्यवाद देते हैं। इसपर अगर वह कोई दूसरी तरहका रुख लेती तो सचमुच आश्चर्यकी ही बात होती। फिर भी, अभी हालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति इतनी अधिक डावाँडोल हो गई थी कि हमें निश्चय नहीं हो रहा था कि सरकार लड़खड़ा नहीं जायेगी और स्वार्थी व्यापारियोंके दबावसे झुककर अपने प्रस्तावको वापिस नहीं ले लेगी। अन्तमें उसने सर जॉर्ज फेरारके संशोधनको स्वीकार तो कर लिया, परन्तु हमारा खयाल है कि इससे उसने इस प्रश्नपर जो रुख ग्रहण किया है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। उपनिवेश-सचिव और महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) दोनोंने यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया कि सर जॉर्ज फेरारका सुझाव स्वीकार करनेके मानी ये नहीं हैं कि जो भारतीय लड़ाईसे पहले परवाने लेकर, अथवा बगैर परवानोंके भी, व्यापार करते थे उनके परवानोंको सरकार मानना नहीं चाहती। सर रिचर्ड सॉलोमनने बगैर किसी रू-रियायतके इस बातका बड़ी दृढ़ताके साथ समर्थन किया। विद्वान वक्ता महोदयने कहा :

अगर माननीय सदस्य प्रस्तावमें संशोधन नहीं करेंगे तो वे एक बहुत बड़े वर्गके साथ अन्याय करनेके दोषी होंगे। मालूम होता है कि साम्राज्य-सरकारने जो रुख धारण किया है उससे माननीय सदस्योंको आश्चर्य हुआ है; परन्तु भारतीय साम्राज्यके सम्बन्धमें सम्राट्की सरकारकी जिम्मेवारियोंका जब हम खयाल करते हैं, और वहाँ बसे करोड़ों लोगोंका और सम्राट्के प्रति उनकी वफादारीका जब हमें ध्यान आता है, तब हमारी समझमें फौरन यह बात आ जाती है कि मनुष्य-मनुष्यके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रखना यहाँ कितना आवश्यक है। लोगोंको साम्राज्यके न्यायपूर्ण शासनमें विश्वास है, तभी तो साम्राज्यमें बसनेवाले इन करोड़ों लोगोंकी वफादारीपर ब्रिटेन भरोसा करता है।

गैर-सरकारी सदस्योंमें से श्री हॉस्केनने बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण रुख प्रकट किया और सदनको बताया कि भारतीय-विरोधी आन्दोलन केवल व्यापारियोंतक ही सीमित है और उसमें जोहानिसबर्गका व्यापार-मण्डल शरीक नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय व्यापारियोंसे उपनिवेशको किसी प्रकार भी हानि नहीं हो रही है। श्री हॉस्केनने बताया कि जोहानिसबर्गके व्यापार-संघका रुख तो यह है कि लोग भारतीयोंके साथ व्यापार करते हैं, केवल इसीसे सिद्ध हो जाता है कि उनकी यहाँ माँग है। अगर यहाँके लोगोंको भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध सचमुच कोई खास आपत्ति होती तो वे उनका बहिष्कार करते और उनके लिए यहाँ व्यापार करना असम्भव कर देते।

विरोधी पक्षके नेता श्री लवडे और श्री वोर्क थे। श्री लवडेकी बात तो हम समझ सकते हैं। पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोंके पक्षमें उन्होंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा था। उनकी दृष्टिसे तो भारतीय एक विशुद्ध अभिशाप हैं; परन्तु हम स्वीकार करते हैं कि श्री वोर्कने जो-कुछ कहा, उसे पढ़ कर हमें बड़ी निराशा हुई। हम उन्हें सदासे ट्रान्सवालका एक उदारमना नागरिक मानते आये हैं; और हमारा खयाल था कि जो भी कोई प्रश्न उनके सामने निर्णयके लिए रखा जाये, उसपर वे निष्पक्षतापूर्वक विचार कर सकते हैं। परन्तु हमारी नम्र राय है कि गोरे व्यापारियोंके स्वार्थोंकी रक्षाकी चिन्तामें वे उनके दुर्भावसे प्रभावित हो गये, अन्यथा उनकी कमजोर दलीलका इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण दिखाई देना कठिन है। यह बात उनकी समझमें ही नहीं आ सकी कि लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकारने जिन भारतीय व्यापारियोंको पूरा संरक्षण दिया था और जिनको उसके प्रतिनिधियोंने ट्रान्सवालके कानूनोंको तोड़ने और अपना व्यापार जारी रखनेके लिए प्रोत्साहित किया था, उनको अब भी उसी सरकारसे, यद्यपि वह संरक्षण देनेकी और भी अच्छी स्थितिमें है, संरक्षण मिलना जारी क्यों रहना चाहिए। उन्होंने बड़ी स्पष्टताके साथ इस बातको स्वीकार किया कि भारतीयोंके व्यापारका विरोध बोअरोंकी तरफसे नहीं आया था, बल्कि ब्रिटिश व्यापारियोंकी ओरसे आया था। इसलिए वे अब भारतीय स्पर्धाकारियोंसे ब्रिटिश व्यापारियोंके लिए संरक्षणकी माँग करते हैं, भले ही इसके लिए ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थोंको छीन कर ब्रिटिश सरकारको झुकनेकी जरूरत पड़े। श्री वोर्क बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी हैं और व्यवसायीके रूपमें उनकी जानकारी ज्यादा होनी चाहिए। उनको तो ऐसी सामान्य दलील नहीं दुहरानी थी कि अगर भारतीय व्यापारियोंपर रोक नहीं लगाई गई तो वे यूरोपीय व्यापारियोंको क्षेत्रसे भगा देंगे। वे इस बातको भूल ही जाते हैं कि जब उनपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं था, तब भी वे ऐसा करनेमें सफल नहीं हुए; और यह भी कि प्रिटोरियामें यूरोपीयोंके व्यापारके मुकाबले भारतीयोंका व्यापार बहुत ही कम है।

परन्तु हम एक बात और कह दें। अगर यह भय ठीक भी हो तो भी वर्तमान प्रश्नसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि विधान-परिषद तो अभी केवल पुराने परवानोंके प्रश्नपर ही विचार कर रही है। उपनिवेश-सचिवके और श्री बोर्कके संशोधनोंके बीच सर जॉर्ज फेरारने एक मध्यम मार्ग सुझाया था। उसका नतीजा यह है कि "लड़ाईसे पहले व्यापार करनेवाले तमाम एशियाइयोंके मामलोंकी जाँच करनेके लिए एक आयोगकी नियुक्ति होगी। इस बीच एशियाई दूकानदारोंको अस्थायी परवाने दे दिये जायेंगे और सरकार एक नये कानूनका मसविदा पेश करेगी, जिसमें केप कालोनीके प्रवासी-अधिनियमके सिद्धान्तोंका समावेश होगा।"

हम इस आयोगकी नियुक्तिका स्वागत करते हैं; क्योंकि हमने सदा यह अनुभव किया है कि वर्तमान परवानेदारोंकी वास्तविक संख्याके बारेमें बड़ी गलतफहमी है और भारतीय व्यापारके परिणामोंको श्वेत-संघ और अन्य संस्थाओंने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया है। इसलिए आयोगकी मददसे इस गलतफहमीको दूर करनेका अवसर मिल जायेगा और हर आदमी जान लेगा कि उपनिवेशमें भारतीय व्यापारकी वास्तविक स्थिति क्या है। भारतीयोंने तो हमेशा यह माँग की है कि उनके कार्योंपर रोशनी डाली जाये। अतः हम आयोगके परिणामोंकी प्रतीक्षा बहुत विश्वासके साथ कर रहे हैं। अगर हमारी अपेक्षाएँ सही साबित हुई तो ट्रान्सवालके विचारशील उपनिवेशवासियोंके लिए भारतीय-विरोधी आन्दोलन जारी रखनेका कोई कारण नहीं रह जायेगा, क्योंकि उससे किसी भी पक्षको कोई लाभ नहीं है। उलटे, दोनों समाजोंके बीच, जिनको उचित था कि एक साथ शान्तिपूर्वक रहते, इस आन्दोलनके कारण बेकार भावनाओंकी कटुतामात्र बढ़ती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१–१२–१९०३

७३. ट्रान्सवालके रंगदार रेल-यात्री

जिस दिन श्री डंकनने विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनापर अपना संशोधन पेश किया, उसी दिन श्री एच० सॉलोमनने रेलोंके रंगदार मुसाफिरोंके सम्बन्धमें अपना प्रस्ताव रखा। यद्यपि उन्होंने जो-कुछ कहा वह प्रायः वतनी मुसाफिरोंके बारेमें ही था, फिर भी उससे बड़ी शिक्षा मिलती है, क्योंकि उससे प्रकट होता है कि "वतनी" और "रंगदार आदमी" जैसे शब्दोंका पर्याय रूपमें प्रयोग करके उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयोंको भी घसीट लेना कितना आसान है। माननीय सदस्यका प्रस्ताव भी इतना गोल-मोल और पूर्वापर-विरोधी था कि सर रिचर्डको उन्हें फटकार बतानेमें कोई कठिनाई नही हुई, जिसपर श्री सॉलोमनको अपने शब्द वापिस भी लेने पड़े। सर रिचर्डकी आपत्ति यह थी कि अगर वे रंगदार जातियोंके लोगोंको पहले दर्जेमें नहीं बैठने देना चाहते तो दूसरे दर्जेके मुसाफिरोंपर भी उन्हें न लादना चाहिए। इसपर श्री सॉलोमनको स्वीकार करना पड़ा कि वे इस तरहकी कोई बात कहना नहीं चाहते थे। उनका खयाल था कि रंगदार जातियोंके लिए उसी दर्जेमें अलग प्रबन्ध रहे।

हम सर रिचर्डसे इस बातमें सहमत हैं कि यह प्रस्ताव असामयिक है और इससे अकारण ही कटुता और दुर्भावना फैलेगी। अगर गोरे मुसाफिर पसन्द नहीं करते कि रेलोंमें वतनी आदमी अथवा एशियाई उनके डिब्बोंमें सहयात्रीके तौरपर सफर करें, तो हमारी रायमें फूटसे बचने और रंगदार यात्रियोंके लिए अलग डिब्बोंकी व्यवस्था करनेमें ही समझदारी होगी, जिससे

कि, यदि किसी गोरे यात्रीको अन्य डिब्बेमें स्थान न मिले और वह रंगदार यात्रियोंके डिब्बेमें — यद्यपि वह भलीभाँति जानता है कि यह डिब्बा रंगदार यात्रियोंके लिए ही है — दी गई जगहका लाभ उठाये, तो किसी प्रकारकी शिकायतका मौका न रहे।

स्पष्टतः यह मामला कानून बनानेके बजाय रेलवे व्यवस्थासे अधिक सम्बन्धित है। रेलवे खुद ही इतना प्रबन्ध कर सकती है। श्री सॉलोमनके प्रति आदर रखते हुए भी, हमारा खयाल है, इस तरहका प्रस्ताव पेश करनेमें उन्होंने सदनकी प्रतिष्ठाका खयाल नहीं रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्यमें एक दोषको दूर करने अथवा एक सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नकी ओर सरकारका ध्यान प्रमुख रूपसे खींचनेकी इच्छा उतनी नहीं थी, जितनी कि लोगोंके दुर्भावको तुष्ट करनेकी अभिरुचि। इसीलिए अगर डॉ० टर्नर जैसे लोगोंको प्रस्तावकी सीमाके बाहर जाकर भी उनका विरोध करना पड़ा तो इसके लिए जिम्मेदार श्री सॉलोमन ही हैं। हाँ, अप्रत्यक्ष रूपमें इस विवादसे एक प्रकारका लाभ ही हुआ। इससे प्रकट हो गया कि सर रिचर्ड सॉलोमन रंगदार जातियोंके एक मित्र और हितैषी हैं जो चाहते हैं कि आदमी-आदमीके बीच न्यायका व्यवहार होना चाहिए, और यह भी कि लोक-भावना चाहे कितनी ही प्रबल हो, अगर वह न्यायकी मूल भावनाके विपरीत होगी तो भी वे पथसे विचलित नहीं होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०३

७४. "कैवल्य"पर टिप्पणी

[१९०३ ? १९०४][1]

ईसाई पादरियोंने उतावलेपनमें "कैवल्य"में[2] हिन्दुओंके महान विश्वासका अर्थ "शून्य"में विश्वास किया है। वे कहते हैं कि "हिन्दुओंके विश्वासके अनुसार शून्यमें विलीन हो जाना — अस्तित्व खो देना — सबसे बड़ी चीज है।" इस भाष्यने ईसाई और हिन्दू धर्मोंके बीच एक गहरी खाईका निर्माण कर दिया है जिससे दोनोंकी हानि हुई है।

संस्कृतके जिस शब्दका अनुवाद "शून्य" किया गया है उसके अर्थके सम्बन्धमें मतैक्य न होनेके कारण यह सारी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। साधारण तौरपर वह जिस अर्थकी व्यंजना करता है सो इस मान्यताके कारण कि हम इस समय जो हैं वही सब-कुछ है, और तब हिन्दू दार्शनिक कहता है, "शून्य मेरे लेखे सब-कुछ है; क्योंकि तुम जिसे सब-कुछ कहते हो वह तो प्रत्यक्ष ही नश्वर है।" (क्या शरीर और इन्द्रियोंका नाश नहीं होगा और इसी तरह दूसरी सब वस्तुओंका भी जिन्हें हम देखते या अनुभव करते हैं?) शून्यको इस तरह देखें तो उससे वही विचार व्यक्त होता है जो अन्तिम मोक्षसे होता है — अर्थात् ईश्वरसे एकरूप होना। यह ईश्वर स्पेन्सरका महान "अज्ञेय" तत्व है; किन्तु वह सापेक्ष अज्ञेय है; अर्थात् वह स्पेन्सर द्वारा वर्णित ज्ञानके साधारण साधनोंसे ज्ञेय नहीं है। इतनेपर भी यदि आप निरी साधारण बुद्धिसे परे किसी उच्चतर साधन

१. इस प्रलेखकी ठीक तारीख नहीं मिलती। मूल पत्र डर्बनके आवासी मजिस्ट्रेट श्री जेम्स स्टुअर्टके संग्रहमें गांधीजीके "पत्र: जेम्स स्टुअर्टको", जनवरी १९, १९०५ के साथ प्राप्त हुआ है और अब कुमारी केली कैम्बेलके पास है। इसपर श्री स्टुअर्टकी लिखी यह सूचना है: "यह श्री मो० क० गांधीका लिखा हुआ है। मुझे १९०३-४ के लगभग डर्बनमें दिया गया था।" इस कालमें गांधीजीने हिन्दू धर्मपर थियोसॉफिस्टोंके साथ बहुत चर्चाएँ की थीं। देखिए *आत्मकथा*, भाग ४, अध्याय ५।

२. अंग्रेजीका "इटर्नल ब्लिस" लिखते हुए गांधीजीके सामने कैवल्य, नित्यानन्द, मोक्ष अथवा निर्वाण कौन-सा शब्द था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

की सत्ता स्वीकार करें, जिसे वास्तवमें हिन्दू और ईसाई दोनों ही स्वीकार करते हैं तो "तत्"— "वह तत्व" अज्ञेय नहीं हो सकता।

हिन्दू कहते हैं वह जाना जा सकता है। ईसाई भी ऐसा ही कहते हैं—"जिन्होंने मुझे जान लिया उन्होंने परमपिताको जान लिया।" किन्तु फिर इस उलझनका क्या हल है? कदाचित् शब्दोंको छोड़कर दोनों बातोंमें कोई अन्तर नहीं है। "जब कुहरा हट जायेगा तब हम एक दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहिचानेंगे।" तबतक यदि हम मतभेदकी बातोंकी अपेक्षा एकताकी बातोंको खोज निकालनेकी कोशिश करें तो क्या वह सम्भव नहीं है कि हमें कुछ पहले उस स्थितितक पहुँचनेमें सहायता मिले।

[अंग्रेजीसे]

कुमारी केली केम्बेल, डर्बन के सौजन्यसे प्राप्त हस्तलिखित मूल प्रतिसे।

७५. पिछले सालका सिंहावलोकन

ट्रान्सवाल

गत वर्ष इन दिनों ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय आशासे परिपूर्ण थे, क्योंकि श्री चेम्बरलेन उन्हें आशा दिलाते आ रहे थे कि जो लोग इस देशमें बस गये हैं और जिन्हें सामान्य प्रवासी अधिनियमके अनुसार उपनिवेशमें आ जानेकी अनुमति मिल सकती है, वे तो, बहरहाल, "न्यायोचित और सम्मानास्पद व्यवहारके अधिकारी"[1] होंगे ही। उस वक्त स्थिति बहुत अनिश्चित थी। व्यापारियोंके नाम सूचनाएँ जारी की गई थीं कि उनके परवाने नये नहीं किये जायेंगे। १८८५ का कानून ३ उपनिवेशकी कानूनकी किताबमें अब भी मौजूद था। ट्रान्सवालके कुछ भागोंमें पैदल-पटरीके नियमों तकको कार्यान्वित कराया जा रहा था। जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीके निवासियोंका भाग्य अधरमें झूल रहा था। बस्तीकी सफाई सम्बन्धी हालतके बारेमें डॉ० पोर्टरकी खयाली रिपोर्ट नंगी तलवारकी तरह उनकी गरदनपर लटक रही थी। उपनिवेश भरके श्वेत-संघ सभाएँ करके सरकारसे माँग कर रहे थे कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें पहले ही बस गये हैं उनपर और पाबन्दियाँ लगाई जायें। एशियाई दफ्तरोंके तौर-तरीकोंसे भारी शरारत हो रही थी। जोहानिसबर्गके दफ्तरमें भ्रष्टाचारका बोलबाला था और शरणार्थी तबतक उपनिवेशमें घुस नहीं सकते थे, जबतक कि परवाने लेनेके लिए दोनों हाथों धन न उलीचें। और, कई अवसरोंपर ये परवाने निकम्मे कागज ही होते थे। श्री चेम्बरलेनसे प्रिटोरियामें जो शिष्टमण्डल मिला था उसके सामने उनका जोरदार बयान ही कठिनाइयोंके इन घने बादलोंको चीरकर दिखाई देनेवाली आशाकी एकमात्र किरण था, हालांकि, दुर्भाग्यवश, वह बादलोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिए काफी सबल सिद्ध नहीं हुआ। आगे चलकर, अर्थात् पिछले अप्रैलके महीनेमें, जब भारतीयोंने सरकारसे प्रार्थना की कि उनके दर्जेकी साफ-साफ व्याख्या कर दी जाये और मौजूदा परवानोंके बारेमें आश्वासन दिया जाये, तब सरकारने *बाजार*-सूचनाके नामसे मशहूर, सूचना ३५६ भारतीय समाजपर लाद दी और १८८५ के कानून ३ के अनुसार, जो पिछले कई वर्षोंसे निःसत्व पड़ा हुआ था, ३ पौंडका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-कर वसूल करनेके लिए कप्तान हैमिल्टन फाउलको एशियाइयोंका रजिस्ट्रार मुकर्रर

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३०६।

कर दिया। जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघने लॉर्ड मिलनरकी शरण ली,[1] परन्तु उसे लॉर्ड महोदयसे जबानी सहानुभूतिके सिवा कुछ नहीं मिला। उन्होंने भारतीय समाजको जोरदार सलाह दी कि वह ३ पौंडी करकी अदायगीका विरोध न करे; और यह वचन भी दिया कि परवाने आदिके जो मामले उनकी निगाहमें लाये गये हैं, उनकी वे सावधानीसे जाँच करेंगे। परमश्रेष्ठने यह महत्त्वपूर्ण बयान दिया कि *बाजार*-सूचना सिर्फ एक अस्थायी उपाय है और निकट भविष्यमें, कदाचित् विधान-परिषदके तत्कालीन अधिवेशनमें ही, १८८५ के कानून ३ के स्थानपर एक विधेयक पेश किया जायेगा।

आज स्थिति पहलेसे बहुत अच्छी नहीं है, यद्यपि कुछ बातोंमें, निश्चय ही, प्रगति बताई जा सकती है। *बाजार*-सूचना पर अब भी अमल हो रहा है और उसके द्वारा सर्वनाश होनेसे बचनेके लिए ब्रिटिश भारतीय संघको अपने सारे साधन काममें लाने पड़े हैं। व्यावहारिक रूपमें वह सूचना दुविधाजनक पाई गई है। परवाना-अधिकारी उसके अर्थके बारेमें निश्चित निर्णय हमेशा नहीं दे सके हैं। नतीजा यह हुआ कि निहित स्वार्थोंकी रक्षाके लिए समाजको भगीरथ-प्रयत्न करने पड़े। और तो भी आज कोई यह नहीं कह सकता कि तमाम मौजूदा परवानोंको स्वीकार किया जायेगा या नहीं। ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने सूचनामें ऐसा संशोधन करनेका प्रयत्न किया, जिससे उन भारतीयोंके हितोंकी रक्षा हो सके जो लड़ाईके पहले ब्रिटिश हस्तक्षेपके कारण परवानोंके बिना व्यापार करते थे। इस मामलेमें अन्तमें समझौता हो गया। सरकारने सर जॉर्ज फेरारका वह संशोधन स्वीकार कर लिया है जिसमें ऐसे ब्रिटिश भारतीयोंके दावोंकी जाँच करनेके लिए आयोग (कमीशन) नियुक्त करनेकी बात कही गई है और केपके प्रवासी-अधिनियमके ढंगपर कानून पेश करनेकी सरकारसे प्रार्थना की गई है। अभी यह कहना सम्भव नहीं कि इस संशोधनका असर क्या होगा। हमने उसे सद्भावनाओंका प्रमाण समझकर मंजूर कर लिया है और, इसलिए, उसका एक ही अर्थ लगाया है, जो सम्भव है और जो वर्तमान सरकारकी घोषणाओंके भी अनुकूल है। वह अर्थ यह है कि, जो लोग लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे उन सबको *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये जायेंगे और केप जैसा कानून बननेका अर्थ यह होगा कि मौजूदा एशियाई-विरोधी कानून बिलकुल उठा दिये जायेंगे और जिस भारके नीचे भारतीय पहलेसे ही दबे हुए हैं, उसमें कोई वृद्धि नहीं होगी। एक बात बिलकुल साफ हो जानी चाहिए कि ब्रिटिश सरकारके राज्यमें पुरानी हुकूमतकी अपेक्षा स्थिति अधिक असह्य न बना दी जाये — भले ही इसका हेतु इतना ही क्यों न हो कि, लड़ाई छेड़नेके जो कारण जाहिरा तौरपर बताये गये थे उनमें से एक कारण ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंपर मढ़ी हुई निर्योग्यताएँ भी था। इस वर्षमें दो निर्णयात्मक सुधार हुए हैं। परवाना विभाग फिर परवानोंके मुख्य सचिवको सौंप दिया गया है और हमें जो समाचार मिले हैं उनसे हम कृतज्ञतापूर्वक कहते हैं कि भ्रष्टाचार बिलकुल मिट गया है और वास्तविक शरणार्थियोंको बेजा देरके बिना परवाने मिल जाते हैं। एशियाई दफ्तर अब भी हैं। हमें पता नहीं, क्यों हैं; परन्तु हमें मालूम हुआ है कि "एशियाइयोंके संरक्षक" के रूपमें श्री चैमने भारतीय समाजके हितैषी और हमदर्द हैं।

जोहानिसबर्गकी बस्ती भारतीयोंके हाथसे निकल गई है। यदि ऐसा न होता तो भी कोई भारी मुसीबत न होती, क्योंकि अकेले जोहानिसबर्गमें भारतीयोंको उस छोटेसे क्षेत्रके भीतर ९९ वर्षके पट्टेका अधिकार दिया गया था और अब वहाँ निवासियोंको भरोसा नहीं है कि उन्हें वही सुविधाएँ दी जायेंगी या नहीं; यह भी भरोसा उन्हें नहीं है कि नया स्थान

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३२४।

कहाँ तय किया जायेगा। कुछ भी हो, वह स्थान मौजूदा जगहके बराबर लाभदायक हरगिज नही होगा।

सक्षेपमे, ट्रान्सवालकी यह स्थिति है। एशियाई गिरमिटिया मजदूरोको लानेकी धमकीसे गडबडी और बढ रही है, और इतने अधिक गिरमिटिया लोगोका अस्तित्व भारतीयोको बाँधनेवाले बन्धन और भी कडे करनेका बहाना बनाया जायेगा। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामे लार्ड मिल्नर एक मजबूत आदमी है। सही या गलत, जब उन्हे विश्वास हो गया कि युद्ध आवश्यक है तो सारे विरोधके बावजूद उन्होने उसे पार लगाया। इसलिए हम आशा रखते रहेगे कि परम-श्रेष्ठने जो वचन दिये है उन्हे वे पूरा कर सकेगे और ब्रिटिश भारतीयोके बारेमे सरकारी नीतिके सिद्धान्त साफ तौरपर तय कर सकेगे। स्वार्थी व्यापारियोका भारतीयोके प्रति द्वेष निःसन्देह प्रबल है, मगर हमारी रायमे यह और भी बडा कारण है कि परमश्रेष्ठ दृढ रहे और सबलोके विरोधमे निर्बलोकी रक्षा करे।

ऑरेंज रिवर कालोनी

इस उपनिवेशका विचार करते है तो निराशा ही हाथ लगती है। वर्तमान शासनने पुराने गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानूनोकी सतर्कताके साथ रक्षा की है और उन पर हर तरहकी दस्तन्दाजीको रोका है। जैसा कि इन स्तम्भोमे बताया गया है, उसने आगे बढकर पेशगी विधान भी पास किया है, तमाम रगदार प्रजापर नियन्त्रणकी असाधारण शक्ति उसने नगर-पालिकाओको सौंपी है। श्री चेम्बरलेनने मामलेपर बारीकीसे विचार करके जल्दी ही सुविधा कर देनेका वचन दिया था, किन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। ब्रिटिश शासनके लगभग दो वर्ष बाद भी ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे किसी भी स्तरके भारतीयका प्रवेश नही है। जो कुछ बरसो पहले उस उपनिवेशमे व्यापार करते थे उन्हे भी वापस आनेकी इजाजत नही है। हमने यहाँतक सुना है कि सारी प्रारम्भिक कार्रवाइयोसे से गुजर चुकनेके बाद जो थोडे-से भारतीय नौकरोकी हैसियतसे कालोनीमे रहते थे, अभी पिछले महीनेमे उन्हे इसलिए गिरफ्तार किया गया और उनपर जुर्माना भी किया गया कि, शायद वे पहलेसे भिन्न कोई नौकरी इस समय कर रहे थे। श्री लिटिलटनको' उदार साम्राज्यवादी भावनाएँ रखनेका श्रेय प्राप्त है। वे जिस पदपर है वहाँ अपने साम्राज्यवादको कसौटीपर परख सकते है। क्या वे अवसरके अनु-कूल प्रवृत्त होकर उपनिवेशका द्वार ब्रिटिश भारतीयोके लिए खोल देगे? — बेशक बिना प्रति-बन्धोके नही, क्योकि यह मुद्दा हमने मान लिया है कि दक्षिण आफ्रिकामे रग-द्वेषके अस्तित्वको ध्यानमे रखकर प्रवास-नियमनके लिए सर्व-सामान्य कानून बनाया जा सकता है, किन्तु हमारा यह दृढ मत है कि किसी भी वर्ग, धर्म या रगके आदमीको प्रवासी कानून द्वारा लगाई हुई शर्ते पूरी करनेके बाद किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशमे और अपनी रुचिका उद्यम करनेका अधिकार होना चाहिए।

नेटाल

इधर ज्यादा नजदीककी बात ले तो बहुत-कुछ कहनेको नही है। प्रिटोरियामे ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डलके मिलनेपर श्री चेम्बरलेनने जो उत्साहवर्धक शब्द कहे थे वे ही उन्होने डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गके शिष्टमण्डलोसे भी कहे। प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून अधिक कठोर हो गया है। शैक्षणिक धारा इस तरह सशोधित कर दी गई है कि यदि प्रवासी-अधिकारी चाहे तो किसी भी व्यक्तिका जाँचमे सफल होना बहुत मुश्किल हो जायेगा। किन्तु यह बहुत ज्यादा

महत्त्वकी बात नहीं है। असलमें दुखती हुई रग तो विक्रेता-परवाना अधिनियम है। डर्बन नगर-परिषद और नेटालके अनेक स्थानिक निकायोंकी हलचलोंसे इस भयको खासा आधार मिल जाता है कि, यह कानून सख्तीसे लागू किया जायेगा। अभी नगर-परिषदें ही अपने परवाना-अधिकारियोंके निर्णयके खिलाफ की गई अपीलोंको सुननेवाली सत्ता हैं। जबतक सर्वोच्च न्यायालय इन परिषदोंके निर्णयोंके खिलाफ अपील सुननेकी सत्तासे वंचित रखा जायेगा तबतक यह कानून कष्टोंका प्रबल कारण बना रहेगा। लेडीस्मिथके परवाना-अधिकारीने भारतीयोंको सूचना भेजी है कि वे जबतक दूकानें बन्द करनेके मामूली वक्त की पाबन्दीके लिए रजामन्द नहीं होते, उनके परवाने फिर जारी नहीं किये जायेंगे। हमने एकाधिक बार यह आशा व्यक्त की है कि लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी इस सम्बन्धमें परवाना-अधिकारीके साथ कोई आपसी समझौता कर सकेंगे, हमारी समझमें यह बहुत ही नाजुक और ऐसा मामला है, जिसपर यदि निर्णय लेनेमें कोई गलती हो गई तो फिर शिकायतें दूर कराना बहुत कठिन हो जायेगा।

लगता है डर्बनमें *बाजारों* या बस्तियोंसे सम्बन्धित श्री एलिसके प्रस्तावका मुर्दा दफन हो चुका है, किन्तु उसकी दुर्गन्ध नाकमें भर गई है और कह नहीं सकते कब उसे फिर उखाड़नेके प्रयत्न किये जायें। यह प्रस्ताव ट्रान्सवाल-*बाजार*-सूचनाके प्रकाशनके तुरन्त बाद आया था, और जैसा कि हमने उस समय स्पष्ट किया था, उसे सुयोग्य महापौर महाशयने अशोभनीय जल्दबाजीमें पेश किया था। प्रस्तावकी[1] स्याही कागजपर सूखने भी नहीं पाई थी कि ट्रान्सवालसे खबर मिली कि *बाजार*-सूचना केवल एक अस्थायी विनियम है; और उसे उपनिवेशके स्थायी कानूनोंमें शामिल करनेका कोई इरादा नहीं है।

यह देखते हुए कि नेटालमें हजारों भारतीय अपने कुटुम्बोंके साथ रहते हैं और उन्हें अपने बच्चे पढ़ाने-लिखाने हैं, यहाँ भारतीयोंकी शिक्षाका प्रश्न गम्भीर है। सरकार भारतीयोंकी शिक्षाका काफी अच्छा प्रबन्ध करनेको कितनी भी तैयार क्यों न हो, उपनिवेशकी लोकशालाओं (पब्लिक स्कूलों) के द्वार भारतीय विद्यार्थियोंके लिए बन्दकरके उसने भारतीय समाजको बहुत बड़े घाटेमें डाल दिया है। डर्बनके सरकारी मदरसेमें जो आखिरी तीन भारतीय छात्राएँ पढ़ रही थीं, वे श्रेयके साथ उत्तीर्ण होकर निकल आई हैं। अब दुर्भाग्यसे उनकी दूसरी बहनोंको वैसे शिक्षणकी सुविधा नहीं रही। ये तीनों लड़कियाँ ठीक भारतीय कुटुम्बोंकी हैं। इनका पालन-पोषण बहुत अच्छी तरह हुआ है और इनकी शिक्षिकाएँ इन्हें खूब चाहती थीं। ये हमेशा पहली पंक्तिमें रहीं और श्रम, सत्य और शीलकी दृष्टिसे इनका चरित्र बहुत ऊँचा था। यह सोचकर दुःख होता है कि अन्य भारतीय लड़कियाँ जो ऐसी ही सुविधाएँ मिलने पर इन्हीं जैसा करतब कर दिखातीं, अब केवल अपनी चमड़ीके रंगके कारण ऐसे अवसरसे वंचित हैं।

थोड़ी-बहुत चैन मिल जानेसे भारतीय समाज नेटालमें शिक्षा-सुधारका काम हाथमें ले सका है। इस सिलसिलेमें हबीबी मदरसा उल्लेखनीय है। यह उन्नतिशील संस्था है और सूफी साहबकी देखरेखमें इसकी व्यवस्था सुचारु है। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसी ही और भी संस्थायें उपनिवेशमें जहाँ-तहाँ हों। रेवरेंड स्मिथने अभी-अभी भारतीय-शिक्षकोंके लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला है। अच्छा प्रबन्ध होने और प्रोत्साहन मिलनेपर यह उपनिवेशमें नैतिक और शैक्षणिक प्रभावका बहुत बड़ा केन्द्र बन सकता है।

और भी बहुतसे ऐसे सुधार हैं, जिन्हें भारतीय समाज बखूबी हाथमें ले सकता है। हम आशा करें कि पिछले वर्षकी अवनतिके स्थानपर इस वर्ष उन्नति होगी और हमारे कुछ उदारचेता भारतीय व्यापारी इनमें से कुछ कामोंको पूरा करेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३४३।

केप कालोनी

इस सबसे पुराने उपनिवेशमें कहने लायक बहुत-कुछ नहीं है। प्रवासी अधिनियम पिछली जनवरीमें लागू किया गया था। सुनते हैं वह खास सख्तीसे अमलमें नहीं लाया जा रहा है। उस तरहके कानूनके अमलमें कुछ कठिनाइयोंका आना स्वाभाविक है। किन्तु कुल मिलाकर अधिकारीगण उसकी कठोरता कम करनेके लिए उत्सुक जान पड़ते हैं।

ईस्ट लंदनमें बस्ती कानून और पैदल-पटरी कानूनने, जो, जरूरत पड़ेगी, यह मानकर, पहलेसे ही बना लिये गये थे, एक समय तो काफी खीझ उत्पन्न कर दी थी। किन्तु अब सुनते हैं भद्रवेशी ब्रिटिश भारतीय छूटका प्रमाणपत्र लिए बिना भी पैदल-पटरियोंपर चलते हैं और उनको सताया नहीं जाता। बात अभी तो सन्तोषजनक दिखाई देती है, किन्तु हमारी रायमें ऐसा उपनियम नगरपालिकापर कलंक है और जितनी जल्दी यह उठा लिया जाये उतना नगरपालिकाके लिए श्रेयस्कर होगा। यह एक विडम्बना है कि सम्राटकी सरकारने ऐसे कानूनको उस उपनिवेशमें अनुमति दे दी जिसमें भारतीय-विरोधी कानून कमसे-कम त्रासदायक हैं। फिर भी ब्रिटिश भारतीय इससे इतना सबक तो ले ही सकते हैं कि अगर कोई समाज अपने हितोंके प्रति जागरूक न रहे तो वह ब्रिटिश सरकारके मातहत फूल-फल नही सकता।

अपनी बात

दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके अन्तमें हम कुछ अपनी भी कहनेकी अनुमति चाहते हैं। अभी *इंडियन ओपिनियनको* प्रकाशित होते मुश्किलसे सात महीने हुए हैं; किन्तु हम समझते हैं, इस थोड़ी-सी अवधिमें ही उसने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उसे जो कुछ प्रतिष्ठा मिली उसका उपयोग हमने समाजके और साम्राज्यके, जिसका अंग होनेका हमें अभिमान है, हितमें करनेकी कोशिश की है। हमने जो कार्यक्रम बनाया है वह महत्त्वाकांक्षापूर्ण है। वह पूरा-पूरा सम्पन्न नही किया जा सका है — उसके निर्माताओंकी यह अपेक्षा भी नहीं थी कि वह सारा-का-सारा एकदम पूरा हो जायेगा। वह तो हमारा लक्ष्य है, जिसे हम यथासम्भव जल्दी प्राप्त करना चाहते हैं। एक सिद्धान्तपर हमने अडिग रहनेका प्रयत्न किया है — जो खालिस तथ्य है उससे कभी अलग न होना; और वर्षमें जो कठिन सवाल सामने आयें उन्हें निपटानेमें, हमारा खयाल है, हमने, जितनी अधिक नरमीसे उस समयकी परिस्थितियोंमें काम लिया जा सकता था, उतनी नरमीसे काम लिया है। हमारा कर्त्तव्य बहुत सीधा-सादा है। हम समाजकी और, अपने निजी नम्र ढंगसे, साम्राज्यकी सेवा करना चाहते हैं। हमें जिस कार्यको उठानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसकी पवित्रतामें हमारा विश्वास है। सर्वशक्तिमान परमेश्वरकी करुणामें हमारी अचल निष्ठा है और ब्रिटिश विधानमें हमें पूरा भरोसा है। ऐसी हालतमें यदि हम चोट पहुँचानेके लिए कुछ लिखें तो हम अपने कर्त्तव्यसे च्युत होंगे। तथ्य कटु हों या मधुर, उन्हें हम सदा पाठकोंके सामने रखेंगे। जनताके सामने उन्हें उनके नंगे रूपमें लगातार पेश करते रहनेसे ही दक्षिण आफ्रिकामें दोनों समाजोंके बीचकी गलतफहमी हटाई जा सकेगी। यदि इसे जल्दी हटानेमें हम थोड़ी-बहुत भी मदद कर सके तो यही हमारे लिए काफी पुरस्कार हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१–१९०४

७६. ट्रान्सवालमें मजदूर-समस्या

सर जार्ज फेरारका प्रस्ताव[1]:

> **सरकारका ध्यान ट्रान्सवाल मजदूर आयोगकी रिपोर्टकी[2] तरफ दिलाया जाये और सरकारसे एक ऐसे अध्यादेशका मसविदा पेश करनेका अनुरोध किया जाये, जिसके अनुसार विटवॉटर्सरैंड इलाकेकी खानोंमें मजदूरोंकी भर्ती पूरी करनेके लिए अकुशल रंगदार गिरमिटिया मजदूर बाहरसे बुलाये जा सकें और उनपर ऐसी पाबन्दियाँ लगाई जा सकें जिनसे वे अकुशल मजदूरोंके तौरपर ही नौकर रखे जा सकें और करार पूरा होनेपर अनिवार्य रूपसे स्वदेश लौटाये जा सकें; और इसलिए कि इस महत्त्वपूर्ण मामलेपर पूरा विचार किया जा सके, अध्यादेशका मसविदा इस परिषदमें पेश होनेके काफी पहले अंग्रेजी और डच भाषामें प्रकाशित कर दिया जाये।**

यह प्रस्ताव एक बहुत लम्बी बहसके बाद जबरदस्त बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया। पक्षमें २२ और विपक्षमें केवल ४ मत — सर्वश्री बोर्क, लवडे, रेट और हलके — थे।

सर जॉर्ज फेरार ३ घंटेसे अधिक बोले। श्री हल ४ घंटे बोले, लेकिन इस अवसरका मुख्य भाषण शायद सर रिचर्ड सॉलोमनका था। अवसर अनोखा था, और सारे दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें न सही, ट्रान्सवालमें ब्रिटिश राज्यके इतिहासमें वह एक महत्त्वपूर्ण घटना समझी जायेगी। बेशक, प्रस्तावके पक्षमें बोलनेवालोंने जोरदार ढंगसे अपना मामला रखा, फिर भी हमारी रायमें उससे हम कई वर्ष पीछे ढकेल दिये गये हैं और हमारा निश्चित खयाल है कि सर जॉर्ज फेरार और उनके समर्थक आगेकी ओर नहीं देख सके। जो व्यक्ति बड़े-बड़े मुनाफ़ोंके लिए झगड़ रहे हैं, उनका यह रुख तो हम भलीभाँति समझ सकते हैं कि जिस प्रश्नमें ऐसे मुनाफोंका त्याग निहित हो, उसपर वे निष्पक्ष दृष्टि नहीं रख सकते। ऐसी ही स्थितिमें दूसरे लोग होते तो शायद वे वही दृष्टि रखते जो एशियाइयोंके समर्थकोंने रखी है। यह दलील निःसन्देह लचर है कि, चीनी मजदूरोंके विनियमन पर सरकार जो पाबन्दियाँ लगायेगी वे इतनी बड़ी होंगी कि उनसे एशियाई-विरोधियोंकी उठाई हुई सारी आपत्तियोंका जवाब मिल जायेगा। जो सज्जन इस तरह तर्क करते हैं वे इस हकीकत पर ध्यान नहीं देते कि चीनी भी मनुष्य हैं; और प्रतिबन्ध कितने ही कड़े लगाये जायें, तो भी दक्षिण आफ्रिकाके सारे समाजपर उनका असर पड़े बिना नहीं रह सकता। अवश्य ही हम एशियाई-विरोधियोंसे इस बातमें सहमत नहीं हैं कि चीनी लोग दूसरे लोगोंसे जरा भी ज्यादा चरित्रहीन हैं, या क्षुद्र प्राणी हैं। गिरमिटिया चीनियोंकी ही नहीं, भारतीयोंकी भी इतनी बड़ी संख्यामें मौजूदगीपर हमारा ऐतराज यह है कि उसका दक्षिण आफ्रिकाके भविष्यपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, और गोरोंके दृष्टिकोणसे तो वह प्रभाव और भी बुरा होगा। यदि दक्षिण आफ्रिकामें किसीको जबरदस्ती लाना है तो निःसंदेह ब्रिटिश द्वीप समूहके निवासियोंको ही लाना चाहिए, और किसीको नहीं। यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि समय पाकर हालात अपने आप ऐसे हो जायेंगे कि गोरोंको हाथसे काम करनेमें आपत्ति न रह जायेगी। सम्भावना यही है कि जब एक बार दक्षिण आफ्रिका या ट्रान्सवालके यूरोपियोंको हाथसे काम करना

1. यह ट्रान्सवाल विधान परिषदमें रखा गया था।
2. देखिए पृष्ठ ७५।

अपनी शानके खिलाफ समझनेकी आदत हो जायेगी, और वे यह काम रंगदार लोगोंसे लेनेके आदी हो जायेंगे, तब वे इसके विपरीत करनेको, और हाथका काम खुद करनेको, राजी नहीं होंगे। सर पर्सीने[1] अपने श्रोताओंसे कहा कि वे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया रंगदार मजदूरोंको न आने देनेका परिणाम सोचें। उन्होंने, अपने खयालके अनुसार, बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र खींचते हुए कहा कि यदि ऐसा हुआ तो विभिन्न नगरपालिकाओंने जो जबरदस्त काम हाथमें लिये हैं उनमें से अधिकतर उन्हें छोड देने पडेंगे। हम साफ-साफ स्वीकार करें कि, अगर ट्रान्सवालके लोग केवल भविष्यको सँभालें तो, भले ही यह शुरूमें कठोर दिखाई दे, हमें इन बडे कामोंको बन्द कर देनेमें कोई असाधारणता दिखाई नही देती। यह बिलकुल ठीक है कि जब यहा ब्रिटिश सत्ता आई तब जो बहुत-सी अतिशयोक्तिपूर्ण बातें सोची गई थीं उनकी तरतीब बदलनी पडेगी, परन्तु वह अच्छा ही होगा। हमें खेद है कि लम्बी और ऊबा देनेवाली सारी बहसमें सर जॉर्जके पाबन्दियों सम्बन्धी प्रस्तावकी पिछली धाराके विरुद्ध आवाज उठानेवाला एक भी वाता नहीं था। यह देखकर निराशा होती है कि तेजस्वी लोगोंके उस समूहमें किसीने भी उसपर चीनियोंके दृष्टिकोणसे विचार करना जरूरी नहीं समझा। सब सहमत थे कि चीनी लोग परिश्रमी, समझदार और योग्य हैं, फिर भी किसीको इसमें असंगतता नहीं दिखाई दी कि उनके साथ निरे गुलामोंका-सा बरताव किया जाये, और खानोंके विकासके लिए जितनी थोडी अक्लकी जरूरत हो उसके सिवा जबरदस्ती उनको अपनी समझ और योग्यतासे काम न लेने दिया जाये। सर रिचर्डका[2] खयाल था कि अगर किसी काफिरको सरकारी हस्तक्षेप द्वारा या कर लगाकर काम करनेपर मजबूर किया जायेगा तो वह जबरिया काम होगा और उसे ब्रिटिश सरकार सहन नहीं कर सकेगी। यदि आप एक आदमीको चूस लें, उसकी हलचलोंपर पाबन्दी लगायें और ज्यों ही उसका गिरमिट पूरा हो उसे निकाल बाहर करें तो क्या वह भी ऐसी ही बात नहीं है? किन्तु इस मौकेपर दलीलें देनेसे कोई फायदा नहीं। पाँसा पड़ चुका है। जल्दी ही हमारे सामने अध्यादेशका मसविदा आयेगा, और शायद कुछ ही महीनोंमें हजारों गिरमिटिया मजदूर भी। ट्रान्सवाल जो महत्त्वपूर्ण कदम उठानेवाला है उसका परिणाम समय बतायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१–१९०४

१. सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक — ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।

७७. ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूर-अध्यादेशका मसविदा

अन्यत्र हम ट्रान्सवालमें गैर-यूरोपीय अकुशल मजदूरोंके प्रवेशका नियमन करनेवाला अध्यादेश पूराका-पूरा उद्धृत कर रहे हैं। सरकारने सर जॉर्ज फेरारके प्रस्तावपर तड़ाकेसे कार्रवाई की है। अध्यादेशका मसविदा होशियारीसे बनाया गया है। मगर सरकारको इस कारगुजारीपर बधाई नहीं दी जा सकती। एक ईसाई ब्रिटिश सरकार इस जाग्रत शताब्दीमें ऐसे प्रस्ताव पेश कर सकती हैं, जैसे कि अध्यादेशके मसविदेमें रखे गये हैं — यह आधुनिक सभ्यताकी हालत पर दुःखपूर्ण टीका है। सदसद् विवेककी किसी भी दृष्टिसे अध्यादेशका मसविदा काफी कठोर है, और वह हजारों चीनियों या अन्य एशियाई जातियोंको, जिन्हें उसके अनुसार इस देशमें लाया जायेगा; भारवाही पशु बना डालेगा। उनका आना-जाना उनके काम करनेकी जगहोंमें एक मीलकी परिधिके भीतर सीमित रखा जायेगा और उन जगहोंको वे बाकायदा हस्ताक्षर किये हुए पासोंके बिना नहीं छोड़ सकेंगे, और सो भी ४८ घंटेसे अधिक समयके लिए नहीं। उनमें कोई कौशल हो तो भी वे उसे काममें नहीं ला सकेंगे और, जैसा भी तय हो, तीन या पाँच वर्षके अन्तमें वे ट्रान्सवालसे वापस भेज दिये जायेंगे। जबरदस्ती वापस भेजनेकी क्रियाको लागू करनेका तरीका बहुत सीधा-सादा और कारगर है; परन्तु उतना ही अमानुषिक भी है। जिस धाराके अनुसार जबरदस्ती वापस भेजनेका नियमन किया जायेगा उसमें कहा गया है कि अगर गिरमिटिया मजदूरोंमें से कोई वापस जानेसे इनकार करेगा तो उसे एक तरहसे स्थायी कैद भुगतनी होगी, और यह तभी खत्म होगी जब वह देशसे बाहर निकाल दिया जाना मंजूर कर लेगा। इस प्रकार, परिस्थितिवश ट्रान्सवालमें फिर संशोधित गुलामीका युग लाया जायेगा। खानोंका काम किसी भी कीमतपर जारी रहना ही चाहिए — भले इसमें ब्रिटिश नीतिके अत्यन्त स्नेह-संरक्षित सिद्धान्तोंका बलिदान ही क्यों न करना पड़े। इंग्लैंडमें ऐसे लोग हैं, जिन्हें दूसरे देशोंके कामोंकी बड़ी चिन्ता लगी रहती है और वे दक्षिण अमेरिका और दूसरी जगहोंके लोगोंको, जो इनकी रायमें ईसाकी शिक्षासे गिर रहे हैं, उपदेश देते रहते हैं। पता नहीं वे इस प्रस्तावित अध्यादेशके बारेमें क्या कहेंगे, जो ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंडके राजा तथा भारतके सम्राटके नामपर ट्रान्सवालमें जारी किया जानेवाला है।

भारतीयोंके लिए अध्यादेशका यह मसविदा सिर्फ दिमागी दिलचस्पीकी चीज नहीं, उससे ज्यादा है; क्योंकि भारत-सरकारके ट्रान्सवालकी अनुनय-विनय मान लेने भरकी देर है, और उपनिवेश-सरकार खुशी-खुशी भारतके लोगोंको इस कीमती अध्यादेशका तुहफा दे डालेगी।

धारा २९ में यह कहा गया है कि,

> इस अध्यादेशकी कोई बात इस उपनिवेशमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा उन ब्रिटिश भारतीयोंके लाये जानेपर लागू नहीं होगी, जिन्हें गवर्नरके मंजूर किये हुए रेल-मार्ग बनाने पर या दूसरे निर्माण-कार्योंपर लगाया जायेगा; किन्तु हमेशा शर्त यह होगी कि ऐसा प्रवेश, उन नियमोंके अनुसार हो जिन्हें विधान-परिषद मंजूर करेगी और यह भी शर्त होगी कि इस अध्यादेशके मजदूरोंको स्वदेश लौटानेके नियम, आवश्यक परिवर्तनोंके साथ, ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होंगे।

हमें आशा है, भारतमें लोकमतके नेता और इंग्लैंडमें भारतवासियोंके हितैषी इसका ध्यान रखेंगे। इससे जाहिर होता है कि ट्रान्सवाल-सरकार यह नहीं मानती कि भारत-सरकार अध्यादेशके ममविदेकी धाराओंको चुपचाप पी लेगी; लेकिन दुर्भाग्यवश इससे यह भी प्रकट होता है कि उसे आशा है, जल्दी ही भारत-सरकार अनिवार्य वापसीकी शर्तपर भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको लानेकी बात मंजूर कर लेगी। हमने अनेक बार अपना यह मत प्रकट किया है कि हम स्वतंत्र भारतीयोंकी स्वतन्त्रताके बदले गिरमिटिया भारतीयोंकी लगभग गुलामों जैसी हालत मंजूर नहीं करेंगे, और यह ध्यानमें रखना चाहिए कि ट्रान्सवाल-सरकारने अपने व्यवहारमें अभीतक भारतीयोंके साथ अत्यन्त "प्रारम्भिक न्याय" (ये श्री डंकनके शब्द हैं) करनेकी भी कोई इच्छा प्रकट नहीं की है। डूबते हुए आदमीकी तरह ट्रान्सवालके लोग उसी तिनकेका सहारा लेनेपर उतारू हैं जो उपनिवेशको दिवालियापनसे बचा सके; और अगर खानोंके भौतिक विकासकी और इस प्रकार उपनिवेशके भौतिक वैभवकी रक्षा हो सके तो वे कितने ही नीचे उतर आनेको उद्यत हैं। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि ट्रान्सवालके लोग कुछ भी चाहें, चीनी जनता या चीन-सरकार इस प्रस्तावित अध्यादेशके साथ कोई वास्ता रखनेसे इनकार करके और भारत-सरकार अपने मूल रवैयेपर कायम रहकर ट्रान्सवालवालोंकी, उनकी हर कोशिशके बावजूद, कोई सहायता नहीं करेगी तो इस प्रकार उस समाजको (हम अत्यन्त आदरके साथ कहते हैं) ऐसी बातसे बचायेगी जो मानवताके विरुद्ध अपराध है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपीनियन, १४-१-१९०४

७८. नव वर्षका उपहार

जब *बाजार*-सूचनाके संशोधनमें अपना प्रस्ताव पेश करते समय ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने अपना बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया, तब हमें उसमें भारतीय व्यापारियोंके शुभ भविष्यके लक्षण दिखाई दिये थे। हमने निष्कर्ष निकाला था कि सर जॉर्ज फेरारका प्रस्ताव मान लेना बहुत अच्छा हल है। पाठकोंको स्मरण होगा कि सर जॉर्जका प्रस्ताव यह था कि, भारतीय व्यापारियोंके निहित स्वार्थोंकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये और जो लोग लड़ाईसे पहले सचमुच व्यापार कर रहे थे उन सबके परवाने फिलहाल नये कर दिये जायें। लेकिन हुआ यह है कि सरकारने ट्रान्सवालके विभिन्न भागोंमें आय-विभागके अफसरोंको हिदायत दी है कि फिलहाल केवल उन्हींको परवाने दिये जायें जो यह विश्वास करा सकें कि वे लड़ाईके पहले परवानेसे, या परवानेके बिना, व्यापार कर रहे थे। उपनिवेश-सचिवका मूल संशोधन यह था कि जो आय वसूल करनेवाले अफसरोंको इस तरहका विश्वास करा सकें, उन्हें बिना शर्त परवाने दे दिये जायें और यद्यपि उपनिवेश-सचिवने अपने भाषणमें अपनी स्थितिका पराक्रमके साथ बचाव किया, और सर जॉर्जका प्रस्ताव इसलिए मान लिया कि उसमें संशोधनकी भावनाका समावेश हो जाता था, फिर भी जिन हिदायतोंका हमने जिक्र किया है वे स्पष्ट ही, इस नीतिसे अलग हैं। आय वसूल-करनेवाले अफसरोंके सामने सबूत अब भी पेश करना होगा — मानो मूल संशोधन इस अन्तरके साथ स्वीकृत हो गया हो कि जहाँ संशोधनके अनुसार बिना शर्त परवाने दिये जाते, वहाँ इन हिदायतोंके अनुसार केवल अस्थायी परवाने दिये जायेंगे। इस प्रकार कथनी और करनीके बीचमें जबरदस्त खाई है। उपनिवेश-सचिवने जो आशाएँ दिलाई थीं वे, ज्यों ही उनके शब्दोंको

कार्यान्वित करनेकी नौवत आई, चूर-चूर हो गई। भारतीयोंने पहले ही एक वार अपने पहलेके व्यापारका सबूत दे दिया है; क्योंकि परिपाटी यह थी कि एशियाइयोंके पर्यवेक्षक (सुपरवाइजर ऑफ एशियाटिक्स) की सिफारिशके विना किसीको व्यापार करनेका परवाना नहीं दिया जाता था। शर्तोंके खिलाफ भारतीय रोये-चिल्लाये, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। दुनिया भरके हलफनामे पर्यवेक्षकोंके पास ले जाने पड़ते थे और वे परवानोंके प्रार्थियोंके दावोंकी पूरी जाँच करके सिर्फ उन्हींको परवाने देनेकी सिफारिश करते थे जो उनकी रायमें युद्धसे पहले व्यापार करते थे, या दूसरी तरह परवाने प्राप्त करनेके पात्र थे। अव सरकार द्वारा नियुक्त अफसरोंकी ये तमाम सिफारिशें निकम्मी समझी जायेंगी। आय वसूल करने वाले अफसरोंके सामने फिर सबूत पेश करने होंगे और फिर भी मानो इसलिए कि अत्याचार अधूरे रह गये थे, प्रत्येक भारतीय परवानेदारको एक आयोग (कमिशन) के सामने घसीटा जायेगा, वहाँ उसे फिर प्रमाणोंकी अग्नि-परीक्षामें से गुजरना होगा और तव भी भगवान जाने उसका परवाना वहाल होगा या नहीं। सरकारके इस निर्णयका परिणाम यह है कि भारतीय समाजको हलफनामों और दूसरे दस्तावेजों पर सैकड़ों पौंड खर्च करने होंगे, तव कहीं अस्थायी परवाने जारी किये जायेंगे। जो यह सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि वे लड़ाईके पहले व्यापार करते थे, उन्हें अपनी दूकानें वन्द कर देनी होंगी। इसकी कोई परवाह नहीं की जायेगी कि उन्हें एशियाई अधिकारियोंकी सिफारिशपर गत वर्ष या उससे पहलेके वर्षमें विना शर्त परवाने मिले थे।

ट्रान्सवालमें उनकी यह दशा हो गई है। इस दुःखद स्थितिके कारण ढूंढ़नेके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं है। श्री वोर्कने स्पष्ट कर दिया है कि यूरोपीय व्यापारी भारतीय स्पर्धा लेशमात्र भी नहीं चाहते — और श्री वोर्क धनिक वर्गके प्रतिनिधि हैं, और वे ३,००,००,००० पौंडकी उस युद्ध-सहायताको वापस लेनेका प्रस्ताव करनेवाले भी हैं, जिसकी श्री चेम्बरलेनके आगमनपर संसारके सामने इतना ढिंढोरा पीटकर घोषणा की गई थी। शान्तिकी घोषणा होनेपर व्यापारमें जो तेजी आई, सरकार उसके वहावमें, साधारण लोगोंकी तरह वह गई और उसने भारी कर्ज करके ऐसा काम हाथमें ले लिया है, जिसे वह धनके विना जारी नहीं रख सकती। इसलिए वह उन सव लोगोंको, जिनकी वात ऐसे मामलोंमें सुनी जानेकी सम्भावना हो, राजी करना चाहती है — भले ही ऐसा करनेसे स्पष्ट वचन-भंग और निर्दोष नागरिकोंकी वरवादी होती हो और उसके अपने ही अधिकारियोंके दिये हुए दस्तावेज रद हो जाते हों। सरकार इतनी कमजोर और भयभीत है कि न्याय नहीं कर सकती।

तव ऐसे संकटके समय ब्रिटिश भारतीयोंका क्या रुख होगा? हमारे दिमागमें यह विलकुल साफ है कि क्या होना चाहिए। भारतीयोंको सर्वथा शान्त और धैर्यसे रहना चाहिये, और अव भी भरोसा रखना चाहिए कि अन्तमें न्याय जरूर किया जायेगा। उन्हें सरकारको आदरपूर्ण दरख्वास्तें तो देते ही रहना चाहिए; परन्तु आय वसूल करनेवाले अधिकारियोंके सामने प्रमाण देनेसे दृढ़तापूर्वक इनकार भी करना चाहिए, और कह देना चाहिए कि जो आयोग नियुक्त होगा वे उसके सामने प्रमाण देंगे। हो सकता है कि परवानोंके विना व्यापार करनेके लिए मुकदमे चलाये जायें और अगर समन जारी कर दिये जायें और परवानेके विना व्यापार करनेपर जुर्माने किये जायें तो अभियुक्तोंको परिस्थितिके अनुकूल साहस दिखाकर जुर्माना देनेसे इन-कार कर देना चाहिए और जेल चले जाना चाहिए। ऐसे कामके लिए जेल जानेमें कोई वेइज्जती नहीं है; आम तौरपर वेइज्जती उन अपराधोंको करनेमें है, जिनपर कैदकी सजा दी जा सकती है; स्वयं कैदमें वेइज्जती नहीं है। इस मामलेमें कथित अपराध, अपराध है ही नहीं और यह तरीका अपनाना वहुत शानदार वात होगी। हमें मालूम है कि ट्रान्सवालके भारतीय

समाजने अबतक जानबूझकर अपनी कानूनी स्थितिका सहारा नहीं लिया है। उसने यह आशा रखी थी कि अन्तमें सरकार उसके साथ न्याय करेगी। परन्तु यदि सरकार अपने कर्त्तव्यको तिलांजलि देकर भारतीय समाजकी रक्षा करनेमें इनकार करती है तो भारतीय समाजको सर्वोच्च न्यायालयकी सहायता लेकर इस प्रश्नकी जाँच करानी ही चाहिए कि निवासमें व्यापार सम्मिलित है या नहीं। १८८५ के कानून ३ का मंशा है कि भारतीय अलग बस्तियोंमें रहें; व्यापारके बारेमें वह कुछ नहीं कहता। बोअर उच्च न्यायालयने बहुमतसे फैसला दिया है कि भारतीयोंके लिए निवासमें व्यवसाय सम्मिलित है। हम नहीं समझते कि सर्वोच्च न्यायालय उस फैसलेको बन्धनकारी मानेगा। कुछ भी हो, मुद्दा महत्त्वका और विचारणीय है; और यद्यपि हमें अब भी आशा है कि कानूनी दावेकी नौबत नहीं आयेगी, फिर भी यदि सरकार तमाम मौजूदा परवानेदारोंकी रक्षा न करनेका आग्रह रखेगी तो उपनिवेशकी सबसे ऊँची अदालतमें अपील करनेके सिवा हमें और कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०८

७९. पैदल-पटरी उपनियम

इसी ७ तारीखको प्रिटोरियाकी नगर-परिषदकी एक बैठकमें श्री लवडेने प्रस्ताव रखा कि,

> **पुलिसको दी गई इन हिदायतोंको देखते हुए कि रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियाँ इस्तेमाल करनेसे न रोका जाये, परिषद तुरन्त प्रिटोरियाके नागरिकोंके अधिकारों, रीति-रिवाजों और विशेष सुविधाओंके इस दुरुपयोगकी रोकथामके लिए कदम उठाये।**

प्रस्ताव पेश करते हुए उन्होंने अपने भाषणमें कुछ असाधारण बातें कहीं और यद्यपि उनकी वे बातें ज्यादातर काफिरोंपर लागू होती हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि उनके सपाटेमें सभी रंगदार आ जाते हैं। स्पष्ट रूपसे उनके लेखे काफिर घृणाके पात्र हैं और शिक्षामें वे कितने ही उन्नत क्यों न हों, वे पैदल-पटरीपर चलनेके योग्य भी नहीं हैं। किन्तु हम काफिरोंके कोई वकील नहीं हैं; फिलहाल हमारा सम्बन्ध उन बहुत अजीब दलीलोंसे है, जो श्री लवडेने अपने प्रस्तावके समर्थनमें दी हैं। उनके खयालसे यदि काफिरोंको — और काफिर ही क्यों, किसी भी रंगदार आदमीको — पैदल-पटरियों पर चलने दिया जायेगा, तो उन्हें नगरपालिकाका मताधिकार — राजनीतिक मताधिकार — मिल जायेगा और वह उनके साथ विधान-परिषदमें बैठेगा। क्या हम इन माननीय सज्जनको याद दिलायें कि अभी उस दिन यही सरकार जिसने, बताते हैं, अच्छे कपड़े पहने हुए वतनियोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे न रोकनेकी पुलिसको हिदायतें दी हैं, तमाम रंगदार लोगोंको नागरिक मताधिकारसे वंचित करनेको राजी हो गई थी? अपने मुद्दे साबित करनेके प्रयत्नमें श्री लवडेने अपने श्रोताओंको बताया कि भारतमें भारतीयोंको उसी रेलके डिब्बेमें सफर नहीं करने दिया जाता जिसमें यूरोपीय सफर करते हैं। हम यह जाननेके लिए बहुत उत्सुक हैं कि उन्हें यह जानकारी कहाँसे मिली। अगर वे नागरिक जीवनमें बिलकुल नये आदमी होते और ऐसा बयान देते तो उसे क्षम्य समझा जा सकता था; परन्तु श्री लवडेकी स्थितिके भद्र पुरुषके लिए पहले तस्दीक किये बिना दावेसे बयान देना — और सो भी ऐसे बयान, जिनसे बहुत हानि हो सकती है — मिथ्यापवादसे कम नहीं है। कोई भी व्यक्ति जो भारतमें थोड़े समय भी रह चुका है, यह जानता है कि

वहाँ ऐसे कोई नियम नहीं हैं, जैसे श्री लवडेने बताये हैं; और अक्सर भारतके महान रेल-मार्गोपर, पहला दर्जा हो या दूसरा, यूरोपीय और भारतीय साथ-साथ एक ही डिब्बेमें सफर करते देखे जाते हैं। वतनी लोगोंके प्रश्नपर श्री लवडेके विचार कितने ही उग्र क्यों न हों, हमारा हमेशा यह खयाल रहा है कि वे उनके प्रामाणिक विचार हैं, और वे पहले तथ्योंका पता लगाये बिना किसी बयानके साथ अपना नाम नहीं जुड़ने देते; परन्तु जैसे इस मामलेमें वे भारतीय रेल-यात्राके बारेमें अपने बन्धु-सदस्योंके मनपर गलत छाप डालनेके साधन बने हैं, ठीक उसी तरह उन्होंने राहमें किसी पुलिसवालेकी चलती-चलाती बातचीतको प्रस्तावका आधार बनाकर सरकारके प्रति भी अन्याय किया है। परिषद और सरकार दोनोंके प्रति उनका कर्त्तव्य था कि वे पुलिस कमिश्नरके साथ पत्र-व्यवहार करके परिषदकी बैठकमें प्रस्ताव लानेसे पहले अपनेको दी गई जानकारीकी पड़ताल कर लेते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०४

८०. श्री वोर्कसे प्रार्थना

ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें प्रिटोरियाके माननीय सदस्यने सूचनापत्रपर एक प्रश्न रखा है। यह प्रश्न वे सर रिचर्ड सॉलोमनसे विधान-परिषदके खुलनेपर उन नियमोंके बारेमें पूछेंगे जो भारतमें यूरोपीयों और भारतीय मुसाफिरोंको रेलोंमें जगह देनेके बारेमें प्रचलित हैं। हम माननीय सदस्यको पहले ही सूचित कर देते हैं, कि मुसाफिर यूरोपीय हों या भारतीय, उनमें कोई भेद नहीं किया जाता, और किसी भी दर्जेमें सफर करनेवाले भारतीयोंको वही अधिकार है जो यूरोपीयोंको है। परन्तु कुछ रेलोंमें तीसरे दर्जेमें सफर करनेवाले भारतीयोंकी भीड़ बहुत होनेके कारण तीसरे दर्जेके कुछ डिब्बे केवल यूरोपीयों और यूरेशियाइयोंके लिए सुरक्षित रखे जाते हैं। अगर हमें माननीय सदस्यको एक सुझाव देनेकी इजाजत हो तो हम कहेंगे, वे इस प्रश्नमें कुछ और जोड़ दें, और सामान्य रूपमें पूछ लें कि, स्वयं भारतमें भारतीयोंका दर्जा क्या है। तब उन्हें बताया जायेगा कि वहाँ कानूनकी नजरमें वर्ग, रंग या धर्मका कोई अन्तर नहीं है, शाही विधान-परिषदमें भारतीय सदस्य यूरोपीयोंके साथ-साथ बैठते हैं, भारतके तमाम उच्च न्यायालयोंमें भारतीय न्यायाधीश हैं, नगर-निगमोंमें अधिकतर सदस्य भारतीय हैं, बम्बईके नगर-निगमके अध्यक्ष पिछले साल एक भारतीय थे, इस समय मद्रास उच्च न्यायालयके स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश एक भारतीय हैं और वहां सबको व्यवसाय और निवासकी पूरी स्वतंत्रता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०४

८१. श्री ग्लैड्स्टनका जीवनवृत्त

इस जमानेमें महापुरुषोंमें गिने जानेवाले श्री ग्लैड्स्टनका जीवनवृत्त जो उनके पट्ट शिष्य श्री मॉर्लेने[1] लिखा है, तीन जिल्दोंमें हालमें ही प्रकाशित हुआ है। भारतमें जीवनवृत्त कम लिखे जाते हैं। अतः जीवनवृत्तकी क्या कीमत है, सो समझनेमें इस ओरकी जनता भाग्यहीन ही रही है। पाश्चात्य जनता इस विषयमें बहुत आगे बढ़ गई है। महात्मा पुरुषोंके जीवनवृत्तोंमें अनेकानेक प्रकारकी शिक्षा समाई रहती है। जो शिक्षाप्रद उदाहरण इस जीवनवृत्तसे मिलते हैं, उनका जन-समाजपर बहुत महत्त्वका प्रभाव पड़ता है।

महात्मा ग्लैड्स्टन किस कोटिके पुरुष थे, इस विषयपर एक व्याख्यान माननीय श्री चन्दावरकरने उच्च श्रेणीके श्रोता-समाजके समक्ष २७ नवम्बर, १९०३ को प्रार्थना-समाज मन्दिरमें दिया था। श्री चन्दावरकरने अपने भाषणके आरम्भमें बताया था कि इस संसारमें महापुरुष कौन होता है और महापुरुषमें कौन-कौनसे गुण होने चाहिए। श्री ग्लैड्स्टन कैसे थे, समूचे यूरोपकी जनता एक महापुरुषके रूपमें उनका सम्मान किसलिए करती है, आदि बातोंकी संक्षिप्त चर्चा करके उन्होंने श्री ग्लैड्स्टनकी स्तुति की थी, और वैसा करते हुए माननीय वक्ताने तत्ववेत्ता इमर्सनका उदाहरण देकर बताया था कि जिस मनुष्यमें विनय, सौजन्य, शान्ति, दया, दूसरेका मत कितना ही भूलभरा क्यों न हो, तो भी उसके प्रति आदर, कामको समझनेकी शक्ति, परिणामदर्शिता, त्रिकालावाधित सत्यके प्रति दृढ़ भक्ति-भाव, कार्य करनेकी एक निश्चयात्मक बुद्धि आदि गुण प्रधानतया होते हैं, वह महापुरुष कहा जा सकता है। ऐसा महापुरुष तत्ववेत्ता इमर्सन था। श्री चन्दावरकर ने बताया कि बड़प्पन वाचालतासे नहीं आ जाता, बल्कि ये गुण तो संयम-पालनसे ही आ सकते हैं।

श्री मॉर्लेने ग्लैड्स्टनका जो जीवनवृत्त लिखा है, उससे स्पष्ट पता चलता है कि जिस तरह इमर्सन तत्वज्ञोंमें महान गुणी था, उसी तरह राजद्वारियों और राजनीतिज्ञोंमें ग्लैड्स्टन महान गुणी था। इस महात्माकी यह अद्भुत खूबी है, और यही कारण है कि इंग्लैण्डकी ही नहीं, बल्कि अनेक राष्ट्रोंकी जनता इसकी ओर पूज्य बुद्धिसे देखती है। इस संसारमें जन्म लेकर मेरा कर्त्तव्य क्या है और मेरी योग्यता क्या है, इसे श्री ग्लैड्स्टनसे अधिक अच्छी तरह दूसरा कोई समझ नहीं सका। व्यवस्थापूर्वक और चिन्तापूर्वक नियमित रीतिसे उन्होंने जो दैनन्दिनी लिखी है, वह इस बातका उत्तम उदाहरण है। राष्ट्रीय उन्नतिके चिन्तनमें वे सदैव निमग्न रहते थे, और उन्हें विद्याका इतना व्यसन था कि उसीके परिणामस्वरूप वे राजमान्य, लोकमान्य और प्रजाप्रिय महात्मा बन गये थे। उनका बुद्धि-चातुर्य विलक्षण था। उनकी राजनीतिक सूझबूझ आदर्श थी। हाथमें लिये हुए कामको पूरा करनेमें वे बेजोड़ थे। अपयश प्राप्त होनेपर वे खिन्न नहीं होते थे, बल्कि सदैव सत्यको पकड़े रहते थे। यश मिलनेपर आनन्दित नहीं होते थे। बल्कि जब दुनियाके लोग उनपर प्रसन्न होते थे और समाचारपत्र उनकी अद्भुत चमत्कार-पूर्ण शक्तिका गान करते थे, तब यह राजमान्य पुरुष अपने मनमें विचार करके बहुत अच्छी तरह सोच लेता था कि उसकी अपनी योग्यता कितनी कम है। इंग्लैंडकी प्रजाकी उन्नतिके लिए

१. बादमें वाइकाउंट जॉन मॉर्ले (१८३८–१९२३), उदार राजनयिक और ग्रन्थकार, १८८६ और १८९२–९५में आयरलंड-मन्त्री और १९०५–१० में भारत-मन्त्री ।

इस राजमान्य पुरुषने आयरलैण्डको स्वराज्यका हक दिलानेमें जो श्रम उठाया था, उसमें यद्यपि इसका पराभव हुआ, तथापि इंग्लैंडकी प्रजा और इसके विरोधी भी यह नहीं कह सकते कि इसका वह कार्य लोक-कल्याणका नहीं था। राजमान्य और प्रजामान्य होते हुए भी वह गर्वसे फूल नहीं गया था। राजके मानकी अपेक्षा प्रजाके मानको ही उसने श्रेष्ठ माना था, और इस सबके मूलम उसकी कर्त्तव्यपरायणता और सुजनता थी। श्री चन्दावरकरने श्री ग्लैड्स्टनके ऐसे लोकोत्तर गुणोंके उदाहरण श्री मार्ले-कृत जीवनवृत्तसे पढ़कर सुनाये थे। उनसे इस महापुरुषका सौजन्य और विनय, कुटुम्ब-भक्ति, प्रजा-भक्ति और राज-भक्ति, स्वदेशाभिमान, नीति, प्रीति आदि गुण बहुत शिक्षाप्रद मालूम होते थे। खेदकी बात इतनी ही है कि इस प्रकारके भाषणोंका लाभ गुजराती जनताको भाग्यसे ही मिल पाता है। श्री चन्दावरकरने प्रार्थना-समाजके मन्दिरमें श्री ग्लैड्स्टनका जो यशोगान किया है, वह उस महात्माकी समाधिपर फूलोंका एक गुच्छा चढ़ानेके समान ही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०४

८२. तार: गवर्नरके सचिवको

जोहानिसबर्ग
जनवरी १६, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरके निजी सचिव

सरकारने ब्रिटिश भारतीय संघको अभी सूचित किया कि अगर परवानेदार लड़ाईसे पहले व्यापार नहीं करते थे तो जिन शहरोंमें नई पृथक बस्तियाँ बन गई हैं उनकी पुरानी पृथक बस्तियोंमें भी उनके परवाने नये नहीं किये जायेंगे। यह *बाजार*-सूचनाकी सीमामें बिलकुल नहीं आता और भारतीय-विरोधी आन्दोलनसे जरूरी नहीं होता। नई बस्तियोंके सब स्थान उजाड़ हैं। अगर व्यापारी वहाँ जायें भी तो उन्हें अपने खर्चपर इमारतें बनानी पड़ेंगी, जो बहुतोंके सामर्थ्यके बाहर हैं। इसके सिवा सब नई इमारतें एकदम नहीं बन सकतीं। संघ परमश्रेष्ठसे हस्तक्षेपका नम्रतापूर्वक अनुरोध करता है। उसे भरोसा है कि वर्तमान परवाने आयोगकी रिपोर्ट आनेतकके लिए नये कर दिये जायेंगे। व्यापारियोंको मुकदमे चलाये जानेका डर है, इसलिए जल्द जवाब की प्रार्थना है।

बिआस[1]

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज: एल० जी० ९२: नं० ९७/१/२ एशियाटिक्स १९०२-१९०६।

१. ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन (ब्रिटिश भारतीय संघ) का तारका पता।

८३. ट्रान्सवालकी स्थिति[1]

[जोहानिसबर्ग]
जनवरी १८, १९०४

ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी आज तककी स्थितिका प्रदर्शक वक्तव्य

जैसा कि नीचेके वक्तव्यसे स्पष्ट होगा, सरकारने एक असमर्थनीय तथा विरोधी रुख अख्तियार कर लिया है:

उपनिवेश-सचिव श्री डंकनने विधान-परिषदमें इस आशयका प्रस्ताव रखा कि जो लोग लड़ाईसे पहले बिना परवानोंके भी व्यापार कर रहे थे, उन सबके परवाने नये कर दिये जायें। सर जॉर्ज फेरारने संशोधन पेश किया कि ऐसे लोगोंको अस्थायी रूपसे परवाने दिये जायें और उनके दावोंकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये। लगता था कि उन परिस्थितियोंमें भारतीयोंके तमाम मौजूदा परवाने फिर अस्थायी रूपसे जारी कर दिये जायेंगे, किन्तु सरकारने संशोधनकी सीमा संकुचित करके परवाना देनेवाले अधिकारियोंको हिदायतें दी हैं कि वे पहलेके व्यापारके बारेमें प्रमाण लें और यदि उन्हें सन्तोष हो जाये तो अस्थायी परवाने जारी करें। अन्य लोगोंको *बाजारों*के सिवा दूसरी जगहोंके लिए परवाने न दिये जायें। इसका अर्थ हुआ आयोगमें एक और आयोग! यदि नियुक्त होनेवाले आयोगको प्रमाण लेने हैं तो फिर गरीब व्यापारी राजस्व लेनेवालोंके सामने प्रमाण पेश करनेके खर्चमें क्यों डाले जायें — खास करके जब उनके परवाने अस्थायी तौरपर ही जारी किये जानेवाले हैं? इसके सिवा, शान्तिकी घोषणाके बाद जब इन्हें परवाने दिये गये थे तब ये एशियाई पर्यवेक्षकोंके सामने प्रमाण देनेपर मजबूर किये ही जा चुके हैं। पर्यवेक्षकोंने उनकी बड़ी सख्तीसे जाँच की थी और दिलजमई कर ली थी कि वे वास्तविक शरणार्थी हैं और लडाईके पहले व्यापार कर रहे थे। इसके बाद ही उन्होंने सिफारिशें की थीं, जिनके बलपर परवाना-अधिकारियोंने परवाने जारी किये थे। वे सारे प्रमाण, जो भारतीय-समाजके विरोधके बावजूद सरकारी अधिकारियोंके आगे पेश किये गये थे, अब नि:सत्व माने जायेंगे। उनके निर्णय निरर्थक हो जायेंगे और भारतीयोंको फिरसे परीक्षा देनी होगी; और यह परीक्षा भी पूरे तौरपर अनिर्णीत होगी। अंग्रेजी झंडेकी छायामें अधिकारोंकी ऐसी अनिश्चितता इसके पहले कभी नहीं देखी गई थी।

बात अभी बाकी है। लॉर्ड मिलनरने कहा है कि युद्धके बाद परवाने अस्थायी तौरपर दिये गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंने इस वक्तव्यका खण्डन किया है। परवाने ज्यादातर पूरे वर्षके लिए बिना किसी शर्तके दिये गये थे — इस दावेकी पुष्टिमें सरकारके सामने बहुत ठोस प्रमाण पेश किया जा चुका है। ऐसे पाँच-छ: लोगोंके मामले सरकारको बताये गये जिनको पिछले सालके प्रारम्भमें ३१ दिसम्बरको समाप्त होनेवाले परवाने दिये गये थे। किन्तु उनपर कोई शर्त न लिखी रहनेके कारण उन्हें उन्हीं अहातोंके पंच-साला परवाने दिये गये। एक आदमीको इसलिए परवाना दिया गया कि वह लड़ाईके पहले ट्रान्सवालकी किसी और जगहमें व्यापार करता था और युद्धमें वह किसी सिपाहीकी जान बचानेका निमित्त बना था। उसे इसपर बहुत अच्छा

१. यह दादाभाई नौरोजीको भेजा गया था और उन्होंने इसकी एक नकल भारत-मन्त्रीको भेजी थी। यह १९-२-१९०४ के *इंडिया*में भी प्रकाशित किया गया था।

प्रशंसा-पत्र भी दिया गया था। एक उदाहरण ऐसा था जिसमें किसी व्यक्तिने जिम्मेदारी लेनेसे डरकर अपना पट्टा न्यायाधीशके हवाले कर दिया और न्यायाधीशने परवाना जारी करनेके पहले उसपर अपने दस्तखत करके उस व्यक्तिको कानूनका कवच पहना दिया। और अब ये दोनों आदमी और कम-ज्यादा ऐसी ही परिस्थितिवाले दूसरे आदमी बीहड़ोंमें ढकेल दिये जायेंगे —ऐसे बीहड़ोंमें जिनको *बाजारोंकी* गलत संज्ञा दी गई है। कसूर यह है कि इनका व्यापार एकदम लड़ाईके पहले उन जगहोंमें नहीं था।

श्री क्रूगरने जो चाहा था यह उससे भी कहीं ज्यादा है। परिस्थिति कितनी हास्यास्पद और दुःखजनक है यह उनमें से एक व्यक्तिके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा। १८९९ में इस व्यक्तिको धमकी दी गई थी कि उसे हटकर *बाजारमें* जाना ही पड़ेगा। उसने ब्रिटिश एजेंटसे दरख्वास्त की। ब्रिटिश एजेंटने सौजन्यके साथ तार देकर कहा कि सूचनाकी परवाह किये बिना वह जहाँ है वहीं बना रहे। जो ब्रिटिश सरकार उस समय अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए मुस्तैद थी वही आज पंगु हो गई है और रक्षा करनेमें डरती है, जब कि बाहरके लोगोंको ऐसा लगता है कि अभयदानके लिए वह आज पहलेसे अधिक अच्छी स्थितिमें है। लड़ाईके पहले भारतीयोंको चलते-फिरते व्यापार करनेके परवाने हकके तौरपर मिल जाते थे। अब राजस्व-अधिकारी ऐसे परवाने देनेसे इनकार करते हैं।

इसके सिवाय बाजार हैं ही नहीं, इस तथ्यको चाहे जितना जोर देकर कह सकते हैं। यहाँ तक कि, सरकारने भी स्वीकार किया है कि उनके चुने हुए कुछ स्थान व्यापारोपयोगी नहीं हैं। इन्हें चुननेका बहाना यह बताया जाता है कि आन्दोलन बहुत उग्र है। शब्दोंको हेरफेर कर कहें तो सरकार न्याय यों नहीं कर पाती कि भारतीयोंके प्रतिद्वन्द्वी बहुत ताकतवर हैं और सरकारको विश्वास है कि किसी-न-किसी दिन इन जगहोंका विकास होगा और तब आजके ये बीहड़ स्थान भी व्यापारके सुविधाजनक स्थल हो जायेंगे।

फिर, इन तथाकथित *बाजारोंमें* जमीनें देनेकी शर्त यह है कि जमीनवाले अपना पैसा लगाकर वहाँ दूकानें बना लें। हर व्यापारी ४०० या ५०० पौंड लगा कर कामके लायक मकान-दूकान नहीं बना सकता। और ये जमीनें सिवा उनके, जो उनमें बसना या व्यापार करना चाहते हैं, किसीको दी नहीं जा सकतीं।

इसलिए, हालतको चाहे जिस तरह उलट-पलट कर देखिए, भारतीय व्यापारियोंके सामने सर्वनाश ही खड़ा दिखाई पड़ता है।

पुरानी सरकारके बनाए हुए *बाजार* या बस्तियाँ मिडिलबर्ग और पीटर्सबर्गमें थीं। ये काफी सुविधाजनक स्थानों पर बनी हैं। अब वर्तमान सरकारने *बाजार* इन नगरोंमें व्यापारके केन्द्रसे और भी दूर निश्चित किये हैं। पुराने *बाजारोंमें* बहुतसे भारतीय धन्धा कर रहे हैं। वहाँ गोरोंके साथ स्पर्धाका नाम भी नहीं है। वहाँ कोई गोरा व्यापारी व्यापार करेगा भी नहीं। इतनेपर भी, कहते हुए पीड़ा होती है, सरकारने तय किया है कि इन *बाजारोंमें* धन्धा करनेवाले व्यापारियोंको नये स्थानोंपर हटना पड़ेगा। यह तो गोरे व्यापारी सरकारसे जिसकी कामना कर सकते हैं उससे भी ज्यादा हो गया।

लॉर्ड मिल्नरने श्री चेम्बरलेनके नाम अपने खरीतेमें सारे संसारके सम्मुख यह प्रकट किया है कि मौजूदा सरकार तीन खास मुद्दों पर प्रतिबन्ध ढीले कर रही है; पहला, *बाजारके* लिए जो जगहें चुनी जा रही हैं वे व्यापारके केन्द्रसे दूर नहीं हैं और वहाँ हर समाजका आना-जाना सुगम है; दूसरा, वास्तविक शरणार्थियोंके *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने फिर दे दिये जायेंगे; और तीसरा यह कि, उच्च स्तरके भारतीय सब कानूनी निर्योग्यताओंसे मुक्त रहेंगे।

ऊपर बिना नमक-मिर्च मिलाये जिस वस्तुस्थितिका बयान किया गया है, उससे स्पष्ट है — परम सम्माननीय महोदय क्षमा करें — कि उक्त तीन बातोंमें से एक भी तथ्योंके समक्ष नहीं ठहर सकती। क्योंकि, *बाजार* दुर्गम स्थानोंमें निश्चित किये गये हैं, वास्तविक शरणार्थियोंके परवाने पुनः जारी नहीं किये जा रहे हैं, और भारतीय, वे कितने भी प्रतिष्ठित क्यों न हों, तमाम निर्योग्यताओंके शिकार बने हुए हैं। अभीतक सिर्फ निवासकी छूटका वचन मिला है; किन्तु वह भी इतनी अपमानजनक शर्तोंसे घिरा हुआ है कि शायद ही किसी आत्माभिमानी भारतीयने उस छूटकी सुविधाके लिए दरख्वास्त की है। फिर, निवासकी छूट भारतीयोंकी आखिरी जरूरत है। निवासकी ऐसी छूटका क्या मूल्य होगा, जिसके साथ व्यापारका हक जुड़ा हुआ नहीं है? वर्तमान शासनमें क्रम उलटा हो गया है। व्यापार मुख्य वस्तु है, उसे समझकर पहले श्री चेम्बरलेनने बोअर-सरकारसे कहा था कि नगरोंका भारतीय व्यापार जैसाका-तैसा छोड़ दिया जाये, किन्तु यदि श्री क्रूगर स्वच्छताकी दृष्टिसे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अलग निवासकी जगहें निश्चित करना चाहे, तो उन्हें इसपर आपत्ति न होगी।

युद्ध अंशतः भारतीयोंके लिए लडा गया था। यदि वे अपनी स्थिति बेहतर नहीं कर सकते तो कमसे-कम लड़ाईके पहलेकी सुविधाका दावा तो वे कर ही सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

कॉलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स : सी० ओ० २९१, जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस।

८४. ऑरेंज रिवर उपनिवेश

आम तौरपर किसी देशका सरकारी *गजट* पढ़नेमें बडा नीरस होता है और वकीलोंको छोड़कर वे ही लोग उसके नज़दीक फटकते हैं जो दिवालेकी सूचनाओं और ऐसी ही दूसरी चीजोंका अध्ययन करना चाहते हैं। परन्तु ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे प्रकाशित सरकारी *गजट* इस सामान्य नियमका अपवाद है। उस *गजटके* अंक पढ़नेमें प्रायः दिलचस्प होते हैं और, साथ ही, हममें से कुछके लिए दुःखद भी। उससे प्रकट होता है कि उपनिवेशमें सम्राटकी सरकार रंगके प्रश्नपर ब्रिटिश नीतिको बोअरोंकी नीतिमें पूरी तरह मिला देनेकी दिशामें छलांग भरती हुई प्रगति कर रही है। जैसे नया धर्मान्तरित मुल्ला जोर-जोरसे अजाँ देता है वैसे ही ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार भी रंगके प्रश्नपर पूरी तरह बोअरोंके विचारकी बन जानेके कारण अपने उत्साहमें उनको भी मात दे रही है। पिछले ३१ दिसम्बरके (जो नीति-निर्धारणके लिए बहुत अनुकूल तारीख है) *गजटमें* ब्रैंडफोर्ट नगरके लिए प्रकाशित नियमोंमें "वतनी" शब्दकी एक नई ही परिभाषा दी गई है।

धारा ११४ में कहा गया है कि :

> इन नियमोंमें जहाँ कहीं 'वतनी' या 'वतनी लोग' शब्द आते हैं वहाँ, अगर प्रकरणसे और कोई अर्थ साफ-साफ न निकलता हो तो, वे स्त्रियों और पुरुषोंके और इनके बोधक होंगे और इनपर लागू होंगे : दक्षिण आफ्रिकाकी तमाम वतनी जातियोंके[1] सोलह सालकी आयुके, या सोलह सालकी संभावित आयुके, या उससे अधिक आयुके स्त्री या पुरुष; और तमाम रंगदार व्यक्ति एवं वे सब जो कानून या रिवाजके अनुसार वतनी या

१. यहाँ मूलमें 'जगहों' शब्द भूलसे छपा प्रतीत होता है।

रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं, या जिनसे वैसा बरताव किया जाता है — चाहे वे किसी भी जाति या राष्ट्रके क्यों न हों।

उसके बाद वे गुलाम बनानेवाले नियम आते हैं, जिनकी तरफ हमने अनेक बार इन स्तम्भोंमें ध्यान आकर्षित किया है। यह परिभाषा जितनी हो सकती है, उतनी व्यापक और अपमानजनक है। यहाँ तक कि, राजा रणजीतसिंहजी[1], या सर मंचरजी[2], या लॉर्ड मिलनरके शब्दोंमें जापानी राजदूत भी, जापानियोंके बारेमें हम अखबारोंमें जो भी गर्वभरी बातें पढ़ते हैं उनके बावजूद, अगर एक खानगी व्यक्तिकी तरह सफर करना चाहें तो ब्रैंडफोर्ट नगरमें उनके साथ दक्षिण आफ्रिकाके एक वतनीका-सा बरताव किया जायेगा, उन्हें पृथक बस्तियोंकी सीमामें ही रहना पड़ेगा, निवास परवाने लेने पड़ेंगे, वे "आवारा वतनी" माने जायेंगे — चाहे इस शब्दका कुछ भी अर्थ हो, रातके दस बजेके बाद बस्तीके बाहर नहीं रह सकेंगे, कर्फ्यूकी घंटीके बाद आम रास्तों या खुली जगहोंमें नहीं रह सकेंगे और जिन गाड़ियोंपर "केवल वतनी" लिखा होगा उनके सिवा और गाड़ियोंमें नहीं चल सकेंगे। जिस तरीकेसे परम्परागत ब्रिटिश नीतिका सार्वत्रिक त्याग किया गया है वह भी बहुत चतुरतापूर्ण है। उपनिवेशके कानूनमें ऐसा कोई भेद-भाव रखा जाता तो उसके लिए उपनिवेश-कार्यालयसे मंजूरी लेनी पड़ती, और वह मंजूरी देनेके लिए कितना भी तैयार क्यों न हो, शायद पूरी-पूरी बात मंजूर न कर पाता। इसलिए उपनियमोंकी शरण ली गई है, जिनके लिए ब्रिटिश मंत्रिमंडलसे स्वीकृति लेनेकी आवश्यकता नहीं है, और जिनकी मंजूरी वैधानिक शासनवाले उपनिवेशका लेफ्टिनेंट गवर्नर स्वभावतः और शिष्टाचारवश कुछ आपत्ति किये बिना दे देता है। और फिर भी उस लड़कीकी तरह जो बराबर चिल्लाती रही कि "अब भी हम सात हैं,"[3] ऑरेंज रिवर उपनिवेशके राज्याधिकारियोंको यह कहते शर्म नहीं आयेगी कि, "अब भी हम ब्रिटिश नीतिका पालन कर रहे हैं!" आशा है, इंग्लैंडमें कोई व्यक्ति इन नियमोंको, जिन्हें हम अन्यत्र छाप रहे हैं, देखेगा, इनका अध्ययन करेगा और जनताको बतायेगा कि उन्नत ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें इंग्लैंडके नामपर क्या किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–१–१९०४

१. नवानगरके जाम साहब — महाराजा रणजीतसिंहजी विभाजी, १८७२–१९३३, जो क्रिकेटके खेलके लिए "रंजी" नामसे प्रसिद्ध थे।

२. सर मंचरजी भावनगरी, देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४९०।

३. विलियम वर्ड्सवर्थकी कविता "वी आर सेवन" में एक छोटी बालिका कहती है कि हम सात भाई-बहन हैं; मेरे दो भाई-बहन स्वर्गमें हैं, फिर भी हम सात हैं।

८५. आत्मत्याग

त्याग जीवनका धर्म है। वह जीवनके हर क्षेत्रमें व्याप्त है और उसका नियमन करता है। व्यावहारिक भाषामें कहें तो, कीमत चुकाये बिना अथवा, दूसरे शब्दोंमें, त्याग किये बिना, हम न कुछ कर सकते हैं और न पा सकते हैं। हम जिस समाजके अंग हैं उसका यदि हमें उद्धार करना है तो हमें इसका मूल्य अदा करना होगा, अर्थात् स्वार्थका त्याग करना होगा। समाजके लिए काम करते हुए जो-कुछ प्राप्त हो उसका एक भाग ही हम अपनी खातिर रख सकते हैं, अधिक नहीं। बस यही त्याग है। कभी कभी हमें महँगे दाम चुकाने पड़ते हैं। सच्चा त्याग कर्मसे अधिकतम आनन्द प्राप्त करनेमें ही है — फिर उसमें जोखिम चाहे कुछ भी हो। ईसा मसीहने कलवारीमें क्रॉसपर प्राण दिये, और वे ईसाई धर्मके रूपमें एक शानदार विरासत छोड़ गये। हैम्डनने[1] कष्ट पाया, परन्तु जहाजी-कर[2] नहीं रहा। जोन ऑफ आर्कको जादूगरनी कहकर जला दिया गया, परन्तु उसे अमर सम्मान मिला और उसके हत्यारे सदाके लिए कलंकित हो गये। संसार उसके आत्म-त्यागका परिणाम जानता है। अमेरिकावालोंने अपनी स्वाधीनताके लिए अपना खून बहाया।

ये दृष्टान्त हमने फर्क बतानेके लिए दिये हैं कि व्यक्तिगत रूपसे भारतीयोंको समाजका बहुत बड़ा लाभ करनेके लिए कितनी थोड़ी कुर्बानी करनी है, और जिनके उदाहरण हमने दिये हैं उन्हें कितना त्याग करना पड़ा था। दक्षिण आफ्रिकामें आम तौरपर और ट्रान्सवालमें खास तौरपर भारतीय अनेक कष्ट भोग रहे हैं। ट्रान्सवालमें उनका भाग्य अधरमें झूल रहा है। उनके रोजीके साधनतक निर्दयतासे छीने जा सकते हैं। उन्हें अशिष्टतापूर्वक पृथक बस्तियोंमें खदेड़ा जा सकता है। तब फिर ब्रिटिश भारतीय कौन-सा आत्मत्याग करें, जिससे उन्हें राहत मिलनेकी आशा हो सके? प्रत्येक भारतीयको इस प्रश्नपर इस तरह सोचना चाहिये मानो यह खुद उसको प्रभावित करता है। उसे सबकी भलाईके लिए धन देना चाहिए और अपना समय और शक्ति लगानी चाहिए। सबके खतरेका सामना करनेके लिए व्यक्तिगत मतभेदको भुला देना जरूरी है। अपने-अपने आराम और अपने-अपने फायदेको छोड़ना चाहिए। इसके साथ धीरज और संयम भी रखना होगा। जो सीधा और तंग रास्ता यहाँ बताया गया है उससे जरा भी इधर-उधर हुए तो कगारेपर से नीचे आ गिरेंगे — इसलिए नहीं कि हमारा पक्ष जरा भी बेजा या कमजोर है, बल्कि इसलिए कि हमारे खिलाफ जो विरोध खड़ा किया गया है वह बहुत बड़ा है।

सामूहिक भावनाके बिना कभी किसी जाति या समाजने कोई सफलता प्राप्त नहीं की। राष्ट्रीय हित करनेकी इच्छा हो सकती है; परन्तु केवल-मात्र इच्छा, यद्यपि वह ध्येयकी ओर प्रगतिमें एक आवश्यक मंजिल है, कुछ ज्यादा किये बिना बेकार होती है। ध्येयकी प्राप्तिके लिए आवश्यक साधन अपनानेकी तैयारी होनी चाहिए। किसी जंजीरमें उसकी सबसे कमजोर कड़ीसे ज्यादा ताकत नहीं होती। अगर हम अटल रहकर कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर और अस्थायी निराशाओंसे विचलित हुए बिना खड़े रहने और काम करनेके लिए तैयार नहीं हैं तो हमारे लिए

१–२. इंग्लैंडके राजा चार्ल्स प्रथमने १६३४–३७ में नौसेनाके परिपोषणके लिए संसदकी अनुमतिके बिना, एक जहाजी कर लगा दिया था। जॉन हैम्डन (१५१४–१६४३) ने उसके खिलाफ आन्दोलनका नेतृत्व किया; जिसमें उसे बहुत कष्ट सहने पड़े, किन्तु जहाजी कर अन्ततः रद हो गया।

असफलता ही उचित पुरस्कार या, यों कहिए कि, कर्त्तव्यकी घोर अवहेलनाका योग्य दंड होगी। ब्रिटिश राज्यमें रहनेवाली जातियोंके लिए किसी वीरतापूर्ण त्यागकी भी जरूरत नहीं है। मुख्य आवश्यकता इस बातकी है कि धैर्यके साथ, लगातार और सौम्य वैधानिक प्रयत्न किया जाये। लगनसे सर्वत्र सफलता मिलती है। ब्रिटिश उपनिवेशोंमें तो वह और भी कारगर होती है। यदि ब्रिटिश तन्त्रकी चाल धीमी है, क्योंकि राष्ट्रका स्वभाव ही रूढ़िप्रिय है, तो वह लगन और एकताको जल्दी समझने और स्वीकार कर लेनेवाला भी है। एक भारतीय कहावत है, रोये बिना माँ भी बच्चेको दूध नहीं पिलाती। फिर, ब्रिटिश सरकार तो और भी कम सुननेवाली है। इसलिए हम आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिका भरमें हमारे देशवासी ब्रिटिश संविधानके इस पहलूका सावधानीसे ध्यान रखेंगे और तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक पूरा न्याय नहीं किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–१–१९०४

८६. डॉ० जेमिसन और एशियाई

डॉ० जेमिसनने[1] केप उपनिवेशके गवर्नर महोदयके सामने एक बड़ी माकूल तजवीज रखकर केपके बॉंड दलको पंगु बना दिया है, और गवर्नरने उनका प्रस्ताव मान लिया है, यह वस्तुस्थिति योग्य डॉक्टर महोदयके दलको बहुत ही ठोस सहायता पहुँचायेगी। ट्रान्सवालमें चीनी मजदूर आनेवाले हैं, इस दृष्टिसे उन्होंने गवर्नरसे अनुरोध किया कि केप उपनिवेशके दरवाजे चीनियोंके लिए बन्द करनेका कानून बना दिया जाये। अपने साम्राज्य-निष्ठाके दावेके अनुसार उन्होंने सुझाया कि पाबन्दी सिर्फ गैर-ब्रिटिश एशियाइयोंपर ही लागू हो। इस प्रकार उन्होंने एशियाई ब्रिटिश प्रजाजनोंका दर्जा पहले-पहल स्वीकार किया। उन्होंने एक विधेयकका मसविदा भी स्वीकृतिके लिए पेश किया, और गवर्नरने *गजटमें* एक ऐसा विधेयक छाप कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की है, जिसमें प्रगतिशील दलके उक्त नेताकी सिफारिशोंकी सभी जरूरी बातें अपना ली गई हैं। अब भी यह आशा की जा सकती है कि इस ऐन वक्तपर भी ट्रान्सवालके लोग ऐसी छलांग न मारनेका फैसला करेंगे, जो भयंकर परिणामोंसे भरी हुई है; और वे उक्त विधेयकका पास होना अनावश्यक बना देंगे। क्योंकि, भले वह गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोंपर लागू किया जानेको हो, वह बहुत कठोर है, और इसलिए, एक ब्रिटिश उपनिवेशके उपयुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकारका कानून संघ-शासनकी प्रगतिको अनिश्चित कालके लिए रोक देगा। इसलिए अब भी ट्रान्सवालके लोगोंके लिए समय है कि वे स्थितिपर पुनः विचार करें और कम आपत्तिजनक उपायोंसे वर्तमान कठिनाइयोंको पार करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–१–१९०४

१. डॉ० एल० एस० जेमिसन (१८५३–१९१७) ये १९०४–१९०८ तक केप कालोनीके प्रधानमन्त्री रहे थे।

८७. एशियाई अनुमतिपत्रों-सम्बन्धी रिपोर्ट

लॉर्ड मिलनरके अनुरोधसे कप्तान हेमिल्टन फाउलने एक ज्ञापन तैयार किया है, जिसमें एशियाइयोंको दिये गये अनुमतिपत्रोंके आँकडे बताये गये हैं। इस ज्ञापनमें विशुद्ध तथ्योंका स्पष्ट वर्णन और श्री लवडे तथा उनके मित्रोंको पूरा जवाब है। ये लोग गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे थे कि हजारों भारतीय लुकछिपकर उपनिवेशमें घुस आये हैं। और, परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहेंगे, यह ज्ञापन श्रीमानके खरीतेमें दिये गये इस वक्तव्यका पूरा खण्डन भी है कि बहुत-से गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें घुस आये हैं और उन्होंने परवाने हासिल कर लिये हैं। जैसा कि कप्तान फाउलका बयान है, यह सच है कि ५७९ भारतीय अनुमतिपत्रोंके बिना उपनिवेशमें रहनेके जुर्ममें सीमाके पार भेजे गये हैं। इससे यह तो हरगिज साबित नहीं होता कि ये लोग जान-बूझकर घुस आये थे। पिछले वर्षके शुरूमें यह कहा गया था कि जब शान्तिकी घोषणा हो जायेगी और परवानोंके नियम ढीले कर दिये जायेंगे तब उपनिवेशमें प्रवेश करनेके लिए अनुमतिपत्रोंकी जरूरत नहीं होगी। रेलोंमें कोई देख-रेख थी नहीं, अतः भारतीय स्वाभाविक रूपसे उपनिवेशमें आ गये थे। अब वे निकाल दिये गये हैं। ये भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन हैं और ऐसे लोग नहीं हैं जिनसे शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अर्थकी सीमामें समाजको कोई खतरा हो सकता हो, इस बातको देखते हुए बहुतोंको यह शंका होगी कि क्या यह कदम न्यायसंगत है। हमारी रायमें, ब्रिटिश भारतीयोंके आगमनपर पाबन्दी लगानेके लिए अध्यादेशका उपयोग गलत रूपमें किया जा रहा है। जब वह जारी किया गया था तब उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे लोगोंको उपनिवेशमें आनेसे रोकना था जो राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक हो सकते थे — अवश्य ही भारतीयोंकी तरह सम्राटके सबसे अधिक राजभक्त माने हुए प्रजाजनोंको रोकना नहीं। उपनिवेशमें केवल ८,१२१ भारतीय हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनके विरुद्ध अध्यादेशपर अमल कितनी कठोरतासे किया गया है। सर कनिंघम ग्रीन (तब, श्री ग्रीन) के कथनानुसार १८९९ में यहाँ वयस्क भारतीयोंकी आबादी १५,००० से ऊपर कूती गई थी। इसलिए, ७,००० शरणार्थियोंके बारेमें अभी और जवाबदेही करनी पड़ेगी। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय प्रवासियोंपर पाबन्दी लगानेकी प्रथा पुरानी नहीं है, बिलकुल नई है। पुरानी हुकूमतके कानून कुछ भी रहे हों, परन्तु ब्रिटिश भारतीयोंके प्रवेशपर कतई कोई पाबन्दी नहीं थी और न उनके पंजीकरणकी धारापर सख्तीसे अमल किया जाता था। फिर भी हम परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको श्री चेम्बरलेनको यह आश्वासन देते हुए पाते हैं कि पुराने कानून पहलेकी तरह कठोरतासे लागू नहीं किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०४

८८. आत्मत्याग — १

मनुष्यकी प्रकृति ऐसी है कि वह अतिशय सामान्य वस्तुको कुछ नहीं गिनता। साधारणतः हम कहते हैं कि खाये-पिये बिना आदमीकी एक घड़ी भी गति नहीं है। किन्तु ऐसा कहते समय हम इतना नहीं सोचते कि खानपानकी अपेक्षा हवा ज्यादा जरूरी है — किन्तु हम उस ओर ध्यान नहीं देते, क्योंकि हमेशा श्वास लेते रहते हैं। और भूख-प्यास समय-समयपर लगती रहती है, उसकी झट याद आ जाती है। इसी प्रकार आत्मत्यागको समझिए। जिन्दगी आत्मत्याग करनेसे निभती है। फिर भी उस ओर ध्यान नहीं जाता।

आत्मत्याग अनेक प्रकारका है; आज हम केवल स्वार्थके त्यागका विवेचन करेंगे। स्वार्थके त्यागकी महिमा सब जानते हैं। और इस विषयमें मनुष्य जितना अधिक विचार करता है उसकी उतनी अधिक जरूरत लगती है और वह उसे समझता है। नासमझ सोचे तो जरूरी लगे, समझदार सोचे तो जरूरी लगे, इतना ही नहीं वह उसे समझ भी सकता है और समझनेपर वैसा स्वार्थत्याग करनेके लिए तत्पर भी हो जाता है। हम यह बात अपने बचपनसे जानते हैं और इसलिए बारबार कहते हैं कि मेहनतके बिना कुछ नहीं मिलता। किन्तु हम जैसे-जैसे बड़े होते हैं और विचार करते हैं वैसे-वैसे अपने अनुभव और इतिहासके अध्ययनसे इन साधारण वचनोंका तात्पर्य हमारी समझमें अधिकाधिक आने लगता है। टेकरी चढ़नेमें थोड़ी मेहनत, पहाड़ चढ़नेमें बहुत मेहनत; छोटा काम करनेमें कम जोखिम, कम कष्ट, बड़ा काम करनेमें बड़ी जोखिम, बड़ा कष्ट। अगर हमें पहाड़ चढ़ना आवश्यक जान पड़ता है तो हम बहुत श्रमकी परवाह नहीं करते और बड़ा काम करना हो तो जोखिम और कष्टको नहीं गिनते अर्थात् जरूरत पड़नेपर त्याग करनेमें नहीं डरते।

इस मुल्कमें रहनेवाले हमारे भाई भी इस विचारसे अनजान नहीं हैं। यहाँ आकर वे जो दो पैसे कमाते हैं वह इसी त्यागका परिणाम है। घरबार छोड़ा, सगे-सोदरे छोड़े, महासागर पार किया — इतना सारा त्यागा और भली भाँति विचार करनेके बाद। त्याग किया, हिम्मत बाँधी तभी इस देशमें आ सके और स्थिति सुधार सके। अर्थात् सोच-विचारकर त्याग करनेसे अच्छा फल निकलता है, इसे वे अच्छी तरह समझते हैं और इसलिए समय-समयपर त्याग करके अपनी स्थितिको सुधारनेका प्रयास करते हैं और हम आशा करते हैं कि वे सदा सोच-समझकर त्याग द्वारा सार्वजनिक और अपनी हालत रोज-रोज सुधारते ही रहेंगे।

हम आज त्याग करनेके कर्त्तव्यके विषयमें इसलिए लिख रहे हैं कि देशमें और विशेषतः ट्रान्सवालमें गोरे लोग हमारी स्थितिको अत्यन्त विषम बनाने पर तुले हुए हैं। हमारे साधारण अधिकार एकके बाद एक छीने जा रहे हैं। इसके बाद भी कोई हमारी तरफसे बड़ा संघर्ष नहीं चलाता और इसलिए गोरे हमें असहाय और निर्बल मानते है और उनकी मदांधता दिन-दिन बढ़ती जाती है। यहांकी सरकार गोरोंके हाथमें है और उन्हें नाराज करनेमें डरती है; इस-लिए उनकी चाहे जितनी ऊटपटांग और अन्यायपूर्ण जिद मान लेती है और उसे कायम रखती है और बड़ी सरकारको समझाती है कि लोकमतका मान रखनेके लिए ऐसा करना पड़ता है। हमारे दुर्भाग्यसे बड़ी सरकार अपनी सत्ताका प्रयोग करके [लोकमतके] ऐसे दुरुपयोगके खिलाफ काफी जोर नहीं लगाती। भारत-सरकार, हमारी रक्षा करना जिसका खास फर्ज है, एकाध बार डरते-डरते थोड़ा-सा बोलती है — केवल थोड़ा-सा। जब हमारी ओरसे दबाव डाला गया तभी लॉर्ड मिलनरने मजदूरोंकी माँग की। उनसे एक अवसर मिला और कहा गया कि यदि [स्वतंत्र] भारतीयोंकी स्थिति सुधारी जाये तो किसी निश्चित अवधि तक गुलामी करनेके

लिए मजदूर भेजे जायें। हमारे अधिकारका मजदूरोंकी गुलामीसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है — फिर भी ऐसी शर्त पेश की गई; इसपर से ऐसा अनुमान होता है कि यदि ट्रान्सवाल गुलामोंकी तरह काम करनेके लिए भारतीय मजदूर भरती करनेकी माँग वापस ले ले तो भारत-सरकार ट्रान्सवालमें रहनेवाली भारतीय जनताकी हालत नहीं सुधार सकती। नेटाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके उपनिवेशोंमें तो हमें कोई आहट ही नहीं आती, मानो वहाँ दूधकी नदियाँ बह रही हैं। ऐसा है हमारा दुर्भाग्य और इसलिए हमें कर्तव्योंके विषयमें बार-बार लिखना पड़ता है। हमारे बुजुर्गोंकी 'अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता' और 'परकी आशा सदा निराशा' जैसी कहावतें ऐसे दुखदायी अनुभवोंपर से याद आती हैं और उनका महत्त्व समझमें आता है।

इतना याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश सरकारकी वृत्ति न्यायी है और उसका इन्साफ करनेकी है। राज ब्रिटिश है इसलिए ब्रिटिश राजनीति समझना हमारा फर्ज है। जैसे-जैसे ब्रिटिश राजनीति और नियमोंका अध्ययन करते हैं वैसे-वैसे, किस तरह अपनी माँगें सामने रखें, यह समझमें आता है, और यदि यह समझमें आ जाये तो फिर मुराद पूरी होनेमें बहुत मुश्किल नहीं रहती। समय लगता है किन्तु बात वाजिब हो तो अन्तमें होकर रहती है। ऐसा नहीं है कि केवल भारतीय जनताको ही इन्साफ देरसे मिलता है, आयरलैंडका उदाहरण देखिये, ब्रिटिश-प्रकृति ही ऐसी है। अब हमारा फर्ज यह है कि यह बात ध्यानमें रखकर प्रयत्न करें। सबका सुख सो मेरा सुख, सबका लाभ सो मेरा लाभ, ऐसा उत्तम विचार मनमें दृढ करके मन लगाकर यदि हम अपना काम करते हैं तो अन्तमें हमारी धारणा अवश्य पार पड़ेगी क्योंकि हम न्याय माँग रहे हैं, मेहरबानी नहीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–१–१९०४

८९. एक बेजोड़ मुकाबला

ट्रान्सवालके भारतीयोंका प्रश्न एक नई और चिन्ताजनक स्थितिमें पहुँच गया है। उस उपनिवेशकी सरकारने न्यायकी पुकार सुनी-अनसुनी कर दी है। उसने 'न खाय न खाने दे' की नीति अख्तियार करनेका फैसला किया है। यहाँतक कि भारतीयोंको काफिरोंकी बस्तियोंमें भी व्यापार करनेकी इजाजत नहीं है, ताकि कहीं ऐसा न हो कि, वे उससे अपनी आजीविका उपार्जित कर लें! सरकारका खयाल है कि उसने *बस्ती* शब्द बदलकर *बाजार* कर दिया, यह बड़ी रियायत दे दी है। और ऐसा करनेके बाद यह स्वाभाविक ही है कि वह इसके बदलेमें बस्तियोंको उन जगहोंसे भी ज्यादा दूर हटा दे जहाँ वे बोअरोंकी हकूमतमें थी; और उन जगहोंमें रख दे जहाँ, कमसे-कम कुछ जगहोंमें, उसकी अपनी ही स्वीकारोक्तिके अनुसार इस समय व्यापार चलाना मुमकिन नहीं है।

चिकित्सक लोग इलाजका एक तरीका जानते हैं, जिसे वे अनशन-चिकित्सा कहते हैं। ट्रान्सवाल सरकारने भारतीय मुसीबतका भी ऐसा ही इलाज अपनाया है। अगर वह भारतीयोंको शराफतसे सीमा पार नहीं भेज सकती तो, कोई कारण नहीं कि उन्हें शहरकी हदके बाहर भी न रख सके, जिससे या तो वे भूखों मर जायें या बिलकुल चले जायें। जब यही तरीका डचोंके अलावा दूसरे यूरोपीय लोगोंपर जो कुछ पहलेतक एटलांडर[1] कहे जाते थे, लागू

१. दक्षिण आफ्रिकी डचेतर गोरे प्रवासियोंके लिए डच नाम।

किया गया था, उस समय लॉर्ड मिलनरने इसे "टोंच-कोंच नीति" का नाम दिया था। फिर भी, बोअर-सरकारने डचेतर यूरोपियोंके साथ जो व्यवहार किया था, निर्दयतामें उसकी तुलना ट्रान्सवाल-सरकारके इस व्यवहारसे नहीं की जा सकती, जो वह अपने एक प्रजा-वर्गके साथ अब कर रही है। इसीलिए भारतीयोंने, अन्तिम उपायके रूपमें, इस मामलेको उपनिवेशके उच्च न्यायालयमें ले जाने और यह परीक्षा करानेका बुद्धिमत्तापूर्ण फैसला किया है कि क्या सरकारको ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेसे इनकार करनेका अधिकार है। ऐसा रास्ता अख्तियार करना बहुत ही जरूरी हो गया है, यह बड़ा दयनीय है। किन्तु ट्रान्सवालके भारतीय लगभग दो वर्षतक इस मामलेको सर्वोच्च न्यायालयके सम्मुख नहीं ले गये, और उससे फैसला लेकर मामलेको खत्म करनेके बजाय उन्होंने सरकारसे ही थोड़ा-सा न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, यह उनके लिए निश्चय ही श्रेयास्पद है। वे पूरी तरह श्री चेम्बर-लेनकी सलाहपर चले हैं और उन्होंने यूरोपीय व्यापारियों और सरकारसे उचित समझौता करनेकी कोशिश की है। उन्होंने केवल अपने मौजूदा हकोंके संरक्षणकी माँग की है। और, लॉर्ड मिलनरके नाम श्री चेम्बरलेनके खरीतेके बावजूद जब इतना भी उन्हें देनेसे इनकार किया गया तभी वे सर्वोच्च न्यायालयसे क्या फैसला मिलता है यह आजमाइश करनेके लिए मजबूर हुए हैं।

यह भाग्यकी विडंबना है कि भारतीय समाज उसी मामलेको सर्वोच्च न्यायालयमें ले जायेगा — और यह भी सरकारी विरोधके बावजूद — जिसके सम्बन्धमें श्री चेम्बरलेनने भारतीयोंका पक्ष लिया था और इसका समर्थन अखीर तक किया था। यहाँ तक कि, जब बोअर उच्च न्यायालयका फैसला[1] आशाके विरुद्ध और ब्रिटिशोंकी मान्यताके विपरीत हुआ तब श्री चेम्बरलेनने श्री क्रूगरसे कहा कि वे ब्रिटिश भारतीयोंके हकमें मामलेको एक भिन्न दृष्टिकोणसे पेश करेंगे। जिस बातका हम उल्लेख करते हैं वह सन् १८९८ की है। यह स्मरण होगा कि भूतपूर्व फ्री स्टेटके तत्कालीन प्रधान न्यायाधीशने ब्रिटिश सरकार और बोअर सरकारके एक निवेदनपर फैसला[2] दिया था। प्रश्न यह था कि बोअर-सरकारको एशियाई विरोधी कानून बनानेका अधिकार है या नहीं। पंचने फैसला दिया कि बोअर सरकारको सन् १८८५ का कानून ३, जिस रूपमें वह सन् १८८६में संशोधित हुआ था उस रूपमें, मंजूर करनेका अधिकार है। इस फैसलेकी बिनापर बोअर सरकारने "स्वच्छताके प्रयोजनसे उनको (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको)," निवासके लिए निर्दिष्ट गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बता देनेका अधिकार सुरक्षित कर लिया। लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई, क्योंकि यह जानना तो बाकी रह ही गया था कि "निवास" शब्दका अर्थ क्या था। अर्थात्, क्या इसका अर्थ यह था कि भारतीय जहाँ चाहे वहाँ रह नहीं सकते; किन्तु व्यापार कर सकते हैं? ब्रिटिश सरकार कहती थी — हाँ, कर सकते हैं। बोअर सरकारका खयाल दूसरा था। इसीलिए भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयकी पूरी न्यायसभाके सम्मुख परीक्षार्थ एक मुकदमा चलाया गया। न्यायमूर्ति मॉरिस, जॉरिसन और ईसरकी न्यायसभा बनी। न्यायमूर्ति मॉरिसने मुख्य फैसला दिया। उनसे न्यायमूर्ति ईसरने तो सहमति प्रकट की, किन्तु न्यायमूर्ति जॉरिसन असहमत रहे। जैसा कि फैसलेसे मालूम होगा, न्यायमूर्ति मॉरिसने पूरी तरहसे ब्रिटिश या, यों कहिए कि, भारतीय दावेके पक्षमें तर्क किया, किन्तु यह महसूस भी किया कि वे उच्च न्यायालयके एक पहलेके सर्वसम्मत निर्णयको स्वीकार करनेके लिए बँधे हुए हैं। न्यायमूर्ति ईसरकी सहमतिका

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १–२ और १३–१७।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७–७८ और १८९–९०।

आधार भी वही था। न्यायमूर्ति जॉरिसनको अपना निर्भीक फैसला देनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। चूँकि वे "निवास" शब्दकी व्याख्यासे ईमानदारीसे व्यापार या व्यवसायको शामिल नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें उच्च न्यायालयके पहले फैसलेको उलटनेमें कोई झिझक नहीं हुई।

इससे भी ब्रिटिश सरकारका उत्साह भंग नहीं हुआ। उसने भारतीयोंके हितोंकी रक्षा करने लायक काफी उपाय फिर भी कर लिए और फैसला खिलाफ होनेके बावजूद लड़ाई शुरू होनेतक ब्रिटिश प्रतिनिधि बोअर सरकारको भारतीयोंको बस्तियोंमें भेजनेसे रोकनेमें समर्थ रहा। अब समय बदल चुका है और उसी प्रकार ब्रिटिश नीति भी। आगामी संघर्षको देखते हुए हम इन तीनों फैसलोंका विस्तृत विश्लेषण फिर करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

९०. धन्यवाद, बोर्कसाहब

श्री बोर्कने भारतीय रेलगाड़ियोंमें भारतीय यात्रियोंके नियमनके बाबत जो प्रश्न[1] किया था, उसके उत्तरमें सर रिचर्ड सॉलोमनने नीचे लिखी जानकारी दी है:

> भारतकी रेलगाड़ियोंमें यूरोपीय और देशी लोगोंकी यात्राका नियमन करनेकी व्यवस्थाके बारेमें मुझे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। मैंने माननीय सदस्यके प्रश्नकी एक नकल रेलवे-कमिश्नरको भेज दी थी। उन्होंने मुझे पत्र द्वारा सूचित किया है कि भारतीय रेलोंमें प्रथा यह है कि कोई भी देशी व्यक्ति, अगर वह अपना भाड़ा दे देता है तो, जिस डिब्बेमें चाहे उसमें बैठ सकता है; और यह भी कि, सब रेलगाड़ियोंमें स्त्रियोंके डिब्बे लगाये जाते हैं, परन्तु यदि कोई गोरा व्यक्ति अपनी पत्नीके साथ यात्रा करना चाहे, और साथ ही यह आश्वासन भी चाहे कि उसके डिब्बेमें कोई देशी व्यक्ति न रहेगा, तो उसे पूरा-का-पूरा डिब्बा लेना पड़ता है।

यह जानकारी ठीक हमारे अनुमानके अनुरूप है, और यद्यपि हमें श्री बोर्कके साथ सहानुभूति है कि वे जो-कुछ चाहते थे वह उन्हें नहीं मिला, फिर भी माननीय सदस्य इतना कष्ट उठानेके लिए धन्यवादके पात्र तो हैं ही; और हम आशा करें कि वे जो उत्तर मिला है उसे मंजूर करेंगे। उन्होंने चुनौती दी थी, और जो उत्तर पानेका अनुमान बाँधा था कि भारतीय रेलोंमें भेदभाव किया जाता है और, इसलिए, वैसा भेदभाव ट्रान्सवालकी रेलोंमें भी बहुत वाजिबी तौरसे किया जा सकता है, इस तर्कका उलटा भी तो सही होना चाहिए। इसलिए, चूँकि भारतमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता, इसका अर्थ यह होता है कि ट्रान्सवालमें भी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति भेदभाव नहीं किया जा सकता। श्री बोर्क एक सम्मानित पुरुष हैं। वे भेदभावकी पीड़ासे ग्रस्त हैं सही, फिर भी इसी कारण वे उस स्थितिसे पीछे नहीं हटेंगे, जिसे उन्होंने जानबूझकर ग्रहण किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

१. देखिए "श्री बोर्कसे प्रार्थना," १४-१-१९०४।

९१. ब्लूमफॉंटीनका संकट

दक्षिण आफ्रिका सचमुच अचरजों और संकटोंका स्थान है, जैसा कि उसे नामवरीकी कब्र भी बताया गया है। पिछले दस वर्षोंमें उसपर मुसीबतोंपर मुसीबतें आई हैं। वेम्वीका विस्फोट, जेमिसनके हमलेके ऐन मौकेपर ग्लेनको जंक्शनकी रेल-दुर्घटना और अभी हालका ब्लूमफॉंटीनका प्रलयंकर तूफान — इन सबसे मालूम होता है कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग कैसी अनिश्चित हालतमें रह रहे हैं। रॉयल होटलके छज्जेपर खड़े हुए लोग पानीसे घिरनेके पाँच मिनट पहले ही, जब पानी हहराता-घहराता आ रहा था, शायद यह सोच रहे थे कि वे एक भव्य दृश्यका आनन्द ले रहे हैं; मगर, अफ़सोस, उन पाँच मिनटोंके अन्तमें साराका-सारा विशाल भवन भहराकर भूमिसात् हो गया, और वह दुःखद कहानी कहनेको सिर्फ एक या दो व्यक्ति बचे! इस मन्दीके समयमें लगभग आधे ब्लूमफॉंटीनका बह जाना, लगभग चार सौ लोगोंका बे-घरबार हो जाना और साठसे अधिक व्यक्तियोंका पानीमें बिलकुल समा जाना एक ऐसा आघात है, जिसे सहना बहुत कठिन है। विध्वंसके इस नजारेमें राहतका बाइस सिर्फ वह हमदर्दी है, जो दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे उस दुर्भाग्यग्रस्त स्थानको हासिल हुई है। विभिन्न नगरपालिकाओंने ब्लूमफॉंटीनके मेयरकी अपीलका तत्परताके साथ और उम्दा तरीकेसे उत्तर दिया है — यह उनके लिए बड़ी प्रशंसाकी बात है। और हमें अपने पाठकोंको सूचना देते हर्ष होता है कि भारतीय समाज भी पीड़ितोंके सहायतार्थ चन्दा दे रहा है। सहायता कितनी छोटी क्यों न हो, वह सब अवसरके अनुकूल और बहुत ही उपयुक्त प्रयोजनके लिए होगी। इसलिए हम अपने पाठकोंसे, उनकी स्थिति कैसी भी क्यों न हो, अपील करते हैं कि वे अपनी जेबें टटोलें और अपना चन्दा भेजें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

९४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले सप्ताह हमने तैयब हाजी खान मुहम्मद और एफ० डब्ल्यू० राइट्ज, एम० ओ०, के परीक्षात्मक मुकदमेंका[1] जिक्र किया था। जैसा कि हम बता चुके हैं, उस मुकदमेमें सारी बहस इस बातपर आ पड़ी कि "निवास" शब्दका क्या अर्थ किया जाये। १८८५ का कानून ३, १८८६ के संशोधनके अनुसार यह विधान करता है:

सरकारको सफाईके प्रयोजनसे उन्हें (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको) रहनेके लिए निश्चित गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बतानेका हक होगा।

तत्कालीन ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे यह कहा गया था कि भारतीयोंके निवास-स्थानमें रहना भी, जिसका प्रयोजन व्यापार करना हो, शामिल है और, इसलिए, भारतीय निश्चित गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें ही व्यापार कर सकते हैं। इसके विपरीत, ब्रिटिश सरकारकी यह दलील थी कि "निवास" का मतलब व्यवसायको छोड़कर रिहाइश ही हो सकता है और "सफाईके प्रयोजनसे" वाक्यांश स्पष्ट बताता है कि भारतीय व्यापारको अछूता छोड़ दिया जायेगा। अदालतकी अध्यक्षता करनेवाले न्यायाधीश श्री मारिसने पहलेके एक निर्णयको[2], जो १८८८ में इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें दिया गया था, अपने फैसलेका आधार बनाया। याद रहे कि इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके इस मामलेकी सुनवाई तत्कालीन ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पंच-फैसला देनेके पहले हुई थी। न्यायाधीशके अपने ही विचारके अनुसार:

अदालत अधिक न्यायानुमोदित सिद्धान्तोंके अनुसार फैसला देती, यदि उसने इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें किसी स्थानपर रहने और व्यापार करनेके बीच फर्क किया होता। साधारण शब्द-प्रयोगके अनुसार जहाँ कोई व्यापार करता है परन्तु सोता नहीं, वहाँ ऐसा नहीं कहा जाता कि वह रहता है।

परन्तु विद्वान न्यायाधीशने सोचा कि वे पहलेके दिये हुए निर्णयसे बँधे हैं और इसलिए यद्यपि उनका अपना अर्थ उस अर्थसे भिन्न था जो उस शब्दका किया गया, फिर भी वे इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेके फैसलेकी अवहेलना नहीं करना चाहते थे। अब ऐसा मालूम होता है कि गणतन्त्री संविधानकी इस धाराका उस समय पूरा उपयोग किया गया था कि, "राज्यमें गोरों और कालोंमें समानता नहीं होनी चाहिए।" यह मान लिया गया था कि भारतीय (दक्षिण आफ्रिकाकी) काली जातियोंके लोग हैं। ऐसी सूरतमें यह तर्क किया गया कि १८८५ का कानून ३ सुविधा देनेवाला है, पाबन्दी लगानेवाला हरगिज नहीं। इस्माइल सुलेमानके मुकदमे और उपर्युक्त दलीलको काममें लेनेके बारेमें कोई कुछ भी कहे, वह उसके बादके तैयब हाजी खान मुहम्मदके मामलेपर किसी भी तरह लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि मुख्य न्यायाधीशने साफ कहा था कि १८८४ के लन्दन सम्मेलनके[3] अनुसार ट्रान्सवाल सरकारको

१. देखिए "एक बेजोड़ मुकाबला", २८-१-१९०४।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३८९।
३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर प्रतिबंध लगानेवाला कोई कानून पास करनेका हक नहीं है। और उन्होंने यह राय दी थी कि, दोनों सरकारें १८८६ के संशोधनके अनुसार १८८५ के कानून ३ से बँधी हुई हैं, क्योंकि उन दोनों कानूनोंके पास होनेमें ब्रिटिश सरकारकी खास रजामंदी थी। हमारा खयाल है कि इस दलीलकी तरफ न्यायाधीशोंका काफी ध्यान नहीं दिलाया गया। और उन्होंने मुकदमेमें अपना फैसला इस तरह दिया मानो कोई पंच-फैसला था ही नहीं। यद्यपि न्यायाधीश जॉरिसन भी, ब्रिटिश भारतीयोंके दुर्भाग्यसे, न्यायाधीश मॉरिसनके फैसलेसे सहमत हो गये, तथापि उनका तर्क पूरी तरह ब्रिटिश सरकारके किये हुए अर्थके पक्षमें था। संविधानमें असमानताके सम्बन्धमें विद्वान न्यायाधीश कहते हैं:

> इससे यह निष्कर्ष निकालना कि कुलियोंके खिलाफ सरकार जो भी कार्रवाई ठीक समझे कर सकती है, मेरी रायमें, ऐसा व्यापक अर्थ करना है, जिसका विधान-सभाका कभी इरादा नहीं हो सकता था। इस धारामें रंगदार लोगोंका मतलब उन रंगदार लोगोंसे है जो उस समय यहाँ रहते थे — अर्थात्, मतलब काफिरोंसे है। लोकसभा (फोक्सराट) ने जब कुलियोंके लिए अलग कानून बनाया तब उसकी यही भावना मालूम होती थी कि कुली इसमें शामिल नहीं किये गये।

किन्तु इस समय ये फैसले ध्यान देने लायक हैं। इसलिए हम इन्हें अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

९५. फिर ऑरेंज रिवर उपनिवेश

हम एक अन्य स्तम्भमें उस अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें रंगदार लोगोंपर व्यक्ति-कर लगानेके सम्बन्धमें बनाये गये कानून एकत्र और संशोधित किये जा रहे हैं और जो १६ जनवरीके ऑरेंज रिवर उपनिवेशके असाधारण *गज़टमें* निकला है। उस उपनिवेशकी वर्तमान सरकारकी रंग-विरोधी प्रवृत्ति बिलकुल विलक्षण है। वहाँ बुरे-से-बुरे रूपकी गुलामी अमली तौरपर पुनरुज्जीवित की जा रही है और अध्यादेशके उक्त मसविदेसे दक्षिण अमेरिकाके इसी तरहके कानूनकी याद आती है। हम पत्रोंमें पढ़ते हैं कि उस देशमें जो हब्शी जुर्माना नहीं दे सकते वे सेवाके लिए किसी भी गोरेके जो उनका जुर्माना अदा कर दे, हवाले किये जा सकते हैं और इस प्रकार, आड़े-टेढ़े ढंगसे, अमेरिकाके संविधानके अनुसार गैर-कानूनी गुलामी दिन-दहाड़े जारी रखी जाती है और कानून द्वारा मंजूर कर दी जाती है। उल्लिखित अध्यादेशके मसविदेकी धारा १३ इस प्रकार है:

> इस अध्यादेशके अनुसार कर-संग्राहकके मांगनेपर कोई रंगदार व्यक्ति व्यक्ति-कर न चुका सके तो उस हालतमें कर-संग्राहक तुरन्त इसकी सूचना उस खेत या मकानके गोरे मालिक, पट्टेदार या कब्जेदारको (यदि कोई हो तो) देगा और, उसके बाद, यदि उक्त कर चुकाया नहीं जाता या उसकी अदायगीके लिए काफी जमानत नहीं दी जाती तो

उक्त रंगदार व्यक्तिको उक्त जिलेमें रहनेवाले किसी ऐसे गोरेकी करारबन्द सेवामें रख देगा, जो उक्त कर चुकानेको रजामन्द हो। व्यवस्था यह है कि ऐसा हरएक करारनामा एक सालसे ज्यादाके लिए नहीं होगा।

इस प्रकार, यदि कोई रंगदार व्यक्ति अध्यादेशके अनुसार लगाया गया व्यक्ति-कर, अर्थात् एक पौंड वार्षिक नहीं चुकाता है तो उसे एक सालके लिए किसी ऐसे गोरेके साथ इकरारनामेके अधीन रखा जा सकता है, जो कर चुकानेको तैयार हो। और यह कर १८ से ७० वर्ष तककी उम्रके हरएक रंगदार मर्दको चुकाना होगा। इसमें बीमारी या ऐसे किसी भी कारणसे कोई छूट दिखाई नहीं देती, और ऐसा कठोर कानून बनाना — भले ही वह दक्षिण आफ्रिकाकी वतनी जातियोंपर ही लागू क्यों न होता हो — हमारे लिए गुलामीका कारण होगा। हमारे लिए अपनी भावनाओंको रोकना कठिन हो जाता है, जब हमें पता चलता है कि यह ब्रिटिश भारतीयोंपर भी लागू होता है, क्योंकि २०वीं धारामें हम पढ़ते हैं :

'रंगदार व्यक्ति' शब्द इस अध्यादेशके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जिनके बोधक होंगे उनमें अरब, चीनी और दूसरे एशियाई और ऐसे ही अन्य सब लोग भी शामिल होंगे, जो कानून या रिवाजसे दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार माने जाते हैं।

बात इतनी सी ही नहीं है कि उपनिवेश अपने दरवाजे भारतीयोंके प्रवेशके लिए बन्द रख रहा है, बल्कि जो थोड़ेसे भारतीय परेलू नौकर इस उपनिवेशमें अपने शान्तिपूर्ण धन्धे कर रहे हैं, उनको लेकर भी उनके लिए ब्रिटिश भारतीयोंपर नये-नये अपमान लादते जाना जरूरी है। क्या इसीकी खातिर लड़ाई मोल ली गई थी और करोड़ों रुपये और हजारों जानें बरबाद की गई थी? लॉर्ड मिलनरको दयालुतापूर्ण और उदार विचार रखनेका श्रेय प्राप्त है। उन्होंने कई बार कहा है कि उन्हें रंगके सम्बन्धमें कोई पूर्वग्रह नहीं है। तब क्या वे इस अध्यादेशको मंजूरी दे देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०४

९६. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने विधान-परिषदके प्रस्तावके अनुसार जब सर्वश्री हनी, शेरिडन रूबी और चैमनेका एक आयोग नियुक्त कर दिया है। श्री चैमने उसके मन्त्री हैं। यह आयोग

> उन एशियाइयोंके मामलोंका विचार करेगा, जो लड़ाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालके शहरोंमें व्यापार कर रहे थे; और जाँच करके यह रिपोर्ट देगा कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या क्या है और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी अनुमति दी जानेके कारण वे जिन निहित स्वार्थोंका दावा करते हैं वे दावे कैसे हैं और उनका क्या मूल्य है।

आयोगके सदस्योंके बारेमें हमें कुछ कहना नहीं है। मन्त्री श्री चैमने भारतीयोंकी नजरमें भारतीय अनुभव और निष्पक्ष भाव रखनेवाले सज्जन हैं। श्री हनी तटकर-निर्देशक और शेरिडन राजस्वके निरीक्षक हैं। यह मान लेना काफी निरापद है कि ये सज्जन बिना किसी पक्षपातके काम करेंगे। श्री रूबी एक योग्य बैरिस्टर हैं और निर्वाचक-सूचियोंके सुधारका अच्छा काम कर रहे हैं। उनकी कानूनी तालीमसे दूसरे सदस्योंको विषयकी सीमामें रहने और उसके सम्बन्धमें कोई कानूनी मुद्दे उठें तो उनका सामना करनेमें मदद मिलनी चाहिए। किन्तु आयोगकी उपयोगिताके सम्बन्धमें कुछ दिलचस्पी पैदा होती है, क्योंकि भारतीयोंने एक परीक्षात्मक मुकदमा छेड़ दिया है। अगर उसका फैसला उनके पक्षमें होता है, जैसा कि होना चाहिए, तब तो आयोगका परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए यह जाहिर है कि मुकदमेका नतीजा निकलनेतक आयोगकी नियुक्ति स्थगित रखी जाती तो ज्यादा अच्छा होता। ट्रान्सवाल, खास तौरपर आजकल, बहुत खुशहाल नहीं है और यह दुःखकी बात है कि बहुत-सा धन व्यर्थकी छानबीनमें बरबाद कर दिया जायेगा। आयोगके विचारणीय विषय ऐसे हैं कि, "लड़ाई छिड़नेसे ठीक पहले" शब्दोंका अर्थ करनेमें श्री रूबीकी कानूनी योग्यता काफी खर्च होगी। उनकी मर्यादामें आनेवाला कौन समझा जायेगा? आयोगके सदस्य ऐसी तारीख कैसे मुकर्रर करेंगे जो, उनकी रायमें, लड़ाई छिड़नेके तुरन्त पहलेकी होगी? परन्तु उन विविध भेद-भावोंकी, जो अक्सर ईर्ष्या-द्वेषजन्य होते हैं और जाँचके दौरानमें जिनके सामने आनेकी सम्भावना है, इस समय चर्चा करना बेकार है। पाँसा फेंका जा चुका है और अब हम आयोगकी कार्रवाईकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०४

९७. आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश भारतीय

हम अपने पाठकोंका ध्यान श्री चार्ल्स फ्रान्सिस सीवराइटके कार्यकी रिपोर्टकी ओर आकर्षित करते हैं। ये आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश साम्राज्य-संघके यूरोपीय कमिश्नर हैं और रिपोर्ट बम्बईके *एडवोकेट ऑफ इंडियामें* प्रकाशित हुई है। हम मानते हैं कि श्री सीवराइट अच्छा काम कर रहे हैं और हम उनके शुभ व्रतमें पूरी सफलता चाहते हैं। श्री सीवराइटने ऐसा पक्ष ग्रहण किया है, इससे जाहिर होता है कि आस्ट्रेलियामें भी, जहाँ उस दिन नष्ट हुए जहाजोंके लोग अपनी चमड़ीके रंगके कारण उतरनेसे रोक दिये गये हैं, ऐसे यूरोपीय मौजूद हैं, जिन्हें रंग-सम्बन्धी कानून बनानेपर और इस प्रश्नपर सर्वसाधारणका रवैया देखकर हृदयसे लज्जा होती है। हम दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशियोंसे अपील करते हैं कि क्या वे समयके चिह्न नहीं पहचानेंगे और साम्राज्य-निष्ठोंकी हैसियतसे इस प्रश्नपर भारतमें रहनेवाले करोड़ों लोगोंकी भावनाओंका खयाल करना ठीक नहीं समझेंगे? अगर वे भारतवासियोंके दक्षिण आफ्रिकामें यात्रा करना या बसना पसन्द करनेपर अत्यन्त अपमानजनक पाबन्दियाँ लगाकर उनकी भावनाओंको आघात पहुँचाते रहेंगे, तो केवल समय आनेकी देर है कि, भारत और उपनिवेशोंके बीच स्थायी मनोमालिन्य हो जायेगा और उन उपनिवेशोंकी रायमें उस समय भारत कितना ही नगण्य दिखाई देता हो, परन्तु जल्दी ही ऐसा समय आयेगा जब उन्हें भूल स्वीकार करनी पड़ेगी। शायद तब भूल सुधारना संभव नहीं रह जायेगा। आदान-प्रदानकी नीति ही एकमात्र व्यावहारिक नीति है। उपनिवेशी तो संसारके अन्य सब लोगोंसे अधिक व्यावहारिक सामान्य बुद्धि रखनेवाले माने जाते हैं। अगर उसे वे इस प्रश्नमें लगायें तो उनकी समझमें आ जायेगा कि जो-कुछ वे लेते हैं उसके बदलेमें थोड़ा-सा भी दें तो यह बुद्धिमत्ता ही होगी।

श्री सीवराइटने एक घोषणापत्र तैयार किया है। उसे भी हम अन्यत्र छाप रहे हैं। उन्होंने चन्देके लिए अपील की है। यह एक नाजुक मामला है। हमारे विचारसे इस शुभ कार्यको पूरा नैतिक समर्थन मिलना चाहिये। परन्तु आस्ट्रेलियाकी समस्या वही होना जरूरी नहीं है जो दक्षिण आफ्रिकामें है; इसलिए धनका बँटवारा नहीं किया जा सकता। प्रत्येक समाजको अपना उद्धार आप करने देना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि सब अपने-अपने साधन जुटायें और हमारी रायमें कारगर सहयोग इसी तरह किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

९८. श्री डोमन टेलूकी अकाल मृत्यु

हमें यह सूचित करते हुए वहुत दुःख होता है कि जोहानिसवर्गके सावधान और अति चतुर भारतीय भाई श्री डोमन टेलू जवानीमें यह फानी दुनिया छोड़ गये हैं। जोहानिसवर्गके हमारे सब भारतीय उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। असलमें वे अमगेनीके रहनेवाले थे, परन्तु पुरुषार्थ करके अपना भाग्य आजमानेके लिए वे जोहानिसवर्ग पहुँचे थे। वहाँ सवल प्रयास द्वारा अपने सुनारके धंधेमें और दूसरे व्यापारमें मामूली पैसा कमाकर वे जमीनके मालिक वन गये थे। उनकी कुछ जमीन नेटालमें भी है। वे अपने पुरुषार्थसे थोड़ी-बहुत अंग्रेजी सीखे थे और अपने सदुद्योगसे तथा धर्मके आकर्षणसे उन्होंने हिन्दीका अभ्यास किया था। वे धर्माभिमानी थे और हिन्दू धर्मकी उन्नतिके लिए सदा आतुर रहते थे। साधारण सार्वजनिक कामोंमें वे वहुत उत्साह दिखाते थे। माँ-वापकी गरीवीके कारण और नेटालमें साधारणतया भारतीयोंपर गुजरने-वाली आफतोंमें पले-पुसे होनेके कारण वे संकटके समयमें धीरजसे किन्तु दृढ़तासे काम लेना सीखे थे। यह शिक्षण जोहानिसवर्गमें उनके वहुत काम आया था।

वे जिस कामका जिम्मा लेते थे उसमें सदा आग्रही रहते थे। परन्तु उस आग्रहको हदमें रखकर काम करनेके लिए वे हमेशा आतुर थे। लड़ाईसे पहले और लड़ाईके वाद भी वे भारतीयोंके सार्वजनिक काममें आग्रहपूर्वक हाथ वँटाते थे। लड़ाईके वाद अनुमतिपत्र (परमिट) के मामलेमें निःस्वार्थ भावसे और वहुत सचाईके साथ वे हमारे स्वदेशी भाइयोंको (अनुमति-पत्र) दिलाने और उनके दूसरे दुःख दूर करनेके लिए अपना लगभग पूरा समय खपाते थे। वोअर लोगोंकी मुसीवत दूर हुई और अंग्रेजी राज्यमें हमारी स्थिति अच्छी होनेकी आशा भंग हो गई, तब हमारी लड़ाई चलानेके लिए सब भाइयोंको एकत्र करनेमें उन्होंने कोई भी प्रयास वाकी नहीं रखा था। दूसरोंके साथ उनके पुरुषार्थके कारण भारतीय संघ (इंडियन असोसिएशन) नामक सभाकी स्थापना हुई थी, और उस सभाके कोषमें सैकड़ोंकी रकम जमा करानेमें वे भोजनादिसे निवृत होकर दिन-रात लगे रहते थे। वे और भी कई सार्वजनिक काम करना चाहते थे। उनकी मृत्युसे भारतीय कौमका एक अच्छा आदमी उठ गया है। वे *इंडियन ओपिनियन*के एक एजेंट थे और अपने कामकी वलि देकर हर हफ्ते पचास प्रतियाँ खुद जाकर वेचते थे, और उनकी दस्तूरी (कमिशन) तक नहीं लेते थे। जोहानिसवर्गके भारतीयोंके प्रति तथा श्री डोमनके परि-वारके प्रति हम अपनी समवेदना प्रकट करते हैं, और परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी आत्माको मुक्ति दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०४

९९. श्रमके प्रश्नपर लॉर्ड हैरिस

डेली मेलसे लेकर अन्यत्र हम एक मुलाकातके समाचार छाप रहे हैं, जो उसके प्रतिनिधिने बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिससे की है। लॉर्ड महोदय आजकल जोहानिसबर्गमें है और संयुक्त स्वर्ण-क्षेत्र (कॉन्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्ष हैं। उन्होंने मुलाकात करनेवालेको बाहरसे मजदूर लानेके बारेमें अपने विचार बताये हैं और उनका खयाल है कि इंग्लैंडमें उसका जो विरोध किया जा रहा है वह बहुत अनुचित है। उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें यह तथ्य बताया है कि वेस्ट इंडीज और दूसरे देशोंमें अबसे पहले बाहरसे लगातार गिरमिटिया मजदूर लाये गये हैं। लॉर्ड महोदयसे इसकी अपेक्षा कहीं अच्छे तर्ककी आशा की जाती थी, क्योंकि हमें निश्चय है, वे अपरिचित हो नहीं सकते कि वेस्ट इंडीज और ट्रान्सवालमें तथा दूसरे देशोंके श्रम-अध्यादेशों और उस श्रम-अध्यादेशके बीच बहुत बड़ा अन्तर है जिसे, ट्रान्सवाल-सरकार चाहती है, ब्रिटिश सरकार बिना पसोपेश के मंजूर कर ले। सबको मालूम है कि वेस्ट इंडीज गोरे श्रमिकोंके लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वहाँकी आबोहवा बड़ी कष्टदायक है, जबकि ट्रान्सवालका जलवायु बिलकुल अच्छा है और यहाँ गोरे मजदूरोंको जैसा काम वे इंग्लैंडमें करनेके आदी है वैसा ही करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। किसीने कभी यह नहीं कहा है कि ऐसे मजदूरोंके लिए यहाँका जलवायु उपयुक्त नहीं है। आपत्ति एकमात्र यह है कि गोरे मजदूर बहुत महँगे है। श्री मॉर्लेने यह बताकर आर्थिक दलीलको निपटा दिया है कि खानोंको थोड़े मुनाफेसे सन्तोष करना चाहिए और जो खानें गोरे श्रमिकों द्वारा बिलकुल चलाई ही नहीं जा सकतीं उनमेंसे सोना निकालनेकी उतावली करनेकी जरूरत नहीं है। रही बात दूसरे देशों और ट्रान्सवालके गिरमिटिया-कानूनोंमें अन्तरकी, सो वह अन्तर उतना ही है जितना स्वतन्त्रताके और गुलामीके इकरारनामोंमें होता है। जहाँतक हमें मालूम है, ब्रिटिश उपनिवेश-वादके इतिहासमें मजदूरोंके लिए कहीं ऐसा कठोर, ऐसा व्यापक और ऐसा अन्यायपूर्ण गिरमिटिया कानून मुश्किलसे मिलेगा, जैसा ट्रान्सवालका श्रमिक आयात अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन आर्डि-नेन्स) है। वेस्ट इंडीज और अन्यत्र जो गिरमिटिया मजदूर जाते है वे गुलाम बनकर नहीं जाते, बल्कि ज्यों ही उनका इकरारनामा पूरा हो जाता है, वे उस देशमें बसने और साधारण नागरिक अधिकार भोगनेके लिए स्वतंत्र हो जाते है। इसलिए हमारा नम्र निवेदन है कि लॉर्ड हैरिसका वेस्ट इंडीज और दूसरे देशोंके उदाहरण देना उचित नहीं है।

भारत-सरकारके रुखपर लॉर्ड महोदयकी टिप्पणियाँ और भी रोचक और शिक्षाप्रद है। लॉर्ड महोदय कहते है :

> भारतीय दृष्टिकोणसे, मेरा खयाल है, भारत-सरकारका रुख अब कुछ भी हो, शुरूमें उसने भूल की थी। व्यापारी और कुली बिलकुल अलग-अलग लोग है। भारतके लिए एक उत्तम बात होती अगर भारतसे ट्रान्सवालको आना-जाना होता रहता। दोनों देशोंके बीच निश्चय ही बहुत-सा व्यापार खड़ा हो जाता और कुली ट्रान्सवालको अपने परि-श्रमका लाभ देकर, अपने रुपये लेकर — वह पूँजी लेकर, जिसकी भारतको असली जरू-रत है — अपने गाँवोंको लौट जाते।

हमें यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि यद्यपि कुली और व्यापारी अलग-अलग लोग हो सकते हैं, फिर भी इसका मतलब यह नहीं होता कि कुली हमेशा कुली ही बना रहे और उसे माल-असबाब जैसा समझा जाये। अगर उसे इस देशमें लाया ही जाता है तो उसे यहाँ बसने और ईमानदारीकी रोजी कमानेके अधिकारसे क्यों वंचित रखा जाये? और भारत-सरकार अपना रास्ता छोड़कर एक ऐसी सरकारके लिए क्यों गुंजाइश निकाले जो यहाँ रहनेवाली भारतीय आबादीके साथ न्यायका बरताव करनेका कुछ भी खयाल नहीं रखती? गिरमिटिया मजदूरोंको लानेके कारण भारतका व्यापार बहुत बढ़ जानेकी बात करना तो बहुत ठीक है; लेकिन कुछ हजार भारतीयोंके गुलाम बनकर ट्रान्सवालमें जानेसे भारतीय दरिद्रताकी समस्या हल नहीं होगी और हमारा खयाल है कि भारत-सरकारने, सुझाई हुई शर्तोंपर और जो ब्रिटिश भारतीय पहलेसे इस उपनिवेशमें बसे हुए हैं उनकी हालतमें सुधार हुए बिना, भारतसे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूर न आने देनेका फैसला ठीक ही किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०४

१००. लेडीस्मिथके परवाने

लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क और परवाना-अधिकारी श्री लाइन्सने अब ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंको यह टिप्पणी जोड़कर परवाने दिये हैं:

> यह परवाना इसके मालिक द्वारा ली हुई ठीक इस जिम्मेदारीके अनुसार दिया गया है कि परवानेवाली दूकान शनिवारके सिवा किसी दिन शामको पाँच बजेके बाद व्यापारके लिए खुली नहीं रहेगी और परवानेवाली दूकान छुट्टीके दिनोंमें बन्द रखी जायेगी।

यह सिद्धान्त मान लेनेके बाद कि जल्दी दूकानें बन्द कर देनेके बारेमें भारतीय दूकानदारोंको श्री लाइन्सकी लगाई शर्तें मंजूर कर लेनी चाहिए, हम उपर्युक्त टिप्पणीके खिलाफ बहुत-कुछ नहीं कह सकते। तथापि इस मर्यादाके अन्तर्गत, हम परवानोंपर लिखी जानेवाली टिप्पणीपर विरोध व्यक्त करनेके लिए लाचार हैं, क्योंकि वह गैर-कानूनी और बेमौका है। कोई सत्ता धारण करना एक बात है, और जनताके सामने रोषप्रद ढंगसे उसका प्रदर्शन करना दूसरी बात है। यदि श्री लाइन्सने अपनी जीतसे सन्तोष कर लिया होता और परवानेदारोंके प्रति उसका प्रदर्शन न किया होता तो वह कम कारगर न होती, और सुन्दर भी दिखाई देती। यदि जिम्मेदारी जरा भी भंग होती तो वे अगले साल कठोर कार्रवाई कर सकते थे। अभी तो हमारा यही खयाल है कि उपर्युक्त टिप्पणीने सारी सुन्दरता जाती रही। श्री लाइन्सको यह भी जान लेना चाहिए कि परवानोंपर टिप्पणी लिख देनेके बावजूद मान लीजिए, कोई, परवानेदार उसकी परवाह नहीं करता और शामके पाँच बजेके बाद भी अपना कारोबार जारी रखता है, तो वे (श्री लाइन्स) एक बार दिया हुआ परवाना रद नहीं कर सकते। निषेधपर अमल करानेके लिए कानूनी तरकीब कोई नहीं है। यह तो उनके अपने और

रोने-चिल्लानेसे कोई लाभ नही और हमारे खयालसे जिम्मेदारीका कार्यसे पालन करना केवी-स्मियके ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०४

१०१. पत्र: डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

मैं आपको भारतीय बस्तीकी भयानक हालतके बारेमे लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। कमरोमे वर्णनातीत भीडभाड दिखाई पडती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे भेजे जाते है और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमे आकर शिकायत कर गये है कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।

बस्तीमे काफिरोकी भी बहुत बडी आबादी है, जिसका वस्तुत कोई औचित्य नही है।

मैंने जो-कुछ सुना है उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमे मृत्युसंख्या बहुत बढ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है वह यदि बनी रही तो, आज हो या कल, कोई सक्रामक बीमारी फैले बिना नही रह सकती।

मै जानता हूँ, सफाई-सम्बन्धी सुधारोमे आप बहुत बढे-चढे है। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि मेहरबानी करके आप एक बार खुद वहा जाये और सफाईके समान ही बस्तीके घनेपनकी समस्या भी उचित रूपसे हल करा दे। यदि आपको मेरा सुझाव ठीक लगे और मै कुछ काम आ सकूँ तो मुझे आपके साथ जानेमे खुशी होगी।

मै यह और कहना चाहता हूँ कि आज जो हालत है उसके लिए बस्तीके निवासी किसी प्रकार जिम्मेदार नही है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१०२. पत्र: डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके काममें दिलचस्पी ले रहे हैं, इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैं वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ वह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है; और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता कि वहाँ न तो भीड़-भड़क्केको रोका जा सकता है और न गन्दगीको। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमें बरबाद किया गया एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है, और उसमें ब्रिटिश भारतीयोंका कोई भी दोष नहीं है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोंमें से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोंको भरनेके लिए क्यों चुनी जाये, यह मेरी समझमें ही नहीं आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बेशक बहुत प्रशंसनीय और कदाचित् आवश्यक भी हैं वहाँ, मेरी नम्र रायमें, भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड़-भाड़के मौजूदा खतरेका सामना करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौंड खर्च कर देनेसे शायद हजारों पौंडकी बचत होगी, क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमें कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोंमें घबराहट पैदा हो जायेगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायेगा।

मुझे आश्चर्य नहीं है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है, इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमें असमर्थ है; क्योंकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नहीं सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। जो काम सबपर छोड़ दिया जाता है, वह किसीका भी नहीं होता। आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नहीं रख सकते। जब्तीसे पहले हरएक बाड़ेका मालिक अपने बाड़ेकी ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और वह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वयं जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाड़ेके साथ एक सफैया लगा रहता था और जो उसकी बराबर देखभाल रखता था; और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि बाड़ोंकी जो हालत इस समय है उसके मुकाबिलेमें वे अच्छी और आदर्श अवस्थामें रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैंने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढंग अपना ले तो मुझे सन्देह नहीं कि स्थितिमें तुरन्त सुधार हो

१०४. फिर पीटर्सबर्ग

पीटर्सबर्ग, जो गत वर्ष ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंको तंग करनेमें अगुआ बना था,[1] उतने ही जोरसे अपनी नीति चला रहा है। नवनिर्मित नगर-परिषदने उत्पीड़न कायम रखनेकी उत्सुकतामें अब एक प्रस्ताव पास किया है कि फेरीवालोंको भी बस्तीके बिना व्यापार न करने दिया जाये। नगर-परिषदके एक सदस्य श्री क्रॉसने यह प्रस्ताव किया है:

> **एक उपनियमका मसविदा तैयार किया जाये, जिसमें यह बताया जाये कि सिवा उन जगहोंके, जो उनके लिए खास तौरसे अलग कर दी गई है, एशियाई अथवा रंगदार लोगोंको अन्यत्र व्यापार करनेके लिए कोई परवाने न दिये जायेंगे।**

श्री चिटेंडनने प्रस्तावका अनुमोदन किया और, *जोहानिसबर्ग स्टार* आगे लिखता है, "यह तय हुआ कि यदि लेफ्टिनेंट गवर्नर उपनियमको मंजूर कर दे तो उसके भंगकी सजा २० पौंड जुर्माना या छः महीनेकी कैद होनी चाहिए।" किसी फेरीवालेसे पृथक बस्तीमें ही फेरीको सीमित कैसे रखवाया जा सकता है, यह समझना कठिन है। श्री क्रूगरकी सरकारने यद्यपि अनेक निर्दयतापूर्ण कार्य किये थे, तथापि वह कभी उतनी दूरतक नहीं गई, जितनी पीटर्सबर्गकी नगर-परिषद जाना चाहती है। पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदमें अनेक वकील हैं और यह आश्चर्यकी बात है कि उनमें से किसीको कभी नहीं सूझा कि नगर-परिषद ऐसी अन्यायपूर्ण सत्ता धारण करनेकी चेष्टा करके, जो कानून द्वारा उसे प्राप्त नहीं है, अपने आपको हास्यास्पद बना रही है। इस प्रस्तावपर विचार किया जाये तो इसका तर्क सम्मत अर्थ यह होगा कि किसी विशेष अध्यादेशकी लम्बी-चौड़ी आवश्यकताके बिना ब्रिटिश भारतीय बन्धनमें आ जायेंगे, क्योंकि कोई भारतीय अपनी बस्तीकी सीमाके भीतर ही अपने मालकी फेरी लगा सकता है, तो यह कहना जरा भी अनुचित न होगा कि वह अपने *बाजार*के भीतर ही घूम-फिर सकेगा और *बाजारकी* सीमासे बाहर कभी नहीं जायेगा। हम शक नहीं है कि पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके खयालमें नगर-परिषदकी सत्ताका इस तरह अर्थ लगाना आदर्श होगा। किन्तु हमें आशा है कि सर आॅर्थर लाली इस परिषदको उपहास और असम्भव स्थितिसे बचायेंगे और उससे साफ-साफ कह देंगे कि प्रस्तावित उपनियमकी मंजूरी नहीं दी जा सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०४

१०५. पत्र : डॉ० पोर्टरको

२१ से २४, कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी २०, १९०४

डॉक्टर सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

मैं आपके आजकी तारीखके पत्रके लिए आभारी हूँ।

मेरे जिस पत्रके कुछ हिस्सोंपर आपने आपत्ति की है, उसे लिखनेका मेरे लिए एक ही कारण था कि, सफाईके उद्देश्य-साधनमें मदद मिले और मेरे अपने देशवासियोंकी सेवा हो सके। मैंने जो-कुछ कहा है उसमें से कुछ भी मैं वापस नहीं लेता, क्योंकि अगर जरूरत हो तो मेरे प्रत्येक कथनकी पुष्टि की जा सकती है।

किन्तु मैं आपका यह खयाल दुरुस्त किये बिना नहीं रह सकता कि भारतीय लोग काफिरोंको किरायेदार रख रहे हैं। उन्हें उप-किरायेदार रखनेका तो अधिकार ही नहीं है।

मैं यही आशा रख सकता हूँ कि मौजूदा हालतें जल्दी ही खतम हो जायेंगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१०६. नगरपालिका सम्मेलन और भारतीय व्यापारी

पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गमें ट्रान्सवालके नगरपालिका-सम्मेलनकी जो बैठक हुई उसमें बॉक्सबर्ग-परिषदके प्रतिनिधि श्री जॉर्ज कॉन्स्टेबलने नीचे लिखा प्रस्ताव पेश किया :

> इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि विधान-परिषदके सामने एक नया एशियाई कानून लाया जानेवाला है, और यह कि, यह प्रश्न स्थानीय शासन संस्थाओंके लिए इतने बड़े महत्त्वका है, ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओंका यह सम्मेलन अपनी राय अंकित करता है कि यहाँके निवासियोंके लिए सबसे सन्तोषजनक नीति यह होगी कि तमाम एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रख दिया जाये, और जो पिछली सरकार द्वारा पहले दिये हुए परवानोंके अनुसार बाहर व्यापार करता हो उसे वाजिब मुआवजा दिया जाये; और यह भी कि, तमाम स्थानीय अधिकारियोंको ऐसे उपनियम बनानेकी अनुमति दी जाये जो रंगदार लोगोंसे सम्बन्धित मामलोंको नियमित करने और *बाजारों* तथा निवास-स्थानों आदिके लिए स्थान मुकर्रर करनेके बारेमें जरूरी हों।

यह प्रस्ताव पास हो गया। केवल श्री गांसने इसके विरुद्ध मत दिया।

प्रस्तावमे नम्रतापूर्वक माग की गई हे कि व्यापार और निवासके लिए तमाम एशियाई लोग *बाजारोंमें* रख दिये जाये, जो लडाईसे पहले परवानोकी रूसे व्यापार करते थे उन्हे मुआवजा दिया जाये और नगरपालिकाओंको इन मामलोको विनियमित करनेका अधिकार दिया जाये। ठेठ शब्दोमे, प्रस्तावका अर्थ यह हे कि ब्रिटिश भारतीयोको भूखो मारा जाये, ताकि वे इस देशको छोड दे। श्री गासके शब्दोमे "एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रखनेका विचार उन्हे वहाँ बसानेका इतना नही है, जितना कि उनसे बिलकुल पिण्ड छुडानेका है।" ब्रिटिश भारतीयोंने पूर्ण रूपसे सिद्ध कर दिया हे कि तथाकथित *बाजार* निवास या व्यापारके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। ब्रिटिश भारतीयोको देशसे सर्वथा निकाल देना उन्हे अग-भग करके तिल-तिल मारनेकी अपेक्षा दयाका काम होगा। श्री कान्स्टेबल नगरपालिकाओंके लिए जो सत्ता चाहते है उसका आदर्श ऑरेंज उपनिवेशका ब्रैडफोर्ट ह। उपनगरके नगरपालिका-उपनियमोकी हम कुछ समय पहले चर्चा कर चुके है और, हमारे खयालसे, हम सिद्ध कर चुके हे कि किस तरह उन नियमोके अधीन रगदार लोग निरे माल-असबाब जैसे बन जाते हैं।

हमे भय है कि श्री कान्स्टेबलकी न्याय-भावनाको प्रेरित करना बेकार होगा। वे आत्मरक्षाके थोथे धर्मके पुजारी है। और जैसा कि हममे भी कितने ही लोग विवेक और हठधर्मीसे अन्धे होकर करते हैं, उन्हे अपने अन्तःकरणको समझा लेने और इस तरह सन्तोष दिला देनेमे कोई कठिनाई नही होती कि वह महान कानून चाहता है, ब्रिटिश भारतीयोको बरबाद कर दिया जाये। इसी कानूनके उन अग्रेजोने, जो शायद अधिक समबुद्धिवाले थे और, इसलिए, निर्णय करनेके अधिक योग्य थे, दूसरे अर्थ किये है। उनका खयाल था कि इस कानूनमें एक दूसरे और उच्चतर कानूनकी मर्यादा लगी हुई हे। अर्थात्, हमे अपनी रक्षा इस तरह करनी चाहिए जिससे दूसरे लोगोंके अधिकारोका अतिक्रमण न हो। श्री कॉन्स्टेबलके देशवासियोने भी उक्त मर्यादासे निकलनेवाला यह सीधा-सादा नतीजा निकाला ह कि जब हमारा ऐसे लोगोंसे पाला पडे तो जो हमारी तरह आचरण नही करते है, आर हमे सन्तोष हो जाये कि हम ठीक रास्तेपर हैं, तब हमे ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वे ऊँचे उठकर हमारी सतहपर आ जाये, न कि वे कुचल दिये जाये। क्या हम उनसे और उनके मित्रोंसे कह सकते है कि वे इस पहलूपर विचार करे?

परन्तु भारतीय व्यापारियोंके प्रति विरोधकी इस बढती हुई तीव्रताका रहस्य क्या हे? यह नही हे कि भारतीय हितोके शत्रुओकी सख्या बढ रही हे, बल्कि यह हे कि जिन सज्जनोने पहले विरोध भडकाया था वे एशियाइयोके दमनके सम्बन्धमे अपनी मागे अधिकाधिक जोरदार करते जा रहे है।

क्या भारतीयोने इसके लिए कोई कारण दिया हे? उत्तर बेशक नकारात्मक हे। फिर क्या चीज हे जिसने द्वेषाग्निको प्रज्वलित किया हे? सभामे बोलनेवालोने इसका उत्तर दे दिया है। उन्होने सरकारकी मदद करनेके प्रस्तावका समर्थन किया हे। सरकारकी मदद क्यो? क्या वह एशियाई विरोधी हे? इसलिए क्या उसे इस नीतिमे आम लोगोंकी हिमायतकी जरूरत हे? हम इतनी दूर नही जायेंगे कि यह कहे कि सरकार जान-बूझकर एशियाइयोंके विरुद्ध हे। परन्तु श्वेत-सघोके महानुभावोको अनुभवसे पता लग गया हे कि अगर वे जोरसे और लगातार एशियाइयोंके विरुद्ध चिल्लायेंगे तो वस्तुत. जो-कुछ वे चाहते है, वह उन्हे मिल जायेगा। इसलिए कुदरती तोरपर अपनी मॉगोके बारेमे उनका होसला बढ़ गया हे। उन्होने १८८५ के कानूनपर अमलकी मॉग की, ओर उत्तरमे *बाजार*-सूचना आ गई। उन्होने एशियाइयोको पृथक बस्तियोमे भिजवाना चाहा ओर कई स्थानोपर *बाजार* कायम हो गये है। हम ओर भी उदाहरण दे

सकते हैं, जिनमें सत्ताधारी गोरोंके विरोधके सामने झुके हैं। सरकारके इस झुक जानेका अर्थ लोगोंने आन्दोलन जारी रखनेका निमन्त्रण समझा तो ठीक ही समझा। उत्तरमें श्री कॉन्स्टेबलका प्रस्ताव मौजूद है। लॉर्ड मिलनरने एशियाइयोंके अधिकारोंके साथ खिलवाड़ किया तो हमारे बॉक्सबर्गके मित्र गंगालमें बैठे बच्चेकी तरह मचल रहे हैं कि, "हम तो लेकर ही छोड़ेंगे।" लॉर्ड मिलनरने एशियाई-विरोधी कानूनोंको इस तरह बदल देनेका वचन दिया है कि वे ब्रिटिश संविधानके अनुरूप हो जायें। नगरपालिका-सम्मेलनने बता दिया है कि वह किस प्रकारका परिवर्तन चाहता है। वह तो श्री क्रूगरको भी मात कर देना चाहता है। कलतक जो डचेतर गोरे (एटलॉन्डर्स) कहे जाते थे, उन्हें शिकायत थी कि पुरानी सरकारके दिनोंमें शासनके मामलोंमें उनकी कोई बात नहीं चलती थी। अब उनकी सुनवाई होने लगी है, तो वे उसे उसी तरीकेपर इस्तेमाल करना चाहते हैं जिसके विरुद्ध वे गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे। जिन ब्रिटिश भारतीयोंका उन्होंने पुरानी हुकूमतसे लड़नेमें सहर्ष सहयोग लिया, उन्हींको वे अब सम्मिलित झंडेके नीचे विदेशी (एटलॉन्डर) बना देना चाहते हैं। और यह है शराफत और वफादारीके बारेमें उनका खयाल!

इस सम्मेलनकी सारी दुःखदायी कार्यवाहीके बीच श्री गॉशका भाषण मरुभूमिमें हरियाली जैसा था। वे साफ-साफ और दृढ़तासे बोले। उन्होंने प्रस्तावका विरोध किया और अपने विरोधके पक्षमें ऐसी दलीलें दीं, जिनसे किसी भी आदमीको, जो पक्षपातसे रंगा हुआ न हो, सन्तोष हो जायेगा। भारतीय समाज श्री गॉशका, उनकी स्पष्टोक्ति और न्यायकी हिमायतके लिए, आभारी है। और जबतक उनके जैसे आदमी हैं, हमारा विश्वास बना रहेगा कि जो पक्ष वास्तवमें न्यायपूर्ण है, अन्तमें उसकी ही जीत होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०४

१०७. ट्रान्सवालके लिए भारतसे मजदूर

सर जॉर्ज फेरारने पिछले सप्ताह खान-संघकी वार्षिक बैठकमें खानोंके वर्षभरके कामकी जो उत्तम समीक्षा प्रस्तुत की, उसमें स्वभावतः ही उन्होंने मजदूरोंके सवालकी विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने जो बातें कहीं उनसे मालूम होता है कि खानोंके लिए भारतसे गिरमिटिया मजदूर जुटानेकी अब भी कोशिश हो रही है। उन्होंने कहा :

> सम्भव है कि हम अपने कार्यका विस्तार भारततक कर सकें, परन्तु अभीतक भारत-सरकारका रुख विरोधका है। वह हमारे यहाँ मजदूर भेजनेको तो तैयार है, परन्तु उन्हें लौटा देनेकी हमारी शर्तोंपर आपत्ति करती है। फिर भी जब यह समझमें आ जायेगा कि इन खानोंमें करार पूरा हो जानेके बाद मजदूरोंके लौट जानेसे उनके अपने देशकी खुशहाली कितनी बढ़ जाती है, तब भारत-सरकारको आज जो आपत्तियाँ हैं वे शायद भारतीय साम्राज्यके ही हितकी खातिर न उठाई जायें।

यह अजीब बात है कि लोग अपने पहलेसे बने विचारोंके समर्थनमें कैसी दलीलें ढूंढ़ लेते हैं। भारत-सरकार एकमात्र भारतीय साम्राज्यके हितोंकी खातिर आपत्तियाँ न उठायेगी, यह कोई नया विचार नहीं है। लॉर्ड हैरिस, जिनसे अधिक जानकारी रखनेकी आशा की जा सकती है, पहले ही यह और इससे ज्यादा कह चुके हैं। इसलिए सर जॉर्ज फेरारके वैसे ही विचारोंसे हमें आश्चर्य नहीं होता। लेकिन अगर वे थोड़ी गहराईमें देखें तो उन्हें तुरन्त पता चलेगा कि

उनके तर्कमें कोई सार नहीं है। उदाहरणार्थ, हम मान लेते हैं कि २०,००० भारतीय प्रस्तावित शर्तोंपर ट्रान्सवाल गये और उन्हें ३ पौंड या ३ पौंड १० शिलिंगकी मासिक मजदूरी मिली; और उन्होंने ३० पौंड प्रतिवर्ष बचाये। इसका अर्थ हुआ तीन सालमें ९० पौंडकी बचत, अर्थात् २०,००० मजदूरोंने १८,००,००० पौंडकी बचत की। भारतवर्षकी आबादी ३०,००,००,००० की है। इस हिसाबसे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूरोंकी कमाईसे १ पौंड प्रति व्यक्ति बाटनेके लिए कितने साल लगातार काम करना पड़ेगा? क्या कोई आदमी, जिसके होश-हवास ठीक हों, कहेगा कि ऐसे काल्पनिक लाभकी खातिर भारत सरकार भारतीयोंको गुलामोंकी तरह बेच देगी? हमने जो आकड़े दिये हैं, वे अवश्य इस कल्पनापर आधारित हैं कि प्रत्येक भारतीय अपनी लगभग सारी मजदूरी बचा लेगा। इसके सिवा, अगर जबरदस्ती वापस भेज देनेका सिद्धान्त मान लिया तो भारतको वर्षानुवर्ष ऐसी भारतीय आबादीके निर्वाहका प्रबन्ध करना होगा जो अपेक्षाकृत अधिक महँगे रहनसहनकी आदी है। नतीजा यह होगा कि प्रस्तावित शर्तोंके अनुसार गिरमिटिया मजदूरोंको यहाँ बुलाना वरदान होनेके बजाय स्वयं मजदूरोंके लिए भी सचमुच अभिशाप बन जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०४

१०८. केपके चुनाव

प्रगतिशील दलकी शायद आशासे अधिक जीत हुई है। जो बहुत ही आशावादी थे उन्होंने भी कभी नहीं सोचा था कि इसे विधानसभामें पाल्का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जायेगा। हम डॉक्टर जेमिसनको उनकी विजयपर अपनी विनम्र बधाई देते हैं। आशा है कि उनके दलकी सफलता केपके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए शुभ होगी, यद्यपि उन्हें केपमें उतनी शिकायतें नहीं हैं, जितनी नेटाल, ट्रान्सवाल अथवा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें है। केपमें भी कुछ अरसेसे उनके अधिकार छीन लेनेकी प्रवृत्ति रही है और केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममें भारतीय-विरोधी परिवर्तन किये गये, वह "बॉड दल" की कृपा है। श्री मेरिमन और उनके मित्रोंने ही विधेयकके ममविदेमें वह सशोधन स्वीकृत कराया, जिससे उपनिवेशमें प्रवेश करनेके ऐसे नियम बनाये गये कि वे ब्रिटिश प्रजाजनोंपर भी लागू हो जायें। हमें मालूम है कि बॉड दलवाले केपके रंगदार लोगोंके पास गये और उन्होंने उन्हें अपने इने-गिने मत बॉड दलके उम्मीदवारोंको देनेके लिए समझाया। और यद्यपि प्रगतिशीलों और बॉड दलके लोगोंमें चुनाव करनेको शायद बहुत-कुछ नहीं है, फिर भी जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, अगर मत देने ही हों तो हमें यह कहनेमें कोई सकोच नहीं कि प्रगतिशीलोंको तरजीह मिलनी चाहिए। सचमुच डॉ० जेमिसनने बिलकुल साफ दिलसे सामने आकर कहा कि वे सभ्यताके अलावा और किसी आधारपर ब्रिटिश प्रजाजनोंके बीच कोई भेदभाव करनेमें विश्वास नहीं रखते। यह ऐसा बयान है जिसपर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। हम यही आशा रख सकते हैं कि लायक डॉक्टर, जो अब उपनिवेशके प्रधानमन्त्री हैं, अपनी बातसे मुकर नहीं जायेंगे और प्रतिस्पर्धी व्यापारियोंकी चिल्लाहट या बॉड दलवालोंके आन्दोलनसे दबकर इस पुराने उपनिवेशमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारों और स्वतन्त्रतामें कमी नहीं करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०४

१०९. विक्रेता-परवाना अधिनियम

डर्बनकी नगर-परिषदने फिर एक बार साबित कर दिया है कि व्यापारियोंके लिए विक्रेता-परवाना अधिनियम अत्याचारका कैसा भयंकर बेलन है। कार्रवाईसे मालूम होता है कि कोई श्री जे० एस० बुल्फसन पिछले तीन वर्षोंसे व्यापार कर रहे हैं। परन्तु इस साल परवाना-अधिकारीके जी में आया और उसने उनका परवाना नया करनेसे इनकार कर दिया। इसके कोई कारण नहीं बताये गये; और, इसलिए, पीड़ित व्यापारी श्री एस्क्यूकी सेवाएँ प्राप्त करके अपीलके प्रक्रियामें से गुजरा है, जिसकी कानूनमें गुंजाइश है। किन्तु श्री एस्क्यू अन्धकारमें भटक रहे थे, क्योंकि उन्हें यह मालूम नहीं था कि किस बिनापर उनके मुवक्किलकी रोटी छीनी गई थी। उन्होंने सिर्फ अनुमान लगाया था कि उनके मुवक्किलका वहीखाता ठीक तरहसे नहीं रखा गया था, और अब वे निश्चित रूपसे जानना चाहते थे कि इनकारीका कारण यही था या नहीं। इसलिए महापौरने परवाना-अधिकारीकी रिपोर्ट माँगी, मगर श्री एस्क्यूको उसे देखनेकी इजाजत नहीं थी, क्योंकि वह "गुप्त" थी। श्री एस्क्यूने विरोध किया, परन्तु व्यर्थ। अन्तमें श्री बर्नके रूपमें उन्हें एक ऐसे परिषद-सदस्य मिल गये जो चुपचाप बैठने और किसी मनुष्यको सुनवाईका मौका दिये बिना सजा देनेके निर्दय अन्यायमें शरीक होनेको तैयार नहीं थे। जब महापौरने विरोधमें यह कहा कि उक्त दस्तावेज प्रकट नहीं किया जा सकता तब श्री बर्नने धमकी दी कि यदि महापौर अपने एतराज पर अड़े रहेंगे तो वे भविष्यमें अपीलें सुननेका काम नहीं करेंगे। यह धमकी ऐसी थी, जिसकी महापौर महोदय उपेक्षा नहीं कर सकते थे और इसलिए उन्होंने यह कह कर बीचका मार्ग निकाल लिया कि मामलेपर समितिमें विचार किया जायेगा। इसलिए श्री एस्क्यूने ठीक ही हस्तक्षेप किया और कहा कि यह तो मध्य युगमें लौट जानेकी बात हुई। हमें तो मालूम नहीं कि मध्य युगमें भी, सुनिश्चित कानूनी तरीके होते हुए, इस तरहकी शोकजनक हालत होने दी जाती थी। अवश्य ही, यदि किसी मनुष्यको अपील करनेका अधिकार है तो उसे उन कागजातको देखनेका भी हक होना चाहिए जो मिसलमें मौजूद हों। श्री एस्क्यूने सोमनाथके जिस मुकदमेका[1] हवाला दिया उसका फैसला करते हुए न्यायाधीश मेसनने नगर-परिषदकी कुछ साल पहलेकी मनमानी कार्रवाईपर कुछ चुभते हुए उद्गार प्रकट किये थे। परिषदने अपीलकर्ताको मिसल देखनेकी इजाजत देनेसे इनकार कर दिया था और मामलेपर समितिमें, अर्थात् अपीलकर्ताकी पीठके पीछे, विचार किया था। किन्तु इस अवसर पर परिषदने समितिका आश्रय जरूर लिया और कुछ समयकी प्रसवपीड़ाके बाद इस प्रस्तावको जन्म दिया कि श्री एस्क्यू कागजात देख सकते हैं। उनमें टिप्पणी संक्षिप्त थी — "वही-खाता असन्तोषजनक, परवाना नहीं दिया गया।" फिर श्री एस्क्यूने यह साबित करनेको शहादत पेश की कि वहीखाता योग्य हिसाबनवीसने रखा था और, इसलिए, नगर-परिषदको अपना अधिकार काममें लाकर परवाना-अधिकारीको परवाना जारी करनेका आदेश देना चाहिए। परन्तु नगर-परिषद इतनी आसानीसे न्याय करनेको राजी नहीं की जा सकती थी। इसलिए उसने अपीलको खारिज कर दिया, परन्तु श्री एस्क्यूको सुझाया कि वे परवाना-अधिकारीको फिरसे अर्जी दें।

दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख और आदर्श शहरकी नगर-परिषद इस प्रकार अपनेको जलील करे और जो सामने अपीली अदालतके रूपमें उसके सामने आयें उनपर निष्पक्ष विचार करनेकी

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २।

[illegible]

[illegible]

११०. जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

[illegible] (अं-[illegible] [illegible] नगर-परिषदकी [illegible] बात है कि [illegible] एशियाई-विरोधी नीति बदलती जाती है। [illegible] भले वह कितना ही स्वार्थपूर्ण क्यों न हो [illegible]। कुछ दिन नहीं हुए, हमने अपने पाठकोंको सूचित किया था कि नगर-परिषदकी [illegible] समितिने एशियाई बाजारके लिए वर्तमान [illegible] स्थानकी सिफारिश की है। भारतीयोंने उसका विरोध किया। विरोधके अनेक आधारोंमें से एक यह था कि वह *बाजार* वर्तमान बस्तीसे बहुत दूर होगा। परन्तु समितिको एक और अर्जी दी गई। उस अर्जीमें परिषदके सुझावको नापसन्द किया गया था, क्योंकि अर्जदारोंकी रायमें वह स्थान उपर्युक्त बस्तियोंके बहुत नजदीक था। अर्जी पर १,३०० व्यक्तियोंके हस्ताक्षर थे, जिनमें से बहुतसे ब्रिक्स्टन, मेफेयर और फोर्ड्सबर्गके निवासी बताये जाते हैं। भारतीयोंका विरोध बेशक बेकार था, परन्तु लोक-स्वास्थ्य समिति इन १,३०० अर्जदारोंके विरोधकी अवहेलना नहीं कर सकती थी। इसलिए वह कुछ महीने पहले प्रकट किये अपने ही मतसे मुकर गई है और यह सुझाव लेकर सामने आई है कि जिस स्थानकी पिछली सरकारने कभी भारतीय और चीनी बस्तीके लिए तजवीज की थी, उसे एशियाई *बाजार* के लिए ले लिया जाये; और समिति दलील देती है कि,

> जिस भूमिका इस *बाजारके* स्थानके लिए उपयोग करनेकी अब तजवीज की गई है, वह वही है जो इस कामके लिए कई वर्षोंसे सुरक्षित कर रखी गई है। इसलिए इस कामके लिए इस स्थानके उपयोगके विरुद्ध आपत्तियां उतनी प्रबल नहीं हैं, जितनी शहरसे उतने ही फासलेके अन्दरके किसी अन्य स्थानके खिलाफ उठाई जा सकती हैं।

प्रस्तावित स्थानको ब्रिक्स्टनसे पूरी तरह अलग रखनेके लिए यह प्रस्ताव है कि,

> स्थानका नक्शा इस तरहका बनाया जाये कि एशियाई बाजार और ब्रिक्स्टनके बीचकी पश्चिमी सीमापर लगभग दो सौ फुट चौड़ी जगह साफ तौरपर छूटी रहे। ... और पश्चिमी तथा उत्तरी सीमाओंपर बस्तीके निवासियोंको सीधे ब्रिक्स्टन पहुँचनेसे रोकनेके लिए एक अलंघ्य बाड़ खड़ी कर दी जाये।

लोक-स्वास्थ्य समिति यह और कह सकती थी कि वह स्थान जिसकी अब वह सिफारिश कर रही है, वही है जिसके बारेमें युद्धसे पहले ब्रिटिश सरकारने बहुत जोरदार विरोध प्रकट किया था, जिसके खिलाफ तत्कालीन उप राजप्रतिनिधि श्री एमरिस इवान्सने तीव्र निन्दायुक्त प्रतिवेदन लिखा था और जिसे अन्तमें पिछली सरकारने भी अस्वीकार कर दिया था। क्या अब उस स्थानमें इतना अद्भुत सुधार हो गया है? अथवा चौक बाजार और इस स्थानके बीचका फासला इन तीन वर्षोंमें इतना घट गया है कि ब्रिटिश राज्यमें अब वह उपयुक्त बन गया? १८९९ में डाकघरसे यह फासला ४$\frac{3}{4}$ मील था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-३-१९०४

१११. मलायी बस्ती

जोहानिसबर्गकी मलायी बस्तीके बारेमें जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी सामान्य उद्देश्य-समितिकी सिफारिश निम्नलिखित है:

> इस सिफारिशमें जिस जमीनका उल्लेख है उसका कुल क्षेत्रफल १८,८८५ एकड़ होता है। आयोगकी सिफारिश है कि यह जमीन, केवल दक्षिणके तिकोने भागकी ४१ एकड़ भूमिको छोड़कर, जिसका अधिकांश इस समय मलायी बस्तीके कब्जेमें है, परिषदके अधिकारमें होनी चाहिए। इस भू-भागके विषयमें आयोग सिफारिश करता है कि यह सरकारकी सम्पत्ति रहे और रेलवेकी भावी आवश्यकताओंके लिए सुरक्षित रखा जाये। ज्ञात हुआ है, आयोगका सुझाव यह है कि जबतक रेलवेको जरूरत न हो तबतक यह जमीन परिषदके नियन्त्रणमें रहे और वही इसका इस्तेमाल करे। लोक-स्वास्थ्य समितिने आयोगकी सिफारिश मान ली है; परन्तु उसने अपनी ओरसे यह सिफारिश की है कि, उसमें एक शर्त डालकर साफ कर दिया जाये कि जिन मलायी लोगोंके अधिकारमें इस समय यह जमीन है उन्हें परिषद जब भी हटाना जरूरी या वांछनीय समझे तब उन्हें हटाने और मुआवजा देनेका खर्च रेलवे-प्रशासन या सरकारको उठाना चाहिए। और यह भी कि, जबतक मलायी लोगोंका कब्जा रहे तबतक मलायी बस्तीके सम्बन्धमें सफाईकी या दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए परिषदको कोई इमारतें खड़ी करनेकी जरूरत मालूम हो, तो उन इमारतोंका मुआवजा परिषदको दिया जाये।

इसलिए इस स्थानके निवासियोंको अपने हितोंकी रक्षा करनेके सम्बन्धमें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। सफाईकी दृष्टिसे इस स्थानके विरुद्ध किसीने कभी कानाफूसी भी नहीं की है। यहाँके निवासी बहुत साफ-सुथरे ढंगसे रहते हैं। उन्होंने खासे अच्छे मकान बनाये हैं। इनमें

[illegible]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, [illegible]

११३. एशियाई व्यापारी-आयोग

ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके सामने इतनेसे पहले उपस्थित हुए निहित स्वार्थ आयोगके सामने अपने दावे पेश करनेका एक बड़ा कठिन काम है और इस बातको ख्याल करते हुए कि आयोग अपनी प्रारम्भिक बैठक १८ तारीखको करनेवाला है, उसकी विचारणीय विषयावलीका अध्ययन करना बेजा नहीं होगा।

विषयावलीका क्षेत्र काफी व्यापक है, परन्तु इस मामलेमें विषयोंका इतना सामान्य होना कई पेचीदगियां और यह सवाल उत्पन्न करता है कि निहित स्वार्थ किसे माना जाये?

प्रथम तो, आयुक्तोंको

> कुछ खास एशियाइयोंके मामलोंका विचार करना है और जांच करके प्रतिवेदन देना है कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या कितनी है और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी इजाजतके मामलेमें जिन निहित स्वार्थोंका उन्होंने दावा किया है वे किस प्रकारके और किस मूल्यके हैं।

इस प्रकार, आयुक्तोंको व्यापार करनेके सवालपर विचार करनेकी कोई सत्ता नहीं है। वे सिर्फ परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रतिवेदन दे सकते हैं। विषयावलीका कड़ाईसे अर्थ किया जाये तो ज्ञात होगा कि उसे निहित स्वार्थोंकी कीमत आंकनेका या यह निश्चय करनेका भी अधिकार नहीं है कि वे किस प्रकारके हैं। वह तो इतनी ही सूचना

दे सकता है कि इन मुद्दोंपर एशियाइयोंको क्या कहना है। अगर ऐसा है तो यह प्रश्न बहुत सादा है। ब्रिटिश भारतीयोंको इतना ही बयान देना है कि वे किस तरह, कहाँ और कबसे व्यापार कर रहे हैं, उनके कोई साझेदार हैं या नहीं और वे अपनी साख और अपने कारोबारका कितना मूल्य आँकते हैं; क्योंकि निहित स्वार्थोंमें उनके उस मालकी कीमत ही नहीं, जिसे वे युद्ध छिड़नेके समय बेचते थे, बल्कि साखकी कीमत भी शामिल होगी। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई साखके मूल्यांकनमें ही आयेगी। इसके बाद सबसे कँटीला सवाल यह है कि वे एशियाई कौनसे हैं, जिन्हें अपने दावे दाखिल करनेकी इजाजत होगी। हम जानते हैं कि विचारणीय विषयावलीके अनुसार उनकी व्याख्या यह की गई है कि:

> जो लड़ाई छिड़नेके समय और उसके ठीक पहले ट्रान्सवालके शहरोंमें पृथक बस्तियोंसे बाहर परवानोंके बिना व्यापार कर रहे थे।

इसलिए, किसी ब्रिटिश भारतीयको अपना दावा पेश करनेसे पहले यह साबित करना होगा कि:

१. वह ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहा था;
२. वह पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहा था;
३. उसके पास कोई परवाना नहीं था;
४. वह लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार कर रहा था, और
५. लड़ाई छिड़नेके ठीक पहले भी व्यापार कर रहा था।

अगर हम भूल नहीं कर रहे हैं तो उपर्युक्त उद्धरणमें "के समय" के बाद "और" के बजाय "या" शब्द होना चाहिए, क्योंकि विधान-परिषदके सारे वाद-विवादसे यह इरादा प्रकट होता था कि जो लोग लड़ाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले व्यापार कर रहे थे उन सबके अधिकारोंका लिहाज किया जाये। फिर भी हम देखते हैं कि आयोगकी विषयावलीके अनुसार दावेदारोंको यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वे लड़ाई छिड़नेके समय ही नहीं, बल्कि उसके ठीक पहले भी व्यापार कर रहे थे। कठिनाईको ठोस रूपमें रखा जाये तो उसका अर्थ यह है कि उक्त विषयावलीके अनुसार यह काफी नहीं है कि कोई भारतीय, मान लीजिये, १८९९ के जून मासमें व्यापार कर रहा था और लड़ाईकी सम्भावनाके कारण ट्रान्सवाल छोड़कर चला गया था; परन्तु उसे यह भी साबित करना होगा कि वह ११ अक्टूबर १८९९ के दिन दर-असल व्यापारमें लगा हुआ था। और अगर इस विषयावलीका कड़ाईसे अनुसरण किया गया तो सैकड़ों दावेदारोंपर सहज ही झाड़ू फिर जायेगी।

हमने इन कठिनाइयोंका उल्लेख यह दिखानेके लिए किया है कि ब्रिटिश भारतीयोंके सामने जो काम है वह कितना खर्चीला है।

परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालयके सामने जल्दी ही शुरू होनेवाली है। अगर गुरु परिणाम भारतीय समाजके अनुकूल हुआ तो भारतीय व्यापारियोंके लिए जरूरी नहीं होगा कि वे अपने दावे पेश करनेका खर्च भी उठायें। परन्तु वे दुविधामें पड़े हुए हैं। यह निश्चित नहीं कि मुकदमेकी सुनवाई कब होगी। आयुक्तोंने इस मासकी १५ तारीख मुकर्रर की है, जो बदली नहीं जा सकती; इसके पहले दावे पेश हो जाने चाहिए। हमें मालूम हुआ है कि ब्रिटिश भारतीय संघने आयुक्तोंसे कार्रवाईको स्थगित रखनेकी प्रार्थना की है। यह प्रार्थना हमें बहुत ही माकूल मालूम होती है। दूसरी ओर आयुक्तोंको एक कर्तव्य पालन करना है। उन्हें जल्दीसे जल्दी लेफ्टिनेंट गवर्नरके पास प्रतिवेदन भेज देना चाहिए। आयोगको नियुक्त परी-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

११८. असंगत

[illegible] दलील इस बातसे प्रकट हो जाती है कि [illegible] बोले, चीनी आक्रमणके पक्षमें निर्णय किया है। इस [illegible] :

> इस आन्दोलनमें किसी सिद्धान्तकी प्रेरणाका अभाव इस बातसे सिद्ध होता है कि इसे वॉक्सवर्गके व्यापारियोंने आगे बढ़ाया है, और वे ही ट्रान्सवालमें चीनियोंके यूथोंको, ऐसी पाबन्दियोंके साथ, जो उन्हें व्यापार करनेसे अलग रखें, ट्रान्सवालमें लानेका समर्थन करनेमें सबसे अधिक क्रियाशील रहे हैं। इन लोगोंको समाजके नैतिक कल्याणकी चिन्ता नहीं है। ये इतना ही चाहते हैं कि जो व्यापार इस समय भारतीयोंके पास जाता है वह इनकी कोठियोंमें आने लगे। जहाँ ये एक लाख या इससे अधिक ऐसे मंगोलोंको लानेकी हिमायत करते हैं, जिनसे राष्ट्रीय जीवन भ्रष्ट और पतित होगा, वहाँ यह आग्रह भी करते हैं कि थोड़े-से ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको उनके व्यापारका विरोध न करनेके लिए बाध्य किया जाये और उन्हें विरोध न करनेसे जो घाटा रहे उसका ट्रान्सवालके लोग मुआवजा चुकायें। ट्रान्सवालके लोग एशियाइयोंको यूरोपियोंसे अलग रखने और जहाँतक हो सके, जातीय संकरताको रोकनेके लिए तो बखूबी ऐसा कर सकते हैं; किन्तु यदि चीनियोंको लाखोंकी संख्यामें आना है तो फिर ट्रान्सवालमें सभ्यताका ऊँचा स्तर कायम

१. देखिये पृष्ठ १४३।

रखनेकी सब आशाएँ छोड़ देनी होंगी, और जिस बातका बॉक्सबर्गके व्यापारियोंने इतने उत्साहपूर्वक समर्थन किया है उसकी तुलनामें भारतीय व्यापारियोंकी उपस्थिति छोटी-सी बुराई रह जायेगी। अगर ये सज्जन समझते हैं कि सिद्धान्तका त्याग कर देनेके बाद वे कोई ऐसी चीज प्राप्त कर सकते हैं जिसका आग्रह सफलतापूर्वक केवल उस परम आवश्यकताके आधारपर किया जा सकता है जिसके लिए जातीय संकरताको रोकना जरूरी है, तो हमारा खयाल है कि इसका अंजाम निराशा-मात्र ही होनेवाला है। यह करदाताओंके प्रति अन्याय होगा कि उनसे उन भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा देनेके लिए कहा जाये जिन्हें मंगोल समाजमें व्यापार करनेके अधिकारसे वंचित रखा जायेगा। यह घोषणा की जा चुकी है कि ट्रान्सवालके लोगोंकी मर्जी अपनी समृद्धिका आधार एशियाई मजदूरोंको बनाने की है। यदि ऐसा हो तो रंगदार लोगोंकी स्पर्धामें गोरे व्यापारियोंकी जो हानि होगी वह कोई खास महत्वकी बात नहीं होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–३–१९०४

११५. जोहानिसबर्गका एशियाई "बाजार"

जोहानिसबर्गकी बेदखल कराई गई बस्तीके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंके साथ हमारी पूरी सहानुभूति है। उनकी हालत बड़ी ही दर्दनाक है। पिछले सितम्बरसे इस क्षेत्रके अनेकानेक निवासी अपनी आजीविकाके एकमात्र साधनसे वंचित कर दिये गये हैं। बेदखलीके बदलेमें उनके दावोंका अनुमान लगाते समय ऊँचे किरायोंका कोई खयाल नहीं रखा गया, जिन्हें पानेके वे अभ्यस्त थे। इसलिए पंचोंने जितने मुआवजोंके फैसले दिये हैं वे यद्यपि नगर-परिषदके अन्तिम प्रस्तावोंसे बहुत-कुछ ऊँचे हैं, फिर भी भारतीयोंके लिए बहुत कम संतोषकी वस्तु हैं; क्योंकि उन्हें जो रकमें मिली हैं उनपर इतना ब्याज मिलना असंभव है कि वे बिलकुल आरामसे गुजारा कर सकें। उन सबको अधिगृहीत क्षेत्रके अन्दर ही घिरा रहना होगा, और नगर-परिषदकी दयापर जीना पड़ेगा; क्योंकि कानूनके अनुसार उनके लिए किसी स्थायी जगहकी व्यवस्था नहीं की गई है। जमीनमें वे अपना रुपया लगा नहीं सकते, क्योंकि ट्रान्सवालमें उन्हें स्थायी सम्पत्तिके मालिक बननेका हक हासिल नहीं है। प्राप्त समाचारोंके अनुसार, इस बस्तीमें सफाईकी हालत आजकल जितनी खराब है, उतनी पहले कभी नहीं थी। अतिरिक्त काफिर आबादी भी इसी बस्तीमें रखी जा रही है। नतीजा यह है कि वहाँ अवर्णनीय पिचपिच हो गई है। जब बाड़े मालिकोंके नियंत्रणमें थे तब उन्हें ठीक हालतमें रखनेकी जिम्मेदारी उनपर मानी जाती थी और तब यह स्थान अवश्य ही रहने लायक था। प्रत्येक मालिक अपने बाड़ेके लिए एक भंगी रखता था और यह देखता था कि बेजा भीड़ न हो। लेकिन अब तो बस्तीकी सफाई किसीका भी काम नहीं रहा। नगर-परिषदसे सारी जगहकी देखभाल करनेकी आशा रखी जाती है, परन्तु ठीक प्रबन्ध और ठीक तरहके अमलेके अभावमें यह बुरी तरह असफल हुई है। हमें मालूम है कि डॉ० पोर्टर जो-कुछ कर सकते हैं, करनेके लिए उत्सुक हैं; परन्तु प्रत्येक बाड़ेपर एक भंगी रखनेके लिए उनको धन प्राप्त नहीं है। उन्होंने इतना ही किया है और यही वे कर भी

सकते थे, कि निरीक्षकोंकी संख्या बढ़ा दी गई है। परन्तु इतना करना काफी नहीं है। अगर [अधिग्रहणके पूर्व][1] बस्तीकी स्थिति ऐसी होती जैसी हमने बताई है, तो ब्रिटिश भारतीयोंकी आदतों और सफाईकी अवहेलनापर सब तरफसे शोर [मच गया होता[2]]। पहली तान मेजर ओ'मियाराने छेड़ी थी, और जिसे अब अस्वच्छ क्षेत्र कहा जाता है, जिसमें यह बस्ती शामिल है, उसकी निन्दा की थी। डॉ० पोर्टरने उसी तानको पकड़ा और बस्तीका चित्र कालेसे-काले रंगमें पेश किया। मेजर ओ'मियारा और डॉ० पोर्टर दोनोंका कहना था कि इस इलाकेके — और खास तौरपर बस्तीके — अस्तित्वसे नगरका स्वास्थ्य सदा संकटापन्न रहता है; और उन्होंने सलाह दी कि सारी बस्तीका सफाया कर देनेमें एक क्षण भी खोया न जाये। फिर भी बस्ती वहीं बनी है — सिर्फ वह पहलेसे बहुत बदतर हो गई है; और इससे इनकार न तो लायक डॉक्टर महोदय कर सकते हैं और न नगर-परिषद। तब, "संकटापन्न" का अर्थ क्या हो सकता था, इसका अनुमान प्रत्येक पाठक स्वयं लगा सकता है। इसके अलावा जोहानिसबर्गके अखबारोंमें छपे समाचारोंसे प्रकट होता है कि नये स्थानका बन्दोबस्त और सुधार पूर्ववत् ही दूरकी बातें हैं। लोक-स्वास्थ्य समितिके प्रस्तावपर व्रिक्स्टन और जोहानिसबर्गके दूसरे भागोंके निवासियोंने रोष प्रकट किया है। नगर-परिषदसे एक शिष्टमण्डल मिला है और उसके सामने एक अर्जी भी पेश की गई है। इसलिए लोक-स्वास्थ्य समितिका ताजा प्रस्ताव हरगिज अन्तिम नहीं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह बात नहीं कि इसका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि यदि हम गलत न समझे हों तो, ब्रिटिश भारतीय ऐसे स्थानपर जानेसे साफ इनकार कर देंगे, जो व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मा हो। उसपर १८९९ में जो आपत्तियाँ[3] की गई थी वे आज भी उतनी ही ठीक हैं। परन्तु शिष्टमण्डलसे ऐसी शिक्षा मिलती है जिसे समझ लेना अच्छा है। स्वास्थ्य-समितिकी सलाह है कि मौजूदा काफिर बस्तीका उपयोग भारतीयोंको बसानेके लिए किया जाये। व्रिक्स्टनके महानुभावोंने इस प्रस्तावका विरोध किया था और उन्हें सफलता मिली थी। अब वे दूसरी सिफारिशपर फिर ऐतराज कर रहे हैं और हमें मालूम हुआ है कि नगर-परिषदने इस उद्देश्यसे कि प्रस्तावित स्थानका वैयक्तिक रूपसे निरीक्षण कराया जाये, लोक-स्वास्थ्य समितिका प्रस्ताव स्वीकार करनेके बजाय उसपर विचार स्थगित कर दिया है। इसलिए यदि लोक-स्वास्थ्य समितिकी सिफारिश ताकपर रख दी जाये तो हमें जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। इस स्थितिमें व्रिक्स्टन और आसपासके इलाकेके निवासियोंको अपनी आपत्तिपर आग्रह भर रखना है; बस वह मान ली जायेगी। इस बीच गरीब भारतीयोंको धीरजके साथ प्रतीक्षा ही करनी होगी। प्रार्थियोंने जो दलीलें दी हैं वे [ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति यूरोपीयोंके वर्तमान रुखके][4] बिलकुल अनुरूप हैं। हम सरसरी तौरपर [यह ध्यान रखें][5] कि श्री ब्राउन नामके एक पादरीने प्रार्थियोंके प्रवक्ताका काम किया था। इन लोगोंका कहना है कि, "हमारी स्त्रियों और हमारे बच्चोंके लिए इस जिलेमें रहना असम्भव और खतरनाक होगा।" यह जानना मनोरंजक होगा कि ये सज्जन इतने साल जिलेमें कैसे रह सके, क्योंकि याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती और भारतीय बस्ती जहाँ इस वक्त है वहीं उन्हें १० सालसे अधिक हो गये हैं, और पड़ोसमें यूरोपीय बिना किसी खतरेके रह सके हैं और वहाँ रहना उन्हें असम्भव नहीं मालूम हुआ; क्योंकि काफिरोंको पड़ोसमें रखनेका सवाल अब पहली दफा नहीं उठा है। प्रार्थी यह भी कहते हैं:

३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ८८ और आगे।

१–२, ४–५. कोष्ठकोंके शब्द हमारे हैं; मूलमें यहाँके शब्द कट गये हैं।

यद्यपि इस प्रकार एशियाइयोंके लिए स्थान मिल जायेगा, फिर भी (यूरोपीय) समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग बेघरबार हो जायेगा, क्योंकि नगरसे और रोजन्दार मजदूरोंके स्थानसे थोड़े फासलेके भीतर मुनासिब कीमतपर और जमीन उपलब्ध नहीं है।

यह तो सचमुच हँसीकी बात है! उन (यूरोपीयों) को जहाँ वे हैं वहाँसे हटानेके बारेमें तो कोई प्रश्न ही नहीं उठाया गया। सच तो यह है कि, उन्हें अपनी हालत बेहतर बनाने और अपने-अपने घरबार बनानेके लिए हर तरहकी सुविधाएँ दी गई हैं। जो लोग द्वेषसे इतने अन्धे हो गये हैं कि न्याय और अन्यायमें बिलकुल भेद नहीं कर सकते, उनसे बहस करना बेकार है। उनका सुझाव है कि भारतीयोंको पहाड़ीके दक्षिणमें किसी ऐसे स्थानपर भेज दिया जाये, जहाँ नगरसे उनका सब सम्बन्ध कट जाये और रहे तो मुश्किलके साथ। जब उन्हें इस ऐतराजका सामना करना पड़ता है कि पहाड़ीके दक्षिणके स्थान सब खानोंके इलाकेमें होनेके कारण सुरक्षित हैं, तब वे कहते हैं कि चूँकि सरकारको खानोंके इलाकेका उतना हिस्सा ले लेनेका अधिकार है, जो सड़कें बनाने और ढेर लगाने वगैरहके लिए जरूरी हो, और चूँकि नगर-परिषदने नगरका कचरा जमा करनेके लिए उसका कुछ भाग पहले ही ले लिया है, इसलिए वह जिसे नगरका जिन्दा कचरा समझती है उसे भी वहाँ जमा कर सकती है।

उपनिवेश-सचिव इन सज्जनोंके जिनके प्रतिनिधि श्री ब्राउन हैं, और भारतीयोंके बीचमें जिन्हें मौजूदा बस्तीके अधिकसे-अधिक निकट निवास-स्थान पानेका कानूनी हक है, आखिरी पंच हैं। मनुष्य होनेके नाते भारतीयोंका अधिकार है, कि उनकी वर्तमान असमंजसकी स्थिति समाप्त की जाये और उन्हें ऐसी स्थितिमें रख दिया जाये कि वे अपना गुजारा कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–३–१९०४

११६. फिर पैदल-पटरियाँ

जबसे ट्रान्सवालपर गोरोंका कब्जा हुआ है तभीसे इस देशके एशियाई-विरोधी कानूनोंके बारेमें सरकारसे बराबर आवेदन-निवेदन किये जाते रहे हैं। इन कानूनोंमें पुराना नगर-नियम भी है, जो रंगदार लोगोंको अगल-बगलके पैदल रास्तोंका इस्तेमाल करनेसे रोकता है। गत वर्षके ब्रिटिश भारतीय संघने लेफ्टिनेंट गवर्नरका ध्यान इस नियमकी ओर आकर्षित किया था और परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने कहा था कि वे एशियाई-विरोधी कानूनोंको बेतरतीब निपटाना नहीं चाहते, बल्कि सारे प्रश्नपर एक साथ विचार किया जायेगा। इसी बीच, उन्होंने उनसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलको विश्वास दिलाया कि पुलिस ब्रिटिश भारतीयोंको नहीं सतायेगी। परन्तु ट्रान्सवालसे खबर मिली है कि पुलिस कमिश्नरने पैदल रास्तों-सम्बन्धी उपनियम लागू करनेकी हिदायतें जारी कर दी हैं। अबतककी नीति इस तरह अचानक त्यागनेका कारण यह है: कहा जाता है कि एक काफिरने कुछ बदमाशी की। मामला श्री वान डर बर्गके सामने लाया और उन्होंने उन (काफिर) को बरी कर दिया। दिलचस्पी रखनेवाले कुछ लोगोंने सोचा कि इन मामलेमें ठीक-ठीक न्याय नहीं किया गया है। अखबारोंको बहुत ही आवेशयुक्त भाषामें लिखे हुए पत्र भेजे गये। *लीडरने* अपने स्तम्भ खोल दिये और वतनी-विरोधी कठोर नीतिकी वकालत करके आन्दोलनको प्रोत्साहित किया। इसका जो परिणाम हुआ वह हम देख रहे हैं, और यदि वतनी लोगोंके विरुद्ध कोई नियम लागू किये जाते हैं तो भारतीयों सहित

अन्य रंगदार लोग भी स्वभावतः उनकी चपेटमें आ जाते हैं। लॉर्ड मिलनरने दोनोंमें कोई भेद करनेसे इनकार कर दिया है और इसका भारतीयोंको परिणाम भोगना पड़ेगा। पुलिस कमिश्नरने कृपा करके हिदायतोंमें यह जरूर जोड़ दिया है कि १९०२ के २८ वें अध्यादेशके अनुसार मुक्त वतनियों और ऊँची श्रेणीके रंगदार लोगोंके साथ कोई छेड़छाड़ न की जाये। इसलिए पुलिसको बहुत ही कष्टप्रद कर्त्तव्य पूरा करना होगा। उसे ऊँची श्रेणीके और दूसरे रंगदार लोगोंकी पहचान करनेमें प्रवीण बनना पड़ेगा। स्पष्टतः ऐसी कोई कसौटी तो तय नहीं की गई, जिससे पता लगे कि उच्च श्रेणीका रंगदार मनुष्य कौन है। इसलिए यह निर्णय पूरी तरहसे पुलिसके विवेकाधीन रहेगा। पुलिस कमिश्नरको शायद यह नहीं सूझा कि ऐसी हिदायतोंसे बहुत बड़ी मात्रामें चिढ़ और असुविधा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी। जिन नियमोंका क्षेत्र इतना अनिश्चित है उनकी अपेक्षा सब सम्बन्धित लोगोंके लिए यह कहीं बेहतर होता कि नियम जैसे हैं वैसे ही लागू किये जायें, और पैदल-पटरियोंपर चलनेसे सभी रंगदार लोगोंको मना कर दिया जाये। यह कठोर उपाय हो सकता है, परन्तु यदि ट्रान्सवाल-सरकारको रंग-विरोधी नीतिका अनुसरण करना है, तो हमें और कोई हल दिखाई नहीं देता। नये नियम इस बातका एक अतिरिक्त दृष्टान्त उपस्थित करते हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश भारतीय संघकी यह शिकायत उचित सिद्ध हो रही है कि ट्रान्सवालके पुराने एशियाई-विरोधी कानून पहलेसे कहीं ज्यादा सख्तीसे काममें लाये जाते हैं, क्योंकि जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, पैदल-पटरी सम्बन्धी नियम बोअर राज्यमें बिलकुल निःसत्व थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–३–१९०४

११७. पत्र: डॉ० पोर्टरको

२१ से २४, कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

साथका कच्चा रुक्का[1] जैसा मेरे पास आया है वैसा ही आपको भेजता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि, इस हालतमें, बस्तीमें लगभग १५ भारतीय पड़े हैं। उनमेंसे बहुतेरे कंगाल हैं। एक आदमी मर गया है और उसकी लाशको किसीने हटाया नहीं है, या कोई हटानेकी स्थितिमें ही नहीं है।

क्या आप कृपा करके इस मामलेमें दिलचस्पी लेंगे? स्वयंसेवक बहुत काम कर रहे हैं और बीमारोंकी देखभाल की जा रही है। चन्दा इकट्ठा करनेकी भी कोशिश की जा रही

१. यह उपलब्ध नहीं है। परन्तु गांधीजीने *आत्मकथा* (गुजराती, १९५२, पृष्ठ २८८) में कहा है कि मदनजीतके पेन्सिलसे लिखे हुए इस रुक्केका आशय यह था: "यहाँ एकाएक प्लेग फैल गया है। आपको तुरन्त आकर कुछ करना चाहिए, नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। फौरन आइए।"

है। लेकिन, मैं आशा करता हूँ, इसी बीच, आप भी जो-कुछ जरूरी हो वह सब करनेकी कृपा करेंगे।

मुझे ज्ञात हुआ है कि ये आदमी खानोंसे आये हैं, जहाँ ये काम करते रहे हैं। अगर आप बस्तीके खाली बाड़ोंमें से एक बाड़ा अस्थायी अस्पतालके कामके लिए दे दें तो इसकी बहुत सराहना की जायेगी। मैं मानता हूँ कि इन लोगोंकी देखभाल करना नगर-परिषदका फर्ज है। फिर भी, भारतीय समाज चन्दा इकट्ठा करेगा और इसके लिए आंशिक रूपसे स्थानको सज्जित कर लेगा। डॉ० गॉडफ्रे, जो हालमें ही ग्लासगोसे लौटे हैं, सम्भवतः मुफ्त या नाम-मात्रकी फीस लेकर बीमारोंकी देखभाल करेंगे। लेकिन मैं मामला पूरी तरह आपके हाथोंमें छोड़ता हूँ।

आपका सच्चा

मो० क० गांधी

[विशेष कथन][1]

मार्चकी पहली तारीखको एक छोटासा रुक्का[2] लिखकर डॉ० पोर्टरको सूचना दी गई थी कि मेरी रायमें प्लेग फैल गया है। ८ मार्चका पत्र उसका उत्तर है।

उस पत्रकी नकल नहीं रखी गई थी और वह सम्भवतः डॉ० पोर्टरके घरपर है; इसलिए स्वास्थ्य-कार्यालय नकल नहीं दे सकता।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

११८. "स्टार" के प्रतिनिधिकी भेंट[3]

जोहानिसबर्ग
मार्च २१, १९०४

प्रसिद्ध भारतीय वकील श्री मो० क० गांधी दो प्लेग-समितियोंमें काम कर चुके हैं और दो वर्षतक स्वयंसेवकके तौरपर प्लेग-पीड़ितोंके परिचारक रहे हैं। उन्होंने आज प्रातः स्टारके प्रतिनिधिसे मुलाकातमें कहा कि भारतीय समाजने सम्बन्धित अधिकारियोंको लगभग दो मास पूर्व चेतावनी दे दी थी कि उन्हें बड़े सन्देहजनक चिह्न दिखाई दे रहे हैं। इसके बाद डॉ० पोर्टरको एक और पत्र भेजा गया, जिसमें कहा गया था कि प्लेगके चिह्न दिखाई देने लगे हैं। चार दिन बाद श्री गांधीने बयान दिया कि उन्हें डॉ० पोर्टरसे इस आशयका खत मिला कि स्वास्थ्य-अधिकारीको उक्त कथनके समर्थनमें कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़े। किन्तु शुक्रवारको श्री गांधीको सूचना मिली कि कुछ भारतीय "मृत या मरणासन्न" स्थितिमें रिक्शागाड़ियों द्वारा लाकर बस्तीमें "डाले" जा रहे हैं। अधिकारियोंको सूचित करनेके बाद श्री गांधी डॉ० गॉडफ्रे, डॉ० पेरारा और एक स्वास्थ्य-निरीक्षकको साथ लेकर संदिग्ध इलाकेमें गये और उन्होंने एक मकानमें, जिसे भारतीय समाजने स्वयं अलग कर दिया था, प्रवेश करनेपर १४ बीमार

१. पत्र-व्यवहार इस टिप्पणीके साथ अखबारोंको दे दिया गया था।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. यह भेंट पत्रको २८-३-१९०४ के *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुई थी।

देखे। भारतीयोंने आपसमें स्वेच्छासे चन्दा जमा किया था और कुछ पुरुष स्वयंसेवक-परिचारकोंकी देखरेखमें बीमारोंको अपेक्षाकृत आरामसे रख दिया गया था। उस कामचलाऊ अस्पतालको डॉ० गॉडफ्रेने तुरन्त अपने नियन्त्रणमें ले लिया और यह इंतजाम किया कि दवा-दारू जाननेवाला कोई एक शुश्रूषक सारी रात वहाँ मौजूद रहें। श्री गांधीका कहना है कि शनिवारको सुबह टाउन क्लार्कने उनसे मिलकर कहा कि वे नगर-परिषदकी ओरसे कोई आर्थिक दायित्व तो नहीं ले सकते, लेकिन अनुरोधके अनुसार वे स्टेशन रोडवाले सरकारी गोदामको अस्थायी अस्पतालके तौरपर काममें लानेकी इजाजत दे देंगे और जिला-सर्जन डॉ० मैकेंजी व्यवस्थाकी देखरेख करेंगे तथा ब्यौरेकी बातें डॉ० गॉडफ्रेपर छोड़ दी जायेंगी। प्राप्त मकानको स्वयंसेवकों द्वारा साफ कराया गया, उसमें छूतनाशक दवा छिड़की गई, २५ खाटें लाई गई और साढ़े तीन बजे-तक बीमार उसमें दाखिल कर लिये गये। डॉ० मैकेंजीने व्यवस्था की थी कि परिचारिका-बहन वेस्टको परिचारकोंके कामकी देखभाल करनेके लिए दाइयोंके निवासस्थानसे यहाँ भेजा जाये। इस समयतक डॉक्टरोंकी राय नहीं बन पाई थी कि लक्षण किस रोगके हैं। परन्तु बीमारीके जोरके कारण डॉ० मैकेंजी बादमें इस नतीजेपर पहुँचे कि रोगी निमोनियाके प्लेगसे पीड़ित हैं। भर्ती किये गये २५ रोगियोंमें से रविवारकी रातको सिर्फ ५ जिन्दा बचे। इनमेंसे ३ राइटफॉन्टीनके छूतके रोगोंके अस्पतालमें भेज दिये गये। श्री गांधीने अपने बयानमें आगे कहा कि भारतीय समाजने प्लेगको फैलनेसे रोकनेके लिए प्रत्येक उपाय, जो किया जा सकता था, किया है और अबतक उसने हर मामलेकी खबर दी है। एक जन-साधारणकी हैसियतसे बोलते हुए श्री गांधीने अपना यह विचार प्रकट किया कि यदि ठीक-ठीक सावधानी बरती जाती तो बीमारी फैली न होती। वे उन स्थानोंपर रोगियोंकी सेवा करते रहे हैं, जहाँ प्लेगसे असाधारण मौतें हुई हैं; परन्तु जो लोग बीमारोंके सम्पर्कमें आये उनकी खूब सावधानी रखनेके कारण रोग पृथक किये हुए स्थानतक ही सीमित रहा है। अन्तमें श्री गांधीने कहा, "मेरी रायमें प्लेग फैलनेका एकमात्र कारण अस्वच्छ क्षेत्रकी गन्दगी और भीड़-भाड़की हालत थी। हालकी वर्षाने उसे और भी बढ़ा दिया था। मैं नहीं समझता कि रोगके कीटाणु बाहरसे ही आये होंगे। प्लेग एक उग्र प्रकारके निमोनियासे अधिक कुछ नहीं है। उसके फैलनेका दोष भारतीय समाजपर बिलकुल नहीं है। सरकारी तन्त्र ही दोषपूर्ण है और, मैं पूरे और उचित आदरके साथ कहता हूँ कि, यदि लोक-स्वास्थ्य समिति अधिक कार्य-कुशल होती तो प्लेग फैलता ही नहीं। अब तो सिर्फ एक ही बात की जा सकती है कि, अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी इमारतें जला दी जायें और लोगोंको एक अस्थायी शिविरमें ले जाया जाये और उन्हें भोजन दिया जाये। इसमें खर्च तो होगा, परन्तु वह करने लायक होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, २१-३-१९०४

११९. ब्रिटिश भारतीय उद्यम

हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़रने* अपने विशेष संवाददाताका एक पत्र छापा है, जिसमें विक्टोरिया प्रान्तके ब्रिटिश भारतीय जमीन-मालिकोंके प्रश्नकी चर्चा की गई है।

नेटालमें भारतीयोंके पास कुछ जमीन रहे, चाहे वह थोड़ी ही हो, इस खयालसे ही संवाददाताको बड़ा रोष है। उसके दुर्भाग्यसे उसके पेश किये हुए तर्क और तथ्य सब यह जाहिर करते हैं कि उस प्रान्तमें भारतीयोंका बसना और जमीनोंका मालिक होना स्वयं प्रान्तके लिए बड़ा वरदान सिद्ध हुआ है।

उक्त पत्रमें जो तथ्य दिये गये हैं उनकी चर्चा करनेसे पहले हम एक भूल सुधार देना चाहते हैं। उसका लेखक समझता है कि भारतीयोंके हाथोंमें बहुत जमीन चली गई है। मगर हम कह सकते हैं कि अबतक जमीनके ज्यादातर हिस्सेके मालिक यूरोपीय ही हैं। विशाल बागान उन्हींके हैं और वे भव्य भवन भी, जो सब भारतीय मजदूरोंके कारण ही संभव हुए हैं। अवश्य ही जहाँ-तहाँ भारतीयोंके हाथोंमें जमीनके एक-दो टुकड़े होनेसे ही यह भय उचित नहीं हो जायेगा, जो लेखक पैदा करना चाहता है। कुछ भी हो, आखिर लेखकको भारतीयोंकी निन्दामें कहना क्या है? वह कहता है:

> जो कोई जिलेमें सफर करेगा . . उसे यह स्वीकार करनेमें कठिनाई न होगी कि . . . यह जिला, कमसे-कम उपनिवेशका सबसे अधिक परिश्रमपूर्वक जोता-बोया जिला है। कुछ वर्ष पहले उत्तरी तटवर्ती पट्टी इतनी समृद्ध दिखाई नहीं देती थी। इतनी अधिक जमीनमें काश्त होनेसे पहले, सालके इस समयमें अमगेनी और टुगेलाके बीचमें जो कुछ दिखाई देता था वह था — गर्मीकी धूपसे भूरी पड़ी घासका बड़ा मैदान। आज कुदरती घासका क्षेत्र नगण्य होता जा रहा है और वह बरसातकी बहुतायतके कारण वसन्तकी हरियालीकी तरह हरा-भरा है; और जब फसलें पकनेवाली हैं तब लोग कहते हैं कि इतनी अनाजदार फसलें पहले कभी नहीं हुई थीं।

कोई भी इससे यही सोचता कि इन हालातपर बधाई दी जानी चाहिए; परन्तु लेखक इन्हें खेदजनक समझता है, क्योंकि प्रान्तकी खुशहालीका कारण भारतीय उद्यम है। उसे प्रदेशका बंजर और उजाड़ होना तो पसन्द होता, लेकिन हराभरा और उपनिवेशको अच्छी आमदनी देनेवाला होना पसन्द नहीं है, जिसमें सैकड़ों रईसी ठाठवाले यूरोपीय किसानोंका मजा करना सम्भव हुआ है। इसके अलावा लेखक स्वीकार करता है कि बहुतसी जमीन भारतीयोंको यूरोपीय लोगोंने पट्टेपर दी है। इसका अर्थ यह है कि यूरोपीय किसान जबतक भारतीय कृषकोंको खेत जोतनेके लिए नौकर न रखें तबतक वे स्वयं जमीनसे लाभ नहीं कमा सकते। फिर, यह भी याद रखना चाहिए कि अगर कोई भारतीय किसी जमीनका मालिक बन भी सका है तो मूल यूरोपीय मालिकोंके जमीन बेच देनेके कारण ही। और, यद्यपि हमारे सहयोगीके संवाददाताने इस कारण उनको देशद्रोही बताया है, फिर भी निष्पक्ष लोग यह समझेंगे कि इनसे बेचनेवालोंको ही नहीं, बल्कि सामान्य समाजको भी लाभ हुआ है; क्योंकि बेचनेवालोंने भारतीयोंको जमीनपर काम करनेका मौका देकर उपनिवेशकी समृद्धिको बढ़ाया है।

हमारी नम्र सम्मतिमें, संवाददाताने जो तर्क और तथ्य पेश किये हैं उनमें खेदजनक मानसिक दुर्बलता और आर्थिक नीतिको समझनेकी शक्तिका अभाव प्रकट होता है। अच्छे आचरण-वाले, निर्व्यसनी और परिश्रमी लोग किसी भी समाजकी मूल्यवान सम्पत्ति समझे जाते। उपनिवेश ही 'न खाये, न खाने दे,' की नीतिसे संचालित हो रहे हैं; इसीलिए वहाँ हमें इस प्रकारके लोगोंके विरुद्ध चिल्लाहट सुनाई देती है। अन्ततः हमारा खयाल तो यह है कि सादे जीवन और परिश्रमी लोगोंसे रहित समाज बहुत समयतक टिक नहीं सकेगा, और जिस भूमिपर वह रहता है उसके साधनोंसे पूरा लाभ भी नहीं उठा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–३–१९०४

१२०. जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

भारतीय समाजका महान कार्य

लगभग दो महीने हुए, जोहानिसबर्गमें प्लेगका पता लगा था। (यह कहना सही नहीं होगा कि प्लेग फैल गया है)। भारतीयोंने अधिकारियोंको चेतावनी[2] दी थी कि यदि नगर-परिषदके अधिकार कर लेनेके बाद तथाकथित अस्वच्छ क्षेत्रकी जो हालत हो गई है उसका उपाय न किया गया तो उन्हें महामारीकी अपेक्षा करनी ही होगी। क्योंकि, २६ सितम्बरके बाद नगर-परिषदने किरायेके मकानोंके आकारका लिहाज रखे बिना उस इलाकेमें किरायेदार रख लिये थे। इसलिए वहाँ इतनी भीड़-भाड़ हो गई है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। परिषद द्वारा बाड़ोंको साफ न रख सकनेके कारण इस गन्दगीमें और वृद्धि हो गई है। मकान-मालिकोंके हाथोंसे जिम्मेदारी छीन ली जानेके कारण वे एक-एक बाड़ेमें ५०-५० या इससे भी ज्यादा लोगोंके रहनेपर काबू नहीं रख सके। उदाहरणके लिए, गत वर्ष २६ सितम्बरसे पहले भारतीय बस्तीमें ९६ मकान-मालिक ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार थे। नगर-परिषदने नियन्त्रण अपने हाथमें ले लिया तो इसका मतलब यह था कि उसे कमसे-कम ९६ मेहतर रखने चाहिए थे। यह परिषद कर नहीं सकती थी, या करना नहीं चाहती थी। कुछ भी हो, जो इलाका पहले कभी इतना अस्वच्छ नहीं था कि उसके अधि-ग्रहणकी जरूरत हो, उसे अब परिषदने ऐसा बना दिया है। इसीलिए उपर्युक्त चेतावनी दी गई थी। इसपर, हाल ही हवामें असाधारण नमी आ गई, जिससे तेज निमोनिया फैल गया, जो आसानीसे संक्रामक हो सकता है। और, इस रोगने अस्वच्छ क्षेत्रमें अनुकूल स्थिति पाकर बहुत ही भयंकर रूप धारण कर लिया, और यह निमोनियावाला प्लेग बन गया। ज्योंही लोग ऐसे बीमार पड़े त्योंही अधिकारियोंको फिर सूचना दी गई; परन्तु चार दिनकी जाँचके बाद वे इस नतीजेपर पहुँचे कि ये प्लेगके रोगी नहीं हैं। चार दिनके बाद संकटकी स्थिति आ गई। कुछ भारतीय मरणासन्न अवस्थामें बस्तीमें लाये गये। मामलेकी खबर फिर अधिकारियोंको दी गई। परन्तु अब समाजने मामला अपने हाथमें भी ले लिया। उसने अनुभव किया कि दफ्तरी ढर्रे — लाल फीते — के कारण शायद तुरन्त कार्रवाई न हो सके। बीमारोंको तत्परतासे

१. यह "हमारे निजी संवाददातासे प्राप्त" रूपमें छपा था।
२. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको" फरवरी ११, १९०४।

डॉक्टरी सहायता दी गई। डॉक्टर ग्रॉडफ़े अभी-अभी ग्लासगोसे आये थे। उन्होंने अपनी सेवाएँ समाजको मुक्त रूपमें सौंप दीं। बादमें, उसी दिन (शुक्रवारको) स्वास्थ्य-निरीक्षक मौकेपर पहुँचे और उन्होंने सहायताका हाथ बढ़ाया। लेकिन अभीतक वे सरकारी तौरपर जिम्मेदारी लेनेमें असमर्थ थे। कुछ मकानोंको कब्जेमें लेकर अस्थायी अस्पताल बना दिया गया। जिन्होंने इस अस्पतालका दृश्य देखा है — उन मरीजोंको तड़पते हुए, जिन्हें कभी बीमार होना ही नहीं था; डॉ० ग्रॉडफ़े, श्री मदनजीत और नौजवान शिक्षित भारतीयोंको भारी खतरा उठाकर शुश्रूषक बने हुए तथा उन छोटे-छोटे कमरोंमें भरे १४ मरीजोंकी सावधानताके साथ सेवा करते हुए; और उन मरीजोंको एकके बाद एक मौतके मुँहमें समाते हुए — वे उस दृश्यको कभी भूलेंगे नहीं। वह दृश्य भीषण भी था और प्रेरणाप्रद भी — भीषण उस दारुण शोकान्त घटनाके फलस्वरूप और प्रेरणाप्रद इसलिए कि उससे समाजके प्रसंगानुकूल उठ खड़े होने और संगठन करनेके सामर्थ्यका दर्शन हुआ। जहाँ एक बाड़ेमें बीमारोंकी देखभाल की जा रही थी, वहीं दूसरे बाड़ेमें एक बहुत बड़ी आम सभा हो रही थी। गरीब-अमीर सबने मिलकर कोई एक हजार पौंड चन्दा जमा किया, ताकि समाजके उपयोगके लिए एक स्थायी अस्पताल खड़ा किया जा सके। जिस ढंगसे गरीबोंने आगे आकर चन्दा दिया वह उनके लिए बहुत ही श्रेयास्पद है।

शनिवारको प्रातःकाल ऐसा मालूम हुआ कि अधिकारियोंने स्थितिको समझा है। उन्होंने एक बहुत बड़े गोदामको, जो पुराना चुंगीघर था, अस्थायी अस्पतालके लिए दे दिया। फिर भी, टाउन क्लार्कने उस समय कोई आर्थिक दायित्व लेनेसे इनकार कर दिया और बिस्तर, चटाइयाँ वगैरा जुटानेका काम समाजपर छोड़ दिया। किन्तु भारतीयोंको रुपये-आने-पैसेकी गिनती करते रहनेकी गुंजाइश नहीं थी, और उन्होंने इंतजाम अपने हाथमें ले लिया। जिला-सर्जनने बड़ी कृपा करके एक बहुत अच्छी तालीम पाई हुई दाई दे दी और अन्तमें २५ रोगियोंमें से पाँचको संक्रामक रोगोंके अस्पतालमें पहुँचा दिया गया है और प्लेग फैल जानेकी सरकारी तौरपर घोषणा कर दी गई है। इस प्रकार, नगर-परिषदको समयपर सहायतार्थ आनेके लिए गरीबोंके मक्खियोंकी तरह मरनेका दृश्य देखनेकी जरूरत हुई है। फिर भी किसी व्यक्ति-विशेषका कोई दोष नहीं है; क्योंकि अलग-अलग सभी भलाई करनेको उत्सुक रहे हैं। इस भयंकर दुर्घटनाके लिए दोषी वह निष्प्राण, भारी-भरकम नगर-निगम है, जो लाल फीतेसे बँधा हुआ है और कल्पनाओंपर पनपता है। बस्तीके चारों ओर अब घेरा डाल दिया गया है, यद्यपि दूसरे जिलोंमें भी प्लेगकी घटनाएँ हुई हैं। परन्तु भारतीय समाज अपने कष्टोंको अपनी परम्पराओंके योग्य वीरतापूर्ण धैर्यके साथ सहन कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-३-१९०४

१२१. प्लेग[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च ३०, १९०४

आजतकके आँकड़े ये हैं:

गोरे	
निश्चित रोगी	६
संदिग्ध रोगी	९
रंगदार	
संदिग्ध	४
एशियाई	
निश्चित	५०
संदिग्ध	६
वतनी	
निश्चित	६
संदिग्ध	२३

निश्चित प्लेग रोगियोंकी मृत्युसंख्या

गोरे	एशियाई	वतनी
६	४७	३

लगभग ये सभी आँकड़े प्लेग फैलनेकी जानकारी हो चुकनेके बादके है, अर्थात्, सत्यानाशी २०वीं तारीखके बाद बहुत कम नये लोग बीमार हुए है। पहले दो दिन ही, जब बीमारोंको समेटा जा रहा था, मृत्युसंख्या अधिक रही। और, एशियाइयोंके अधिक संख्यामें बीमार होने तथा मरनेके कारणोंका पता भी इससे लग जाता है। निमोनियाकी बीमारीने प्लेगका रूप पहले भारतीयोंमें धारण किया। डॉक्टरोंने उन मामलोंको मामूली माना। सावधानियाँ नहीं बरती गईं। यह चेतावनी देनेके बावजूद कि यह प्लेग है, अधिकारियोंको भरोसा नहीं हुआ। और छूत फैली। इससे सबक यह मिलता है कि मामूली मामलोंमें भी साधारण सावधानी बरती जानी चाहिए। हर बीमारी कम-ज्यादा संक्रामक होती है। फिर छूत-नाशक औषधियोंको अच्छी तरह छिड़कने और, उस घरमें ही सही, बीमारको अलग करनेमें क्या बिगड़ता है।

यह दंतकथा कि केवल भारतीय-बस्तीमें ही छूत है, अभीतक चलाई जा रही है; और शायद यह अच्छी बात है। इससे लोगोंको संतोष होता है और उनमें निरर्थक भय नहीं फैलता।

जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें १,३६१ भारतीय थे। इनमें से ८०० से ऊपर क्लिप्स-प्रूटमें हटा दिये गये है। यह स्थान जोहानिसबर्गके मार्केट-स्क्वेयरसे लगभग १२ मील है। जिन भारतीयोंको दुर्भाग्यवश सूतक (क्वारंटीन) में रहना पड़ा है उनके व्यवहारसे अधिकारी पूरी तरह संतुष्ट है। वे भी अपनी तरफसे भारतीयोंको आवश्यक सुविधायें दे रहे है। धार्मिक आग्रहोंका आदर किया जाता है। घेरेके लोगोंको भोजन काफी उदारतापूर्वक दिया जाता है।

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग संवाददाता द्वारा प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

लोगोंको भेजना विचारपूर्वक होता है और मारवाड़में होनेवाली बातोंमें अनिवार्य त्रुटियोंकी शिकायतोंपर तत्काल ध्यान दिया जाता है। पूरी वस्ती इस हफ्तेमें खाली हो जायेगी और इमारतें जलाकर राख कर दी जायेंगी। इस तरह, जो काम पिछले साल २६ सितम्बरको, जब कथित अस्वच्छ क्षेत्रकी बेदखली की जा रही थी होना था, इस समय भयभीत मन:स्थितिमें अंधाधुंध खर्चपर हो रहा है।

क्लिप्सप्रूटमें श्री बर्जेस खीमेकी देखरेखमें हैं। जनताके जो प्रिय बन गये हैं वे डॉ० विलियम ग्रॉटफ़े वहाँ नगर-परिषदकी ओरसे सहायक चिकित्सा-निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये हैं और निस्सन्देह कुछ ही दिनोंमें खीमा व्यवस्थित रूपसे चलने लगेगा।

जोहानिसबर्गके अधिकारी सहूलियतसे काम ले रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रिटोरियाको छोड़कर ट्रान्सवालकी दूसरी जगहोंके बारेमें यही बात नहीं कही जा सकती। डॉ० पेक्सके अनुसार, पीटर्सबर्ग, क्रूगर्सडॉर्प और पॉचेफ़स्ट्रूममें केवल प्लेगकी रोकथाम ही नहीं की जा रही है, भारतीय-समाजकी दुरवस्थासे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उनका उन्मूलन करनेकी कोशिश की जा रही है। व्यापारिक ईर्ष्या खुलकर खेल रही है और प्लेगकी रोकथामके बहाने भारतीय व्यापारकी जड़ें उखाड़ी जा रही हैं। जैसे बने वैसे उनकी राहमें रोड़े अटकाये जा रहे हैं। किन्तु भारतीय धीरज और बहादुरीसे इन तकलीफोंका सामना कर रहे हैं। यूरोपीय व्यापारियोंकी बन आई है। किन्तु यदि भारतीय शान्त बने रहे तो उन्हें हानि पहुँचानेवाले लोगोंके प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे। क्रूगर्सडॉर्पमें भारतीयोंका सन्तप्त हो उठना ठीक ही था। लगता था परिस्थिति बहुत विषम हो जायेगी, किन्तु श्री रिच[1] वहाँ पहुँच गये हैं और मामला सद्भावसे सुलझ गया है। भारतीयोंके लिए यह समय अपने अधिकारोंपर अड़नेका नहीं है, कष्ट भोगकर अपनी जिम्मेदारी समझनेका है। प्लेग पहले उनमें फैला था। रोगियोंकी सर्वाधिक संख्या भी उन्हींमें है। जनताका निष्कर्ष यह है कि इस अनिष्टकी जड़ भारतीय ही हैं। यह सही-गलत जो हो, इसे मानना तो होगा ही। और भारतीय समाज धैर्यपूर्वक कष्ट सहकर य दिन काट रहा है, यह ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१. एल० डब्ल्यू० रिच, उस समय गांधीजीके साथी।

१२२. प्लेग

आखिर जोहानिसबर्गमें प्लेग फैल गया है। अबतक लगभग ६० व्यक्ति उसके शिकार हो चुके हैं, जिनमें ४६ एशियाई हैं, ६ गोरे और ४ वतनी। रोगियोंमें मृत्यु-संख्या एक तरहसे सौ फीसदी रही है। यह एक भयंकर वस्तुस्थिति है। भारतमें ऐसा नहीं होता, और पहले कभी दक्षिण आफ्रिकामें भी ऐसा नहीं हुआ। इसलिए जोहानिसबर्गके प्लेगकी किस्म अबतक देखी गई किस्मोंमें सबसे ज्यादा घातक है। फिर, उसके शिकार इतने थोड़े समयमें मरे हैं कि विश्वास नहीं होता। जो पहले-पहले थोड़ीसी खाँसी और हलका-सा ज्वर मालूम होता है, वही कुछ घंटोंमें, या दूसरे दिन, तेज बुखार, थूकमें खून और जोरकी छटपटाहटमें बदल जाता है। रोगीका कष्ट भयंकर होता है। तीसरे दिन सन्निपात और मौत आती है। अन्तिम स्थितिमें बीमार इतना थक जाता है कि यद्यपि उसके मुखपर घोर पीड़ा झलकती है, तो भी वह बेचारा उसे वाणी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। हमारे संवाददाताने इसका कारण बताया है। जोहानिसबर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति अब अपनी पूरी ताकतसे लगी है, परन्तु इससे उसकी पिछली गफलतका दोष मिट नहीं जाता — मिट नहीं सकता। उसे डॉ० पोर्टरके नाम लिखे गये पत्रमें समयपर चेतावनी दे दी गई थी और, हमें मालूम हुआ है, वह अध्यक्षतक पहुँचा भी दी गई थी, किन्तु उसपर ध्यान ही नहीं दिया गया। स्थानके बारेमें झगड़नेमें कीमती वक्त बरबाद कर दिया गया। इस बीचमें नगर-परिषदके कर-संग्राहक भीड़-भाड़ सम्बन्धी नियमोंकी परवाह न करके अस्वच्छ क्षेत्रमें किरायेदारोंको ठूँसते रहे। सफाईकी सर्वथा उपेक्षा की गई, किरायेदार भी व्यक्तिगत इस मामलेमें कुछ कर नहीं सकते थे। ट्रान्सवालके लोग अब इसकी भारी कीमत चुका रहे हैं।

लेकिन हमें गड़े मुर्दे उखाड़ना पसंद नहीं। विशेष प्लेग-अफसर डॉ० पेक्स और डॉ० मैकेंजी[1] बड़े साहस और निष्ठासे इस विभीषिकासे लड़ रहे हैं। समितिने खतरेको अनुभव कर लिया है, इसलिये वह अपनी कोशिशोंमें कोई कोर-कसर नहीं रख रही। उसने इन योग्य डॉक्टरोंको असीम सत्ता दे दी है और इनको निरीक्षकोंके अच्छे अमलेकी सहायता प्राप्त है। उनका प्लेगपर अच्छा काबू हो गया है और अब उसकी भयंकरता मिट गई है। लोक-स्वास्थ्य समितिने इस प्रकार अपनी मुजरिमाना गफलतका प्रायश्चित्त कर लिया है। लेकिन अफसोसके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इस दोषसे भारतीय समाज मुक्त नहीं ठहराया जा सकता। अन्य समाजोंकी अपेक्षा उसपर जो दण्ड पड़ा है, उसका वह, हमें भय है, थोड़ा या बहुत पात्र है ही। भारतीयोंको सफाईकी अपेक्षा और भीड़-भाड़के विरुद्ध नाराजगी जाहिर करनी चाहिए थी। यह बहाना नहीं किया जा सकता कि नगर-परिषदने ऐसी स्थिति पैदा होने दी। जहाँ हम अकसर राजनीतिक हेतुसे किये जानेवाले अतिशयोक्तिपूर्ण आरोपों और तीव्र आक्षेपोंसे अपने देशवासियोंकी रक्षा करनेमें सबसे आगे हैं, वहाँ अगर अपने कर्तव्यपर दृढ़ रह कर उनके दोष उनको न बतायें तो अपने पेशेके प्रति वफादार नहीं होंगे। भारतीयोंमें प्लेगसे ४७ व्यक्तियोंका बीमार होना इस बातका निश्चित प्रमाण है कि हमारे गरीब तबकेके देशबन्धुओंके निवासस्थानोंमें कितनी कम सफाई रखी जाती है।

१. [illegible] नगर परिषदने इसी कार्यके लिए नियुक्त किया था।

क्या लोक-स्वास्थ्य समितिकी तरह उन्होंने भी प्रकृतिके प्रति अपने अपराधका कोई प्रायश्चित्त किया है? हमें जोरके साथ 'हाँ' कह सकनेमें खुशी है। जब परिषद सोई हुई थी तब वे जाग गये। जिस क्षण उन्हें अनुभव हो गया कि रोग अत्यन्त भयंकर रूपमें शुरू हो गया है, उसी क्षण उन्होंने प्रशंसनीय परिश्रम और धैर्यके साथ काम शुरू कर दिया। उन्होंने एक कामचलाऊ अस्पताल खोला और चन्दा इकट्ठा किया; रोगियोंकी सेवा और दूसरे जरूरी कामोंके लिए स्वयंसेवक आगे बढ़े; बीमारीकी हरएक घटनाकी जानकारी अधिकारियोंको दी गई; और अपने ऊपर लगाई गई विशेष पाबन्दियोंका अत्यन्त सहिष्णुतासे पालन किया गया। यह सब समाधानकारक और श्रेयास्पद है। इससे उनकी कानून और व्यवस्थाके पालनकी वृत्ति प्रकट होती है और यह भी जाहिर होता है कि उनपर अत्यधिक पाबन्दियाँ लगाना अथवा उन्हें अत्यधिक कठिनाइयोंमें डालना किसी भी बिनापर उचित नहीं होगा। जो समाज नियन्त्रणमें रह सकता है उसके भीतरी दोष आसानीसे दूर किये जा सकते हैं। परन्तु यदि भारतीय समाज कोई स्थायी पाठ नहीं सीखेगा और इस अग्नि-परीक्षाके बाद भी किसी देखरेख अथवा नियन्त्रणके बिना स्वेच्छासे सफाईके नियमोंपर अच्छी तरह ध्यान नहीं देगा तो उसको जो दंड मिला है वह बहुत थोड़ा ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२३. ट्रान्सवालका एशियाई व्यापारी-आयोग

मार्च १६ को एशियाई व्यापारी-आयोगकी पहली नियमित बैठक हुई थी। *जोहानिसबर्ग लीडरसे* हम उनकी कार्रवाई एक अन्य स्तम्भमें उद्धृत कर रहे हैं।

आयुक्तोंने निर्णय किया है कि उन्हें उन ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके दावोंपर विचार करनेका अधिकार नहीं है जो यह साबित नहीं कर सकते कि वे लड़ाईसे ठीक पहले पृथक् बस्तियोंके बाहर परवाने लेकर व्यापार कर रहे थे, और लड़ाई छिड़ जानेके कारण अपना व्यवसाय छोड़नेको मजबूर हुए थे। इसका अर्थ यह है कि, जो लोग ट्रान्सवालमें १५ वर्षसे व्यापार करते थे; परन्तु जिन्होंने, यों कहिए कि, अगस्त १८९९में अपना व्यवसाय खतम कर दिया था, उनकी आयुक्तोंके आगे कोई हैसियत नहीं है; और यदि इस सीमित विचार-क्षेत्रके अन्तर्गत आयुक्तोंके प्रतिवेदनपर ही मामला खत्म हो जाता है तब तो परवानोंके बलपर इस समय व्यापार करते हुए सैकड़ों भारतीय व्यापारी अपना व्यापारका अधिकार खो देंगे और फलस्वरूप बिलकुल बरबाद हो जायेंगे। परन्तु यह निर्णय भले ही कठोर दिखाई देता हो, आयुक्तोंके सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं था। सच तो यह है कि हमने अपने पाठकोंको इसके लिए पहले ही तैयार कर दिया था, जब हमने कुछ समय पूर्व इस प्रश्नकी चर्चा की थी।[1] आयोगके विचारणीय विषयोंकी सूचीकी भाषामें बचावकी कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है; उनमें केवल यह कहा गया है कि आयुक्त उन लोगोंके मामलोंपर विचार करेंगे जो बस्तियोंके बाहर परवानोंके बिना लड़ाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले व्यापार कर रहे थे। हमें आशा है कि सरकारने विचारणीय विषयावली तैयार करते समय कभी ऐसे किसी

१. देखिए "एशियाई व्यापारी-आयोग," १०-३-१९०४।

परिणामकी कल्पना नहीं की होगी, क्योंकि उपनिवेश-सचिव और लॉर्ड मिलनरने भी बार-बार कहा है कि सरकार उन भारतीयोंके व्यापारको छेड़ना नहीं चाहती, जो लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे — चाहे उनके पास परवाने रहे हों या नहीं। जिन थोड़ेसे भारतीयोंने १८९९ में किसी तरह व्यापारके परवाने हासिल कर लिये थे उनमें, और जिन्होंने परवाने तो हासिल नहीं किये थे, परन्तु फिर भी व्यापार कर रहे थे उनमें, बिलकुल फर्क नहीं हो सकता। बोअर सरकारके खयालसे वे ऐसा गैरकानूनी तौरपर कर रहे थे; परन्तु उस गैरकानूनी कार्रवाईको ब्रिटिश सरकारने पैदा किया था और वही उसका पोषण कर रही थी, क्योंकि उसकी नजरमें १८८५ का कानून ३ सर्वथा घृणास्पद था। इसलिए लड़ाईसे पहलेके १५ वर्षोंमें भारतीयोंको ब्रिटिश संरक्षणमें विश्वास रखने दिया गया; यहाँतक कि वे जब जीमें आता ट्रान्सवाल छोड़कर चले जाते और फिर वापस आ जाते, कारोबार स्थापित करते, उसे बेच देते और फिर जब चाहते तब पुनः स्थापित कर लेते थे। इसलिए पृथक बस्तियोंसे बाहर कानूनके विरुद्ध व्यापार करनेके अधिकारमें एक निहित स्वार्थ पैदा कर दिया गया था, और यद्यपि यह निःसन्देह एक असाधारण स्थिति है, फिर भी है तो एक सच बात। जब यह स्थिति मौजूद थी, तभी लड़ाई छिड़ गई, और "लड़ाईके कारणोंमें एक १८८५ का कानून ३ भी था।" इसलिए भारतीयोंका यह सोचना बहुत स्वाभाविक था कि लड़ाईमें जीत होनेपर यह कानून खत्म हो जायेगा; और यह निष्कर्ष भी निकलता है कि यदि ब्रिटिश भारतीय १८९९ के पहले कानून तोड़कर व्यापार कर सकते थे तो अब तो उनका दावा और भी प्रबल है; क्योंकि इस बातका जरा भी महत्त्व नहीं कि वे लड़ाईके ठीक पहले व्यापार कर रहे थे या नहीं। कसौटी यह है कि, लड़ाईसे पहले वे कभी ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे या नहीं; और अगर करते थे तो कमसे-कम अब भी उन्हें उस नीतिके अनुसार व्यापार करनेका हक है, जिसका अनुसरण ब्रिटिश सरकारने बोअर-हुकूमतके दिनोंमें किया था; क्योंकि जो भी भारतीय लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें प्रवेश करता था और अपना व्यापार जमा लेता था, वह जानता था कि वह जब चाहे तभी व्यापार स्थापित कर सकता है और उसे भंग करके फिर जमा सकता है। इसलिए हम महसूस करते हैं कि यदि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्याय करना है, तो आयोग-की विषयावलीको बहुत व्यापक बनाना पड़ेगा। एशियाइयोंके पर्यवेक्षक श्री बर्जेसने आयोगके सामने गवाही देते हुए साफ-साफ बयान किया था कि लड़ाईके बाद ऐसे बहुत कम भारतीयों (३) को परवाने दिये गये थे, जो प्रमाण देकर उनको यह सन्तोष नहीं करा सके कि वे लड़ाईसे पहले पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे थे। इसलिए जिन भारतीयोंको पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने इस वक्त मिले हुए हैं, वे सब (जैसा कि ब्रिटिश भारतीय संघ हमेशा कहता रहा है) श्री बर्जेसके बयानके अनुसार व्यापार करनेके अपने अधिकारोंको पहले ही साबित कर चुके हैं। यद्यपि इसमें पुनरुक्तिका खतरा है, फिर भी हम कह सकते हैं कि इन परवानोंको जारी करते समय कोई शर्त नहीं लगाई गई थी और न्याय और अन्यायकी हमारी दृष्टिके अनुसार, यदि एक भी ब्रिटिश भारतीय व्यापारीको, जो इस समय पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहा है, छेड़ा गया तो यह अन्याय होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–४–१९०४

१२४. नेटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम

उस दिन वीनेनमें सात भारतीय व्यापारियोंने परवाना-अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध स्थानिक निकायमें अपील की। परवाना-अधिकारीने विक्रेता-परवानोंकी सातों अर्जियाँ नामंजूर कर दी थीं। जो शहादत पेश की गई उससे मालूम होता है कि उक्त व्यापारियोंमें से एक आठ सालसे दूकान कर रहा है; दूसरे भी पुराने दूकानदार हैं, जिनके पास कई सालसे व्यापार करनेके परवाने हैं। चूँकि परवाना-अधिकारीने फिरसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया था, इसलिए स्थानीय निकायमें अपील की गई थी। एक अर्जदारने इस आशयकी गवाही दी कि उसके पास आठ वर्षसे परवाना है और उसका वही-खाता उसके समय-समयपर रखे हुए कच्चे हिसाबके आधारपर उसका अंग्रेज मुनीम लिखता है। दूसरोंके वही-खातोंकी भी यही प्रणाली है। दो दिनतक इन मामलोंकी सुनवाई करनेके बाद निकायने फैसला दिया कि चूँकि उसको उनके हिसाब रखनेके तरीकेसे सन्तोष नहीं हुआ है, इसलिए उसने परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा है। अगर व्यवस्था इसी ढंगकी रही तो हमें बहुत अन्देशा है कि लगभग प्रत्येक भारतीय दूकानदारका सफाया हो जायेगा। इस बातको सभी जानते हैं कि छोटे दूकानदारोंकी वही-खाता रखने योग्य स्थिति नहीं होती। उनका लेन-देन सब नकद होता है। वे क्रय और विक्रय बहुत-कुछ नक़द करते हैं और उन लोगोंसे वही-खाता रखनेकी अपेक्षा करना ही भारी सख्ती होगी। प्रस्तुत मामलेमें इन लोगोंने अंग्रेजी भाषामें वही-खाता रखनेका प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि निकाय उनसे यह अपेक्षा करता है कि वे योग्य मुनीमोंकी मार्फत रोजमर्राका वही-खाता रखें। इसका अर्थ है ६ या ७ पौंड या इससे भी अधिक माहवारी खर्च। जो छोटे-छोटे व्यापारी अपने व्यवसायमें १०-१५ पौंड माहवार मुश्किलसे बचा पाते हैं वे शायद इस प्रकारका महँगा शौक नहीं कर सकते। यदि स्थानीय निकाय इस तरहके स्पष्टतः बेहूदा नियमका आग्रह रखेंगे कि अंग्रेजी भाषामें योग्य मुनीमों द्वारा ही दैनिक वही-खाता लिखाया जाये, तो इसका नतीजा होगा उपनिवेशमें कमसे-कम छोटे भारतीय व्यापारियोंका सरलतासे खात्मा। क्या विक्रेता-परवाना अधिनियम इस दृष्टिसे ही पास किया गया था? निकायके फैसलेसे कानूनमें संशोधनका प्रश्न फिरसे उठ खड़ा हुआ है। जब विक्रेता-परवाना अधिनियम पास किया गया था उस समय ही नगरपालिकाओंको दी हुई सत्ताका दुरुपयोग करनेकी प्रवृत्ति मौजूद थी। उसके बाद श्री चेम्बरलेनका उलहना आया और उसका वांछित परिणाम भी हुआ; परन्तु वह केवल क्षणिक था। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियममें कुछ ऐसे निश्चित अधिकार शामिल नहीं किये जाते जिनसे पीड़ित पक्ष सर्वोच्च न्यायालयतक पहुँच सके, या उन कारणोंकी व्याख्या नहीं कर दी जाती जिनसे परवाने नामंजूर किये जा सकते हैं, तबतक ऐसे मामले, जैसे हमने ऊपर बताये हैं, समय-समयपर होते ही रहेंगे। यदि लोगोंके निहित स्वार्थोंका आदर करना है तो यह मामला सरकारके गम्भीर विचार करनेके लायक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२५. पत्र : जोहानिसबर्गके अखबारोंको[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
अप्रैल ५, १९०४

महोदय,

श्री रॉयने[2], अगर उनके बारेमें यह समाचार सही है तो, इस बातसे इनकार किया है कि स्वास्थ्य-अधिकारी अथवा लोक-स्वास्थ्य समिति दोनोंमें से किसी को भी कभी प्लेगके बीमारोंकी सूचना दी गई थी। इस इनकारको देखते हुए और इसलिए कि, अब (देरसे ही सही) लोक-स्वास्थ्य समितिकी कोशिशों, डॉ० पेक्स और डॉ० मैकेंजी की सहायता और प्लेगके प्रकोपका पता लगनेके बाद भव्य मौसमके कारण बीमारी काबूमें आ गई है, और इसलिए जनता निर्विकार होकर निर्णय करनेकी स्थितिमें है, मैं श्री रॉयकी सम्मतिसे डॉ० पोर्टर और अपने बीचका पत्र-व्यवहार प्रकाशनार्थ भेजनेका साहस करता हूँ।

इससे पता चलेगा कि आनेवाली घटनाओंकी काफी चेतावनी पिछली ११ फरवरीको, अर्थात् हम लोगोंमें प्लेगके अस्तित्वका सरकारी तौरपर पता लगनेके ठीक १ महीना और ९ दिन पहले, दे दी गई थी। उसे १५ फरवरीको जोरदार शब्दोंमें (जो, मेरे खयालसे, बादकी घटनाओंसे बिलकुल उचित सिद्ध हुए हैं) दुहरा दिया गया था। १ मार्चको डॉ० पोर्टरको एक पत्र लिखा गया था जिसमें उन्हें निश्चित सूचना दी गई थी कि, मेरी नम्र रायमें, प्लेग वस्तुतः फैल गया है।

क्या इससे अधिक निश्चित बात और कोई हो सकती थी? इसका शायद एक ही जवाब है। जो सूचना दी गई थी वह गैरसरकारी थी और एक साधारण व्यक्तिकी तरफसे थी। परन्तु क्या मुर्दाघरके कागजातमें उसका दारुण समर्थन उपलब्ध नहीं था जिनसे, हमें सरकारी तौरपर बताया गया है, यह सिद्ध होता था कि अस्वच्छ क्षेत्रमें मृत्यु-संख्या गैर-मामूली तौरपर बढ़ गई है? नहीं, साहब, सरकारी तौरपर जोरदार उपाय किये जानेके पहले तो उस दारुण शोकान्त घटनाके प्रत्यक्ष दर्शनकी जरूरत थी, जो पिछले महीनेकी १८, १९ और २० तारीखोंको घटित हुई! जो साफ तौरपर सरकारी कर्त्तव्य था वह स्वयंसेवकोंके पूरा करनेके लिए छोड़ दिया गया था। अबतक रोगने अपना घातक पंजा रोगियोंपर जमा लिया था, इसलिए उन स्वयंसेवकोंको एक प्रकारका नरक-कुण्ड ही मँझाना पड़ा।

मुझे अस्वच्छ क्षेत्रके उस सजीव, यद्यपि काल्पनिक, वर्णनकी याद दिलानेकी जरूरत नहीं, जो १९०२ के मध्यमें मेजर ओ'मियाराने किया था और जिसे १९०३ में डॉ० पोर्टरने दुहराया था। लोक-स्वास्थ्यके लिए उस समय भी खतरा इतना तात्कालिक समझा गया था कि नगर-परिषदको सलाह दी गई थी कि वह अधिग्रहणकी कार्रवाईके लिए उस समयतक प्रतीक्षा न करे जबतक जोहानिसबर्गको निर्वाचित परिषद प्राप्त नहीं हो जाती। १९०३ में

१. इस आवरणपत्रके साथ गांधीजीने डॉ० पोर्टरके नाम लिखे गये अपने ११, १५ तथा २० फरवरी और १८ मार्चके पत्रोंकी नकलें जोहानिसबर्गके अखबारोंको भेजी थीं। ये पत्र इस खण्डमें पहले तिथि-क्रमसे दिये गये हैं।

२. लोक-स्वास्थ्य समितिके अध्यक्ष।

३० अप्रैलके दिन परिषदको अधिग्रहणका अधिकार मिला था। उस समय उसे अधिकार था और उसका स्पष्ट कर्त्तव्य भी था कि वह, जिन लोगोंको बेदखल किया जाना था उनके बसानेके लिए कोई स्थान निश्चित करती। वह अपने कर्तव्यमें चूक गई। उसने ६ जून १९०३ को अधिग्रहणके इरादेकी सूचना दी, परन्तु वह अस्वच्छ क्षेत्रके लोगोंके बसानेके स्थानकी व्यवस्था फिर भी न कर सकी। २६ सितम्बर १९०३ को उसने कब्जा ले लिया। उस दिन वह अगर हरएक किरायेदारकी मालिक-मकान न बन जाती और दस्तूरी (कमीशन) पानेवाले अपने कर-संग्राहकोंको यह अधिकार न दे देती कि जितने भी किरायेदार अर्जी दें उन सबको वे मकान किरायेपर दे सकते हैं, और जैसा वह अब दबावमें आकर कर रही है, उसी तरहका व्यवहार उस इलाकेके साथ करती, तो क्या करदाताओंको यह २० हजार पौंडका जुर्माना देना पड़ता? क्या भारतीयोंकी ही सही, कीमती जानें जातीं? क्या स्मृतिके रूपमें बचे सिर्फ एक सदस्यको छोड़कर एक सारेके-सारे परिवारका सफाया हो जाता?

इतनेपर भी खास तौरसे बाहरी जिलोंमें, कष्टोंकी उग्रता भारतीयोंको ही महसूस कराई जा रही है। उनको मंडियोंमें काम करनेसे वंचित किया जाता है और अपनी रोजी कमानेसे रोका जाता है। अगर वहाँ प्लेग न हो तो भी उन्हें सूतक (क्वारंटीन) में रखा जाता है या, कमसे-कम, शहरोंसे बहुत दूर एकान्त शिविरोंमें भेज दिया जाता है। उनके सब कार्मोंको मैं उचित नहीं बताना चाहता। इसके विपरीत, मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे देश-वासियोंमें से गरीब तबकेके लोग देखरेखके बिना, सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते। परन्तु मेरा यह निवेदन जरूर है कि वे लोक-स्वास्थ्यके रक्षक नहीं हैं। वे अपने कर्तव्य-पालनमें चूके हैं, तो व्यष्टिगत रूपमें, और उसी रूपमें उन्होंने कष्ट भी भोगे हैं। लोक-स्वास्थ्य समितिका काम है कि वह स्वास्थ्यके नियमोंका पालन कराये, न कि उन्हें बुरी तरहसे तोड़े, जैसा कि उसने पिछले २६ सितम्बरसे किया है।

मैंने आपकी शिष्टताका लाभ सत्य, लोक-कल्याण और अपने देशवासियोंके तिहरे हितोंके नामपर उठाया है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१२६. पत्र : ई० एफ० सी० लेनको

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल ८, १९०४

श्री अर्नेस्ट एफ० सी० लेन
गृह-कार्यालय (ऑफिसेज ऑफ दि इंटीरियर)
केप टाउन

प्रिय श्री लेन,

मैंने संघ-सरकारके *गज़टमें* विवाह-सम्बन्धी घोषणा देखी है, जिसके मुताबिक उन लोगोंके लिए, जो अपना विवाह-संस्कार अपने मुस्लिम या यहूदी विवाह-अधिकारियों द्वारा कराना चाहते हैं, अपने इस विचारकी सूचना प्रकाशित करना लाजिमी है। मुझे पता नहीं कि यह घोषणा जान-बूझकर की गई है और सरकारकी भावी नीतिका पूर्व-संकेत करनेवाली है, अथवा यहूदियोंके लिए जरूरी हुई है और उसमें जिस नेटाल विवाह-कानूनका उल्लेख किया गया है उसके अनुसार मुसलमानोंका उल्लेख करना आवश्यक हो गया है। अगर पहली बात है, तो मैं जनरल स्मट्सका[1] ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचना चाहता हूँ कि मैंने भारतीय समाजकी ओरसे जो-कुछ निवेदन किया है, सो यह है कि, भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजोंके अनुसार जो एक-पति-पत्नी विवाह हो चुके हैं उन्हें कानून-सम्मत करार दिया जाये और भविष्यमें भी ऐसे विवाह वैध माने जायें। विचाराधीन विवाह-सम्बन्धी घोषणासे विवाहके निर्णय, विधि इत्यादिके प्रकाशनका ऐसा दौर शुरू हो जायेगा, जो हिन्दू और मुस्लिम दोनोंके रीति-रिवाजोंके सर्वथा विरुद्ध है। और न ऐसे प्रकाशनकी आवश्यकता ही है, क्योंकि उक्त दोनों मजहबोंमें विवाह-संस्कार अत्यन्त उपचारपूर्वक किये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप धोखाधड़ीवाले विवाह असम्भव हो जाते हैं। मुझे लगता है कि जब आयोगकी सिफारिशोंको अमली शक्ल देनेके लिए कानूनका मसविदा बनाया ही जा रहा है, तभी मुझे यह बात जनरल स्मट्सके ध्यानमें ला देनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, श्री मेलरको श्री बर्टनने जो उत्तर दिया है उसमें मैंने देखा है कि रेलवे विभागमें काम करनेवाले गिरमिटिया भारतीयोंने तीन पौंडी करकी किस्तोंके रूपमें अपनी मजदूरीमें से कुछ रकम कटवा दी है। मेरा नम्र निवेदन है कि आयोगने इस करके बारेमें जो रुख जाहिर किया है उसका तथा अदायगीकी इस प्रणालीको जारी रखनेका मेल नहीं बैठता। जिन विषयोंपर आयोगको सिफारिशें करनी थीं उनमें से एक मुख्य विषय ३ पौंडी कर था। निवेदन है कि कमसे-कम आयोगका विवरण प्राप्त होनेके समयतक सरकार यह कटौती रोके रहती तो अच्छा होता। और चूँकि आयोग इस करको खतम कर देनेके बारेमें ऐसी जोरदार सिफारिशें पेश कर चुका है, मैं पूरी आशा करता हूँ कि सम्बन्धित अधिकारियोंको अगर अभीतक हिदायतें नहीं दी गई हैं तो अब दे दी जायेंगी कि वे कटौतीपर आग्रह न करें; क्योंकि मेरी यह धारणा है कि यदि सरकारने इस करको रद करनेका विधेयक पेश किया तो पिछला कर वसूल न किया जायेगा।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ५९५७) से।

१. जॉन क्रिश्चियन स्मट्स (१८७०–१९५०) लोकदलके एक संस्थापक, उपनिवेश सचिव और शिक्षा-मन्त्री (१९०६), प्रतिरक्षा, खान और गृहकार्य मन्त्री (१९१०) और प्रधान-मन्त्री (१९१९–२४ और १९३९)।

१२७. ट्रान्सवालमें प्लेग[1]

यद्यपि इस अभिशापने उपनिवेशका पूरी तरह पिण्ड नहीं छोड़ा है, फिर भी अब इसकी भयानकता हट गई है और सरकारी तौरपर विज्ञापित किया गया है कि चूँकि निमोनियावाला प्लेग अब गिल्टीवाले प्लेगमें बदल गया है, इसलिए प्लेगकी जो थोड़ीसी घटनाएँ हो सकती हैं उनके इतनी घातक होनेकी आशंका नहीं है। इस कारण आतंकित होनेकी तो जरूरत नहीं है; किन्तु फिर भी जोहानिसबर्गके बाहर ऐसे कदम उठाये जा रहे हैं जो दो बातोंके आधार-पर ही उचित कहे जा सकते हैं — या तो प्लेग बढ़ रहा है या जो गैर-मामूली पाबन्दियाँ खास तौरपर एशियाइयोंपर ही लागू की जा रही हैं उनके पीछे कोई छिपा हेतु है। स्पष्ट ही डॉ० पेक्सने जब यह कहा था कि दूरस्थ जिलोंमें जो कदम उठाये जा रहे हैं उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोंका उन्मूलन करना अधिक है, तब उन्होंने सच ही कहा था। मिसालके तौरपर क्रूगर्सडॉर्पमें, जहाँ प्लेगकी एक भी घटना नहीं हुई और जहाँ पृथक बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंका स्वास्थ्य उत्तम था, अधिकारी अचानक इस निर्णयपर पहुँच गये कि उन्हें बस्तीके तमाम निवासियोंको शहरसे दूर किसी स्थानपर हटा देना चाहिए। स्वभावतः उन गरीब लोगोंने ऐसी मनमानी कार्रवाईपर रोष प्रकट किया। परन्तु यह देखते हुए कि भारतीयोंको बहुत बड़ा द्वेष-भाव सहना पड़ रहा है और उनमें सबसे पहले प्लेग फैल जानेके कारण वह और भी बढ़ गया है, उस वक्त यह उचित समझा गया कि लोग अधिकारियोंकी इच्छाके अनुसार चलें। इसलिए श्री रिच क्रूगर्सडॉर्प गये और उन्होंने लोगोंको स्थिति समझाई। फलतः अब थोड़ेसे दूकानदारोंको छोड़कर वे सभी शहरसे दूर एक अस्थायी शिविरमें चले गये हैं। परन्तु बात इतनी ही नहीं है। बस्तीके अधिकांश निवासी, जिन्हें इस तरह हटाया गया है, फेरीवाले हैं। वे इस द्वेषके कारण बिलकुल बरबाद हो गये हैं और इस समय मित्रोंके दानपर गुजर कर रहे हैं, क्योंकि नगरपालिकाने लोगोंको खिलाने-पिलानेका भार नहीं लिया है। व्यक्तिगत रूपमें लोग फेरीवालोंसे वास्ता न रखें तो इसमें किसीका जोर भले ही न हो, लेकिन नगरपालिकाकी उनके लिए मंडीके दरवाजे बिलकुल बन्द करनेकी कार्रवाईके लिए क्या कहा जाये? वह कठोर, अनावश्यक और गैरकानूनी मालूम होती है। पीटर्सबर्गमें भी स्थिति बहुत-कुछ ऐसी है। परन्तु भारतीयोंके विरुद्ध युद्ध छेड़नेवालोंकी सूचीमें पॉचिफस्ट्रूम सबसे आगे है। जब दो या तीन भारतीय जोहानिसबर्गसे रेलगाड़ी द्वारा वहाँ पहुँचे तो उन्हें पॉचिफस्ट्रूमके अधिकारी पृथक बस्तीमें ले गये। फिर, बस्तीके लोगोंके बीच उनकी उपस्थितिको बहाना बनाकर सारी बस्तीको सूतक (क्वारंटीन) में रखा गया, और इस प्रकार भारतीय व्यापारको पूरी तरह उजाड़ दिया गया। याद रहे कि काफिर लोगोंको अछूता छोड़ दिया गया है, क्योंकि

१. दादाभाई नौरोजीके नाम गांधीजीके लिखे बिना तारीखके पत्रके साथ इस टिप्पणीकी अग्रिम प्रतिलिपि नत्थी की गई थी। उसकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। परन्तु दादाभाई नौरोजीने इसे भारत-मन्त्रीके पास भेजते हुए २५ अप्रैलको लिखा था: "मेरे संवाददाताने अपने पत्रमें लिखा है कि इसके साथ जो सूचिपत्र नत्थी किया जा रहा है उसमें ट्रान्सवालकी स्थितिका काफी अच्छा संक्षिप्त विवरण है। उसने यह भी लिखा है कि प्लेगका यह बहाना भारतीयोंपर और भी नियन्त्रण लगानेके लिए काममें लाया जायेगा। 'इसलिए, बहुत आवश्यक है कि रोग यहीं लोगोंपर लदा न रहे। यदि जोहानिसबर्गके अधिकारियोंने ढील न की होती तो यहाँ कभी प्लेग फैलता ही नहीं।'" (सी० ओ० २९१, जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस)

यूरोपीय गृहस्थोंके लिए उनकी जरूरत है। जब सरकारसे अपील की गई तब उसने कहा कि इस मामलेमें कोई सहायता देनेकी सत्ता उसके पास नहीं है। हाइडेलबर्गमें नगरपालिकाने मस-जिदमें नमाजकी मनाही करके बहुत ही खतरनाक रवैया इख्तियार किया था। खुशीकी बात यह है कि अब उसकी अक्ल ठिकाने आ गई है और उसने बड़ी कठिनाईके बाद अब मनाही वापस ले ली है। परन्तु इन उदाहरणोंसे ट्रान्सवालकी भारतीय आबादीके कष्टोंकी कुछ कल्पना हो सकती है। सिर्फ जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें ही अधिकारी कुछ विवेकशील और विचारवान रहे हैं।

जोहानिसबर्गमें पृथक बस्तीकी सारी आबादी अब क्लिपस्प्रूटमें हटा दी गई है। वह जोहा-निसबर्गसे १२ मीलसे भी ज्यादा दूर है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्थान मोहक है, और तम्बुओंमें रहनेसे लोगोंको फायदा भी बहुत होगा। सारा शिविर श्री टॉमलिन्सनकी देखरेखमें है। श्री बर्जेस उनके सहायक हैं और लोगोंको नगरपालिकाके खर्चसे भोजन दिया जाता है। जो भोजन-सामग्री दी जाती है उसकी मात्रा निम्नलिखित है। कुछ चीजोंको छोड़कर इसे काफी ठीक समझा जा सकता है:

१ डबल रोटी या १ पौंड आटा
¾ पौंड चावल
½ पौंड मांस या मछली, दालके साथ
३ पेन्सकी तरकारी दालके साथ (अन्नाहारियोंके लिए)
१½ पेन्सकी तरकारी (मांसाहारियोंके लिए)
१ डिब्बा दूध, प्रति बालिग, प्रति पखवारा
½ औंस चाय या काफी
३ औंस दाल
३ औंस घी या सरसोंका तेल
१ औंस नमक रोज
१ औंस चीनी
१ औंस मसाला
½ औंस इमली
¼ औंस मिर्च
६ पौंड लकड़ी और कोयला
१ मोमबत्ती, फी तम्बू, रोज
१ पट्टी साबुन, फी तम्बू, रोज
२ डिब्बियाँ दियासलाई, फी तम्बू, फी सप्ताह

शिविरमें सोलह सौ भारतीय रह रहे हैं, जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल हैं। एक मील दूर काफिरोंका शिविर है। यह ध्यान देने लायक है कि जब लोगोंको बस्तीसे हटाया गया उस समय वहाँ नियमोंके विरुद्ध लगभग डेढ़ हजार काफिर पाये गये और वे सब नगर-पालिकाके किरायेदार थे। इस तरह लोगोंको अचानक हटानेसे हजारों पौंडका नुकसान हुआ है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि सभी लोग रोजाना मजदूरी कमानेवाले श्रमिक हरगिज नहीं हैं। खासी हैसियतके लगभग बीस दूकानदार हैं और धोबियोंकी दूकानें भी हैं, जिनके ग्राहकोंकी संख्या बहुत बड़ी है। प्लेग समितिने प्लेग फैलनेके समय सात सौ पौंड धुलाईके कपड़े बस्तीसे बाहर निकाल कर साफ — छूत-रहित — किये थे और ग्राहकोंको पहुँचाये थे। दूकान

दारोंके लिए उनका हटाया जाना और उनका व्यवसाय वन्द हो जाना एक तरहसे वरवादी ही है, क्योंकि जब शिविरका सूतक (क्वारंटीन) खतम हो जायेगा तब उनके जानेके लिए कोई स्थान नहीं होगा, और इसमें शंका है कि स्थायी स्थानके मुकर्रर होनेतक अधिकारी उन्हें नगरकी सीमाके भीतर दूकानें खोलनेकी इजाजत देंगे। इसके सिवा उनका सारा माल नगरपालिकाने अपने गोदाममें रख दिया है और यद्यपि गोदाम वहुत अच्छा है फिर भी जिन्हें व्यापारका कुछ भी ज्ञान है वे तुरन्त समझ जायेंगे कि जो चीजें हवा लगाये बिना वहुत समय-तक एक जगह बिखरी रखी जायेंगी उन्हें कितनी हानि पहुँचेगी। समाज इन सारे कष्टोंको स्थितप्रज्ञ बनकर सह रहा है और आशा इतनी ही है कि जब प्लेग बिलकुल मिट जायेगा तब उनका धीरज उनको लाभ पहुँचायेगा।

भारतीयोंमें प्लेग केवल नगर-परिषदकी गफलतके कारण फैला। यह इस वातसे प्रमाणित है कि दूरस्थ जिलोंमें भारतीय लगभग अछूते रहे हैं। प्रिटोरियामें जो थोड़े लोग बीमार हुए वे यूरोपीयों और वतनियोंमें हुए। वेनोनीमें दो वतनियोंपर रोगका आक्रमण हुआ है। जर्मिस्टनमें भी वतनियोंपर ही प्लेगका हमला हुआ है; और इन सब स्थानोंमें भारतीय अपने ही मकानों-दूकानोंमें रहते रहे हैं। जबसे जोहानिसबर्गमें नगरपालिका एक-एक किरायेदारकी सीधी मालिक-मकान बनी, उसके बादसे ही अत्यधिक भीड़ और गन्दगीकी खराबी पैदा हुई, जिसके साथ यह भयंकर अभिशाप आया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१२८. तिब्बतको प्रेषित मिशन

तिब्बत भेजे गये ब्रिटिश मिशनका तिब्बतियोंसे संघर्ष हो गया है। तिब्बतियोंकी हानिका सरकारी अन्दाजा यह है कि ३०० तिब्बती मारे गये और २०० वन्दी वनाये गये। रायटरने तार द्वारा उस दृढ़ता और साहसकी शानदार तफसील भेजी है, जिसके साथ जोड़ीमें कमजोर और हथियारोंके गरीब तिब्बती नवीनतम शस्त्रोंसे सज्जित अनुशासनबद्ध ब्रिटिश सेनासे लड़े। पीछे हटनेमें भी शत्रुका ढंग बड़ा ही गौरवास्पद रहा। यहाँतक कि, जिन लोगोंको उसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ उनके मनपर उसके पीछे हटनेके ढंगकी स्थायी छाप भी मालूम होती है। ऐसे धीर और ऐसे वीर लोगोंके साथ सहानुभूति न हो, यह असम्भव है। मिशनके राज-नीतिक स्वरूप अथवा उसकी आवश्यकताके वारेमें हमें अभी कुछ नहीं कहना है। यह उचित हो सकता है और नहीं भी। परन्तु यह सोचकर वहुत बड़ा अफसोस होता है कि ऐसे जीवट-वाले राष्ट्रको ब्रिटिश सेनाके साथ युद्ध करना पड़ा है। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि ब्रिटिश नीतिके निर्माताओंने मिशन भेजनेकी जरूरतके वारेमें पूरी तरह अपना इतमीनान कर लिया होगा और जब सब मामला खतम हो जायेगा तब वे जनताके सामने अपनी कार्रवाईको ठीक साबित कर सकेंगे। रायटरने वताया है कि शायद सिख सेनाके महान साहसने मिशनको विपत्तिसे वचा लिया। यह शुभखबरी है, यद्यपि इससे आश्चर्य विलकुल नहीं होता, क्योंकि यह भारतीय सेनाकी परम्पराओंके सर्वथा अनुरूप है। परन्तु इस समाचारसे अनेक विचार उत्पन्न होते हैं। साम्राज्यके अंग होनेके नाते उपनिवेश सिखोंकी वीरताके परिणामोंके भागी वननेके लिए तैयार हो जायेंगे और अगर यह पता चले कि तिब्बतके विशाल पठारोंमें सोना

भरा है तो वे उस देशकी तरफ बेतहाशा दौड़ पड़ेंगे। परन्तु यह दुःखकी बात है कि वे अपने उपनिवेशोंमें आकर बसनेवाले सिख सिपाहियों या उनके देशवासियोंका स्वागत करनेके लिए बिलकुल तैयार नहीं हैं। औपनिवेशिक नेताओंको यह खयाल होना वांछनीय है कि उनका यह असंगत रवैया कुछ ऐसा है जिसमें सुधार होना चाहिए। सब लेते ही रहना और बदलेमें कुछ देना नहीं, यह लेनेवालेके लिए बहुत सन्तोषजनक हो सकता है; परन्तु इसे न्यायपूर्ण अथवा उचित तो नहीं माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१२९. पत्र: "रैंड डेली मेल" को

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १४, १९०४

सेवामें
सम्पादक
रैंड डेली मेल

महोदय,

प्लेग फैलनेके बारेमें मैंने जो वक्तव्य दिये थे उनका खण्डन करते हुए लोक-स्वास्थ्य समितिने अपने प्रतिवेदनमें[1] कुछ ऐसी बातें कही हैं, जिनके कारण थोड़ा-सा स्पष्टीकरण करनेके लिए आपसे स्थान माँगनेकी जरूरत है।

ध्यान देनेकी बात है, अब इससे इनकार नहीं किया जाता कि मैंने प्लेग फैलनेके बारेमें १ मार्चको सूचना दे दी थी।

उक्त रिपोर्टमें मेरे इस बयानका खण्डन करनेकी कोशिश की गई है कि श्मशानके कागजातसे १ मार्चको दी गई मेरी रायका भीषण रूपमें समर्थन हुआ है। जुलाई १९०३ से इस वर्षके फरवरी मासतक की अवधिके आँकड़े पेश किये गये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि किसी भी अकेले मासमें निमोनियासे अधिकतम मृत्यु-संख्या सात थी; और उसी कारणसे औसत मृत्यु-संख्या प्रतिमास ४.७५ थी।

पिछले मार्च मासके पहले १७ दिनोंमें इसी कारणसे चौदह मृत्युएँ हुई थीं, अर्थात् मौतकी दर २५.३५ प्रतिमास थी। दूसरे शब्दोंमें, मेरे पत्रकी तारीखके बादके पहले पखवारेमें मृत्युसंख्या पिछले आठ मासोंकी सबसे अधिक मृत्युसंख्याकी साढ़े तीन गुनी थी, और उसी कालकी औसत मासिक मृत्युसंख्याकी छः गुनी थी।

इसलिए मैं फिर पूछनेका साहस करता हूँ कि पिछले १ मार्चको प्रकट किये गये मतका इससे भीषण रूपमें समर्थन होता है या नहीं? यह तो ख्वामख्वाह मान लिया गया है कि मैंने जो मृत्यु-संख्या बताई है उसका १ मार्चसे पहलेके कालसे कोई सम्बन्ध है। फरवरीमें

१. यह जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदको ११ अप्रैलको दिया गया था और २० अप्रैलको उसकी विशेष बैठककी कार्यवाहीमें शामिल किया गया था। (कालोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: साउथ आफ्रिका, जनरल, १९०४)।

डॉ० पोर्टरको लिखे गये पत्रोंमें तो केवल आनेवाली विपत्तिकी चेतावनी दी गई थी, परन्तु एक बार भी यह कभी नहीं कहा गया था कि प्लेग वास्तवमें फैल गया है।

श्री मैककैनने[1] सन्दिग्ध मृत्युओंका व्योरा देनेकी मेरी असमर्थताका जिक्र करते हुए एक ही मुलाकातका[2] हवाला दिया है। बात यों हुई थी। मेरे सामने बाड़ोंके नाम और नम्बर नहीं थे। मैंने उस मुंशीको फोन किया जिसे इस मामलेमें कुछ जानकारी थी, और उसी समय वहीं श्री मैककैनको कमसे-कम तीन आदमियोंके नाम बताये गये जो मेरी रायमें प्लेगसे मरे थे। बाड़ोंके नम्बर भी बताये गये थे।

मैंने कभी नहीं कहा है कि काफिरोंको भारतीय बस्तीमें पहले-पहल उस समय लाया गया, जब कि बस्तीपर परिषदका अधिकार हो गया था; और मैं मुक्त रूपसे स्वीकार करता हूँ कि मेरे कुछ देशवासियोंने काफिरोंको किरायेदारके रूपमें रखा था। परन्तु मैंने कहा है, और उसे दुहरानेका साहस करता हूँ, कि २६ सितम्बरके बाद उनसे बस्तीको पाट दिया गया, और मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि कई बाड़ोंमें, जिनमें उस तारीखसे पहले काफिर कभी नहीं रहे थे, उस तारीखके बाद वे भर दिये गये। यदि उस तारीखको जो अधिक भीड़ थी उसे परिषद दूर नहीं कर सकती थी तो, मेरी रायमें, उसमें कुछ भी बढ़ती करना अक्षम्य था। और यह बात कि बस्तीमें भारतीय और काफिर दोनोंकी संख्यामें वृद्धि हुई, साबित की जा सकती है। बस्तीमें ९६ बाड़े थे। मान लीजिये कि छः बाड़े खाली थे। उन्हें घटा दिया जाये तो २० मार्च १९०४ को बस्तीमें प्रति बाड़े ३५ निवासीसे ऊपर थे। और यदि इनमें आप कमसे-कम १,००० और जोड़ दें (यह मेरे खयालसे उन लोगोंकी संख्या है जो मार्च मासमें बस्ती छोड़ गये थे), तो प्रति बाड़ा ४५ हो जाते हैं।

मेरी सबसे बड़ी शिकायत यह नहीं है कि लोक-स्वास्थ्य समिति प्लेग फैलनेकी घोषणा करनेमें चूक गई, परन्तु यह है कि वह या नगर-परिषद आगेकी बात सोच कर उस विपत्तिका उपाय करनेका अपना फर्ज अदा न कर सकी, जिसकी चेतावनी उसे १९०२ में मिल चुकी थी, १९०३ में दुहराई गई थी और पिछली फरवरीमें और जोरके साथ दोहराई गई थी, यद्यपि कमसे-कम पिछले २६ सितम्बरको वह कारगर तरीकेपर अपना कर्तव्य पालन करनेकी स्थितिमें थी।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–४–१९०४

१. स्वास्थ्य-निरीक्षक।

२. यह मुलाकात गांधीजी द्वारा १ मार्चको डॉ० पोर्टरको पत्र लिखनेके शीघ्र बाद हुई थी।

१३०. प्लेग

यद्यपि प्लेगने जोहानिसबर्गका पिण्ड लगभग छोड़ दिया है, फिर भी भारतीयोंके विरुद्ध पाबन्दियाँ अभी पूरी सख्तीसे लगी हुई है। इस कार्रवाईमें पॉचेफस्ट्रूम अगुआ मालूम होता है, जैसा कि नीचे लिखी बातोंसे स्पष्ट होगा :

१. उन एशियाइयों और रंगदार लोगोंको, जो प्लेग-पीड़ित इलाकोंसे पॉचेफस्ट्रूम पहुँचें, दोमें से एक बात पसन्द कर लेनेको कहा जाये — या तो वे छूत-निवारणके लिए दस दिनोंतक अलग रहें, या जहाँसे आये है वहाँ लौट जायें।

२. एशियाइयों और भारतीयोंको शहर-खाससे हटा दिया जाये।

३. पुलिस अधिकारियोंसे अनुरोध किया जाये कि वे एशियाइयों और वतनियोंको मुख्य सड़कोंसे नगरमें घुसनेसे रोकें।

४. पॉचेफस्ट्रूम और जोहानिसबर्गके बीचके स्टेशनों और जोहानिसबर्गके उत्तरके स्टेशनोंसे सभी प्रकारके फलोंका आना बन्द कर दिया जाये।

५. लोक-स्वास्थ्य उपनियमोंकी धारा ७ छः महीनेके लिए लागू कर दी जाये।

६. अपने मालिकोंके साथ आनेवाले अथवा मवेशियोंकी देखभाल करनेवाले वतनियोंको इधरसे उधर गुजरने दिया जाये, बशर्ते कि उनके पास अपने मामूली मासिक पास मौजूद हों, जिनसे यह साबित हो कि वे इसी जिलेके निवासी है।

इस प्रकार भारतीयोंकी गति-विधि वतनियोंकी अपेक्षा कही अधिक कठोरतासे नियन्त्रित है, हालाँकि जोहानिसबर्गसे बाहरके जिलोंमें अन्य जातियोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें प्लेगकी प्रमुखता हरगिज ज्यादा नहीं रही है। सच तो यह है कि भारतीय प्लेगसे अधिक मुक्त रहे प्रतीत होते है। स्वयं जोहानिसबर्गके बारेमें भी, हमने पिछले सप्ताह जो पत्र-व्यवहार छापा था उससे बिलकुल साफ जाहिर होता है कि प्लेग फैलनेका सारा दोष नगर-परिषदका है। २६ सितम्बरके बाद — जिस दिन नगर-परिषद मालिकके रूपमें वहाँ आई — वहाँ बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ हुई। यदि यह अत्यधिक भीड़-भाड़ रोक दी जाती तो शायद उपनिवेशभर में कहीं भी बिलकुल प्लेग न हुआ होता। बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंने इस लज्जाजनक स्थितिपर आपत्ति की थी। उन्हें हालातसे मजबूर होकर ही बस्तीमें रहना पड़ा था। वे नगर-परिषदके किरायेदार नहीं बनना चाहते थे और उन्होंने कानूनके अनुसार बस्तीके बदलेमें दूसरे स्थानकी बार-बार माँग की थी। इसलिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि जोहानिसबर्गमें जो भयंकर प्लेग फैला, वह ऐसी परिस्थितियोंमें फैला जो भारतीयोंके काबूसे बिलकुल बाहर थीं। इन तथ्योंकी शृंखलासे यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि भारतीयोंपर जो विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये है वे सर्वथा अनुचित और अनावश्यक हैं। केन्द्रीय सरकार लाचारीकी स्थिति बता सकती है और कह सकती है कि जबतक स्थानीय अधिकारियोंकी कार्रवाई प्लेगके नियमोंके विरुद्ध नहीं है तबतक वह उसमें दखल नहीं दे सकती। परन्तु हमारी शिकायत तो स्वयं नियमोंके विरुद्ध है, खास तौरपर जब कि उन नियमोंके अनुसार दी गई सत्ताका परिषद और स्थानीय निकाय दुरुपयोग करते है और उनको व्यापारिक ईर्ष्याकी तृप्तिका साधन बनाते है। हमने अनेक बार स्वीकार किया है कि प्लेगके आतंकके दिनोंमें कुछ कष्ट अनिवार्य होते है और इस अभिशापको दूर करनेके लिए स्थानीय अधिकारियोंको पर्याप्त सत्ता देनी चाहिए; परन्तु जब पॉचेफस्ट्रूमकी भाँति स्थानीय अधिकारी सारी मर्यादाओंका

उल्लंघन करके ब्रिटिश भारतीयोंको अनावश्यक पाबन्दियोंका शिकार बनायें, तब यह कहना पड़ता है कि "अब बस करो"। ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति अनिश्चित तो है ही, प्लेगके फैल जानेके कारण और भी अधिक कठिन हो गई है। और, हमारा खयाल है कि लॉर्ड मिलनरका, जो उनकी अपनी ही उपमाके अनुसार "पहरेके बुर्जपर बैठे हैं" और जिन्हें अपनी आँखोंके आगे होनेवाली सब बातोंको एक विशाल दृष्टिसे देखनेका अवसर प्राप्त है, साफ फर्ज है कि वे निर्दोष भारतीयोंको प्लेगकी सावधानियोंके बहाने और अधिक सताये जानेसे बचायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–४–१९०४

१३१. गल्पका महत्त्व

ट्रान्सवाल उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरने प्लेगके विषयमें अखबारोंके नाम प्रेषित अपने पत्रमें कहा है कि बीमारीको रोकने या उसका सफाया करनेके लिए सीधी-सादी और साधारण पाबन्दियोंसे अधिक और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपनी यह राय दी है कि जो असाधारण कदम उठाये जा रहे हैं वे केवल लोगोंकी भावनाको ही तृप्ति देते हैं। इस कथनकी पूरी-पूरी परख पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमें लगाई गई आगसे हो गई। असलमें वह एक नाटकीय प्रदर्शन था, जिसका उद्देश्य लोगोंकी कल्पनाको उत्तेजित करना था। हाँ, मकान निस्सन्देह जलाकर खाक कर दिये जाने चाहिए थे; किन्तु यह सोचना तथ्योंके बिलकुल विपरीत है कि, चूँकि वे जला दिये गये हैं, इसलिए छूतका एक-मात्र उद्गम नष्ट हो गया है। और जैसा हमारे संवाददाताने बताया है कि, बस्तीके चारों ओरके घेरे और उसके निवासियोंकी हलचलोंपर नियन्त्रणकी बात एक निरी गल्प है, जिसका पोषण किया जा रहा है — सफाईकी जरूरतें पूरी करनेके लिए नहीं, बल्कि जनताकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए। बस्तीके बाहरके झोंपड़े इस बुरी तरह कोसे गये स्थानके बुरेसे-बुरे हिस्सोंसे कहीं ज्यादा खराब हैं। प्लेगकी अत्यन्त घातक घटनाएँ जोहानिसबर्गके वर्गर्सडॉर्पमें स्टेशन रोडपर हुई हैं। दूसरी घटनाएँ भी जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्रके भीतर, परन्तु बस्तीके बाहर हुई हैं। उन स्थानोंको छूत-रहित बनानेके सिवा कुछ नहीं किया गया। और शायद करना जरूरी भी नहीं था। वहाँ रहनेवाले लोगोंकी हलचलोंमें हस्तक्षेप नहीं किया गया। फिर भी, डॉ० पेक्स चाहे कितना ही तर्क करते और कितनी ही ठंडी दलीलें देते, उनसे जनताका मन इतना शान्त न होता जितना बस्तीको इस तरह जला देने और उसमें रहनेवाले लोगोंको अलग रख देनेसे हुआ। किन्तु अब चूँकि ये दोनों कार्रवाइयाँ की जा चुकी हैं, हम विश्वास रखें कि, कमसे-कम, जहाँतक जोहानिसबर्गका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीय आबादी उचित रूपसे स्वतन्त्र छोड़ दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६–४–१९०४

१३२. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और प्लेग

यह उपनिवेश अगर एशियाइयोंके प्रति घृणासे लबालब नहीं, तो कुछ नहीं है। २५ मार्चके *गवर्नमेंट गज़टमें* ये दो विनियम छपे हैं:

> **(१) इन विनियमोंकी तारीखसे और उसके बाद किसी एशियाईके लिए उस वक्ततक ट्रान्सवालसे आकर इस उपनिवेशमें प्रवेश करना जायज नहीं होगा, जबतक ये विनियम लागू रहेंगे। कोई एशियाई इन विनियमोंका उल्लंघन करेगा तो, अपराध साबित होनेपर, उसपर जुर्माना किया जा सकेगा, जो ५ पौंडसे अधिक नहीं होगा; या, जुर्माना अदा न करनेपर उसे कैदकी सजा दी जा सकेगी, जो एक माससे अधिक नहीं होगी; और इस प्रकार दण्डित व्यक्ति उक्त जुर्माना देने या अपनी कैद पूरी करनेपर तुरन्त इस उपनिवेशकी सीमाओंके परे निर्वासित कर दिया जायेगा।**
>
> **(२) प्रत्येक रंगदार व्यक्तिकी, जो रेलसे या और किसी तरह इस उपनिवेशमें प्रवेश करेगा, परीक्षा ली जायेगी; और अगर किसी बाकायदा योग्यताप्राप्त डॉक्टरकी रायमें उस पुरुष या स्त्रीमें प्लेगके कोई वास्तविक या सन्दिग्ध लक्षण प्रकट होंगे अथवा वह प्लेगके वास्तविक अथवा सन्दिग्ध रोगीके सम्पर्कमें रहा होगा, तो उसे रोक लिया जायेगा और तबतक एक शिविरमें अलग रखा जायेगा जबतक स्वास्थ्य-अधिकारी यह राय नहीं देगा कि उसे सफर करने देनेमें खतरा नहीं है।**

इस प्रकार, एशियाईके अलावा और कोई भी रंगदार व्यक्ति तो प्रतिबन्धोंके अधीन उपनिवेशमें प्रवेश कर सकता है, परन्तु एशियाई, भले ही वह कोई भी हो, जबतक प्लेगका आतंक मौजूद है तबतक ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी पवित्र भूमिपर पैर नहीं रख सकेगा; अगर रखेगा तो उसे जुर्मानेकी सजा दी जायेगी। और जुर्माना अदा कर देने या सजा भुगत लेनेके बाद भी उसे "तुरन्त इस उपनिवेशकी सीमाके परे निर्वासित कर दिया जायेगा"। हम लड़ाईका मौका याद रखेंगे और उसे बराबर याद किये बिना नहीं रह सकते। उस समय क्वीन्सटाउनमें सेनाके साथ जो लोग भारतसे आये थे उनमेंसे एकको दरअसल प्लेग हो गया था। इससे आम लोगोंमें थोड़ी बेचैनी फैली; मगर हमें मालूम है कि ब्रिटिश भारतीय सईसों, भिश्तियों और डोलीवाहकोंके प्रवेशपर न तो ऑरेंज रिवर उपनिवेश कोई रोक लगानेको तैयार था और न दक्षिण आफ्रिकाका कोई अन्य भाग ही। सच तो यह है कि प्लेग फैल जानेपर भी, जितनी जल्दी सवारीका बन्दोबस्त हो सका, इन अनुचरोंको दक्षिण आफ्रिकाके सब हिस्सोंमें भेज दिया गया। लेकिन अब समय बदल गया है। अब उपनिवेशियोंकी जरूरतोंके लिए भारतीयोंकी आवश्यकता नहीं रही और इसलिए उन्हें अनिश्चित कालतक बाहर रखा जा सकता है। वे ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें आना चाहते हैं या नहीं, यह बहुत छोटी बात है और सत्ताधारियोंका इससे कोई सरोकार नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–४–१९०४

१३३. रंगके खिलाफ लड़ाई

मार्च ३१ के ऑरेंज रिवर उपनिवेशके *गज़टमें* रजिस्टर्ड गाड़ियोंके लिए संयुक्त स्वास्थ्य-निकायके ये विनियम छपे हैं:

> कोई गाड़ीका मालिक जो अपनी गाड़ीको केवल रंगदार यात्रियोंको ही ले जानेके लिए इस्तेमाल करना चाहता है, टाउन क्लार्कसे एक तख्ती प्राप्त कर सकता है जिसपर 'रंगदार यात्रियोंके लिए' शब्द साफ तौरपर छपे होंगे और जो बाहरकी तरफ प्रमुख रूपमें गाड़ीके पीछे या बाईं ओर लगाई जायेगी।
>
> किसी रंगदार व्यक्तिको सिवा उन रजिस्टर्ड गाड़ियोंके, जो इसी कामके लिए अलग की गई हों और जिनपर पहचानके लिए पहले बतायी हुई रंगीन तख्ती हो, किसी रजिस्टर्ड गाड़ीमें सफर नहीं करने दिया जायेगा।

हमने रंगदार लोगोंके विरुद्ध ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारके जिद-भरे विरोधी रवैयेकी इतनी बार चर्चा की है कि हम अपनी बातपर जोर देनेके लिए उपर्युक्त अंशोंकी ओर अपने पाठकोंका केवल ध्यान आकर्षित कर देते हैं। अधिक टिप्पणीकी जरूरत नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–४–१९०४

१३४. शिविरका जीवन[1]

अप्रैल २० [१९०४]

प्लेगका आजतकका लेखा-जोखा यह है:

प्लेगके प्रमाणित रोगी — १५ गोरे; ४ रंगदार (जिनमें मलायी भी शामिल हैं); ५४ एशियाई; ३५ वतनी। इनमेंसे मृत्युएँ — ७ गोरे; ५१ एशियाई; १४ वतनी।

सन्दिग्धोंमें ३ गोरे, १ एशियाई और २५ वतनी हैं। ये आँकड़े जोहानिसबर्गके हैं। जर्मिस्टनमें प्लेगके प्रमाणित रोगी ५ वतनी और १ एशियाई हुए हैं। सन्दिग्धोंमें एशियाई कोई नहीं और वतनी १३ हैं। इनमें से एकमात्र बीमार एशियाई मर गया है। बेनोनीमें प्रमाणित प्लेगका रोगी केवल एक वतनी हुआ है और वह मर गया है। क्रूगर्सडॉर्पमें एक वतनी प्लेगका मरीज था, और ५ सन्दिग्ध। सन्दिग्ध भी वतनी थे। उनमें से तीन प्लेगके रोगी सिद्ध नहीं हुए। इस प्रकार, देखा जायेगा कि, एशियाई रोगी एक तरहसे वे ही थे जो पहले दौरमें बीमार हुए। वृद्धि ज्यादातर वतनी बीमारोंमें और थोड़ी-सी गोरे बीमारोंमें भी हुई। जोहानिसबर्गसे बाहरके जिलोंमें, क्रूगर्सडॉर्पमें और बेनोनीमें कोई एशियाई बीमार नहीं हुआ। जर्मिस्टनमें एक हुआ। इस प्रकार, लिखते समयतक पहले दिया हुआ बयान, कि यह बीमारी एशियाईको ही खास तौरपर नहीं होती, अब भी सही है। किन्तु क्लिपस्प्रूटके शिविरमें अभीतक अत्यन्त

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग संवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

झुंझलाहट पैदा करनेवाले नियम कायम हैं। शिविर इस महीनेकी ११ तारीखसे खुला घोषित किया गया है। शिविरके उद्घाटनके बादसे किसीको भी प्लेगकी बीमारी नहीं हुई। कहने लायक कोई दूसरी बीमारी भी नहीं हुई। फिर भी शिविर-निवासियोंकी गतिविधि बड़े असुविधाजनक ढंगसे नियंत्रित है। वे परवानोंके बिना शिविर छोड़ नहीं सकते। और परवाने रोजाना नये लेने पड़ते हैं। और ये परवाने तभी जारी किये जाते हैं जब शिविर-निवासी अपने पंजीकरणकी सनदें पेश कर सकें, जो केवल यह साबित करनेवाली रसीदें होती हैं कि उन्होंने ३ पौंड चुका दिये हैं। शिविर और जोहानिसबर्गके बीच रेलगाड़ी आती-जाती है। सुबहकी गाड़ी ६ बजे चलती है और शामकी गाड़ी जोहानिसबर्गसे शिविरके लिए ६-१५ बजे रवाना होती है। इसके लिए रविवारको छोड़कर सप्ताहभरके लिए ३ शिलिंगकी रकम वसूल की जाती है। सिर्फ तीसरे दर्जेके डिब्बे रखे जाते हैं और शामकी गाड़ीमें रोशनी नहीं होती। जो लोग जोहानिसबर्गके अलावा ट्रान्सवालके और किसी शहरको जाना चाहें, उन्हें शिविर-व्यवस्थापकको इसकी सूचना और जिस मकानमें जाकर रहना है उसका विवरण देना पड़ता है। तब स्वास्थ्य-अधिकारी उस नगरके अधिकारीसे पत्र-व्यवहार करता है, जिसका नाम प्रार्थी बताता है; और यदि मकान रहने लायक और साफ-सुथरा प्रमाणित कर दिया जाता है तो शिविरसे बिलकुल चले जानेकी इजाजत दे दी जाती है। जो जोहानिसबर्गमें रहना चाहें उन्हें भी इसी ढर्रेका पालन करना होता है, और यदि बताया हुआ मकान स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा मंजूर कर लिया जाता है तो जानेका पास दे दिया जाता है। अगर किसी आदमीके पास जानेका पास न हो तो उसे शामके साढ़े आठ बजे या इससे पहले, शिविरमें हाजिरी देनी पड़ती है। ऐसा न करनेपर पहले अपराधके लिए उसे जुर्मानेका दण्ड दिया जा सकता है, जो १५ पौंडसे अधिक नहीं होगा; जुर्माना अदा न करनेपर तीन महीनेका कारावास दिया जा सकता है। दुबारा जुर्म करनेवालेपर ५० पौंडतक जुर्मानेकी या, जुर्माना न देनेपर, छः मास-तक सख्त कैदकी सजा दी जा सकती है। स्त्रियों और बच्चोंके सिवा और लोगोंको गत सोमवारसे खूराक देना बन्द कर दिया गया है। कामके नामपर उन्हें खुदाई या पत्थर फोड़नेमें लगाया जाता है, जिसकी मजदूरी २ शिलिंग रोज होती है और यदि मजदूर प्रथम श्रेणीका साबित हो तो वह बढ़ाकर ३ शिलिंग कर दी जाती है। लौटनेपर शिविर-निवासियोंकी जाँच की जाती है और तलाशी भी ली जाती है। यह थोड़ा या बहुत जेलका-सा जीवन है, जिसके योग्य ये लोग नहीं हैं, क्योंकि अधिकारियोंने स्वीकार किया है कि इनका व्यवहार उत्तम रहा है। यदि शिविर वास्तवमें आने-जानेके प्रतिबन्धोंसे मुक्त है तो कोई कारण दिखाई नहीं देता कि शिविरमें रहनेवाले एशियाइयों और जोहानिसबर्गमें रहनेवाले एशियाइयोंके बीच इतना तीव्र भेद किया जाये। अब तो शिविरका केवल एक ही काम होना चाहिए कि, जिन लोगोंको कहीं रहनेको जगह न मिले उन्हें आश्रय-स्थान दिया जाये। यह समझना कठिन है कि उन्हें अपने रहनेकी जगहें सूचित करने और अर्जियाँ देनेपर ऊपर बताये हुए तमाम कष्टप्रद क्रमसे निकलनेको क्यों मजबूर किया जाये। अवश्य ही, यदि अधिकारी निवास-स्थानोंकी पड़ताल करना चाहें तो लोगोंको उपर्युक्त पाबन्दियोंका शिकार बनाये बिना भी कर सकते हैं। यह एक अपराध है, और नहीं है तो होना चाहिए, कि कोई व्यक्ति ऐसे निवास-स्थानोंमें रहने लगे जो सफाईके नियमोंकी जरूरत पूरी न करते हों। और रैंड प्लेग-समितिको, जो गन्दगीकी हमेशा खोज करती रहती है, इस लायक होना चाहिए कि जो भारतीय गन्दे घरोंमें रहने लगें हों उनका पता लगा ले। परन्तु उसका प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रतापर ऐसे प्रतिबन्ध लगाना, जो आखिरकार तो नाजायज ही हैं, ठीक नहीं है। शिविरके बाहर भी ब्रिटिश भारतीयोंकी

स्थिति बहुत कठिन है। विटवाटर्सरैंड जिलेके बाहर कोई एशियाई तबतक सफर नहीं कर सकता जबतक उसके पास स्वास्थ्यका प्रमाणपत्र न हो। कई स्थानोंमें एशियाइयोंके लिए मंडीका उपयोग वर्जित है। पॉचेफस्ट्रूम तो ट्रान्सवालसे किसी भारतीयको अपने यहाँ आने ही नहीं देता। परिणाम यह है कि रेलवे-अधिकारी टिकट देनेसे ही इनकार कर देते हैं। १,६०० आदमियोंके बस्तीसे निकाल दिये जानेके कारण भारतीय व्यापारी और दूकानदार भारी कष्ट पा रहे हैं, क्योंकि उनमें से बहुतसे इन व्यापारियों और दूकानदारोंके कर्जदार हैं और अब वे अपना ऋण चुका नहीं सकते। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी बैठक आज यह विचार करनेको हुई थी कि भारतीयों और दूसरे एशियाइयोंपर नियन्त्रण रखनेके लिए और अधिकार माँगना और खास तौरपर काफिर बस्तियोंकी तरह ही भारतीय बस्तियोंपर भी पूरा नियन्त्रण रखना वांछनीय होगा या नहीं। स्पष्ट ही इसका उद्देश्य अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इनसेनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रिएशन ऑर्डिनेन्स) के अनुसार अस्वच्छ क्षेत्रके भीतर, या उसके ठीक पड़ोसमें, उपयुक्त स्थान तलाश कर देनेकी जिम्मेदारीसे बच निकलना है। इस सारी भारतीय-विरोधी प्रवृत्तिका क्या परिणाम होगा, यह अभीसे कोई नहीं कह सकता। समय ही बतायेगा कि अन्तमें न्यायकी विजय होती है या नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–४–१९०४

१३५. प्लेग

यद्यपि ट्रान्सवालमें प्लेग खतम हो रहा है, क्रूगर्सडॉर्पके एक खान-क्षेत्रमें कुछ बीमार मिले हैं। इससे प्रकट होता है कि अभीतक बहुत सचेत रहनेकी जरूरत बनी है। और यदि प्लेगकी जैसी दुःखद घटनाओंसे जरा भी सन्तोष ग्रहण करना उचित हो तो, ब्रिटिश भारतीयोंके सौभाग्यसे, क्रूगर्सडॉर्पकी घटनासे सिद्ध होता है कि प्लेग व्यक्तियोंका लिहाज नहीं करता और ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंको जिन असाधारण पाबन्दियोंका शिकार बनाया गया है वे गैरजरूरी हैं; क्योंकि जोहानिसबर्ग-खाससे बाहरकी घटनाएँ अधिकतर बतनियोंमें हुई हैं और उनमें यूरोपीय लोग भी शामिल हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह रोग खास तौरपर भारतीयोंमें ही फैला है। असलमें, मालूम होता है, प्लेगका आरम्भ खानोंमें हुआ और वह वहींसे लाया गया; क्योंकि भारतीय बस्तीमें पहले-पहल प्लेगकी जो घटनाएँ हुईं वे उन्हीं लोगों तक सीमित थीं जो खानोंमें काम करते थे। और शुरू-शुरूमें वह महज निमोनियावाला प्लेग था, यह तथ्य शायद खानोंके काम और प्लेगके बीच कुछ सम्बन्ध स्थापित करता है। कुछ भी हो, जिस केन्द्रीय तथ्यकी ओर हमने ध्यान आकृष्ट किया है और जिसे कभी नहीं भूलना चाहिए, यह है कि भारतीयोंको बिना किसी उचित कारणके प्लेग फैलानेका दोषी ठहराया जा रहा है। यह बात साफ तौरसे याद रखना जरूरी है, क्योंकि हमें बहुत डर है कि ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंपर अधिक और स्थायी कानूनी निर्योग्यताएँ थोपनेकी और इस मामलेमें भारत-सरकार और ट्रान्सवाल-सरकारके बीच इस समय चालू बातचीतपर रंग चढ़ानेकी कोशिश की जा सकती है। प्लेग फैलनेका कारण अब उस पत्र-व्यवहारमें[1] साफ-साफ जाहिर कर दिया गया है, जो हमने किसी पिछले सप्ताहमें प्रकाशित किया था; और उससे भी, जो हम इस अंकमें प्रकाशित कर रहे हैं। जोहानिसबर्गमें

१. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी ११, १५ और २०, १९०४।

प्लेग फैलनेका असली और मुख्य कारण था — जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी ब्योरेकी बातोंपर ध्यान देनेकी पूर्ण असमर्थता। नगर-परिषद द्वारा प्रकाशित आँकड़ोसे स्पष्ट है कि मार्चमें निमोनियाके कारण मृत्युसंख्या इतने असाधारण रूपमें अधिक थी कि इस जबरदस्त हकीकतके बावजूद नगर-परिषदकी अकर्मण्यताका कारण बिलकुल समझमें नही आता। हाँ, अगर सारी परिषदको यह विश्वास रहा हो कि जोहानिसबर्गमे प्लेग कभी हो ही नही सकता, तो बात दूसरी है। जैसी निश्चित और जल्दीकी चेतावनियाँ बिना माँगे जोहानिसबर्गमे अधिकारियोको मिली वैसी अक्सर नही मिलती। स्वच्छताके प्रारम्भिक सिद्धान्तोंपर ध्यान देकर प्लेगको रोकना नगर-परिषदके लिए सदा सम्भव था, फिर भी उसने लगभग अठारह महीनेतक कागजपर बडी-बड़ी योजनाएँ बनानेके सिवा कुछ नही किया। इसलिए अब स्वास्थ्य-समितिका यह कहना थोथे उपहासके सिवा कुछ नही है कि उससे जो कुछ हो सकता था वह सब उसने किया और जनताके विरोधके कारण अस्वच्छ क्षेत्रके बजाय कोई नया स्थान निश्चित करना उसके लिए सम्भव नही था — मानो ऐसे किसी विरोधके कारण सारे समाजके स्वास्थ्य और प्राणोको खतरेमें डालना, जैसा कि बेशक उसने डाला, उचित हो सकता था। ध्यान रखना चाहिए कि परिषदके अस्वच्छ क्षेत्रको अपने कब्जेमे लेनेके पाँच महीने बाद प्लेग फैला था। तब प्रश्न उठता है: दखल करनेसे पहले परिषदने स्थानके चुनावके बारेमे लोक-भावनाको क्यों नही टटोला? जब वह ऐसा नही कर सकी, तब केवल कानूनी अधिकार करके ही सन्तुष्ट क्यो नही हो गई? जो लोग मकान-मालिकोका काम करते रहनेके लिए तैयार थे उन्हे उसने वैसा क्यो नही करते रहने दिया? इस प्रस्तावको अस्वीकार करनेके बाद, परिषदने उस जायदादसे किराया वसूल करना क्यो नही बन्द किया, जिसे खुद उसने मनुष्योके रहनेके अयोग्य करार दे दिया था और जहाँ उसने या तो, जैसा हम कहेगे, घोर लापरवाहीके कारण लोगोको रहने दिया या, जैसा वह कहेगी, इसलिए रहने दिया कि जनता अस्वच्छ क्षेत्रके बजाय परिषदके चुने हुए दूसरे स्थानके विरुद्ध थी? परिषदने, उस क्षेत्रके प्रत्येक किरायेदारकी मकान-मालिक बन बैठने और उन सबसे आमदनी करनेका निर्णय कर चुकनेके बाद, वहाँ इतनी भीड़भाड और ऐसी भयकर गन्दगी क्यो की? एक भी नये किरायेदारको उसने उस इलाकेमे आकर रहने क्यो दिया? भारतीय बस्तीमे काफिर क्यो भर दिये गये? बाड़ोमे कूडा-कचरा क्यो पडा रहने दिया गया? फरवरीमे श्री गाधीने डॉ० पोर्टरको पत्र लिखकर जो बडा ही माकूल सुझाव दिया था, उसे समय रहते हुए भी, परिषदने क्यो नहीं स्वीकार किया? हमारी रायमे, इन बहुत ही उचित प्रश्नोके निर्णयात्मक उत्तर मिलने चाहिए। हम ऐसी कोई मिसाल याद नही कर पाते, जिसमे कोई सार्वजनिक सस्था भूलपर-भूल करती गई हो, पिछले अनुभवसे लाभ उठानेसे इनकार करती रही हो और स्वाभाविक निष्कर्षो तथा अपने ही प्रस्तावोको ध्यानमे रखनेसे इनकार करती रही हो। नगर-परिषद गन्दगीकी बिनापर उक्त क्षेत्रपर दखल करनेका अधिकार माँगनेके लिए लॉर्ड मिलनरके पास गई थी और उसने वहाँ बहुत अधिक गन्दगी बताते हुए कहा था कि व्यक्तिगत सम्पत्तिको पूरी तरह कब्जेमे लेनेके सिवा और किसी मार्गसे बुराईका इलाज ही नही हो सकता। क्या यह केवल आँखोमे धूल झोकना था? अगर नही, तो अवश्य ही उसका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि दखल करनेका अधिकार पानेके बाद वह सबसे पहला कदम इलाकेके लोगोको हटाकर अधिक आरोग्यप्रद मकानोमे रखनेका उठाती। दुर्भाग्यवश भारतीय बस्तीके निवासियोको हटाकर क्लिपस्प्रूटमे एक अस्थायी शिविरमे ले जानेके सिवा हमे अब भी किसी स्थायी स्थानके चुनावकी ओर प्रगतिका कोई चिह्न दिखाई नही देता। उपर्युक्त बातोसे यह अवश्य स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जोहानिसबर्गमे पहले-पहल भारतीयोमे प्लेग फैलनेका कारण असाधारण परिस्थितियाँ थी, जिनके लिए केवल परिषद ही जिम्मेदार है। जैसी सफाई रखना

गरीब तबकेके भारतीय जानते हैं, वैसी सफाई रखनेकी सत्ता उनसे २६ सितम्बरको छीन ली गई थी। यह इतनी बुरी बात थी कि उन्होंने इसके विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई और २६ सितम्बरके बाद बस्तीमें नगर-परिषदकी सीधी देखरेख और नियन्त्रणमें जो भीड़-भाड़ हुई वह ऐसी थी जिसके वे आदी नहीं थे और यद्यपि वे खुद उससे बच निकलना चाहते थे, फिर भी परिषदने उनके लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया, इसलिए वे लाचार थे। परिषद सचमुच प्लेग फैलनेका पता लगनेके बाद चेती — इसपर यहाँ विचार करना अप्रासंगिक है, जब हम प्रथम कारणपर विचार कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–४–१९०४

१३६. क्रूगर्सडॉर्प और ब्रिटिश भारतीय

क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदने सामान्य प्रयोजन-समिति (जनरल परपज़ेज कमिटी)की इस सिफारिशको मंजूर कर लिया है कि किसी रंगदार व्यक्तिको रातके ९ बजेसे ४ बजेके बीचके समयमें घरसे बाहर निकलनेकी इजाजत नहीं होनी चाहिए और न ऐसे किसी व्यक्तिको पक्की या कच्ची पैदल-पटरीपर चलने, जाने या रहनेकी आज्ञा ही होनी चाहिए। "रंगदार व्यक्ति" संज्ञाके प्रयोगसे क्रूगर्सडॉर्प नगरपालिकाका मतलब ब्रिटिश भारतीयोंसे ही हो सकता है; क्योंकि वतनियोंके अतिरिक्त क्रूगर्सडॉर्पमें एकमात्र रंगदार लोग शायद मुट्ठीभर ब्रिटिश भारतीय ही हैं। हम मानते हैं कि यह सिफारिश ट्रान्सवालमें प्लेग फैलनेका एक परिणाम है। नगरपालिकाके तत्सम्बन्धी कार्य-विवरणसे, जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं, मालूम होता है कि इस संस्थाकी रायमें प्लेगका प्रकोप जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी गफलतसे हुआ। फिर भी परिषदके सदस्य अपराधी पक्षको तो दण्ड देना नहीं चाहते, जो निश्चय ही उनके लिए बहुत बलवान हैं; परन्तु निर्दोषोंको सजा देना चाहते हैं, जो सर्वथा शक्तिहीन हैं। हम चिन्ताके साथ देखेंगे कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरका इस सिफारिशपर क्या खयाल होता है। और इस बीच क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि ऐसे स्पष्ट रूपमें अन्यायपूर्ण नियमपर परमश्रेष्ठकी स्वीकृति नहीं मिलेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–४–१९०४

१३७. प्रिटोरिया नगर-परिषद और ब्रिटिश भारतीय

प्रिटोरियाकी नगर-परिषद वतनी बस्तियोंपर पूरा नियन्त्रण चाहती है। जाहिरा तौरपर यह प्रस्ताव बिलकुल निर्दोष मालूम होता है और हम नहीं जानते कि नगर-परिषदके अधीन भारतीयोंकी दशा पहलेसे बहुत बुरी हो जायेगी। साथ ही, इस समय एक केन्द्रीय सत्ता है और उसकी कठोरतामें भी एक-सी कार्रवाईकी सम्भावना है। लेकिन प्रिटोरियाकी नगर-परिषदके प्रस्तावपर यदि अमल हुआ, तो भारतीय न सिर्फ पूरी तरह उसकी दयापर निर्भर हो जायेंगे, बल्कि जो नियम वतनियोंपर लागू होते हैं उन सबके भी शिकार होंगे। यह हो सकता है कि वतनी बस्तियोंके नियन्त्रणके लिए जो नियम बनाये गये हैं वे आवश्यक हों, क्योंकि सभी या लगभग सभी वतनी मजदूर-वर्गके होते हैं; लेकिन ब्रिटिश भारतीयोंके लिए वे बहुत कष्टप्रद होंगे। इस प्रस्तावका उपनिवेश-सचिवने यह उत्तर भेजा है:

> **मुझे आपको सूचित करनेका सम्मान प्राप्त है कि चूँकि दोनों बस्तियाँ नगर-परिषदके अधिकारक्षेत्रमें स्थित हैं, इसलिए उनपर परिषदका उतना ही नियन्त्रण है, जितना कि नगरके किसी और भागपर। सरकार कोई असाधारण नियन्त्रण नहीं रखती; जहाँतक सिर्फ एशियाई बस्तीका सम्बन्ध है, वह मकान-मालिक है, जो विभिन्न अर्जदारोंके बीच बाड़ोंका बँटवारा करती है। मुझे विश्वास है, आप जानते होंगे कि ये पट्टे इस शर्त पर दिये जाते हैं कि पट्टेदार नगरपालिकाके सब उपनियमोंका पालन करेंगे और नगर-पालिकाके सब कर अदा करेंगे। जहाँतक केपकी बस्तीका सम्बन्ध है, मुझे पता नहीं है कि किस सिद्धान्तपर बाड़ोंके पट्टे दिये जाते हैं और मेरा सुझाव है कि आप इस विषयमें वतनी मामलोंके विभागसे लिखा-पढ़ी करें। यह अर्जी, कि एशियाई और केपवालोंकी बस्तियोंसे होनेवाली आमदनी नगरपालिकाको हस्तान्तरित कर दी जाये, मैंने अर्थसचिवके पास विचारार्थ भेज दी है और उनसे कहा है कि वे इस विषयमें सीधे आपको लिखें।**

नगर-परिषदने प्रत्युत्तरमें कहा है कि वह भारतीय बस्ती और केपकी बस्तीका उन्हीं शर्तोंपर नियन्त्रण करना चाहती है, जो वतनी बस्तीके लिए हैं। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि नगर-परिषदको वतनी बस्तियोंके बारेमें नियम बनानेका विशेष अधिकार प्राप्त है और स्पष्टतः, ठीक वही अधिकार वह भारतीयोंके सम्बन्धमें चाहती है। जब नगर-निगम अध्यादेश पास हुआ तब यह मुद्दा उठाया गया था, परन्तु सरकारने इसे स्वीकार न करनेका फैसला किया था। और जबतक कानूनकी किताबमें १८८५का कानून ३ मौजूद है तबतक यह समझना कठिन है कि विशेष कानून बनाये बिना नगर-परिषदको वांछित अधिकार कैसे मिल सकता है। एक ओर ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे १८८५ के कानून ३ पर घोर आपत्ति की जा रही है, और हमारे खयालमें वह ठीक ही है; दूसरी ओर उसके पूरी तरह लागू होनेसे प्रिटोरिया नगर-परिषद और ट्रान्सवालकी अन्य नगर-परिषदोंको भी सन्तोष नहीं होता। लॉर्ड मिलनर बखूबी कह सकते हैं कि वे दुतर्फा गोलाबारीके बीचमें हैं। हम तो सिर्फ इतनी आशा ही कर सकते हैं कि वे उन नगर-परिषदों और दूसरे भारतीय-विरोधी महाशयोंके सामने घुटने नहीं टेकेंगे जो, अगर उनका वश चले तो, ट्रान्सवालसे सारी ब्रिटिश परम्पराओंको मिटा कर ही रहेंगे और प्रिटोरियामें ब्रिटिश झंडे यूनियन जैकको केवल थोथा दिखावा ही रह जाने देंगे और

उससे कुछ काम लेंगे तो इतना ही कि वह स्वशासित जनताके अधिकारोंकी आड़में तमाम ब्रिटिश भारतीय-विरोधी कार्रवाइयोंके लिए एक पनाह बन जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-४-१९०४

१३८. प्लेगसे एक सबक

प्लेगने ब्रिटिश भारतीयोंको ऐसे पाठ सिखाये हैं जो, हमें विश्वास है, भुलाये नहीं जायेंगे; और आशा है, समाज उनसे लाभ उठायेगा। भारतमें एक आम कहावत है कि मनुष्यके लिए सुयश खोनेसे लाखों रुपया खो देना अच्छा है। इस कहावतसे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक बार जब आदमी बदनाम हो जाता है तब उस बदनामीका असर मिटाना और लोगोंकी नजरमें फिरसे अच्छा बनना उसके लिए कठिन हो जाता है। जो व्यक्तियोंके लिए सही है, वह समुदायोंके लिए भी उतना ही सही है। फ्रान्सीसी लोग कला-प्रियताके लिए प्रसिद्ध हैं, अंग्रेज व्यक्तिगत शौर्यके लिए, जर्मन कर्मठताके लिए, रूसी मितव्ययिताके लिए, और दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेश स्वर्ण-लिप्साके लिए; इसी तरह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय, सही या गलत, आरोग्य-शास्त्रके प्रथम सिद्धान्तोंके अज्ञान और गन्देपनके लिए बदनाम हो गये हैं। फलतः जिन लोगोंके विरुद्ध यह आरोप जरा भी साबित नहीं किया जा सकता, उन्हें अक्सर केवल इस कारण कष्ट भोगने पड़ते हैं कि वे भारतीय हैं। और कोई बात हो भी नहीं सकती थी। यह ट्रान्सवालमें प्लेग फैलनेके कारण उदाहरणोंसे सिद्ध किया जा चुका है। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं जिनके लिए, यदि शान्ति और न्याय-पूर्वक विचार किया जाये तो, कोई कारण नहीं मिलेगा। ट्रान्सवालमें भूतपूर्व भारतीय बस्तीके निवासियोंके साथ वस्तुतः कैदियोंका-सा बर्ताव किया जा रहा है। बस्तीमें जो कुत्ते, बिल्ली और अन्य पशु पाये गये, उन्हें भी मार डाला गया है, क्योंकि कहीं भारतीयोंके संसर्गसे उनमें प्लेगके कीटाणु न पहुँच गये हों! वहाँ विभिन्न नगरोंके स्थानिक निकायोंने भारतीयोंके खिलाफ कँटीले तारोंकी बाढ़ खड़ी करनेके नियम बना दिये हैं। ऑरेंज रिवर उपनिवेशने ट्रान्सवालसे आनेवाले भारतीयोंके लिए अपने द्वार बिलकुल बन्द कर दिये हैं। केप और नेटाल ऐसी कड़ी पाबन्दियोंके साथ प्रवेश करने देते हैं, जिनका कोई वैज्ञानिक अर्थ नहीं है। उदाहरणार्थ, कोई भारतीय भले ही किसी काफिरके साथ एक ही डिब्बेमें सफर कर रहा हो, ज्यों ही उन मुसा-फिरोंकी गाड़ी नेटालकी सीमापर पहुँचती है, त्यों ही भारतीयको तो उपनिवेशमें प्रवेश करनेसे पहले पाँच दिनतक सूतक (क्वारंटीन) में रहनेको मजबूर किया जाता है, परन्तु काफिरको आने देनेमें कोई रोकटोक नहीं की जाती।

ये नियम बेशक कठोर हैं, तो भी हमें इनसे क्रोध नहीं आना चाहिए। लेकिन हमें अपना आचरण ऐसा व्यवस्थित करना चाहिए कि इनकी पुनरावृत्ति न हो। और इस दृष्टिसे हमें अपने घरोंको अक्षरशः और आलंकारिक रूपमें भी व्यवस्थित करनेमें लग जाना चाहिए। हममें से छोटेसे-छोटेको भी सफाई और तन्दुरुस्तीका मूल्य जानना चाहिए। हमारे बीचसे अधिक भीड़ करनेकी आदत मिट जानी चाहिए। हमें धूप और हवाको मुक्त रूपसे अन्दर आने देना चाहिए। संक्षेपमें, हमें यह अंग्रेजी कहावत हृदयांकित कर लेनी चाहिए कि भगवद्भक्तिके बाद स्वच्छताका ही दर्जा है।

और उसके बाद क्या? हम यह वादा नहीं करते कि हम पूर्वग्रहके पाशसे तुरन्त ही मुक्त हो जायेंगे। नेकनामी एक बार चली जाती है तो आसानीसे वापस नहीं मिलती। सुयशकी हानि

मदद करके हम अपनी राजभक्ति प्रकट करेंगे, तभी प्लेगके पापसे हमें छुटकारा मिलेगा। और यद्यपि हमें पूरी नसीहत मिल चुकी है, फिर भी ऐसा नही लगता कि हमने उससे कुछ भी सार ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ, लोग शराब पीनेके लिए शिविरमें भी शहरसे बोतलें ले जाते है। शिविरके अधीक्षकको ऐसा शक हो जानेसे उसकी जाँचके लिए आज हर रोज आदमीको रातके समय शिविर-स्टेशनके सामने कैदीकी तरह एक कतारमें खड़े होकर अनुचित चौकसीके अधीन होना पडता है। एकके कारण सबको दुःख सहन करना पडता है। यही हाल दूसरी सब बातोमे है। पॉच-पचास लोगोंको रहनेके लिए घर मिलेंगे। पाँच-पचास आदमी नेटालमे चले जायें, लेकिन क्या इससे छ. हजार भारतीय भाइयोंका दुःख दूर हो जायेगा?

डॉक्टर नेटाल जानेवाले लोगोंकी जॉच बहुत बारीकीसे करते है। और कुछ लोगोंका तो यह कहना है कि स्त्रियोंकी जॉच अनुचित रीतिसे, लाजकी मर्यादा न रखते हुए, की जाती है। लोगोका यह कहना बिलकुल बेबुनियाद है। लोग जो चाहे, कहे, उन्हे कोई रोक नही सकता। समूचे गाँवका मुँह तोपा नही जा सकता। ऐसा मालूम होता है कि रजको गज बनाना, यह तो भारतीयोको कुदरतसे मिली एक देन है। कोई भी आदमी सच क्या है और झूठ क्या है, इसकी जॉच किये बिना कानसे सुनी बातको सच मान लेता है।

आखिर हमे यह तो कबूल करना ही होगा कि शिविर आराममे सोनेकी जगह नहीं है, वह एक जंगल है, और वहाँ लोगोंका दुःखी होना स्वाभाविक है, क्योंकि तम्बूमें रहनेसे पेचिशकी बीमारी एक मामूली बीमारी बन गई है। और अगर लोगोको रहनेके लिए अच्छी जगह नही मिलेगी, तो अनुमान यह होता है कि लोग अधिक दुःखी होंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–४–१९०४

१४०. ईस्ट लन्दन[1]

ईस्ट लंदनकी नगरपालिका भारतीयोके विरुद्ध लड़ाईमें सलग्न है और अनेक सम्पन्न भारतीयोको सूचना भेज दी गई है कि वे अपने कब्जेके मकान खाली कर दें और पृथक बस्तीमें चले जाये। इन सूचनाओका उद्देश्य भारतीयोंको केवल जलील करना और उन्हे प्रमाणपत्र लेनेको विवश करके धीरे-धीरे शहरसे बाहर निकाल देना है। नगरपालिकाके अधिकार बहुत व्यापक है। १८९५ के कानून १२ की धारा ५, जो ईस्ट लन्दनकी नगरपालिका और शासनकी व्यवस्था करनेवाले कानूनोमे संशोधन और वृद्धि करनेके लिए है, ऐसी बातें करनेकी सत्ता देती है जिनमे ये भी है:

१. इस वक्तव्यकी एक प्रति भारतमन्त्रीके पास भेजते हुए दादाभाई नौरोजीने अपने २५ मईके पत्रमें लिखा था: "मेरे पत्रप्रेषकने सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीके लोकसभामें २० अप्रैलको किये गये प्रश्नोंका हवाला देते हुए लिखा है कि जिन दो मुद्दोंपर ध्यान रखना है वे ये हैं:

(१) यह कानून वस्तुतः भविष्यके अनुमानके आधारपर पास किया गया था, क्योंकि सन १८९५ में भारतीयोंकी आबादी बहुत थोड़ी थी।

(२) यह कानून पहले कभी लागू नहीं किया गया था और यह भारतीयोंकी इच्छापर छोड़ दिया गया था कि वे बस्तियोंमें रहें या न रहें।"

(इंडिया ऑफिस, ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: १२३६)

वतनी और एशियाइयोंके रहनेके लिए बस्तियोंके रूपमें नगरपालिकाके भाग निर्दिष्ट करना और अलग कर देना, और समय-समयपर बदलना और इन बस्तियोंको खतम कर देना। जिन शर्तोंपर एशियाई और वतनी इन बस्तियोंमें रह सकते हैं और इस प्रकार रहनेके लिए उन्हें जो शुल्क, किराया और झोंपड़ी-कर देना है उनकी व्यवस्था करना और ऐसे निवासस्थानोंकी और उनमें कोई घोड़े, मवेशी, बैल, भेड़ें या चीजें हों तो उनकी रजिस्ट्रीका इन्तजाम करना; और पशुओंकी चराईके लिए आम चरागाहका उपयोग विनियमित या निषिद्ध करना। इन बस्तियोंके लिए अधीक्षकों और मुखियोंकी नियुक्तिका प्रबन्ध करना और उनके कर्त्तव्यों और अधिकारोंका विनियमन करना और इन अधिकारियोंके कर्त्तव्यपालनमें बाधा डाली जाये तो उसे रोकना। इन बस्तियोंके भीतर दूकानों, मंडियों और व्यापारका विनियमन करना, इजाजत देना या मनाही करना। इन बस्तियोंमें रहनेके लिए वतनियों और एशियाइयोंको परवाने देना या न देना और उस प्रणालीका विनियमन करना, जिसके अनुसार उन लोगोंको हटाया जा सके जो रहनेके हकदार न हों। और उन सीमाओंको मुकर्रर करना और समय-समयपर बदलना जिनके भीतर वतनियों और एशियाइयोंके लिए अपने मालिक या निरीक्षक या पुलिसके कप्तान या बस्तीके व्यवस्थापकके लिखित परवाने या प्रमाणपत्रके बिना उन सीमाओंके भीतरके रास्तों, सार्वजनिक स्थानों या आम सड़कोंपर जाना जायज नहीं होगा; और सड़कों या खुली जगहों या उनकी पक्की पैदल-पटरियोंको नियुक्त करना जिनपर वतनी और एशियाई चल न सकें या जा न सकें। नदियों और समुद्रके उन भागोंका विनियमन और पृथक्करण करना, जहाँ वतनी और एशियाई स्नान न कर सकें।

इस असाधारण धाराके नियममें कहा गया है:

वस्ती, कर्फ्यू और पैदल-पटरीके व्यवस्था-सम्बन्धी विनियम नगरपालिकाकी सीमामें स्थित उस भू-सम्पत्तिके रजिस्टर्ड स्वामी या अधिकारीपर लागू नहीं होंगे, जिसका मूल्य नगरपालिकाके मतलबके लिए ७५ पौंडसे कम न हो; और यह शर्त होगी कि इस आशयका एक प्रमाणपत्र टाउन क्लार्कसे प्राप्त कर लिया गया हो, और यह प्रमाणपत्र मुफ्त दिया जायेगा।

इस प्रकार, इन सूचनाओंका उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश भारतीयोंको ऐसे प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके लिए बाध्य किया जाये। स्वभावत: जो लोग समझते हैं कि ब्रिटिश प्रजाजन होनेके नाते उन्हें नागरिकताके वही अधिकार होने चाहिए जो दूसरोंको हैं, वे अपनी स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप किया जानेका विरोध करते हैं और प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके बारेमें प्रबल आपत्ति करते हैं। सर मंचरजीने, जो मानवीय भावनाओंसे प्रेरित होकर दक्षिण आफ्रिका निवासी ब्रिटिश भारतीयोंकी सेवा कर रहे हैं, श्री लिटिलटनसे सहायताकी प्रार्थना की है और अब इस मामलेकी स्थानीय सरकार द्वारा जाँच की जा रही है। हमें विश्वास है कि जाँचके परिणाम-स्वरूप ईस्ट लन्दनमें बसे भारतीयोंके साथ पूरा न्याय होगा और उन्हें पृथक बस्तियोंके बाहर रह सकनेके लिए परवाने लेकर चलनेका अपमान नहीं सहना पड़ेगा। हमें मालूम हुआ है कि जिन निवासियोंको मकान छोड़नेकी सूचनाएँ मिली हैं, उनके मकान हर तरहसे अच्छे और साफ-सुथरी हालतमें हैं। इसके अतिरिक्त ईस्ट लन्दनकी भारतीय आबादी बहुत थोड़ी है और हमें यह परले सिरेकी

वेइन्साफी मालूम होती है कि किसी भी माकूल वजहके विना मुट्ठीभर शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले निवासियोंको तंग किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४ और इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १२३६।

१४१. केपका प्रवासी अधिनियम

डॉ० ग्रेगरीने केपके प्रवासी-अधिनियमके अमलपर जो रिपोर्ट पेश की है उसका सार, जैसा कि *स्टारमें* प्रकाशित हुआ है, हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। वह पढ़नेमें एक दिलचस्प चीज है। उसके अनुसार पिछले सालके मई और जून मासोंमें विदेशी प्रवासियोंकी संख्या २,०३३ थी और अक्तूबरसे दिसम्बरतकके तीन महीनोंमें ४,७१५ थी। ब्रिटिश यात्रियों और विदेशी प्रवासियोंके बीच अनुपात मई और जूनमें २०.२, जुलाईसे सितम्बरके बीच २२.७ और अक्तूबरसे दिसम्बरके बीच २५.२ प्रतिशत था और डॉ० ग्रेगरीका खयाल है कि, यह विचार करनेपर ब्रिटिशोंका प्रवास बिलकुल भिन्न प्रकारका है, यह ऊँचा अनुपात भी काफी ऊँचा नहीं ठहरता। रिपोर्टके अनुसार, ४६,९३३ ब्रिटिश यात्रियोंमें से ३,९४७ उपनिवेशके नागरिक बन गये थे, ११,०९३ स्त्रियाँ थीं, ७,२०३ नाबालिग बच्चे थे और ६,९६९ पहले दर्जेके मुसाफिर थे। इसलिए, यदि केवल वास्तविक ब्रिटिश प्रवासियोंका ही विचार किया जाये तो उनका अनुपात इससे बहुत ऊँचा होगा। इन विदेशियोंमें से बहुत बड़ी संख्या रूसियों और यहूदियोंकी है जो, रिपोर्ट बताती है, अधिकतर महत्त्वपूर्ण बातोंमें असन्तोषप्रद हैं — क्योंकि उनके पास गुजर-बसरकी व्यवस्था नहीं है; वे अल्पशिक्षित हैं, यहूदी भाषा छोड़कर और कोई भाषा न बोल सकते हैं और न समझ ही सकते हैं; काठीके गरीब हैं; अक्सर अपनी आदतों, अपने शरीर और अपने कपड़ोंकी दृष्टिसे गन्दे पाये जाते हैं; और उनकी कही बातें बहुत ही अविश्वसनीय होती हैं। डॉ० ग्रेगरीने यह प्रश्न भी उठाया है कि यदि यहूदी भाषा कोई भाषा है भी, तो उसे यूरोपीय भाषा समझा जाये या नहीं। उनका सुझाव है कि यह सिद्ध करनेका भार कि वह एक यूरोपीय भाषा है, स्वयं प्रवासियोंपर डाला जाना चाहिए। इस तरह, जैसी हमने अबतक आशा की है, दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय उपनिवेशी ज्यों ही भारतीयोंसे निपट चुकेंगे त्यों ही यूरोपीय प्रवासियोंके विरुद्ध कार्रवाई शुरू कर देंगे; और जब यूरोपीय विदेशियोंसे निपट चुकेंगे तब, जैसा कि आस्ट्रेलियामें अंग्रेज खनकोंके साथ हुआ, गरीब अंग्रेजोंके प्रति विरोध खड़ा किया जायेगा। हमारी दृष्टिसे तो यह सारी भावना ही बुरी है और जहाँ अपराधियों और गम्भीर रोगोंसे पीड़ित लोगोंके प्रवासपर पाबन्दी लगानेका कुछ औचित्य हो सकता है, वहाँ प्रतिबन्ध लगानेकी सत्ता एक ऐसी सत्ता है जिसे बहुत ही नरमीसे साथ काममें लाना चाहिए। हम देखेंगे कि केपकी विधान परिषद डॉ० ग्रेगरीके सुझावोंका कैसा स्वागत करती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१४२. क्रूगर्सडॉर्पकी भारतीय बस्ती

क्रूगर्सडॉर्पकी लोक-स्वास्थ्य समितिकी रिपोर्टसे विदित होता है — जिसके लिए हम अपने सहयोगी *क्रूगर्सडॉर्प स्टैंडर्डके* ऋणी हैं — कि नगर-परिषदने अब भारतीय बस्तीके मकानोंकी बेदखली न करानेका फैसला किया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि परिषदके अपने ही मूल्य-निर्धारकने उन मकानोंकी कीमत नगर-परिषदकी लगाई कीमतसे अधिक बताई है; और श्री बार्नेटने, जिन्होंने भारतीयोंकी तरफसे मूल्यांकन किया है, और भी ज्यादा मूल्य बताया है। इसलिए जो मकान कुछ ही दिन पहलेतक "लज्जाके योग्य अस्वच्छ" और नगरके सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरनाक माने जाते थे, वे अब अचानक वैसे नहीं रहे और अब उन्हें जहाँ हैं वहीं रहने दिया जायेगा। इसलिए यह निरा रुपयेका सवाल है। परन्तु, यद्यपि अब उनको ब्रिटिश भारतीयोंकी जायदाद बना रहने दिया जायेगा और नष्ट नहीं किया जायेगा, फिर भी नगर-परिषदने निर्णय किया है कि भारतीय उनमें फिर तबतक नहीं रह सकेंगे जबतक वे उन्हें नगरके निर्माण-सम्बन्धी नियमोंके अनुसार न बना लें। हमें नहीं मालूम कि इसका क्या अर्थ है। अगर मतलब यह है कि भारतीय उन मकानोंको गिराकर नये सिरेसे बनायें तो अवश्य ही नगर-परिषदके लिए उनको एक धेला भी मुआवजेमें दिये बिना उनकी सम्पत्तिसे वंचित कर देनेका यह एक आसान तरीका है इस प्रकार अनुचित साधनोंसे काम बना लेना न्यायपूर्ण होगा या नहीं, इससे स्पष्टतः नगर-परिषदका कोई वास्ता नहीं। किन्तु नगर-परिषदके निर्णयसे एक गम्भीर प्रश्न पैदा होता है: ये मकान गन्दे हैं, तो वास्तवमें कहाँतक गन्दी हालतमें हैं? परिवर्तनों या सुधारोंकी किस हदतक जरूरत है, और भारतीयोंपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, उन्हें लगानेका, आम तौरपर, नगर-परिषदको क्या अधिकार है? क्योंकि, हमें मालूम हुआ है कि सम्पत्तिसे वंचित किये गये भारतीयोंको अब भी नगरसे बहुत दूरके स्थानपर तम्बुओंमें रहनेको मजबूर किया जा रहा है। लेकिन चूंकि क्रूगर्सडॉर्पमें प्लेग बिलकुल नहीं है, और आम तौरपर ट्रान्सवालमें भी वह मिट गया है, इसलिए हमें आशा है कि यह विषम स्थिति अब खतम कर दी जायेगी, और भारतीयोंको अपने मकानोंमें फिर रहने दिया जायेगा, और वह नौबत न आने दी जायेगी कि नगर-परिषदने स्पष्ट ही जो मनमाना तरीका अपनाया है उसे अपनानेके अधिकारको किसी कानूनी अदालतमें चुनौती दी जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-५-१९०४

१४३. ट्रान्सवालमें परवानोंका मामला

ब्रिटिश भारतीयोंको व्यापारिक परवाने देने सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई हो चुकी और, जैसी कि आशा की थी, निर्णय सुरक्षित रखा गया है। दोनों ओर बड़ेसे-बड़े वकील रखे गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे सर्वश्री लियोनार्ड, एसेलेन, ग्रेगरोव्स्की और डक्सबर्ग थे; ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे सर्वश्री वार्ड, मैथ्यूज और बर्न्स ब्रेग नियुक्त थे। मुख्य प्रश्न "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेका था। ब्रिटिश भारतीयोंका कहना था कि सरकार द्वारा नियत की गई बस्तियों अथवा विशेष गलियोंमें ही सीमित "निवास" में व्यापार शामिल नहीं है — खास तौरसे इसलिए कि कानूनके अनुसार बस्तियोंमें रहनेकी पाबन्दी केवल सफाईके उद्देश्यसे लगाई गई है। इसके विपरीत, सरकारकी दलील यह थी कि "निवास" में व्यापार भी शामिल है, खास तौरसे इस बिनापर कि *तैयब* बनाम *लीड्स*[1] मुकदमेमें भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके उच्च न्यायालयने इस शब्दका यही अर्थ किया था। याद रखना चाहिए कि वह फैसला सर्वसम्मत नहीं था। यह भाग्यकी विडम्बना है कि जब भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयके सामने उस मामलेमें बहस हुई थी तब न्यायाधीशोंके सामने ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि उपस्थित थे और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके कथनका समर्थन करनेकी कोशिश की थी; परन्तु, अब समय बदल गया है और साथ ही ब्रिटिश सरकार भी बदल गई है। अब वह उसी मंचपर है, जिसपर श्री क्रूगरकी सरकार थी। ब्रिटिश सरकारकी माँग है कि मामला खारिज कर दिया जाये और खर्च वादियोंको देना पड़े। भारतीयोंके लिए मामला अत्यन्त महत्त्वका है, असलमें जिन्दगी और मौतका है, और यह शुभ है कि वे अपनी ओरसे सबसे बड़े कानून-पण्डितोंको खड़ा करनेमें समर्थ हो गये हैं। इसलिए, अब यदि उन्हें मुकदमेमें हारना ही पड़ा तो उसका कारण सर्वोत्तम कानूनी सलाहका अभाव नही होगा। इस समय ट्रान्सवालमें बड़ा अनुकूल अवसर है। विधानका जो प्रश्न भूतपूर्व उच्च न्यायालयके सामने नहीं उठाया जा सका था, उसे अब भारतीयोंकी ओरसे श्री लियोनार्डने निर्भीकताके साथ उठा दिया है। सर रिचर्ड सॉलोमनने खुद स्वीकार किया है कि वे गणराज्यके न्यायाधीशोंके फैसलेको समझ नहीं सके। इसलिए भारतीयोंके पक्षमें बहुत कुछ है, और हम आशा करें कि निर्णय ऐसा होगा, जिससे यह दुःखदायी सवाल हमेशाके लिए निपट जायेगा — और ऐसे ढंगसे कि ट्रान्सवालके सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय व्यापारी फिरसे स्वच्छन्द होकर साँस ले सकेंगे। लेकिन अगर ब्रिटिश न्यायाधीश अपनेको पिछले उच्च न्यायालयके बहुमतके निर्णयसे बँधा हुआ समझें, तो ब्रिटिश भारतीयोंको निराशामें भी एक मौका और है; अर्थात् वे ब्रिटिश साम्राज्यकी सर्वोच्च अदालत — सम्राटकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) में अपील कर सकते हैं। आशा है कि इस तरहका कदम गैर-जरूरी होगा, लेकिन अगर दुर्भाग्यसे अनिवार्य हो गया, तो हमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश भारतीय पीछे न हटकर मामलेको अन्ततक ले जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १०।

१४४. नेटालमें प्लेग फैला तो?

मैकर्ईवानके मकान और यूनियन कैंसिल दफ्तरके बीच पॉइंटके गृह-समूह (ब्लॉक) में चूहे मरते पाये गये हैं। कहा जाता है कि वे प्लेगसे मरे हैं। अधिकारियोंने नेटालमें प्लेग न फैलने देनेके लिए तत्परतासे कार्रवाई की है और हम सच्चे दिलसे आशा करते हैं कि उनके प्रयत्न सफल होंगे। लेकिन अगर प्लेग फैला तो भारतीय समाजके लिए यह एक दुर्भाग्य होगा। वह ट्रान्सवालमें इस रोगके आक्रमणके परिणामसे मुक्त होनेके लिए संघर्ष कर रहा है और ऐसे मौकेपर प्लेग फैलनेसे उसके दुःखोंका प्याला लबालब भर जायेगा। परन्तु हम भारतीयोंको चेतावनीके दो शब्द कहे बिना नहीं रह सकते। मामूली बीमारीकी भी, खासकर बुखार या निमोनियाकी, अविलम्ब देखभाल होनी चाहिए और जरूरी हो तो, अधिकारियोंको सूचना दे दी जानी चाहिए। इस प्रकारकी बीमारियोंका इलाज करनेमें कदाचित् बड़ी ढिलाई की जाती है, परन्तु खासकर आजके जैसे समयमें बुखार या निमोनियाको मामूली बात समझना बड़ी मूर्खता होगी। हम उनसे यह भी कहेंगे कि ऐसे सब रोगियोंको बिलकुल अलग रखा जाये, ताकि छूतकी जोखिम कमसे-कम हो जाये। लेकिन सबसे अधिक आवश्यक यह है कि गरीब-से-गरीब घरोंमें भी रोशनी और हवाको पूरी तरहसे आने दिया जाये। प्रत्येक घरका सारा कचरा निकाल दिया जाये। और यदि ये प्रारंभिक सावधानियाँ प्रत्येक व्यक्ति बरते तो हमें कोई सन्देह नहीं कि मुसीबत टल जायेगी। भारतीय निवास-स्थानोंको सुधारनेकी दिशामें पहले ही बहुत कुछ किया जा चुका है और हमें सभी दिशाओंमें सुधार दिखाई दे रहे हैं। किन्तु रोगके आक्रमणके खतरेको देखते हुए प्रयत्नोंको दुगुना कर देना जरूरी है और हमें आशा है कि उपनिवेशका प्रत्येक भारतीय हमारी बातको हृदयांकित कर लेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१४५. सुयोग्य विजय

सो, सर्वोच्च न्यायालयने भारतीयोंके परीक्षात्मक मुकदमेका[1] फैसला खर्चसहित वादीके पक्षमें कर दिया है। मामलेके सफलतापूर्ण अन्तपर हम अपने ट्रान्सवालवासी देशभाइयोंको हार्दिक बधाई देते हैं। यह विजय महँगी कीमत चुकाकर प्राप्त की गई है और इसके वे सुयोग्य पात्र हैं। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि सरकार भारतीय समाजको विजयके फलोंका उपभोग करने देगी। हमारे खयालसे इस महान और असमान संघर्षमें ब्रिटिश भारतीयोंका आचरण उनकी परम्पराओंके अनुरूप रहा है। उन्हें अधिकार था कि वे ब्रिटिश अधिकार जमनेके बाद जल्दी ही यह मामला पेश कर देते और हमें मालूम है कि उस समय ट्रान्सवालके उत्तम वकीलोंने यही मार्ग अपनानेकी सलाह दी थी; परन्तु उन्होंने दूसरी ही तरह सोचा। उन्हें खयाल

१. *हबीब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल-सरकार*: फैसलेमें कहा गया था कि भारतीय व्यापारियोंको पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने न देनेके जो आदेश परवाना-अधिकारियोंको दिये गये थे वे गैर-कानूनी थे और वादीको प्रिटोरिया तथा पीटर्सबर्ग शहरोंमें सामान्य वस्तुओंके विक्रेताके तौरपर व्यापार करनेका परवाना पानेका हक है।

हुआ कि सरकारको चुनौती देनेके बजाय पहले उनका फर्ज उससे न्याय प्राप्त करना और उन वादोंको पूरा करनेका अनुरोध करना है, जो डार्उनिंग स्ट्रीटके अधिकारियोंने किये थे। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि उन्हें व्यापार-संघों (चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स) और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओंके पास पहुँचना चाहिए, जिन्होंने भारतीय व्यापारियोंके प्रति वैर-वृत्ति अपनाई है; और उन्हें विश्वास दिलानेकी कोशिश करनी चाहिए कि परवाने देनेसे इनकार करके भारतीयोंके साथ अन्याय किया जा रहा है। वे बहुत ही उचित समझौता स्वीकार करनेको तैयार थे और इसलिए उन्होंने सुझाव दिया था कि तमाम मौजूदा परवाने अछूते छोड़ दिये जायें, पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने समय-समयपर नये किये जायें और दूसरे प्रार्थियोंके मामले पात्रताके आधारपर निपटाये जायें। यह सुझाव अस्वीकार कर दिया गया और पिछले दिसम्बरमें, जब वस्तुतः प्रत्येक भारतीय व्यापारीपर विनाशका खतरा छा गया तब मामला हदको पहुँच गया। जब किसी समझौतेपर पहुँचनेके सभी उपाय समाप्त हो गये तब समाजने यह परीक्षात्मक मुकदमा दायर किया। परिणाम तो और कुछ हो ही नहीं सकता था, हालाँकि इतना कष्ट भोग चुकनेके कारण लोग उसके बारेमें जबरदस्त चिन्तासे ग्रस्त थे। खैर, अन्यायके इस शोकपूर्ण चित्रका एक उज्ज्वल पहलू भी है, और वह यह है कि, ब्रिटिश राज्यमें, द्वेषभाव कितना ही तीव्र क्यों न हो, सर्वोच्च न्यायालयोंके रूपमें सुरक्षाका एक आश्रयस्थान हमेशा उपलब्ध है। परम्परा ऐसी है कि ब्रिटिश न्यायाधीश पूर्वग्रहों अथवा भावनाओंके वशीभूत लगभग होते ही नहीं और छोटेसे-छोटे प्रजाजनको भी, यदि उसके पास पर्याप्त साधन हो और कानूनमें गुंजाइश हो तो, विशुद्ध न्याय मिल सकता है। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंने भूतपूर्व उच्च न्यायालयके निर्णयको रद कर देनेमें संकोच नहीं किया और सरकारी वकीलके रवैयेके बावजूद उन्होंने फैसला दिया कि १८८५ के कानून ३ में १८८६ में हुए संशोधनके अनुसार प्रत्येक भारतीयको, जहाँ उसका जी चाहे, व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता है। इससे भारतीय परवानेदारोंके सम्बन्धमें सरकारकी सारी सूचनाएँ और सारी कार्रवाइयाँ रद हो जाती हैं। परन्तु अपने देशवासियोंको चेतावनी दे देना हमारा कर्तव्य है कि वे इस सफलतापर खुशीसे बहुत ज्यादा फूल न जायें। कदाचित् इसका इतना ही अर्थ है कि यह एक दूसरे संग्रामका श्रीगणेश है। उनके विरुद्ध देशभरमें विरोध खड़ा किया जायेगा और सरकार सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयोंके प्रभावको विफल करनेके लिए एक विधेयक पेश कर सकती है। इसलिए उन्हें फिर भी काम करना और धीरज तथा दूरदर्शितापूर्ण संयम रखना पड़ेगा। दुर्भाग्यसे सरकार एक चीज है और सर्वोच्च न्यायालय बिलकुल दूसरी चीज है। सरकार सब प्रकारके पूर्वग्रहों और भावनाओंसे प्रभावित होकर उनमें बह जाती है और ट्रान्सवालमें तो वह खुद इतनी कमजोर है कि श्री डंकनके शब्दोंमें, जो "शुद्ध प्रारम्भिक न्याय" है वह भी नहीं कर सकती। लॉर्ड मिलनरके मजबूत शासन और उससे भी मजबूत इरादेके बावजूद, परमश्रेष्ठ भारतीय विरोधी आन्दोलनके आगे दब गये और दुर्बल पक्षकी रक्षा करनेमें असफल रहे। परन्तु परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेने सरकारके लिए १८८५के कानून ३ की शरण लेना असम्भव बना दिया है। अब वह श्री लिटिलटनसे यह नहीं कह सकती कि उपनिवेशियोंकी पुराने नियमको लागू करनेकी माँगका विरोध नहीं किया जा सकता। अब हम जानते हैं कि पुराना कानून भारतीय व्यापारपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता, और सरकारपर यह सिद्ध करनेका दुहरा भार है कि भारतीय व्यापारपर कोई विशेष प्रतिबन्ध लगानेके लिए, कैसा भी क्यों न हो, कोई कारण मौजूद है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९०४

१४६. ईस्ट लन्दनके ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम इसी मासकी २ तारीखके ईस्ट *लन्दन डेली डिस्पैच*का एक अग्रलेख उद्धृत कर रहे हैं। उसका विषय वह प्रश्नोत्तर है जो श्री लिटिलटन और सर मंचरजीके बीच हुआ है। यह प्रश्नोत्तर उन सूचनाओंके बारेमें था जो ईस्ट लन्दन नगरमें रहनेवाले अनेक ब्रिटिश भारतीयोंको दी गई थीं और जिनमें उन्हें एक निश्चित समयके भीतर पृथक् बस्तीमें जाकर बसनेका आदेश दिया गया था। हमारा सहयोगी ईस्ट लन्दन नगरपालिकाकी कार्रवाईको दी गई प्रसिद्धिको नापसन्द करते हुए इस गलत परिणामपर पहुँचा है कि सर मंचरजी उग्रदलके व्यक्ति हैं। क्या हम अपने सहयोगीको याद दिलायें कि सर मंचरजी कट्टरसे-कट्टर विचारोंके हैं और वे तबतक किसी मामलेमें हाथ नहीं डालते, जबतक उन्हें उसके न्यायपूर्ण होनेका यकीन नहीं हो जाता। स्वभावतः ही वे बहुत अच्छे कारणके बिना अपने ही दलकी सरकारको किसी परेशानीमें डालना पसन्द नहीं करेंगे। अग्रलेखको ध्यानसे पढ़नेके बाद हम स्वीकार करते हैं कि हमें सर मंचरजीके बताये हुए हालातमें और ईस्ट लन्दनकी वास्तविक स्थितिमें कोई फर्क दिखाई नहीं देता। हम कहना चाहते हैं कि सहयोगी यह कहनेमें सत्यको घटाकर बताता है और नगरपालिका तथा भारतीयों — दोनोंके साथ बराबर अन्याय करता है कि, "नगर-पालिकाने भारतीयों [की स्थितिका मुकाबला करनेके लिए वतनी बस्तियोंसे अलग जनवास (बोर्डिंग हाउस) बनाये और नियमोंके अनुसार उन] से वहाँ जाकर रहनेका अनुरोध किया है।[1] या, कमसे-कम, उसने नगरके आसपास रहनेवाले भारतीयोंको सूचना दे दी है कि वे वहाँसे चले जायें।" इससे पाठकके मनपर यह असर पड़ता है मानो कोई जबरदस्ती नहीं की जायेगी। परन्तु भारतीयोंके नाम जारी की गई सूचनाकी इबारत यह है:

> सूचना दी जाती है कि सफाई-अफसरने मालूम किया है, आप उपर्युक्त मकानमें, जो नगरकी सीमाके भीतर है और जहाँ एशियाई लोग नहीं रह सकते, रहकर संशोधित नियम नं० ३२, अध्याय १८ (ईस्ट *लन्दन डेली डिस्पैच*, २९ अगस्त १९०३ में प्रकाशित नगर-निगम की १९०३ की सूचना नं० ३ और उल्लिखित नियम) का उल्लंघन कर रहे हैं।
>
> परिषद इस सूचना द्वारा ताकीद करती है कि आप इस सूचनाके मिलनेसे १४ दिनके भीतर उपर्युक्त नियमकी शर्तोंके मुताबिक अमल करें और इसके लिए ऊपर बताया हुआ मकान खाली कर दें और एशियाइयोंके शिविरमें जाकर रहें।
>
> शिविर-अधीक्षक यह सूचना दिखानेपर आपको रहनेके लिए उपयुक्त स्थान दे देंगे।
>
> और यह भी कि, इस आज्ञाका पालन न करने पर मुकदमा चलाया जायेगा।
>
> ईस्ट लन्दन, तारीख १२ अप्रैल १९०४।
>
> आर० ई० डार्लिंग
टाउन क्लार्क
टॉमस बीवम
सफाई-निरीक्षक

१. उद्धरणका यह भाग अपूर्ण है। कोष्ठकके शब्दोंसे उसकी पूर्ति होती है। देखिए "ईस्ट लंदन एंड एशियाटिक्स", *इंडियन ओपिनियन*, १४-५-१९०४।

आज्ञा न माननेके साथ भारी दण्ड जुडा हुआ है। तब क्या सर मंचरजीने जिस ढंगमे प्रश्न पूछा, वह उचित नही था? और फिर, हमारे सहयोगीने सर मचरजीके मुँहमे वे शब्द भी रख दिये हैं जो उन्होने कभी कहे ही नही। उनके कहनेका यह अर्थ कदापि नही था कि भारतीय ईस्ट लंदनसे निकाले जानेवाले हैं, परन्तु उन्होने निश्चयपूर्वक कहा था कि उन्हें बस्तियोमे चले जानेकी सूचनाएँ मिली हैं। और यह सत्य-मात्र है। नगरपालिकाने जिस ढगकी कार्रवाई अपनाई है, उसे उचित बतानेमे *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* उतना प्रसन्न नही है। *डिस्पैचके* कथनानुसार हकीकत यह है कि ईस्ट लदनमे कुल मिलाकर भारतीयोकी आबादी छ सौ है, जिनमे से केवल एक सौ नगरमे रहते हैं। हमारा सहयोगी आगे कहता है "नगरपालिकाका उनपर कोई नियन्त्रण नही है।" तो क्या भारतीय नगरपालिकाके नियमोमे मुक्त हैं? हमने सारे नियम पढे हैं और हमे उनमे भारतीयोको नगरपालिकाके नियमोमे मुक्त होनेकी कोई बात नही मिली। क्या बारह हजारसे अधिक यूरोपीय आबादीमे रहनेवाले मुट्ठीभर भारतीयोको हटानेकी जरूरत जरा भी है? यह भी याद रखना चाहिए कि ये लोग वहाँ कई वर्षोमे रह रहे हैं। जहातक हम जानते हैं, इन लोगोके विरुद्ध अस्वच्छताका कोई आरोप नही लगाया जा सकता। बस्तीमे चार सौसे अधिक भारतीय रह रहे हैं, यह बात भी ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिको मजबूत करती है कि, जो लोग सुख-चैनके पाश्चात्य मानदण्डके अनुसार नही रहना चाहते वे अपने आप बस्तीमे रहते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष बहुत उचित है कि जो थोडे-से लोग नगरमे रह रहे हैं वे अच्छी साफ-सुथरी हालतमे रहते हैं। इस तर्कमे ट्रान्सवालके प्लेगको भी शामिल कर लिया गया है, परन्तु जैसा कि हम पिछले अकोमे पहले ही बता चुके हैं, भारतीयोमें बडी सख्यामे बीमारीके होनेका कारण जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूरी-पूरी गफलत है और जोहानिसबर्ग तथा भारतीय बस्तीके बाहर भारतीयोकी स्थिति अन्य समुदायोसे किसी भी तरह बुरी नही रही है। हमारा सहयोगी स्वीकार करता है कि भारतीय कानूनका पालन करनेवाले हैं और उसने यह मजूर करनेकी भी कृपा की है कि "बौद्धिक दृष्टिसे वे सभ्य लोग हैं, और इस नाते उनकी मान-प्रतिष्ठाके बारेमे गम्भीरतापूर्वक शका नही की जा सकती।" तब यदि वे सफाईके पाश्चात्य स्तरको नही पहुँच पाते तो क्या, आखिरकार, उन्हे, पृथक् बाड़ोमे खदेडे बिना सुधारकी ओर झुका देना बहुत कठिन बात है? और क्या केप टाउन, डर्बन और अन्य स्थानोका अनुभव, जहा भारतीयोने मौका मिलनेपर यूरोपीयोसे सबक लेनेमे कसर नही रखी है, हमारे सहयोगीकी शकाओको गलत साबित नही करता? हम यह खयाल किये बिना नही रह सकते कि यदि *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* निर्विकार होकर स्थितिका अवलोकन करता, वस्तुस्थितिको सही दृष्टिसे देखता और नगरपालिका भारतीयोको जिस तरह अनावश्यक रूपसे जलील करना चाहती है उसके विरोधमे भारतीय समाजके कार्योका समर्थन करता, तो वह जिस समाजके हितके लिए प्रकाशित होता है उसकी अधिक अच्छी सेवा करता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–५–१९०४

१४७. जोहानिसबर्गमें प्लेग

जोहानिसबर्गकी जनताको यह सूचना दी गई है कि २९ अप्रैलको जोहानिसबर्गके मंडीघरमें दो यूरोपीय गिल्टीवाले प्लेगसे ग्रस्त हुए। रैंड प्लेग-समितिने बीमारोंको रिएटफॉंटीनके छुतहे रोगोंके अस्पतालमें भेज देनेके सिवा इस महीनेकी ४ तारीखतक और कुछ नहीं किया। उसने मंडी-घरको सन्देहका लाभ दिया और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि विपरीत बात प्रमाणित न हो तो छूत बाहरी जरियोंसे ही आई होगी। इस प्रकार, साधारण नियमको उलट दिया गया। क्योंकि, जनसाधारणके नाते, हमने सदा यह समझा है कि यदि किसी खास स्थानमें प्लेग या और किसी छूतकी बीमारीसे कोई ग्रस्त होता है, तो उस स्थानको ही छूतसे ग्रस्त मानने और फिर उस स्थानमें ही छूतका कारण ढूँढ़नेकी कोशिश सबसे पहले जरूरी होती है। इस प्रकार डर्बन, केप टाउन और दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोंमें ही नहीं, बल्कि संसारके शेष भागमें भी, जहाँ-कहीं ऐसी घटनाएँ हुई हैं, उन स्थानोंमें ताला लगा दिया गया है, उन्हें सूतक (क्वारंटीन)में रख दिया गया है और उनकी छूत नष्ट की गई है। परन्तु तेजदम जोहानिसबर्गमें, अतिप्रशंसित रैंड प्लेग-समिति उलटी गंगा बहाती है और छूतका और कहीं पता लगानेमें असमर्थ होने पर यह खोज करने लगती है कि कहीं वह स्वयं मंडीघरके भीतर ही तो नहीं है; और चार दिनकी खोजके बाद यह पता लगानेमें सफल होती है कि वहाँके चूहोंपर प्लेगका असर था। उसके बाद अचानक, नाटकीय ढंगसे समिति इस महीनेकी ४ तारीखको दुपहरमें मंडीके गिर्द पुलिसका घेरा डलवा देती है और मकानोंको कुछ हलके सूतकमें रख देती है। इससे बेशक लोगोंके मनपर असर होता है, काफी हलचल पैदा हो जाती है और शायद प्रशंसा भी प्राप्त होती है; परन्तु हमारा खयाल है, यह बहुत कुछ वैसा ही दिखाई देता है जैसे घोड़ा निकल जानेके बाद अस्तबलमें ताला लगाना। क्योंकि इन दो घटनाओंका पता लगनेके बाद पूरे चार दिनतक मंडीके द्वारा नगरमें छूत फैलने दी जाती है। बेशक, ताज्जुबकी बात तो यह है कि इस समय सारा जोहानिसबर्ग प्लेगसे पीड़ित नहीं हो उठा। लेकिन कमसे-कम इस मामलेमें प्लेगसे आम मुक्तिके लिए बधाईकी हकदार समिति नहीं है, परन्तु इसका श्रेय उस शानदार मौसम और जोहानिसबर्गकी बड़ी ऊँचाईको है जो समितिकी बड़ी भूलोंके बावजूद प्लेगके कीटाणुओंको पनपने नहीं देती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–५–१९०४

१४८. परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला[1]

जोहानिसबर्ग
मई १६, १९०४

निःसन्देह आप परीक्षात्मक मुकदमेमें प्रधान न्यायाधीशका दिया हुआ फैसला देख चुके हैं। एक मात्र प्रश्न था "निवास" शब्दकी व्याख्याका जो १८८५ के कानून ३ में आता है। और उसपर प्रधान न्यायाधीशने यह निर्णय दिया कि "निवास" के अन्तर्गत व्यापार-व्यवसायका स्थान नहीं आता। और उनकी इस व्याख्यासे उनके दो साथी न्यायाधीशोंने सहमति प्रकट की है। इस प्रकार पन्द्रह वर्षतक कठिन संघर्ष करनेके पश्चात भारतीय स्थिति उचित सिद्ध हुई है और अब भारतीयोंको ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यापार करनेका अधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्धमें सरकारने अपनी युद्धसे पूर्वकी स्थिति त्याग दी। आप फैसलेमें यह देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशको स्थानीय सरकारके इस कठोर और असंगत रुखके सम्बन्धमें, जिसका समर्थक उपनिवेश-कार्यालय भी था, कुछ बहुत ही कड़ी बातें कहनी पड़ी हैं। आप यह भी देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशकी सम्मतिमें भारतीय व्यापारियोंको ले जाकर पृथक बस्तियोंमें डाल देनेका अर्थ है उन्हें आजीविकाके साधनोंसे वंचित कर देना। यह तो, जैसा उन्होंने कहा, एक हाथसे देकर दूसरेसे छीन लेना ही हुआ।

इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय संघकी वे सभी शिकायतें, जो उसने १८८५ के कानून ३ के अमल और पृथक् बस्तियोंकी स्थापनाके सम्बन्धमें की थीं, पूरी तरह उचित सिद्ध हो गई हैं। किन्तु इस सबका परिणाम क्या होगा, यह एक बहुत ही गंभीर प्रश्न है। सामान्यतः भारतीयोंकी स्थिति अब यह होनी चाहिए कि वे कठिनाइयोंका सामना करते जायें और बाकी काम करनेके लिए उपनिवेश कार्यालयपर निर्भर रहें। परन्तु दुर्भाग्यसे यहाँकी सरकार इतनी कमजोर है कि न्याय कर ही नहीं सकती। भारतीयोंको यह जीत बहुत ही महँगी पड़ी है। वे इसका लाभ न भोग पायें, ऐसी आवाज़ अवश्य ही उठाई जायेगी और उसकी अस्पष्ट प्रतिध्वनि हमें सुनाई भी देने लगी है। और यदि सरकार भारतीयोंसे उनकी इस विजयका फल फिर छीननेके लिए एक विधेयक विधान-परिषदसे मंजूर करा लेनेकी उतावली करे तो यह कोई आश्चर्यकी बात न होगी।

किन्तु एक बात निश्चित है। पुराना कानून भारतीय-व्यापारकी दृष्टिसे भारतीयोंके प्रतिकूल है, इस आधारपर नया कानून बनाना कतई उचित नहीं ठहराया जा सकता। हम अब यह जानते हैं कि पुराने कानूनसे भारतीयोंपर प्रवास और व्यापारके सम्बन्धमें कोई प्रतिबन्ध नहीं लगता। भारतीयोंका यहाँ प्रवेश तो कारगर रूपमें शान्ति-रक्षा अध्यादेशसे रुका है। और यदि भारतीय व्यापारपर प्रतिबन्ध लगाना हो तो साम्राज्यीय उपनिवेशमें एक नया कानून बनाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि भारतीयोंपर एक नई निर्योग्यता लगाई जायेगी जो पुराने शासनमें उनपर कानून द्वारा कभी लागू न थी। ऐसी निर्दयतापूर्ण है यह भाग्यकी विडम्बना! लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकार, तब यद्यपि शासन विदेशी था फिर भी, भारतीयोंको संरक्षण देती थी। अब

१. यह गांधीजीके एक वक्तव्यका मजमून है जो *इंडियामें* सम्पादनके बाद "एक संवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित किया गया था। इसकी एक प्रति दादाभाईको भी भेजी गई थी जिन्होंने उसके अंश उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीके नाम अपने जून ७, १९०४ के पत्रमें उद्धृत किये थे। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंटिविजुअल्स — एन)

लड़ाईके पीछे सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश प्रजाके एक भागको संरक्षण देनेसे महज इसलिए इनकार करती है कि वह अपेक्षाकृत दुर्बल पक्ष है। अब ब्रिटिश भारतीयोंपर और अधिक निर्योग्यताएँ लागू करनेका कोई प्रयत्न किया जाये तो क्या उपनिवेश-कार्यालय उसे मजबूतीसे अपने पैर तले कुचलेगा? क्या भारत-सरकार अपना कर्तव्य पूरा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १-७-१९०४

१४९. अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको[1]

हाईडेलबर्ग
मई १८, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ सर आर्थर लाली
लेफ्टिनेंट गवर्नर
ट्रान्सवाल उपनिवेश

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि,

हाइडेलबर्ग-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधि इस नगरमें आपका समादरपूर्वक स्वागत करते हैं और इस अवसरका लाभ उठाते हुए यह तथ्य परमश्रेष्ठके ध्यानमें लाते हैं कि हाइडेलबर्गमें जो एशियाई *बाजार* स्थापित किया जा रहा है वह नगरसे बहुत ही ज्यादा दूर है।

यद्यपि परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयको देखते हुए दूरीका बहुत अधिक महत्त्व नहीं है, फिर भी हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि फेरीवालों और दूसरे लोगोंके लिए वह जगह असुविधाजनक होगी।

हम यह विश्वास करनेकी धृष्टता करते हैं कि स्वच्छताके जो नियम आवश्यक समझे जायेंगे, उनका पालन करनेपर सरकार हमें भारतीय परवाना-सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके फलका लाभ उठाने देगी।

हम यह तथ्य भी आपके ध्यानमें लाना चाहते हैं कि जिस बाड़ेमें मसजिद बनायी गई है वह अभीतक मुस्लिम-समाजके नाम पंजीकृत नहीं किया गया है।

अन्तमें हम कामना करते हैं कि हमारे बीच आपका समय आनन्दसे बीते, हम परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करते हैं कि महामहिम सम्राट तथा सम्राज्ञीसे सिंहासनके प्रति हमारी वफादारी और भक्ति-भावना निवेदित करनेकी कृपा की जाये।

परमश्रेष्ठके आज्ञाकारी सेवक,
ए० एम० भायात
तथा अन्य

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. यह अभिनन्दनपत्र सर आर्थर लालीको हाइडेलबर्गके भारतीय समाजकी ओरसे उनके वहाँ पधारनेपर दिया गया था।

१५०. परीक्षात्मक मुकदमा

ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशका व्यापक और विशद निर्णय ट्रान्सवाल सरकार और भारतीयों–दोनोंके अध्ययन करनेके लायक है। सरकारके लिए इस कारण कि मुख्य-न्यायाधीशने सिद्ध कर दिया है—जैसा कि इतने अधिकारके साथ और कोई मनुष्य नहीं कर सकता था—कि ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति सरकारका रवैया कितना हृदयहीन और असंगत रहा है। भारतीयोंके लिए इस कारण कि उससे साबित होता है, स्थानीय अधिकारियोंके थोड़ी देरके लिए गुमराह हो जानेपर भी ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश शासनमें कितनी बातें श्रेय हैं। ये अधिकारी—स्वार्थ, दुर्बलता या द्वेष, किसी भी कारणसे क्यों न हो—सामने आनेवाली विविध परिस्थितियोंपर ठीक-ठीक विचार करने और समान रूपसे न्यायके वितरण करनेमें असमर्थ हैं। विद्वान मुख्य न्यायाधीश चाहते तो प्रश्नके अलग-अलग पहलुओंपर ध्यान न देते। वे सरकारकी भावनाओंका लिहाज रख सकते थे। परन्तु उन्हें ऐसी दया नहीं आई। स्पष्ट है कि, उन्होंने महसूस किया, न्याय और सत्यकी माँग है कि वे साफ-साफ कहें और उस शिकायतपर जो ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा लगातार दुहराई जाती रही है, कानूनी स्वीकृतिकी मुहर लगा दें। शायद उन्होंने यह भी महसूस किया हो कि ट्रान्सवालके कानून-विभागमें ब्रिटिश राष्ट्रके मुख्य प्रतिनिधिकी हैसियतसे उनसे अपेक्षा की जाती है कि सरकारकी अपनाई असंगत स्थितिसे वे अपने-आपको पूरी तरह अलग कर लें।

कानूनकी व्याख्या करते हुए सर जेम्स रोज इन्सने कहा :

> यह बिलकुल साफ है कि विधानमण्डलके ध्यानमें उन एशियाइयोंका मामला था जो व्यापार करनेके स्पष्ट हेतुसे बसने आये थे। और अगर उसका इरादा यह होता कि इस प्रकार बसनेवालोंका व्यावसायिक काम-काज पृथक् बस्तियोंकी सीमाओंमें मर्यादित रखा जाये, तो इस आशयका कोई निश्चित विधान अवश्य कर दिया गया होता। क्योंकि, यह मामला यूरोपीय और एशियाई, दोनोंके लिए छोटा नहीं, समान रूपसे बड़े महत्त्वका था। यदि भारतीयोंको इस देशमें बे-रोकटोक आने देने और जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करने देनेका मंशा था, तो वे गोरे दूकानदारोंके लिए निहायत जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी हो जानेवाले थे; और यदि इसके विपरीत, उनका व्यापारिक कार्य उन बस्तियोंमें ही सीमित रखा जानेको था, जिनमें वे रहते हैं, जो मुख्य शहरसे बाहर स्थित हैं और जिनमें उनके सजातीय लोग ही रहते हैं, तब तो व्यावहारिक कारणोंसे यही अच्छा होता कि वे व्यापार करते ही नहीं। जबकि कानून उनका व्यापारके प्रयोजनसे देशमें बसनेका हक स्वीकार करता है और पहुँचनेपर उनसे रजिस्ट्रीकी फीस वसूल करता है, तब यदि वह ऐसी व्यवस्थाएँ करता है जिनसे उनका व्यापार करना अव्यावहारिक और अलाभदायक हो जाता है, तो वह असंगत होगा। यह तो एक हाथसे देना दूसरेसे ले लेना हो जायेगा।

भारतीयोंने इतने जोरोंसे अपनी बात कभी नहीं कही। अब हमें इस शिकायतका, जिसका सरकारने इतने जोरोंसे खण्डन किया है, समर्थन प्राप्त हो गया है कि पृथक् बस्तियाँ व्यापार

के कामके लिए बिलकुल बेकार हैं और उनका उद्देश्य केवल भारतीयोंको भूखों मारकर उपनिवेशसे निकाल देना है।

परन्तु असली डंक तो थोड़ा आगे चलकर आता है। "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेके बाद विद्वान न्यायाधीश कहते हैं:

> किन्तु खरीतोंसे एक बात स्पष्ट है और वह यह कि, ट्रान्सवालके अधिकारी कानूनका जो अर्थ अब करना चाहते हैं वह वही है जिसकी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकार सदा हिमायत किया करती थी और जिसका ब्रिटिश सरकार बराबर विरोध करती रही है। ऐसी हालतमें यह बात विलक्षण लगती है कि नया क़ानून बनाये बिना ट्रान्सवालमें सम्राटके कर्मचारी एक ऐसा दावा पेश करें जिसे इंग्लैंडमें सम्राटकी सरकार हमेशा कानूनकी पुस्तकके अनुसार नाजायज बताती रही है और जिसका उसने भूतकालमें दृढ़तासे विरोध किया है।

ब्रिटिश अधिकार हो जाने पर इस तरहका रवैया इख्तियार करना और श्री क्रूगरके शासन-कालमें ब्रिटिश सरकारके नामपर जो वचन दिये गये थे उन सबपर पानी फेर देना जाहिर करता है — और यह हम अत्यन्त आदरके साथ कहते हैं — कि यह ब्रिटिश परम्पराओंका शोचनीय अज्ञान है। या, उससे भी बुरा, उन सब बातोंसे जानबूझकर हटना है जो ब्रिटिश राज्यमें अबतक पवित्र मानी गई हैं और जिन्होंने भिन्न-भिन्न भागोंको एक सूत्रमें बाँधकर रखा है। फैसला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और निर्णयसे भारतीय दावेका पूर्ण समर्थन हो जाता है। परन्तु इस परिणामका हमारे ट्रान्सवालवासी देशभाई पूरा लाभ उठा सकें, इसके लिए अब एक बातकी जरूरत है, जो यह है कि, समाजके प्रतिनिधि अपने सदस्योंके जोशको काबूमें रखें और व्यापार करनेके अधिकारका सौम्य उपयोग ही करें। यह फल अब, पिछले पन्द्रह सालकी जबरदस्त बाधाओंसे लगातार जूझनेके बाद, प्राप्त हुआ है। हम जानते हैं कि इस उपदेशपर अमल करना बहुत कठिन है। हमेशा यह नहीं कहा जा सकता कि परवानेके लिए कौन अर्जी देगा और कौन नहीं, क्योंकि अधिकार सभीको है। परन्तु ऐसी कठिनाइयाँ आनेपर ही किसी समाजके वास्तविक सत्त्वकी परख होती है। अगर लोग इस विजयसे उन्मत्त होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र व्यापारके परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र देने लगें तो बड़ी हानि होगी, और उनके निन्दक लोग अधिक प्रहार करनेके लिए ऐसी स्थितिको हथियार बनानेमें देर नहीं लगायेंगे। परिस्थिति नाजुक है, मगर पूरे फलका उपभोग करना है तो नेताओंको उसका सामना करना ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५१. नेटालके प्लेग-नियम

नेटालके इस महीनेकी १० तारीखके *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित प्लेग-नियमोंसे भारतीयोंके बारेमें अकारण भय प्रकट होता है कि वे ट्रान्सवालसे प्लेग ले आयेंगे। ट्रान्सवालसे आनेवाले वतनियों, भारतीयों और दूसरे रंगदार व्यक्तियोंको वे उपनिवेशके सिर्फ एक स्थान — चार्ल्सटाउनमें आने देते हैं। चार्ल्सटाउनसे आगे वे तबतक नहीं बढ़ सकते, जबतक उनके पास ट्रान्सवाल-सरकारका दिया हुआ यात्राका परवाना न हो, और यह परवाना तबतक नहीं दिया जाता जबतक कड़ी डाक्टरी जाँच न हो जाये और जबतक वे चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीसे यात्रा आगे जारी रखनेका अधिकार देनेवाला परवाना प्राप्त न कर लें। ट्रान्सवालके अधिकारियोंकी कार्रवाईपर यह दोहरी सावधानी या अविश्वास क्यों होना चाहिए, सो स्पष्ट नहीं है। और यह देखते हुए कि इतना अविश्वास है, ट्रान्सवालका प्रमाणपत्र पेश करनेकी जरूरत ही क्यों होनी चाहिए? साथ ही, जो लोग विटवाटर्सरैंड जिलेसे आते हैं, उनके पास ट्रान्सवालका परवाना हो या न हो, वे पाँच दिनके लिए चार्ल्सटाउनमें रोक रखे जाते हैं। उपनिवेशमें रोगके अभिशापका प्रवेश रोकनेके काममें हम सरकारके प्रयत्नोंकी कद्र करने और उसके साथ सहयोग करनेके लिए सदा तैयार हैं; परन्तु हमारा खयाल है कि उपर्युक्त नियम बड़े कष्टप्रद हैं और उचित नहीं हैं। वर्षके इस समयमें चार्ल्सटाउनमें रोक रखा जाना बहुत ही तकलीफ देनेवाली बात है और रेलगाड़ीमें ही सब यात्रियोंकी अथवा केवल रंगदार मुसाफिरोंकी ही डाक्टरी जाँच काफी होनी चाहिए। अगर ऐसी जाँचमें किसी व्यक्तिमें रोगके कोई लक्षण पाये जायें, तो उसे अलग करके सूतकमें रखा जाना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि उसे चार्ल्सटाउनमें ही रखा जाये; बल्कि डर्बन या ऐसे ही किसी अन्य स्थानमें रखा जा सकता है। निश्चय ही, किसी ऐसे सन्दिग्ध व्यक्तिके प्रवेशसे तो, जो डाक्टरी निरीक्षण-परीक्षणमें रखा जाता है, उपनिवेशमें प्लेग नहीं आ सकता। परन्तु सरकारको धन्यवाद है कि चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीको उसने यह अधिकार दे दिया है कि वह उपर्युक्त जाब्तोंसे गुजरे बिना भी किसी पहले या दूसरे दर्जेके रंगदार मुसाफिरको अपने नियत स्थानपर जानेकी इजाजत दे दे; और यद्यपि, जैसा हमने दिखाया है, नियम बड़े असुविधाजनक हैं, फिर भी इस प्रकार दिये गये अधिकारके उदारतापूर्ण प्रयोगसे नियमोंका शांतिके साथ निर्वाह हो सकता है। अन्तमें तो, नियम बहुत कष्टप्रद साबित होते हैं या नहीं, यह बहुत कुछ चार्ल्सटाउनसे सम्बन्धित स्वास्थ्य-अधिकारी और उसके मातहतोंके स्वभाव पर निर्भर रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–५–१९०४

१५२. "कुली" क्या है?

नगर-निगम विधि आयोग (म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन लॉज़ कमिशन)की रिपोर्ट, आयोग द्वारा तैयार किये हुए विधेयकके मसविदेके साथ, आम लोगोंकी जानकारीके लिए इस मासकी ३ तारीखके *ट्रान्सवाल गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित कर दी गई है। विधेयक स्वयं एक सावधानीसे तैयार किया हुआ अभिलेख है, जिसमें अनुसूचियोंके अलावा ३२६ उपधाराएँ हैं। उसके कुछ खण्ड ऐसे हैं, जिनका भारतीय समाजपर अत्यन्त मार्मिक असर पड़ता है और जिनसे उपनिवेशकी नगरपालिका-सम्बन्धी नीति गम्भीर रूपसे भंग होती है। एक दूसरे स्तम्भमें हम विधेयकके वे अंश छाप रहे हैं जिनका उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। व्याख्यात्मक उपधारामें "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंकी व्याख्या इस तरह की गई है, जिससे "कुली" शब्दको सरकारी आधार मिल जाता है; और वह इतनी अस्पष्ट है कि उससे भविष्यमें बहुत परेशानी होगी। सभीका खयाल यह था कि कुछ वर्ष पहले श्रीमती बिन्दनके मामलेमें[1] सर वाल्टर रैगने जो आक्षेप किये थे, उनके बाद विधेयकके निर्माता इस बातकी बहुत सावधानी रखेंगे कि इस शब्दका प्रयोग किस प्रकार करते हैं। इस व्याख्याके अनुसार दूसरे अर्थोंके साथ-साथ रंगदार व्यक्तिका एक अर्थ "कुली" भी होगा। कुली क्या होता है? यह ठीक-ठीक कोई नहीं जानता। अगर उसे भारतीय अर्थमें लिया जाये तो वह सिर्फ मजदूर या सामान ढोनेवाला होता है। अगर आम भद्दा अर्थ लगाया जाये तो फिर प्रत्येक भारतीय — भले ही कुछ भी हो या कोई भी हो — कुली है। अगर इसका अर्थ मर्यादित रखना हो, जो उपनिवेशके अधिक जानकार लोग लगाते हैं, तो वह होता है गिरमिटिया भारतीय। अब, ऐसी व्याख्या सहज ही की जा सकती थी, जिसे देखते ही तुरन्त प्रकट हो जाता कि आयुक्तोंका इरादा "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंमें किस वर्गके भारतीयोंको सम्मिलित करनेका है। "असभ्य जातियाँ" शब्दोंकी व्याख्या भारतीयोंके लिए अत्यन्त असंतोषजनक और संतापकारी है। हम नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि गिरमिटिया भारतीय भी असभ्य जातिके लोग नहीं हैं, परन्तु उनकी सन्तानोंको असभ्य कहकर बहिष्कृत कर देना तो समझमें ही नहीं आता। हमें उन सैकड़ों भारतीय बच्चोंका खयाल आता है जो, जैसा सर हैनरी मैकैलमने कहा है, अत्यन्त चतुर और विनम्र हैं, परन्तु गिरमिटिया भारतीयोंसे उत्पन्न होनेके कारण असभ्य वर्गमें गिने जायेंगे। इसे हम ब्रिटिश भारतीयोंके असंयत अपमानके सिवा और कुछ नहीं समझते। किन्तु विधेयकका सबसे आपत्तिजनक पहलू है उसकी नागरिकोंकी योग्यताएँ। अबतक सामान्य कानूनके अनुसार नगरपालिकाओंका मताधिकार भारतीयोंको प्राप्त था; परन्तु इस विधेयकमें यह व्यवस्था की गई है कि जो लोग १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार संसदीय मताधिकारके अयोग्य हैं वे नागरिक होनेके भी अयोग्य होंगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने निश्चित रूपसे कहा था कि वे नगरपालिका-मताधिकारको छूना नहीं चाहते; और उन्होंने नागरिक मताधिकारको उसी आधारपर रखनेसे इनकार कर दिया था जिसपर राजनीतिक मताधिकार स्थित है। फिर भी, हम आयुक्तोंको गम्भीरतापूर्वक यह प्रस्ताव करते देखते हैं कि भारतीयोंको मताधिकारसे — नगरपालिका-चुनाव-सम्बन्धी मताधिकारसे भी — सर्वथा वंचित कर दिया जाये! उन्होंने इस

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ९।

बातपर कोई ध्यान नहीं दिया कि अबतक भारतीयोंने बहुत आत्मसंयमसे काम लिया है, क्योंकि उन्होंने उपनिवेशकी नागरिक सूचीमें रखे जानेके अधिकारका उपयोग नहीं किया, बल्कि अधिकारको काममें लाये बिना अधिकारकी प्राप्ति-मात्रसे ही संतोष कर लिया है। आयुक्तोंने इस तथ्यसे भी अपनी आँखें बन्द रखी हैं कि भारतमें लाखों लोग नगरपालिका-मताधिकारका प्रयोग कर रहे हैं। यदि यह दलील भी दी जाये कि भारतमें भारतीयोंको कोई राजनीतिक मताधिकार प्राप्त नहीं है -- जिसे हम चुनौती देते हैं -- तो भी उक्त तथ्यके बारेमें तो तर्ककी गुंजाइश है ही नहीं। सारे भारतमें जहाँ-तहाँ सैकड़ों नगरपालिकाएँ हैं, जिनमें से अधिक-तरकी शासन-व्यवस्था भारतीयोंके ही हाथमें है। यदि वे "रंगदार व्यक्तियों" और "असभ्य जातियों" की व्याख्या करनेके बाद अपने विधेयकके निर्माणमें इन शब्दोंका प्रयोग न करते तो यह आश्चर्यकी ही बात होती। वे नगर-परिषदोंको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देना चाहते है जिनके अनुसार रंगदार व्यक्तियों द्वारा पक्की पटरियों और रिक्शागाड़ियोंका व्यवहार वर्जित होगा और वे "रंगदार व्यक्ति" के लिए नगर-परिषद द्वारा निर्धारित घंटोंमें घरसे बाहर निकलना भी जुर्म करार देंगे। विधेयकमें नगरपालिकाओंको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देनेकी बात भी है जिनसे "असभ्य जातियों" के व्यक्तियोंके पजीकरणकी प्रणाली कायम हो जायेगी और चूँकि धारामें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह प्रकट हो कि वह केवल घरेलू नौकरोंपर ही लागू होती है, इसलिए उसका अर्थ यह है कि उन भारतीय कारकुनों और इसी तरहके दूसरे कर्मचारियोंको भी अपना पंजीकरण कराना पड़ेगा, जो गिरमिटिया भारतीयोंकी सन्तान हैं। जो वतनी काम नहीं करना चाहते और जिन्हें गैरहाजिर होनेपर ढूँढ़ना बड़ा मुश्किल होता है, उनकी रजिस्ट्री करना एक बात है; और जो भारतीय विनम्र, परिश्रमी और प्रति-ष्ठित हैं, जिनका एकमात्र कसूर यह है कि वे हदसे ज्यादा काम करते हैं, उनसे यह आशा रखना बिलकुल दूसरी बात है, और वह अत्यन्त अपमानजनक है, कि वे अपना पंजीकरण करायेंगे और अपने साथ पंजीकरणके बिल्ले लिये फिरेंगे। अन्तमें, आयुक्तोंने नगर-निगमकी तमाम बिक्रियोंपर नगर-परिषदोंकी मंजूरी जरूरी कर दी है और नगर-परिषदोंको यह अधिकार दे दिया है कि वे कोई कारण बताये बिना किसी भी ऐसी बिक्रीको स्वीकार या अस्वीकार कर दें। इससे अंगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेका अवसर उपलब्ध हो गया है। इस प्रकार जो बात श्री लिटि-लटनको सीधी भेजनेपर शायद मंजूर होनी संभव न थी वही, यदि सरकारने विधेयक मंजूर कर लिया तो, उनके सम्मुख इस रूपमें प्रस्तुत की जायेगी कि उनके पास उसे स्वीकार करनेके सिवा कोई दूसरा चारा ही नहीं हो सकता। ऐसी हालतमें हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि विधेयक अत्यन्त प्रतिगामी ढंगका है और यदि सरकार उसको अपनाना चाहती है तो ब्रिटिश भारतीयोंको अपनी स्वतन्त्रतामें कटौतीके इस नये प्रयत्नको विफल बनानेके लिए बहुत बड़ी कोशिश करनी पड़ेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५३. पूर्वी ट्रान्सवालके पहरेदार

पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार संघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स)के सज्जनोंकी सतर्कतामें कोई भूल-चूक नहीं है। परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला जिस कागजपर था उसपर अभी स्याही भी नहीं सूखी है कि हमारे इन मित्रोंने उसके विरुद्ध हथियार उठा लिये हैं और वे सरकारसे तुरन्त ऐसा कानून बनानेका अनुरोध कर रहे हैं, जिससे सरकारको एशियाई-विरोधी प्रस्तावोंके द्वारा प्रेषित उनके विचार अमलमें आ जायें। उनकी नीति संक्षेपमें इन शब्दोंमें प्रकट है: "बस्तियोंके सिवा अन्यत्र न एशियाई रहें, न उनका व्यापार।" वे नेटालके व्यापार-संघसे भी आग्रह कर रहे हैं कि वे अपनी बैठक बुलायें और सोचें कि उस खतरेके विरुद्ध क्या कदम उठाये जायें जो, उनके मतानुसार, सभीके सामने सामान्यरूपसे मौजूद है। हमारा उनसे उचित व्यवहार या ब्रिटिश न्यायके नामपर अपील करना व्यर्थ है, क्योंकि उनका दोनोंमें ही विश्वास नहीं है। उन्हें एशियाइयोंकी संगति नहीं, उनका स्थान चाहिए और जबतक वे यह फल प्राप्त नहीं कर लेते तबतक उपाय और साधन कैसे हैं, यह विचार नहीं करेंगे। अगर खबरें सही हैं तो उनको एक ऐसा राजस्व-अधिकारी मिल गया है जो उनके इशारोंपर नाचनेके लिए काफी तैयार है, क्योंकि समाचार मिले हैं कि उसने एशियाइयोंको परवाने देनेसे इनकार कर दिया है और मामला-अधिकारियोंको विचारार्थ भेज दिया है। ऐसे रवैयेको देखते हुए हमने ऊपर जो चेतावनी दी है उसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंको हृदयंगम कर लेना चाहिए। यह जानना दिलचस्प होगा कि सरकार अब क्या करना चाहती है। अबतक वह अपने व्यवहारमें भूतपूर्व उच्च न्यायालयकी व्याख्याके अनुसार १८८५के कानून ३ की आड़ लेती रही है। अब चूंकि यह ढाल उसके हाथोंसे छूट चुकी है, इसलिए क्या वह ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके मुंहका कौर छीननेका कोई और बहाना ढूंढ़ेगी? लॉर्ड मिलनरने श्री लिटिलटनको आश्वासन दिया है कि पुराने कानून हर प्रकारसे भारतीयोंकी भावनाओंका लिहाज रखकर लागू किये जा रहे हैं और इसमें पहलेके मुकाबले आधी भी कठोरता नहीं बरती जा रही। निस्सन्देह, जैसा कि हम कह चुके हैं, यह बात तथ्योंसे सिद्ध नहीं है। परन्तु अब लॉर्ड महोदय क्या कहेंगे? पुराने कानूनसे तो भारतीय व्यापारपर कोई बन्धन लगता ही नहीं! तब वे क्या नये बंधन तैयार करेंगे? नहीं; किसी अन्य कारणसे नहीं तो लॉर्ड महोदयकी राजनीतिज्ञताके कारण ही सही, हम सच्चाईके साथ आशा करते हैं, वे ऐसा नहीं करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५६. पत्र : मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई २३, १९०४

सेवामें
सर मंचरजी भावनगरी, संसद-सदस्य,
१९६, क्रामवेल रोड
लन्दन, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर आर्थर लालीने हाइडेलबर्गसे गुजरते हुए एक भारतीय शिष्टमण्डल द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र[2] के उत्तरमें जो कहा उसका आशय यह था कि परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके बलपर भारतीय व्यापारियोकी अबाध व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बरदाश्त नही की जायेगी। और यह भी कि, इस दिशामें कानून बनानेकी अनुमतिके लिए श्री लिटिलटनसे निवेदन किया जा चुका है।

१८८५ के कानून ३ में, जिसका संशोधन १८८६ में किया गया, जो भारतीय स्थिति बताई गई थी, और परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके अनुसार, जिसकी व्याख्या की गई थी, वह इस प्रकार है :

(१) भारतीय बेरोक-टोक उपनिवेशमें आकर रह सकते है।
(२) वे उपनिवेशमे जहाँ चाहे व्यापार कर सकते है। उनके लिए पृथक बस्तियाँ निर्धारित की जा सकती है, किन्तु कानून उन्हें केवल बस्तियोमे रहनेको बाध्य नही कर सकता। कानूनमे इसके लिए कोई व्यवस्था नही हे।
(३) वे नागरिक नही बन सकते।
(४) वे बस्तियोके अलावा और कही भी अचल सम्पत्ति नही रख सकते।
(५) उपनिवेशमे आनेपर उन्हे ३पौड पजीयन (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ेगा।

इसलिए, उपर्युक्त कानूनकी रूसे भी, अचल सम्पत्ति रखनेपर रोकके अतिरिक्त, भारतीयोकी परिस्थिति अभी एकदम चिन्ताजनक नही है।

तथापि, शान्ति-रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेन्स)का अनुचित उपयोग करके आने-जानेकी स्वतन्त्रता बिलकुल छीन ली गई है। अध्यादेशका ऐसा उपयोग आखिरकार अन्यायपूर्ण है। यह अध्यादेश कानूनके अनुसार चलनेवाली ब्रिटिश प्रजाके लिए नही, विद्रोही और राजद्रोही लोगोकी हलचलोपर रोकथाम लगानेके विचारसे बना था।

विधान किस रूपमे पेश करनेका विचार है, अभी यह कहना कठिन है; किन्तु यह देखते हुए कि उसको पेश करनेके भी पहले श्री लिटिलटनकी मजूरी जरूरी है, मुझे भरोसा है कि आप उनसे मिलकर इस प्रश्नपर चर्चा कर लेगे। यदि एक बार उन्होंने किसी खास कार्रवाईके लिए अपनी अनुमति दे दी तो फिर राहत पाना बहुत कठिन हो जायेगा।

१. सर मंचरजी भावनगरीने इस पत्रकी एक नकल उपनिवेश-कार्यालयको भेजी थी। *इंडियाने* अपने १ जुलाई १९०४ के अंकमें इसको "निजी संवाददाता द्वारा" प्रेषित पत्रके रूपमें प्रकाशित किया था।
२. देखिए "अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको", मई १८, १९०४।

मैं यह सुझानेकी धृष्टता करता हूँ कि १८८५ का कानून ३ पूरा-पूरा रद कर दिया जाये। साथ ही, पैदल-पटरियोंसे सम्बन्धित नगर-नियम और एशियाइयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले तमाम कानून भी रद कर दिये जायें। केपकी तरहका एक प्रवासी-अधिनियम बनाया जाना चाहिए, किन्तु भारतीय भाषाओंको शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीमें अछूत नहीं मानना चाहिए। और, नेटालकी तरह एक विक्रेता-परवाना अधिनियम बनाया जाना चाहिए। शर्त यह है कि, उसमें परवानेकी अर्जियों पर स्थानीय अफसरोंके निर्णयोंके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार हो; और वर्तमान परवाने उससे अछूते रहें — हाँ, अगर दूकानें स्वच्छता और शोभाके आवश्यक मानको पूरा न करती हों तो इसमें अपवाद किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रवासका जबरदस्त हौआ हमेशाके लिए हट जायेगा, और व्यापारमें अनुचित भारतीय स्पर्धाका प्रश्न भी न रहेगा। स्थानीय अधिकारी परवानोंकी संख्याका नियमन कर सकेंगे।

भारतीयोंका इतना ही दावा है कि जबतक वे पाश्चात्य ढंगकी जरूरतोंके मुताबिक चलते हैं तबतक उन्हें व्यापार करने, अचल सम्पत्ति रखने, नागरिकताके अधिकारोंको भोगने आदिका अधिकार उपनिवेशके सर्वसामान्य नियमोंके अनुसार मिलना चाहिए।

मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि लॉर्ड मिलनर ऐसे ही किसी विधानके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं, ब्रिटिश भारतीयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले विधानके लिए नहीं। और वे इसके लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि शिक्षित और आसूदा भारतीय किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धक विधानसे एकदम मुक्त रखे जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: सी० ओ० २९१, जिल्द ७८, इंडिविजुअल्स–बी ।

१५७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

अच्छा ही हुआ कि, हाइडेलबर्गके ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवालके परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको वफादारी-भरा मानपत्र दिया और, ऐसा करते हुए, उनका ध्यान हालमें ही निर्णीत परीक्षात्मक मुकदमेकी तरफ खींचा। उसके कारण परमश्रेष्ठको सरकारी नीतिके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी पड़ी। सर आर्थर लालीने शिष्टमण्डलको जो उत्तर दिया था उसका फोक्सरस्टके उस भाषणमें विस्तार किया जो उन्होंने अपने सम्मानमें फोक्सरस्टके लोगों द्वारा आयोजित भोजमें दिया था। परमश्रेष्ठने भारतीयोंकी वफादारी और परिश्रमशीलताकी उचित सराहना की। ट्रान्सवालमें भारतीयोंके दर्जेके बारेमें परमश्रेष्ठ बहुत संभल-संभल कर बोले। उन्होंने कहा कि जबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे स्वीकृति न मिल जाये तबतक सरकार कुछ नहीं कर सकती। परन्तु उन्होंने यह कहनेमें कोई संकोच नहीं किया कि उन्हें गोरे निवासियोंसे बहुत ज्यादा सहानुभूति है जो एशियाई व्यापारियोंसे मात नहीं खाना चाहते। उन्होंने फोक्स-रस्टके लोगोंको वचन भी दिया कि वे अपने स्वदेशवासियोंकी इच्छा-पूर्तिका भरसक प्रयत्न करेंगे। अलबत्ता उनका यह वचन शर्तके साथ था। उन्होंने कहा कि सरकारकी कार्रवाई पूर्णतः न्यायके अनुसार होगी। निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी होगी, जो लोग उपनिवेशमें पहलेसे बसे हैं उनकी स्थितिकी व्याख्या ठीक-ठीक करनी होगी और यह भी बताना पड़ेगा कि जो लोग भविष्यमें इस देशमें प्रवेश करेंगे उन्हें किन-किन अयोग्यताओंके मातहत काम करना होगा। ये सारी बातें बहुत संतोषजनक हैं। वर्तमान अनिश्चित स्थितिके स्थानमें जो भी व्यवस्था

होगी हम उसका स्वागत करेंगे और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या न्यायोचित की जाती है तो जो लोग ट्रान्सवालमें इस समय कारोबार कर रहे हैं उन्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु दुर्भाग्यसे भूतकालको देखते हुए भविष्यके बारेमें आशा नहीं बँधती। दुर्भाग्य-ग्रस्त एशियाई व्यापारी आयोगने स्पष्ट कर दिया है कि "निहित स्वार्थों" से सरकारका मतलब क्या है। वह उन्ही ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारको मान्यता देगी, जो "लड़ाई छिड़नेके समय और उसके ठीक पहले" ट्रान्सवालमें बस्तियोंके बाहर वस्तुतः व्यापार कर रहे थे। हम जानते है कि इसका अर्थ क्या है। और, हम यह भी जानते हैं कि इस अभिव्यक्तिकी आयुक्तोंने क्या व्याख्या की थी। इससे केवल उन दर्जनभर एशियाइयोंकी रक्षा होगी, जो लड़ाईके समय अपना समूचा व्यापार छोड़कर डरके कारण इस देशसे चले गये थे। और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या यही की जायेगी तो ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशके अर्थपूर्ण शब्दोंमें इसका मतलब यह होगा कि वह जो-कुछ एक हाथसे देगी, जैसा वह दावा करती हे, उसको फिर दूसरे हाथसे छीन लेगी। परमश्रेष्ठने स्वयं यह कहकर खतरेका पूर्वाभास दे दिया है कि सरकार ब्रिटिश भारतीयोके व्यापारकी रक्षा केवल मौजूदा परवानेदारोंके जीवनकालतक ही करेगी। जो आदमी व्यापार करता है वह जानता है कि इसका मतलब क्या है। तमाम व्यापारिक लेन-देनमे निश्चितता बहुत आवश्यक होती है और कानून बताता है कि जो भारतीय व्यापारी माल उधार माँगते है, उनके व्यापारकी अवधि बिलकुल सुनिश्चित नहीं है; और उनकी मृत्यु होते ही उनका कारोबार एकाएक बन्द हो जायेगा। फिर मानव-जीवन बड़ा अस्थिर होता हे; तब क्या ऐसे गोरे व्यापारी मिलेंगे, जो यह सब जानते हुए भी भारतीय व्यापारियोको कुछ भी माल उधार दे दें? यह समझना मुश्किल है कि परमश्रेष्ठ भारतीयोंको न्यायमात्रका जो दान करना चाहते हैं उसके साथ इस प्रकारके सिद्धान्तका मेल कैसे बैठ सकता है। इसलिए हमें न्याय करनेके सरकारी इरादोंका स्वागत इच्छा न होनेपर भी कुछ संयम और सावधानीसे करना पड़ता हे। परमश्रेष्ठने गोरोंके व्यापारपर भारतीयोंके व्यापारके असरके बारेमें जो राय बनाई है उससे भी सान्त्वनाका कोई आधार नही मिलता। परमश्रेष्ठने बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात कही है। हम उसके विरुद्ध आदरके साथ अपनी आपत्ति प्रकट करते हैं। वे अवश्य ही अच्छी तरह जानते है कि शान्ति-रक्षा अध्यादेश ब्रिटिश भारतीयोंतकको उपनिवेशसे बाहर रखनेके साधनके रूपमें कितनी सख्तीसे काममें लाया जा रहा है। जब चीनी मजदूर-आयात अध्यादेश विधान-परिषदमें पास हो रहा था तब सरकारको यह सिद्ध करना परम आवश्यक हो गया था कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग प्रामाणिक एशियाई शरणार्थियोंके सिवा और सबको बाहर रखनेके लिए कारगर तरीकेपर किया जा रहा है। मुख्य परवाना-सचिवने एक प्रतिवेदन तैयार किया था, जिससे प्रकट होता था कि किसी भी नवागन्तुकको उपनिवेशमे प्रवेश नही करने दिया जाता और शरणार्थियोंतकको बहुत ही कम परवाने दिये जाते है। इसलिए अब परमश्रेष्ठका बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात करना बहुत कठोर और असंगत मालूम होता है। परमश्रेष्ठने कहा कि,

> जिन लोगोंने अपनी आँखोंसे देख लिया है वे ही यह अनुभव करते हैं कि भारतीय यहाँ रह सकते हैं--इंग्लैंडकी जैसी सर्द आबोहवामें नहीं--और गोरोंसे आगे बढ़कर उन्हें व्यापार और व्यवसायके अनेक क्षेत्रोंसे खदेड़ सकते हैं।

यदि यह कथन सत्य होता तो बड़ा हानिकारक होता, क्योंकि यह लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयकी जबानसे निकला है। परन्तु क्या यह सत्य है? क्या व्यापार अथवा व्यवसायका

कोई भी विभाग ऐसा है जिसमें से एशियाइयोंने गोरोंको खदेड़ा हो? व्यापारकी दो ही ऐसी शाखाएँ हैं जिनमें दोनोंके बीच कोई स्पर्धा है। वे हैं, फेरी और छोटी दूकानदारी। अब फेरीके बारेमें सत्य यह है कि गोरे, विशेष वर्गके सिवा, इस कष्टप्रद कामको करनेके लिए बिलकुल तैयार नहीं होते। जैसा कि हमारे सहयोगी *स्टारने* बताया है, गोरे फेरीवालोंने अनेक बार प्रयत्न किये हैं; परन्तु हर बार छोड़ दिये — भारतीयोंकी स्पर्धाके कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि वे इसकी परवाह ही नहीं करते। परन्तु गोरोंका एक वर्ग है, जो इस कामको सफलतापूर्वक और भारतीयोंके मुकाबलेमें कर रहा है। हमारा आशय सीरिया-निवासियों और रूसी यहूदियोंसे है। वे परिश्रमी हैं और भारी बोझा रखकर दूर-दूरतक चलनेमें आपत्ति नहीं करते और हम उन्हें यह व्यापार सफलतापूर्वक करते हुए देखते हैं। इसके अतिरिक्त, यह नहीं भूलना चाहिए कि शहरोंके गिर्द फेरी लगाकर भारतीय एक बहुत महसूस की जानेवाली आवश्यकताकी पूर्ति करते हैं, और दुहरी भलाई करते हैं। वे गृहस्थोंके दरवाजोंपर ही साग-भाजी और दूसरी चीजें पहुँचा देते हैं, और उनसे गोरे थोक व्यापारी आसानीसे मुनाफा भी कमा सकते हैं। चूंकि वे इस प्रकार लाभदायक सिद्ध हुए हैं, इसी कारण उन्हें थोक यूरोपीय कोठियोंसे हमेशा माल मिला है। अगर वे भारतीयोंको माल उधार देना स्थगित कर दें तो उनका दक्षिण आफ्रिकामें फेरीवालोंके रूपमें रहना बिलकुल असम्भव हो जायेगा। और हमने जो कुछ फेरीवालोंके सम्बन्धमें कहा है वही छोटे दूकानदारोंपर लागू होता है, और वह भी ज्यादा प्रबलतासे। वस्तुतः छोटे भारतीय दूकानदार जोहानिसबर्ग, प्रिटोरिया और कुछ दूसरे शहरोंके अलावा अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। और छोटे यूरोपीय दूकानदारों तथा भारतीय दूकानदारोंके बीच तीव्र स्पर्धा है, जिसमें भारतीयोंके मुकाबले यूरोपीय हमेशा मुनाफेमें रहते हैं। परन्तु यदि इन दो व्यवसाइयोंको छोड़ दिया जाये तो इन दोनों जातियोंमें कोई स्पर्धा नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ, केप उपनिवेशमें, जहाँ स्पर्धा सर्वथा मुक्त है और भारतीयोंको लगभग सभी अधिकार प्राप्त हैं, भारतीय व्यापारी किसी गोरे दूकानदारको नहीं खदेड़ सके हैं। और न नेटालमें ही, जहाँ इतनी बड़ी भारतीय आबादी है, वे ऐसा कर सके हैं। इसलिए परमश्रेष्ठके प्रति उचित आदर व्यक्त करते हुए हम कहेंगे, उनका यह कथन कि भारतीय गोरोंको व्यापारसे खदेड़ते हैं, अत्यन्त सीमित दायरेको छोड़कर, उचित नहीं मालूम होता। और जहाँ भारतीय किसी गोरेको खदेड़ता दिखाई देता है वहाँ भी वह उसे अपने-आपमें एक सीढ़ी ऊँचा ही उठा देता है, क्योंकि वह बीचका व्यापारी बन जाता है और गोरेको फुटकर व्यापारीके बजाय थोक व्यवसायी बना देता है।

परन्तु परमश्रेष्ठका भाषण इतना ही बताता है कि अभी कितना काम करना बाकी है, जिसके बाद ट्रान्सवालके भारतीय इस स्थितिमें होंगे कि जो व्यापार परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके अनुसार अधिकारके तौरपर उनका होना चाहिए उसपर वे कुछ कब्जा बनाये रखें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–५–१९०४

१५८. परीक्षात्मक मुकदमेपर "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

ट्रान्सवालके परवाना-सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेके बारेमें इतना अधिक कहा जा चुका है और हमें खुद अपनी ओरसे उसके सम्बन्धमें इतना ज्यादा कहना पड़ा है कि हमारे सामने जो विभिन्न कतरनें पड़ी हैं उन्हें हम निपटा नहीं सके हैं। किन्तु उनमेंसे एकको जल्दीसे निपटा देना जरूरी है, क्योंकि वह पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)-वासियोंके आवेशकी सूचक है। किन्तु हमें यह देखकर घोर दुःख होता है कि हमारे सहयोगी ईस्ट रैंड *एक्सप्रेसने* एक अत्यन्त खतरनाक सिद्धान्तका समर्थन किया है। और यद्यपि यह सिद्धान्त इस महीनेकी १४ तारीखके अंकमें बहुत सावधानीसे बताया गया है, फिर भी अनुक्त बातोंसे यह निष्कर्ष निकले बिना नहीं रहता कि पूर्वी ट्रान्सवालके लोगोंको कानून अपने हाथोंमें लेने और अगर भारतीय उस जिलेके भीतर दूकानें खोलनेका कोई प्रयत्न करें तो उन्हें ऐसा करनेसे जबरदस्ती रोकनेका प्रच्छन्न परामर्श दिया गया है। ये हथकंडे और तरीके ब्रिटिश पत्रकारों और उन लोगोंके अनुरूप नहीं हैं जो अपनेको ब्रिटिश कहते हैं। यदि हमारा सहयोगी क्षणिक झुँझलाहटमें इतना नीचा उतर आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह एक तुच्छ-सी वस्तुके लिए उन सब बातोंको त्याग देता है जिन्हें अंग्रेज लोग पवित्र मानते हैं। हम चाहते हैं कि सहयोगी अपना पक्ष स्वयं पेश करे और हमारे कथनमें अत्युक्ति है या नहीं, यह तय करनेका काम पाठकोंपर छोड़ दे। फैसलेपर विचार करनेके बाद, जिसकी व्याख्या उसने गलत की है, वह आगे कहता है:

> यह माना जा सकता है कि एशियाई इस अवसरसे लाभ उठानेकी कोशिश करेंगे। अबतक कुली पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)के नगरोंमें नहीं आने दिये गये हैं; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि आयन्दा कानूनन उनका विरोध नहीं किया जा सकेगा। तब हमें क्या करना है? हम सदाकी तरह ही कृत-संकल्प हैं कि एशियाइयोंको *बाजारोंके* बाहर व्यापार न करने देंगे। *बाजार* नगरोंसे उचित दूरीपर स्थित हैं। अबतक सामान्य रूपमें राज्य जो संरक्षण देता था, क्या उसका स्थान अब ऐच्छिक कार्रवाई ले सकती है? जहाँतक पूर्वी ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, हमारा खयाल है, उसपर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका कोई असर नहीं होगा। इतिहास बताता है कि जब कानून किसी समाजकी रक्षा नहीं कर सकता तब आम तौरपर वह समाज ही अपनी रक्षा आप करनेका कोई मार्ग ढूँढ़ लेता है। तथापि, जनता द्वारा कानून अपने ही हाथोंमें लेनेपर हमें दुःख होना चाहिए। *परन्तु यदि भारतीय अथवा चीनी लोग इस फैसलेके अनुसार इस जिलेके गोरोंमें व्यापार करनेका प्रयत्न करेंगे, तो हमें डर है, वही होगा जो सेनापतिकी भाषामें 'एक खेदजनक घटना' माना जायेगा। एशियाई कानून बोअर-राज्यके पिछले कुछ वर्षोंमें जितना कठोर था उतना ही कठोर फिर बनाये जानेके पूर्व, बारबर्टनमें कुछ एशियाइयोंने व्यापार करनेका प्रयत्न किया था। परन्तु दूसरे दिन तड़के ही उन्हें अपना माल-असबाब छोड़कर भागना पड़ा और इस तरह उनकी जानें फाँसीसे बचीं।* अवश्य ही बारबर्टन वासियोंके इस कृत्यकी घोर निन्दा की जानी चाहिए। परन्तु इस घटनासे हमारे एशियाई मित्रोंको

एक शिक्षा भी मिलती है। और वह है — नगरपालिकाओं और पुलिसके तमाम प्रयत्नोंके बावजूद अन्यत्र भी कदाचित् ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं। ऐसी हालतोंमें व्यवस्था कायम रखनेका भार स्थानीय अधिकारियोंपर रखना उनके प्रति न्याय नहीं होगा और, इसलिए, हमें विश्वास है कि सरकार जनताकी इच्छाओंके, अनुकूल कानून बनानेमें विलम्ब न करेगी।

ऐसे लेख लिखनेका अर्थ है या तो खाली धमकी देना या अपना अभिप्राय गंभीरतासे बताना। यदि पहली बात सही हो तो उस अवस्थामें हमारे सहयोगीने भारतीयोंको सही रूपमें नहीं समझा है। किन्तु यदि दूसरी बात सही हो तो ईस्ट रैंडमें भारतीयोंकी दूकानें खुलनेपर हम ईस्ट रैंडवासी गोरोंके हाथों एक-दो भारतीयोंके फाँसीपर चढ़ा दिये जानेका स्वागत करेंगे। हम साम्राज्य-हितके खयालके अलावा भारतीयोंके हितके लिए यह चाहेंगे। इससे यह समस्त प्रश्न उभर आयेगा और भारतीय भी यह जान सकेंगे कि जो ब्रिटिश झंडा अबतक सामान्य स्वतन्त्रताकी पूरी रक्षा करता रहा है वह अब भी काफी है या नहीं। इससे यह भी जाहिर हो जायेगा कि क्या भारतीय इतने कायर हैं जो ऐसी कार्रवाइयोंसे लड़खड़ा जायेंगे और इस देशसे खिसक जायेंगे। इसलिए जहाँतक भारतीयोंका सम्बन्ध है, हमें इसमें कोई शक नहीं है कि यदि ईस्ट रैंडका गोरा-समाज हमारे सहयोगीकी सलाह मान लेगा तो भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त मजबूत हो जायेगी। परन्तु हम उसे ऐसी ही एक घटनाकी[1] याद दिला दें, जो कुछ वर्ष पहले उमतलीमें हुई थी। वहाँ एक भारतीयको व्यापारका परवाना मिला था। इसपर शहरके सब यूरोपीय चढ़ आये। उन्होंने भारतीयको धमकी दी कि यदि वह दूकान बन्द न करेगा तो वे उसकी दूकानको जला देंगे और खुद उससे भयंकर बदला लेंगे। सौभाग्यवश उसने, अकेला होनेपर भी, भीड़का सामना किया और दूकान बन्द करने या भाग जानेसे इनकार कर दिया। इतनेमें ही पुलिसकी मदद आ पहुँची। इसपर भीड़ अपनेको लाचार पाकर वहाँसे हट गई और वह भारतीय उससे छूटकर शान्तिपूर्वक अपना व्यापार जारी रख सका। हम अपने सहयोगीके विचारके लिए यह घटना पेश कर रहे हैं और उससे एक बार फिर पूछते हैं कि एक प्रतिष्ठित पत्रका कर्तव्य क्या है — जिस समाजके लिए वह प्रकाशित होता है उसमें कानून-भंगकी उत्तेजना फैलाना या उसको व्यवस्था और सद्व्यवहारकी शिक्षा देना?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ६१।

१५९. श्री डैन टेलर

जिस समय श्री मेह्-ऋार्टीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसी समय श्री डैन टेलरने एक बहुत ही जोरदार भाषण दिया, जिससे सभी लोग चकित रह गये। उन्होंने सूचना दी कि वे भारतीयोंके बजाय चीनियोंको नेटालमें लानेका पूरा प्रयत्न करेंगे। १८९६ के श्री डैन टेलर[1] आजके श्री डैन टेलरसे बिलकुल भिन्न थे। वे उस समय सभी प्रकारके रंगदार मजदूरोंके विरुद्ध प्रधान आन्दोलनकारी थे। वे बाग-मालिकोंके विरुद्ध जहर उगलते थे और जो लोग तभी भारतसे आये थे उनको नेटालके किनारे उतरनेके हकका दावा करनेपर समुद्रमें फेंक देनेके लिए कृतसंकल्प थे। ये सब इतिहासकी बातें है।[2] परन्तु समयके साथ ढंग बदलते हैं और उसी तरह आदमी भी। और अब श्री डैन टेलरका खयाल है कि उपनिवेशकी खुश-हालीके लिए किसी-न-किसी रंगदार मजदूर-वर्गकी नितान्त आवश्यकता है। अगर वे अपना प्रस्ताव स्वीकृत करा सकें तो हम अवश्य सुझाव देंगे कि भारतीय समाज एक प्रस्ताव स्वीकार करके उनको धन्यवाद दे। वे भारतीय मजदूरोंके विरुद्ध इसलिए हैं कि वे जानते हैं, भारत-सरकार भारतीयोंसे गुलामोंकी तरह उतना काम नहीं लेने देगी जितनेसे उनको सन्तोष हो सके। हम भारतीय मजदूरोंको गिरमिटिया बनानेका विरोध इसलिए करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि जिस रूपमें वे इस उपनिवेशमें लाये जाते हैं, वह स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरके शब्दोंमें, खतरनाक रूपसे दासताके निकट है। हम ३ पौंड सालाना व्यक्तिकरको कभी मंजूर नहीं कर सकते। यह कानून तो भारतीयोंसे उनकी आजादीका मूल्य वसूल करता है — उस आजादीका, जो स्वर्गीय श्री एस्कम्बके शब्दोंमें, उसे तब दी जाती है जब वह तुच्छ-सी मजदूरीके बदलेमें अपने जीवनके सर्वोत्तम पाँच वर्ष उपनिवेशको दे चुकता है। इसलिए यद्यपि हमारे दृष्टिकोण भिन्न हैं, फिर भी हमें अपने-आपको श्री डैन टेलरसे पूर्णतः सहमत पाकर बड़ा संतोष होता है और हम सचमुच उस दिनका स्वागत करेंगे जब मौजूदा हालतोंमें भारतीयोंको गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें लाना बन्द कर दिया जायेगा। साथ ही, इससे उपनिवेशियोंकी आँखें खुल जायेंगी और वे देख लेंगे कि स्वतन्त्र भारतीयोंकी उपस्थितिसे भी उपनिवेशकी समृद्धिमें कितनी वास्तविक वृद्धि हुई है। भारतीयोंको थोड़ी-सी मिल्क मुतलक जमीन मिल जानेपर कोसना तो बड़ा आसान है; मगर जो सज्जन इसके विरुद्ध चिल्लाते हैं वे यह बिलकुल भूल जाते हैं कि जो जमीन भारतीयोंके हाथोंमें आ जाती है उसका चप्पा-चप्पा सचमुच बागके रूपमें परिणत हो जाता है। हमारी समझमें नहीं आता कि जिस जमीनको यूरोपीय छूना भी नहीं चाहते उसको यदि भारतीय उपयोगी बना देते हैं तो उसमें आपत्तिकी क्या बात हो सकती है। मगर हाथ-कंगनको आरसी क्या? अगर श्री डैन टेलर भारतीयोंका उपनिवेश-प्रवास बन्द करानेमें सफल हो जाते है, तो जो बात हम एक रायके तौरपर कहते रहे हैं वह भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंके प्रवासकी मनाहीके बाद पूर्ण सार्थक हो जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–५–१९०४

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २२६।

२. यह किस्सा विस्तारसे "प्रार्थनापत्र: श्री चेम्बरलेनको" में बताया गया है, देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७ और आगे।

१६०. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन[1]

लन्दनसे प्राप्त एक समुद्री तारमें बताया गया है कि स्वर्गीय सर जॉन राबिन्सनके स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके उद्देश्यसे इस उपनिवेशके समान लन्दनमें भी एक समिति बनाई गई है। यह उचित ही हुआ है — भले इसका कारण सिर्फ यही क्यों न हो कि वे उत्तरदायी शासनमें उपनिवेशके पहले प्रधानमन्त्री थे और उपनिवेशको जिम्मेदार हुकूमत दिलानेका प्रयत्न करनेवालोंमें प्रमुख थे। परन्तु लोक-कल्याणके प्रति उनकी निष्ठा तथा आत्मत्यागके कारण उन्हें जनताके सम्मानका इससे कहीं ज्यादा हक है। स्वर्गीय सर जॉन बिलकुल अपने प्रयत्नोंसे बड़े हुए थे। उन्होंने पत्रकारके रूपमें जो काम किया उसे प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह जानता है और शिक्षाशास्त्रीकी हैसियतसे भी वे दक्षिण आफ्रिकामें शायद किसीसे दोयम नहीं थे। उनके लिए पत्रकारिता रुपये-आने-पैसेकी चीज नहीं थी; वे उसका उपयोग लोकमतको शिक्षित करनेके साधनके रूपमें करते थे और उसके द्वारा समाजको हितकर बल प्रदान करते थे। असलमें वे अपनी प्रतिभाका उपयोग बुद्धि-विलासके लिए नहीं, वरन् देश-हितके लिए करते थे। सार्वजनिक वक्ताके रूपमें भी वक्तृत्व-कलामें उनका स्थान शायद स्वर्गीय श्री एस्कम्बके ही बाद था, यद्यपि शैली शायद उनकी ही अधिक सुसंस्कृत थी। हमें आशा है कि इस दिवंगत राजनयिककी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके कार्यमें भारतीय समाज अपना योग प्रदान करेगा। उन्हें एक विशेष दृष्टिकोणसे भी भारतीयोंका ध्यान आकर्षित करनेका हक है; और यहाँ हम कृतज्ञतापूर्वक उस अवसरका स्मरण कर सकते हैं, जब स्वर्गीय सर जॉनने, बीमार होनेके कारण बहुत असुविधा होनेपर भी, उस सभाकी अध्यक्षता करना मंजूर किया था जो भारतीयोंने लेडीस्मिथ, मेफेकिंग और किम्बर्लेकी मुक्तिकी खुशी मनानेके लिए आयोजित की थी। उन्होंने उस समय जो भाषण[2] दिया था वह प्रोत्साहनसे पूर्ण था और युद्ध-कालमें भारतीयोंने जो काम किया था उसको उसमें उदारतापूर्वक मान्यता दी गई थी। इससे उनकी विशाल-हृदयता और सहानुभूतिका परिचय मिलता था और साथ ही यह भी प्रकट होता था कि कमसे-कम वे तो मौजूदा द्वेषभावसे अछूते थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१-२. देखिए "स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन", १२-११-१९०३।

१६१. गिरमिटिया भारतीय

हमको प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी ३१ दिसम्बर १९०३ तकके सालकी रिपोर्टकी एक प्रति मिली है। इसके अनुसार उपनिवेशमें गिरमिटिया भारतीयोंकी आबादी, जिसमें उनकी सन्तानें भी शामिल हैं, सालके अन्तमें ८१,३९० थी, जब कि १८९६ में वह ३१,७१२ और १९०२ में ७८,००४ थी। पिछले सालकी पैदाइशकी दर ३२.११ और मौतकी दर २०.७८ थी। सबसे कम मौतकी दर १८९८ में रही, यानी १४ ३०। और विलक्षण बात यह है कि उसी सालमें सबसे कम पैदाइशकी दर भी दिखाई देती है, यानी १९.०९। आलोच्य वर्षमें ५२ आदमी प्लेगसे, ३२८ निमोनिया और फेफड़ोंकी अन्य शिकायतोंसे और २६२ राजयक्ष्मासे मरे। ये आँकड़े कुछ अशान्तिजनक हैं और इसलिए इनको सावधानीसे जाँचनेकी जरूरत है। जैसा कि रिपोर्टमें बताया गया है, कोयलेकी खानोंमें भारतीयोंकी मौतकी दर अधिक ऊँची रही है। खान-खुदाईके इलाकेमें जो थोड़ेसे भारतीय हैं उनमें ४० मौतें हुईं। इनमें से १६ राज-यक्ष्माकी और ८ निमोनियाकी थी। और यह उम्मीद है कि संरक्षक तबतक चैनसे नहीं बैठेगा जबतक कि इस मृत्यु-संख्यामें भारी कमी न हो जाये। संरक्षकके दफ्तरमें गतवर्ष १,०५३ विवाह दर्ज किये गये जिनमें २ बहुविवाह थे। पिछले साल भारतको लौटनेवाले २,०२९ भारतीयोंकी बचत, रुपया और जेवर मिलाकर, ३४,६९० पौंड थी, अर्थात् प्रति व्यक्ति १७ पौंडसे कुछ ज्यादा। इसमें अक्सर पेश किये जानेवाले इस खयालसे विपरीत एक निर्णायक तर्क मिलता है कि भारतीय लोग बड़े मजेमें भारत वापस जा सकते है और अपनी कमाईसे अपनी बाकी जिन्दगी बिना कुछ किये बिता सकते हैं, या अपनी बची पूंजीको किसी अन्य व्यवसायमें लगा सकते हैं, जिससे अच्छी रोजी कमा सकें। भारत जैसे गरीब देशमें भी संजी-दगीसे यह नहीं कहा जा सकता कि १७ पौंडसे एक आदमीका गुजारा बहुत दिन हो सकता है। २,०२९ लौटे भारतीयोंमें से १,५४२ मद्रासी और ४८७ कलकत्तावाले थे। मद्रासियोंकी बचतकी रकम थी २७,४१७ पौंड अर्थात् १८ पौंड प्रति व्यक्ति और कलकत्तावालोंकी बचतकी रकम थी ७,२७३ पौंड अर्थात् १५ पौंड प्रति व्यक्ति। संरक्षकने प्रवासियोंकी बचतका जो वर्गीकरण दिया है वह बड़ा दिलचस्प है। इसके अनुसार ४७ मद्रासियोंमें से प्रत्येकके पास २,००० रुपयेसे अधिक थे जब कि कलकत्तावालोंमें से ५ के पास ही इतने रुपये थे। २५ मद्रासियोंके पास २,००० रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ६ कलकत्तावालोंके पास थे। २२ मद्रासियोंके पास ५० रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ११ कलकत्तावालोंके पास थे। इस तरह, कलकत्तावाले शुरूसे आखिर तक कमजोर उतरे हैं। इससे यह भी जाहिर है कि वे मद्रासियोंके बराबर न तो मेहनती है और न किफायती। अच्छा हो कि हमारे कलकत्तावाले भाई इस जरूरी तथ्यको अंकित कर लें और जो उनमें प्रभावशाली हैं वे उनको अधिक दूरदर्शिताकी आवश्यकता समझायें। ८१,३९० भारतीयोंमें से ३०,१३१ गिरमिटिया थे और बाकी मुक्त हो गये थे। "मालिक और नौकर" शीर्षकके अन्तर्गत हमको बताया गया है कि आम तौरपर मालिक और गिरमिटिया भारतीयोंके बीच सम्बन्ध अच्छे रहे हैं और परिणामस्वरूप भारतीयोंके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।

जो भारतीय संरक्षकके पास शिकायतें करनेके लिए जानेके इच्छुक हों उनके सम्बन्धमें नये नियम बना दिये गये हैं। पहले अगर कोई भारतीय यह साबित कर देता था कि वह संरक्षकके पास शिकायत पेश करने जा रहा है तो वह गिरफ्तारीसे मुक्त रहता था। लेकिन

नये नियमोंके अनुसार वह गिरफ्तारीसे तवतक मुक्त नहीं रह सकता जवतक कि अपने डिवीजनके न्यायाधीशसे इस आशयका कोई पास न प्राप्त कर ले। यह पास मिल भी सकता है और नहीं भी। इस प्रकार वास्तवमें उसको संरक्षकके कार्यालयतक पहुँचनेके लिए अपना अभियोग प्रारम्भिक रूपमें न्यायाधीशके सामने प्रमाणित करना पड़ता है। हम यह कहे वगैर नहीं रह सकते कि यह एक ऐसी नई वात है जिसकी कोई खास आवश्यकता नहीं थी। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर उस भारतीयको, जो शिकायतें करना चाहता हो, शिकायतें करनेकी अबाध रूपसे स्वतन्त्रता होती। निस्सन्देह उनमें कुछ निरर्थक शिकायतें भी होतीं, परन्तु हमारे विचारमें सच्ची शिकायतोंके रास्तेमें कठिनाई पैदा करनेके वजाय उन निरर्थक शिकायतोंकी उपेक्षा करना अधिक अच्छा है।

भारतीय मजदूरोंकी माँग भयानक गतिसे वढ़ रही है। सालके अन्ततक १५,०३३ प्रार्थना-पत्र ऐसे थे जिनपर कोई कार्रवाई ही नहीं की गई थी। भारत-स्थित प्रतिनिधि इस असाधारण माँगको पूरा करनेमें विलकुल असमर्थ हैं। इससे स्पष्ट है कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंके वगैर इस उपनिवेशका काम विलकुल नहीं चल सकता और फिर भी हम लोगोंको इसके विरोध में चिल्लाते और यह तर्क देते हुए सुनते हैं कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंने उपनिवेशको वरवाद कर दिया है।

आत्महत्याओंके विषयमें संरक्षकका कहना यह है:

> आत्महत्याओंकी संख्या, जो इन आँकड़ोंमें शामिल नहीं है, इस सालमें ३१ रही। इनमें २० मर्द और ३ औरतें गिरमिटिया थीं जब कि ६ मर्द, १ औरत और १ लड़का स्वतंत्र भारतीय थे। आत्महत्याकी प्रत्येक घटना किन स्थितियोंमें हुई उसकी जाँच न्यायाधीश करता है और जब कभी सवूतसे ऐसा लगता है कि मौत किसी भी रूपमें मालिक या किसी नौकरके वुरे वरतावके परिणामस्वरूप हुई है तव मैं स्वयं उस खेती में जाता हूँ और घटनाकी स्थितियोंकी जाँच करता हूँ। केवल एक ही उदाहरण इस तरहका है, जिसमें सवूत इस ओर संकेत करता था; परन्तु मेरी खुदकी जाँचसे इस सन्देहकी पुष्टि नहीं हुई। यह सन्देह मृत व्यक्तिके जहाजी साथियोंने पैदा किया था। मृत व्यक्ति भारतमें एक दूकानमें सहायक था और मालिकका वही-खाता रखता था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने वास्तवमें आत्महत्या इसलिए की, कि गन्नेकी खेतीका काम उसके अनुकूल न था। एक औरतने एक ऐसे सम्पन्न पुरुषसे शादी कर ली थी जिसकी गिरमिटकी पहली मियाद पूरी हो चुकी थी। उस औरतके साथ व्यवहार भी अच्छा किया जाता था; किन्तु उसने इसलिए आत्महत्या कर ली, कि विवाहसे नौ महीने पीछे उसे एक निम्न जातिके पुरुषसे सम्बन्ध कर लेनेपर पछतावा हुआ। एक आदमीने इसलिए आत्महत्या की, कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गई थी। एक दूसरे व्यक्तिने अपनी पत्नीको जानसे मारनेकी कोशिशकी थी, और उसने ऐसा क्यों किया यह खयाल आनेपर अपने-आपको फाँसी लगा ली। इस रहस्यका पता अभीतक नहीं लगा है कि एक नौ वर्षके स्वतंत्र भारतीय वालकने, जो अपने पिताके भारतीय स्वामीके पशु चरा रहा था, आत्महत्या क्यों कर ली। साधारणतः गवाहोंका कहना है कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं वता सकते। और जिनके वारेमें माना जाता है कि वे जानते हैं, वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करें तो वहुत-सी घटनाओंका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है।

इस दुःखजनक विषयमें हमने संरक्षकका पूरा कथन पेश कर दिया है और हम इस बातपर आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि यह मामला गम्भीर विचार किये बिना यों ही खतम कर दिया गया। गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ आये सालकी चीज बन गई है और हमारे विचारमें इसके कारणकी जाँच गहराईसे की जानी चाहिए। भारतीयोंके संरक्षकका यह उत्तर कोई उत्तर नहीं है कि जिनके बारेमें माना जाता है कि वे जानते हैं वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करें तो बहुत-सी घटनाओंका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है। अंग्रेजीकी एक सीधी-सादी कहावत है, "जहाँ चाह वहाँ राह।" और अगर संरक्षक हमारी ही तरह अनुभव करे तो चूँकि उसको एक निरंकुश शासकके अधिकार प्राप्त हैं, इसलिए उसे आत्महत्याके कारण ढूँढ़नेमें रत्ती-भर भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। संरक्षकके बयानसे इस बातका काफी पता लग जाता है कि कहीं न कहीं खराबी जरूर है। स्वतन्त्र भारतीयोंकी ५१,२५९ जनसंख्यामें ८ आत्महत्याएँ हुई और ३०,१३१ गिरमिटिया भारतीयोंमें २३। दोनोंके अनुपातोंमें यह इतनी बड़ी विषमता क्यों है? पेरिस इस बारेमें सबसे बदनाम माना जाता है। वहाँ आत्महत्याओंकी सबसे अधिक संख्या अर्थात् दस लाखमें ४२२ पाई जाती है। परन्तु गिरमिटिया भारतीयोंमें यह संख्या दस लाखमें ७४१ है। ये आँकड़े गम्भीर विचारके लिए काफी कारण उपस्थित करते हैं। हमारा खयाल है इस विषयमें रिपोर्टमें दी गई जानकारी बहुत ही थोड़ी है। आत्महत्याओंकी संख्या किस खेतीमें सबसे ज्यादा है, यह बतानेके लिए एक विवरण दिया जाना चाहिए और न्यायाधीशकी जाँचमें जिस प्रकारका सबूत आदि दिया गया है, कमसे-कम उसका सार भी होना चाहिए। हम इन भयंकर आँकड़ोंसे मालिकोंके विपक्षमें कोई परिणाम निकालना नहीं चाहते। परन्तु हम भारतीयों और मालिकोंके हितमें पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते हैं और हमारे विचारमें कारणकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नहीं कर सकेगी। एक आदर्श आयोगमें एक प्रतिष्ठित डॉक्टर, एक प्रवासी-निकायका नामजद व्यक्ति, संरक्षक और, अगर यह सुझाव देना धर्म-विरुद्ध नहीं है तो, उपनिवेशका एक सम्मानित भारतीय सम्मिलित किये जाने चाहिए। ऐसा आयोग सच्चाईतक पहुँचे बिना नही रह सकता। इस विषयपर जितना प्रकाश डाला जायेगा सब सम्बन्धित लोगोंके लिए उतना ही अधिक अच्छा होगा। और हम आशा करते है कि हमने जो बातें कहीं हैं उनपर अधिकारी अनुकूल विचार करेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–६–१९०४

१. इस सम्बन्धमें गांधीजीने दादाभाई नौरोजीसे पत्र-व्यवहार किया था, जैसा उस पत्रसे प्रकट है जो उन्होंने २९ जूनको भारत-मन्त्रीको लिखा था: "... मेरा ट्रान्सवाल-स्थित संवाददाता नेटालकी खेतियोंमें गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंकी अस्वाभाविक संख्याका उल्लेख करता है और कहता है कि "इन आत्महत्याओंका बहुत ऊँचा औसत साल-ब-साल चला आता है"। उसने ऑरेंज रिवर उपनिवेशके सख्त एशियाई-विरोधी कानूनोंका भी जिक्र किया है जो वहाँ अब भी लागू हैं।" (इंडिया ऑफिस: ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १५६७) गांधीजीका पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है।

१६२. प्रिटोरिया नगर-परिषद और सरकार

मालूम होता है, सरकार और प्रिटोरिया नगर-परिषद सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंपर असहमत होनेमें प्रवीण हैं; और हर मामलेमें परिषद ही बुरी तरह गलतीपर होती है। सबसे ताजा उदाहरण उसके अपने संविधानके सम्बन्धमें ही है। परिषद-करदाताओंकी अधिक सेवा करनेमें तबतक असमर्थ है जबतक कि वह नगर-निगमोंकी व्यवस्थासे सम्बन्धित १९०३ के ५८ वें अध्या-देशको माननेके लिए तैयार नहीं हो जाती। परन्तु परिषद ऐसा करनेके लिए, परिषद-सदस्य श्री फेन वोइष्टनके शब्दोंमें, तबतक रजामन्द नहीं है जबतक कि "उसको रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाये।" और ऐसा कोई अधिकार उक्त अध्यादेशमें रखा नहीं गया है। इसलिए सरकारने परिषदको सूचित कर दिया है कि वह या तो अध्यादेशको मानने का निश्चय कर ले, या बिलकुल न माननेका, क्योंकि मामला कई महीनोंसे घिसट रहा है। उसने परिषदको बताया है कि,

> जबतक वह अध्यादेशको नहीं मानती तबतक ट्रामगाड़ियाँ नहीं चला सकती, आग बुझानेके दस्तेपर या अन्य अनेक आवश्यक कामोंपर रुपया खर्च नहीं कर सकती। विशेष रूपसे वह सरकारके अतिरिक्त अन्य लोगोंसे रुपया उधार नहीं ले सकती, और सरकार उसे कर्ज देनेकी स्थितिमें है नहीं।

सरकारकी इस सूचनापर परिषदने रोष प्रकट किया है और यह प्रस्ताव स्वीकार करके इस मामलेको फिर ताकमें रख दिया कि "पैदल-पटरियोंसे सम्बन्धित उपनियमोंके स्वीकार हो जानेके बाद परिषद १९०३ के ५८ वें अध्यादेशको माननेके लिए तैयार हो जायेगी।" यह परिषदकी दी हुई एक चुनौती है — चुनौतीसे जरा भी कम नहीं। यदि विरोधी पक्ष ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगर-परिषद न होता तो यह कारवाई बहुत ही लड़कपन-भरी समझी जाती। एक ओर है परिषदके कानूनी अस्तित्वका प्रश्न और, स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवके कथनानुसार, कर-दाताओंको हजारों पौंड सालका घाटा; दूसरी ओर है रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे वंचित करनेका प्रश्न। एक मामूली कामकाजी निगम (कारपोरेशन) तो, किसी भी हालतमें, सबसे पहले अध्यादेशके अनुसार विपुल अधिकार प्राप्त कर लेता और फिर, यदि आवश्यक समझा जाता तो, अपने पटरी-सम्बन्धी उपनियमोंको बनानेका आग्रह आरम्भ करता। लेकिन प्रिटोरिया नगर-परिषदने क्रम ही उलट दिया है और उस जिद्दी बालककी तरह, जो टबमें बैठकर मचल जाता है, वह तबतक प्रसन्न नहीं होगी जबतक कि उसे रंगदार लोगोंको पटरियोंपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाये। सरकार और परिषदके बीचमें इस संघर्षकी प्रगतिको हम दिलचस्पीके साथ देखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६३. श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय

श्री लवडे प्रिटोरियामें नगराध्यक्षके सम्मानमें आयोजित भोजके अवसरपर ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ फिर उभड़ पड़े हैं। प्रतीत होता है, माननीय सदस्य अपने दिमागमें भारतीयोंके भयको दूर करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। उन्होंने इस प्रश्नपर यह कहा है:

> मैं मानता हूँ कि युद्धकालसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति थी वह तबतक अपरिवर्तित, अनुल्लंघनीय और सुरक्षित रहनी चाहिए जबतक उत्तरदायी शासन नहीं आ जाता (तालियाँ)। यह तमाम लोगोंकी आवाज है और इसका हेतु है आत्मरक्षा। भारतकी तरफसे कुछ भी आवेदन-निवेदन हों, उनका एक ही जवाब हो सकता है। इससे अधिक काले आदमियोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें अब स्थान नहीं है (जोरसे तालियाँ)। भारतीय इस देशसे जो रुपया खींच कर ले जाते हैं उसके बदलेमें वे इस देशमें लाते क्या हैं? अभीतक तो वे बीमारियोंके सिवा कुछ लाये नहीं हैं। इन बीमारियोंपर हमें थोड़े-थोड़े समय बाद कुछ लाख पौंड खर्च करने पड़ते हैं। और, इससे बीमारियाँ नष्ट नहीं होतीं, कुछ समयके लिए रुक भर जाती हैं। ऐसी है इस देशमें भारतीयोंकी स्थिति। और फिर भी वे समुद्रपारीय भावुक सज्जन कहते हैं कि हम यह स्थिति चुपचाप स्वीकार कर लें। मैं अपनी तरफसे — और सारे देशकी तरफसे भी — कह सकता हूँ कि अगर दक्षिण आफ्रिकाके द्वार पूर्वी लोगोंके हमलेके लिए खोल दिये गये तो हमारे लिए आफ्रिकाको पूर्णतः श्वेत लोगोंका देश रखना — जिसमें श्वेत लोगोंकी प्रभुता हो — असम्भव हो जायगा (तालियाँ)। इस देशमें बड़ा भय है कि समुद्रपारकी दलगत राजनीतिके हेतु हमारा उपयोग किया जा रहा है और आगे किया जायेगा। मैं इस देशमें बहुत वर्षोंसे रहता हूँ। मुझे स्मरण है, सन् १८८१ में भी हम इसी हालतमें से गुजरे थे और एक खास वर्गके राजनीतिज्ञोंने — मैं उन्हें राजनयिक नहीं कह सकता — इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके हेतु दक्षिण आफ्रिकी मामलोंका उपयोग किया था और उसके लिए इस देशका बलिदान किया था (तालियाँ)। हम नहीं चाहते कि हमारे घरेलू मामले इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके खेलकी गेंद बनाये जायें (तालियाँ)।

इस प्रकार श्री लवडे चाहते हैं कि युद्धकालसे पहले भारतीयोंकी जो स्थिति थी वह "अपरिवर्तित, अनुल्लघनीय और सुरक्षित" बनी रहे। इसलिए क्या वे सरकारसे यह कहनेकी कृपा करेंगे कि वह भारतीयोंको लड़ाईसे पहलेकी तरह परवानोंके बिना जहाँ वे चाहें वह व्यापार करने दे और उन्हें बिलकुल किसी रुकावटके बिना उपनिवेशमें प्रविष्ट होने दे? हम उनसे आँकड़े देकर यह भी बतानेका अनुरोध करेंगे कि भारतीय इस देशसे कितना रुपया खींच ले गये हैं, और यदि वे अनुमति दें तो हम उन्हें यह बता सकते हैं कि भारतीयोंकी अधिकांश कमाई थोक यूरोपीय व्यापारियों और मकान-मालिकोंकी थैलियोंमें पहुँच गई है। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी गफलतका जो पर्दाफाश हुआ है उसे देखते हुए यह कहना कि भारतीय इस देशमें बीमारीके सिवा और कुछ लाये ही नहीं, ऐसा ही है जैसा कि "सच्चाईके अड़ोस-पड़ोसमें चक्कर लगाना।" और, आखिरकार, क्या श्री लवडे प्लेगको छोड़कर ऐसी कोई भी दूसरी बीमारी

बता सकते हैं, जिससे भारतीयोंका थोड़ा भी सम्बन्ध हो? उदाहरणके लिए, मोतीझराको ही लीजिए, जो डॉक्टर टर्नरके मतानुसार प्लेगसे कहीं अधिक घातक और संक्रामक है। क्या यह सही नहीं है कि भारतीय इस बीमारीसे खास तौरसे मुक्त हैं और इसकी छूत और मृत्युएँ अधिकतर यूरोपीयोंतक ही सीमित हैं? क्या इसीलिए माननीय सदस्य यूरोपसे लोगोंका यहाँ प्रवास बन्द कर देंगे? परन्तु ऐसे आदमीसे, जो शंका-समाधान चाहता ही न हो, वादविवाद करना बेकार है और यदि हमने भारतीय प्रश्नपर श्री लवडेके विचारोंकी चर्चा करनेका कष्ट किया है तो केवल इसीलिए कि हम चिन्तित हैं, उनका भाषण पढ़नेवाले लोग उस सबसे भ्रमित न हो जायें जो उन्होंने आर्थिक शोषण और प्लेगके सम्बन्धमें कहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६४. फोक्सरस्ट और ब्रिटिश भारतीय

भारतीय परवानोंसे सम्बन्धित परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयने जो फैसला दिया है उससे फोक्सरस्टके गोरे लोग बहुत ज्यादा उत्तेजित हैं। हमें यह बताया गया है कि उन्होंने पिछली २७ मईको ऐबनर्थी हॉलमें एक सभा की थी; यह "सभा बेहद सफल रही; सभा-भवन खचाखच भरा था।" उन्होंने सभामें कई प्रस्ताव पास किये, जो बड़े उग्र थे। उनमें से एक प्रस्ताव द्वारा "सारे देशसे अपील की गई है कि वह जनमतकी माँग करे जिससे लोगोंको इस देशमें भारतीय व्यापारकी शुरुआत और स्थिरताके विरोधका मौका मिले।" और फोक्सरस्टके लोगोंसे कहा गया कि वे भारतीय व्यापारको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई प्रोत्साहन न दें। इन सब बातोंसे हमारा कोई झगड़ा नहीं; यह कार्रवाई बिलकुल वैधानिक है और अगर आम बहिष्कार किया जाये तो भारतीय उसकी शिकायत नहीं कर सकते। मगर यह आन्दोलन बिलकुल मिथ्या मालूम होता है, क्योंकि आन्दोलनकारियोंको लोगोंसे इस कार्यक्रमपर अमल करानेके अपने सामर्थ्यपर बिलकुल विश्वास नहीं है। कारण यह है कि, एक ही साँसमें जहाँ वे पूरे बहिष्कारका प्रस्ताव करते हैं वहीं सरकारसे यह भी कहते हैं कि वह भारतीयोंसे वह अधिकार छीन लेनेके लिए कानून बनाये, जो सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अनुसार उन्हें इस देशके कानूनकी रूसे प्राप्त है। नगर-निकायके सभापति श्री फिशरने सुझाव दिया कि "जबतक कानून न बने तबतक उन्हें, सीधे या टेढ़े, अगले कुछ महीने निकालने ही चाहिए।" हम नहीं जानते कि इस वाक्यांशका क्या अर्थ है; परन्तु हम बड़े आदरपूर्वक इतना कह सकते हैं कि अगर इसका मतलब वैधानिक उपायोंका परित्याग है तो यह श्री फिशर जैसे जिम्मेदार पदपर आसीन सज्जनके अयोग्य है। और हम आशा करते हैं कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थिति जिन अयोग्य कठिनाइयोंसे घिरी हुई है, सरकार उनपर ध्यान देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६५. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद और ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने सूचना दी है कि वह विधान-परिषदमें एक गैरसरकारी विधेयक पेश करना चाहती है। इस विधेयकमें अन्य बातोंके साथ-साथ परिषदके लिए ये अधिकार माँगे जायेंगे :

> **वह नगरपालिकाकी हदके बाहर वतनी और रंगदार लोगोंके लिए बस्तियाँ और एशियाइयोंके लिए *बाजार* कायम कर सके और इन बस्तियों या *बाजारोंमें* अपने बनाये उपनियम लागू कर सके। और वतनी, एशियाई या रंगदार लोगोंके रहनेके लिए किसी भी बस्ती या *बाजारमें* मकानात बना सके।**

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि नगर-परिषद फिलहाल उस अधिग्रहण अध्यादेशकी शर्तोंको पूरा करनेका कोई इरादा नहीं रखती, जिसके अनुसार अधिगृहीत क्षेत्रसे बेदखल किये हुए लोगोंको उसके पड़ोसमें ही जगह देना उसका फर्ज है। जो सोलह सौ भारतीय बस्तीसे हटाकर क्लिपस्प्रूट भेजे गये थे उनको अभीतक उचित घर नहीं मिले हैं। उनमें से कुछ अभीतक क्लिपस्प्रूटमें तम्बुओंमें ही रहते हैं और मजबूरीकी बेकारीसे सन्तोष करते हैं। जिन्हें शहरमें वापस आनेकी इजाजत दी गई है उन्हें जोहानिसबर्गमें रहनेके अधिकारके बदले भारी किराया चुकाना पड़ता है और वह भी सिर्फ इसलिए कि नगर-परिषद अपना कानूनी फर्ज अदा नहीं कर सकी है। यह विचार तो है ही, परन्तु इसके अलावा भी, यदि विधान-परिषद नगर-परिषदको उपर्युक्त सत्ता दे देगी तो उससे ब्रिटिश भारतीयोंका मामला बड़ा गम्भीर हो जायेगा और यह भारतीयोंके खिलाफ एक ऐसा कदम होगा जो पुराने गणतन्त्री कानूनसे बहुत आगे बढ़ जायेगा। क्योंकि मौजूदा हालतोंमें तो सफाई-सम्बन्धी मामलोंके सिवा भारतीय *बाजारों* या बस्तियोंपर नगर-परिषदका कुछ भी नियन्त्रण नहीं है। इन स्थानोंको निश्चित करनेका अधिकार सरकार और केवल सरकारको ही प्राप्त है। और कमसे-कम उस सीमित इलाकेमें लोगोंको स्थायी सम्पत्ति रखने और अपने खुदके घर बनानेका अधिकार है। अगर नगर-परिषदके इरादे पूरे हो जाते हैं तो भारतीय भी उसी स्तरपर आ जायेंगे जिसपर वतनी लोग हैं और पूरी तरह नगर-परिषदकी दयापर निर्भर हो जायेंगे। वे निरे किरायेदार होंगे जिन्हें हटानेके लिए सूचना देनेकी भी जरूरत न होगी और लगातार हटाये जा सकेंगे। फिर इन बस्तियोंमें जमीनकी मिल्कियत खत्म हो जायेगी। ऐसी स्थितिकी कल्पना भी भयंकर है। और सत्य यह है कि स्थानीय सरकार कमजोर पक्षकी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हुई है। यदि यह बात न होती तो हम कभी यह विश्वास न करते कि नगर-परिषद ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें जो अधिकार लेना चाहती है वे उसे मिल भी सकते हैं। हम आशा ही कर सकते हैं कि परिषदके सदस्य लड़ाईसे पहलेके दिनोंको और अपने उन वचनोंको याद रखेंगे जो उन्होंने नव विदेशी (एटलांडर) होनेकी अवस्थामें ब्रिटिश भारतीयोंको दिये थे और ईमानदार व्यक्तिके रूपमें उन्हें पूरा करके अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६६. ट्रान्सवालका प्रस्तावित नया एशियाई कानून

सहायक उपनिवेश-सचिव श्री मूअरने ईस्ट रैंड पहरेदार संघको उत्तर दिया है कि सरकार एशियाइयोंसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमें अर्थात् १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ में, परिवर्तन करनेका विचार गम्भीरतासे कर रही है। हमें मालूम है कि सरकार पिछले अठारह महीनेसे ऐसा विचार कर रही है — गम्भीरतासे कर रही है या नहीं, यह विवादास्पद है। परन्तु हम इसका कारण भी खूब समझते हैं। अब चूँकि न्यायालयने १८८५ के कानून ३ की सरकारी व्याख्या और सरकारी नीति अमान्य कर दी है, इसलिए वह इस मामलेमें गम्भीर हो गई है। श्री लिटिलटन अनेक मामलोंमें यह दिखा चुके हैं कि वे मजबूत इरादेके व्यक्ति हैं। रोडेशियामें खानोंके मालिकोंने चीनी मजदूर लानेकी माँग की थी; किन्तु उन्होंने बेझिझक यह तय किया कि वे उनकी माँगपर तबतक ध्यान न देंगे जबतक इस दक्षिण आफ्रिकी प्रदेशकी विधान-परिषद इस मामलेमें अपना दृष्टिकोण न बता दे। अब फिर उन्होंने सही या गलत यह निश्चय किया है कि ट्रान्सवालमें चीनियोंको लाना देशके लिए अच्छा है और ट्रान्सवालके लोग इसके पक्षमें हैं। इस सम्बन्धमें वे इंग्लैंड और ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोंके प्रबल विरोधका सामना करनेमें भी नहीं झिझके हैं। तब क्या वे ट्रान्सवालके भारतीय कानूनके सम्बन्धमें भी अपने मतपर ही दृढ़ रहेंगे? उन्होंने सर मंचरजी भावनगरीको आश्वासन दिया है कि वे इस मामलेपर अत्यन्त गम्भीरतासे विचार करेंगे। चीनियोंको लानेका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न नहीं है। ब्रिटिश प्रजाजनोंके दर्जेपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन यह माना जा चुका है कि भारतीयोंका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। इसके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। दक्षिण आफ्रिकाके बाहरके देशोंमें लोगोंका बहुत बड़ा बहुमत भारतीयोंकी माँगका समर्थक है। इसके अतिरिक्त साम्राज्य सरकार गणराज्य शासनके समयसे ही ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षकी नीतिसे बँधी है। प्रिटोरियामें जब श्री क्रूगर शासन करते थे तब उसने भारतीयोंके अधिकारोंकी लड़ाई लड़ी थी। उसके प्रतिनिधियोंने सोच-समझकर यह वक्तव्य दिया था कि युद्धके अनेक कारणोंमें से एक था ट्रान्सवाली ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतें। ये सब बातें बहुत-कुछ श्री लिटिलटनका सही मार्गदर्शन कर सकती हैं। साम्राज्य-हितैषी होनेके नाते वे भारतीय हितोंकी रक्षा अवश्य करेंगे। फिर वे अपने पूर्व अधिकारियों द्वारा ब्रिटिश भारतीयोंको दिये गये वचनोंसे भी बँधे हैं और हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि १८८५ के कानून ३ के स्थानमें जो नया कानून बनाया जायेगा वह साम्राज्य-निष्ठा और उक्त वचनोंके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६७. ईस्ट लन्दनकी नकल

शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुड होप) की संसदमें स्वीकृत कानूनोंको, जो पिछली ३१ मईके *गज़टमें* प्रकाशित हुए है, सरसरी नजरसे पढनेपर हमें मालूम होता है कि यूटीनेज नगरपालिका और उसकी व्यवस्थाके नियामक कानूनोंके संशोधन, एकीकरण और परिवर्धनके लिए बनाये गये कानूनकी धारा १२५ द्वारा नगर-परिषदको कुछ अधिकार दिये गये हैं। इनमें इन बातोंके सम्बन्धमें उपनियम बनानेकी सत्ता भी शामिल है :

> **नगरपालिकाके कुछ हिस्सोंको वतनी और एशियाई लोगोंकी रिहाइशके लिए बस्तियोंके रूपमें निर्धारित और पृथक् करना और समय-समयपर उनमें परिवर्तन करना और उनको उठाना; वतनी और एशियाई लोग इन बस्तियोंमें जिन शर्तोंपर रहें और अपने निवास और अपने घोड़ों, मवेशियों, बैलों अथवा भेड़-बकरियोंके सम्बन्धमें जो फीस, किराया और झोंपड़ी-कर दे उसका नियमन करना और शामिलात जमीनको पशुओंके लिए काममें लानेका नियमन या निषेध करना। इन बस्तियोंकी हदमें दूकानों, व्यापारिक स्थानों और व्यापारका नियमन करना, उनकी इजाजत देना या मनाही करना। जिन सीमाओंके भीतर एशियाई और वतनी लोगोंका रहना जायज नहीं होगा उन्हें निश्चित करना और समय-समयपर बदलना।**

ये पाबन्दियाँ ऐसे "किसी वतनी या एशियाईपर लागू नही होंगी जो नगरपालिकाकी सीमाके भीतर अचल सम्पत्तिका पंजीकृत मालिक या काबिज होगा और जिसकी सम्पत्तिका नगर-पालिका-सम्बन्धी कार्योंकी दृष्टिसे निर्धारित मूल्य ७५ पौंडसे कम नही होगा।"

ये अधिकार बहुत कुछ उसी ढँगके है जो ईस्ट लन्दनकी नगरपालिकाको प्राप्त है। मालूम होता है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोंका ध्यान इनकी तरफ नही गया और हमें भय है कि इसी-लिए समयपर इनका विरोध नही किया गया। इस प्रकारकी उपेक्षापर आश्चर्य करनेकी भी जरूरत नही है, क्योंकि एक व्यवसायी समाजसे सरकारी गजटोंको पढनेकी अपेक्षा नही की जा सकती। और केप ससदमें इस कानूनको पास करनेकी समस्त कार्रवाई किसी महत्त्वपूर्ण स्थानीय अखबारमें प्रकाशित भी हुई हो — इसकी जानकारी हमें नही है। लेकिन हम उस सरकारके बारेमें क्या कहे जो नगरपालिकाको इतनी दूरगामी सत्ता देती है। और उस उपनिवेश-कार्यालयको भी क्या कहे जो सम्राटको ऐसे कानूनपर स्वीकृति देनेकी सलाह देता है, क्योंकि वर्ग-सम्बन्धी कानून होनेसे, देशका कानून घोषित करनेके पूर्व, इसपर उनकी मजूरी जरूरी है। हम ईस्ट लदनके इसी तरहके कानूनकी चर्चा करते समय इतना अधिक कह चुके है कि यूटीनेज नगरपालिकामें उसको लागू करने पर कोई टीका-टिप्पणी करना आवश्यक नही समझते। परन्तु हम आशा करते है कि हमारे कथनकी ओर लन्दन और भारत दोनोंमें ब्रिटिश भारतीयोंके हितै-षियोंका ध्यान आकर्षित होगा और कुछ राहत दी जायेगी।

हम यह भी देखते है कि चीनी अध्यादेश विशेष स्वीकृतिके लिए सुरक्षित रखा गया है। हम नहीं जानते कि यह विधेयक भी इसी तरह क्यों नही सुरक्षित रखना चाहिए था, विशेषत. जब यह सभी एशियाइयों पर लागू होता है, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों अथवा न हों। क्या इसका कारण यह है कि हमने जिन धाराओंका उल्लेख किया है उनकी तरफ गवर्नर और उपनिवेश-

कार्यालय दोनोंका ध्यान नहीं गया? और अगर ऐसी बात है तो इससे सिद्ध होता है कि शासन-सम्बन्धी अधिकारपत्रमें किसी ऐसे अधिकारकी जरूरत है जिससे सब प्रकारके वर्ग-सम्बन्धी कानून तबतक अवैध माने जायें जबतक कि उनका एक अलग कानूनमें समावेश न हो जाये और उस कानूनका सम्बन्ध केवल ऐसे भेदभावपूर्ण कानूनोंसे ही हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६८. भारतीय दुभाषिये

श्री हिस्लॉपने उपनिवेश-सचिवसे पूछा कि मुझे बताया गया है कि भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नहीं हैं, इसलिए क्या उन्हें हटा कर उनके स्थानपर यूरोपीय दुभाषिये न रखे जायेंगे? उपनिवेश-सचिवने माननीय सदस्यके विचारसे सहमति प्रकट की, परन्तु कहा कि यूरोपीय दुभाषिये मिलनेमें कठिनाइयाँ हैं। और यह भी कहा कि एक भारतीय दुभाषिया उमगेनीकी अदालतसे हटा दिया गया है, क्योंकि वहाँ एक यूरोपीय मिल गया था।

इस घटनासे एक शिक्षा मिलती है। भारतीय दुभाषिये सिर्फ इसीलिए बरदाश्त किये जाते हैं कि उपनिवेशमें ऐसे यूरोपीय नहीं मिलते जिन्हें भारतीय भाषाओंका थोड़ा-सा भी ज्ञान हो। यदि उपनिवेशभरके भारतीय दुभाषिये इस तथ्यको ध्यानमें रखेंगे तो अच्छा होगा। अगर अ-भारतीय मिल सकते तो सरकार भारतीयोंको तुरन्त बर्खास्त करके उनके स्थानपर अ-भारतीय रखनेमें बिलकुल न हिचकी होती। परन्तु हम अत्यन्त परिश्रमी सार्वजनिक सेवकोंपर लगाये गये श्री हिस्लॉपके इस आरोपके विरुद्ध आपत्ति प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि वे सन्तोषजनक नहीं हैं। इसके विपरीत हमारी यह बहुत इच्छा है कि माननीय सदस्य हमें अपनी इस जानकारीका सूत्र बतायें। जिन लोगोंको उन्होंने बदनाम किया है उनके साथ न्याय तभी होगा। हमें यह कहनेमें कोई झिझक नहीं कि अगर भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नहीं हैं तो यह बदनामी सरकारको जल्दीसे-जल्दी दूर कर देनी चाहिए। दूसरी तरफ, अगर वे योग्य, परिश्रमी और ईमानदार हैं तो यह सत्य स्वीकार किया जाना चाहिए और उनपर जो आरोप लगाया गया है उससे वे मुक्त कर दिये जाने चाहिए। सही बात तो यह है कि हमने बहुत-से भारतीय दुभाषियोंके प्रमाणपत्र देखे हैं; वे अपने अफसरोंके लिए नितान्त अपरिहार्य बन गये हैं। उन्होंने सिर्फ अपने ही काममें पूर्ण सन्तोष प्रदान नहीं किया है, बल्कि मुंशीगीरीका और दूसरा काम भी सँभाला है, जिसे करनेके लिए वे किसी भी तरह बाध्य नहीं हैं। श्री हिस्लॉपको यह मालूम नहीं है कि भारतीय दुभाषियोंको एक भारतीय भाषामें नहीं, बल्कि आम तौरपर तीन भाषाओंमें दुभाषियेका काम करना पड़ता है। इस तरह वे बहुत अधिक दिक्कतमें काम करते हैं। और यह सचाई सभी जानते हैं कि अगर आप प्रथम कोटिके दुभाषिये चाहते हैं तो आप एक ही व्यक्तिमें चार भाषाओंका ज्ञान संयुक्त नहीं कर सकते। दुभाषियोंको बहुत ही कम वेतन दिया जाता है; यह बदनामी भी आम है। इसलिए कमसे-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि श्री हिस्लॉप उनके विरुद्ध यह आरोप न लगाते, बल्कि केवल अपने पक्षके हितोंका समर्थन करके सन्तोष कर लेते, जिसके विरुद्ध हमें कुछ भी कहना नहीं था, तो यह शोभाकी बात हुई होती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६९. "मर्क्युरी" और गिरमिटिया मजदूर

हमारे सहयोगी *नेटाल मर्क्युरीको* जो कुछ कहना होता है, वह प्रायः अच्छी जानकारीके आधारपर कहता है। परन्तु ट्रान्सवालके चीनी प्रवासी सम्बन्धी अध्यादेश और ट्रिनिडाड तथा ब्रिटिश गियानामें लागू गिरमिटिया मजदूरोंके लाये जानेका विनियमन करनेवाले अध्यादेशकी तुलनाके सम्बन्धमें उसकी जानकारी गलत है। शायद हमारे सहयोगीसे यह भूल इस कारण हुई है कि श्री बालफ़रने राजनीतिक कारणोंसे यह कहना उचित समझा है कि ब्रिटिश गियाना अध्यादेश और चीनी प्रवासी अध्यादेश एक समान हैं। जो लोग इस तरहकी दलीलें देते हैं उनकी जानकारीके लिए हम यह बता दें कि इन दोनों अध्यादेशोंमें उतना ही अन्तर है जितना काले और सफेदमें। ब्रिटिश गियानाके अध्यादेशमें गिरमिटियोंको अपनी बुद्धिके प्रयोगसे वंचित करनेका विधान नहीं है। उसमें यह आग्रह नहीं है कि गिरमिटिये अपने गिरमिट खत्म होनेपर देशसे चले जायें; और उसमें उनको महज अनाड़ी मजदूरोंका दर्जा भी नहीं दिया गया है। उनके लिए अनाड़ी मजदूरके कामके अलावा दूसरा काम करना वर्जित नहीं है और न दूसरोंके लिए उनसे इसके अलावा दूसरा काम लेना वर्जित है। साथ ही, वहाँ उनको निश्चित अहातोंमें रखनेकी प्रणाली[1] नहीं है, जैसी चीनियोंके खिलाफ लागूकी जानेवाली है। ब्रिटिश गियानाके मजदूर अपना गिरमिट खत्म होनेके बाद देशमें बसने और स्वाधीन मनुष्योंकी हैसियतसे काम करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। चीनियोंके बारेमें ऐसा नहीं। हमें पता नहीं, दोनोंमें इस बुनियादी भेदके बावजूद क्या हमारा सहयोगी अब भी इसी रायपर अड़ा रहेगा कि फर्क सिर्फ यह है कि "राजनीतिक दलोंके कुछ लोग ट्रान्सवालमें उस प्रणालीको गुलामी कहते हैं और उसकी निन्दा करते हैं, जो दूसरे उपनिवेशोंमें खुशीसे गिरमिटिया मजदूर प्रथा मानी जाती है।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१. इसका उद्देश्य चीनियोंको उसी स्थानमें रखना, जहाँ वे काम करते थे और उनकी हलचलोंको पासों द्वारा उनके स्थानसे एक मीलके घेरेमें सीमित कर देना था।

१७०. इकरंगा ऑरेंज रिवर उपनिवेश

ऑरेंज रिवर उपनिवेशके ३ जूनके सरकारी *गज़टमें* विनवर्ग नगरके संशोधित और नये नियम दिये गये हैं। उनके नीचे लिखे अंश हम उद्धृत कर रहे हैं:

परिषदकी मंजूरीके वगैर किसी रंगदार व्यक्तिको नगरपालिकाकी हदमें कहीं भी रहनेको इजाजत नहीं होगी।

प्रत्येक रंगदार व्यक्तिको, जो नगरपालिकाकी हदमें रहता है, टाउन क्लार्क अथवा अन्य किसी नगरपालिका-अधिकारीके पूछनेपर अपनी आजीविकाका साधन वताने और उसका प्रमाण देनेमें समर्थ होना चाहिए और वह उसके लिए वाध्य है। और अगर टाउन क्लार्क या दूसरे नगरपालिका-अधिकारीको यह प्रतीति हो कि आजीविकाके उचित साधनोंका सन्तोषजनक प्रमाण नहीं दिया जा सकता तो उस रंगदार व्यक्तिके साथ विधि-संहिताके अध्याय १३३, खण्ड २ के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

उक्त कानूनमें यह व्यवस्था है कि,

ऐसा कोई रंगदार व्यक्ति किसी गोरे मालिक या सरकारी अधिकारीके परवानेके वगैर मिलेगा तो उसपर ५ पौंड जुर्माना किया जा सकता है, अथवा जुर्माना न देनेपर उसको सादी या सख्त कैदकी सजा दी जा सकती है, जो ३ महीनेसे अधिक नहीं होगी; अथवा (मजिस्ट्रेटकी मर्जी हो तो) वह राज्यके किसी गोरे निवासीके साथ उसके शर्तवन्द नौकरके रूपमें रखा जा सकता है। यह शर्तवन्दी एक सालसे अधिकको न होगी और अपराधीको हक होगा कि जिस जिलेमें अपराध किया गया हो उसके भीतर अपना मालिक चुन ले।

यदि कोई रंगदार व्यक्ति दैनिक या मासिक नौकरके रूपमें कामके बिना मिलेगा तो उसे, टाउन क्लार्कसे चौबीस घंटेकी सूचना मिल जानेके बाद नगरकी शामिलात भूमिसे चला जाना पड़ेगा और वह परिषदकी अनुमतिके बिना वापस नहीं आ सकेगा।

किसी रंगदार व्यक्तिको नौ वजेकी घंटी वजनेके दस मिनट वाद विनवर्ग नगरके किसी सार्वजनिक स्थान या रास्तेपर नहीं रहने दिया जायेगा, जवतक वह उस समयके लिए अपने मालिकका पास न लिये हो।

किसी रंगदार परवानेदारको परवानेके मातहत दोसे अधिक रंगदार मनुष्योंको नौकर रखनेका अधिकार नहीं होगा।

टाउन क्लार्ककी लिखित अनुमतिके बिना वस्तीमें रातके दस बजे वाद कोई नाच, चाय-पान अथवा दूसरे सभा-समारोह नहीं करने दिये जायेंगे।

सोलह वर्षकी अनुमानित आयुसे अधिकके वे तमाम रंगदार व्यक्ति जिन्हें परिषदसे नगरपालिकाकी हदमें रहनेकी इजाजत मिल गई है, नौकरी करनेके लिए वाध्य होंगे। और उन्हें टाउन क्लार्कके दफ्तरमें हर महीने अपना नाम दर्ज कराना पड़ेगा और ६ पेंस फी-पास देकर रिहायशी पास लेना पड़ेगा।

यदि मूल भाषा या पाठमें इसकी मनाही या रुकावट न हो तो "रंगदार व्यक्ति" अथवा "रंगदार व्यक्तियों" शब्द-समुच्चयका स्पष्ट अर्थ यह किया जाना चाहिए, और उससे यह समझना चाहिए कि वह दक्षिण आफ्रिकाके तमाम वतनी मर्दों और औरतोंपर लागू है और उसमें वे सब रंगदार लोग और किसी भी नस्ल या राष्ट्रके वे तमाम व्यक्ति भी शामिल हैं जो कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार या रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं या व्यवहारमें ऐसे माने जाते हैं।

यह एक ऐसा निर्लज्जतापूर्ण भेदभाव है, जिसका आधार केवल रंग है और वह भी अत्यन्त उग्र रूपमें। हम दावेसे कह सकते हैं कि अगर जबरदस्तीकी नौकरी गुलामी मानी जा सकती है तो यह नियम भी इतना दूरगामी है कि इसके भीतर अस्थायी गुलामी आ जाती है। विनबर्गकी नगरपालिकाकी हदमें रहनेका मूल्य है किसी गोरे मालिककी नौकरी करना। यह स्पष्ट है कि इन नियमोंमें ब्रिटिश प्रजाजन अथवा बाहैसियत रंगदार व्यक्ति भी अपवाद नहीं माने गये हैं। असलमें उनमें रंगदार व्यक्तियोंकी कोई हैसियत मानी ही नहीं गई है। हम इस अखबारमें अनेक बार ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाओंके इसी प्रकारके नियम उद्धृत कर चुके हैं। हमने उनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट की है, परन्तु व्यर्थ। और कारण कुछ भी हो, लन्दनमें भी कुछ नहीं किया गया है। शासकीय अधिकारपत्रोंमें उपनिवेश-कार्यालयकी स्वीकृतिके बिना इस प्रकारके कानून बनानेकी मनाही की गई है। यद्यपि खयाल यह था कि बड़ेमें छोटा समाया हुआ माना जायेगा, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त ढंगके नगरपालिका-कानूनसे बचावकी कोई सूरत है नहीं। और स्थानीय सरकार ऐसे कानूनको अपने विशेषाधिकारसे नामंजूर कर देगी, इसकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। हम आशा करते हैं कि उपनिवेश-कार्यालयका ध्यान इन नियमोंकी ओर आकर्षित होगा और, कमसे-कम, रंगदार लोगोंके विरुद्ध जो नीति ब्रिटिश झंडेके नीचे और सम्राटके नामपर ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनाई जा रही है, उसके सम्बन्धमें कोई घोषणा तो कर ही दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपीनियन, १८-६-१९०४

१७१. ट्रान्सवालका परवाना दफ्तर

लॉर्ड मिलनरने आन्तर उपनिवेश परिषदकी बैठकमें, जो अभी हालमें प्रिटोरियामें हुई थी, अध्यक्षकी हैसियतसे परवाना-विभागके बजटपर बोलते हुए यह कहा था :

> अध्यक्षने परवाना-दफ्तरके लिए ९,५०० पौंडकी मंजूरीकी चर्चा करते हुए कहा कि मेरे अपने खयालसे इस विभागकी जरूरत एक सालतक और होगी। परवाना-कार्यालयके तन्त्रका उपयोग जैसा शुरूमें सोचा गया था उससे कुछ भिन्न कामोंके लिए किया गया है। लेकिन फिर भी ये काम समाजके लिए बड़े लाभदायक रहे हैं। परवाना-प्रणाली, प्रथमतः, बेशक राजनीतिक है; परन्तु जिन लोगोंको राजनीतिक कारणोंसे परवाने नहीं दिये गये हैं उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। फिर भी अवांछित प्रवासियोंकी — जिनमें कुछ यूरोपीय हैं, परन्तु अधिकतर एशियाई हैं — बाढ़से बचनेका हमारा एकमात्र साधन परवाना-कार्यालय ही रहा है। अगर सन्तोषजनक ढंगका स्थायी कानून बननेसे पहले ही हम इस हथियारको छोड़ दें तो मैं नहीं जानता कि हमारे जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा (हँसी)। अलबत्ता, यह एक अस्थायी प्रणाली है; परन्तु मैं यह सम्भव नहीं समझता कि इसे तुरन्त नामशेष किया जा सकता है। अगर खर्चकी यह मद जरूरी नहीं है तो हम इसका रुपया खर्च नहीं करेंगे।

जो बात हम बराबर कहते आये हैं उसका — यानी इस बातका कि, शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग ऐसे कामोंके लिए किया जा रहा है, जिनके लिए वह कभी अभिप्रेत नहीं था — ट्रान्सवालके सर्वोच्च अधिकारी द्वारा समर्थन हो गया है। और स्पष्टतः परमश्रेष्ठको हर्ष है कि "अवांछनीय लोगोंकी — जिनमें कुछ यूरोपीय हैं, परन्तु अधिकतर एशियाई हैं — बाढ़" को रोकनेके लिए उनके हाथोंमें ऐसा एक हथियार आ गया है। और लॉर्ड महोदय नहीं जानते कि यदि इस हथियारका त्याग कर दिया जाये तो उपनिवेशके लोगोंके जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा। यदि ऐसी बातें कोई राजनीतिक आन्दोलनकारी कहता तो वे हमारी समझमें आ सकती थीं, परन्तु चूँकि ये राज्यके प्रमुखकी जबानसे निकली हैं — और सो भी एक ऐसे व्यक्तिकी जबानसे, जो ब्रिटिश साम्राज्यके अग्रगण्य राजनयिक और पूरे-पूरे साम्राज्य-भक्त माने जाते हैं — इसलिए हृदय दुःख और विस्मयसे भर जाता है। पहले तो, यहाँ अवांछनीय प्रवासियोंकी बाढ़ आ गई है, यह कथन ही अत्युक्तिपूर्ण है और यह लॉर्ड महोदयके लिए अशोभनीय है। दूसरे, यह कहना निपट दुर्बलता स्वीकार करना है कि यदि यह हथियार न होता तो उपनिवेशमें लोगोंके जीवनका कोई मूल्य ही न रह जाता। और क्या, आखिरकार, देशमें आबादी इतनी ज्यादा हो गई है? लॉर्ड महोदयने ट्रान्सवालमें जिस साधनका उपयोग किया है वह साधन जिन ब्रिटिश उपनिवेशोंमें नहीं है क्या उनमें से किसीमें, या केपमें, या नेटालमें उसके न होनेसे लोगोंके जीवन निकम्मे हो गये हैं? यह सत्य है कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम कुछ वर्षसे नेटालमें और एक वर्षसे केपमें लागू है। किन्तु वह ट्रान्सवालके शान्ति-रक्षा अध्यादेशके मुकाबले कुछ भी नहीं है। इसके अन्तर्गत तो कानूनी शरणार्थियोंका भी उपनिवेशमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है, यद्यपि वे ब्रिटिश प्रजाजन हैं और ट्रान्सवालमें उनकी ऊँची हैसियत है और बहुत बड़ी जमीन-जायदाद है। और यदि लॉर्ड महोदयने जो-कुछ कहा है वह प्रवासके सम्बन्धमें उनके गम्भीरतापूर्वक व्यक्त

किये गये विचारोंका द्योतक है तो वह ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके अत्यन्त अशुभ भविष्यका आभास देता है। फिर भी हम आशा करते हैं कि लॉर्ड महोदयने परिषदकी शुष्क कार्रवाईको सरस बनाने और विभिन्न विभागोंके कामको बहुत भोंड़े ढंगसे चलानेवाले विद्रोही सदस्योंको खुश करनेके खयालसे ही ये बातें कह दी हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि लॉर्ड महोदयने इस हथियारके बारेमें जो बातें कहीं उनपर खूब हँसी हुई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७२. सिपाहीकी शूरता

हमें *ट्रान्सवाल लीडरसे* तिब्बतमें एक झड़पका हूबहू वर्णन देते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। *लीडरको* प्रेषित रायटरके विशेष लेखमें कहा गया है,

> हमला अरुणोदयके समय शुरू हुआ। खून जमा देनेवाली चीखोंके साथ दुश्मनके दो मजबूत दल, तेजीके साथ पहाड़ीसे उतर कर हमारे मोर्चेपर टूट पड़े। अंग्रेज फुर्तीसे किलेबन्दीकी आड़में चले गये –– अविचलित रहा अकेला एक सिपाही। तब धर्मान्धोंका वह उमड़ता हुआ समूह –– जिसमें १०० जवान थे –– उस निष्ठावान सिपाहीपर टूट पड़ा। किन्तु वह सिपाही तिब्बतियोंपर धीरजके साथ निशाना साधते हुए अपनी जगहपर अटल रहा। उसने दुश्मनके पाँच जवानोंको गोलीसे मार गिराया, किन्तु इतनेमें दो तलवारियोंने उसके टुकड़े कर दिये। अब हमलावरोंका वह दस्ता अंग्रेज फौजोंको छुपा रखनेवाली दीवारोंपर चढ़नेकी कोशिश करने लगा और दीवारके छेदोंमें व्यर्थ तलवारें घुसेड़ने लगा। किन्तु अब तो वे छेद गोलियोंकी निरन्तर बौछार उगल रहे थे।

इस अकेले सिपाहीकी शूरताकी स्मृति कौन-सा विक्टोरिया क्रॉस कायम रख सकता है, और बहादुरीके ऐसे कितने कारनामे बिना उल्लेखके रह जाते हैं? इसी प्रकारकी बहादुरी होनी चाहिए, जिसने लॉर्ड रॉबर्ट्सको बार-बार मुक्त हृदयसे सराहना करनेके लिए प्रेरित किया। विगत साठ वर्षोंमें अंग्रेजोंने शायद ही ऐसी कोई लड़ाई लड़ी है, जिसमें भारतीय सिपाहियोंने शानदार हिस्सा न लिया हो; फिर चाहे वह सशस्त्र सिपाहीकी हैसियतसे हो या पिछले बोअर युद्धके निःशस्त्र डोलीवाहक या भिश्तीकी तरह हो। लॉर्ड टेनिसनके दो शब्दोंमें :

> **तर्क नहीं जानते वितर्क नहीं जानते**
> **सिर्फ एक कायदा करो मरोका मानते**

ये विस्मरणीय शब्द प्रसिद्ध "चार्ज ऑफ़ दि लाइट ब्रिगेड" के बारेमें लिखे गये थे; किन्तु, ढिठाई माफ हो, इस भारतीय सिपाहीपर भी ये वैसे ही लागू होते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७३. नेटालके सहयोगियोंसे अपील

इस मासकी ४ तारीखके अंकमें हमने नेटालके गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंका जो प्रश्न उठाया था[1] उसे फिर उठानेके लिए हम क्षमा-याचना नहीं करते। हमें दुःख होता है कि *नेटाल-मर्क्युरीको* छोड़कर अन्य दैनिक पत्रोंने इस प्रश्नको नहीं उठाया। यह तो सीधा-सादा मानवताका प्रश्न है और इसमें, सार्वजनिक समाचार-पत्रोंकी हैसियतसे, उनकी दिलचस्पी न हो, यह हो नहीं सकता। आयोगकी माँग करनेमें हमारा उद्देश्य सत्यको प्रकट कराना मात्र है, और हम महसूस करते हैं कि यदि स्वयं मालिक लोग भी इस बातको तटस्थतासे सोचें तो जाँच-आयोगकी नियुक्तिका स्वागत ही करेंगे। यदि एक निष्पक्ष आयोग इस निर्णयपर पहुँचे कि प्रतिवर्ष भयानक संख्यामें होनेवाली गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंका मालिकोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है तो इससे उन्हें और सर्वसाधारण जनताको भी बड़ी राहत मिलेगी। दूसरी ओर, अगर वे कुछ ऐसा कर सकें, जिससे ये अस्वाभाविक मौतें रुक जायें तो यह उनके लिए, और जो अभागे लोग शर्तबन्द होकर काम कर रहे हैं उनके लिए भी, एक उचित दिशामें बढ़ा हुआ कदम होगा। यह कोई ऐसी बात नहीं है, जिसे एक ब्रिटिश उपनिवेशमें लाचार रुख जाहिर करनेवाली कतिपय पंक्तियाँ लिखकर आई-गई कर दिया जाये। हमें कोई सन्देह नहीं कि इस खराबीका कोई-न-कोई इलाज होगा ही, शर्त इतनी ही है कि उसे चिन्तापूर्वक सही ढंगसे खोजा जाये। इसलिए हम आशा करते हैं कि हमारे सहयोगी हमारे सत्य-शोधके नम्र प्रयत्नोंको दृढ़ करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१. देखिए "गिरमिटिया भारतीय," ४–६–१९०४।

१७४. सर मंचरजीकी सेवाएँ[1]

लोकसभामें सर मंचरजी द्वारा पूछे गये प्रश्न और श्री ब्रॉड्रिक अथवा श्री लिटिलटन द्वारा दिये गये उनके उत्तर हम अन्य स्तम्भमें पूरे-पूरे दे रहे हैं। उनसे जाहिर होता है कि ये माननीय सदस्य क्या दक्षिण आफ्रिका, क्या अन्य सुदूर राज्यों और क्या स्वयं भारतमें रहनेवाले अपने देशवासियों — सबकी कैसी अमूल्य सेवा कर रहे हैं। उक्त प्रश्नोत्तर यह भी बताते हैं कि ये सुयोग्य महानुभाव कैसी लगनसे दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें पूछताछ करते रहते हैं। जब कभी कोई बात उठानेका अवसर आता है, वे उसे नहीं चूकते। वे अपना कर्त्तव्य जिस तरह करते हैं उसका सम्बन्धित मन्त्रियोंपर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उन्होंने प्रस्तुत परिस्थितियोंमें जितनी विस्तृत जानकारी दी जा सकती है, उतनी विस्तृत जानकारी उन्हें देते रहनेका नियम-सा बना लिया है। उनके प्रश्नोंके उत्तर भी वे प्राय सहानुभूतिपूर्ण रुखसे देते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक भारतवासीकी हार्दिक प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों और अपनी उपस्थितिसे लोकसभाका मान बढ़ाते हुए अपने देशवासियोंकी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७५. बस्तियोंके बाहर भारतीय व्यापार[2]

उपनिवेश-मंत्रीसे पूछना है कि क्या वे जानते हैं, सर आर्थर लालीने गत १८ मईको हाइडेलबर्गमें ब्रिटिश भारतीयोंके एक शिष्टमण्डलके अभिनन्दनका[3] उत्तर देते हुए यह कहा था कि सर्वोच्च न्यायालयने *हबीब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल-सरकार* परीक्षात्मक मुकदमेमें जो यह घोषित किया है कि परवानेदार व्यापारियोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बाकायदा है, उसे बरदाश्त नहीं किया जायेगा, और यह भी कि, इस निर्णयको रद करनेका कानून पास करनेके लिए उपनिवेश-मंत्रीसे अनुमति देनेका अनुरोध भी किया जा चुका है। यदि ऐसा हो और यदि उनसे ऐसा निवेदन किया गया हो, तो क्या वर्तमान अधिकारोंमें हस्तक्षेप न करनेके लॉर्ड मिलनर द्वारा बार-बार दिये गये वचनोंको ध्यानमें रखते हुए उपनिवेश-मन्त्री महोदय ऐसा कोई भी कानून बरदाश्त करनेसे इनकार करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, २४–६–१९०४

१. मंचरजी मेरवानजी भावनगरी।

२. ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गकी ओरसे गांधीजी द्वारा सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये प्रश्नका पाठ।

३. देखिए "अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको," मई १८, १९०४।

१७६ पत्र : रैंड प्लेग-समितिको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जून २४, १९०४

सेवामें
सहायक-मन्त्री
रैंड प्लेग-समिति
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

मैं विनम्रतापूर्वक आपका ध्यान अपने २९ अप्रैलके पत्रकी[1] ओर आकर्षित करता हूँ, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेश और डेलागोआ-बेके प्लेग-सम्बन्धी नियमोंके बारेमें लिखा गया था। शायद आप जानते हों कि अनुमतिपत्र दफ्तरके प्रमाणपत्रोंके बावजूद केप कालोनी जाते हुए ब्रिटिश भारतीय रेलगाड़ीमें बैठकर भी ऑरेंज रिवर कालोनीसे नहीं गुजर सकते; और डेलागोआ-बेमें तो, इन अनुमतिपत्रोंके होते हुए भी, उन्हें प्रवेश ही नहीं करने दिया जाता।

यदि आप कृपापूर्वक इन दोनों स्थानोंमें सुविधा प्राप्त करा दें तो मेरा संघ बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : एल० जी० ९२/२१३२

१. यह उपलब्ध नहीं है।

१७७. नेटाल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और उसका अमल[1]

इस अधिनियमके अन्तर्गत हालमें दो काफी महत्त्वपूर्ण मुकदमे मैरित्सबर्गमें चलाये गये हैं। वे दोनों ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ थे। मुकदमोंकी कार्यवाहियोंके पूरे विवरण हम दूसरे स्तम्भमें दे रहे हैं। दयाल ऊका का मामला हमें बहुत गम्भीर जान पड़ता है। यह देखते हुए कि अपील दर्ज कर ली गई है, हम उसपर कोई लम्बी टीका-टिप्पणी नहीं करेंगे। किन्तु गवाहीसे जो तथ्य प्रकट होते हैं उनके अनुसार प्रतिवादी पाँच वर्षसे अधिक उपनिवेशमें रह चुका है और भारतसे अपनी वापसीके समय जमीनपर पाँव धरनेके पहले उसने जहाजपर किसीको आठ पौंड अदा किये हैं। इस्तगासेकी ओरसे इस गवाहीके खिलाफ कुछ पेश नहीं किया गया; किन्तु न्यायाधीशने अपराधी द्वारा दिये गये प्रमाणपर भरोसा नहीं किया और उसे दो महीनेकी कैदकी सजा दे दी — अगर अपराधीको इसके पहले देशसे निकाल दिया जाये तो बात अलग है। इसलिए यदि न्यायाधीशका फैसला बरकरार रखा जाता है तो, केवल शपथपूर्वक ही नहीं बल्कि किसी अन्य प्रमाणके बलपर, जबतक कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह अधिनियम स्वीकृत होनेके पहले उपनिवेशमें रह चुका है तबतक, जान पड़ता है, हरएक ब्रिटिश भारतीय नवागन्तुक माना जायेगा। यदि ऐसी दृष्टि अपनाई गई तो उपनिवेशमें किसी भी भारतीयकी स्थिति निरापद नहीं रहेगी। खैर, जबतक अपीलका फैसला नहीं हो जाता, हमें इन असाधारण मामलोंपर और कुछ कहना स्थगित रखना चाहिए। फिलहाल हम सरकारसे इन मुकदमोंको रोकनेकी प्रार्थना करके सन्तोष मानेंगे क्योंकि यह उसका कर्त्तव्य है कि वह उपनिवेशमें निषिद्ध प्रवासियोंका चोरी-चपाटीसे घुसना रोके। हमारी नम्र सम्मतिमें जो लोग पहलेसे उपनिवेशमें हैं और जो पूर्व-निवास सम्बन्धी प्रतिबन्धके रहते हुए भी प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत नियुक्त अफसरोंकी सावधानीके बावजूद यहाँ उतर चुके हैं उन्हें सताना सरासर ज्यादती करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०८

1. *इंडियन ओपिनियनका* जून २७, १९०८का अंक उपलब्ध नहीं है। इसलिए यदि उसमें गांधीजीका कोई लेख रहा हो तो उसको देना सम्भव नहीं है।

१७८. प्रिटोरिया नगरपालिका और रंगका प्रश्न

पैदल-पटरी उपनियमोंके सवाल पर सरकार और प्रिटोरिया नगरपालिकाके बीच आगे और पत्रव्यवहार हुआ है। इसे हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इस मामलेमें सरकारने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर वह बधाईकी पात्र है। उधर, प्रिटोरिया नगरपालिका जिस दृढ़तासे सरकारसे लड़ रही है उसकी भी तारीफ न करना असम्भव है। इसमें खेदकी बात यही है कि ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगरपालिका यह दृढ़ता एक ऐसे काममें दिखा रही है जो प्रत्येक समझदार आदमीको अकीर्तिकर और अयोग्य प्रतीत होगा। गम्भीरतापूर्वक यह दलील नहीं दी जा सकती कि रंगदार लोगोंको पटरियोंपर चलने देनेसे कोई सिद्धान्त खतरेमें है। निश्चय ही इसका अर्थ यह नहीं होगा कि नगरपालिका अन्य बातोंमें भी दोनों जातियोंकी समानताका सिद्धान्त स्वीकार करती है। वह तो एक बड़ा सवाल है और उसे पटरियोंके प्रश्नसे बिलकुल अलग रखा जा सकता है। प्रिटोरियाके नगराध्यक्ष अब प्रत्यक्ष देखते हैं कि नगरपालिका सरकारका विरोध जारी रख कर खुदको हास्यास्पद बना रही है, परन्तु दूसरे सदस्य, जिनके श्री लवडे नेता हैं, उनकी दलीलें नहीं सुनते और उन्होंने सरकारसे एक पत्र द्वारा माँग की है कि वह एक विशेष अध्यादेश बना दे, जिससे प्रिटोरिया नगरपालिकाको जोहानिसबर्ग नगरपालिकाके समान अधिकार मिल जायें। सरकार और परिषदके बीच जो द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है वह बहुत ही मनोरंजक है। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि सरकार उस सिद्धान्तपर जमी रहेगी जो खुद उसीने स्थिर किया है और ऐन मौकेपर नगरपालिकाके निर्देशके आगे झुक नहीं जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१७९. भारतीयोंके ऋणपत्र

सरकार भारतीयोंके लिए लेनदेनके कानूनी कागजातपर दस्तखत करनेके विनियमनके लिए एक विधेयक पेश कर रही है। हम सरकारको इसपर हृदयसे बधाई देते हैं। यह इस बातका सबूत है कि सरकार उनकी भलाईके लिए चिन्तित है। साफ धोखेबाजीके कुछ मामले हमारे देखनेमें आये हैं। इनमें आवश्यक रूपसे भारतीयोंको भारतीयोंने ही नहीं ठगा, बल्कि कुछ यूरोपीयोंने भी ठगा है। और इसका कारण यह रहा है कि ये भारतीय अंग्रेजी अक्षरोंमें दस्तखत नहीं कर सकते थे। बहुत बार ये ऋणपत्र (प्रॉमिसरी नोट) ऐसे तैयार कर लिये जाते हैं कि हस्ताक्षर करनेवालोंको मजमून मालूम ही नहीं होता। इसलिए यह विधेयक भोले-भाले लोगोंको बहुत सहायता पहुँचानेवाला होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। विधेयकको पूर्ण बनानेके खयालसे क्या हम यह सुझाव दे सकते हैं कि यदि ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले व्यक्तिके अँगूठेकी निशानी लेनेपर भी जोर दिया जाये तो यह ज्यादा अच्छा होगा। यह देखा गया है कि किसीके अँगूठेकी जाली निशानी बनाना असम्भव है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनेको दूसरा व्यक्ति बता कर धोखा न दे सके, इससे बचनेका सबसे सुरक्षित उपाय उसके अँगूठेकी निशानी लेना ही है। क्योंकि, यह हो

सकता है कि जो व्यक्ति साधारण न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीश (जस्टिस ऑफ दि पीस) के सामने अपने अँगूठेकी निशानी लगाये वह वही व्यक्ति न हो जिसपर कर्जका दावा करनेका मंशा हो। यदि न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशके सामने दस्तावेजपर हस्ताक्षर किये जायेंगे तो उनका महत्त्व बहुत बढ़ जायेगा; और यदि एक व्यक्तिने अपनेको दूसरा व्यक्ति बताकर धोखा दिया तो इस धोखेबाजीको साबित करना बहुत कठिन होगा। किसी न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशसे हमेशा यह जाँच करनेकी आशा रखना उचित नहीं होगा कि उसके सामने ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए उपस्थित लोगोंकी शिनाख्त सही है या गलत। इसलिए हमें आशा है कि सरकार कृपा करके अपने विधेयकमें हमारा सुझाव शामिल कर लेगी और उसे पूर्ण और वास्तविक अर्थमें कारगर बनायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१८०. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

बॉक्सबर्ग नगर-परिषदने ट्रान्सवालकी नगर-परिषदों और नगरपालिकाओंको नीचे लिखा परिपत्र भेजा है:

सज्जनो,

'निःसन्देह आप पूरी तरह जानते हैं कि 'यातायात-सम्बन्धी उपनियमों' में एक उपधारा है, जिसमें यह व्यवस्था है कि कोई वतनी तबतक पैदल-पटरीपर नहीं चलेगा जबतक कि वह किसी सड़कको पार न कर रहा हो, या किसी निजी जायदादमें प्रवेश न कर रहा हो। देखिए उपधारा १९, अध्याय २।

आप देखेंगे कि इस उपनियम-संहिताकी २० वीं उपधारामें 'व्याख्याओं' के अन्तर्गत 'वतनी' शब्दका अर्थ है, कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके माता-पिता किसी आफ्रिकी आदिम जाति या उपजातिके हों।

मुझे इस पत्रके द्वारा यह बतानेका आदेश हुआ है कि मेरी परिषद चाहती है, मौजूदा कानूनके ऐसे ढंगसे संशोधित करानेमें, कि उसमें सब रंगदार कौमें बिना किसी भेदके शामिल हो जायें, विभिन्न नगर-परिषदों और शहरी जिला-निकायोंसे सहयोग और सहायताकी याचना की जाये।

मेरी परिषदका कहना यह है कि सार्वजनिक पैदल-पटरियोंपर दूसरी रंगदार जातियोंकी उपस्थिति भी उतनी ही आपत्तिजनक है जितनी इस देशकी आदिम जातियोंकी; और (जहाँतक इस परिषदका सम्बन्ध है), उसने कानूनको संशोधित और सब रंगदार जातियोंपर लागू करवानेकी दृष्टिसे स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवको 'यातायात उपनियमों' में शामिल करनेके निमित्त निम्न संशोधन भेजा है:

'किसी सड़ककी पैदल-पटरियों या किसी मकानके सामने या बगलमें बने चबूतरेपर, जो पैदल-पटरीका काम देता हो, तमाम रंगदार लोगोंका चलना वर्जित है।'

और कहा गया है कि दूसरी नगरपालिकाओंको भी उस विशेषाधिकारका उपभोग करनेकी सुविधा हो जो जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको है।

सहायक उपनिवेश-सचिव इसके उत्तरमें कहते हैं :

'नगर-निगम अध्यादेश जोहानिसबर्ग नगर-परिषदपर लागू नहीं होता, अतः वह परिषद रंगदार लोगों द्वारा पैदल-पटरियोंके उपयोग-सम्बन्धी उपनियमको लागू कर सकती है। फिर, वह परिषद जिस घोषणाके अनुसार बनाई गई है उसकी रूसे उक्त उपनियम पुराने नगर-नियमोंके अन्तर्गत आ जाता है। मुझे अफसोस है कि आपने जो उपनियम भेजा है उसकी मंजूरीकी सिफारिश मैं नहीं कर सकता, क्योंकि बॉक्सबर्ग परिषदको उसे लागू करनेकी अनुमति देनेके लिए कानूनको बदलना जरूरी होगा।'

इस प्रकार यह विदित हो जायेगा कि जो अधिकार जोहानिसबर्गको प्राप्त हैं उनके उपयोगके लाभसे दूसरे सब नगर वंचित रखे जानेवाले हैं, सिर्फ इसलिए कि उस नगरमें अब भी एक पुराना नगर-नियम मौजूद है और वह अभीतक वापस नहीं लिया गया है।

मेरी परिषद जोर दे रही है कि स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिव इस व्यवस्थाकी जरूरतपर तुरन्त और गम्भीर रूपमें ध्यान दें और अगर इस बातपर आपकी परिषदका समर्थन प्राप्त हो जाये तो हमारे उद्देश्यकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि आपकी परिषद भी प्रस्ताव स्वीकार करके इसी तरहका आवेदनपत्र भेजे।

मैं इस बारेमें सहयोगके लिए आपको पेशगी धन्यवाद देता हूँ।

एक हदतक बॉक्सबर्ग-परिषदसे सहानुभूति प्रकट न करना कठिन है। ये लोग अपनी पैदल-पटरियोंपर किसी भी रंगदार आदमीको चलता देखना नहीं चाहते। जोहानिसबर्गमें तमाम रंगदार लोगोंको उन्हें इस्तैमाल करनेसे रोकनेका अधिकार नगर-परिषदको प्राप्त है; तब दूसरी नगर-परिषदोंको भी जोहानिसबर्ग-परिषदके समान आधारपर क्यों न माना जाये। यह स्थिति काफी तर्कसंगत मालूम होती है। जो कुछ हुआ है, यह है: अपना निजी संविधान प्राप्त हो जानेसे, जोहानिसबर्गके लिए आम नगर-निगम अध्यादेशको मानना जरूरी नहीं है। और मसविदा बनानेवाले व्यक्तिने जोहानिसबर्गके विशेष अध्यादेशमें पुरानी हुकूमतके नगर-नियमोंका ध्यान नहीं रखा। लेकिन पीछे जब नगर-निगम अध्यादेश स्वीकृत हो गया तब "वतनी" शब्दकी उचित व्याख्या करके यह मामला कारगर तरीकेसे निपटाया गया। निश्चय ही सरकारके लिए अधिक साहसपूर्ण और ईमानदारीकी नीति तो यह होती कि वह विधि-संहितामें से नियमका वह हिस्सा ही निकाल देती, जिससे "वतनियों" के अलावा दूसरे रंगदार लोग खामखाह अपमानित होते हैं। परन्तु सही हो या गलत, जब सीधा रास्ता छोड़ा जा चुका है तब ट्रान्सवालकी नगर-परिषदोंका, जिन्हें यह कदम अकस्मात् उठाये जानेकी शिकायत है, अब अपने दृष्टिकोणसे इसके खिलाफ आन्दोलन करना स्वाभाविक है। निःसन्देह यह एक कठिन स्थिति है। इसका एकमात्र माकूल हल यही मालूम होता है कि इन मामलेमें और नगर-परिषदोंकी जैसी स्थिति है वैसी ही स्थितिमें जोहानिसबर्ग-परिषदको भी रख दिया जाये। तभी पूरा न्याय होगा और तब दूसरी नगर-परिषदोंको अपने प्राप्त अधिकारोंसे सन्तोष करना पड़ेगा। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक और कुछ दुःखजनक भी दिखाई देती है कि ट्रान्सवालकी नगर-परिषदों सरीखी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ तिलका ताड़ बना दें और ऐसे लोगोंपर, जिन्होंने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा है, अनावश्यक अपमानपर अपमान लादनेमें खुशी हासिल करें। ये लोग अगर किसी चीजके हकदार हैं तो अच्छे बरतावके हों; क्योंकि फिलहाल ब्रिटिश भारतीयोंका विचार छोड़ भी दें तो भी यह नहीं भूल जाना चाहिए कि उन लोगोंने ही, जो कलतक दुचेतर गोरे कहे जाते थे, और आज नगर-परिषदोंके शरीफ

सकता है कि जो व्यक्ति साधारण न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीश (जस्टिस ऑफ दि पीस) के सामने अपने अँगूठेकी निशानी लगाये वह वही व्यक्ति न हो जिसपर कर्जका दावा करनेका मंशा हो। यदि न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशके सामने दस्तावेजपर हस्ताक्षर किये जायेंगे तो उनका महत्त्व बहुत बढ़ जायेगा; और यदि एक व्यक्तिने अपनेको दूसरा व्यक्ति बताकर धोखा दिया तो इस धोखेबाजीको साबित करना बहुत कठिन होगा। किसी न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशसे हमेशा यह जाँच करनेकी आशा रखना उचित नहीं होगा कि उसके सामने ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए उपस्थित लोगोंकी शिनाख्त सही है या गलत। इसलिए हमें आशा है कि सरकार कृपा करके अपने विधेयकमें हमारा सुझाव शामिल कर लेगी और उसे पूर्ण और वास्तविक अर्थमें कारगर बनायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१८०. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

बॉक्सबर्ग नगर-परिषदने ट्रान्सवालकी नगर-परिषदों और नगरपालिकाओंको नीचे लिखा परिपत्र भेजा है:

सज्जनो,

'निःसन्देह आप पूरी तरह जानते हैं कि 'यातायात-सम्बन्धी उपनियमों' में एक उपधारा है, जिसमें यह व्यवस्था है कि कोई वतनी तबतक पैदल-पटरीपर नहीं चलेगा जबतक कि वह किसी सड़कको पार न कर रहा हो, या किसी निजी जायदादमें प्रवेश न कर रहा हो। देखिए उपधारा १९, अध्याय २।

आप देखेंगे कि इस उपनियम-संहिताकी २० वीं उपधारामें 'व्याख्याओं' के अन्तर्गत 'वतनी' शब्दका अर्थ है, कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके माता-पिता किसी आफ्रिकी आदिम जाति या उपजातिके हों।

मुझे इस पत्रके द्वारा यह बतानेका आदेश हुआ है कि मेरी परिषद चाहती है, मौजूदा कानूनके ऐसे ढंगसे संशोधित करानेमें, कि उसमें सब रंगदार कौमें बिना किसी भेदके शामिल हो जायें, विभिन्न नगर-परिषदों और शहरी जिला-निकायोंसे सहयोग और सहायताकी याचना की जाये।

मेरी परिषदका कहना यह है कि सार्वजनिक पैदल-पटरियोंपर दूसरी रंगदार जातियोंकी उपस्थिति भी उतनी ही आपत्तिजनक है जितनी इस देशकी आदिम जातियोंकी; और (जहाँतक इस परिषदका सम्बन्ध है), उसने कानूनको संशोधित और सब रंगदार जातियोंपर लागू करवानेकी दृष्टिसे स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवको 'यातायात उपनियमों' में शामिल करनेके निमित्त निम्न संशोधन भेजा है:

'किसी सड़ककी पैदल-पटरियों या किसी मकानके सामने या बगलमें बने चबूतरेपर, जो पैदल-पटरीका काम देता हो, तमाम रंगदार लोगोंका चलना वर्जित है।'

और कहा गया है कि दूसरी नगरपालिकाओंको भी उस विशेषाधिकारका उपभोग करनेकी सुविधा हो जो जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको है।

सहायक उपनिवेश-सचिव इसके उत्तरमें कहते हैं:

'नगर-निगम अध्यादेश जोहानिसबर्ग नगर-परिषदपर लागू नहीं होता, अतः वह परिषद रंगदार लोगों द्वारा पैदल-पटरियोंके उपयोग-सम्बन्धी उपनियमको लागू कर सकती है। फिर, वह परिषद जिस घोषणाके अनुसार बनाई गई है उसकी रूसे उक्त उपनियम पुराने नगर-नियमोंके अन्तर्गत आ जाता है। मुझे अफसोस है कि आपने जो उपनियम भेजा है उसकी मंजूरीकी सिफारिश मैं नहीं कर सकता, क्योंकि बॉक्सबर्ग परिषदको उसे लागू करनेकी अनुमति देनेके लिए कानूनको बदलना जरूरी होगा।'

इस प्रकार यह विदित हो जायेगा कि जो अधिकार जोहानिसबर्गको प्राप्त हैं उनके उपयोगके लाभसे दूसरे सब नगर वंचित रखे जानेवाले हैं, सिर्फ इसलिए कि उस नगरमें अब भी एक पुराना नगर-नियम मौजूद है और वह अभीतक वापस नहीं लिया गया है।

मेरी परिषद जोर दे रही है कि स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिव इस व्यवस्थाकी जरूरतपर तुरन्त और गम्भीर रूपमें ध्यान दें और अगर इस बातपर आपकी परिषदका समर्थन प्राप्त हो जाये तो हमारे उद्देश्यकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि आपकी परिषद भी प्रस्ताव स्वीकार करके इसी तरहका आवेदनपत्र भेजे।

मैं इस बारेमें सहयोगके लिए आपको पेशगी धन्यवाद देता हूँ।

एक हदतक बॉक्सबर्ग-परिषदसे सहानुभूति प्रकट न करना कठिन है। ये लोग अपनी पैदल-पटरियोंपर किसी भी रंगदार आदमीको चलता देखना नहीं चाहते। जोहानिसबर्गमें तमाम रंगदार लोगोंको उन्हें इस्तैमाल करनेसे रोकनेका अधिकार नगर-परिषदको प्राप्त है; तब दूसरी नगर-परिषदोंको भी जोहानिसबर्ग-परिषदके समान आधारपर क्यों न माना जाये। यह स्थिति काफी तर्कसंगत मालूम होती है। जो कुछ हुआ है, यह है: अपना निजी संविधान प्राप्त हो जानेसे, जोहानिसबर्गके लिए आम नगर-निगम अध्यादेशको मानना जरूरी नहीं है। और मसविदा बनानेवाले व्यक्तिने जोहानिसबर्गके विशेष अध्यादेशमें पुरानी हुकूमतके नगर-नियमोंका ध्यान नहीं रखा। लेकिन पीछे जब नगर-निगम अध्यादेश स्वीकृत हो गया तब "वतनी" शब्दकी उचित व्याख्या करके यह मामला कारगर तरीकेसे निपटाया गया। निश्चय ही सरकारके लिए अधिक साहसपूर्ण और ईमानदारीकी नीति तो यह होती कि वह विधि-संहितामें से नियमका वह हिस्सा ही निकाल देती, जिससे "वतनियों" के अलावा दूसरे रंगदार लोग खामखाह अपमानित होते हैं। परन्तु सही हो या गलत, जब सीधा रास्ता छोड़ा जा चुका है तब ट्रान्सवालकी नगर-परिषदोंका, जिन्हें यह कदम अकस्मात् उठाये जानेकी शिकायत है, अब अपने दृष्टिकोणसे इसके खिलाफ आन्दोलन करना स्वाभाविक है। निःसन्देह यह एक कठिन स्थिति है। इसका एकमात्र माकूल हल यही मालूम होता है कि इस मामलेमें और नगर-परिषदोंकी जैसी स्थिति है वैसी ही स्थितिमें जोहानिसबर्ग-परिषदको भी रख दिया जाये। तभी पूरा न्याय होगा और तब दूसरी नगर-परिषदोंको अपने प्राप्त अधिकारोंमें सन्तोष करना पड़ेगा। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक और कुछ दुःखजनक भी दिखाई देती है कि ट्रान्सवालकी नगर-परिषदों सरीखी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ तिलका ताड़ बना दें और ऐसे लोगोंपर, जिन्होंने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा है, अनावश्यक अपमानपर अपमान लादनेमें खुशी हासिल करें। ये लोग अगर किसी चीजके हकदार हैं तो अच्छे बरतावके हैं; क्योंकि फिलहाल ब्रिटिश भारतीयोंका विचार छोड़ भी दें तो भी यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इन लोगोंने ही, जो कलतक उपेतर गोरे कहे जाते थे, और आज नगर-परिषदोंके शरीफ

सदस्य बने बैठे हैं, केपके सैकड़ों रंगदार लोगोंका उपयोग अपने लाभके लिए किया था। तब तो उनके साथ बहुत प्यार दिखाया गया, उनकी आँखोंके सामने अंग्रेजी झंडा हमेशा लहराता रखा गया; जोशीली जबानमें उन्हें बताया गया कि उसमें रक्षा करनेकी शक्ति कितनी है, जिससे वे भाग कर उनकी गोदमें आश्रय लें, बोअर अधिकारियोंके जुल्मके बारेमें हलफिया बयान दें और उनके साथ एक हो जायें, ताकि उपनिवेश-कार्यालय मजबूर हो जाये और श्री क्रूगरपर दबाव पड़े। निश्चय ही इन लोगोंको यह अधिकार है कि वे कमसे-कम ट्रान्सवालके किसी भी मार्गकी पैदल-पटरियोंपर किसी तरहकी छेड़छाड़के बिना चल सकें, क्योंकि इनकी सार-सँभालमें दूसरे करदाताओंकी तरह वे भी अपना भाग प्रदान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८१. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले मंगलवारकी शामको ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें श्री बोर्कके प्रस्तावपर बहस हुई थी। इस प्रस्तावमें सरकारसे भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके सम्बन्धमें कानून बनानेका अनुरोध किया गया है। माननीय प्रस्तावक महोदयने हमेशाकी-सी मामूली बातें कहीं। उन्होंने सदस्योंके सामने छोटे-छोटे गोरे व्यापारियोंके भावी विनाशका चित्र खींचा और जोर देकर कहा कि इस मामलेमें ट्रान्सवालको कोई भी कानून बनानेका अधिकार है। उन्होंने साथ ही देशमें भारतीयोंके प्रवेशके बारेमें कई बातें कहीं। परन्तु श्री हॉस्केन और डॉ० टर्नरने पूरी तरह साबित कर दिया कि श्री बोर्क अपने कथनोंके सम्बन्धमें जमानेसे बेहद पीछे है। श्री हॉस्केनने आँकड़ोंसे प्रमाणित किया कि भारतवासी नेटालके लिए एक वरदान रहे हैं और अब भी हैं, एवं नेटाल भारतीयोंके कारण ही समृद्ध है। एक सदस्यने भारतीयोंपर घोर आक्षेप करते हुए कहा कि उनकी आदतें बहुत गन्दी होती हैं। इसके उत्तरमें डॉ० टर्नरने अकाटच रूपमें सिद्ध किया कि जोहानिसबर्गकी जो भारतीय बस्ती अब जला दी गई है उसकी स्थितिके सम्बन्धमें दोषी एकमात्र अधिकारी ही थे। भारतीय समाजको लायक डॉक्टरका बहुत आभारी होना चाहिए कि उन्होंने सच कहनेमें संकोच नहीं किया और इन अनुचित आक्षेपोंसे भारतीयोंकी इस प्रकार रक्षा की। श्री डंकनने अकाटच रूपमें प्रमाणित किया कि बहुत कम भारतीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी अनुमति दी गई है और चारके सिवा बाकी सब वास्तविक शरणार्थी है। परन्तु श्री डंकनने सदनको अपनी सहानुभूतिका विश्वास दिलाया है और इस सारे मामलेको उपनिवेश-कार्यालयके सामने पेश करनेका वचन दिया है। अन्तमें श्री सॉलोमनका संशोधन स्वीकार कर लिया गया और उपनिवेश-सचिवके इस आश्वासनपर सन्तोष प्रकट किया गया कि मौजूदा अधिवेशनमें ही ऐसा कानून पेश किया जायेगा, जिससे श्री बोर्कके भाषण और प्रस्तावमें व्यक्त इच्छाओंपर थोड़ा-बहुत अमल किया जा सकेगा। श्री डंकनको स्वीकार करना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार लड़ाईसे पहले दिये गये वचनोंसे बँधी हुई है; हमें देखना है कि ये वचन कैसे पूरे किये जाते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८२. गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याएँ

तारसे खबर मिली है कि श्री लिटिलटनने सर मंचरजी भावनगरीसे कहा है, गिरमिटिया भारतीयों द्वारा की जानेवाली आत्महत्याओंकी संख्या बहुत नहीं है, फलतः वे कोई जाँच नहीं करायेंगे। यदि यह खबर सही है तो हमें बेहद आश्चर्य है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकाके अनुसार : "इसके अस्तित्वको राज्यांगमें रोगोंकी उपस्थितिका लक्षण मानना ठीक ही है। ये रोग साध्य हों चाहे न हों, इस लक्षणपर बारीकीसे विचार होना चाहिए।" इस तरह, आत्महत्याओं द्वारा होनेवाली मृत्यु-संख्याके अधिक होनेके सिवा भी यह एक ऐसी बात है, जिसकी छानबीन की जानी चाहिए। प्रवासी-संरक्षक भी अपने विवरणमें उस हदतक नहीं गये, जहाँतक श्री लिटिलटन गये हैं। वह मानता है कि मृत्यु-संख्या इतनी बड़ी तो है ही कि उसपर मामूली चर्चासे कुछ ज्यादा किया जाये।

मगर हम आँकड़ोंको मिलाकर देखें। स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी ५१,२५९ है; उसमें आठ आत्महत्याएँ हुईं। गिरमिटिया भारतीयोंकी आबादी ३०,१३१ है; उसमें तेईस हुईं। ठिठक कर सोचनेके लिए यही काफी है। *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें* दी हुई तालिकाके अनुसार यह संख्या सेक्सनीमें सबसे अधिक थी — अर्थात् १८८२ में ३७१ प्रति दस लाख। गिरमिटिया भारतीयोंमें यह ७४१ प्रति दस लाख है। क्या यूरोपकी और नेटालमें गिरमिटिया भारतीयोंकी अधिकतम आत्महत्याओंके आँकड़ोंका यह जबरदस्त अन्तर बिलकुल विचारणीय नहीं है? और इतनेपर भी, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, फिलहाल हम किसीको भी दोष नहीं देते; हमने फैसला मुलतवी रख छोड़ा है। शायद इसका कोई सीधा-सादा कारण हो और आसानीसे स्पष्टीकरण किया जा सके। श्री लिटिलटनके प्रति अधिकसे-अधिक आदर रखते हुए हमारी इतनी ही माँग है कि न्याय और मानवताके भलेके लिए इस मामलेकी तहतक जाकर सफाई की जानी चाहिए। हमें यह आशा इसलिए है कि जब सर मंचरजीने मामलेको हाथमें उठाया है तब वे उसे यों ही छोड़ नहीं देंगे, बल्कि अपनी जाँच-पड़तालमें आग्रहपूर्वक लगे रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८३. और भी निर्योग्यताएँ

वर्जित-भूमिपर ईंटें बनाने, पत्थरकी खानें खोदने और चूनेके भट्टे लगानेके उद्योगोंका नियमन करनेके लिए जुलाई १ के ट्रान्सवाल *गवर्नमेंट गज़टमें* एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित हुआ है। अध्यादेशकी धारा ३ में कहा गया है:

> **इस उपनिवेशका निवासी, अठारह वर्षसे ऊपरका कोई भी गोरा पुरुष, किसी भी जिलेके रजिस्ट्रारके दफ्तरसे ईंटें बनाने, चूनेके भट्टे लगाने और पत्थरकी खानें खोदनेका परवाना लेनेके लिए स्वतन्त्र होगा।**

अभीतक रोक सोनेकी खदानोंतक ही लागू थी, और उसके बारेमें हमने कुछ नहीं कहा। किन्तु अब भारतीयोंके लिए ईंटें बनाना भी गैर-कानूनी हो जायेगा, क्योंकि उन्हें ऐसा करनेका परवाना नहीं मिल सकेगा। अभी कुछ ही दिनों पहले श्री लिटिलटनने सर मंचरजी भावनगरीके प्रश्नका उत्तर देते हुए उन माननीय सज्जनको आश्वासन दिया था कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें बस चुके हैं उनके अधिकारोंकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। हमारे सामने अध्यादेशका जो मसविदा है वह इस इरादेको पूरा करनेवाला नहीं दीखता। इसलिए क्या हम यह बात तय मान लें कि सरकार अध्यादेशको बदल देगी या, यदि वह अपने वर्तमान रूपमें पास हुआ तो, श्री लिटिलटन उसपर अपने निषेधाधिकारका प्रयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–७–१९०४

१८४. प्लेगकी खूँटी

प्लेगने ट्रान्सवालमें एक ऐसी खूँटीका काम दिया है जिसपर भारतीयोंके प्रति अनेकानेक निर्योग्यताएँ अटका दी जायें। अब सुनाई दे रहा है कि प्लेगसे सावधानीकी आड़में भारतीय शरणार्थियोंको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोंसे यहाँ आनेके परवाने देना बन्द कर दिया गया है। यह सबसे ताज़ा निर्योग्यता है, जो उनपर लगाई गई है। इसका एकमात्र कारण यह मालूम होता है कि जोहानिसबर्गके कुछ स्थानोंमें प्लेग-ग्रस्त चूहे पाये गये हैं। और वे भी भारतीयोंके मुहल्लोंमें नहीं, परन्तु गरीब यूरोपीयोंके मुहल्लोंमें। डर्बनमें प्लेगकी एक दो घटनाएँ होनेके बाद फिर परवानोंपर रोक शुरू की गई थी। परन्तु अब प्लेग डर्बनमें अचानक बन्द हो गया है, यह देखते हुए कोई-न-कोई बहाना आवश्यक था और उसका काम प्लेगके चूहोंसे ले लिया गया है। हमें पता नहीं कि ट्रान्सवाल-सरकारके इरादे क्या है। परन्तु यदि उसे प्रस्तावित कानून द्वारा अपनी मन्द उत्पीड़न नीति दुहरानी है तो ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति नितान्त दयनीय हो जायेगी। इस सम्बन्धमें नगरके स्वास्थ्यके बारेमें डॉ० म्यूरिसनकी रिपोर्टका एक अनुच्छेद उद्धृत कर देना अच्छा होगा। इससे प्रकट हो जायेगा कि डर्बनसे ट्रान्सवालमें आनेके परवाने कितने लचर बहानेपर बन्द किये गये थे।

जून मासमें डर्वनमें प्लेगसे दो व्यक्ति वीमार हुए और वे दोनों वतनी मर्द थे। दोनों मरे हुए पाये गये — एक हार्वर वोर्डकी वारकोंमें और दूसरा क्वीन्स स्ट्रीटके काफिर मुहल्लेमें। और चूंकि दोनोंमें से एककी भी चिकित्सा पहले किसी डॉक्टरने नहीं की थी इसलिए उनकी वीमारीका निदान उनकी शव-परीक्षाके वाद ही किया गया। जून मासमें प्लेगकी छूतसे वीमार कोई नया रोगी नहीं मिला है, क्योंकि मेरी मई महीनेकी रिपोर्टमें जिन मकानोंका जिक्र है उनके वाहर प्लेगकी छूतका एक भी चूहा नहीं पाया गया, यद्यपि डॉ० फरनांडिस और मैं भिन्न-भिन्न मुहल्लोंके वहुतसे चूहोंकी जाँच-पड़ताल कर चुके हैं। अलेग्जैंड्रा रोड स्थित चुंगी-गोदाममें प्लेगकी छूत लग गई थी। इसके मामलेमें जाँचसे अच्छी तरह सावित हो गया है कि चूहोंमें प्लेगकी वीमारी अत्यन्त तीव्र रूपसे संक्रामक और घातक होती है। चूँकि इस मकानसे चूहोंके निकासके सव सम्भावित मार्ग अच्छी तरह वन्द कर दिये गये थे, इसलिए उनमें वड़ी तेजीसे वीमारी फैली और ४० मरे चूहे तो एक दिन ही मिले। करीव-करीव प्रत्येक चूहा इसी रोगसे मरा था। गोदाममें वड़ी मात्रामें जई भरी थी। यह हटाकर जला दी गई, क्योंकि चूहोंको इसीमें आश्रय मिलता था और इसीसे वे भोजन भी पाते थे। और उसमें अवश्य ही प्लेगकी छूत थी। साथ ही गोदाम और उसकी चीजोंको पूरी तरह छूत-रहित कर दिया गया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–७–१९०४

१८५. स्वर्गीय श्री क्रूगर

भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगर अव इस संसारमें नहीं रहे। और उनके गुजर जानेसे उन्नीसवीं शताब्दीका एक अत्यन्त प्रभावशाली पुरुष चला गया और संसारको अपने लाभसे वंचित कर गया। वे दृढ़ चरित्रके धनी थे, जिसमें शायद अनेक वातें परस्पर-विरोधी थीं। परन्तु, निस्सन्देह, विशुद्ध नतीजा उनके अनुकूल था। जिन लोगोंको अपना कहनेमें उन्हें गर्व होता था उनके प्रति उनकी निष्ठा अनुपम थी। उन्होंने अंग्रेज जैसी वलशाली जातिका विरोध करने और उसे अपनी जगत-प्रसिद्ध चुनौती भेजनेमें जो भूल की थी वह भी उनके विरुद्ध नहीं, वल्कि उनके पक्षमें ही गिनी जायेगी। उन्होंने वह घातक कदम देश और देशवासियोंके प्रति अपने गहरे प्रेमसे प्रेरित होकर ही उठाया था। उसके पीछे कोई शेखी नहीं थी। वे अनुभव करते थे कि वे उचित कर रहे हैं। वाइविलके पुराने धर्मनियम (ओल्ड टेस्टामेंट) की शिक्षामें उनकी श्रद्धा वहुत गहरी थी और उनका विश्वास था कि ईश्वर उनके साथ है और इसलिए उनकी हार कभी नहीं हो सकती। वस्तुतः मामलेका आखिरी फैसला होनेके वाद भी उन थोड़ेसे दिनोंमें, जवतक वे इस पृथ्वीपर रहे, उनका यह विश्वास कभी डिगा नहीं और वे तव भी अनेक वोअरोंकी भांति यही विश्वास करते रहे कि अंग्रेजोंका अधिकार हो जानेसे भी उनका कल्याण ही होगा। और वेशक ऐसा ही होगा; शायद उस तरहसे नहीं जिस तरह वे चाहते। परन्तु ईश्वर तो वैसे काम नहीं करता जैसे हम करते हैं और भविष्य वतायेगा कि इन राष्ट्रकी किस्मत क्या होगी। अक्सर यह कहा गया है कि परलोकवासी राष्ट्रपति प्रिटोरियासे कायरताके कारण भागे थे। परन्तु हमने यह आरोप कभी सत्य नहीं माना है। उनका ख्याल था कि

वे दूर रहे और दूरसे सब व्यवस्था करें तो अपने देशवासियोंकी अधिकतम सेवा कर सकते हैं। और इसलिए वे वहाँसे चले गये। यह खयाल गलत है कि जो बहादुर शेर द्वारा घायल कर दिये जानेपर अपने ही हाथसे अपनी अंगुली काटकर और अपने घावपर पट्टी बाँधकर अपने कामकाजमें इस तरह लग गया था मानो कुछ घटित ही न हुआ हो, वही खतरेकी जगहसे भागनेवाला व्यक्ति होगा। यूरोपमें भी उनकी वृत्ति एक महान और ईश्वरपरायण पुरुषके योग्य रही। उन्होंने कोई अनुचित क्षोभ नहीं दिखाया, अनिवार्यको मंजूर किया और अपने लोगोंको सलाह देकर रास्ता दिखाते रहे। वे अपने पीछे एक महत्त्वपूर्ण सबक छोड़ गये हैं और वह है उनकी एकनिष्ठ देशभक्ति, यद्यपि वह कभी-कभी गलत दिशामें चली जाती थी। हमारा खयाल है कि आगामी पीढ़ियोंके लिए उनका सर्वोत्तम परिचय एक कट्टर देशभक्तके रूपमें होगा। खुद ब्रिटिश भारतीयोंके पास ऐसा कुछ नहीं, जिसके लिए वे उक्त दिवगत राजपुरुषको धन्यवाद दे सकें। ट्रान्सवालमें उनके बनाये कानूनकी पीड़ामें हम अब भी कराह रहे हैं। परन्तु इस कारण यह जरूरी नहीं कि हमारे देशवासी उनके महान गुणोंको स्वीकार न करें और जो लोग ऐसे महान पुरुषकी मृत्युपर शोक मना रहे हैं उनके साथ शरीक न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-७-१९०४

१८६. आयोजित आन्दोलन

ब्रिटिश भारतीयों और दूसरे एशियाइयोंको व्यापारिक परवाने देनेके विरुद्ध बॉक्सबर्गके व्यापारियोंकी हलचलें जारी हैं। उन्होंने संयुक्त कार्रवाईकी दृष्टिसे उपनिवेशके सब व्यापारी-संघोंके नाम एक घोषणापत्र भेजा है। बॉक्सबर्गसे छन-छनकर जो कागजात यहाँ आ जाते हैं उनमें बहुत ही असंयत बातें कही जाती हैं। उदाहरणके लिए, दूसरे संघोंसे ठंडे दिलसे कहा गया है कि "एशियाई व्यापारको उपनिवेशमें अबाध रूपसे जमनेकी अनुमति देकर गोरे समाजपर अन्याय किया जा रहा है और उसके लिए खतरा पैदा किया जा रहा है।" यदि सुझाये गये प्रस्तावपर ध्यान दिया गया तो उससे विधान-परिषद दुनियाकी नजरोंमें बिलकुल हास्यास्पद दिखाई देगी। क्योंकि, प्रस्तावमें परिषदसे गम्भीरतापूर्वक माँग की गई है कि "जबतक एशियाइयोंके सम्बन्धमें स्थायी कानून अमलमें नहीं आता तबतक एशियाइयोंको परवाने देना बन्द कर दिया जाये।" इतनेपर भी हमसे कहा जाता है कि उन्होंने इतना अच्छा एका कर लिया है कि अबतक चीनी अहातेके पास एक भी चीनी व्यापारी पैर नहीं जमा सका है। समझमें नहीं आता कि तब इतनी भोंडी जल्दबाजी क्यों की जाती है। परन्तु हमें अपने सहयोगी *स्टार*के द्वारा मालूम हुआ कि उपनिवेश-कार्यालयको प्रेषित निवेदनोंमें स्थानीय सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे ऐसा जोरदार आन्दोलन चलाना अत्यावश्यक है। इस दृष्टिसे देखने-पर हमारी समझमें इस बातका अर्थ आ जाता है; यह तो आतंकित करना ही है। अमली तौरपर इस तरह लोग साम्राज्य-सरकारसे कहते हैं कि, "अगर तुम हमें वह चीज नहीं दोगे जो हम चाहते हैं तो हम तुमसे झगड़ेंगे", क्योंकि यह कहा गया है कि "इस आशयका एक और प्रस्ताव भी रखा जायेगा। अगर साम्राज्य-सरकार मंजूरी नहीं देगी, तो उत्तरदायी शासनके लिए आन्दोलन शुरू कर दिया जायेगा, ताकि ट्रान्सवाल अपने भीतरी मामलोंका

नियन्त्रण करनेका हक प्राप्त कर सके।" यह बिलकुल स्पष्ट है कि जबतक सरकार इस प्रश्नको टालती जाती है और पूरा न्याय करनेके बजाय दोनों पक्षोंको खुश करनेका विचार करती है तबतक यूरोपीय और एशियाई प्रजाजनोंके बीच शान्ति-स्थापनामें बाधा देनेवाला यह हानिकारक और अवांछनीय आन्दोलन जारी रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-७-१९०४

१८७. चीनी पहेली

चीनी व्यापारकी लड़ाई, जो अनिवार्य थी, पूरी तीव्रता और तत्परतासे शुरू हो गई है। बॉक्सवर्गके लोग चीनी दूकानदारोंका अपने गिरमिटिया देशबन्धुओंसे कोई लेनदेन हो इस विचारके ही खिलाफ उठ खड़े हुए हैं। इतना काफी नहीं कि उनके तमाम नागरिक अधिकार छीन लिये जाने हैं और उनको गुलाम जैसा बना दिया जाना है। और, जैसा एक चीनीने भेंटमें स्टारके प्रतिनिधिसे कहा था, यह भी काफी नहीं कि उन्हें मजदूरी इतनी थोड़ी दी जानी है कि बचत बहुत थोड़ी ही होगी, यद्यपि गिरमिटके अन्तमें उनके सामने भविष्य होगा — आवश्यक रूपसे चीनको लौट जाना। इसके अलावा बॉक्सवर्गके यूरोपीय दूकानदारोंको चीनी व्यापारसे अनाप-शनाप मुनाफा भी मिलना ही चाहिए। और गिरमिटिया लोग अपनी मजदूरीमें से जो भी खर्च करें वह यूरोपीय दूकानदारोंकी जेबोंमें जाना चाहिए। बॉक्सवर्गके ये शरीफ लोग वस्तुतः तभी समझेंगे कि उनके साथ कुछ थोड़ा-सा न्याय किया गया है; अन्यथा वे कहेंगे कि चीनी मजदूरोंको यहाँ आनेकी जरूरत ही नहीं थी। और अगर चीनी दूकानदारोंको अपने देशबन्धुओंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेकी अनुमति दे दी जाये तो यह अन्यायकी पराकाष्ठा और यूरोपीय दूकानदारोंकी हकतल्फी होगी। वे स्वीकार करते हैं कि चीनी दूकानदारोंके साथ वे बिलकुल स्पर्धा नहीं कर सकते। सीधी-सादी भाषामें इसका अर्थ यह है कि वे इन गरीब गुलामोंसे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक दाम लेंगे जितना चीनी दूकानदार लेनेका कभी विचार करते। और इसलिए वे अपना सारा सामर्थ्य, प्रभाव और बल इस बातपर खर्च कर रहे हैं कि एक भी चीनी या यों कहिये कि, भारतीय व्यापारी चीनी ग्राहकोंमें से जरा भी हिस्सा न बँटा सके। उन्होंने लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रार्थनापत्र दिया है और तमाम व्यापारी संघोंसे अनुरोध किया है कि वे उनके गुटमें शरीक हों और उनके हकमें चीनी व्यापारकी एक बड़ी कोठी बनवानेमें उनका साथ दें।[1] वे बहुत साफ-साफ कहते रहे हैं कि अगर सरकार उनकी मदद नहीं करेगी तो वे कानून अपने हाथोंमें ले लेंगे और टेढ़े-सीधे तरीके काममें लाकर भी एक भी चीनी दूकानदारको बॉक्सबर्गमें अपना व्यापार नहीं जमाने देंगे। इससे इस समाजकी मनोदशा विदित होती है और यह भी प्रकट होता है कि जो अधिकार केवल उन्हींके नहीं हैं, उनपर जोर देने या, यों कहिए कि, उन्हें हड़पनेके इरादेसे वे किस हदतक आगे बढ़नेके लिए तैयार हैं। बिगड़ैल और लाड़ले बच्चोंकी तरह, वे चूंकि अबतक अपनी ही जिद पूरी करते रहे हैं इसलिए अब वे सारी मर्यादाएँ ही लाँघ गये हैं और सिर्फ यही समझते हैं कि वे जिस प्रश्नपर चाहें सरकारसे अपनी शर्तें मनवानेका हक रखते हैं। क्या श्री लिटिलटन इनके आगे घुटने टेक देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-७-१९०४

१. इसमें अभिप्राय चीनी मजदूरोंके साथ व्यापारपर गोरोंका एकाधिकार है।

१८८. बॉक्सबर्गके पहरेदार

बॉक्सबर्गमें भारतीय व्यापारके सम्बन्धमें जो सभा की गई थी हम उसका विवरण नीचे उद्धृत करते हैं। इससे हमें १८९६ का डर्बनका ऐसा ही आन्दोलन[1] बहुत तीव्रतासे याद आता है। और इस सभामें प्रस्तुत और स्वीकृत दूसरे प्रस्तावमें भी बहुत तेज डर्बनी बू आती है। प्रस्ताव यों है:

> **बॉक्सबर्ग नगरपालिकाके निवासी इस आम सभामें प्रतिज्ञा करते हैं कि वे मौजूदा एशियाई कानूनके सिद्धान्तोंको, ट्रान्सवालके लोगों द्वारा हमेशाके लिए गये अर्थके अनुसार, कायम रखेंगे और एशियाई दूकानदारोंको पृथक् बस्तीके बाहर बॉक्सबर्ग नगरपालिकामें व्यापार करने या रहनेसे रोकनेके लिए सब सम्भव उपाय काममें लेंगे; वे सरकारसे यह अनुरोध करते हैं कि जो पेचीदगियाँ पैदा हो गई हैं उन्हें देखते हुए नये कानूनमें एशियाई व्यापारकी बिलकुल मनाही कर दी जाये।**

तब हम देखते हैं कि इसमें एशियाई व्यापारकी पूरी मनाहीकी प्रार्थनाके रूपमें साफ तौरपर सर्वोच्च न्यायालयका विरोध किया गया है और धमकी दी गई है कि अगर कोई एशियाई बॉक्सबर्गमें पृथक् बस्तीके बाहर बसनेका इरादा करेगा तो हिंसाका आश्रय लिया जायेगा। प्रस्तावकने उदाहरण देकर बताया कि सब सम्भव उपायोंसे उनका मतलब क्या है। यह है उसका अर्थपूर्ण कथन:

> **अबतक शानदार एकता और सार्वजनिक भावनाके बलपर लोगोंने नगरमें एशियाइयोंको कोई दूकान या बाड़ा किरायेपर देनेसे इनकार किया है, यद्यपि एक चीनीने ड्रीफाँटीनमें परवाना हासिल कर लिया है। मगर मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि, आशा है, कल सुबहतक खतरा दूर हो जायेगा और पृथक् बस्तीके बाहर सारी नगरपालिकाकी सीमामें किसी भी बाड़ेका किसी एशियाईके नाम परवाना बिलकुल नहीं रहेगा (तालियाँ)। अबतक जो 'नैतिक दबाव' इतनी सफलतापूर्वक डाला गया, उसमें ऐसी ताकत है। किन्तु हमें और हमलोंके लिए तैयार रहना होगा और इसलिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम एशियाइयोंको प्रोत्साहन देनेका *हर सम्भव उपायसे विरोध* करेंगे।—*स्टार***

हमें यह कहनेकी जरूरत नहीं कि "नैतिक दबाव" का क्या अर्थ है।

सभामें उपस्थित कुछ संजीदा लोगोंको यह सहन नहीं हो सका और हमें उनमें ईस्ट रैंड *एक्स्प्रेसके* श्री कॉन्स्टेबलको देखकर खुशी हुई। हमारा खयाल है कि वे एशियाइयोंके कट्टर विरोधी हैं, फिर भी उनको अपनी वैधानिक बुद्धिमें यह प्रस्ताव बड़ा घिनौना मालूम हुआ और उन्होंने सुझाव दिया कि इसमें ["हर सम्भव उपाय" शब्द निकालकर] "प्रत्येक सम्भव वैधानिक उपाय" शब्द जोड़ दिये जायें और मनाहीकी पूरी धारा निकाल दी जाये। परन्तु श्री कॉन्स्टेबल और उनके समर्थकोंकी आवाज अरण्यरोदन ही सिद्ध हुई और वहाँ विवेकको क्रोध और द्वेषसे हार माननी पड़ी।

जैसा हमने अनेक बार कहा है, यदि बॉक्सबर्गवासी महानुभाव यह समझते हों कि कायरता-भरी धमकियोंसे वे किसी एक भी ब्रिटिश भारतीयको, जो अपने अधिकारपर जोर देना चाहता

१. यह संकेत यूरोपीयों द्वारा भारतीयोंको डर्बनमें उतरने देनेके विरोधकी ओर है। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९९ और आगे।

हो, डरा-धमका सकेंगे, तो यह उनकी बड़ी भूल है। और हम उन्हें फिर डर्बन और अमतलीकी घटनाओंकी[1] याद दिलाते हैं। डर्बनमें स्वयंभू प्रदर्शन-समितिकी चुनौती भारतीयोंको डराने-धमकानेमें अशक्त रही और उससे वे जहाँसे आये थे वहाँ वापिस नहीं गये। और अमतलीमें भीड़ अकेले निर्दोष भारतीय व्यापारीको भी डराकर उसको अपनी दूकानसे नहीं हटा सकी। उसने उन लोगोंको चुनौती दी कि वे जो-कुछ बुरासे-बुरा कर सकते हैं वह कर गुजरें और वह अपनी जगहपर उस वक्ततक डटा रहा जबतक पुलिसकी मदद न आ गई और पुलिस सुपरिंटेंडेंटने भीड़को तितर-बितर नहीं कर दिया।

परन्तु बॉक्सबर्गके महापौरने जो कुछ कहा वह कहीं अधिक खौफनाक था। उन्होंने सभामें उपस्थित लोगोंको समझाया कि वे उत्तरदायी शासन जल्दी ही देनेकी माँगके प्रस्तावसे सरकारको दी गई धमकी निकाल दें। उन्होंने सभामें बिलकुल स्पष्ट कहा कि उपनिवेश-सचिव श्री डंकन पूरी तरह उनके साथ मिलकर काम कर रहे हैं। हम अपने विचार पेश नहीं करना चाहते, क्योंकि हम उपनिवेश-सचिवके प्रति अनजानमें भी कोई अन्याय नहीं करना चाहते। उनके शब्द ये हैं:

> महापौरने तब कहा: मैं आज प्रिटोरिया गया था और आपको बता सकता हूँ कि वहाँ भी एशियाई प्रश्नपर उतनी ही तीव्र चर्चा होती है, जितनी ईस्ट रैंडमें। आपको एक क्षणके लिए भी यह नहीं सोचना चाहिए कि सरकारको जो खबरें दी जा रही हैं उनके प्रति वह उदासीन है। परन्तु सरकार यह महसूस करती है कि मौजूदा कानून जबतक है, वह एशियाइयोंको परवानोंका दिया जाना रोक नहीं सकती। परन्तु वह भरसक कोशिश कर रही है कि ऐसा कानून तुरन्त बनानेकी अनुमति ले ली जाये, जिससे अब और परवाने देना रुक जाये। मुझे भय है कि अगर श्री मैक'क्यूको सभाके सामने यह प्रस्ताव पेश करने दिया जाता है तो इससे सरकारका उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा। मैं उपनिवेश-सचिव श्री डंकन और सर जॉर्ज फेरारके कथनके आधारपर कह सकता हूँ कि गोरे लोगोंके साथ सरकारकी पूरी सहानुभूति है और इसके प्रमाणस्वरूप मुझसे कहा गया है कि यहाँ आज शामको जो प्रस्ताव पास हों, वे इंग्लैंडको प्रेषित करनेके लिए तारसे प्रिटोरिया भेज दिये जायें। मुझे कहा गया है कि इस प्रस्तावसे सरकारके हाथ मजबूत होंगे और मुझे आशा है कि हमें जल्दी ही राहत मिलेगी। उपनिवेश-सचिवने मुझसे साफ-साफ कहा है कि तीन-चार दिन पहले ही इस प्रश्नके सम्बन्धमें इंग्लैंडको समुद्री तार भेजे गये हैं और सरकार इस प्रश्नको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझती है (तालियाँ)। —*स्टार*

हमने पिछले सप्ताह जो कुछ कहा था उसके समर्थनमें हम इससे अधिक प्रबल या अच्छा प्रमाण दूसरा नहीं दे सकते। हमने तब कहा था कि यह सारा आन्दोलन आयोजित है। यह दृश्य अपमानजनक है कि हम उपनिवेश-सचिवको सरकारी प्रतिनिधि होते हुए भी ऐसा पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाते हुए और ताकत वगैरा माँगते हुए आन्दोलनके पीछे खड़ा पाते हैं। इस तरहका व्यवहार तो स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरकी सरकारने भी नहीं किया था। उन्होंने भी यह नहीं कहा था कि नगर-निवासी अथवा डचेतर यूरोपीय उनके हाथ मजबूत करें। उन्होंने अपनी लड़ाई सीधी और न्यायपूर्वक लड़ी थी। तब परदेके पीछे कुछ नहीं होता था और भारतीय जानते थे कि उन्हें किस चीजका सामना करना है। इस समय जैसी स्थिति है, उसमें उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि परदेके पीछे क्या हो रहा है। महापौरने हमें भीतरी स्थितिकी

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ६१।

जरा-सी झलक ही देखने दी है; परन्तु वह झलक हमें स्तब्ध और निराश करनेके लिए काफी है। जब सभाकी ये खबरें तारसे श्री लिटिलटनको भेज दी जायेंगी, तब वहाँ उन्हें यह बतानेके लिए कोई नहीं होगा कि ये सभाएँ प्रायः सरकारने ही बुलाई हैं और उसीने उन्हें प्रोत्साहन दिया है और सरकारकी नीति सभाकी नीति है। हजारों ब्रिटिश मंचोंसे यह घोषणा की गई है कि कुछ भी हो, न्याय होना ही चाहिए। ट्रान्सवालमें अब इस कहावतमें परिवर्तन करना पड़ेगा, ताकि यहाँ जो नई व्यवस्था कायम हुई है उसके साथ इसका मेल बैठ जाये; और बॉक्सबर्गके महापौरने जो बात कही है उसको देखते हुए हमें महसूस होता है कि सर जॉर्ज फेरारके एशियाई व्यापारी-आयोगकी नियुक्तिसे सम्बन्धित प्रस्तावपर श्री डंकनने भारतीय व्यापारियोंकी जो शानदार वकालत की थी वह सच्चे दिलसे नहीं की गई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१८९. गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी असाधारण संख्याके बारेमें हमने पिछले ४ जूनके *इंडियन ओपिनियनमें* जो प्रश्न उठाया था उसपर सर मंचरजीने ब्रिटिश संसदमें सवाल पूछा था और उसका जवाब श्री लिटिलटनने दिया था। अब हमें इस प्रश्नोत्तरको विस्तारसे यहाँ छापनेका सुयोग प्राप्त हुआ है:

> सर मंचरजी भावनगरीने उपनिवेश-मन्त्रीसे पूछा: क्या आपका ध्यान उक्त वक्तव्यकी ओर गया है जो नेटाली प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी १९०३ की सालाना रिपोर्टमें दिया गया है? उसमें कहा गया है कि उस वर्षमें आत्महत्याओंकी घटनाएँ कमसे-कम ३१ अर्थात् दस लाखमें ७४१ हुईं। क्या गिरमिटिया मजदूरोंने बहुत बड़े अनुपातमें आत्महत्याएँ कीं; और क्या स्थानीय अधिकारियोंने इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक प्राण-त्यागके कारणोंका पता लगाया?
>
> श्री लिटिलटनने कहा: मैंने उल्लिखित रिपोर्ट देखी है। भारतीयोंम मृत्यु-संख्या प्रति दस लाखमें ७४१ नहीं हुईं जैसा कि कहा गया है, बल्कि ३८२ हुई। स्वतन्त्र भारतीयों और गिरमिटिया भारतीयोंमें मृत्यु-संख्याकी दर क्रमशः १५७ और ७६६ थी। मुझको बताया गया है कि आत्महत्याकी प्रत्येक घटना किन परिस्थितियोंमें हुई, इसकी जाँच न्यायाधीशसे कराई गई और जब कभी प्रमाणोंसे यह प्रगट हुआ कि मृत्यु किसी भी तरह किसी मालिक या नौकरके दुर्व्यवहारसे हुई है तब भारतीय प्रवासी-संरक्षक उस खेतीमें खुद गया और उसने उन परिस्थितियोंकी जाँच की। केवल एक ही मामलेमें गवाहीसे इस प्रकारका सबूत मिला। आम तौरपर गवाहोंने यह बयान दिया कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं बता सकते। और अगर जिन लोगोंको जानकारी है वे ही कुछ न बतायें तो बहुतसे मामलोंमें सम्भावित कारण मालूम करना भी असम्भव है। मालूम होता है नेटालके भारतीयोंमें १९०२ में सामान्य मृत्यु-संख्याकी दर ३३३ रही

और १९०१ में ३८३। इस लिहाजसे १९०३ में मृत्यु-संख्याकी दर बिलकुल असाधारण तो नहीं थी। इस संख्यासे पेरिसकी संख्या अधिक रही है।

सर मंचरजीके आँकड़े इस अखबारसे[1] लिये गये हैं। और श्री लिटिलटनने सर मंचरजी-पर ऐसी बात आरोपित की है जो हम समझते हैं उन्होंने कभी नहीं कही। और फिर उन्होंने उनके आँकड़ोंकी प्रामाणिकतासे इनकार किया है। सर मंचरजीने पूछा था कि क्या गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी संख्या प्रति दस लाखमें ७४१ नहीं है। इसमें जरा-सी भूल यह है कि सर मंचरजीका आशय ३१ घटनाओंसे है। जो आत्महत्याओंकी पूरी संख्या है। इसमें से २३ आत्महत्याएँ गिरमिटिया भारतीयोंमें हुईं, परन्तु उनका अनुपात बिलकुल सही है। इसलिए मंचरजीके आँकड़े बिलकुल असन्दिग्ध रहते हैं और जैसा कि *डेली न्यूज़*ने बताया है, जो आँकड़े श्री लिटिलटनने खुद पेश किये हैं उनसे भारतीय सदस्यके कथनकी और अधिक पुष्टि होती है। क्योंकि, श्री लिटिलटनके अनुपातके अनुसार, संख्या ७४१ नहीं बल्कि ७६६ है, जब कि स्वतन्त्र भारतीयोंमें १५७ ही है। ये आँकड़े बहुत जोरदार और साथ ही दर्दनाक भी हैं। और इन भयानक आँकड़ोंके होते हुए भी श्री लिटिलटनने संरक्षककी रिपोर्टमें इस मामलेका जरा-सा जिक्र आनेपर ही अपना सन्तोष प्रकट कर दिया है। हमारी विनीत रायमें उन्होंने ऐसा करके उस मुद्देको ही भुला दिया जो हमने उठाया है। हम अभीतक मालिकोंके दुर्व्यवहारको आत्महत्याओंका कारण नहीं मानते, जैसा श्री लिटिलटनने खयाल कर लिया है। परन्तु हम यह जरूर कहते हैं कि जिस स्थितिके कारण आत्महत्याओंसे इतनी अधिक मृत्युएँ होती हैं वह ऐसी है जिसकी जाँच होना मालिक और नौकर दोनोंके हितमें जरूरी है। हम जानते हैं कि विचारणीय वर्षकी संख्या असाधारण नहीं है। परन्तु वह साल-दर-साल चली आ रही है और यही स्थिति सबसे बुरी है। इसलिए हम समझते हैं कि पूरी और निष्पक्ष जाँच करनेका समय आ पहुँचा है। सम्भव है कि मालिकोंके वास्तविक दुर्व्यवहारके बजाय उस स्थितिका ही दोष हो जिसमें गिरमिटिया लोग रखे जाते हैं। यह भी हो सकता है कि उन लोगोंसे जो काम कराया जाता है वह उनके लिए जरूरतसे ज्यादा सख्त हो या जलवायु-सम्बन्धी स्थितियाँ ऐसी हों जिनसे वे ऐसे काम करनेके लिए बाध्य होते हों, अथवा उन्हें सिर्फ घरकी याद ही सताती हो। कारण कुछ भी हो, यह अत्यावश्यक है कि जनता ठीक-ठीक कारण जाने और इस मामलेपर भारतीयोंके मनमें जो भारी बेचैनी है उसका भी समाधान हो। इसलिए हमारी समझमें नहीं आता कि जाँचकी उचित माँगमें कदाचित् खर्चके सिवा और क्या आपत्ति हो सकती है। परन्तु हम इस बातका तो बिलकुल विचार ही नहीं करते, क्योंकि हम जानते हैं कि इससे कहीं कम महत्त्वके मामलेमें भारी खर्च करके भी जाँचपर जाँच मंजूर की जाती हैं। इसलिए हमें विश्वास है कि इस प्रश्नको यों ही नहीं छोड़ दिया जायेगा और योग्य संसद-सदस्य सर मंचरजी उपनिवेश-कार्यालयको साफ तौरपर बता देंगे कि प्रस्तावित जाँचका मतलब पहलेसे ही मालिकोंके दुर्व्यवहारका अस्तित्व मान लेना नहीं है और न उनका हेतु मालिकोंपर जरा भी आक्षेप करना है। आवश्यकता इतनी ही है कि सत्यकी खोज कर ली जाये और कुछ नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१. देखिए "गिरमिटिया भारतीय" ४-६-१९०४; गांधीजीने इस लेखकी एक नकल मंचरजी भावनगरीको भी भेजी हो तो असम्भव नहीं।

१९०. दर-दरके धक्के

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी बैठक वतनी और एशियाई लोगोंके लिए घरोंकी व्यवस्थाके बारेमें हुई थी। उसका विवरण दिलचस्प है जिसे हम अन्य स्तम्भमें छाप रहे हैं। सभीको यह स्मरण होगा कि प्लेगके प्रकोपके दिनोंमें पुरानी भारतीय बस्ती जला दी गई थी और उसके निवासी हटाकर क्लिपस्प्रूट शिविरमें भेज दिये गये थे। परिषदके कुछ सदस्योंकी यह राय थी कि अच्छा पिण्ड छूटा और उन्होंने यह भी सोच लिया था कि शिविर स्थायी बस्ती है। परन्तु उन्होंने पीछे देखा कि पृथक् वासकी अवधि बीतनेके बाद शिविर-वासियोंको नगरमें लौटनेकी इजाजत दे दी गई है, बशर्ते कि वे रैंड प्लेग-समितिको सन्तोषप्रद निवास-स्थान बता सकें। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि इस प्रकार निवास-स्थानोंसे वंचित भारतीयोंके पास जमीनका टुकड़ा जैसी कोई चीज नहीं है, जिसपर वे स्थायी रूपसे रह सकें। जो बस्ती जला दी गई है उसके स्थानपर कोई दूसरी अभीतक निश्चित नहीं की गई है और चूँकि उन्हें अचल सम्पत्ति रखनेका अधिकार नहीं है इसलिए वे असमंजसकी स्थितिमें रहनेके लिए लाचार हैं। अब विवरणसे जाहिर है कि नगर-परिषद क्या करना चाहती है, यह वह खुद नहीं जानती। वह अभीतक उपयुक्त स्थानके चुनावके सम्बन्धमें जहाँ थी वहाँ ही है और स्थिति यह है कि इस बीचमें किसी भी [क्षण][1] भारतीयोंको दर-दर धक्के खाने पड़ सकते हैं। मलायी बस्ती पहलेसे ही घिचपिच है और उसमें उन्हें अनाप-शनाप किराया देना पड़ता है। उनका व्यापार चौपट हो गया है। उनके पास माल नहीं है, वह जला दिया गया है और उनको उसका कोई मुआवजा नहीं दिया गया है। उनकी हालत सचमुच दयनीय है और उपनिवेश-सचिवने, जो उनके लिए उपयुक्त स्थानकी व्यवस्थापर जोर देनेके लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं, अभी अँगुली भी नहीं उठाई है। उधर नगर-परिषद तरह-तरहकी योजनाओंपर बेकार वादविवाद कर रही है। इस अन्यायका अन्त कब होगा?

नगर-परिषद और स्थानीय सरकारके इस उदासीनता-भरे रुखके बिलकुल विपरीत यह समुद्री तार है जो हमारे सम्मानित सहयोगीने अपने स्तम्भोंमें छापा है। कहते हैं, इसमें श्री लिटिलटनने यह कहा:

> हम ट्रान्सवाल-वासियोंपर भारतीय मजदूरोंको देशमें लानेकी इजाजत देनेके लिए दबाव नहीं डाल सकते, परन्तु हम उन्हें समझाने-बुझानेका प्रयत्न कर सकते हैं।
>
> पृथक्करणकी नीति अदूरदर्शितापूर्ण और अमानुषिकता-भरी है।
>
> परन्तु यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीयोंके उपनिवेशमें प्रवेशके रास्तेमें कठिनाइयाँ पैदा करनेका निर्णय करता है तो यद्यपि मुझे उस निर्णयसे गहरा दुःख होगा, फिर भी मैं यह खयाल नहीं करता कि जो भारतीय प्रवासी गणराज्यके कानूनके अन्तर्गत वहाँ आये थे उनके मामलेमें वह विरोध कर सकता है, क्योंकि वह कानून बिलकुल भिन्न है।
>
> मेरा खयाल है कि सर्वोच्च न्यायालयका निर्णय कायम रखा जाना चाहिए, क्योंकि हमारे लिए अपने राष्ट्रीय गौरव और सम्मानसे असंगत स्थिति अपनाना और

१. यह मूलमें कटा हुआ है।

> उन विशेषाधिकारोंको देनेसे इनकार करना, जिनकी पुष्टि न्यायालयसे हो चुकी है, असम्भव है।
>
> यह कहना असम्भव है कि इन भारतीयोंको ब्रिटिश झंडेके नीचे वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो उन्हें बोअर-कानूनके अन्तर्गत दिये गये थे।
>
> मुझे पूरा निश्चय है कि ट्रान्सवालके नागरिक, जो साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेका महत्त्व समझते हैं, अंग्रेजोंके नामके गौरवकी रक्षा उतनी ही करेंगे जितनी कोई दूसरा करता है; और ऐसे अधिकार मुक्तहस्तसे प्रदान करेंगे।

श्री लिटिलटनका कथन उत्साहजनक है। सवाल सिर्फ यह है कि क्या उनमें इसपर अमल करनेकी शक्ति और स्थानीय सरकारके विरोधका सामना करनेकी दृढ़ता होगी? हम बराबर कहते आ रहे हैं कि ब्रिटिश अधिकारके बाद ब्रिटिश भारतीयोंके साथ किया गया व्यवहार ब्रिटिश गौरव और ब्रिटेनके राष्ट्रीय सम्मानसे मेल नहीं खाता। अब हम उपनिवेश-मन्त्रीको लोकसभामें अपने स्थानसे उस विचारका समर्थन करते हुए पाते हैं। आशा है वे जैसा कहते हैं वैसा करेंगे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१९१. सिंहावलोकन

हमें यह घोषणा करते हुए बहुत प्रसन्नता होती है कि ट्रान्सवालके भीतर भी ब्रिटिश भारतीयोंकी गतिविधिपर रैंड प्लेग-समिति द्वारा लगाई गई प्लेग-सम्बन्धी पाबन्दियाँ अब हटा ली गई हैं और जो भारतीय उपनिवेशमें एक जगहसे दूसरी जगह सफर करना चाहें उन्हें अब अपनी डाक्टरी जाँच करवाने और यात्राके परवाने साथ रखनेकी जरूरत नहीं होगी। हम ट्रान्सवालमें आबाद अपने देशवासियोंको उनकी इस कष्ट-मुक्तिपर और उससे भी अधिक उनके अनुकरणीय धैर्यपर बधाई देना चाहते हैं। हमारी हमेशा यह राय रही है कि प्रतिबन्ध सर्वथा अनावश्यक थे, यद्यपि हमने साथ-साथ यह सलाह भी दी है कि इस सबको सहन करना ही उनके लिए सबसे अच्छी बात है। सरकारी कथनके अनुसार प्लेग पिछले मार्चके मध्यमें शुरू हुआ था और पहले जोरदार दौरके बाद उसका प्रकोप खतरनाक रूपमें कभी नहीं हुआ है। पिछले तीन महीनेमें कुछ इक्की-दुक्की प्लेगकी घटनाएँ हुई हैं और वे भी ज्यादातर वतनी लोगोंतक ही सीमित रही हैं। फिर भी साढ़े चार महीनेतक भारतीयोंने अपनी हलचलोंके सम्बन्धमें कष्टप्रद असुविधाओंका सामना किया है। आँकड़े निश्चित रूपसे बताते हैं कि भारतीय बस्तीके बाहर प्लेगने किसी व्यक्तिका लिहाज नहीं किया है और जोहानिसबर्गके बाहर शायद ही किसी भारतीयको प्लेग हुआ हो। कुछ जिलोंमें तो प्लेगसे एक भी भारतीय बीमार नहीं हुआ। इसके अलावा अधिकारी उनके विरुद्ध एक भी शिकायत पेश नहीं कर सके हैं। वे अधिकारियोंकी इच्छाओंके अनुसार चलनेके लिए तैयार और उत्सुक रहे हैं और जब उनके मकान और असबाब जला दिये गये और उनको नगरसे तेरह मील दूर शिविरमें जानेका आदेश दिया गया, तब वे बड़बड़ाये बिना वहाँ चले गये। उपनिवेशके चिकित्सा-अधिकारी डॉ० टर्नरने विचारपूर्वक अपनी राय दी है कि जोहानिसबर्गकी बस्तीमें प्लेगके प्रकोपका दोष भार-

तीयोंपर किसी भी तरह नहीं आता है और जो हालत हुई है उसके लिए अधिकारी ही जिम्मेदार हैं; क्योंकि उन्होंने उस स्थानको स्वच्छ हालतमें रखनेके अपने प्रथम कर्त्तव्यकी अवहेलना की थी। सैकड़ों भारतीयोंको, जो बेघर-बार हो गये हैं और जिनका माल नष्ट कर दिया गया है, अभीतक कोई मुआवजा नहीं दिया गया है और न उनके पास रहनेके लिए कोई निश्चित स्थान हैं। हम कहना चाहते हैं कि संसारमें ऐसे बहुत कम समाज पाये जायेंगे जो उसी तरहका व्यवहार करेंगे जैसा भारतीयोंने इस अग्नि-परीक्षामें और अत्यन्त कष्टदायक कठिनाइयोंके बीच किया है। क्या सरकार इसपर ध्यान देगी? क्या रैंड प्लेग-समिति, जो लोगोंके निकट सम्पर्कमें आई है, भारतीयोंको उचित श्रेय देनेका साहस करेगी? क्या श्री लिटिलटन किसी भी प्रतिबन्धक कानूनपर मंजूरी देते समय इन तथ्योंपर विचार करेंगे? और क्या भारतीयोंके इंग्लैंड-स्थित मित्र अधिकारियोंको इनके सम्बन्धमें विश्वास दिलायेंगे और यह ध्यान रखेंगे कि जो काम इतनी अच्छी तरह किया गया है वह व्यर्थ न चला जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–८–१९०४

१९२. सर फीरोजशाह

डाकसे आये पत्रोंसे यह अत्यन्त आनन्ददायक समाचार मिला है कि माननीय श्री फीरोजशाह मेहताको[1] 'सर'की उपाधि प्रदान की गई है। अगर कोई व्यक्ति इस सम्मानका पात्र था तो वे निश्चय ही सर फीरोजशाह हैं। उनकी गिनती सबसे पुराने लोक-सेवकोंमें है। वे बम्बई नगर-निगमके अध्वर्यु हैं और शायद उस महान निगमका कोई एक भी अन्य सदस्य उतनी बैठकोंमें शामिल नहीं हुआ जितनीमें वे शामिल हुए हैं। उतने लम्बे समयतक निगमकी सेवा भी किसी अन्य सदस्यने न की होगी, जितने समयतक सर फीरोजशाहने की है। वे बम्बई प्रान्तके बेताजके बादशाह हैं और प्रथम नेता माने जाते हैं। भारतके अन्य किसी प्रान्तमें किसी भी अन्य व्यक्तिको यह सम्मान प्राप्त नहीं है। उनको अपनी बेमिसाल योग्यता और तजुर्बेकारी, प्रभावपूर्ण भाषण-शक्ति, व्यवहार-कुशलता और विरोधियोंके प्रति अचूक शिष्टताके फलस्वरूप जनतामें बड़ी लोकप्रियता और सरकारमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। उन्होंने बम्बई विधानसभाके कई कानूनोंपर अपनी छाप डाली है और कलकत्ता-स्थित इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें सेवाका जो थोड़ा-सा मौका मिला उसमें भी अपने लिए एक अनोखा स्थान बना लिया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सर फीरोजशाह राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ हमेशा सम्बद्ध रहे हैं और दो बार उस संस्थाके अध्यक्ष भी बने हैं। इसलिए उनका 'सर' बनाया जाना उन माननीय महानुभावका जितना सम्मान है उतना ही कांग्रेसका भी है। हमारा खयाल है कि सरकारने उनका सम्मान करके खुद अपना सम्मान किया है। इस तरह किसी कांग्रेस नेताका ऐसा सम्मान पहली ही बार नहीं किया गया है। माननीय श्री गोखलेको भी अभी हालमें सी० आई० ई० का खिताब दिया गया है। जैसा कि पाठकोंको मालूम है, माननीय गोखले इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें महत्त्वपूर्ण सेवा करते आ रहे हैं। हम देखते हैं कि हाल ही में खिताब

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

पानेवालोंमें माननीय शंकरन् नायरका[1] भी नाम है। ये सब शायद समयके सूचक चिह्न हैं। मगर साथ ही इनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार उस अच्छे कामसे पूरी तरह परिचित है जो भारतीय समाजके नेताओं द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें उसके लिए किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-८-१९०४

१९३. लॉरैंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीय

कुछ समय पूर्व "फेयरप्ले" (इन्साफ) नामसे एक संवाददाताने हमारे सहयोगी *स्टारमें* लेख लिखकर लॉरैंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिकी तुलना ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थितिसे की थी। संवाददाताके कथनानुसार डेलागोआ-बेके भारतीय यह कहते हैं:

> हम यहाँ पुर्तगाली शासनमें पूरी तरह और बिलकुल आजाद हैं और यद्यपि हम सब ब्रिटिश प्रजाजन हैं तो भी ट्रान्सवालकी अपेक्षा यहाँ हमारी हालत सौ गुनी अच्छी है।

इसपर *स्टारका* नियमित संवाददाता लॉरैन्सो मार्क्विससे हमारे सहयोगीको लिखता है:

> सम्भव है, लेखकको यह बात नयी ही मालूम हो कि संसद (कॉरटिस) की पिछली बैठकमें एक कानून समयाभावसे छोड़ दिया गया था। और अब वह अगली बैठकमें लाया जाना है। इसके अनुसार नवागन्तुक भारतीयोंपर प्रति व्यक्ति ८० पौंड वार्षिक कर लगाया जाना है। कहा जाता है कि यह कानून सरकारने मंजूर कर लिया है। अगर माननीय सदस्य श्री कारवेलोका उक्त प्रस्ताव कानून बन जाता है, तो 'फेयरप्ले' महाशय अपने मित्रोंकी भर्तीके लिए पुर्तगाली इलाकेके अलावा कोई अन्य स्थान तलाश करेंगे।

अब अगर यह जानकारी, जो *स्टारके* संवाददाताने दी है, सही है तो इससे एक बार और जाहिर होता है कि डेलागोआ-बेके पुर्तगाली लोग नहीं, बल्कि वे आम यूरोपीय व्यापारी भारतीयोंके विरुद्ध हैं, जिनसे कि डचेतर गोरोंका दल बना है। वे ही लोग पुर्तगाली सरकारसे अपनी बात मनवानेमें सफल हो गये हैं, ताकि व्यापारमें उन्हें एकाधिकार मिल जाये। ट्रान्सवालमें पिछली हुकूमतके जमानेमें उन्होंने ऐसा ही किया था और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरको कानून मंजूर करनेके लिए मना लिया था। यूरोपीय डेलागोआ-बेमें अभी हालमें ही बड़ी संख्यामें आबाद हुए हैं और यदि उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंपर पाबन्दियाँ लगानेके लिए पुर्तगाली सरकारको राजी कर लिया हो, तो हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यदि श्री लिटिलटन कुछ भी दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करना चाहते हों तो उन्हें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। और एक दफा पुर्तगाली सरकारने ब्रिटिश भारतीयों-पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया तो समस्या बेशक कहीं अधिक पेचीदा बन जायेगी।

१. सर चेट्टूर शंकरन् नायर (१८५७-१९३४), मद्रास उच्च न्यायालयके न्यायाधीश और १८९७ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

क्योंकि डेलागोआ-बे ब्रिटिश उपनिवेश नहीं है और पुर्तगालियोंके तौर-तरीके अक्सर अत्यन्त रहस्यमय होते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-८-१९०४

१९४. पुलिस सुपरिंटेंडेंट और ब्रिटिश भारतीय

सुपरिटेंडेट अलेग्जेंडरने डर्बन नगर-परिषदमें एक रिपोर्ट पेश की है जो बहुत ही दिलचस्प है। उन्होंने भारतीयोंके बारेमें बहुत संतोषजनक बातें कही है। इस सम्बन्धमें वे लिखते है:

> मुझे अपनी (लगभग १६,००० की) बड़ी आबादीसे बरतनेमें बहुत कम परेशानी हुई। ये लोग कानून और व्यवस्थाका पालन सबसे ज्यादा करते हैं। केवल एक ही उदाहरण ऐसा है, और वह है उनके पिछले मुहर्रमके सालाना त्यौहारके दिनोंका, जब उनमें से कुछ लोगोंने मेरी आज्ञाका विरोध करनेकी कोशिश की थी। लेकिन ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि मेरी आज्ञाका उद्देश्य उन्हें शराबखानोंसे दूर रखना है त्यों ही उन्होंने तुरन्त माफी माँग ली।

शराबखोरीके बारेमें उनके निम्नलिखित विचारोंसे जाहिर होता है कि इस दिशामें सुपरिंटेंडेंटने जो काम किया है, उसके लिए नगर उनका कितना ऋणी है। और हम यही आशा कर सकते हैं कि वे जिस तरह पिछले पच्चीस सालसे अधिक समयसे समाजकी सेवा करते आये हैं उसी तरह समाजकी सेवा करते रहनेके लिए दीर्घकालतक जीवित रहेंगे।

> इस वर्षके दौरानमें आपकी पुलिसने १५,४३८ अपराधों और जुर्मोका पता लगाया और उनका निपटारा किया, जैसा कि आँकड़ोंसे जाहिर है। मुझे कहते खुशी होती है कि यद्यपि यहाँ एक बड़ी संख्यामें (लगभग ३००) यूरोपीय बेकार हैं, आधी आबादी कई जातियोंके असभ्य काले लोगोंकी है और हमारे बीचमें यूरोपीय विदेशियोंकी भी एक बड़ी संख्या है, फिर भी, कुल मिलाकर, समाजका आचरण अच्छा रहा है। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि यूरोपीयोंमें शराबखोरी बहुत कम हो गई है। बेशक, इसका आंशिक कारण व्यापारिक मंदी भी है; परन्तु निरन्तर अवलोकनसे मेरा यही खयाल ज्यादा बनता है कि शहरमें अब (नशीली चीजोंके सिवा) दूसरी तरहके जलपानोंकी व्यवस्था बहुत ज्यादा हो गई है, और यही इसका बड़ा कारण है। क्योंकि अब कोई भी अपने ऐसे मित्रको, जो शराबखानेमें जाना नहीं चाहता, जलपान-गृहमें ले जाता है। और जब किसीको ऐसा जलपान मिल जाता है तो उसे शराबकी इच्छा नहीं होती। मुझे ज्ञात है, शराबखानेका मालिक शिकायत करता है कि उसकी आमदनी कम हो जानेसे किराया वगैरह चुकाना कितना कठिन हो गया है। इसका एकमात्र उपाय यह है कि जायदादके मालिक अपने किराये कम कर दें, जो इस समय बहुत ऊँचे हैं, और जिनके कारण शराबखानेके मालिक अपने ग्राहकोंके साथ उतनी ईमानदारी नहीं बरत सकते जितनी कि, कदाचित् वे बरतना चाहते हैं। केवल इसी कारण मैंने शराब-

खानोंके परवानोंकी संख्या कम रखनेकी बराबर कोशिश की है। और मेरे खयालसे नगर इस बातके लिए बधाईका पात्र है कि यहाँ ब्रिटेन या उसके उपनिवेशोंके इसकी बराबरीके किसी भी बन्दरगाही नगरकी तुलनामें शराबकी बिक्रीके परवाने कम हैं, क्योंकि हमारे यहाँ सिर्फ ५ होटल, १८ होटल और शराबखाने मिले-जुले, १७ शराबखाने और ७ बोतल-भण्डार हैं। मुझे यह कहते हुए भी खुशी होती है कि ब्रिटेनके नगरोंकी अपेक्षा इस नगरमें बहुत कम यूरोपीय स्त्रियाँ मदिरापान करती हैं। पिछले साल शराबखोरीके अपराधमें १,३१७ यूरोपीय गिरफ्तार किये गये थे। उनमें सिर्फ २४ औरतें थीं और १९ वर्षसे कम आयुका सिर्फ एक लड़का था। इसकी तुलनामें ब्रिटेनके बन्दरगाही नगरोंके बारेमें पुलिसके आँकड़ोंसे पता चलता है कि उनमें से कुछ नगरोंमें शराबखोरीमें पकड़े गये लोगोंमें ६० प्रतिशत स्त्रियाँ थीं और १९ वर्षसे कम उम्रके लड़कोंकी संख्या एक हजारमें ५० थी। शराबखोरीके जुर्ममें पकड़े गये भारतीय और वतनी लोगोंमें स्त्रियोंकी संख्या क्रमशः ९ और १० फीसदी है।

परन्तु आज हमारा सारा जोर रिपोर्टके एक छोटे वाक्यपर ही रहेगा, जिसमें सुपरिंटेंडेंट कहते हैं कि "शराबखोरीमें गिरफ्तार भारतीयोंमें स्त्रियाँ ९ फीसदी हैं।" यह कोई नयी बात नहीं है। फिर भी यह सोचकर हृदय विदीर्ण होता है कि जिन भारतीय स्त्रियोंने अपने देशमें कभी यह नहीं जाना कि मदिरापान क्या होता है, वे यहाँ सड़कोंपर नशेकी हालतमें पाई जायें। कुछ मामले बेशक ऐसे होते हैं जिनपर किसीका काबू नहीं होता, और पतिता स्त्रियोंकी दुर्बलताकी सफाईमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु हमारी धारणा है कि जबतक नगरमें एक भी भारतीय स्त्री नशेकी हालतमें पाई जायेगी तबतक अवश्य ही भारतीय समाजपर लांछन रहेगा। हमें समाजके अधिकारोंकी हिमायत करनेका फर्ज अक्सर अदा करना पड़ा है। आज हमारा विशेष अधिकार हो गया है कि हम भारतीय समाजका ध्यान एक बहुत प्रत्यक्ष कर्तव्यकी ओर आकर्षित करें, जिसका उसको स्वयं अपने प्रति और अपनी नारी जातिके प्रति पालन करना चाहिए। हम खुद तो चाहते हैं कि भारतीय स्त्रियोंको नगरके किसी भी शराबखानेमें शराब देना जुर्म करार दे दिया जाये; परन्तु इससे भी अधिक सन्तोषजनक यह होगा कि जहाँतक भारतीय स्त्रियोंका सम्बन्ध है, समाज खुद इस अभिशापके विरुद्ध लड़ाई छेड़े; और हमें कोई शक नहीं कि इसमें सफलता आसानीसे प्राप्त की जा सकती है। नगरमें भारतीय संस्थायें हैं और काफी भारतीय युवक हैं, जिनके पास बहुत समय है। वे मद्य-निषेधका अत्यावश्यक कार्य कर सकते हैं और इस कार्यमें सब धर्मोंके लोग उपयोगी ढंगसे उनका हाथ बँटा सकते हैं; क्योंकि उनके पास काम करनेकी सब सुविधायें हैं और उपयुक्त संगठन भी है। फिर शिक्षित भारतीय महिलायें भी हैं जो इस मामलेमें बहुत सहायक हो सकती हैं। यह बिलकुल सम्भव होना चाहिए कि छोटी-छोटी टोलियाँ हरएक भारतीय शराबखाने-पर जायें और स्त्रियों और शराब बेचनेवालोंसे बात करें। क्योंकि हम नहीं समझते कि शराब बेचनेवाले भी, जो ज्यादातर भारतीय हैं, औरतोंके हाथ शराब बेचनेसे इनकार करनेके लिए राजी क्यों न किये जायें। हमें इस प्रश्नके गुणावगुणपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि इस बारेमें तो राय एक ही हो सकती है। खास तौरपर स्त्रियोंमें शराबखोरीके जो भयंकर परिणाम होते हैं उन्हें बताना जरूरी नहीं है। इस अपराधसे (क्योंकि यह अपराधसे कुछ भी कम नहीं है) आगामी सन्ततिपर जो प्रभाव पड़ जाता है वह अक्सर अमिट होता

है और यह एक बात ही हममें इस सुधारकी पूर्तिकी अदम्य शक्ति जागृत करनेके लिए काफी समझी जानी चाहिए। हमने जो सुझाव यहाँ दिया है उसपर यदि हमारे नौजवान पाठक गौर करेंगे और उसे अविलम्ब हाथमें लेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१९५. पीटर्सबर्गकी क्या-खूब बातें

पीटर्सबर्गमें एक एशियाई-विरोधी सभा की गई थी। इसके बारेमें अन्यत्र हम एक समाचार छाप रहे हैं, जो २९ जुलाईके *जूटपान्सबर्ग रिव्यू ऐंड माइनिंग जरनलसे* लिया गया है। कहा जाता है कि सभामें दो सौसे तीन सौतक आदमी उपस्थित थे। उसमें जो मुख्य प्रस्ताव स्वीकार किया गया वह वैसा ही था जैसा बॉक्सबर्गमें स्वीकार किया गया था और उसमें सदाकी भाँति भ्रान्तिपूर्ण बातें कही गईं। हाँ, सभाके लिए रुचिकर बनानेके उद्देश्यसे उसमें मिर्च-मसाला भी ज्यादा मिलाया गया था। उदाहरणार्थ, एक वक्ताने कहा कि भारतीयोंमें "वे गुण नहीं हैं जो नगर-निवासियोंमें वांछनीय हैं", क्योंकि उनसे "कोई स्थायी और प्रगतिशील ढंगकी बात" नहीं बन पड़ती। एक दूसरे वक्ताने कहा, "वे गाड़ियाँ नहीं रखते, माल नहीं खरीदते और रुपया खर्च नहीं करते।" एक तीसरे वक्ता बोले, "अगर कोई भारतीय दिनभरके कामसे ५ शिलिंग कमाता है तो वह भोजन किये बिना रह जाता है, और अगर ५ पौंड कमा ले तो भी चिड़िया ही हलाल करता है।" ये वक्तव्य उन लोगोंके हैं जो साधारण व्यावसायिक मामलोंमें संजीदा माने जाते हैं। एक वर्गके लोगोंको जानबूझकर गिराना, उन्हें बाड़ोंमें बन्द करना, उन्हें जमीन खरीदनेके अधिकारसे वंचित करना और फिर पलटकर उन्हींपर यह आरोप लगाना कि उनमें नागरिकताके वांछित गुणोंका अभाव है, बहुत बढ़िया मजाक है। अगर इन योग्य वक्ताओंमें से किसीने जूटपान्सबर्ग जिलेकी सीमासे बाहर यात्रा की हो तो हम उसका ध्यान उस कामकी ओर आकृष्ट करनेका साहस कर सकते हैं जो केपटाउन, डर्बन और दूसरे स्थानोंमें, जहाँ उन्हें कुछ अधिकार दिये गये हैं, प्रगतिशील नागरिकोंके रूपमें भारतीयोंने किया है। उन्होंने इनमें से प्रत्येक नगरमें ऐसी व्यापारिक कोठियाँ बनाई हैं जिनकी तुलना किसी भी अभारतीय कोठीसे की जा सकती है और इन स्थानोंके निर्माणमें उन्होंने यूरोपीय शिल्पकारों, यूरोपीय ठेकेदारों, यूरोपीय निर्माण-व्यवस्थापकों, ईंट पाथनेवालों और खातियों वगैराको नौकर रखा है। इनमें से कुछ इमारतें यूरोपीयोंने भी किराये पर ले रखी हैं। हम एक यूरोपीयका उदाहरण जानते हैं, जो लगभग बीस सालतक किरायेदार रहा। इस अर्सेमें भारतीय मकान-मालिकने कभी उसका किराया नहीं बढ़ाया। वह किरायेदार गरीब हो गया था और किराया नहीं चुका सकता था। उदारमना मकान-मालिकने उसपर कई वर्षोंका किराया माफ कर दिया और मकान खाली करानेके लिए कार्रवाई नहीं की। यह बात सच्ची है, कोई किस्सा कहानी नहीं। किसी सच्चे जिज्ञासुको हम फरीकोंके नाम भी खुशीसे बता देंगे। हम पूछ सकते हैं कि क्या ये सब बातें नागरिकताके सद्गुणोंका अभाव प्रकट करती हैं? एक वक्ताने यह भी कहा कि "एशियाई सवालका सही हल है, 'अधिकसे अधिक लोगोंकी अधिकसे अधिक-भलाई' का आम सिद्धान्त लागू किया जाना।" हमें स्वीकार

करना होगा कि हम इस सिद्धान्तपर आंख मूंदकर विश्वास करते हैं। हमारा खयाल है कि अनेक मामलोंमें इससे बेहद खराबी हुई है और संसारकी प्रगतिके इतिहासमें आगे भी इससे ऐसा होनेकी सम्भावना है। परन्तु दलीलकी खातिर इसे सही मानकर इसके उपयोगकी परीक्षा करके देखें। उस सभामें जो सज्जन बोले वे व्यापारियोंके प्रतिनिधि थे। भारतीयोंका अपराध यह है कि वे उनसे स्पर्धा करते हैं। वे जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके दाम घटा देते हैं और चूंकि उनके पास धीरजकी पूंजी है, अतः उनके मालकी बिक्री अच्छी होती है, खास तौरपर उन लोगोंमें जिनके पास ज्यादा पैसा नहीं होता, चाहे वे यूरोपीय हों या वतनी। उस दशामें अगर भारतीय व्यापारियोंसे यूरोपीय सौदागरोंको नुकसान भी पहुँचता हो, जिसे हम नहीं मानते, तो भी उनसे कुल मिलाकर ट्रान्सवालके अधिकसे-अधिक लोगोंको तो फायदा ही पहुँचता है। इसके सबूतमें यह तथ्य खण्डनका भय छोड़कर पेश किया जा सकता है, कि उन्हें अपने व्यवसायके लिए गरीब गोरों, जिनमें डच भी हैं, और वतनी लोगोंकी सहायतापर निर्भर रहना पड़ता है। और आश्चर्य है कि, स्वयं इस सभामें यह आवश्यक समझा गया कि "एशियाइयोंके साथ व्यापारको अनुत्साहित करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे" एक काम-चलाऊ श्वेत-संघ-समिति स्थापित की जाये। इसके विधानका मसविदा तैयार करनेका काम महापौर और दूसरे लोगोंके हाथोंमें छोड़ दिया गया है। अब हम देखते हैं कि स्थानीय निकाय इस प्रकारके मामलेमें भी पक्ष ले रहा है। परन्तु हम जानते हैं कि इस सम्बन्धमें हम व्यर्थ तर्क करते हैं। जिन लोगोंकी नस-नसमें विद्वेष भरा हुआ है उनकी विवेक-बुद्धिसे अपील बिलकुल बेकार है। हम इतनी आशा ही रख सकते हैं कि जो काम शायद विवेक-बुद्धिसे नहीं हो सकता वह समय गुजरनेके साथ-साथ खुद पूरा हो जायेगा, क्योंकि समय घावोंको भरनेवाली सबसे बड़ी औषधि है। और भारतीय धैर्यसे प्रतीक्षा कर सकते हैं क्योंकि न्याय उनके पक्षमें है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१९६. डर्बनके महापौर

हमें श्री एलिस ब्राउनको तिबारा मुख्य नगर-न्यायाधीश चुने जानेपर बधाई देनी है। यह शहर प्रगतिशील है और दिनपर दिन बढ़ रहा है। चूंकि इसमें अनेक देशोंके लोग रहते हैं जिनके स्वार्थ अक्सर परस्पर-विरोधी होते हैं, महापौरका पद कोई पका-पकाया हलवा नहीं है। श्री एलिस ब्राउन ऐसे सज्जन हैं जिनमें विभिन्न प्रकारकी योग्यताएँ हैं और जो बड़े परिश्रमशील हैं। जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है वे उन्हें अच्छी तरह जानते हैं; वे खुद इस समाजके सब वर्गोंसे अक्सर सम्पर्कमें आये हैं और *बाजारके* प्रश्नपर अपनी रायके कारण वे जरूर बदनाम हैं, किन्तु दूसरी बातोंमें उनकी ख्याति न्यायपरायण और निष्पक्षकी हो रही है। *बाजारके* मामलेमें बहुतसे अन्य लोगोंकी तरह वे भी क्यों विवेक खो बैठे, यह आसानीसे समझमें आ जाता है। उस समय वे लॉर्ड मिलनरके प्रभावमें काम कर रहे थे। भारतीयोंपर परमश्रेष्ठकी पिछले सालकी सूचना ३५६का[1] प्रभाव बम गोलेके जैसा हुआ। उससे सरकारकी भारतीय-सम्बन्धी नीति पुष्ट हो गई और उसका अर्थ यह हुआ कि परम-

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३१४।

श्रेष्ठको पुराना गणराज्य-कानून स्वीकार है। स्वभावतः हमारे सुयोग्य महापौरने सोचा कि इस-पर अवश्य ही ब्रिटिश मन्त्रालयसे मंजूरी मिल गई होगी। इसके अलावा उनका खयाल था कि जो बात एक शाही उपनिवेशमें की जा सकती है, जहाँ उस सूचनाका विषय ही युद्धका एक कारण था, उसकी अनुमति नेटाल जैसे स्वशासन-भोगी उपनिवेशमें तो अवश्य ही होनी चाहिए। अस्तु, इसी कारण उन्होंने अपना मसविदा भारतीय समाजके विरुद्ध तैयार किया था। फिर भी हमें आशा है कि वह अब भुला दिया गया होगा और अगर हमने इस गड़े मुर्देको फिरसे उखाड़ा है तो सिर्फ यह दिखानेके लिए कि वह एक अस्थायी भूल थी और उससे श्री एलिस ब्राउनका आम रुख हरगिज जाहिर नहीं होता। हम चाहते हैं कि उनके महापौर-कालमें उन्हें और भी सफलता मिले और नगर खुशहाल हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–८–१९०४

१९७. हमारे पितामह

पिछली डाकसे *इंडियाका* जो अंक मिला है उससे भारत-पितामह श्री दादाभाई नौरोजीकी[१] सतत क्रियाशीलताका पता चलता है। यदि कोई बात उनके करोड़ों स्वदेशवासियोंके लिए जरा भी फायदेकी हो तो वे उससे नहीं चूकते। उन्होंने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके प्रश्नपर श्री लिटिलटनसे पत्र-व्यवहार किया था, जो *इंडियामें* छपा है और जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। यह उनकी क्रियाशीलताका केवल एक उदाहरण है। उनकी उम्रमें बहुतसे लोग सार्वजनिक जीवनसे छुट्टी लेने और विश्रामके अधिकारका उपभोग करनेके हकदार हो जाते हैं। परन्तु श्री नौरोजी बुढ़ापेमें भी देशके लिए काम करनेवाले बहुतेरे नौज-वानोंसे बाजी मार सकते हैं। वे अपने स्वेच्छासे अंगीकृत देश-निकालेमें एक ही सुख जानते हैं और वह है उन कामोंको करनेका सुख, जिन्हें वे अपने देशवासियोंके प्रति कर्त्तव्य समझते हैं। हम किसी अतिशयोक्तिके बिना कह सकते हैं कि केवल भारतमें ही नहीं, बल्कि संसारके किसी भी भागमें जीवनकी निष्कलंक शुद्धता, पूर्ण स्वार्थहीनता और पुरस्कार या प्रशंसाकी परवाह किये बिना अखण्ड सार्वजनिक सेवाकी दृष्टिसे श्री नौरोजीके जोड़का दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–८–१९०४

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

१९८. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

विधान परिषदमें पिछले सप्ताह उपनिवेश-सचिव द्वारा नगर-निगम अध्यादेशमें प्रस्तावित संशोधनपर दिलचस्प बहस हुई। संशोधनमें नगरपालिकाओंको यह अधिकार दिया गया है कि,

> उन वतनी लोगोंको, जिनके पास १९०१ की रंगदार व्यक्तियोंको राहत देनेवाली घोषणाके मातहत मुक्तिपत्र न हों और उन रंगदार लोगोंको भी, जिनका वेष सम्योचित और आचरण अच्छा न हो, सार्वजनिक मार्गकी पैदल-पटरियोंका इस्तेमाल करनेसे रोक दिया जायेगा।

इस संशोधनका विरोध श्री ब्रिकने किया और, जैसी कि आशा की जा सकती थी, समर्थन श्री लवडेने। माननीय सज्जनने कहा कि पुराने नियमोंको छेड़ा न जाये। अब, पुराने नगर-नियमोंमें रंगदार लोगों द्वारा पैदल पटरियोंके इस्तेमालकी बिलकुल मनाही है। और उन्होंने कहा कि पुराने कानूनमें कुछ भी परिवर्तन करना सरकार द्वारा लोगोंके अधिकारों और विशेषाधिकारोंका अतिक्रमण करना होगा। महान्यायवादीने कहा कि पुराने कानूनके अनुसार तो यदि काफिर पटरीपर होकर दूकानमें घुस भी रहा हो तो वह इसपर भी गिरफ्तार किया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि इस कानूनपर अमल नहीं किया जाता था और गणराज्य सरकारके दिनोंमें भी सम्योचित कपड़े पहने हुए रंगदार लोगोंसे छेड़खानी नहीं की जाती थी। इसमें हम एक भारतीयकी मिसाल जोड़ सकते हैं, जिसे धक्का देकर पटरीसे हटाया गया था और जिसने उस समयके ब्रिटिश एजेंटसे शिकायत की थी। ब्रिटिश एजेंटने भारतीयकी रक्षाका काम तुरन्त हाथमें लिया और राज्य-सचिव डॉ० लीड्सको एक कड़ा विरोध-पत्र भेजा। उन्होंने उत्तरमें क्षमा-याचनाका पत्र भेजा और कहा कि पुलिसने भूल और गलतफहमीसे ही पटरीपर चलनेवाले भारतीयसे छेड़खानी की है। उन्होंने ब्रिटिश एजेंटको विश्वास दिलाया कि आयन्दा ऐसी घटनाएँ नहीं होंगी। उस समय कानूनकी ऐसी शिथिलतापर श्री लवडेने कोई आपत्ति प्रकट नहीं की थी। परन्तु अब जब सरकार उस शिथिलताको मान्यता देना चाहती है तब श्री लवडे और उनके मित्र कुपित हो रहे हैं। फिर भी अवश्य ही सभीको यह स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि सरकारी संशोधनका उद्देश्य राहत दिलाना है, तथापि यह स्थिति खुले अपमानसे कम नहीं है। क्योंकि पटरियोंके उपयोगके बारेमें भेदभाव बरतना ब्रिटिश परम्पराओंके बिलकुल विपरीत है। ऐसी बात इस बीसवीं सदीके जागृत युगमें, वह भी ट्रान्सवालमें और इस सरकारके नाम पर ही सम्भव हो सकती है। और सम्योचित पोशाक और अच्छे आचरण सम्बन्धी व्यवस्था इतनी लचीली है कि अगर पुलिसको खास हिदायतें न हों तो उसके अन्तर्गत बहुत बुराई हो सकती है। डॉ० टर्नर यद्यपि सरकारी सदस्य हैं, तथापि उन्होंने भी महसूस किया है कि यह सारी बात हास्यास्पद है और उन्होंने एक गोरेका अत्यन्त उपयुक्त और विनोदात्मक उदाहरण दिया, जिसे उन्होंने प्रिटोरियाके सरकारी भवनके बाहर देखा था। वह अपनी "जेबोंमें हाथ डाले और मुँहमें पाइप लगाये इधरसे उधर घूम रहा था और पूरे छः फुटके घेरेमें सब तरफ थूक रहा था।" इसलिए यह सवाल रंगका नहीं, सफाई और तन्दुरुस्तीके कायदोंका है। वाजिब बात यह होगी कि जो पटरियोंको खराब करें उन सबको सजा दी जाये और यही एक बुद्धि-संगत, सुरक्षित और निर्दोष उपाय है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-८-१९०४

१६१. भारत ही [illegible] है

[illegible]

[illegible]

> [illegible]

[illegible]

१. [illegible]

भारतसे बाहर कोई अर्थ नहीं है और चाहे उनकी प्रतिष्ठा अथवा योग्यता कुछ भी हो, उपनिवेशोंमें वे अवांछनीय हैं, तब भारत-सरकारका काम अधिकाधिक कठिन हुए बगैर नहीं रह सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-८-१९०४

२००. गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

हमने गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी ऊँची दरके बारेमें कुछ बातें लिखी थीं। उनके सम्बन्धमें अभी कुछ समयसे कुछ संवाददाता *नेटाल मर्क्युरीको* पत्र लिख रहे हैं। इन पत्र-लेखकोंने गुमनाम रहना पसन्द किया है और यद्यपि हम प्रायः इस अखबारमें छपी बातोंके बारेमें दूसरे अखबारोंमें — खास तौरपर बनावटी नामोंसे — प्रकाशित पत्रोंकी ओर ध्यान नहीं देते, फिर भी हमारी इच्छा होती है कि सचाईके स्पष्टीकरणके लिए कुछ बातें लिखें। इनमेंसे एक पत्र-लेखकने अपनेको "एक गोरा" बताते हुए एक पत्र लिखा है, जिसकी कोई तुक नहीं है। वह इस पत्रके सम्पादकीय विभाग और प्रबन्ध-विभागके कर्मचारियोंकी चर्चा करता है और अपने मनमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके भेदभावोंकी कल्पना करता है और अपनी यह राय देता है कि यह पत्र भारतीय समाजका प्रतिनिधित्व नहीं करता। हम इनमेंसे किसी भी आरोपका जवाब देना नहीं चाहते। यह पत्र किसीका प्रतिनिधित्व करता है या नहीं, इससे उन बातोंकी सचाईमें कोई फर्क नहीं पड़ता जो हमने आत्महत्याओंके बारेमें लिखी हैं। लेकिन इस बीचमें हम "एक गोरे" का ध्यान उस विज्ञापनकी[1] तरफ खींचना चाहते हैं जो इस पत्रके सम्बन्धमें, शुरू-शुरू के अंकोंमें निकला था। उसपर समाजके तमाम प्रभावशाली नेताओंके हस्ताक्षर थे और अगर पत्र-लेखक सूचीको देख जानेका कष्ट करेगा तो उसे अपने अधिकांश आरोपोंका उत्तर मिल जायेगा। इससे वह उस पत्रके उद्देश्योंका भी अध्ययन कर सकेगा। लेकिन जब वह लेखक यह कहता है कि भारतीयोंकी आत्महत्याओंके विषयमें भारतीय संरक्षककी रिपोर्टपर चर्चा करनेका हमारा उद्देश्य गोरोंको बदनाम करना है तब हम ऐसे किसी भी लांछनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट करना उचित समझते हैं। हम अपने इस विषयके[2] पहले अग्रलेखसे निम्नलिखित अंश देते हैं और इस बारेमें निर्णय "एक गोरे" और उसीकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोगोंपर छोड़ देते हैं:

> हम इन भयंकर आँकड़ोंसे मालिकोंके विपक्षमें कोई परिणाम निकालना नहीं चाहते। परन्तु हम भारतीयों और मालिकोंके हितमें पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते हैं और हमारे विचारमें कारणकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नहीं कर सकेगी।

हमने खेत-मालिकोंपर किसी भी प्रकारसे कोई लांछन नहीं लगाया है। हमें तो सब सम्बन्धित जनोंके हितमें सिर्फ जाँचकी ही जरूरत है। जो आँकड़े हमने पेश किये हैं वे भयंकर हैं। इससे कोई इनकार नहीं करेगा। परन्तु "आंग्लभारतीय" ने इनपर शंका की है।

१. देखिए, *इंडियन ओपिनियन* ११-६-१९०३। यह विज्ञापन गुजराती, हिन्दी और तमिलमें प्रकाशित हुआ था और उसपर इन भाषाओंको बोलनेवाले प्रतिनिधि भारतीयोंके हस्ताक्षर थे। देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३३७ के सामने दिया गया चित्र।

२. देखिए, "गिरमिटिया भारतीय" ४-६-१९०४।

इसलिए हम तो उसका ध्यान केवल उपनिवेश-मन्त्री श्री लिटिलटनके उस वक्तव्यकी ओर आकृष्ट कर सकते हैं जो उन्होंने इसके समर्थनमें दिया है। उन्होंने कहा है कि गैर-गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी संख्या १० लाखमें १५७ है और गिरमिटिया भारतीयोंमें ७६६। इसलिए यदि हमने भूल की है तो उसमें हमारे साथी अच्छे-अच्छे लोग हैं और "आंग्लभारतीय" तथा "एक गोरे" के कथनोंके बावजूद हम अपने कथनपर कायम हैं और यह आग्रह करते हैं कि इस बारेमें जाँच करायी जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–८–१९०४

२०१. श्री लिटिलटनका खरीता

ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें भारतीय व्यापारियोंके प्रश्नपर चर्चा और श्री लिटिलटनके खरीतेका प्रकाशन — इस अति दुःखदायी विवादके इतिहासमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मंजिलके सूचक हैं। एक तरफ ब्रिटिश सरकार देखती है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोंके जिन अधिकारोंकी रक्षा बोअर-राज्यमें इतनी जागरूकताके साथ की थी उन्हें वह अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करते हुए छोड़ नहीं सकती। दूसरी तरफ स्थानीय सरकार और उपनिवेशी लोग भारतीयोंको जड़से उखाड़ फेंकनेपर तुले दिखाई देते हैं। सर जॉर्ज फेरारने अनेक बार जोरदार शब्दोंमें कहा है कि जब-कभी उत्तरदायी शासन आयेगा तब शायद उसका पहला काम होगा — भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा देकर मिटा देना। हम सब जानते हैं कि मुआवजा देनेका मतलब क्या होता है। तो इस तरह साम्राज्यके हितों और स्थानीय गोरोंके विद्वेषमें सीधी टक्कर है — हम इस विद्वेषको स्थानीय हितोंका नाम देकर गौरवान्वित नहीं करेंगे, क्योंकि हमारा खयाल है कि भारतीयोंकी मौजूदगीसे गोरे समाजको किसी भी तरहका खतरा नहीं है। हमने इन स्तम्भोंमें अनेक बार कहा है कि भारतीयोंने केप और नेटाल दोनोंमें कहींसे भी, जहाँ उनको ट्रान्सवालकी अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं, गोरे व्यापारियोंको खदेड़ा तो नहीं है; प्रत्युत वे गोरोंके साथ-साथ ईमानदारीसे अपनी रोजी कमा रहे हैं। निरर्थक द्वेष करनेवाले लोग इस बातपर विचार ही नहीं करते कि कई बातोंमें यूरोपीयोंको अपरिमित रूपसे अच्छी सुविधाएँ मिली हुई हैं और भारतीयोंमें संगठन-शक्तिका अभाव है। इन दो बातोंसे भारतीयोंकी जो हानि होती है वह उनके तथाकथित सस्ते रहन-सहनके लाभसे बहुत भारी बैठती है। परन्तु सच बात तो यह है कि कभी किसीने भी भारतीयोंकी तरफसे व्यवसायके असीमित अधिकार नहीं माँगे हैं। जरूरत सिर्फ इतनी ही है कि निहित स्वार्थोंकी पूर्ण रूपसे रक्षा की जाये और भारतीयोंको भावी व्यापारमें उचित हिस्सा दिया जाये। जब सर जॉर्ज फेरार और श्री बोर्क जैसे लोग जोर-जोरसे यह भाषण देते हैं कि भारतीयोंको व्यापार करते रहने देनेकी अवस्थामें उपनिवेशका सत्यानाश हो जायेगा, तब हमें वह दृश्य ऐसा अपमानजनक दिखाई देता है, जो, हमें कहना चाहिए, ब्रिटिश परम्पराओंपर चलनेका दावा करनेवाले लोगोंके अयोग्य है — खास तौरसे तब, जब उन्हें जरूर मालूम है कि उनके मुकाबलेमें भारतवासियोंकी संख्या नगण्य है, और उनमें से कोई-एक अकेला ही उपनिवेशके सारे भारतीयोंके व्यवसायको तीन-तीन बार खरीद सकता है। अगर इतनी बात विधानपरिषदके गैर-सरकारी सदस्योंके बारेमें न्यायपूर्वक कही जा सकती है तो हम सरकारी रवैयेके बारेमें क्या सोचें? हम उन लॉर्ड मिल्नरके बारेमें क्या खयाल करें जो आज श्री लिटिलटनसे कहते हैं कि भारतीयोंका लगभग सब कुछ छीन लिया जाये और जो लड़ाईसे पहले भारतीयोंके हितोंका समर्थन उतने जोरके

साथ करते थे और ब्रिटिश प्रजाजनोंके एक वर्गके अधिकार प्राप्त करनेके लिए दूसरे वर्गके अधिकार बेच देनेके लिए तैयार नहीं थे? लॉर्ड मिलनरको अपने कट्टर साम्राज्य-प्रेमी होनेपर गर्व है, किन्तु क्या परमश्रेष्ठका साम्राज्य-प्रेम केवल दक्षिण आफ्रिकातक ही सीमित है? श्री लिटिलटनका खरीता पढ़ कर प्रसन्नता भी हुई और परेशानी भी। स्थानीय सरकार १९०२ के शुरूमें जो-कुछ देनेके लिए तैयार थी, उससे अब पीछे हट गई है। पिछले सालकी बदनाम *बाजार*-सूचना ३५६ को उचित बताते हुए लॉर्ड मिलनरने जो कुछ करनेका वचन दिया था वह भी अब वापस ले लिया गया है। परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर एक निष्पक्ष ढंग अपनानेके बजाय अब एशियाई-विरोधी नीतिके व्याख्याता बन बैठे हैं। यह सब दुःखद है। इसलिए श्री लिटिलटन भारतीयोंके पक्ष, साम्राज्य-नीति और ब्रिटिश राजनयिकों और मन्त्रियोंके दिये हुए वचनोंका समर्थन जोरोंसे करते हैं। वे निश्चित रूपसे बताते हैं कि इस प्रश्नका एकमात्र हल ब्रिटिश भारतीयोंको वाजिब अधिकार देना ही है। परन्तु जब हम उनके अन्तिम प्रस्तावोंको देखते हैं तब हमें उनका खरीता पढ़ कर फिर दुःख होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रस्तावोंसे उन्हें सिर्फ मौजूदा व्यापारिक परवानोंकी रक्षा ही अभीष्ट है और अनिवार्य पृथक्करणके सिद्धान्त और रंगके आधारपर कानून बनानेके बड़े उसूल उनसे अछूते रह जाते हैं। परन्तु यह सब बादकी बात है, क्योंकि उपनिवेश-मन्त्रीको जो छोटी-सी चीज अभीष्ट है ट्रान्सवाल सरकार वह भी देनेको तैयार नहीं है। हमें कोई शक नहीं है कि विधान-परिषदका प्रस्ताव तार द्वारा ब्रिटिश सरकारको भेज दिया गया है और वह जो रुख इख्तियार करेगी उसपर बहुत कुछ निर्भर होगा।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २७–८–१९०४

२०२. प्रार्थनापत्र: उपनिवेश-सचिवको

[सितम्बर ३, १९०४ के पूर्व][1]

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने परमश्रेष्ठ गवर्नरको ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके बारेमें इस साल १३ अप्रैलको जो खरीता भेजा है उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे मेरे संघको घोर दुःख हुआ है। इसलिए मुझे गवर्नर महोदयकी सेवामें नम्रतापूर्वक निम्न प्रार्थनापत्र पेश करने और यह निवेदन करनेका आदेश मिला है कि यह महामहिम सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीको भेज दिया जाये।

खरीतेमें सिफारिश की गई है कि उसमें ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमें जो परिवर्तन सुझाये गये हैं वे तुरन्त स्वीकार कर लिये जायें। ये सुझाव दो घटनाओंके आधार पर दिये गये हैं। पहली घटना हबीब मोटन और सरकारके बीचका परीक्षात्मक मुकदमा है जिसकी जड़में, परमश्रेष्ठके शब्दोंमें, आत्मरक्षाकी समस्या है। और दूसरी वह प्रमुखता है जो इस प्रश्नको गिल्टीका प्लेग फैलनेसे प्राप्त हुई है।

१. जिस तारीखको प्रार्थनापत्र दिया गया वह उपलब्ध नहीं है।

दूसरी घटनाको पढ़नेसे तो मेरा यह निवेदन [illegible] जाता है कि [illegible] निश्चित रूपसे सिद्ध की जा चुकी है कि बस्तीके निवासी भारतीय [illegible] किसी भी तरह जिम्मेदार नहीं थे। मेरा यह कथन [illegible] इस मामलेसे [illegible] वस्तियोंके लिए जिम्मेदार है जो इस मामलेमें [illegible] और चूंकि परमश्रेष्ठने इनकी [illegible] करनेकी दृष्टिसे एक [illegible] देना जरूरी हो गया है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि बस्तीकी नीलाम [illegible] मार्च [illegible] घोषित की गई है। पिछले साल २६ सितम्बरको [illegible] नगर-परिषदने [illegible] अधिकृत कर ली थी। इस तारीखसे [illegible] लिए जिम्मेदार था। [illegible] थे, और ऐसा मालूम हुआ है कि इस तारीखके [illegible] था और भारतीय [illegible] २६ सितम्बर १९०३ से सफाईका निरीक्षण [illegible] गया। [illegible] अधि-कार न तो इस बारेमें [illegible] और न इस बारेमें कि किरायेदार कौन [illegible] सफाईके लिए एक या अधिक आदमी रखनेके बजाय नगरपालिकाने [illegible] आदमी नौकर रख लिये। नतीजा यह हुआ कि वे इस कामको बिलकुल नहीं संभाल सके। आबादी भी बहुत बढ़ गई, क्योंकि नगर-परिषदने बस्तीमें [illegible] किरायेदार रख लिये। इस असन्तोषजनक स्थितिके बारेमें बहुत बार शिकायतें की गईं मगर किया कुछ नहीं गया। डॉक्टर पोर्टरको आवश्यक चेतावनी देते हुए यह पत्र लिखा गया।

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

सेवामें
डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके काममें दिलचस्पी ले रहे हैं, इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैं वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ वह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है; और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता कि वहाँ न तो भीड़-भड़क्का रोका जा सकता है और न गन्दगी। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमें बरबाद किया गया एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है, और उसमें ब्रिटिश भारतीयोंका कोई भी दोष नहीं है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोंमें से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोंको भरनेके लिए क्यों चुनी जाये, यह मेरी समझमें ही नहीं आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ

बेशक बहुत प्रशंसनीय और कदाचित् आवश्यक भी हैं वहाँ, मेरी नम्र रायमें, भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड़-भाड़के मौजूदा खतरेका सामना करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौंड खर्च कर देनेसे शायद हजारों पौंडकी बचत होगी, क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमें कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोंमें घबराहट पैदा हो जायेगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायेगा।

मुझे आश्चर्य नहीं है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है, इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमें असमर्थ है; क्योंकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नहीं सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। जो काम सब पर छोड़ दिया जाता है, वह किसीका भी नहीं होता। आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नहीं रख सकते। जब्तीसे पहले हरएक बाड़ेका मालिक अपने बाड़ेको ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और वह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वयं जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाड़ेके साथ एक सफैया लगा रहता था और जो उसकी बराबर देखभाल रखता था; और मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि बाड़ोंकी जो हालत इस समय है उसके मुकाबिलेमें वे अच्छी और आदर्श अवस्थामें रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैंने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढंग अपना ले तो मुझे सन्देह नहीं कि स्थितिमें तुरन्त सुधार हो सकता है। और उसके लिए नगर-परिषदको कुछ खर्च भी न करना पड़े, और शायद कुछ पौंडकी बचत भी हो जाये। बाड़ोंके मालिकोंको थोड़े अरसेके लिए — छः महीने या तीन महीनेके लिए — पट्टे दे दिये जायें। पट्टोंमें ठीक-ठीक लिख दिया जाये कि हर बाड़ेमें या हर कमरेमें कितने आदमी रखे जायेंगे। पट्टेदार कीमत आँकनेवालों द्वारा आँकी गई कीमतका, मान लीजिए, ८ फीसदी चुकायें; और जिस बाड़ेका उन्हें पट्टा दिया गया हो, उसकी सफाईके लिए उन्हें सख्तीके साथ जिम्मेदार बनाया जाये।

तब सफाईके नियमोंपर कठोरतासे अमल कराया जा सकता है; एक या दो निरीक्षक बाड़ोंको रोज देख सकते हैं और नियम भंग करनेवाले लोगोंके साथ सख्तीसे पेश आ सकते हैं।

यदि यह विनम्र सुझाव मान लिया जाये तो आपको दो-तीन दिनमें बहुत सुधार दिखाई देगा और आप थोड़ी-सी कलम चलाकर गन्दगी और भीड़-भाड़का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। नगर-परिषद भी व्यक्तियोंसे किराया वसूल करनेकी झंझटसे बच जायेगी।

अवश्य ही, मेरे सुझावके अनुसार नगर-परिषदको बस्तीसे काफिरोंको हटा लेना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंके साथ काफिरोंको मिला देनेके बारेमें मेरी भावना बहुत ही प्रबल है। मेरे खयालसे यह भारतीय लोगोंके साथ बड़ा अन्याय है और मेरे देशवासियोंके सुप्रसिद्ध धीरजको भी बेजा तौरपर खपानेवाला है।

यद्यपि अस्वच्छ क्षेत्रमें शामिल किये गये दूसरे भागोंमें मैं स्वयं नहीं गया हूँ, फिर भी मुझे बड़ा अन्देशा है कि वहाँ भी वही हालत होगी, और मैंने ऊपर जो सुझाव दिया है, वह दूसरे भागोंपर भी लागू होगा।

मुझे भरोसा है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे अंगीकार करेंगे जिस भावनासे यह लिखा गया है; और मुझे आशा है कि मैंने अवसरकी विकटताको देखते हुए आवश्यकतासे अधिक जोरदार भाषाका उपयोग नहीं किया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि इस दिशामें मेरी सेवाएँ पूरी तरहसे आपके और लोक-स्वास्थ्य समितिके सुपुर्द हैं। और मुझे कोई शक नहीं कि सफाईके मामलेमें भारतीय समाज जो-कुछ कर सकता है वह कर दिखायेगा, अगर नगर-परिषद उसे उचित मौका भर दे दे तो, मेरे मतसे, बहुत भूल न होगी।

आप इस पत्रका जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं।

अन्तमें, मैं आशा करता हूँ कि समाजके सामने जो खतरा है उसका कोई उपाय तुरन्त खोज निकाला जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

डॉ० पोर्टरने जवाबमें यह पत्र लोक-स्वास्थ्य समितिको भेज दिया, किन्तु उसने कोई कार्रवाई नहीं की। अकस्मात् असाधारण वर्षा हो गई और उससे वही प्लेग फैल गया जिससे लोग इतने डर रहे थे।

इस प्रकार मेरी अपनी नम्र रायमें बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंने कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। यह उनकी विशुद्ध लाचारी ही थी। दूसरी ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ वे जाते। बस्ती छोड़कर नगरपर धावा बोलना असम्भव था। तत्काल कार्रवाईकी प्रार्थना करनेपर भी अधिकृत बस्तीके बदलेमें उनके बसनेके लिए कोई स्थान मुकर्रर नहीं किया गया। बस्तीकी हालतके बारेमें डॉ० पोर्टरकी राय, जिसपर मेरे सघने आपत्ति की है, १९०२ में दी गई थी और फिर भी अधिग्रहणके समयतक (अर्थात् लगभग एक वर्षतक) बस्तीको उसी अवस्थामें रहने दिया गया और कोई छूतकी बीमारी न फैली।

इस प्रकार यहाँ डॉ० जॉन्स्टन और स्वर्गीय डॉ० मैरेमने[1] जो गवाही दी थी उसकी सचाईका प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है। असल बात यह है कि डॉ० पोर्टरने इस बस्तीकी जो हालत बयान की है वह तभी हुई जब नगर-परिषदने उसको अपनी सम्पत्ति बना लिया और भारतीय उसकी देखभाल करनेमें असमर्थ हो गये।

इतना ही नहीं, कहते हैं कि ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीने प्लेग फैल जानेके सिलसिलेमें निम्नलिखित बातें कही हैं और इस प्रकार बस्तीके भारतीयोंको जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया है:

> **जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है, और क्यों? इसलिए कि ये गरीब लोग दरबेमें मुर्गीके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर हैं और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर श्री रेट (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।**

यह भी ध्यान देने लायक बात है कि ट्रान्सवालमें भारतीय इस बस्तीसे बाहर, अर्थात् जहाँ उनका अपने निवास-स्थानोंपर नियन्त्रण है, दूसरी जातियोंसे ज्यादा इस बीमारीके शिकार नहीं

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४३२–३६।

हुए हैं। उदाहरणके लिए, प्रिटोरिया और पॉचेफ्स्ट्रूममें, जहाँ भारतीयोंकी अलग बस्तियाँ हैं, भारतीय प्रायः नगण्य संख्यामें प्लेगसे बीमार हुए हैं।

आवेदनपत्रके इस भागको समाप्त करनेसे पहले मेरा संघ परमश्रेष्ठका ध्यान दो पुराने डॉक्टरों, डॉ० वील और डॉ० स्पिककी नीचे लिखी रायकी तरफ खींचना चाहता है :

> मैं इस पत्रके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैं गत पाँच वर्षोंसे प्रिटोरिया नगरमें साधारण चिकित्सकका धंधा कर रहा हूँ।
>
> इस अवधिमें, और खास तौरसे तीन वर्ष पहले, जब भारतीयोंकी संख्या अबसे ज्यादा थी, उनके बीच मेरा धंधा खासा अच्छा रहा है।
>
> मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।
>
> मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके चिकित्सालयमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।
>
> मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।
>
> एच० प्रायरवील, बी० ए०, एम० बी०, बी० सी० (केंटब)
>
> मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने पत्र-वाहकोंके मकानोंका निरीक्षण किया है। वे स्वच्छ तथा आरोग्यजनक हालतमें हैं। वास्तवमें तो वे ऐसे हैं कि उनमें कोई भी यूरोपीय रह सकता है। मैं भारतमें रहा हूँ। मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें उनके मकान उनके भारतके मकानोंसे कहीं बेहतर हैं।
>
> सी० पी० स्पिक, एम० आर० सी० एस०, और एल० आर० सी० ए० (लंदन)।

परमश्रेष्ठने पहले मुद्देके बारेमें विचार करते हुए जोहानिसबर्ग, पीटर्सबर्ग और नेटाल तीन उदाहरण लिये हैं। जोहानिसबर्ग ब्रिटिश भारतीयोंके मुकाबिलेमें टिका रह सका है, यह बात मेरे संघकी विनम्र सम्मतिमें, यह जाहिर करती है कि भारतीय व्यवसायमें यूरोपीयोंसे स्पर्धा करनेमें असमर्थ हैं। हाँ, फुटकर व्यापारमें भले ही कर सकते हैं। इसमें भी वे यूरोपीयोंको खदेड़नेमें सफल नहीं हुए हैं, क्योंकि सभीको यह मालूम है कि जोहानिसबर्गमें फुटकर व्यापार अधिकतर यूरोपसे आये हुए विदेशियोंके हाथोंमें है। परमश्रेष्ठके प्रति अत्यन्त आदरसहित कहना होगा कि पीटर्सबर्गमें भी थोक और फुटकर दोनों ही व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोंके हाथोंमें हैं। यूरोपीय कोठीदार, जिनके लिए परमश्रेष्ठने कहा है कि वे पीटर्सबर्गमें केवल थोक व्यवसाय ही करते हैं, मेरे संघकी जानकारीके अनुसार, फुटकर व्यवसाय भी कर रहे हैं, जब कि वहाँके भारतीयोंका व्यापार फुटकर कारोबारतक ही सीमित है।

मेरा नम्र मत निवेदन करना है कि नेटालकी स्थितिसे तुलना करना ब्रिटिश भारतीय समाजके प्रति बड़ा अन्याय है, क्योंकि नेटाल और ट्रान्सवालमें कोई समता नहीं है। नेटालमें ३० सालसे अधिक समयसे भारतीय मजदूर लाया जाता है और यहाँकी अधिकांश भारतीय आबादी गिरमिटिया है। इस उपनिवेशमें जिन स्वतन्त्र भारतीयोंने प्रवेश किया है उनकी संख्या दस हजारसे कम है। परन्तु यहाँ भी, मेरा नम्र निवेदन करना है कि, फुटकर व्यापार सर्वथा भारतीयोंके हाथोंमें नहीं आया है। तमाम महत्त्वपूर्ण नगरोंमें वह अब भी यूरोपीयोंके नियन्त्रणमें है।

भारतीय नेटालके लिए कितने मूल्यवान हैं इसकी गवाही पिछले साल सर जेम्स हलेटने इन शब्दोंमें दी थी:

> अरब लोग सीमित संख्यामें हैं और प्रायः सभी व्यापारी हैं। साधारण छोटा व्यापारी अरबके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। उपनिवेशका काफिरोंके साथ फुटकर व्यापार प्रायः सारा-का-सारा अरबोंके हाथमें है। देहाती क्षेत्रोंमें मुझे इसपर आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि साधारण गोरे युवक या युवती देहाती काफिर बस्तियोंमें वस्तु-भण्डारोंकी देख-रेखके बजाय कोई और अच्छा काम कर सकते हैं। साधारण गोरे आदमीकी आवश्यकताओंकी अपेक्षा अरब लोगोंकी आवश्यकताएँ कम हैं। वे कम मुनाफेपर माल बेचते हैं और एक हदतक वतनियोंके साथ यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार करते हैं। देहाती वस्तु-भण्डारोंमें यूरोपीय बहुत अधिक मुनाफा चाहते हैं। मोटे तौरपर देखनेपर यह खयाल बनता है कि अरब व्यापारियोंका व्यापार देहाती क्षेत्रोंके अलावा नगरोंमें भी दिनों-दिन बढ़ रहा है। उन्हें किसी हदतक गोरे-निवासियोंका समर्थन मिलता है। गोरे निवासी अरबोंकी शिकायत तो करते हैं, और वह कुछ-कुछ वाजिब भी है; किन्तु फिर भी वे उन्हें मदद देते हैं, क्योंकि उन्हें किसी अन्य स्थानकी अपेक्षा अरबोंसे सस्ता माल मिल जाता है। परन्तु इन सब बातोंका यह अर्थ नहीं है कि गोरे लोग व्यापारसे बिलकुल निकाल दिये गये हैं। (यह बात गवाहने जोर देकर कही)।

वहाँके अधिकांश सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका विश्वास है कि नेटालकी समृद्धि भारतीयोंकी उपस्थितिके कारण है। कुछ वर्ष पहले विशेष आयुक्तोंने सारे प्रश्नकी, खास तौरपर ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें, जिनके विरुद्ध परमश्रेष्ठने बहुत-सी दलीलें पेश करनेकी कृपा की है, जाँच करके कहा था:

> सूक्ष्म निरीक्षणके आधारपर हमें अपनी यह पक्की राय दर्ज कराते हुए सन्तोष होता है कि इन व्यापारियोंकी मौजूदगीसे सारे उपनिवेशको लाभ पहुँचा है और उनको क्षति पहुँचानेके लिए कानून बनाना बे-इन्साफी नहीं तो नासमझी जरूर होगी।
>
> वे लगभग सभी मुसलमान हैं जो शराबसे या तो बिलकुल परहेज करनेवाले हैं या संयमके साथ पीते हैं। स्वभावसे वे मितव्ययी और कानून-पालक हैं।

जिन ७२ यूरोपीय गवाहोंने आयोगके सामने अपनी गवाहियाँ दीं उनमें से लगभग प्रत्येकने, जहाँ भारतीयोंकी उपस्थितिसे उपनिवेशपर होनेवाले असरका जिक्र आया है, यह कहा है कि वे उपनिवेशकी भलाईके खयालसे अनिवार्य हैं।

परन्तु शायद सबसे ज्यादा चकित करनेवाला उदाहरण, जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय गोरोंके प्रभुत्वके लिए वैसे खतरनाक नहीं है जैसे आम तौरपर समझे जाते हैं, केप उप-

निवेशमें मिलता है। उस उपनिवेशमें भारतीय मजदूर कभी नहीं लाये गये, परन्तु पिछले सालतक जो भी भारतीय वहाँ जाना चाहता था, जा सकता था। वहाँ भारतीयोंको जमीनका मालिक बननेका अधिकार है, वे बिना किसी रोक-टोकके व्यापारिक परवाने ले सकते हैं और सम्राट्के दूसरे प्रजाजनोंको प्राप्त लगभग सभी अधिकारोंका उपभोग कर रहे हैं। फिर भी उनकी स्पर्धासे यूरोपीय समाजपर किसी भी प्रकारका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा है। हाँ, उनकी मौजूदगीसे स्वस्थ स्पर्धाको प्रोत्साहन मिला है। ट्रान्सवालकी अपेक्षा केपमें कहीं अधिक भारतीय हैं, परन्तु जमीनके स्वामित्वपर उनका कोई खास असर नहीं पड़ा है।

इसलिए मेरा संघ निवेदन करना चाहता है कि जहाँतक भूतकालीन स्थितिसे इस प्रश्नपर प्रकाश पड़ता है, परमश्रेष्ठ द्वारा प्रकट किये हुए अन्देशे सही साबित नहीं होते।

ब्रिटिश भारतीयोंका विरोध ट्रान्सवालके व्यापारी वर्गतक ही सीमित है और इसलिए विशुद्ध रूपसे स्वार्थजनित है। यह मेरे संघकी नम्र सम्मतिमें इस बातसे स्पष्ट है कि भारतीयोंका बहुत-कुछ कारबार यूरोपीयोंकी सहायतापर निर्भर है। यूरोपीय बैंक उन्हें विश्वास-योग्य पाकर ही रुपया उधार देते हैं। यूरोपीय कोठियाँ उन्हें उधार माल बेचती हैं और यूरोपीय ग्राहक उनसे चीजें खरीदते हैं। उनके सबसे अच्छे ग्राहक डच लोग हैं। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि बोअरोंके शासन-कालमें भी एक प्रार्थनापत्र स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरको दिया गया था जिसपर बड़ी संख्यामें डचों और अंग्रेजों दोनोंके हस्ताक्षर थे और भारतीयोंकी उपस्थितिका समर्थन किया गया था।

यह सही है कि बोअरोंके शासन-कालमें गोरों और रंगदार लोगोंकी सामाजिक और राजनीतिक समानता कभी स्वीकार नहीं की गई थी, परन्तु यह प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जायेगा कि भारतीय इन दोनोंमें से किसी भी क्षेत्रमें नहीं पड़े हैं और इससे सावधानीसे बचते रहे हैं।

परमश्रेष्ठने जो प्रस्ताव किये हैं और जिन्हें उन्होंने "रियायतें" कहा है, मेरा संघ उन प्रस्तावोंकी चर्चा करनेकी अनुमति माँगता है। परन्तु ये प्रस्ताव मेरे संघके विनम्र मतसे उस थोड़ीसी स्वतन्त्रता पर भी नया आघात करते हैं जो १८८५ के कानून ३के मातहत, जिसका स्थान ये लेना चाहते हैं, ब्रिटिश भारतीयोंको प्राप्त है।

(१) आज उस समयके कानूनका जो अर्थ लगाया जाता है उसके अनुसार भारतीय जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करनेको स्वतन्त्र हैं। और वे रिवाजमें भी हमेशा स्वतन्त्र रहे हैं।

(२) यद्यपि उस कानूनमें एक ऐसी धारा है जिससे खास बस्तियों-मुहल्लों या सड़कोंमें ही निवास सीमित किया जा सकता है तथापि, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने माना है, उसपर अमल नहीं होता; क्योंकि कानूनमें उसकी मंजूरी नहीं है। इसलिए ब्रिटिश भारतीय जहाँ चाहें वहाँ रहनेके लिए स्वतन्त्र हैं। वे अचल सम्पत्तिके मालिक नहीं हो सकते, परन्तु पट्टे लेनेके अधिकारी हैं।

(३) एशियाइयोंके स्वतन्त्र प्रवासपर कानूनमें किसी भी तरहकी पाबन्दी नहीं है।

परमश्रेष्ठके प्रस्तावोंके अनुसार *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने सिर्फ उन्हीं लोगोंको देना जारी रखा जायेगा जो लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार कर रहे थे और वे भी उपनिवेशमें परवानेदारके निवास-कालतक ही चलेंगे। यह शर्त ऐसी है जिससे उन थोड़ेसे आदमियोंका व्यापार बढ़नेकी सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है, जो युद्धारम्भके समय व्यवसाय कर रहे थे। इसलिए इस प्रस्तावका अन्तिम परिणाम यही होगा कि पृथक् बस्तियोंके अलावा सब स्थानोंमें ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंका पूरा खात्मा हो जायेगा।

बस्तियोंमे रहनेकी बाध्यतासे मुक्तिकी गुंजाइश तो सोची गई है। परन्तु, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बस्तियोंमे रहनेकी बाध्यताका अस्तित्व है ही नही; वह पैदा करनी पड़ेगी, इसलिए वह एक नई पाबन्दी होगी।

पंजीकरणसे मुक्ति नाममात्रकी होगी, क्योंकि ट्रान्सवालके लगभग सभी पुराने निवासियोंने लॉर्ड मिलनरकी सलाह मानकर पंजीकरणकी फीस अदा कर दी है और प्रस्तावित प्रवास-अध्यादेशके अनुसार नये आदमियोंको अल्पतम सख्यामे उपनिवेशमे आने दिया जायेगा। असलमे प्रत्येक भारतीयको, जो शरणार्थी नही है, भले ही उसकी बौद्धिक योग्यता, सामाजिक गुण या रहन-सहनकी आदतें कुछ भी हों, उपनिवेशमे प्रवेश करनेसे रोकनेके लिए शान्ति-रक्षा अध्यादेश काममे लाया जाता है।

इसलिए सादर निवेदन है कि जिन प्रस्तावोंकी चर्चा की जा रही है उनसे किसी भी बातमे ब्रिटिश भारतीयोंको कोई रियायत नही मिलेगी, बल्कि वे अबतक जिन अधिकारोंका उपभोग कर रहे थे उनमे भी बहुत कमी हो जायेगी।

मेरा संघ परमश्रेष्ठकी इस सलाहके लिए आभारी है कि भारतीयोंको धार्मिक कामोंके लिए अपने नामसे जमीन खरीदने दी जा सकती है। लेकिन मेरे संघको यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि जब भारतीय आबादीका बड़ा भाग जबरन अलग बस्तियोंमे रख दिया जायेगा तब इस रियायतका कोई उपयोग नही रहेगा, या बहुत थोडा रहेगा, और अगर वह जमीन धार्मिक संस्थाओंके संचालनके लिए आमदनी करनेके उद्देश्यसे काममे नही लाने दी जायेगी तो उस रियायतका लाभ नही उठाया जा सकेगा। फिर यह प्रस्ताव बिलकुल नया भी नही है, क्योंकि स्वर्गीया सम्राज्ञीके प्रतिनिधियोंने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरका ध्यान इस मामलेकी तरफ बार-बार आकर्षित किया था और उन्होंने भी राहत देनेका वचन दिया था।

परमश्रेष्ठने यह कहनेकी कृपा की है कि "ब्रिटिश भारतीय संघकी रायमे ये स्थान (नई बस्तियोंके लिए अंकित स्थानोंसे मतलब है) सर्वथा अनुपयुक्त हैं, परन्तु मेरी रायमे संघने अपना मामला पेश करनेमे अत्युक्ति की है।" परमश्रेष्ठके प्रति अत्यन्त आदर व्यक्त करते हुए मेरा संघ अर्ज करता है कि उसका प्रयत्न सदा तथ्योंको जरा भी रंग चढाये बिना पेश करनेका रहा है और बस्तीके नये स्थानोंके बारेमे निवेदन करते समय उसने हर बातमे अपने ऐतराजोंकी हिमायतमे निष्पक्ष प्रमाण दिये हैं। मेरे संघके ज्यादातर सदस्य बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी हैं; इसलिए वे इन स्थानोंके बारेमे विश्वासपूर्वक बात करनेका दावा भी करते हैं और सुदूर भविष्यमे वे स्थान चाहे कितने भी कीमती बन जायें, मगर फिलहाल उद्देश्य-पूर्तिकी दृष्टिसे वे एक-दोको छोडकर सभी बिलकुल बेकार हैं। क्योंकि वे ऐसे एकान्त और निर्जन हिस्सोंमे हैं जहाँ आवा-गमनकी कोई सुविधा नही है। उदाहरणके लिए पीटर्सबर्गमे नया स्थान शहरसे कोई दो मील पर रखा गया है। चूँकि वह एक छोटा-सा गाँव है, इसलिए वहाँ आवागमनका कोई साधन नही हो सकता। फलत यह सिर्फ एक बिलकुल नया भारतीय गाँव बसानेका ही प्रश्न है। वहाँ जो आधे दर्जन दूकानदार जायेंगे वे ही आपसमे व्यापार कर सकेंगे। यह कहना ठीक नही कि किसी ऐसी पृथक् बस्तीमें जाना ऐसा ही होगा जैसा लन्दनमे चीपसाइडसे हेम्स्टेड हीथमे जाना। इस कथनसे मेरे संघकी रायमे इस मामलेमे पूरी स्थिति व्यक्त नही होती। और ये स्थान इतनी दूर-दूर मुकर्रर किये गये हैं इस तथ्यसे ही १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत सरकारको दी गई सत्ता मे कमी हो जाती है। उस कानूनमे बस्तियोंके अलावा "सड़कें और मुहल्ले" अलग करनेकी कल्पना भी है।

किन्तु सारे प्रश्नका मर्म यह है कि भविष्यकी बात सोचकर पेशगी कानून बनाया जाय और मेरा संघ यह कहे बिना नहीं रह सकता कि चूंकि भविष्यकी रक्षा नेटाल या केपके ढंगपर प्रवासी-अधिनियम बनाकर की जा रही है इसलिए जीवनके किसी भी क्षेत्रमें इस भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि भारतीय यूरोपीयोंपर छा जायेंगे। सतत वर्द्धमान यूरोपीय आबादीके मुकाबलेमें भारतीय आबादी, जो अनुमानसे १२,००० होगी, सदा एक जैसी रहेगी। इस संख्यामें केवल थोडीसी वृद्धि उन लोगोंसे होगी जो शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीके अनुसार ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेंगे। उदाहरणार्थ नेटालमें प्रवासी-अधिनियम पाँच सालसे लागू है। इस कालमें इस परीक्षाके अनुसार, जब कि उसका एक सीधा और निश्चित रूप था, केवल १५८ नये आदमी उपनिवेशमें प्रवेश पा सके हैं। जैसा परमश्रेष्ठको मालूम है, अब यह परीक्षा बहुत कड़ी और केप कानूनकी जैसी कर दी गई है। इसलिए उन लोगोंके सिवा, जिन्हें अंग्रेजी भाषाका बहुत अच्छा ज्ञान हो, अन्य किसीका उपनिवेशमें प्रवेश असम्भव है। और यद्यपि आम लोगोंके विद्वेषका खयाल रखते हुए मेरा संघ उन आशंकाओंसे सहमत नहीं है जो परमश्रेष्ठने प्रकट की हैं, फिर भी वह तबतक इस पाबन्दीको लगानेकी बात मंजूर करनेके लिए तैयार है जबतक मौजूदा कारोबार चलानेके लिए बिलकुल जरूरी नौकरों और विक्रेताओंको उपनिवेशमें प्रवेशकी उचित सुविधाएँ दी जाती रहें।

जो लोग लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें परवानोंसे या उनके बिना कभी व्यापार नहीं करते थे उनके नाम व्यापारके नये परवाने जारी करनेके सम्बन्धमें, मेरा संघ आम लोगोंका द्वेष शान्त करने और यथासम्भव यूरोपीय उपनिवेशियोंकी इच्छाएँ पूरी करनेकी दृष्टिसे एक आम कानून माननेके लिए तैयार है और ऐसे परवाने देना या न देना सरकार या स्थानीय निकायोंपर छोड़ता है। परन्तु शर्त यह होगी कि स्पष्ट अन्याय होनेकी दशामें, उदाहरणार्थ, जहाँ नये प्रार्थीका समर्थन अधिकांश यूरोपीय करें वहाँ, सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके। इस सबके लिए भी शर्त यह होगी कि मौजूदा परवानोंमें कोई दखल नहीं दिया जायेगा। इसमें जहाँ मकान-दूकान साफ-सुथरी हालतमें न रखे जायें और परवानेदार हिसाब-किताब सम्बन्धी नियमों आदिका पालन न करें वहाँ अपवाद हो। इस प्रकार नये परवाने जारी करनेकी व्यवस्था रंग-भेदके आधारपर कोई अन्यायपूर्ण कानून बनाये बिना नियमित की जा सकेगी।

मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि अचल सम्पत्तिके स्वामित्वकी मनाही जितनी अकारण है उतनी ही अन्यायपूर्ण भी। और उपनिवेशके मुट्ठी-भर भारतीयोंको स्वतन्त्रतापूर्वक जमीन खरीदनेसे रोकना स्पष्ट रूपमें ब्रिटिश परम्पराओंके विपरीत है।

मेरे संघने सरकारके उस वचनके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है, जो उसने ४० वर्ष पहले दिया था, क्योंकि उसकी नम्र सम्मतिमें ब्रिटिश भारतीयोंका मामला अपनी पात्रताके आधारपर ही बहुत जोरदार है। परन्तु मैं कह सकता हूँ कि यदि सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाके समय स्थिति आजसे भिन्न थी, तो भी जब स्वर्गीय लॉर्ड रोजमीड और स्वर्गीय लॉर्ड लॉक और इसी तरह लॉर्ड मिलनरने बोअर-राज्यके दिनोंमें ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षमें जोरदार कोशिशें की थीं और स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके अतिक्रमणसे उनके अधिकारोंकी थोड़ी या बहुत सफलताके साथ रक्षा की थी, उस समय वह इतनी भिन्न नहीं थी। जब लड़ाई छिड़ी और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोंने यह घोषणा की कि ब्रिटिश भारतीयों पर लगाई गई निर्योग्यताएँ भी लड़ाईका एक कारण हैं, तब भी परिस्थिति आजसे बहुत भिन्न नहीं थी।

इसलिए मेरा संघ महसूस करता है कि इन तथ्योंकी उपेक्षा की गई है और इस प्रकार भारतीय समाजके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया गया। मेरे संघका सम्मानपूर्ण निवेदन यह है कि ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की प्रजा हैं और ट्रान्सवालके कानून-पालक और शान्ति-प्रिय निवासी

है। दूसरी ओर परमश्रेष्ठ सम्राट्के प्रतिनिधि और राज्यके प्रधान हैं। अतः भारतीयोंका अधिकार है कि परमश्रेष्ठ उनकी स्थितिपर निष्पक्ष रूपसे विचार करें।

इसके सिवा ब्रिटिश भारतीयोंने एक जातिके रूपमें सदा ही सम्राट्की विनम्र सेवाएँ की हैं। वे इस तथ्यकी ओर परमश्रेष्ठका ध्यान आकर्षित करनेके लिए क्षमा चाहते हैं। सोमालीलैंड हो या तिब्बत, चीन हो या दक्षिण आफ्रिका — सभी जगह भारतीय सिपाहियोंने ब्रिटिश सैनिकोंके साथ कंधेसे-कंधा मिलाकर लड़ाईमें सख्त मोर्चा लिया है। लॉर्ड कर्जनने अभी भारतकी साम्राज्य-सेवाओंका उल्लेख इन सुन्दर शब्दोंमें किया था :

> अगर आप अपने नेटालके उपनिवेशको किसी जबरदस्त दुश्मनके हमलेसे बचाना चाहते हैं तो आप भारतसे मदद माँगते हैं और वह मदद देता है; अगर आप पीकिंगके गोरे कूटनीतिक प्रतिनिधियोंको कत्लेआमसे बचाना चाहते हैं और जरूरत सख्त होती है तो आप भारत-सरकारसे सैनिक-दल भेजनेको कहते हैं और वह भेज देती है; अगर आप सोमालीलैंडके पागल मुल्लेसे लड़ रहे हैं तो आपको जल्दी ही पता लग जाता है कि भारतीय सेना और भारतीय सेनापति उस कामके लिए सबसे ज्यादा योग्य हैं, और आप उन्हें भेजनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध करते हैं; अगर आप साम्राज्यकी अदन, मारिशस, सिंगापुर, हांगकांग, टीनसिन या शान-हाई-क्वान जैसी किसी बाहरी चौकी या जहाजी कोयला-चौकीकी रक्षा करना चाहते हैं; तो भी आप भारतीय सेनाकी ओर देखते हैं; अगर आप युगांडा या सूडानमें कोई रेल-मार्ग बनाना चाहते हैं तो आप भारतसे ही मजदूरोंकी माँग करते हैं। जब स्वर्गीय श्री रोड्स आपके नव-प्राप्त रोडेशिया प्रदेशके विकासमें लगे हुए थे तब उन्होंने मुझसे सहायता माँगी। डेमरारा और नेटाल दोनोंके बगानसे लाभ उठानेके लिए भी आप भारतीय कुलियोंसे ही काम लेते हैं। मिस्रमें सिंचाई और नील नदीके बाँधका काम भी आप भारतके प्रशिक्षित अधिकारियोंसे ही कराते हैं। भारतके वन-अधिकारियोंकी सहायतासे ही आप मध्य आफ्रिका और स्यामके वन-साधनोंका लाभ उठाते हैं और भारतके सर्वेक्षण अधिकारियोंके द्वारा पृथ्वीके तमाम गुप्त स्थानोंकी खोज कराते हैं।
>
> हम जबतक करोड़ों भारतवासियोंसे यह नहीं मनवा लेते कि हम उन्हें मनुष्य-मनुष्यके बीचमें उचित पूर्ण न्याय, कानूनके सम्मुख समानता और अत्याचार, अन्याय तथा सब प्रकारके उत्पीड़नसे स्वतंत्रता देते हैं, तबतक हमारा साम्राज्य उनके हृदयोंको स्पर्श नहीं करेगा और विलीन हो जायेगा।[1]

सर जॉर्ज व्हाइटने कर्त्तव्य-परायण प्रभुसिहकी सेवाएँ उदारतापूर्वक स्वीकार की थीं। यह व्यक्ति लेडीस्मिथके घेरेके वक्त बहुत जोखिम उठाकर भी बोअरोंकी गोलियोंकी बौछारमें एक पेड़पर बैठा रहा और अम्बुलवानाकी पहाड़ीपरसे बोअरोंकी तोपोंकी गोलाबारीके बारेमें एक बार भी चूके बिना चेतावनी देता रहा। जोहानिसबर्गमें वेधशालाकी पहाड़ीपर बना भारतीय स्मारक भी दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें भारतके योगदानका सबूत है। मेरे संघकी नम्र सम्मति है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय, जो इसी जातिके हैं, खास तौरपर अपने निहित

१. लॉर्ड कर्जनके गिल्डहॉलके भाषणके इस उद्धरणमें पहले दिये गये उद्धरणसे कुछ शाब्दिक परिवर्तन थे। ये ठीक कर दिये गये हैं। देखिए, "भारत ही साम्राज्य है", २०-८-१९०४।

स्वार्थों और ट्रान्सवालमें गौरव और आत्मसम्मानके साथ ईमानदारीसे रोजी कमानेके अपने अधिकारके बारेमें विशेष विचारके पात्र हैं। उन्हें हमेशा यह बात खटकती नहीं रहनी चाहिए कि ब्रिटिश शासनमें उनकी चमड़ीका रंग राजनैतिक आजादीसे भिन्न मामूली नागरिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिमें भी बाधक है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३-९-१९०४

२०३. पत्र: "स्टार"को[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ३, १९०४

सेवामें
संपादक
स्टार

महोदय,

ब्रिटिश भारतीय संघके आवेदनपत्रके बारेमें अपने सम्पादकीय लेखके सम्बन्धमें, मुझे विश्वास है, आप मुझे कुछ शब्द कहने देंगे। मुझे भय है कि आपने आवेदनपत्रके सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्देपर ध्यान नहीं दिया और मेरी नम्र रायमें इस देशके पत्रकार जनताका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाकर उसकी सेवा करेंगे कि आवेदनपत्रसे उन यूरोपीयोंके सबसे जोरदार ऐतराजोंका पूरा समाधान हो जाता है, जो भारतीयोंका अमर्यादित प्रवास नहीं चाहते और उन्हें नये परवाने दिये जानेके विरुद्ध हैं। संघ केपके नमूनेपर एक प्रवासी-अध्यादेश जारी करनेके सर आर्थर लालीके प्रस्तावको स्वीकार करता है और एक ऐसा सुझाव देता है जिससे स्वयं आपत्ति करनेवालों, अर्थात् स्थानीय अधिकारियोंको नये परवाने जारी करनेपर नियन्त्रण प्राप्त होगा। क्या भारतीय इससे आगे जा सकते थे? यह नहीं भूलना चाहिए कि जब स्वर्गीय श्री क्रूगरने विधानसभाके प्रस्तावों द्वारा पिछले उच्च न्यायालयके फैसलेको रद करना चाहा था तो उनका जबरदस्त विरोध हुआ था। वे ही उपनिवेशी, जो उस समय विरोधी थे, अब वही माँग रहे हैं जिसका उन्होंने विरोध किया था, क्योंकि एशियाइयोंको परवाने देना बन्द या स्थगित करके वे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयको ही ठुकरा देना चाहते हैं। अगर स्वार्थने ब्रिटिश न्यायकी सुन्दर भावनाको अस्थायी रूपसे अन्धा न बना दिया होता तो ऐसी बात किसी ब्रिटिश देशमें असम्भव होती। और फिर भी ब्रिटिश भारतीय संघ आम लोगोंके द्वेषभावको मान्यता देकर, जबरदस्त संघर्षके बाद महँगी कीमत चुकाकर प्राप्त की हुई विजयके फलको बहुत कुछ छोड़ देनेके

[1] १. यह *इंडियन ओपिनियनमें* इस शीर्षकके साथ पुनः छापा गया था: "ब्रिटिश भारतीय संघ: श्री गांधीका पत्र"।

लिए तैयार है। मैं खुद किसी भी आयोगके, जो नियुक्त किया जाये, फैसलेसे नहीं डरता, क्योंकि मेरा विनम्र, किन्तु दृढ़, विश्वास है कि भारतीयोंके विरुद्ध उठाई गई बहुत-सी आपत्तियाँ वास्तवमें निराधार हैं। ट्रान्सवालमें फुटकर भारतीय व्यापारियोंकी संख्या यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत थोड़ी है। परन्तु मेरी समझमें आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक है और उससे प्रश्नका निपटारा अनिश्चित कालके लिए स्थगित हो जायेगा। यह बड़े आश्चर्यकी बात होगी, यदि श्री लिटिलटन अपने खरीतेसे मुकर जायें और आयोगका फैसला मालूम होनेतक भारतीय परवानोंके प्रश्नको मुल्तवी रखें। ब्रिटिश भारतीय संघने यूरोपीयोंकी इच्छाओंकी पूर्तिका सदा प्रयत्न किया है। उन्होंने फिर एक महान प्रयत्न किया है और मेरा निवेदन है कि विशेषतः उन कड़े कानूनोंको ध्यानमें रखते हुए, जो पॉचेफ़स्ट्रूममें और अन्यत्र सुझाये जा रहे हैं, इस तथ्यपर जोर देकर आप देशकी सेवा करेंगे। इस समय वक्त ही महत्त्वपूर्ण है; विवाद एक ऐसी स्थितितक पहुँच गया है जहाँ कोई निश्चित निर्णय ही एकमात्र उपाय हो सकता है। विधानसभाकी बैठकपर बैठक हुई और अनेक कानून पास हुए, मगर हर बार यह सवाल ताकपर रख दिया गया। संघने निश्चित प्रस्ताव किये हैं जिनसे मेरे खयालमें माकूल हल निकल आता है और वे कमसे-कम, परीक्षाके योग्य हैं। साथ ही उन प्रस्तावोंमें यह विशेषता है कि प्रश्नका निपटारा स्थानीय स्तरपर हो जाता है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–९–१९०४

२०४. ट्रान्सवालके भारतीय

अगर हमारे सहयोगियोंको मिले हुए समुद्री तारोंमें लॉर्ड मिलनरके विचारोंका ठीक-ठीक सार दिया गया है तो हम स्वीकार करते हैं कि हम इस प्रश्नपर परमश्रेष्ठके रुखको नहीं समझते क्योंकि हमें बताया गया है, लॉर्ड महोदयका खयाल यह है:

> **दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार लोगोंको गोरोंके साथ समान स्तरपर रखनेकी कोशिश बिलकुल अव्यावहारिक और उसूलन गलत है। लेकिन मेरी राय है कि जब किसी रंगदार आदमीमें एक निश्चित दर्जेकी ऊँची सभ्यता उपलब्ध हो तब उसे रंगका लिहाज किये बिना गोरोंके-से विशेषाधिकार मिलने चाहिए।**

अगर परमश्रेष्ठ सिर्फ इतना ही चाहते हैं तो हमें श्री लिटिलटनके खरीतेमें इससे असंगत बात कुछ भी दिखाई नहीं देती, क्योंकि उन्होंने प्रस्ताव किया है कि उन लोगोंके सिवा, जो परमश्रेष्ठकी बताई हुई कसौटीपर खरे उतरें, अन्य ब्रिटिश भारतीयोंका आगे प्रवास रोक दिया जाये। जो लोग पहलेसे ही इस देशमें मौजूद हैं उनके लिए परमश्रेष्ठकी तजवीज यह है कि व्यापारके लिए तो नहीं, परन्तु सफाई-सम्बन्धी कारणोंसे उनके पृथक्करणकी अनुमति हो तो व्यापार करनेका प्रश्न फिर भी अनिर्णीत रह जाता है। परन्तु लॉर्ड मिलनरने स्वयं इस प्रश्नका उत्तर इन शब्दोंमें दिया है:

> जहाँ देशमें पहलेसे मौजूद भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षाके लिए लोकमतके विरुद्ध जाकर भी कानून बनाना हमारे लिए उचित होगा वहाँ, समूचे रूपमें लें तो, एशियाई प्रश्नके सम्बन्धमें इस तरीकेका कानून बनाना उचित नहीं होगा जो बहुसंख्यक यूरोपीय आबादीकी आवाजके विरुद्ध हो।

तो यदि निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी है तब तो श्री लिटिलटनने सचमुच इससे ज्यादा किसी चीजकी माँग नहीं की, क्योंकि हमारा दावा है कि जो भी भारतीय अब ट्रान्सवालमें आबाद हैं उन्हें गणराज्यकी हुकूमतमें स्वतन्त्र व्यापार करनेकी इजाजत थी। इसलिए इस प्रकार व्यापार करनेकी योग्यता उनका निहित स्वार्थ है, भले ही वे दरअसल व्यापार करते हों या न करते हों। और जो आयन्दा आयेंगे वे तो केवल वे लोग ही होंगे जो सभ्यताका एक निश्चित दर्जा प्राप्त कर चुके हैं। इस तरह परमश्रेष्ठकी ओरसे किया गया सारा [वि]रोध[1] बेकार [हो जाता] है। परन्तु दु[र्भाग्]यसे दो पिछले [वर्षों]में हमने ऐसी बातें सीखी हैं [जिनसे] हम कह सकते हैं, [यद्य]पि [यह कहना] दुःखदायी हो सकता है, कि लॉर्ड मिलनर जो कुछ कहते हैं वह चाहते नहीं हैं। वे ज्यादा अच्छे वर्गके एशियाइयोंको विशेष अधिकार देनेका कोई इरादा नहीं रखते। और निहित अधिकार घटते-घटते उस व्यापारतक आ गये हैं जो वास्तवमें ११ अक्तूबर १८९९ को भारतीयोंके हाथोंमें था। क्योंकि क्या एशियाई व्यापारी आयोगका यह कहना नहीं था कि उसे केवल उन्हीं भारतीयोंके मामलोंकी जाँच करनेका अधिकार है, जो लड़ाई छिड़नेके समय और उसके तुरन्त बाद व्यापार कर रहे थे; और वह अपने अधिकारके अनुसार उन्हीं लोगोंके मामले निपटा सकता है जो अक्तूबर १८९९ में व्यापार करते थे? अगर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके रूपमें भगवानकी दया न होती तो इस समयतक उपर्युक्त अधिकारके अनुसार ७५ फी सदीसे ज्यादा भारतीय व्यापारियोंका अस्तित्व मिट गया होता और शायद उपनिवेश-कार्यालयने भी कुछ न किया होता। इसलिए हमारी माँग है कि नीति साफ-साफ बता दी जाये। यूरोपीय विरोधके बारेमें भी परमश्रेष्ठ इतना जोर दे रहे हैं। हमें इसपर भी आपत्ति है। इसके दो कारण हैं: (पहला) ब्रिटिश प्रजाजनोंके किसी एक समूहकी ओरसे किये गये विरोधका प्रयोग किसी दूसरे समूहके अधिकारोंको छीननेके लिए नहीं किया जा सकता; (दूसरा) वह विरोध स्वयं सरकार द्वारा पोषित किया जाता है। इस बारेमें श्री लिटिलटनके खरीतेसे भ्रम बिलकुल दूर हो गया है। यद्यपि जब सर जॉर्ज फेरारकी प्रेरणासे एशियाई व्यापारिक आयोग नियुक्त किया गया तब कमजोर पक्षकी तरफसे श्री डंकन और सर रिचर्ड सोलॉमनने सफाई पेश की थी और वह हमें न्यायसंगत प्रतीत हुई थी। किन्तु जैसा खरीतेसे मालूम होगा, वे दोनों ही श्री लिटिलटनसे अधिकसे-अधिक जोरके साथ यह माँग कर रहे हैं कि वे भारतीयोंसे लगभग सब कुछ छीन लें। हम देखते हैं कि उसी तरह विधान-परिषद भी यूरोपीय भावनाकी पूर्तिका साधन है। सर जॉर्ज फेरारने प्रस्ताव रखा था कि इंग्लैंड एक आयोग नियुक्त करे और इस बीचमें भारतीयोंको नये परवाने देना बिलकुल बन्द कर दिया जाये। सरकारने उसे खुशीसे मंजूर कर लिया है। जब स्वर्गीय श्री क्रूगरने अपने ही उच्च न्यायालयके फैसलोंको निकम्मा करनेके लिए प्रस्ताव पास किये तब उनपर भीषण दोषारोपण किये गये। उनका आचरण पाशविक और अदूरदर्शितापूर्ण समझा गया और उन्हें भद्दीसे-भद्दी गालियाँ, जो दी जा सकती थीं, दी गईं। लेकिन जब वही बात ब्रिटिश ताजके नुमाइन्दोंकी तरफसे प्रस्तावित की जाती है तब विरोधमें एक भी आवाज नहीं उठाई जाती। ट्रान्सवालके स्वतन्त्र न्यायाधीशोंने उपनिवेशमें भार-

१. मूलमें जहाँ-तहाँ कट-फट जानेसे कोष्ठकोंमें दिये गये शब्दों और शब्दांशोंकी पूर्ति की गई है।

तीयोंका व्यापार करनेका हक अपने सर्वसम्मत निर्णयमें जोरदार शब्दोंमें स्वीकार किया है। किन्तु अब उसीको छीननेका प्रस्ताव किया जा रहा है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उस स्थितिको महसूस करेंगे जिसमें ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय हैं और यह भी अनुभव करेंगे कि स्थानीय सरकारने राग-द्वेषमें आम लोगोंके साथ पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस कारण वह इस स्थितिमें नहीं है कि कोई निष्पक्ष राय दे सके। असल बात यह है कि सही या गलत, किसी भी तरह, वह बहुत बदनाम हो चुकी है। बहुत-से दूसरे मामलोंमें भी उसकी नीतिसे ट्रान्सवालके लोग गम्भीर रूपसे असन्तुष्ट हैं। इसलिए वह भारतीयोंके मामलेमें न्याय करनेमें डरती है। क्योंकि यह मामला उन लोगोंका है, जिनकी कोई आवाज नहीं है और जिनके पास सरकारको तंग करनेकी कोई ताकत भी नहीं है। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि श्री लिटिलटनको यथेष्ट बल प्राप्त हो, जिससे वे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें, जिसे वे "राष्ट्रीय सम्मान" कहते हैं, उसकी रक्षा कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–९–१९०४

२०५. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंसगटन रोड
लन्दन, इंग्लैंड

महोदय,

भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले अब नाजुक हालतमें पहुँच चुके हैं। *इंडियन ओपिनियनसे* आपको आज तककी सारी जानकारी मिल जायेगी। उसमें प्रकाशित ब्रिटिश भारतीय संघके निवेदनसे, मेरी समझमें, परिस्थिति स्पष्ट हो जायेगी। संघके प्रस्ताव जितने नरम हो सकते थे उतने नरम हैं, और उनमें ब्रिटिश भारतीयोंके कमसे-कम हक — जिनमें और कमी हो ही नहीं सकती — पेश किये गये हैं। आप देखेंगे कि उनमें उपनिवेशियोंकी सभी उचित आपत्तियोंको मिटा दिया गया है। शैक्षणिक कसौटीका मुद्दा भी मान लिया गया है। किन्तु परवानोंके प्रश्नपर

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रकी बातें, पीछे जोड़े गये शब्दोंके साथ, एक वक्तव्यके रूपमें उपनिवेश-मन्त्रीको (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविजुअल्स-एन) और भारत-मन्त्रीको (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस) भेजी थीं। उक्त वक्तव्य ७–१०–१९०४ को *इंडियामें* जोहानिसबर्ग-संवाददाताके ९ सितम्बरके संवादके रूपमें छपा था।

सर्वोच्च न्यायालयमें पुनर्विचार कराने और अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार बिलकुल जरूरी है। यदि आवश्यक हो तो दूसरी बातकी हदतक कुछ जमीनें केवल यूरोपीयोंकी मिल्कियतके लिए सुरक्षित रखी जा सकती हैं। मैं परवानोंकी स्थिति, पुनरुक्तिकी जोखिम उठाकर भी स्पष्ट कर दूं। कोई परवाना-अधिनियम हो, उससे वर्तमान परवानोंको अछूता छोड़ देना चाहिए और जो लोग परवानों या बिना परवानोंके युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे; किन्तु जिन्होंने ब्रिटिश अधिकारके बाद मुख्यतः इसलिए परवाने नहीं लिये कि उन्हें उपनिवेशमें लौटने ही नहीं दिया गया है, उन्हें भी अछूता छोड़ना चाहिए। परवानोंकी बाड़ोंको नियमानुसार साफ-सुथरा रखने और हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेकी शर्तका पालन न हो तो बात अलग है। नये परवानोंके बारेमें सरकार अथवा नगरपालिकाके अधिकारियोंको पूरा विवेकाधिकार रह सकता है। हाँ, अपीलका अधिकार तो रहेगा। इस तरह सारा प्रश्न सुलझ जायेगा। यह प्रस्ताव नेटालके ढंगका है — केवल इसमें सर्वोच्च न्यायालयको उसके स्वाभाविक अधिकारसे वंचित करनेवाली अत्यन्त अन्यायपूर्ण धाराको छोड़ दिया गया है। इस तथ्यसे वहाँके हर भारतीय व्यापारीकी स्थिति अनिश्चित हो गई है। यदि संघके प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जायें तो किसी आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक जान पड़ेगी। विधान-परिषदका प्रस्ताव जैसा सुझाता है, उसके अनुसार परवाने मुल्तवी नहीं किये जा सकते। और यदि परवाने मुल्तवी नहीं किये जाते तो मेरी समझमें लॉर्ड मिलनर आयोगकी नियुक्ति शायद ही स्वीकार करें। वास्तवमें आयोगकी माँगके द्वारा मंशा परोक्ष रूपसे वही प्राप्त करनेका है, जिसे श्री लिटिलटन प्रत्यक्षतः अस्वीकार कर चुके हैं। इससे परवानोंका प्रश्न भी एक लम्बे और अनिश्चित कालके लिए टल जायेगा और यदि श्री लिटिलटनने परवानोंको मुल्तवी करनेकी बात मान ली तो भारतीय-विरोधियोंकी ओरसे किसी निश्चित विधानके लिए जल्दी नहीं मचाई जायेगी।

मैं देखता हूँ, ऑरेंज रिवर कालोनीका प्रश्न अभीतक नहीं उठाया गया है। मेरा खयाल है कि इसे प्रमुखताके साथ ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि मेरी रायमें यह एक कलंकसे कम नहीं है कि कालोनीको अबतक भारतीयोंके लिए अपने द्वार बिलकुल बन्द रखनेकी सुविधा प्राप्त है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

पुनश्च: सर आर्थर लाली और उपनिवेश-सचिव श्री डंकन पिछले हफ्ते लन्दनके लिए रवाना हुए हैं। क्या मैं सुझाव दे सकता हूँ कि एक मिला-जुला शिष्टमण्डल उनसे मिले और उनके साथ इस प्रश्नकी चर्चा कर ले? सम्भवतः उनपर इसका बहुत ज्यादा प्रभाव हो सकता है और कुछ नहीं तो वे यह तो जान ही जायेंगे कि अलग-अलग मतोंके प्रभावशाली लोग इस प्रश्नपर बिलकुल एकमत हैं।

टाइप किये हुए मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६०) से।

२०६. ट्रान्सवाल

हम लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लालीके महत्त्वपूर्ण खरीते छाप चुके है। श्री लिटिलटनका खरीता भी, जो इनका जवाब था, इन स्तंभोंमें पहले ही छापा जा चुका है। इन दस्तावेजोंसे ट्रान्सवालमें ही नहीं, परन्तु दक्षिण आफ्रिकाभरमें भारतीय प्रश्नका महत्त्व प्रकट होता है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघने उपनिवेश-सचिवके नाम एक आवेदनपत्र प्रिटोरिया भेजा है। (इसे हम पिछले सप्ताह उद्धृत कर चुके हैं)[1]। इसमें परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके खरीतेमें कही गई कुछ निश्चित बातोंका खण्डन किया गया है। खरीतेमें उन्होंने साफ तौरपर अपनेको एक निष्पक्ष शासककी अपेक्षा पक्षपाती ही अधिक सिद्ध किया है। उस खरीतेमें आदिसे अन्ततक वे सब मुद्दे सामने लानेकी उत्सुकता है, जिनकी कल्पना परमश्रेष्ठ इस रूपमें कर सके है कि वे यूरोपीयोंके ऐतराजोंके अनुकूल हैं। उन्होंने श्री लिटिलटनको यह सलाह देनेमें भी संकोच नहीं किया है कि वे जिस सरकारके नुमाइन्दे है उसके नामपर ब्रिटिश भारतीयोंको बार-बार दिये गये वचन भी तोड़ दिये जायें। हमारा खयाल यह नहीं है कि राज्यके कारोबारमें ऐसे हालात हो ही नहीं सकते जिनमें एक बार दिये गये वचन भंग करना उचित हो। परन्तु इस मामलेमें ऐसा करनेके लिए जरा भी औचित्य नहीं है। सर आर्थर लालीने सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाका विवेचन किया है और उनका विचार है कि उस समयकी स्थिति आजकी स्थितिसे बिल्कुल भिन्न थी। किन्तु, जैसा ब्रिटिश भारतीय संघने परमश्रेष्ठको याद दिलाया है, उस वचनपर १८९९ तक अमल किया गया था। बहुत दिन नहीं हुए, जब लॉर्ड रिपन उपनिवेश-मन्त्री थे, उन्होंने अपने खरीतेमें सरकारकी जोरदार नीति यह निर्धारित की थी कि सम्राज्ञी सरकारकी यह इच्छा है कि उनके तमाम प्रजाजनोंके साथ बराबरीका बरताव किया जाये। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमें कोई भी परिस्थिति ऐसी दिखाई नहीं देती जिससे गम्भीरतापूर्वक किये गये और दुहराये गये वादे जानबूझकर तोड़ना वाजिब माना जाये। इस बातका भी कोई कारण नहीं है कि पहले प्रश्नको बेहद बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाये और फिर अन्याययुक्त और भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी बातको उचित कहा जाये। अगर ट्रान्सवालका दरवाजा भारतसे लाखों लोगोंके आनेके लिए बिलकुल खुला रखनेकी तजवीज हो तो ऐसा ढंग समझमें आ सकता है। परन्तु जिस साँसमें सर आर्थर लाली यह भयावह चित्र खींचते हैं कि अगर इस देशमें भारतके लाखों लोगोंको भर जाने दिया गया तो ट्रान्सवालकी स्थिति बड़ी भयंकर हो जायेगी, उसी साँसमें वे केप-कानूनको अपनानेकी वकालत भी करते हैं, जिससे भारतीयोंका प्रवास समाप्तप्राय हो जायेगा। १० लाख गोरोंकी आबादीमें, जो सतत बढ़ रही है, कुछ हजार भारतीयोंको अपमानजनक पाबन्दियोंमें रखना ऐसा कृत्य है जिसे किसी ब्रिटिश उपनिवेशमें पल-भर भी बरदाश्त नहीं किया जाना चाहिए। सर आर्थर लालीने अपनी प्रातिनिधिक हैसियतसे इस तरहके कानूनकी वकालत करना उचित माना है, यह स्थिति एक अशुभ महत्त्वकी सूचना देनेवाली है। आज भारतीय प्रश्नके बारेमें जो-कुछ हुआ है वह कल किसी और प्रश्नके सम्बन्धमें भी हो सकता है। भविष्यके लिए चिन्ताका विषय वह सिद्धान्त होना चाहिए, जो इसकी तहमें निहित है। अगर परमश्रेष्ठके विचार ब्रिटिश शासकोंको जरा भी प्रिय हैं तो हमारी विनम्र सम्मतिमें वे उन सर्वोच्च ब्रिटिश परम्पराओंसे पतित होनेकी निशानी हैं, जिनके कारण साम्राज्यका वर्तमान रूप बना है। और जिस समय साम्राज्य-भरमें तथाकथित "साम्राज्य-भावना" लहरा रही है उसी समय शायद उसके अवच्छेदके बीज भी बोये जा रहे हैं। उपनिवेशियोंके साथ नाममात्रका सम्बन्ध रखनेके लिए

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: उपनिवेश-सचिवको", "सितम्बर ३, १९०४ से पूर्व"।

इंग्लैंडको अपने तमाम उदात्त और उत्तम आदर्शोंका वलिदान करना पड़ रहा है। ब्रिटिश भारतीय संघका आवेदनपत्र देखते हैं तो हम वह अकाट्य मालूम होता है और यदि सरकार उसमें किये गये प्रस्तावोंको मान लेती है तो इस कठिन प्रश्नका हल बहुत ही आसान हो जाता है। हमारे खयालसे हालके परीक्षात्मक मुकदमेमें दिये गये निर्णयसे जो लाभ हुआ है संघ उसको अपना आधार वना सकता था, लेकिन चूंकि जीवन स्वयं समझौतोंका समूह है और राजीनामेकी नीति किसी अन्य नीतिसे अच्छी होती है, इसलिए संघने प्रवासी और विक्रेता-परवानोंके मामलेमें भी बहुत ही माकूल और समझौतेके सुझाव पेश करके अच्छा ही किया है। परन्तु एक वात याद रखनी चाहिए कि वह उनकी ऐसी न्यूनतम माँग है—और होनी भी चाहिए—जिसमें और कमीकी कोई गुंजाइश नहीं है। यही स्वीकार करनेकी भारतीय समाजसे आशा रखी जा सकती है। हम शिक्षाकी कसौटीमें भारतीय भाषाओंके निषेधके विचारसे कभी सहमत नहीं हो सके हैं। यह निषेध अकारण है और यह वात हमेशा खटकती रहेगी कि लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लाली दोनोंने श्री लिटिलटनके भारतीय भाषाओंको मान्यता देनेके सर्वथा न्याय-पूर्ण प्रस्तावको नहीं माना। किन्तु शान्तिको खरीदनेके लिए और यह दिखानेके लिए कि भारतीय अत्यन्त विकट परिस्थितियोंमें भी कितने विवेकशील हैं—जैसे कि वे हमेशा ही रहे हैं—ब्रिटिश भारतीय संघ केपके ढंगका प्रवासी कानून स्वीकार करने और नये विक्रेता-परवानोंके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार रख कर पूरा नियन्त्रण सौंपनेको तैयार है। एक तरहसे इसका अर्थ भारतीयों द्वारा अपना व्यापारका अधिकार छोड़ना है। फिर भी संघने बिलकुल यही किया है। इसके वदलेमें संघ केवल अचल सम्पत्तिके स्वामित्वका अधिकार माँगता है। फिर भी हमें निश्चय नहीं है कि यह कोई नई वात होगी, क्योंकि यह एक प्रश्न है कि १८८५ के कानून ३ में स्वामित्व-सम्बन्धी धारापर प्रहार किया जा सकता है या नहीं। संघने जबर-दस्ती अलग वसानेके सिद्धान्तका भी विरोध किया है और जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने सिद्ध कर दिया है, १८८५ के कानून ३ के अनुसार कोई जोर-जब्र वांछनीय नहीं है। इस हकीकतके होते हुए यदि सर आर्थर लाली अपने प्रस्तावोंको "रियायतें" वतायें और फिर श्री लिटिलटनसे कहें कि उनपर अमल करानेमें उन्हें कठिनाई हो सकती है तो यह दरअसल अजीब वात है। असल वात यह है कि परमश्रेष्ठका प्रत्येक प्रस्ताव ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर नया प्रतिवन्ध है। परन्तु यदि ब्रिटिश भारतीयसंघके आवेदनपत्रपर न्यायपूर्ण भावनासे विचार किया जाये तो सारा विवाद कमसे-कम फिलहाल तो खतम हो सकता है और इंग्लैंडसे कोई खर्चीला आयोग भेजना गैर-जरूरी किया जा सकता है। अक्सर यह दलील दी जाती है कि स्वशासनभोगी उपनिवेशोंको कुछ कानून वनानेकी इजाजत दी गई है, यह देखते हुए ट्रान्सवालको भी उसी आधारपर रख दिया जाये। इसलिए हम संयोगवश इस हकीकतका जिक्र कर सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार कहीं भी ऐसे असाधारण प्रस्तावोंसे सहमत नहीं हुई है जैसे सर आर्थर लालीने रखे हैं। यह याद होगा कि आस्ट्रेलियाने एशियाइयोंपर लागू करनेके लिए एक प्रवासी-कानून पास किया था। उस कानूनको विशेषाधिकार द्वारा रद करा दिया गया और उस उपनिवेशको नेटालके ढंगका एक सामान्य कानून पास करना पड़ा। स्वयं नेटालने जब एशियाइयोंके विरुद्ध विशेष कानून पास करनेका प्रयत्न किया तव उसे भी अपने प्रयत्नमें असफलता ही हुई थी। इसलिए यदि सर आर्थर लाली द्वारा प्रस्तावित कानून मंजूर किया ही गया तो ब्रिटिश अधिकारियोंकी तरफसे यह एक बिलकुल नये मार्गका अनुसरण होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-९-१९०४

२०७. उत्पीड़न-यंत्र

जहाँ ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेवाले भारतीयोंपर परवाने-सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिनपर-दिन कठोर होते जा रहे हैं, वहाँ यूरोपीयोंको अधिकाधिक सुविधाएँ दी जा रही है, फिर चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या अन्य कोई। अब ऐसे अधिकारी नियुक्त किये गये है जो ज्यों ही जहाज आयेंगे त्यों ही उनमें चले जाया करेंगे ताकि जो यूरोपीय ट्रान्सवाल जाना चाहते हों उन्हें प्रतीक्षा किये बिना परवाने मिल सकें। इसके विपरीत भारतीय चाहे केपमें हों, या नेटालमें या डेलागोआ-बेमें, प्लेगके आधारपर ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेसे रोके जा रहे है। और यह सब होता है, इसका पूरा प्रमाण देनेपर भी कि वे शरणार्थी है। सबसे स्पष्ट उदाहरण, जो हमारी जानकारीमें आया है, किम्बरले और डर्बनसे आनेवाले फुटबॉलके भारतीय खिलाड़ी-दलोंसे सम्बन्धित है। हम यह सब पत्र-व्यवहार अन्यत्र छाप रहे हैं। उसको पढ़नेसे सारी बात स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। कार्यवाहक मुख्य सचिव यह नहीं समझ सके कि ब्रिटिश भारतीय खिलाड़ियोंको अस्थायी परवाने क्यों दिये जायें? यह स्मरणीय है कि ये सब प्रतिष्ठित लोग है और यूरोपीय ढंगसे रहनेका कोई महत्त्व हो तो यूरोपीय ढंग से रहते है। फुटबॉल एक प्रधान अंग्रेजी खेल है और हम समझते है कि श्री रॉबिन्सनके लिए उसका उल्लेख व्यंग्यपूर्वक करना उचित नहीं था, जैसा कि उन्होने इस पत्र-व्यवहारमें किया हे। भारतीय खिलाड़ियोंको श्री सी० बर्ड, मुख्य उपसचिवके प्रति बहुत ही कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने परवाना-सचिवको एक आवश्यक तार भेजा था। किन्तु उसपर भी ट्रान्सवालके अधिकारियोंने कोई शिष्टता नहीं दिखाई। श्री बर्ड बहुत दृढ़ थे। उन्होंने कहा: "नेटालके खिलाड़ी-दलमें सभी प्रतिष्ठित लोग हैं जो मुख्यतः मुन्शियोंका काम करते है और इनको जोहानिसबर्ग जाने देनेमें उससे अधिक खतरा मुझे दिखाई नहीं देता, जितना और किसीसे हो सकता है।" इससे ज्यादा कड़ाईसे कुछ और कहना सम्भव न था। और चूँकि यह सिफारिश जिम्मेदार हलकोंसे हुई थी, इसलिए इसपर ध्यान देना उचित था। परन्तु कदाचित् ट्रान्सवालमें लोग मध्ययुगमें रह रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–९–१९०४

२०८. पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय

पॉचेफस्ट्रूममें जो थोड़ेसे भारतीय दूकानदार अपनी रोजी कमा रहे हैं उनसे इस नगरके लोग बहुत परेशान मालूम होते हैं। पॉचेफस्ट्रूमसे प्रत्येक भारतीयको निकाल बाहर करनेकी उत्सुकतामें वे आतंकका आश्रय ले रहे हैं। अभी उस दिन एक भारतीय वस्तु-भण्डारमें आग लग गई थी। खयाल किया जाता है कि वह किसी आग लगानेवालेका काम था। अखबारोंका कहना है कि भारतीय डर गये हैं और बीमा-कम्पनियाँ भारतीयोंके जोखिमके बीमे स्वीकार नहीं करतीं। भारतीय भण्डारोंके पड़ोसमें रहनेवाले गोरे लोग भी बेचैन हो गये हैं। खुशीकी बात है कि पुलिस सतर्क मालूम होती है और इस बारेमें बहुत चिन्ता करनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता। परन्तु हमें यह देखकर दुःख होता है कि पॉचेफस्ट्रूम नगर-परिषद भी बहावमें बह गई है और उसने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जो एक प्रतिनिधि-संस्थाके अयोग्य है। नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने निम्नलिखित सिफारिश की है:

> इस बातको देखते हुए कि सरकार एशियाइयोंको *बाजारोंमें* अलग बसानेकी कोई कार्रवाई नहीं कर रही है, यह परिषद नगरके तमाम एशियाइयोंको आज्ञा देती है कि वे रातको भारतीय बस्तीमें चले जाया करें और वहीं रहा करें। उक्त एशियाई व्यापारियोंको स्थानीय पत्रोंमें विज्ञापनके रूपमें एक महीनेकी सूचना दी जाये और इस अवधिमें वे परिषदके आदेशका पालन करें। और इसके अतिरिक्त अगर आवश्यक सिद्ध हो तो परिषदके प्रस्तावपर अमल करानेमें मदद देनेके लिए ५० गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जायें और परिषद स्थानीय मजिस्ट्रेटसे आग्रहपूर्वक अनुरोध करती है कि वे इस मामलेमें भरसक सहायता दें।

जैसा कि हम पिछले अंकोंमें पहले ही बता चुके हैं, १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ में ब्रिटिश भारतीयोंको बलपूर्वक अलग बसानेकी कोई सत्ता नहीं दी गई है। इसलिए यदि उपर्युक्त प्रस्तावपर अमल करानेका प्रयत्न किया गया तो परिषदका यह काम बिलकुल गैर-कानूनी होगा। मुख्य न्यायाधीशने *हबीब मोटन* बनाम *सरकार*के परीक्षात्मक मुकदमेमें इस धाराके सम्बन्धमें अपने फैसलेमें जो राय जाहिर की है उसके होते हुए पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदके सदस्योंने यह सुझाव देना कैसे ठीक समझा कि भारतीयोंको शायद जबरदस्ती अलग बस्तीमें रखवानेके लिए ५० विशेष गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जायें — यह हमारी समझमें नहीं आता। हम आशा ही रख सकते हैं कि सरकार उक्त प्रस्तावपर ध्यान देगी और ऐसी किसी भी कार्रवाईके विरुद्ध नगर-परिषदको सचेत कर देगी। भारतीयोंको कानून द्वारा पूरा अधिकार है कि वे जहाँ भी चाहें वहाँ व्यापार करें और रहें; और उन्हें यह भी हक है कि वे उस अधिकारके अमलमें हर तरहकी हिंसासे बचावकी आशा रखें, फिर भले ही वह हिंसा पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषद जैसी कानून द्वारा निर्मित संस्थाकी तरफसे ही क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–९–१९०४

२०९. केपके भारतीय

शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुडहोप) के पिछले ३० अगस्तके सरकारी *गजटमें*, उपनिवेशके स्थानापन्न प्रशासक परमश्रेष्ठ मेजर जनरल एडमड स्मिथ ब्रुफकी जारी की हुई निम्नलिखित घोषणा छपी हे:

> मै इस घोषणा द्वारा यह घोषित और प्रकट करता हूँ कि इसकी तारीखसे किसी अरब, भारतीय या और अन्य एशियाईका, चाहे वह किसी भी राष्ट्रका क्यों न हो, पूर्वोक्त इलाकों (अर्थात् गीलेकालैंड सहित ट्रान्सकाई; प्रवासी टैम्बूलैंड और बॉम्वानालैंड सहित टैम्बूलैंड; पूर्वी और पश्चिमी भागों सहित पौंडोलैंड; पोर्ट सेंट जॉन्स; पूर्व ग्रीक्वालैंड) – मे से किसीमें भी प्रवेश करना तबतक कानून-सम्मत नहीं होगा जबतक कि उसको स्थानीय मजिस्ट्रेटका हस्ताक्षरयुक्त विशेष परवाना या आदेश न मिला हो और उसपर ट्रान्सकाई इलाकेके मुख्य मजिस्ट्रेटकी मंजूरी न हो। कोई ऐसा व्यक्ति किसी ऐसे परवानेके बिना उक्त इलाकोमे से किसीमें प्रवेश करेगा तो वह अपराध सिद्ध होनेपर जुर्मानेका, जो २० शिलिंगसे ज्यादा न होगा, या जुर्माना न देनेकी सूरतमें सादी या कड़ी कैदकी सजाका पात्र होगा, जिसकी अवधि एक महीनेसे अधिक नही होगी और उसे उस इलाकेसे तुरन्त चले जानेका हुक्म दिया जायेगा। और यदि ऐसा व्यक्ति ऐसा हुक्म नही मानेगा तो वह कसूर साबित होनेपर और जुर्मानेका देनदार होगा जो २० शिलिंगसे अधिक नही होगा और ऐसे इलाकेकी सीमासे तुरन्त हटा दिया जायेगा।

हम नही जानते कि भारतीयोने केप उपनिवेशमे यह प्रतिबन्ध लगाने लायक क्या काम कर डाला हे। सही बात यह हे कि केपमे भारतीयोकी आबादी थोडी हे और केपके राजनीतिज्ञोने अक्सर यह शेखी बघारी है कि उन्होंने उस उपनिवेशमे जो कुछ किया हे वह रगद्वेपसे प्रेरित होकर नही। श्री स्कीनरने वतनी मताधिकारके प्रश्नपर *ब्लूमफॉटीन पोस्टको* जो उत्तर लिखा है, अभी तो उसकी स्याही भी नही सूखी हे, फिर भी हमे केपके सरकारी *गजटमें* उक्त घोपणा पढनेको मिल गई हे। श्री स्कीनर कहते है कि केपके लोग इस बातके लिए बिलकुल राजी हैं कि इस देशके वतनियोको मताधिकार प्राप्त हो ओर उसके लिए व्यक्तिकी योग्यता उसकी चमडीके रगसे नही, परन्तु उसकी सभ्यताकी मात्रासे परखी जाये। यदि यह सच हे तो केपके मातहत इलाकोमे भारतीयोके प्रवेशकी यह मनाही समझमे नही आती। अगर केपवासी भारतीयोके लिए केपमे रहना जुर्म नही हे तो उनके लिए उसके मातहत इलाकोमे प्रवेश करना क्यो जुर्म होना चाहिए? बेशक ऐसी विशेप परिस्थितियोकी कल्पना की जा सकती हे जिनमे ऐसा व्यवहार उचित समझा जाये, परन्तु निश्चय ही घोपणामे इस बारेमे बिलकुल कुछ नही कहा गया हे। इसलिए हमारा यह नतीजा निकालना बिलकुल ठीक ही हे कि यह मनाही केवल भारतीयोके विरुद्ध की गई हे। हम इसे भारतीय समाजका विचारहीन अपमान समझते हैं और वह केप प्रायद्वीपके द्वार नये प्रवासी भारतीयोके लिए लगभग बन्द कर देनेसे गम्भीरतर हो गया हे। दरअसल, ब्रिटिश प्रजाजनोके नाते भारतीयोके अधिकारोपर किये गये इस ताजा हमलेमे उस रग-विरोधी लहरकी तीव्र गन्ध है, जो इस समय दक्षिण आफ्रिकामे चल रही हे और जिसका प्रारम्भ पिछले साल ट्रान्सवाल-सरकारकी १९०३ की

बाजार-सूचना ३५६ से हुआ था। हमें आशा है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोंने इस घोषणाका विरोध किया होगा और वे तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक यह रद न कर दी जाये या किसी असाधारण परस्थितिके आधारपर उचित सिद्ध न कर दी जाये। ऐसी घोषणाएँ कुल मिलाकर इतनी हुई हैं कि हम उनसे ऊब गये हैं और उनके विरुद्ध कोई कारगर उपाय भी दिखाई नहीं देता। अगर निर्धारित मार्गसे — जैसे विधान-परिषद द्वारा — कानून पास करनेका सवाल होता तो अधिकार-पत्रके अधीन ब्रिटिश सरकारकी मंजूरी लेनी पड़ती; परन्तु जैसा इस मामलेमें हुआ है, घोषणा द्वारा कानून बनानेपर ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं है। गवर्नर विधान-मण्डलकी सहायताके बिना कारवाई करता है और उनके आदेशोंमें कानूनकी शक्ति होती है। ये घोषणाएँ जारी होनेसे पहले ब्रिटिश सरकार (डाउनिंग स्ट्रीट) के अधिकारियोंके सामने पेश नहीं की जातीं। इसलिये इसका अर्थ यह है कि कभी-कभी सम्राटसे सीधे नियन्त्रित इलाकोंमें भारतीयोंके उत्पीड़नके यन्त्रको कसना जितना आसान होता है उतना वहाँ नहीं, जहाँ उचित रूपसे निर्मित कानूनी संगठन है। यह एक सवाल है। हम इसे इंग्लैंडके उन राजनीतिज्ञोंके विचारार्थ प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें भारतके बाहर ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके साम्राज्यीय सवालमें दिलचस्पी है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–९–१९०४

२१०. स्वर्गीय श्री प्रिस्क

श्री प्रिस्ककी मृत्युने हमारे बीचसे एक विनम्र सत्पुरुष और बहुत ही योग्य पत्रकारको उठा लिया है। परलोकगत महानुभावने अपने विशिष्ट क्षेत्रमें शान्तिपूर्ण और निरभिमान तरीकेसे समाजके लिए बहुत-कुछ किया था। पत्रकारका जीवन कभी सुख-चैनका जीवन नहीं होता। उसपर वे जिम्मेदारियाँ होती हैं जिनका शायद जनताको समुचित खयाल भी नहीं होता। एक तरफ तो उसे अपने मालिकोंको खुश रखना पड़ता है और दूसरी ओर लोकमतका प्रतिनिधित्व करना होता है। ऐसा करनेमें उसे बड़ा त्याग करना पड़ सकता है। उसको अक्सर परस्पर-विरोधी स्वार्थोंसे निबटना पड़ता है और उसके सामने जो मामले आते हैं उनपर जनताके दृष्टिकोणसे ही नहीं, बल्कि अपने दृष्टिकोणसे भी विचार करना पड़ता है और जब उसके अपने ही शुद्ध अन्तःकरणसे मान्य विचार किसी खास मामलेमें लोकमतके विपरीत होते हैं तब स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है। किन्तु श्री प्रिस्क पत्रकारोंके रास्तेमें आनेवाली सभी विघ्न-बाधाओंको सुरक्षित रूपसे पार कर जाते थे और अपना कर्तव्य दृढ़तासे पालते थे। हमें अच्छी तरह याद है कि जब नेटालमें भारतीय अकाल-पीड़ितोंके लिए चन्दा शुरू किया गया था तब उन्होंने किस उत्साहवर्धक ढंगसे हमारी सहायता की थी। हमारे अनेक पाठकोंको उन विशेष व्यंग्य-चित्रोंका स्मरण होगा जो *नेटाल मर्क्युरीमें* परिशिष्टांकके रूपमें निकाले गये थे और यह भी स्मरण होगा कि उस अखबारमें अकाल-सम्बन्धी साहित्यको कितना अधिक स्थान दिया गया था। हम श्री प्रिस्कके परिवारके प्रति अपनी आदरपूर्ण समवेदना प्रकट करते हैं और आशा रखते हैं कि उनका कार्य योग्य व्यक्तिको सौंपा जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–९–१९०४

२११. पीटर्सबर्गके भारतीय

हमारे सहयोगी *स्टारमें* यह सूचना छपी है कि "एशियाई प्रश्नपर कार्रवाई करनेके लिए पीटर्सबर्गमें एक श्वेत-संघ स्थापित किया गया है। इसकी कार्य समितिमें तीन नगर-परिषदके प्रतिनिधि हैं, चार स्थानीय बोअर-ब्रीरीनिगिग (फ्रेनिग्वन) के और चार अन्य प्रमुख नागरिक हैं। और यह कि नगर-परिषदकी बैठकमें यह निर्णय किया गया है कि नगरपालिकाओंको काम-काजके घंटे नियमित करनेका अधिकार दिलानेके सम्बन्धमें सरकारसे प्रार्थना की जाये। पीटर्सबर्ग जैसे रंगविद्वेषके अड्डेमें श्वेत-संघ बनानेका विचार पैदा हुआ, इसपर हमें कोई आश्चर्य नहीं। हम इतना ही कह सकते हैं कि इन प्रवृत्तियोंके कारण हमारी समझमें नहीं आते, क्योंकि लॉर्ड मिलनरने अत्यन्त सख्तीसे उन थोड़ेसे भारतीय शरणार्थियोंका प्रवेश भी रोक दिया है जिन्हें हर महीने अपने घरोंको लौट आनेकी इजाजत थी। जैसा कि हमारे पाठकोंने अवश्य देखा होगा, परमश्रेष्ठने तो एक भारतीय फुटबॉल खिलाड़ी-दलको ट्रान्सवालकी पवित्र सीमामें प्रवेश करनेकी अस्थायी अनुमति भी नहीं दी। तब यदि श्वेत-संघ पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार-संघकी तरह ट्रान्सवालवासी भारतीयोंको आतंकित करना नहीं चाहते तो ये अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके लिए और क्या करेंगे? नगर-परिषदकी काम-काज बन्द करनेके घंटोंको नियमित करनेकी प्रस्तावित कार्रवाईके साथ हमारी सहानुभूति है। हमें मालूम हुआ है कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय इस मामलेमें अगुआ बने हैं और उन्होंने फैसला किया है कि उनकी दूकानें उसी समय बन्द की जायेंगी जिस समय यूरोपीय दूकानें बन्द होती हैं। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि पीटर्सबर्गके भारतीय अपने पॉचेफस्ट्रूमके भाइयों द्वारा उपस्थित किये गये बढ़िया उदाहरणका अनुसरण करेंगे और नगर-परिषदके लिए ऐसे कोई उपनियम बनाना अनावश्यक कर देंगे। उनके लिए ऐसी कार्रवाई शोभास्पद और सामयिक होगी और शायद इससे यह सिद्ध करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी कि वे प्रस्तावित श्वेत-संघके भावी सदस्योंकी भावनाओंसे यथासंभव समझौता करनेके लिये उत्सुक हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–९–१९०४

२१२. पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय

अन्यत्र हम एक प्रशंसनीय पत्र छाप रहे हैं जो पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय संघके मन्त्री श्री अब्दुल रहमानने *ट्रान्सवाल लीडरको* भेजा है। इस पत्रसे स्पष्ट मालूम होता है कि पहरेदार-संघका जोश कितना गलत है और भारतीय लोग गोरोंकी इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिए किस सीमातक तैयार हैं। परन्तु उस पत्रका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उसमें दी गई यह जानकारी है कि पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय व्यापारियोंने अपनी दूकानें उसी समय बन्द करनेका फैसला किया है जिस समय यूरोपीय करते हैं। यह कदम किसी दबावके बिना उठाया गया है और हमारा खयाल है कि वह ठीक दिशामें है और दूसरे नगरोंके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके लिए अनुकरणीय है। असलमें उनका मामला तो वैसे ही बहुत मजबूत है; लेकिन पाँचेफस्ट्रूमके भारतीयोंकी इस ताजी कार्रवाईसे उनकी स्थिति और भी मजबूत हो गई है। हमें आशा है कि श्री अब्दुल रहमानने यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोंसे इस सद्भावके बदलेमें कुछ-न-कुछ सद्भाव दिखानेकी जो प्रार्थना की है उसका समुचित उत्तर मिलेगा, क्योंकि हर हालतमें उन्हें भी रक्षाके लिए उसी झंडेपर निर्भर रहना है जिसके संरक्षणमें ब्रिटिश भारतीय रहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–९–१९०४

२१३. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १९, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन द०-पू०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

भारतीय परिस्थितिके बारेमें इस हफ्ते जो सरकारी रिपोर्ट प्राप्त हुई है उसमें मैंने देखा है कि श्री लिटिलटनने भारतीय-बाजारोंके लिए जगहोंके प्रश्नपर जोर दिया है।

आपने देख ही लिया होगा कि सर आर्थर लालीके खरीतेके उत्तरमें दिये गये ब्रिटिश भारतीयोंके निवेदनमें[2] यह बात दुहरायी गई है और मामला आँखोंसे ओझल न हो जाये

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका पूरा पाठ एक पत्रमें उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीको भेजा था। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडिविजुअल्स-एन और सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस)।

२. देखिए "प्रार्थनापत्र: उपनिवेश-सचिवको", "(सितम्बर ३, १९०४ के पूर्व)"।

इसलिए मै इस तथ्यपर फिर जोर देता हूँ कि चुनी गई अधिकतर जगहें, निश्चय ही, व्यापारके अयोग्य है। यह वक्तव्य प्रतिष्ठित यूरोपीयोंकी बिलकुल स्वतन्त्र साक्षीके बिना नही दिया गया और वे सारी रिपोर्टें परमश्रेष्ठकी सेवामें भेज दी गई है। अगर कहीं चुनी गई जगहें जरा भी अच्छी हैं तो केवल क्रूगर्सडार्पमें; इसलिए जिन्हें बाड़े चाहिए थे उन्होंने वहाँ बिना किसी जोर-जबरदस्तीके अर्जियाँ दे दी है। दूसरे स्थानोंमें, जहाँ नयी जगहें तय की गई है, अर्जियाँ लगभग दी ही नहीं गई।

तथापि, मुख्य बात तो अनिवार्य पृथक्करणको टालनेकी है। जहाँतक *बाजारोंके* सिद्धान्तका सवाल है, उपयुक्त स्थानोंमे *बाजारोंके* लिए जगह निश्चित करके लोगोंको जमीनें लेने पर राजी किया जा सकता है। और समस्या अपने आप हल हो जायेगी।

मुझे उम्मीद है कि आप केपके प्रशासक (ऐडमिनिस्ट्रेटर) की घोषणापर, जो बिना अनुमतिपत्रके ट्रान्सकीअन क्षेत्रमें भारतीयोंके प्रवेशका निषेध करती है, *इंडियन ओपिनियनका* अग्रलेख देखेंगे। यह एक नया प्रतिबन्ध है जिसका कारण समझमे आना कठिन है। सूचीमें जिन क्षेत्रोंका उल्लेख है वे केपके मातहत हैं।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६१) से।

२१४. कुछ और बातें : सर आर्थर लालीके खरीतेके विषयमें

लन्दनसे इस सप्ताह प्राप्त सरकारी रिपोर्टसे बहुत स्पष्ट मालूम होता है कि परमश्रेष्ठने ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें कैसा अन्यायपूर्ण रवैया इख्तियार किया है। सर मंचरजीने दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको घटिया दर्जेके एशियाई बतानेपर रोष प्रकट किया है। इसलिए उत्तरमें परमश्रेष्ठने अपने खरीतेके साथ वह पत्रव्यवहार जोड़ दिया है जो प्लेगके दिनोंमें रैंड *डेली मेलमें* छपा था और जिसपर कुछ भारतीयोंने हस्ताक्षर किये थे। जब भारतीय बस्तीके चारों तरफ घेरा डाल दिया गया तब इसमें कोई आश्चर्य नही है कि बस्तीके कुछ भारतीयोंने अपने रहन-सहनको बाकी लोगोंके रहन-सहनसे ज्यादा अच्छा समझकर यह सोचा कि बाकी लोगोंपर कीचड़ उछालकर वे अपने लिये कुछ फायदा हासिल कर लेंगे और इसलिए उक्त पत्र लिखा। परन्तु परमश्रेष्ठ जो सही स्थिति स्वयं जानते हैं, जानकारीका उपयोग करके भयभीत पत्रप्रेषकोंकी अतिशयोक्तियाँ ठीक कर सकते थे। परमश्रेष्ठको मालूम होना चाहिए था कि पत्रमें उन भारतीयोंका उल्लेख था जो पृथक बस्तीमें रह रहे थे और जो आम तौरपर बस्तीसे बाहर रहनेवालोंसे बेशक नीचे दर्जेके हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए था कि वे सारे भारतीय समाजके प्रतिनिधि नही थे और न हो ही सकते थे; और स्वयं पत्र-व्यवहारसे प्रकट होता है कि पत्र लिखनेवालोंको भी, जो पृथक् बस्तीमें रह रहे थे, निम्नतम वर्गके कुछ भारतीयोंकी श्रेणीमें रखे जाने और पृथक् बस्तीमें घेर दिये जानेके विचारपर रोष था। इस दृष्टिकोणसे उनका खयाल बिलकुल ठीक था क्योंकि हमने उस बस्तीमें अच्छे ढंगसे रहनेवाले कई लोगोंको देखा है और हम उन्हें जानते है। उनमें से कुछके पास खासे अच्छे बने हुए पक्के मकान हैं। इसलिए परमश्रेष्ठके प्रति उचित आदर रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको "घटिया दर्जेके एशियाई" बताना "दुर्भाग्यपूर्ण" है।

हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़रने* सर आर्थर लालीके नेटाल-सम्बन्धी इस वर्णनका खण्डन किया है कि "ज्यों ही कोई नेटालकी सीमाको लांघता है, उसका यह खयाल मिट जाता है कि वह एक यूरोपीय देशमें ही यात्रा कर रहा है।" हमारा सहयोगी इसे "अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन" बताता है और हम भी उसके इस भावको प्रतिध्वनित किये बिना नहीं रह सकते। पाइनटाउन और चार्ल्सटाउनके बीचके रेलवे स्टेशनोंके सिवा आपको मुख्य लाइनपर बहुत थोड़े भारतीय चेहरे दिखाई देंगे और अगर आपको स्टेशनोंपर कुछ कुली दिखाई देते हैं तो इसका कारण यह है कि रेलवेके अधिकारियोंको गिरमिटिया भारतीय मजदूर रखनेमें सुभीता रहता है। इसलिए यदि यह कोई बुराई है तो उपनिवेशने इसे स्वयं ही स्वीकार किया है और परम-श्रेष्ठके तिरस्कार करने पर भी वह ऐसा करता रहेगा।

दादाभाई नौरोजीको जो यह बयान भेजा गया था कि "एशियाई-*बाजारोंकी* जगहें व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मी हैं' उसपर श्री लिटिलटनने निश्चित सम्मति माँगी थी। परमश्रेष्ठने इस मामलेको कुछ ही पंक्तियोंमें इस तरह टाल दिया है:

> **ब्रिटिश भारतीय संघका कहना है कि ये जगहें बिलकुल अनुपयुक्त हैं। परन्तु मेरी रायमें उसने अपना पक्ष प्रस्तुत करनेमें अत्युक्ति की है। नगर निवासियोंने जो आपत्तियाँ उठाई हैं वे भी अयुक्तिसंगत हैं। मेरे खयालसे चुनाव अच्छा हुआ है।**

हम कहना चाहते हैं कि परमश्रेष्ठने अधिकांश नये स्थानोंको देखा नहीं है। ब्रिटिश भारतीय संघने आरोप दुहराया है और कमसे-कम यह बात बहुत अन्यायपूर्ण है कि परमश्रेष्ठ उन स्थानोंको देखे बिना ही ऐसा बयान दें जैसा उन्होंने दिया है। यह उन प्रत्यक्षदर्शियोंकी गवाहीके खिलाफ है जो अपने नगरोंके प्रतिष्ठित यूरोपीय व्यापारी या डॉक्टर हैं और निष्पक्ष निर्णय देनेके लिए सर्वथा अधिकारी हैं। ये लोग हैं जिन्होंने अधिकांश स्थानोंको व्यापारके लिए बिलकुल अयोग्य और सफाईके खयालसे भी प्रायः अनुपयुक्त कहकर निकम्मा करार दिया है। कुछ भी हो, इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी एक उदाहरणमें भी *बाजारोंके* लिए सड़कें या मुहल्ले निर्धारित नहीं किये गये हैं, बल्कि हर जगह बस्तियाँ अलग कर दी गई हैं और उन्हें *बाजारोंका* गलत नाम दे दिया गया है।

अगर हमने परमश्रेष्ठके खरीतेपर फिर कुछ विस्तारसे चर्चा की है तो यह दिखानेके लिए ही कि राज्यके प्रधान द्वारा स्थितिके बारेमें पक्षपातपूर्ण रुख इख्तियार कर लेनेके कारण भारतीयोंकी स्थिति कितनी विषम हो गई है। अभीतक महत्त्वपूर्ण बातचीत चल रही है। प्रश्नका निर्णय नहीं हुआ है और हम इस हकीकतपर जोर देना ठीक समझते हैं कि ब्रिटिश भारतीयोंने कभी स्थितिके बारेमें अतिशयोक्ति नहीं की है और जहाँ-कहीं उनसे बन पड़ा है उन्होंने यूरोपीयोंकी भावनाके सामने झुकनेकी रजामन्दी दिखाई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–९–१९०४

२१५. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर २६, १९०४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन द०-पू०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

मुझे आपके दो पत्र मिले। मैं उनके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। श्री उमरने भी, आपने जो सलाह अपने पत्रोंमें दी है, मुझे बताई। अबसे जब जरूरत जान पड़ेगी, मैं अपनी खत-किताबत अलग-अलग करनेका प्रयत्न करूँगा। आपके सुझावके मुताबिक निशान लगाकर *इंडियन ओपिनियन* आपके पास सीधा भेजा जाये, ऐसा मैंने श्री नाजरको लिख दिया है। सरकारने लिख भेजा है कि वह ब्रिटिश भारतीय संघके सबसे ताजा निवेदनके मुताबिक विधान बनानेका इरादा नहीं रखती। इससे मालूम होता है कि सरकार अब अपने उद्देश्यकी पूर्तिसे ही सन्तुष्ट नहीं होगी; अर्थात् भविष्यमें होनेवाले भारतीय प्रवासपर प्रतिबंध लगाने और नये अर्जदारोंको परवाना देनेका नियमन करके ही नहीं मान जायेगी। साफ है कि उसका इरादा ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होनेवाले कानून बनानेका सिद्धान्त स्थापित करनेका है। यदि ऐसा हो तो यह बहुत ही भयानक बात है और इससे श्री चेम्बरलेनकी नीति उलट जायेगी। अगर ट्रान्सवालके लिए भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी मंजूरी दे दी गई तो केप और नेटाल भी निस्सन्देह उसका अनुसरण करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६२) से।

२१६. भारतके पितामह

इंडियाका जो अंक पिछली डाकसे प्राप्त हुआ है उसमें हाल ही में ऐम्स्टर्डम अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलनमें किये गये श्री नौरोजीके स्वागतका सुन्दर वर्णन है।

इंडियाका विशेष संवाददाता कहता है:

> अध्यक्ष हर वान कोलने सम्मेलनमें उपस्थित लोगोंसे अनुरोध किया कि वे अपने स्थानोंसे उठकर सम्मान व्यक्त करनेके लिए मौन खड़े हो जायें। उसके बाद एक अद्भुत और अत्यन्त प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित हुआ। जब श्री दादाभाई नौरोजी धीरे-धीरे चलकर मंचके बीचमें पहुँचे तब वह महान श्रोता-समुदाय, जो उस विशाल भवनमें भरा हुआ था, उनके सम्मुख मौन और नग्नशिर खड़ा हो गया। यद्यपि यह कार्य सीधा-सादा था तथापि जिस गम्भीरता और सर्वसम्मत रूपसे यह किया गया उससे यह अत्यन्त प्रभावशाली बन गया था, खास तौरसे यह स्मरण करते हुए कि यह सम्मान इतनी भिन्न जातियों और राष्ट्रोंके इतने अधिक प्रतिनिधियों द्वारा किया गया था। तब श्री नौरोजी जिन लोगोंके प्रतिनिधि थे उनके प्रति इस प्रकार शोकपूर्ण सम्मान प्रदर्शित करनेके बाद, स्वयं उस प्रतिनिधिके सम्मानमें एक जबरदस्त और उत्साहपूर्ण प्रदर्शन किया गया। उस विशाल श्रोता-समुदायका ध्यान भारतकी जनतासे हटकर श्री दादाभाई नौरोजीके गौरवपूर्ण व्यक्तित्वपर केन्द्रित हो गया। उनके जीवन-भरके प्रयत्नोंके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा गया था वह सब श्रोताओंने याद किया और अपने हृदयकी भावना अपनी हर्षध्वनियों, तालियों और स्वागत तथा प्रशंसासूचक नारोंके द्वारा प्रतिध्वनित की। यह अभिनन्दन देरतक और संजीदगीके साथ जारी रहा। जिन लोगोंने अन्तर्राष्ट्रीय एकताके इस महान प्रदर्शनको देखा उन सबपर उसकी अमिट छाप पड़ी। यह एकता एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रतक ही नहीं, बल्कि एक महाद्वीपसे दूसरे महाद्वीपतक फैल गई है।

प्रत्येक भारतीयको यह जानकर गर्व होना चाहिए कि श्रद्धेय श्री दादाभाईकी, जिन्हें भारतवासी प्रेमपूर्वक भारतका पितामह कहते हैं, यूरोपके लोग कितनी इज्जत करते हैं। श्री दादाभाईका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को हुआ था। पिछले ४ सितम्बरको उनकी उन्यासीवीं वर्षगाँठ मनाई गई। भगवान् करे, वे अभी और बहुत वर्ष जीवित रहें और नौजवान पीढ़ीको देशके लिए त्याग और सेवाके कार्योंकी प्रेरणा देते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१७. ट्रान्सवाल श्वेत-संघ

एक दूसरे स्तम्भमें हम पीटर्सबर्गमें स्थापित ट्रान्सवाल श्वेत-संघकी नियमावली छाप रहे हैं। उसके उद्देश्य है :

> **एशियाइयोंके विरुद्ध इस देशके समस्त श्वेत निवासियोंका संयुक्त मोर्चा बनाना, एशियाई व्यापारियोंको परवाने देने या नये करनेका काम नियमित और नियन्त्रित करनेके लिए कानून बनवाना और उन्हें नगरों और देहाती क्षेत्रोंको खाली करने और खास तौरपर अलग किये गये *बाजारोंमें* रहने और व्यापार करनेके लिए मजबूर करना।**

अन्य तीन उद्देश्योंका अभिप्राय उन दोनो उद्देश्योंकी पूर्ति करना है जो हमने अभी उद्धृत किये है। संघ नाराज होकर शोरगुल-भर मचायेगा। इसके सिवा, उसके सब प्रयत्न व्यर्थ होंगे, क्योंकि देशमे एशियाइयोंकी भरमार हो ही नही रही। यह बात दूसरी है कि संघ हजारों चीनी गिरमिटिया गुलामोंका, जिनकी देशमे बाढ आ रही है, प्रवेश रोकनेके लिए कुछ उछल-कूद करे। क्योंकि एशियाइयोंका, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या और कोई, स्वतन्त्र प्रवास लॉर्ड मिलनरने कारगर रूपमे रोक दिया है। यहाँतक कि, जिन लोगोंने पुरानी हुकूमतको उपनिवेशमे रहनेकी इजाजतके मूल्यके रूपमे ३ पौंडकी रकम चुका दी है उनका प्रवेश भी बन्द कर दिया गया है। जहाँतक परवानोंके नियमन और नियन्त्रणका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीय संघने स्वय इन दोनो बातोंके बारेमे प्रस्ताव किया है। अब रही एशियाइयोंको शहरों और देहाती क्षेत्रोंसे हटाने और *बाजारोंमें* रहनेके लिए मजबूर करनेकी बात, सो हम यह कल्पना नही कर सकते कि यदि इन महाशयोंके हाथोंमे परवानोंका पूरा नियन्त्रण आ जायेगा तो इसकी गम्भीरतापूर्वक जरूरत पडेगी। यह ध्यान देने लायक बात है कि श्वेत-संघमे पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके प्रतिनिधियोंकी बहुत प्रमुखता है। जोहानिसबर्गके पत्रोंका कहना है कि ट्रान्सवाल श्वेत-संघकी स्थापनाके साथ-साथ उस प्रार्थनापत्रपर हस्ताक्षर करानेकी तैयारियाँ भी की जा रही है जो पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार-संघकी ओरसे भेजा गया है और वह इस पत्रमें पहले ही छप चुका है। मान लीजिए कि उसपर ट्रान्सवालके प्रत्येक बालिग यूरोपीय मर्दके हस्ताक्षर हो जाते हैं तो क्या इससे जब्तीका प्रस्ताव — और उसका अर्थ इसके सिवा दूसरा कुछ नही है — कानून-सम्मत या न्याय-संगत हो जायेगा? अथवा क्या सम्राटकी सरकारका यह स्पष्ट कर्तव्य नही होगा कि वह इस प्रार्थनापत्रके बावजूद ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थो और अधिकारोंकी रक्षा करे?

ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश भारतीयों सम्बन्धी सरकारी रिपोर्ट

उपर्युक्त बातोंके बिलकुल खिलाफ सरकारी रिपोर्टपर इंग्लैंडके अखबारोंकी लगभग सर्वसम्मत राय पढकर हर किसीको बड़ी प्रसन्नता होती है।

> **उन्हें क्रूगर-शासनमें अलग बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेका जो अधिकार प्राप्त था, उसको उनसे छीन लेना दुनियाकी नजरोंमें अपने आपको गिरा देना और उन लोगोंके प्रति एक अन्यायपूर्ण कृत्यकी मंजूरी देना होगा जिन्हें ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंकी तरह ही साम्राज्य-सरकारसे न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करनेका हक है।**

यह अनुदार दलीय पत्र *मॉर्निंग पोस्टका* कहना है। पत्र आगे कहता है कि,

> लॉर्ड मिलनरके प्रस्तावकी स्वीकृतिसे सम्राट्के ३० करोड़ भारतीय प्रजाजनोंको जिनके अधिकारों और भावनाओंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, रोष करनेका उचित कारण मिलेगा।

टाइम्सने भी उतना ही जोर दिया है। इसलिए इससे जाहिर होता है कि बाहरका निष्पक्ष लोकमत सर्वथा ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षमें है। असलमें ऐसे बहुत कम मामले हैं जिनमें किसी सन्निमित्तके विरुद्ध इतने जोरोंसे सत्ताका प्रयोग किया गया हो और फिर भी विजय न्यायकी हुई हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१८. पाँचेफस्ट्रूमके अग्निकाण्डका मूल

पाँचेफस्ट्रूमकी भारतीय दूकानमें आग कैसे लगी, यह बतानेके लिए हम *ट्रान्सवाल लीडरसे* यह समाचार देते हैं।

> स्पष्ट है कि नगर-पुलिस एक कुली-भण्डारके बरामदेमें हालमें लगी आगके बारेमें परेशान है और व्यापारमण्डलसे कहा गया है कि वह आग लगानेवाले लोगोंसे सम्पत्तिकी रक्षा करनेमें सहायता करे। कप्तान जॉन्सके पत्रमें कहा गया है:
>
> 'इस मामलेमें बरामदे, किवाड़ों और दरवाजों पर पैराफीन छिड़ककर उनमें मोमिया दियासलाइयोंसे आग लगानेकी तरकीब काममें लाई गई है।'
>
> पैराफीनके कोई निशान अन्दर नहीं पाये गये हैं और कप्तान जॉन्सको पक्का विश्वास है कि यह प्रयत्न किसी द्वेषी व्यक्तिने बाहरसे किया है। वह व्यक्ति अभीतक मुक्त है और इस मामलेमें अपनी कोशिशोंमें निराश होनेसे अपनी शक्तिका प्रयोग नगरके दूसरे भागोंमें कर सकता है।
>
> पत्रमें आगे कहा गया है:
>
> 'इस विचारको ध्यानमें रखते हुए, मैंने रातके पहरेमें पुलिसके सिपाहियोंकी संख्या बढ़ा दी हैं; परन्तु मेरा सुझाव है कि आप अपने सदस्योंको निजी चौकीदार रखनेकी सलाह दे दें, क्योंकि मेरे पास इतने थोड़े आदमी हैं कि मेरे लिए आग लगानेपर तुले हुए व्यक्तिसे पूरी तरह सुरक्षाका आश्वासन देना असम्भव है।'
>
> इसका यह उत्तर भेज दिया गया था कि गोरे व्यापारियोंकी दूकानोंको कोई खतरा होनेका खयाल नहीं है।

अग्निशामक दलके कप्तान जॉन्स इस सावधानीके लिए समाजकी ओरसे धन्यवादके पात्र हैं, परन्तु व्यापारमण्डलने उस पत्रका, जिसमें उससे निगरानी रखनेका अनुरोध किया गया था, जो जवाब दिया है, उसके बारेमें हम क्या कहें? मण्डल खूब अच्छी तरह जानता है कि गोरे व्यापारियोंकी दूकानोंको कोई खतरा नहीं है और इसलिए उसका खयाल है कि

भारतीय दूकानोंमें द्वेषभावपूर्ण इरादेसे आग लगाई जाये तो भी उसके बारेमें दौड़-धूप करना मण्डलका काम नहीं।

हमें मालूम हुआ है कि पीटर्सबर्गमें भी एक ऐसी ही घटना हुई है। वहाँ एक भारतीय दूकान जला दी गई है। हमारे पास अभीतक पूरे तथ्य नहीं आ पाये हैं, परन्तु हम ट्रान्सवाल सरकारका ध्यान इस विचित्र बातकी तरफ खींचना चाहते हैं कि दोनों स्थानोंपर ये घटनाएँ एक साथ हुईं। पॉचेफस्ट्रूममें पहरेदार-संघकी क्रियाशीलताके साथ-साथ एक भारतीय दूकानमें आग लगती है। पीटर्सबर्गमें श्वेत-संघकी रचनाके बाद तुरन्त ही एक भारतीय दूकान जलती है और हमारे खयालसे इन दोनों स्थानोंकी यह प्रवृत्ति सर आर्थर लाली और लॉर्ड मिलनरके खरीतोंका सीधा परिणाम है। उनसे शरारतियोंको असाधारण प्रोत्साहन मिला है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१९. ट्रान्सवालके गरम स्नानागार

ट्रान्सवालके वार्मबाथ्स [गरम स्नानागारों]–से एक भाईने हमें गुजरातीमें शिकायत भेजी है कि अधिकारी ब्रिटिश भारतीयोंको इस प्रसिद्ध रोग-निवारक जलके उपयोगकी सुविधाएँ नहीं देते। वह कहता है कि यदि कोई भारतीय उसका उपयोग करना चाहता है तो उसे सिर्फ काफिरोंके लिए अलग रखे गये स्नानागारोंमें चले जानेका निर्देश कर दिया जाता है। यह मालूम होता है कि उसने भारतीयोंके लिए एक स्थान बनानेका प्रस्ताव रखा था, लेकिन उसका स्वागत नहीं किया गया। हमें विश्वास है कि अगर हमारे संवाददाताके कथनमें कुछ भी सचाई है तो सरकार इस कठिनाईका तुरन्त उपाय करेगी और जो भारतीय इस जलका उपयोग करना चाहें उनको उचित सुविधा प्रदान करेगी।

हम ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघका ध्यान इस पत्रकी ओर आकर्षित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२०. केपके भारतीय

हम एक अन्य स्तम्भमें केप-सरकार द्वारा केप टाउनके ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री श्री ए० कादिरको लिखित पत्र छापते हैं। यह उस शिकायतके सम्बन्धमें है जो संघने प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अमलके बारेमें की थी। पत्र काफी शिष्टतापूर्ण है, परन्तु उसके पक्षमें इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। सरकारने एक भी महत्त्वपूर्ण बातमें कोई रियायत नहीं दी है और उसी कानूनकी आड़ ली है जिसके विरुद्ध राहत माँगी गई थी। संघने एक बहुत ही युक्त प्रार्थना की थी कि स्थानीय भारतीय व्यापारियोंको अपने नौकर भारत लौट जानेपर बदलेमें दूसरे नौकर भारतसे लानेकी कुछ सुविधा दी जाये। उत्तर यह दिया गया है कि ऐसा नौकर, यदि कोई यूरोपीय भाषा नहीं जानता तो, उपनिवेशमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। ऐसा ही उत्तर उपनिवेशमें बसे हुए व्यक्तियोंको उनके नाबालिग भाइयोंके सम्बन्धमें दिया गया है, परन्तु उत्तरमें प्रश्नको केवल टाला ही गया है। जैसा कि पत्रके प्रारम्भिक

अनुच्छेदमें कहा गया है, यदि सरकार वास्तवमें इस बातके लिए उत्सुक है कि "कानूनका अमल इस तरह हो जिससे किसी व्यक्ति या समाजके किसी विशेष समूहको, चाहे वह किसी भी वर्ग, रंग या धर्मका हो, अनावश्यक कष्ट न हो" तो सरकारको वांछित दिशामें राहत देनेकी काफी सत्ता प्राप्त है। केपके कानूनकी एक धारामें विशेष छूटकी गुंजाइश रखी गई है और निश्चय ही हमारा यह विचार है कि अगर यहाँ बसे हुए व्यापारियोंका कुछ भी खयाल किया जाये तो उन्हें बाहरसे नौकर लानेका हक होना चाहिए। नौकरोंको किसी यूरोपीय भाषामें लिखना आता हो या न आता हो, उन्हें प्रतिबन्धोंके साथ और नागरिकताके पूरे अधिकार दिये बिना उपनिवेशमें प्रवेशकी इजाजत दी जा सकती है। परन्तु यदि पूरा निषेध लागू किया जाता है तो उसका यह अर्थ होता है कि यहाँ बसे हुए भारतीयोंकी स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विषम होती जायेगी और चूँकि देशी नौकर मिलना बन्द हो जायेगा, जैसा कुछ समयमें होना निश्चित है, हम आशा करते हैं कि ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री इस मामलेको तबतक न छोड़ेंगे जबतक पूरा न्याय नहीं किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२१. एक अच्छा उदाहरण

हम श्री उमर हाजी आमद झवेरीका हार्दिक स्वागत करते हैं जो देशसे लम्बे अरसेतक दूर रहने और यूरोप तथा अमेरिकाके लम्बे भ्रमणके बाद लौटे हैं। हमारे खयालसे श्री उमरने इन महाद्वीपोंका दौरा करके बहुत बुद्धिमानी की है। हमारे व्यापारी इन देशोंमें जितना अधिक जायेंगे, वे व्यापार और जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त कर सकेंगे। केवल तफरीह करनेके लिए नहीं, बल्कि ज्ञानप्राप्त करने और विचारोंको उदात्त बनानेके लिए यूरोप और अमेरिकाकी यात्रा करनेके बाद, मनुष्य अनेक कठिनाइयोंका सामना कर सकता है, खास तौरसे ऐसी कठिनाइयोंका जैसी दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सामने दरपेश हैं। और श्री उमरने इस बारेमें दूसरे व्यापारियोंके लिए अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। हमें आशा है, श्री उमर अपनी यात्रामें प्राप्त ज्ञानका पूरा उपयोग करेंगे और, जहाँ भी जरूरत होगी, उसपर अमल करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२२. एक बेअंग्रेजियत अंग्रेज मजिस्ट्रेट

एक विश्व-यात्री, जो अपनेको "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते हैं, नेटालमें भ्रमण कर रहे हैं। उन्होंने *नेटाल मर्क्युरीके* द्वारा जनताके सामने अपने संस्मरण पेश किये हैं। प्रशंसात्मक स्वरमें डर्बनका वर्णन करनेके बाद "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते हैं

> लेकिन इसके बावजूद अपनी दृष्टिसे देखनेपर डर्बनकी जानकारीके साथ-साथ मुझे एक-दो खेदजनक बातोंकी जानकारी भी हुई है। इस गोरोंके शहरमें भारतीयों और अरबोंको इतना प्रमुख स्थान कैसे प्राप्त हो गया? अवश्य ही वे हमारी तरह सम्राटके प्रजाजन हैं, परन्तु फिर भी गोरा गोरा ही है और काला काला ही। कह नहीं सकता, यह कहानी है या सत्य — किन्तु मुझे बताया गया है कि डर्बनके एक अत्यन्त भव्य भण्डारका मालिक अपने कोनेपर स्थित एक छोटे अरब सौदागरकी दूकानको सम्मानपूर्वक प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने वकीलको यह पूछनेके लिए भेजा कि क्या वह उसका व्यवसाय खरीद सकता है और यदि हाँ, तो किस कीमतपर। अरबने उत्तर दिया कि अभी उसकी इच्छा अपना कारोबार बेचनेकी नहीं है, परन्तु यदि पड़ोसी अपनी दूकानकी कीमत बताये तो वह उसे खरीदनेके बारेमें तुरन्त विचार करेगा।

दूसरी बात जिसपर लेखक खेद प्रकट करता है, यह है कि डर्बनकी पुलिसमें काफिर क्यों रखे जायें। अगर यात्रीने डर्बनके इतिहासकी काफी पूछ-ताछ की होती तो शायद उन्हें पता चल गया होता कि जैसा वे कहते हैं, डर्बन यद्यपि गोरोंका शहर है, फिर भी भारतीयोंकी उपस्थितिमें ही वह सुन्दर और भव्य बना है। उन्हें मालूम हो गया होता कि "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" जैसे यात्रियोंको जीवनकी सारी आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकें, इसलिए डर्बन नगर-निगम गिरमिटिया भारतीयोंको एक बहुत बड़ी संख्यामें नौकर रखता है। अब रही दूसरी खेदजनक बात। बेचारे काफिर सिपाहीके बचावमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उसीकी उपस्थितिसे डर्बन अपराधोंसे अपेक्षाकृत अधिक मुक्त है। इसका कारण यह नहीं कि काफिर पुलिस यूरोपीय पुलिससे अधिक दक्ष है, बल्कि यह है कि नगर कम वेतनके काफिरोंको नियुक्त न करे तो उसके लिए आवश्यक संख्यामें पुलिस रखना असम्भव है। नगरकी पुलिसमें भारतीय और काफिर न होते तो शायद डर्बन ही न होता — फिर चाहे वह गोरोंका हो या कालोंका। तब ऐसी अब्रिटिश ईर्ष्या क्यों? अथवा दक्षिण आफ्रिकाके जलवायुमें ही कुछ ऐसा तत्त्व छिपा हुआ है, जिसके प्रभावमें मनुष्य अपनी परम्पराओंको भूल जाता है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२३. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर ३, १९०४

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

आपकी व्यस्तता जाननेके कारण मैंने जानबूझकर आपको समय-समय पर नहीं लिखा है, किन्तु कांग्रेस अधिवेशनकी निकटताके कारण अब ऐसा करना सम्भव नहीं है और मैं परिस्थितिके सम्बन्धमें लंदनमें प्रकाशित सरकारी रिपोर्टकी एक प्रति इसके साथ भेज रहा हूँ। यह केवल ट्रान्सवालके बारेमें है और सारा जोर ट्रान्सवालकी स्थितिकी ओर ही लगाना है। समस्त आशाओंके विपरीत लॉर्ड मिलनर, जो युद्ध प्रारम्भ होनेके समय ब्रिटिश भारतीय और अन्य पीड़ितोंके पक्षपाती थे, एकदम उलट गये हैं। यह उनके खरीतेसे स्पष्ट है। युद्धके पहले ट्रान्सवालमें भारतीयोंको जो थोड़े-बहुत अधिकार प्राप्त थे, उनसे भी वे उन्हें वंचित करनेके लिए बिलकुल तैयार हैं। मैं खरीतेके उत्तरमें ब्रिटिश भारतीय संघका आवेदन नत्थी कर रहा हूँ। इससे प्रकट होगा कि भारतीय किस सीमातक जानेके लिए उद्यत हैं। उसमें आप देखेंगे कि वे अचल सम्पत्तिपर अधिकारके बदलेमें भारतीय प्रवासपर प्रतिबन्ध और स्थानीय अधिकारियों द्वारा परवानोंका नियमन माननेके लिए राजी हैं, जो यूरोपीयोंकी लगभग समूची माँग है। चूँकि सरकार भेदपूर्ण विधानके सिद्धान्तको प्रतिष्ठित करना चाहती है, मुझे भय है कि केवल इसीलिए प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। ब्रिटिश भारतीय संघका यह कथन है कि विधान जैसा भी हो, सबपर लागू होना चाहिए। ट्रान्सवाल सरकार ऐसा नियम बनाना चाहती है जो सिर्फ एशियाइयोंपर — भले ही वे ब्रिटिश प्रजा हैं, या नहीं हैं — लागू हो। जैसा कि आप जानते हैं, ऐसा विधान बनानेकी अनुमति स्वशासित उपनिवेशोंको भी नहीं दी गई है, उदाहरणार्थ, केप और नेटाल; यद्यपि इन दोनों जगहोंमें सरकारने ऐसा विधान बनानेका विचार किया था।

सरकारी रिपोर्टमें सर मंचरजीके आवेदन (वक्तव्य – क) में तीन पौंडका पंजीयन-शुल्क वार्षिक बताया गया है। वास्तवमें वह एक ही बार दिया जाता है।

परवानोंके बारेमें, परीक्षात्मक मुकदमेके[1] बादसे भारतीयों और यूरोपीयोंकी स्थिति एक हो गई है।

फोटोदार पासोंका चलन खत्म कर दिया गया है।

ऑरेंज रिवर कालोनीमें कानून अत्यधिक कड़ा है और अभीतक उसे हटानेके लिए कुछ नहीं किया गया है।

नेटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम बहुत अधिक कठिनाई उत्पन्न कर रहा है। वह स्थानीय अधिकारियोंको मनमानी ताकत देता है किन्तु सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार नहीं देता।

मुझे आशा है कि आप *इंडियन ओपिनियन* पढ़ते रहे हैं जो एकदम ठीक-ठीक जानकारी देता है।

१. *हबीब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल सरकार*: देखिए "मुबारक विजय", मई २८, १९०४।

टाइम्स और लंदनके दूसरे समाचारपत्रोंका खयाल है कि ट्रान्सवालमें कठोर बरतावका असर भारतीयोंके मनपर बहुत खराब होगा और उससे भारतीयोंकी राजभक्तिपर बहुत दुष्प्रभाव पड़ेगा। इससे प्रकट है कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्यायके लिए भारतमें मुखर और लगातार आन्दोलन होना चाहिए। अतएव मैं सोचता हूँ कि अबतक इस विषयपर जितना ध्यान दिया गया है, कांग्रेसको उसपर उससे अधिक ध्यान देना चाहिए और दुर्व्यवहारको जारी रखनेका विरोध करते हुए सारे भारतमें आम सभाएँ भी होनी चाहिए।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आपका उत्तर पाकर बहुत प्रसन्नता होगी।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४१०३) से।

२२४. जोहानिसबर्गकी पृथक् बस्ती

हम अन्यत्र जोहानिसबर्गकी अलग बस्तीके अति विवादग्रस्त प्रश्नपर लोक-स्वास्थ्य समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित कर रहे हैं। हमारे पाठकोंको याद होगा कि यह लोक-स्वास्थ्य समितिकी चौथी रिपोर्ट है और इसमें समितिकी सारी मक्कारी खुल गई है और वह अपने असली रूपमें प्रकट हो गई है। यह रिपोर्ट अप्रत्यक्ष रूपसे सर आर्थर लालीके इस दावेका पूरा जवाब है कि एशियाई *बाजारोंके* स्थानोंका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और उनमें वतनी और यूरोपीय दोनोंके व्यापारिक विकासकी गुंजाइश है। पहले तो लोक-स्वास्थ्य समितिने मलायी बस्तीके बहुत पास ही एक स्थान निश्चित किया था। फिर उसने उस स्थानकी सिफारिश की जिसको बोअर-सरकारने चुना था और अब उसने वह जगह तय की है जो प्लेग फैलनेके समय पृथक्-शिविरके रूपमें इस्तैमाल की गई थी और जो जोहानिसबर्गसे तेरह मील दूर स्थित है। यदि समितिकी सिफारिशोंपर अमल किया गया तो लगभग पाँच हजार भारतीय, जिनमें कुछ पुराने व्यवसायियोंके अलावा सब फेरीवाले और व्यापारी शामिल हैं, उसी स्थानमें हटा दिये जायेंगे। और इसके कारण बताते हुए समितिका कहना है:

> यदि वर्तमान स्थितिको जारी रहने दिया गया तो कुछ प्रकारके उद्योग -- उदाहरणार्थ छोटे व्यापारियों और दस्तकारोंके उद्योग -- जिनसे अन्यथा काफी बड़ी संख्यामें यूरोपीयोंको रोजगार मिलता, अनिवार्य रूपसे एशियाइयोंके हाथोंमें चले जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप स्वावलम्बी यूरोपीय आबादीके विकासमें बहुत बाधा आयेगी।"

यह आश्चर्य है कि जो दलीलें पहले कभी नहीं सोची गईं, वे अब ढूंढ़-ढूंढ़ कर ऐसी नीतिके समर्थनमें पेश की जा रही हैं जो खुले शब्दोंमें क्रमशः जब्तीकी नीति है। हम खण्डनके जरासे भी भयके बिना कहते हैं कि जोहानिसबर्गमें कोई भारतीय दस्तकारवर्ग है ही नहीं। यह सच है कि थोड़ेसे उपेक्षित बढ़ई और उनसे भी कम ईंट-पथेरे हैं। परन्तु वे किसी भी तरहकी प्रतिस्पर्धामें नहीं पड़ना चाहते। जोहानिसबर्गके भारतीय वहाँ कमसे-कम १८९६ से रह रहे हैं, क्योंकि उसी समय जनगणना की गई थी और उनकी आबादी अब भी लगभग उतनी ही है जितनी कि उस समय थी। फिर भी भारतीय किसी भी क्षेत्रसे यूरोपीयोंको निकालनेमें समर्थ नहीं हो सके

हैं। गोरोंका जोहानिसबर्ग आज भी गोरोंका ही है, और इतनेपर भी लोक-स्वास्थ्य समितिको अचानक पता लगा है कि भारतीय आबादीकी उपस्थितिसे "स्वावलम्बी यूरोपीय आबादीके विकासमें बहुत बाधा आयेगी," यद्यपि यूरोपीय आबादी सतत बढ़ रही है, जब कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशके दुरुपयोगके कारण भारतीयोंकी आबादी घट रही है और अवश्य ही घटती जायेगी। समितिके पक्षमें जनगणनाके जो आँकड़े पेश किये गये हैं वे बिलकुल भ्रमोत्पादक हैं, और इंग्लैंडमें ही प्रचारित करनेके उद्देश्यसे दिये जा सकते थे, क्योंकि स्थानीय लोगोंको तो शायद उनसे गुमराह नहीं किया जा सकता। यह बयान गलत है कि ट्रान्सवालकी रंगदार आबादी गोरी आबादीसे पहले ही से ७७.८३ और २२.१७ के अनुपातमें अधिक है। हमें मानना होगा कि जोहानिसबर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति जैसी प्रतिनिधि संस्थाकी तरफसे ऐसी गलत-बयानीके लिए हम तैयार नहीं थे। ट्रान्सवालकी विशाल वतनी आबादी और रंगदार आबादीमें क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह हमारी समझमें नहीं आता और अगर लोक-स्वास्थ्य समितिने केवल भारतीयोंका ही विचार करनेका कष्ट किया होता, जिनके लिए अलग बस्ती कायम की जायेगी, तो यह निर्णयात्मक रूपमें सिद्ध किया जा सकता था कि भारतीयों द्वारा यूरोपीयोंका स्थान ले लेनेका भय काल्पनिक है, क्योंकि जोहानिसबर्गमें ८४,००० गोरोंके मुकाबिलेमें भारतीय आबादी ७,००० से कुछ ही अधिक होगी। और ट्रान्सवालमें जहाँ भारतीयोंकी आबादी १०,००० से कुछ ही अधिक है, वहाँ यूरोपीय आबादी ३,००,००० है। एक ओर भारतीय स्पर्धासे यूरोपीयोंके विनाशकी बात करना और दूसरी ओर अंग्रेज जनताके सामने वतनी आबादीको शामिल करके आँकड़े पेश करना और अनुपातकी भयंकर विषमता दिखाना एक बड़ी सार्वजनिक संस्थाके योग्य नहीं है। और फिर समितिने एक ओर जोहानिसबर्गके और दूसरी तरफ नेटाल और पीटर्सबर्गके बीच तुलनाकी है। यह सर आर्थर लालीकी जैसी तुलनाका दूसरा उदाहरण है। हम विवादके[1] इस पहलूकी पहले ही चर्चा कर चुके हैं और हमने नम्रतापूर्वक यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि यह सारा विवाद भारतीयोंके पक्षमें जाता है। अब समिति निडर होकर कहती है कि यूरोपीय व्यापारमें ब्रिटिश भारतीयोंका बिलकुल कोई हिस्सा नहीं होना चाहिए और "बाजार यूरोपीयोंसे आबाद बस्तीके पास-पड़ोससे बिलकुल अलग रखा जाये।" और इसी कारण समितिने भारतीयोंको ले जाकर डाल देनेके लिए क्लिपस्प्रूटका जंगल चुना है, जहाँ वे आपसमें एक दूसरेसे और थोड़ेसे काफिरोंसे ही व्यापार कर सकते हैं। इसके सिवा और कहीं फेरी या व्यापार नहीं कर सकते। परन्तु काफिर लोग भारतीयोंके ग्राहक नहीं हो सकते, क्योंकि वे ज्यादातर मजदूर हैं। इस कारण उन्हें सुबह जल्दी ही शहर जाना और रातको शायद आठ बजेके करीब लौटना होगा। ऐसी सूरतमें यह सम्भव नहीं होगा कि वे उस समय एशियाइयोंके पास जायें और उनसे खरीददारी करें। वे स्वभावतः अपनी जरूरी चीजें शहरसे खरीदेंगे। गन्दगीका आरोप भी फिर पेश किया गया है। समिति कहती है, "किसी भी प्रकारके देखरेखके तरीकेसे इन लोगोंसे सार्वजनिक स्वास्थ्यके उपनियमोंका पालन कराना असम्भव है।" हम समितिको चुनौती देते हैं कि वह इस कथनका समर्थन आँकड़े देकर करे। हम यह चाहते हैं कि भारतीयोंके विरुद्ध लोक-स्वास्थ्य उपनियमोंके मातहत कितने मुकदमे चलाये गये हैं और कितने मामलोंमें उन्होंने नियमोंका पालन करनेमें गफलत की है, यह आँकड़े देकर बताया जाये। जहाँतक हमें मालूम है, और हमें जोहानिसबर्गके भारतीयोंकी कुछ जानकारी है, हमें बड़ा आश्चर्य होगा यदि पूरे सालमें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध छः मुकदमे भी चलाये गये हों। और हम दावेसे कह

१. देखिए "ट्रान्सवाल", सितम्बर १०, १९०४ और "कुछ और बातें: सर आर्थर लालीके खरीतेके विषयमें," सितम्बर २४, १९०४।

सकते हैं कि शायद ही किसी मामलेमें एक ही आदमीपर दुबारा मुकदमा चलाया गया होगा। सफाई-दारोगोंने दक्षिण आफ्रिकाभरमें यह बात जोर देकर कही है कि भारतीय सीधे होते हैं और कानूनी आज्ञाओंके पालनके लिए तैयार रहते हैं। समिति कहती है: हालमें हुए प्लेगके प्रकोपसे और उनसे सम्बन्धित घटनाओंसे यह साबित हो गया है कि खुद शहरके भीतर स्थित बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण मुश्किल है।" किन्तु डॉ० पेक्सने अपनी रिपोर्टमें कहा है कि भारतीय बस्तीके गिर्द सफलतापूर्वक घेरा डाल कर प्लेग जड़से मिटा दिया गया। इसलिए या तो उनका कहना गलत था या लोक-स्वास्थ्य समितिका कहना गलत है। डॉ० पेक्सको उनके शानदार कामपर बधाई दी गई है। और अब यह अप्रत्यक्ष अर्थ लगाना उनका अपमान करना है कि नगरके भीतर स्थित होनेके कारण बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण असम्भव था। हम लोक-स्वास्थ्य समितिके इस लापरवाहीसे दिये गये बयानका भी खण्डन करते हैं कि भारतीय खास तौरपर चेचकके शिकार होते हैं। नेटालका अनुभव बताता है कि बात ऐसी नहीं है। और प्लेगके बारेमें भी हमें इस आरोपपर बहुत आपत्ति है कि "भारतीयोंको अवश्य ही प्लेग अधिक होता है।" प्लेग, जो भारतीय बस्तीमें शुरू हुआ और जिसके लिए लोक-स्वास्थ्य समिति ही जिम्मेदार थी, उस बस्तीतक ही सीमित रहा और यदि उस बस्तीके बीमारोंकी संख्याको निकाल दिया जाये तो पता चलेगा कि भारतीय दूसरोंकी अपेक्षा प्लेगके अधिक शिकार नहीं हुए। लोक-स्वास्थ्य समितिका अन्तिम कारण — गरीब गोरों और गरीब भारतीयोंके बीच सामाजिक सम्पर्क — एक तुच्छ तर्क है। प्रथम तो दोनोंमें बिलकुल कोई सामाजिक सम्पर्क नहीं है। दूसरे, हम यह जानना चाहेंगे कि गोरोंके सामाजिक ह्रासमें भारतीयोंकी उपस्थितिसे क्या मदद मिली है, भारतीय समाजका कौनसा खास दोष है जो गोरोंने पिछले १७ वर्षोंमें उनसे ग्रहण किया है। और दोनों वर्गोंके साथ-साथ रहनेकी घटना किसी भी तरह जोहानिसबर्गके लिए विशेष नहीं है। वे केप टाउन, किम्बरले, डर्बन, मॉरिशस, लंका और भारतमें साथ-साथ रहते रहे हैं। भारतीयोंके विरुद्ध यह आरोप कहीं भी नहीं लगाया गया; कहीं भी भारतीयोंको बिलकुल अलग रख देनेके पक्षमें यह दलील नहीं दी गई। इससे अच्छा तो यही होगा कि इस तरह धीरे-धीरे उत्पीडनके बजाय, जैसा कि लोक-स्वास्थ्य समितिने प्रस्ताव किया है, एक बार ही कानून बनाकर भारतीयोंको हमेशाके लिए जोहानिसबर्गके बाहर निकाल दिया जाये। यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे इस देशसे खदेड़ दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी, लेकिन वह संखियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कहीं अधिक सदय होगी। और यह जहर है, समाजको उसकी प्रवृत्तियोंके क्षेत्रसे मीलों दूर एक बाड़ेमें खदेड़ देना और फिर पोषणके अभावमें मरने देना।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०४

२२५. विक्रेता-परवाना अधिनियम

नेटाल परवाना अधिनियम अभीतक नेटालके भारतीय दूकानदारोंके सिरोंपर डेमाक्लीजकी तलवारकी तरह लटक रहा है। जबतक यह अ-ब्रिटिश विधि उपनिवेश विधि संहिताको कलंकित कर रही है तबतक भारतीय दूकानोंका व्यापारिक सम्पत्तिके रूपमें कोई मूल्य नहीं है। श्री हुंडामलको, जो बड़े पुराने व्यापारी हैं और जिनका सारा व्यापार ऊँचे तबकेके यूरोपीयोंमें है, डर्बनके एक प्रमुख बाजारकी दूकान खाली करनेकी सूचना दी गई। वे वेस्ट स्ट्रीटकी दूसरी दूकानमें चले गये। अगले ३१ दिसम्बरतक व्यापार करनेका बदस्तूर परवाना उनके पास है। इसलिए परवाना अधिकारी द्वारा स्थान-परिवर्तनका पंजीयन करनेतक उन्होंने व्यापार बन्द नहीं किया। अधिकारीने स्थान-परिवर्तनके पंजीयनसे इनकार कर दिया। तब भी वे व्यापार करते रहे और उन्होंने अपीलकी सूचना दायर की। न्यायालयमें ऐसी सूचना, स्थितिको जैसा-का-तैसा छोड़ देती है। किन्तु परवाना-अधिकारीको निरंकुश सत्ता है; श्री हुंडामलका व्यापार जारी रखना उसे अपनी शानके खिलाफ लगा। इसलिए उसने उन्हें न्यायाधीशके सामने पेश किया। हमारी विनम्र रायमें न्यायाधीशने एकदम अनुचित निर्णय किया कि प्रतिवादीने अधिकारियोंकी उपेक्षा करके व्यापार जारी रखा है और उसपर २० पौंडका अधिकतम जुर्माना कर दिया। अपील दायर की गई है और इसलिए हम इस असाधारण निर्णयपर और कुछ कहनेसे अपनेको रोक रहे हैं। हम इतना ही कहेंगे कि यदि निर्णय सही है तो सम्राटकी किसी भी प्रजाको देशके कानूनपर अपनी समझके अनुसार चलनेका साहस नहीं हो सकता। हम सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं क्योंकि यह उदाहरण बताता है कि जबतक कानून नहीं बदला जाता तबतक नेटालके गरीब भारतीय व्यापारियोंको चैन नहीं मिल सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०४

२२६. प्रीतिभोजमें भाषण

यह उद्धरण गांधीजी और डर्बनके भारतीय समाजके अन्य नेताओंके सम्मानमें दिये गये एक प्रीतिभोजके विवरणसे लिया गया है:

[अक्टूबर १०, १९०४]

श्री गांधीने आत्म-बलिदानका विवेचन करके जापानके सम्राट और लोगोंका उदाहरण देकर बताया कि किसी भी राष्ट्रकी उन्नति उसके व्यक्तियोंके आत्मत्यागपर आधारित है।

उपस्थित सज्जनों द्वारा इस विषयपर कुछ प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने उनका खुलासा भी किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०४

२२७. हुंडामलका परवाना

इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मुकदमेका अभीतक फैसला नहीं हुआ है। हमने अपने पिछले अंकमें इसके विषयमें लिखा था[1]; तबसे अबतक वह दूसरे दौरमें पहुँच गया है। यह स्मरणीय है कि प्रतिवादी हुंडामलपर जब न्यायाधीशके सामने परवानेके बिना व्यापार करनेका आरोप लगाया गया तो उसने दर्खास्त की कि इस मामलेको तबतक स्थगित कर दिया जाये जबतक नगर-परिषद उसकी अपीलका फैसला नहीं कर देती; किन्तु वह व्यर्थ गई। श्री हुंडामलने अपना परवाना ग्रे स्ट्रीटसे वेस्ट स्ट्रीटमें बदलनेकी प्रार्थना की थी, जो परवाना अधिकारीने नामंजूर कर दी थी। उक्त अपील उसी नामंजूरीके विरुद्ध थी। शुक्रवार ७ अक्तूबरको अपील सुनी गई और रस्मी सुनवाईके स्वांग और प्रार्थीकी ओरसे श्री विन्सके सुन्दर भाषणके बाद खारिज कर दी गई। परवाना-अधिकारीने अपनी इनकारीके ये दो सबब दिये कि प्रार्थीके पास पहलेसे ही पाँच परवाने हैं और वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाई व्यापारियोंकी संख्यामें वृद्धि करना अभीष्ट नहीं है। मालिकोंकी नौकरी बजानेके उत्साहमें परवाना-अधिकारीने जो मिथ्याचार करना उचित समझा उसका श्री बर्नने, जो परिषदके एकमात्र वकील सदस्य है, हिम्मतके साथ परदा फाश किया। वे परवाना-अधिकारीसे यह कबूल करा सके कि पाँच परवाने दूकानोंके परवाने नहीं, फेरीके परवाने थे। जब यह पूछा गया कि इस बातका उल्लेख कारण-वक्तव्यमें क्यों नहीं किया गया तो परवाना-अधिकारीने कहा कि उसे इसकी जरूरत महसूस नहीं हुई। श्री बर्नका विचार है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यके उल्लेखको छोड़नेमें परिषद और जनताको गुमराह करनेके प्रयत्नकी तीव्र गंध आती है। परवाना अधिकारीने जो दूसरा कारण दिया, हम अत्यन्त विनम्रभावसे कहते हैं कि वह कम लज्जाजनक नहीं था। वेस्ट स्ट्रीटमें लगभग १०० यूरोपीय भण्डारोंके मुकाबिलेमें भारतीय भण्डार केवल आठ हैं। इसलिए यदि यह केवल अनुपातका प्रश्न हो तो यह कहना बहुत कठिन है कि उस सड़क-पर भारतीय परवानोंपर सम्पूर्ण निषेध लागू करनेकी घड़ी आ गई है। किन्तु परिषदके सामने श्री विन्सने जो तथ्य असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध किये उनसे स्पष्ट होता है कि इस मामलेमें कितनी बेदर्दीसे बेइन्साफी की गई है और कितने खुले तौरपर प्रश्न जातीय आधारपर तय किया गया है। क्योंकि यह प्रमाणित कर दिया गया है कि प्रार्थीने सन् १८९५ से जब-तब डर्बनमें व्यापार किया है, वह भारतीय और जापानी रेशम तथा नफीस चीजें बेचता है, इस व्यापारकी यूरोपीय भण्डारोंसे स्पर्धा नहीं है, उसकी सारी ग्राहकी यूरोपीयों और सो भी ऊँचे तबकेके यूरोपीयोंमें है, जिस मकान या जायदादपर उसका कब्जा है, वह सुन्दरता और स्वच्छताकी दृष्टिसे सर्वथा ठीक है, वह स्वयं संस्कृत है और भारतीय समाजमें ऊँचा दर्जा रखता है, लगभग एक दर्जन यूरोपीय पेढ़ियोंने उसे इस विवादास्पद क्षेत्रमें व्यापार करनेकी अनुमति पानेके योग्य और हर तरह ठीक व्यक्ति कहा, चालीससे अधिक यूरोपीय सज्जनोंने उसके आवेदनका जोरदार समर्थन किया। यह प्रमाणित किया गया कि वह वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करता भी था, किन्तु पट्टेकी अवधि समाप्त हो जाने और मालिकको स्वयं मकानकी जरूरत होनेके कारण उसे वह छोड़ना पड़ा था। अतः जीविकोपार्जनका अवसर छीने जानेका एकमात्र आधार उसकी चमड़ीका रंग हुआ। हमें आश्चर्य नहीं कि श्री विन्सने इसका आवेगयुक्त विरोध किया कि जो बात किसी यूरोपीयमें होनेपर

१. देखिए "विक्रेता-परवाना अधिनियम," अक्टूबर ८, १९०४

प्रशंसनीय व्यापारिक जोखिम मानी जाती, वही उसके अर्जदारोंके लिए अयोग्यताका कारण मानी गई। यहाँ यह ध्यानमें रखना है कि भारतीय गृह-स्वामीके हितका कोई विचार नहीं किया गया। अक्सर उसे यह ताना मारा जाता है कि वह समयकी गतिके साथ कदम नहीं रखता और केवल झोपड़ियाँ बनाता है। अब प्रस्तुत उदाहरणमें, उसने भण्डार बनानेमें कई हजार पौंड खर्च किये और भण्डार आकृतिकी शोभनीयतामें भी वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे भण्डारोंसे होड़ कर सकता है। और आश्चर्य है, उसके इस साहसका नतीजा निकला सर्वनाशकी संभावना, और जो श्रेष्ठ पश्चिमीय स्तरके मुताबिक रहनेका प्रयत्न कर रहा है उस अर्जदारके दिवालिया हो जानेकी सूरत। और यह उन मामलोंमें से एक है जिनके बारेमें स्वर्गीय श्री एस्कम्बका खयाल था कि इन्हें परवाना अधिनियम कभी हाथ भी नहीं लगा सकता। उन्होंने इसे पेश करनेके समय जो भाषण दिये थे, हम नीचे उनके अंश और तत्सम्बन्धी स्वर्गीय सर हेनरी बिन्सकी भविष्यवाणी उद्धृत कर रहे हैं। अन्यायकी इस कथाके अन्य पहलुओंपर हमें आगामी अंकमें विचार करना पड़ेगा क्योंकि हमें मालूम हुआ है कि अपीलकर्त्ता सर्वोच्च न्यायालयमें परिषदके स्थानान्तरणको नियन्त्रित करनेके अधिकारका प्रश्न उठा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०४

२२८. श्री मदनजीतका सम्मान

इंडियन ओपिनियन के मालिक श्री मदनजीतकी भारत-यात्राके समय उनको विदाई देनेके लिए डर्बनमें एक समारोह किया गया था। उसमें गांधीजीने एक भाषण दिया था, जिसकी संक्षिप्त रिपोर्ट यह है:

[अक्टूबर १५, १९०४]

श्री गांधीने १८९४ में, जब श्री मदनजीत इस देशमें आये तबसे आजतकके उनके जीवनके बारेमें संक्षिप्त जानकारी दी और उनके धीरज और लगनका बखान किया कि वे किस प्रकार छापेखानेकी आर्थिक स्थितिके विषम होते हुए भी मुश्किलें सहकर तन, मन, धनसे मेहनत करके भारतीयोंके लाभके लिए निकलनेवाले पत्र *इंडियन ओपिनियन*को चलाते रहे हैं। इसके बाद उन्होंने सबको छापेखानेकी कुछ परिस्थितियोंसे वाकिफ किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०४

२२९. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद

नगर-परिषदने लोक-स्वास्थ्य समितिकी बहुत महत्त्वपूर्ण रिपोर्टपर विचार कर लिया है और समितिके दिये हुए क्रियात्मक सुझाव सर्वसम्मतिसे मान लिये हैं। इस बारेमें उसकी यह सर्वसम्मति दुःखजनक है। इसके अन्तर्गत, अनिवार्य पृथक्करण-अध्यादेश स्वीकृत होनेकी अवस्थामें भारतीय और मलायी दोनों ही वतनी बस्तीके नजदीक क्लिपस्प्रूटकी खेतीपर, जो जोहानिसबर्गसे १३ मील दूर है, बसाये जायेंगे। श्री क्विनने प्रस्ताव नगर-परिषदको सौंपते हुए इन आधारों-पर उनको उचित बताया कि भारतीय सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते; यदि काफिर क्लिपस्प्रूट भेजे जाते हैं तो भारतीयोंको भेजनेका तो और भी जोरदार कारण है, क्योंकि उनका पड़ोस काफिरोंसे भी बुरा है; और भारतीय व्यापार भारतीयों और काफिरोंतक सीमित है, इसलिए इतने ज्यादा फासले पर बसा दिये जानेपर भी उन्हें कोई कठिनाई न होगी।

पहली आपत्ति किन्हीं तथ्योंपर आधारित नहीं है। श्री क्विनने समर्थनमें कहा है कि भारतीयोंके खिलाफ मुकदमे भी चलाये जाते हैं तो भी वे फिर अपने पुराने अभ्यासपर वापस आ जाते हैं। हम इन महाशयकी बातका खण्डन करते हैं और सार्वजनिक रूपमें कहते हैं कि किसी भारतीयके खिलाफ सफाईका कोई ऐसा मुकदमा नहीं चला जिसका स्थायी असर नहीं हुआ हो। हम यह भी कहेंगे कि जहाँ भी ठीक तरहसे देखरेख रखी गई है वहाँ भारतीय नियमोंके निहायत पाबन्द साबित हुए हैं। दूर न जाकर हम प्रिटोरियाकी बस्तीका उदाहरण देंगे और हाइडेलबर्गके भारतीयोंकी अवस्था बतायेंगे। पहले मामलेमें निरीक्षण सहृदयतापूर्ण, किन्तु दृढ़ है। इस कारण बस्तीकी सफाई पूरी तरह वैसी है जैसी इन बस्तियोंमें आबाद भारतीयोंकी किस्मको देखते हुए वांछनीय कही जा सकती है। दूसरे मामलेमें भी शहरके बीचोंबीच रहनेवाले भारतीय दूकानदारोंकी सफाई इतनी ही अच्छी है। वक्ताकी उठाई दूसरी आपत्ति पहलीसे कम कमजोर नहीं। क्योंकि यदि भारतीय सफाई-सम्बन्धी नियन्त्रण माननेवाले हैं तो उनको पड़ोसी बनानेमें कोई ऐतराज नहीं हो सकता। उनमें न तो युद्धनृत्य ही होते हैं और न वे काफिर-बीयर ही पीते हैं। तीसरा आक्षेप तथ्योंकी निरी तोड़-मरोड़ है। यह कहना अन्यायपूर्ण है कि भारतीय व्यापार काफिरों और भारतीयोंतक सीमित है। ट्रान्सवालमें शुरू-शुरूमें आकर बसनेवाले भारतीय व्यापारी भारतीयोंमें व्यापार करनेकी दृष्टिसे इस देशमें नहीं आ सकते थे क्योंकि तब भारतीय यहाँ थे ही नहीं और यह सबको मालूम है कि डच लोगों और गरीब श्वेत लोगोंमें भारतीयोंका बड़ा व्यापार है। इस ऐतराजकी तहमें यह महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि क्लिपस्प्रूटकी खेती श्वेत लोगोंके व्यापारके लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती पास होनेका मतलब भारतीयोंको काफिरोंका व्यापार मिलना नहीं है। इसका और कुछ नहीं तो एक सीधा-सादा कारण यह है कि काफिर लोग बस्तीमें केवल रातके समय रहेंगे और शहरसे व्यवसायके समयके बाद लौटेंगे। इसलिए यदि भारतीयोंको इतनी बड़ी दूरीपर बसाना सर्वथा अन्यायपूर्ण है तो मलायी बस्तीके निवासियोंको छेड़ना तो और भी बड़ी बेइन्साफी होगी। सफाईकी दृष्टिसे पुरानी भारतीय बस्तीको रद करनेका कुछ कारण हो सकता है; परन्तु मलायी बस्तीके रहनेवालोंके खिलाफ तो कानोंकान कुछ नहीं कहा गया है। उनमें से अधिकांश लोग, जैसा कि नामसे प्रकट है, मलायी हैं और वे साफ-सुथरे रहनेवाले, परिश्रमी और पूरी तरह वफादार लोग हैं। उस स्थानपर अब कई सालसे उनका कब्जा है। बोअर-राज्यके दिनोंमें उनसे वह जगह छीन लेनेका प्रयत्न ब्रिटिश सरकारकी कोशिशोंके कारण विफल हो गया था; क्या अब ये गरीब लोग उसी ब्रिटिश सरकारके नामपर बातकी बातमें बेदखल कर दिये

जायेंगे और जंगलमें रहनेको मजबूर किये जायेंगे? यह कल्पना ही घृणास्पद है और हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उन लोगोंके, जिनका एकमात्र अपराध उनकी भूरी चमड़ी है, अधिकारोंकी सामूहिक जब्तीमें शरीक नहीं होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०४

२३०. डॉ० पोर्टरका निशाना ठीक ठिकानेपर

शक्तिशाली डॉ० पोर्टर जोहानिसबर्गके कई स्थानोंकी गन्दी हालतपर विद्वत्तापूर्ण प्रतिवेदन लिखनेमें फिर व्यस्त हैं। पहले गन्दे इलाकेकी तरह ही मौजूदा मामलेमें भी उन्होंने जोहानिसबर्गकी उस बस्तीका, जो फैरेरासके नामसे विदित है, अत्यन्त भयंकर और सनसनीदार चित्र खींचा है। उन्होंने नगर-परिषदको अत्यन्त जोरदार शब्दोंमें सूचना दी है कि उनके द्वारा वर्णित इलाकेकी अविलम्ब पूरी सफाई की जानी चाहिए। वे कहते हैं:

> इन इलाकोंमें अनेक घर, झोंपड़ियाँ, कमरे, सहन और गलियाँ हैं जो खराब व्यवस्था, क्षेत्रकी घनी आबादी, ठीक-ठीक सफाईकी सुविधाओंके अभाव और अपनी बहुत बुरी और टूटी-फूटी अवस्थाके कारण आसपासके निवासियोंकी तन्दुरुस्तीके लिए न सिर्फ खतरनाक और हानिकारक हैं, बल्कि आम तौरपर नगरपालिकाके लिए एक बड़ा गम्भीर खतरा भी हैं।

अब, यह स्वीकार किया गया है कि यह इलाका जैसा है वैसा कमसे-कम पिछले दो सालसे पड़ा है। अगर यह इतना गन्दा है, और हम इससे इनकार नहीं करते कि यह इतना गन्दा है, तो मामला इससे पहले हाथमें क्यों नहीं लिया गया? हमें बहुत बड़ा अन्देशा है कि महीनोंतक यह प्रतिवेदन सिर्फ टाउन क्लार्कके दफ्तरकी अलमारियोंमें पड़ा रहेगा और हालत बहुत कुछ वही बनी रहेगी जो आज है, यद्यपि हमें मौजूदा खतरेका सामना करनेके लिए जरूरत शब्दोंकी नहीं, कार्यकी है। बेशक प्रतिवेदन दिलचस्प है और उसे पढ़कर दुःख भी होता है। शायद इसका उद्देश्य यह भी हो कि बूढ़ी औरतें डर जायें और अपने मकानों और आस-पासकी हालतोंके बारेमें सावधान रहें। अगर यह बस्ती इतनी भयंकर रूपमें गंदी है तो इसके लिए अधूरे उपाय उपयुक्त नहीं हैं। इसमें जो इमारतें हैं उन्हें एक क्षणकी देर किये बिना जला देना चाहिए, किन्तु हमें बहुत अन्देशा है कि गन्दे इलाकेके बारेमें जो अनुभव हुआ है वह फैरेरास बस्तीके मामलेमें दुहराया जायेगा। यह जानकारी दिलचस्प होगी कि इस सारे इलाकेकी आबादी १,८१२ है जिसमें से २८८ भारतीय, ५८ सीरियाई, १६५ चीनी, २९५ केपवाले, ७५ काले और ९१९ (या आधेसे अधिक) गोरे हैं। गन्दे बाड़ोंकी आबादीमें २५५ कुली, १७ सीरियाई, १२६ चीनी, १९२ केपवाले, ३१ काले और २४१ गोरे हैं।

इस प्रकार, इस इलाकेमें भारतीयोंकी अपेक्षा गोरोंका दोष अधिक है और नगर-परिषदका सबसे ज्यादा है। और यद्यपि किसी अन्य वर्गके लोगोंकी अपेक्षा गोरोंके विरुद्ध कार्रवाई ज्यादा जरूरी है, फिर भी हमारा क्षण-भरके लिए यह खयाल नहीं होता कि कोई ऐसी बात होगी। इस प्रतिवेदनका उपयोग ब्रिटिश भारतीयोंपर और अधिक निर्योग्यताएँ लगानेके लिए किया जायेगा। लोक-स्वास्थ्य समितिने उनको जोहानिसबर्गसे लगभग १३ मील दूरके इलाकेमें रहनेके लिए मजबूर करनेके उद्देश्यसे इस प्रतिवेदनका उपयोग पहले ही शुरू कर दिया है। नगर-परिषदने

२३४. नेटाल परवाना कानून

श्री हुंडामलका मामला अब केवल व्यक्तिगत प्रश्न नहीं समझा जा सकता; वह ऐसा मामला है जिसमें व्यापक हित निहित हैं। जबतक यह लेख छपेगा तबतक मजिस्ट्रेटके फैसलेके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें की गई अपीलका फैसला शायद हो जायेगा। परन्तु पिछले सप्ताहकी कार्रवाईपर मामूली नहीं, अधिक ध्यान देनेकी जरूरत है। नगर-परिषदके निर्णयके बावजूद, परन्तु वकीलोंकी प्रमुख फर्मकी कानूनी सलाहके अनुसार, श्री हुंडामल नगरमें व्यापार करनेके लिए दिये गये परवानेके बलपर कारोबार चलाते रहे। इसलिए परवाना-अधिकारीने उनके नाम फिर सम्मन जारी किया और उनपर वेस्ट स्ट्रीटके मकानके सम्बन्धमें परवानेके बिना व्यापार करनेका अभियोग लगाया। अभियुक्तने अपीलकी सुनवाई होनेतक कार्रवाई स्थगित रखनेकी अर्जी दी। मजिस्ट्रेटने वह स्वीकार कर ली और अभियोक्ता-पक्षके इस कथनको नही माना कि अभियुक्त अदालतका अपमान करके व्यापार कर रहा है। फिर भी मजिस्ट्रेटने एक अत्यन्त असाधारण आदेश दिया कि अगर अभियुक्त व्यापार करनेकी अनुमति प्राप्त न कर ले तो उसकी दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी जाये।

इसलिए जो चीज उन्होंने एक हाथसे दी उसे दूसरे हाथसे छीन लेनेकी कोशिश की; क्योंकि अगर दूकान बन्द ही करनी थी तो कार्रवाईको स्थगित करनेका क्या महत्त्व हो सकता था? यदि मजिस्ट्रेटको सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बारेमें इतना यकीन था तो उन्होंने कार्रवाई स्थगित ही क्यों की? परन्तु यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इस प्रश्नके सामने महत्त्वहीन हो जाता है कि मजिस्ट्रेटने जो आदेश दिया उसको उसे देनेका कोई अधिकार भी था या नहीं। हमें मालूम हुआ है कि श्री हुंडामलके वकीलोंने मजिस्ट्रेटको लिखित सूचना दी है कि उन्होंने अपने अधिकारसे बाहर काम किया है और अगर दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी गई तो उसके लिए वे व्यक्तिशः जिम्मेदार होंगे। हमारा सदा यह खयाल रहा है कि श्री स्टुअर्ट एक निष्पक्ष, गम्भीर और न्यायपरायण न्यायाधीश हैं। परन्तु हमें बड़े आदरके साथ कहना पड़ता है कि उन्हें जो अधिकार प्राप्त है, उनके सम्बन्धमें उनके ज्ञानपर हमारा विश्वास बहुत हिल गया है। हम यह कल्पना नही कर सकते कि उन्होंने यह काम, जो हमारी नम्र रायमें निर्णयकी एक गम्भीर भूल है, जानबूझकर किया है। क्योंकि, अगर उनके फैसलेपर अमल किया जाये तो उसका असर यह होगा कि हम फिरसे उस मध्य युगमें पहुँच जायेंगे, जिसमें प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रता केवल न्यायाधीशोंकी सनकपर निर्भर रहती थी, और उन न्यायाधीशोंके अधिकार और सत्ता केवल उनकी सद्बुद्धिसे ही मर्यादित होते थे।

किन्तु महान् नगर-परिषद और एक छोटेसे नागरिकके बीच यह अशोभनीय भाव क्यों होना चाहिए? थोड़े दिनतक उस गरीब व्यापारीको न छेड़ा जाये तो, अवश्य ही, इसमें किसी सिद्धान्तको खतरा नही है। रोज चन्द शिलिंगकी बिक्री करके वह उतने ही समयमें वेस्ट स्ट्रीटके दूसरे व्यापारियोंकी आमदनी बहुत नही घटा सकता। उन्होंने उसके विरुद्ध कोई ऐतराज नहीं किया है। हम श्री एलिस ब्राउन और नगर-परिषदके दूसरे सदस्योंसे पूछते हैं कि क्या एक गरीब आदमीको इस तरह सताना उस महान् संस्थाकी शानके अनुरूप है?

व्यापारको नियमित करनेके परिषद्के अधिकारपर हम आपत्ति नही करते। हमने, जब-कभी जरूरत हुई है, भारतीय लोकमतको रास्ता दिखाने और शान्त करनेमें विनम्र सहायता देना सदा अपना विशेष अधिकार समझा है। हमारा खयाल है कि विशेष व्यवसायोंके लिए विशेष इलाके सुरक्षित करना परिषदके लिए सामान्यतः बिलकुल ठीक होगा। परन्तु इस

तरहके सारे संरक्षण, जबतक काफी लचकदार न रखे जायें, अपने ही उद्देश्यको विफल करनेवाले होते हैं। हम भारतीयोंको इस विचारसे सहमत करनेमें परिषदके साथ सहर्ष सहयोग करेंगे कि वेस्ट स्ट्रीट बहुत-कुछ यूरोपीय व्यापारियोंके हाथोंमें रहनी चाहिए। परन्तु एक महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक शर्त यह है कि जो भारतीय वहाँ पहलेसे व्यापार कर रहे हैं उनकी, और भारतीय मकान-मालिकोंकी भी, पूरी तरह रक्षा की जानी चाहिए; और जो भारतीय वेस्ट स्ट्रीटकी बढ़िया दूकानोंकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सफाई और सजावटकी आवश्यकताएँ पूरी करनेको तैयार हैं और जिनका व्यापार मुख्यतः यूरोपीयोंके साथ है, उनका वहाँ व्यापार करना निषिद्ध न किया जाये। अगर यह सच है कि आपत्ति रंगके विरुद्ध नहीं है, और यदि भारतीय लोग यूरोपीयों जैसा स्तर रखें तो वांछनीय नागरिकके रूपमें उनका स्वागत किया जायेगा, तब तो, सचमुच, उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अब हकीकत यह है कि . . . . स्ट्रीट बहुत . . . . हैं[1] और विचाराधीन मामलेमें उपर्युक्त सारी कसौटियोंपर पूरे उतरते हैं। क्या हम नगर-परिषदसे यह अपील नहीं कर सकते कि वह अपने हाथ रोक ले और भारतीयोंके इस सन्देहसे मुक्त हो जाये कि श्री हुंडामलपर मुकदमा चलाकर वह उनको और उनके द्वारा भारतीय दूकानदारों और मकान-मालिकोंको सता रही है। ये सब लोग उत्सुकतापूर्वक उन नाटकीय स्थितियोंको देख रहे हैं जिनमें से यह मामला गुजर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०४

२३५. पीटर्सबर्गके भारतीय

पीटर्सबर्गसे इस आशयका समाचार मिला है कि पुरानी भारतीय बस्तीमें, जो अभी हाल ही में वतनी बस्ती बना दी गई है, रहने और व्यापार करनेवाले भारतीय सरसरी तौरपर बेदखल किये जा रहे हैं। उन गरीबोंके संघर्षका इतिहास बहुत सीधा-सादा है, यद्यपि वह अत्यन्त वेदनापूर्ण है। पिछले साल ही उनके बरबाद कर दिये जानेकी नौबत आ गई थी। तब उन्होंने मामला उच्चाधिकारियोंतक पहुँचाया और पीटर्सबर्गके स्थानिक निकायने कार्रवाई रोक दी। निकायकी सत्ता सीमित थी और उन लोगोंके प्रति और कुछ नहीं किया जा सका। इस सालके शुरूमें निकायने सरकारसे प्रार्थना की कि वह भारतीय बस्तीको उठा दे और उसकी जगह वतनी बस्ती बना दे। भारतीयोंके अधिकारोंका कोई खयाल किये बिना ऐसा ही किया गया। वतनी बस्तीके नियमोंके अनुसार वहाँ वतनियोंके सिवा कोई अन्य व्यक्ति न तो बस सकता है और न व्यापार कर सकता है। इस सत्ताके अधीन निकाय भारतीयोंको बेदखल करनेकी कोशिश कर रहा है। एशियाई-संरक्षक श्री चैमनेके हस्तक्षेपसे निकायकी कार्रवाई अस्थायी रूपसे रोक दी गई थी। परन्तु मालूम होता है, अन्तमें निकायकी जीत हुई। और अब वह अप्रत्यक्ष कानून-निर्माणकी प्रक्रिया द्वारा निर्दोष व्यापारियोंकी सम्पत्ति और अधि-कारोंको जब्त कर लेनेकी स्थितिमें है। इस कार्रवाईको अच्छी तरह स्पष्ट करनेके लिए हमारे पास "जब्ती" के सिवा और कोई शब्द नहीं है। इन व्यापारियोंने अच्छे भंडार बनानेमें हजारों पौंड खर्च किये हैं। हम जानते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें मजदूरी कितनी महँगी है। लोगोंको

१. मूलमें खाली जगहोंमें कुछ शब्द छूट गये हैं। इससे अर्थ अस्पष्ट हो गया है।

कोई मुआवजा नहीं मिलनेवाला है। यह सच है कि वे अपनी इमारतें हटा सकते हैं। निरे नौसिखिये व्यापारी भी जानते हैं कि इस तरह हटाये जानेवाले लोह-लक्कड़की क्या कीमत होती है। निकायकी कार्रवाईसे ये लोग बरबाद हो रहे हैं। और सरकार कहती है कि वह लाचार है!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०४

२३६. स्वर्गीय श्री डिगबी, सी० आई० ई०[1]

श्री विलियम डिगबी, सी० आई० ई० के निधनसे भारतीयोंका एक ऐसा समर्थक उठ गया जिसका स्थान भरना कठिन है। उनका भारतीय पक्षको सामने रखनेका तरीका श्रम और सम्यक् ज्ञानसे भरा हुआ होता था। भारत-विषयक उनका अद्वितीय अनुभव प्रतिद्वन्द्वियोंको उत्तर देते समय सदा उनका अच्छा साथ देता था। वे इंडियन पोलिटिकल एजेंसीके संस्थापक और *इंडिया* पत्रके, जो उत्तम सेवा कर रहा है, प्रथम संपादक थे। किसीका दर्जा कम बताये बिना हम कह सकते हैं कि उक्त पत्रिकाका संपादन दिवंगत श्री डिगबीके मुकाबिलेमें कभी नहीं किया गया है। उन्होंने अपने विपुल लेखनके द्वारा सदा विभिन्न भारतीय प्रश्नोंको जनताके सामने रखा। स्वर्गीय श्री डिगबीके कुटुम्बके शोकमें हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०४

२३७, पत्र: दादाभाई नौरोजीको[2]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर ३१, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन, द० पू० इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

आपका १९ सितम्बरका पत्र मिला। उसके साथ आपने प्लेग फैलनेके बारेमें मेरे पिछले ४ अप्रैलके पत्र[3] से सम्बन्धित श्री लिटिलटनके पत्रकी प्रतिलिपि भी नत्थी की है। मैं जो

१. श्री विलियम डिगबी (१८४९–१९०४) भारतकी आर्थिक समस्याओंके प्रामाणिक जानकार, लेखक: *प्रॉस्परस ब्रिटिश इंडिया* ('समृद्ध ब्रिटिश भारत') और भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके सदस्य थे।

२. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका बड़ा भाग उस पत्रमें उद्धृत किया है जो उन्होंने भारत-मन्त्रीको नवम्बर २२, १९०४ को भेजा था (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस)।

३. यह पत्र उपलब्ध नहीं है; किन्तु बहुत सम्भव है कि गांधीजीने अपने २–४–१९०४ के "प्लेग" शीर्षक लेखकी एक नकल दादाभाई नौरोजीको भेजी हो।

जानता हूं उसे देखते हुए परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरका उत्तर पढ़कर बड़ा दुःख होता है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके नाम एक पत्र[1] लिखनेकी स्वतन्त्रता ले रहा हूँ, किन्तु तबतक यह कह दूं कि मुझे अपने ४ अप्रैलके पत्रसे कुछ वापस नहीं लेना है। और यह लिखते हुए मुझे अपनी जिम्मेदारीका पूरा भान है और मैं यह सोच-समझकर लिख रहा हूँ। साथमें मैं *इंडियन ओपिनियनकी* वह प्रति[2] नत्थी कर रहा हूँ जिसमें डॉ० पोर्टर और मेरे बीचका सारा पत्रव्यवहार दिया हुआ है। मेरी नम्र सम्मतिमें उससे निर्णयात्मक रूपसे यह प्रकट हो जाता है कि प्लेग कैसे फैला। नगर-परिषदकी ओरसे बेदखली सितम्बर, १९०३ में की गई थी और प्लेगका फैलना सरकारी तौरपर २० मार्च, अर्थात् परिषदके कब्जा लेनेके छः महीनेके बाद घोषित हुआ था। जैसा कि पत्रव्यवहारसे मालूम होगा, पहली चेतावनी ११ फरवरी[3] को दी गई थी। १५ फरवरी[4] को निश्चित सुझाव दिये गये ताकि आपत्तिसे बचा जा सके। और मैं अधिकसे-अधिक आदरपूर्वक, फिर भी जितना जोर देकर कह सकता हूँ, यह कहनेका साहस करता हूँ कि उस तारीखके बाद परिस्थितिको सुधारनेके लिए कुछ भी नहीं किया गया। सचमुच पिछली १८ मार्चके बाद भी बस्तीमें प्लेगके बीमार ला-लाकर पटके जा रहे थे और मैंने उसकी सूचना नगर-परिषदको दी थी। १९ मार्चको टाउन क्लार्कने खबर दी कि अस्थायी अस्पतालकी तरह काममें लानेके लिए वह सरकारी गोदाम और एक परिचारिका देनेके सिवा २१ मार्चके पहले न बीमारोंकी जिम्मेदारी ले सकता है और न कोई आर्थिक जिम्मेदारी उठा सकता है। यह स्थान पहले चुंगी-नाका था। तीस स्वयंसेवक वहाँ लगा दिये गये। जगह भलीभांति साफ की गई और भारतीय स्वयंसेवक परिचारकोंने, जो बीमार आ रहे थे, सबको भरती करके रात-दिन काम किया। जब डॉक्टर पेक्स और डॉक्टर मेकेंजी अस्पताल देखने आये तब उनकी समझमें परिस्थितिकी गम्भीरता आई और २० तारीखको उन्होंने ज्यादासे-ज्यादा कारगर कार्रवाई की। इस बीच क्या खाट, क्या दवा-दारू, क्या भोजन — हर चीजका सारा प्रबंध भारतीयोंने किया था। यहाँ यह कहना न्यायोचित ही होगा कि उसके बाद नगर-परिषदने खर्च चुका दिया है। वैसे यह सब अप्रस्तुत है; और यदि मैंने भारतीयों द्वारा किये गये कामपर जोर दिया है तो वह यह दिखानेके लिए है कि मैं कटु अनुभवसे कह रहा हूँ और उसमें आवेगका अभाव नहीं है। यदि साथके पत्रव्यवहारमें पेश आँकड़े सही हैं — भले ही मैंने जो नतीजे निकाले हैं उन्हें स्वीकार नहीं किया गया किन्तु आँकड़ोंको किसीने गलत नहीं बताया — तो मैंने अपने पिछले ४ अप्रैलके पत्रमें जो कहा है, उससे कुछ कम कहता तो वह सत्यके पक्षकी सेवा न होती। मैंने उसमें कहा है कि यदि जोहानिसबर्गकी नगरपालिका घोर उपेक्षा न करती तो प्लेग कभी न फैलता। मार्चकी भयंकर मृत्युसंख्याके लिए हर हालतमें उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए, और किसीको नहीं। परिस्थितिकी गम्भीरता समझने-पर उसने आपत्तिका मुकाबिला करनेमें पैसा पानीकी तरह खर्च किया, इसके लिए अशेष धन्य-वाद; किन्तु उस कामसे भूतकाल तो कदापि नहीं बदला जा सका। यह सत्य है कि बहुत पहले, सन् १९०१ में ही, बस्तीको गंदा घोषित करते हुए लम्बे सरकारी विवरण तैयार कर लिए गये थे, किन्तु फिर भी वह २६ सितम्बर, १९०३ तक उसी स्थितिमें बनी रहने दी गई और उस अवस्थामें प्लेग नहीं फैला। यह विचित्र लग सकता है कि प्लेग उस समय

१. देखिए, अगला शीर्षक।

२. ९-४-१९०४ का अंक; देखिए "पत्र: जोहानिसबर्गके अखबारोंको", अप्रैल ५, १९०४।

३. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी ११, १९०४।

४. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी १५, १९०४।

फैला जब बस्ती पूरी तरह नगर-परिषदके अधिकारमें आ गई, जब वह जो चाहती थी सो पा गई और साथ-साथ उसे बस्तीको नितान्त साफ-सुथरी रखनेका अवसर मिल गया। मुझे भय है कि परम माननीयको प्लेगके उद्भवके सम्बन्धमें एकदम गलत जानकारी दी गई है। मामला खतम हो गया है। भारतीयोंने नाहक कष्ट भोग लिया है; किन्तु मेरे द्वारा कही गई बातें आसानीसे जाँची जा सकती हैं। मेरा खयाल है डॉ० पैक्सका विरोध *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकीयके इस अंशके सन्दर्भमें है: "स्पष्ट है कि डॉ० पैक्सने जब यह कहा था कि दूरस्थ जिलोंमें जो कदम उठाये जा रहे हैं उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोंका उन्मूलन करना अधिक है, तब उन्होंने सच ही कहा था[1]।" डॉ० पैक्सने सचमुच ऐसा कहा हो चाहे नहीं, अखबारोंमें, उन्होंने ऐसा कहा, यह खबर थी। प्रस्तुत उल्लेख अखबारकी खबरके आधारपर किया गया है।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ कि विधान-परिषदके सदस्य और उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरके कथनसे इस दावेकी लगभग पुष्टि हो जाती है कि इस भयानक प्रकोपकी जिम्मेदारी नगर-परिषदपर है।

इस पत्रका आप जो उपयोग उचित समझें, करें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६३)से।

२३८. पत्र: उच्चायुक्तके सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अक्टूबर ३१, १९०४

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त
जोहानिसबर्ग

महोदय,

यदि आप यह पत्र परमश्रेष्ठके सामने रखनेकी कृपा करें तो मैं बहुत आभार मानूँगा।

माननीय श्री दादाभाईने अपने पत्रके जवाबमें श्री लिटिलटनसे प्राप्त पत्रकी एक प्रतिलिपि मुझे भेजी है और उसके साथ, जोहानिसबर्गमें प्लेग फैलनेसे सम्बन्धित पिछली ४ अप्रैलको उन्हें लिखा गया मेरा पत्र भी नत्थी किया है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके खरीतेका एक अंश श्री लिटिलटनने उद्धृत किया है और चूँकि उसमें मेरे द्वारा दिये गये वक्तव्योंका जिक्र है, मैं उसके बचावमें अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करके परमश्रेष्ठका कुछ समय लेनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

परमश्रेष्ठने कहा है:

मैं इस वक्तव्यको पूर्णतः अनुचित मानता हूँ कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी उपेक्षाके बिना हालमें हुए प्लेगका फैलना सम्भव नहीं था। जोहानिसबर्ग परिषदने लापरवाही

१. देखिए "ट्रान्सवालमें प्लेग," ९-४-१९०४।

> **तो अलग परिस्थितिको पहलेसे भाँपकर सचमुच बीमारी होनेके एक वर्षसे भी पूर्व तैयारियाँ करके काफी दूरदर्शिताका परिचय दिया है।**

बीमारीको भाँपकर रीटफॉटीनमें अस्पताल वगैरा बनाकर परिषदने तैयारी की, इससे कभी इनकार नहीं किया गया, किन्तु मैं अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करता हूँ कि एक प्रतिबन्धक उपाय, जो जरूरी था, बिलकुल छोड़ दिया गया, अर्थात् तथाकथित अस्वच्छ-क्षेत्रकी सफाईपर ध्यान नहीं दिया गया।

परमश्रेष्ठने अपने खरीतेमें भी कहा है,

> **बहुत बड़ी हदतक बस्तीके निवासियों और मालिकोंके विरोधके कारण ही उसपर कब्जे और उसकी सफाईमें देर होती गई, यहाँतक कि प्लेग फैल गया।**

मैं नम्रतापूर्वक परमश्रेष्ठका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचना चाहता हूँ कि सरकारी तौरपर प्लेगकी घोषणाके पाँच महीने पहले, अर्थात् पिछले वर्ष २६ सितम्बरको, कब्जा हो चुका था। और इसलिए [बस्तीको] खाली कराना पूरी तरह नगर-परिषदके हाथकी बात थी। सम्बन्धित भारतीयोंका उस दिनसे कब्जा लेने या खाली करानेके प्रति कोई विरोध नहीं था, इतना ही नहीं, वरन् स्वयं मैंने कई बार उनकी ओरसे नगर-परिषद तथा उपनिवेश-सचिव दोनोंसे नई जगहके लिए प्रार्थना की। परमश्रेष्ठको स्पष्टतया यह बताया गया है कि कब्जा प्लेग फैलनेके बाद लिया गया था। क्योंकि परमश्रेष्ठ अपने खरीतेमें आगे कहते हैं:

> **कब्जा लेनेकी तिथितक भारतीय खुदमुख्त्यार थे, इसलिए यह बात, कि बस्तीमें भीड़भाड़ रहनेकी हालतका सबब जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी लापरवाही थी, सत्यकी स्पष्ट तोड़-मरोड़ ही कही जा सकती है।**

अगर कब्जा प्लेगके फैलनेके बाद लिया जाता तो सत्यकी तोड़-मरोड़ करनेका निमित्त बननेका आरोप मैं स्वीकार कर लेता। किन्तु जैसा कहा जा चुका है, तथ्य यह है कि कानूनी और वास्तविक रूपमें भी परिषदने पिछले वर्ष पहली अक्टूबरको कब्जा लिया और अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोंके सुझावके विपरीत तथा आदमियोंकी कमीके कारण बस्तीकी समुचित स्वच्छता बनाये रखनेकी हालतमें न होनेके बावजूद परिषद एकदम हर किरायेदारकी मालिक बन गई। उसने किराया वसूल करनेके लिए दफ्तर खोल दिया और साराका सारा सूत्र-संचालन अपने हाथमें ले लिया।

नई सत्ताके हाथमें परिस्थिति इतनी असहनीय हो गई कि वे निवासी, जिनके खिलाफ परमश्रेष्ठ द्वारा उल्लिखित सरकारी विवरणोंमें बार-बार गन्दगीका आरोप लगाया गया था, मेरे पास शिकायतें लेकर आये और इसलिए मैंने इस वर्षकी ११ फरवरीको — अर्थात् प्लेगकी बाकायदा घोषणाके एक महीनेसे भी पहले — उनकी ओरसे डॉ० पोर्टरको लिखा:

> **मैं आपको भारतीय बस्तीकी भयंकर हालतके बारेमें लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूं। कमरोंमें वर्णनातीत भीड़-भाड़ दिखाई पड़ती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे भेजे जाते हैं और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमें आकर शिकायत कर गये हैं कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।**
>
> **बस्तीमें काफिरोंकी भी बहुत बड़ी आबादी है, जिसका वस्तुतः कोई औचित्य नहीं है।**

मैंने जो-कुछ सुना है, उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमें मृत्यु-संख्या काफी बढ़ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है वह यदि बनी रही तो, आज हो या कल, कोई संक्रामक बीमारी फैले बिना नहीं रह सकती।

१५ फरवरीको डॉ० पोर्टरके नाम दूसरे पत्रमें मैंने पहले पत्रमें उल्लिखित मुद्दोंपर विस्तारसे लिखा और कुछ सुझाव देनेकी धृष्टता भी की; किन्तु १८ मार्चतक कुछ नहीं किया गया — यद्यपि १ मार्चको मैंने डॉ० पोर्टरको लिखी गई सूचनामें कहा था कि मेरी रायमें प्लेग वास्तवमें फैल चुका है।

मैं, परमश्रेष्ठके अवलोकनार्थ, जो पत्रव्यवहार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था उसकी पूरी नकल नत्थी कर रहा हूँ। मुख्य तथ्योंको आजतक चुनौती नहीं दी गई, और चूंकि मैं, बस्तीके निवासी पिछले वर्षसे जिसमें से गुजरे हैं, ऐसी हर परिस्थितिको जानता हूँ, मुझे विनयपूर्वक यह कहनेपर बाध्य होनेकी जरूरत जान पड़ती है कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी अक्षम्य उपेक्षाके बिना प्लेग कभी नहीं फैल सकता था। अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी आबादीको स्थानान्तरित करनेकी बड़ी-बड़ी योजनाओंके मुकाबलेमें सामने पड़े हुए तात्कालिक कामकी पूरी उपेक्षा की गई।

अन्तमें मैं यह कह सकता हूँ कि श्री नौरोजीको लिखनेमें सत्यकी सेवा और अपने देशवासियोंकी अन्यायपूर्ण आरोपके समक्ष सुरक्षाके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं थी।

मुझे विश्वास है कि इस पत्रके विषयकी महत्ताको परमश्रेष्ठका मूल्यवान् समय लेनेका पर्याप्त कारण माना जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० २२६४ — २,३,४,५) से।

२३९. तार: उपनिवेश-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर ३, १९०४

सेवामें
उपनिवेश-सचिव
[प्रिटोरिया]

श्री रॉबिन्सन सूचित करते हैं, लॉर्ड रॉबर्ट्स भारतीय समितिसे प्रिटोरिया मुकामके समय अभिनन्दनपत्र स्वीकार करेंगे। क्या कृपया लॉर्ड महोदयसे तारीख मालूम करेंगे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : ९२/२, एल० जी० ९३ : एशियाटिक्स १९०२-१९०६, फाइल सं० २।

२४०. किसानोंका सम्मेलन

सम्मेलनमें अनेक प्रकारके मामलोंकी चर्चा की गई, जिनमें से दोका सम्बन्ध भारतीयोंसे था। कुछ समय हुआ, सम्मेलनने इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया था कि सब भारतीयोंको पास रखने चाहिए। किस कारण, यह नहीं बताया गया। शायद गैर-गिरमिटिया भारतीय आबादीका अपमान करनेके सिवा अन्य कोई कारण नहीं था। सरकारने उत्तरमें कहा है कि सम्मेलन जैसा चाहता है वैसा कानून पास करनेके लिए सरकार तैयार नहीं है। इसलिए पादरी जे० स्कॉटने तजवीज पेश की कि वह प्रस्ताव सरकारके पास वापस भेजा जाये। अध्यक्षने बताया कि अगर भारतीयोंपर बहुत अधिक पाबन्दियाँ लगाई गईं तो शायद भारत सरकार कोई आपत्ति करे। परन्तु श्री स्कॉटने कहा कि उस सूरतमें नेटाल मजदूर जुटानेके लिए दूसरे साधन काममें ला सकता है। हम चाहते हैं कि ऐसा हो। तभी यहाँ रहनेवाली भारतीय आबादीके बारेमें कोई ठीक समझौता हो सकेगा। इसके अलावा उपनिवेश भारतीय मजदूरोंका आर्थिक मूल्य अनुभवसे जानेगा। रस्किनने कहीं कहा है कि आर्थिक तत्त्वके रूपमें मनुष्यको केवल मशीन समझकर अध्ययन नहीं करना चाहिए, परन्तु उसके सम्बन्धमें विचार उसके सारे मानसिक गुणोंको ध्यान रखकर करना चाहिए। इस दृष्टिसे देखा जाये तो हम मानते हैं कि भारतीय मजदूर संसारमें सबसे अधिक दक्ष हैं। वे कदमें छोटे हो सकते हैं, सुस्त हो सकते हैं, कमजोर हो सकते हैं; परन्तु वे अत्यन्त संजीदा, शिकायत न करनेवाले, धैर्यवान, और दीर्घकालतक कष्ट सहनेवाले होते हैं। इसलिए, अपने मालिकोंको तकलीफ नहीं देते और भरोसेका काम करनेवाले होते हैं। अगर कोई दूसरे मजदूर लाये जायेंगे, चाहे अस्थायी तौरपर ही क्यों न हो, तो भी भारतीय मजदूरोंके सभी विशेष गुणोंकी, जिनको हमने गिनाया है, कद्र की जायेगी। और उनके गुणोंके कारण उनका मूल्य ऊँचा आँका जायेगा। परन्तु जब-तक उपनिवेशके लिए भारतीय-मजदूरोंको रखना जरूरी है तबतक उपनिवेशियोंको उन्हीं पाबन्दियोंसे सन्तोष करना चाहिए जिन्हें पहलेसे लगाया जा चुका है; और उनमें प्रत्येक भारतीयको पास रखनेके लिए मजबूर करनेकी अपमानजनक पाबन्दी न बढ़ानी चाहिए। श्री मैक्क्रिस्टलने संयोगवश कहा था कि अधिकतर एशियाई ब्रिटिश प्रजाजन नहीं हैं, बल्कि अरब हैं। कुछ भारतीय बेशक अपनेको अरबी सौदागर कहते हैं, परन्तु इन महाशयके लिए इतना बड़ा अज्ञान प्रकट करनेका यह कोई कारण नहीं है। इस उपनिवेशमें "अरबी" शब्दका उपयोग मुसलमानके अर्थमें होने लगा है, क्योंकि मुस्लिम धर्मका उदय अरबमें हुआ था।

दूसरा मामला, जिसपर सम्मेलनमें विचार किया गया, मजदूरोंकी कमीका था। इस प्रकार सम्मेलनमें एक तरफ तो यह चाहा गया कि भारतीयोंपर और अधिक पाबन्दियाँ लगाई जायें और दूसरी तरफ मजदूरोंकी कमीकी शिकायत की गई। भारतकी भी अपनी सीमाएँ हैं और हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह मजदूरोंकी भरतीके लिए कोई अक्षय क्षेत्र है। स्वयं भारतमें आन्तरिक प्रवासकी एक व्यापक प्रणाली है और वहाँसे बर्मा और सिंगापुरकी तरफ एक अजस्र धारा बह रही है। उसमें लंका, मॉरिशस और फीजी-सहित दूसरे उपनिवेश भी मिला दीजिये। भारतीय मजदूरोंको आकृष्ट करनेवाले अनेक प्रतिस्पर्धियोंमें नेटाल सिर्फ एक है। इसलिए अगर मजदूरोंपर अत्यधिक प्रतिबन्ध लगानेके कारण उनके मार्गमें बाधा आ जाये तो उसे आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हमें कोई शंका नहीं कि नये प्रवासी-कानूनसे मजदूरोंकी

उपलब्धिपर बहुत असर पड़ेगा, क्योंकि उसके द्वारा गिरमिटिया लोगों और उनके बच्चोंपर स्वतन्त्र होनेके बाद तीन पौंडका वार्षिक कर लगा दिया गया है। उपनिवेशको भारतीय मजदूरोंकी जरूरत है, और फिर भी वह उसके अनेक स्वाभाविक परिणामोंसे बचना चाहता है। हमारे खयालसे यह असंगत स्थिति रास्तेकी जितनी बड़ी रुकावट है उतनी जैसा सम्मेलनमें कुछ वक्ताओंका खयाल था, यह समस्या नहीं कि नये प्रवासी पुरुषोंके साथ प्रतिशत कितनी स्त्रियाँ हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०४

२४१. रंगमें भंग

ट्रान्सवालका तथाकथित एशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन (एशियाटिक नेशनल कन्वेन्शन) अगर किया भी गया तो उसे जोहानिसबर्गके प्रतिनिधियोंके बिना ही करना होगा। यह हैमलेट [नायक]-के बिना हैमलेट [नाटक]-के अभिनयके समान होगा। इस "स्वर्ण-नगरी" के वाणिज्य-संघ और व्यापार-संघ दोनोंने किसी भी ऐसे सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर दिया है जिसका उद्देश्य, श्री मिचलके शब्दोंमें, बेगुनाह लोगोंकी सम्पत्ति जब्त करना हो। इन संघोंका कहना है कि सम्मेलनके संयोजकोंने जो प्रस्ताव रखे हैं वे इतने कड़े हैं कि कोई ब्रिटिश समुदाय उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि उनके पीछे नीयत यह है कि ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा दिये बिना *बाजारोंमें* हटा दिया जाये और निहित स्वार्थोंकी कोई परवाह न की जाये। श्री बोर्क और श्री लवडेने जो इलाज सुझाया है वह पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार संघके लिए भी अत्यन्त तेज है, यद्यपि, जैसा हमारे पाठक जानते हैं, यह संघ उस समय भी भारतीयोंका बुरी तरह विरोधी था, जब भारतीय प्रश्नपर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। हम दोनों व्यापार-संघों और पॉचेफस्ट्रूम संघको बधाई देते हैं कि उन्होंने न्यायपर आरूढ़ रहनेका साहस किया। अन्धे और विवेकरहित विद्वेषके बीचमें प्रतिनिधि-संस्थाओं द्वारा प्रकाशित गम्भीर विचारों और भावोंकी सराहना करते हुए हमें राहत मिलती है। हमें सन्देह नहीं कि यदि ब्रिटिश भारतीय कुछ समय और देंगे, थोड़ा और धैर्य रखेंगे और पूर्णतः शान्तचित्त रहेंगे तो बाकी सब काम अपने आप हो जायेगा। जैसा स्वर्गीय प्रोफेसर मैक्समूलर कहा करते थे, किसी नये सत्यको लोगोंके गले उतारने और उनके पहलेसे बने हुए खयालोंको मिटानेका एकमात्र उपाय यही है कि उसे अथक रूपमें बार-बार दुहराया जाये। इसलिए हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। हमें मौका हो चाहे न हो, यह दिखाते ही रहना चाहिए कि भारतीयोंका मामला मजबूत है और भारतीयोंने कभी कोई ऐसी माँग नहीं की जो औचित्यके साथ स्वीकार न की जा सके और जिसका गोरे व्यापारियोंके हितों और गोरे प्रभुत्वसे विरोध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०४

२४२. ट्रान्सवालकी रेलोंमें रंगदार यात्री

जोहानिसवर्गके अखबारोंमें परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त और रैंड अग्रगामी संघ (रैंड पायोनियर्स) का एक दिलचस्प पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ है। उसका विषय है, ट्रान्सवालके वतनी लोगोंका मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलोंपर पहले और दूसरे दर्जोमें यात्रा करना। लॉर्ड मिलनरने रैंड अग्रगामी संघको विश्वास दिलाया है कि आयन्दा छूटके प्रमाणपत्र-प्राप्त लोगोंके सिवा और किसी वतनीको रेलोंमें पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा नहीं करने दी जायेगी और निरीक्षकों और स्टेशनमास्टरोंको हिदायत कर दी गई है कि रंगदार मुसाफिरोंको गोरे मुसाफिरोंसे अलग रखा जाये। रैंड अग्रगामी संघने अपनी माँग वतनी लोगोंतक ही सीमित रखी है, परन्तु मुख्य व्यवस्थापक श्री प्राइसने जो हिदायतें जारी की हैं, उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयों-सहित सब रंगदार लोग आ जाते हैं। अलबत्ता, यह जानकर कुछ सन्तोष होता है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयोंको कठिनाईके बिना पहले या दूसरे दर्जेके टिकट मिल जाया करेंगे। प्रयोगके तौरपर प्रिटोरिया-पीटर्सबर्ग मार्गपर रंगदार मुसाफिरोंके लिए विशेष डिब्बे जोड़े जायेंगे। तिलका ताड़ कैसे बनाया जा सकता है, इसका यह एक उदाहरण है। और अगर अलग-अलग जातियोंके लिए अलग-अलग डिब्बे रखने हैं तो तर्ककी दृष्टिसे वतनी लोगों, चीनियों, ब्रिटिश भारतीयों, केपके रंगदार लोगों, बोअरों, अंग्रेजों और जर्मनों वगैरा सबके लिए अलग डिब्बे होने चाहिए। उस सूरतमें बेशक यह सवाल होगा कि इस लाइनको कमाऊ कैसे बनाया जाये। परन्तु ट्रान्सवालकी भावनाका, चाहे वह उचित हो या अनुचित, सम्मान कैसे किया जाये, इसके मुकाबलेमें वह बहुत छोटी बात होगी। मगर, मजाककी बात छोड़िए। यदि भेद रखना है तो हमारे खयालसे तीन अलग तरहके डिब्बोंकी जरूरत होगी; अर्थात्, यूरोपीयों, वतनियों और एशियाइयोंके लिए। मुख्य व्यवस्थापकका जारी किया गया परिपत्र तो सचमुच भिड़का छत्ता है और हमें पूरा यकीन है कि हमने जो-कुछ सुना है वह अन्तिम बात नहीं होगी। रैंड अग्रगामी संघने पहले ही अपना असन्तोष जाहिर कर दिया है और वह नहीं मानता कि ट्रान्सवालके वतनी लोगोंको पहले या दूसरे दर्जेमें जरा भी सफर करने दिया जाये। वह माननेसे इनकार करता है कि जिनके पास छूटके प्रमाणपत्र हैं और जिनके पास नहीं हैं, उनमें कोई भेद है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०४

२४३. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन

प्रिय महोदय,

आपका १३ अक्टूबरका पत्र मिला। मैं आपको, सर विलियम, सर मंचरजी और पूर्व भारतीय संघको साप्ताहिक चिट्ठी अक्सर भेजता हूँ। प्लेग-सम्बन्धी पत्रव्यवहारपर लॉर्ड मिलनरको लिखे गये अपने पत्रकी[1] प्रति इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६४–१) से।

२४४. लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र[2]

[नवम्बर ९, १९०४]

ब्रिटिश भारतीयों द्वारा लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र भेंट करनेका सुखद समारोह शुक्रवार, ११ नवम्बरको तीसरे पहर पौने तीन बजे किया गया। उस पुराने अनुभवी सिपाहीने मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंका स्वागत बड़े सौजन्यसे किया और सारा आयोजन सन्तोषपूर्वक सम्पन्न हुआ। मानपत्रकी संलिपि यह थी:

सेवामें
फील्ड मार्शल परममाननीय कंदहार, वॉटरफोर्ड और प्रिटोरियाके अर्ल राबर्ट्स, के० जी०, के० पी०, जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, ओ० एम० वी० जी०, प्रिटोरिया।

लॉर्ड महानुभाव,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, ट्रान्सवाल-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि, इस देशमें, जहाँ आपने हाल ही में साम्राज्यके लिए परिश्रम किया है, आपका, काउंटेस राबर्ट्सका और देवी एलीन और एडविना राबर्ट्सका सादर स्वागत करते हैं।

१. देखिए "पत्र: उच्चायुक्तको" अक्टूबर ३१, १९०४।
२. यह "हमारे विशेष संवाददाता द्वारा" प्रेषित रूपमें छापा गया था।

हमारे लिए यह कम गर्वका विषय नहीं है कि भारतने ही साम्राज्यको आधुनिक कालका सबसे बड़ा सिपाही दिया है, जिसमें सिपाहीकी कठोरता और साधुकी कोमलताका सामंजस्य है।

हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको, काउंटेस राबर्ट्सको और परिवार भरको अपना अनुग्रह प्रदान करे और साम्राज्यको दीर्घ कालतक आपकी अनुभवी सलाहोंका लाभ मिलता रहे।

प्रिटोरिया, नवम्बर ९, १९०४।

आपके विनम्र और आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
हाजी मुहम्मद हाजी जुसब
हाजी हबीब हाजी दादा
एम० एस० कुवाड़िया
इस्माइल आमद मुल्ला
अमृतलिंग चेट्टी
आमद हाजी तैयब
अहमद लतीब
हाजी उस्मान हाजी अब्बा
मो० क० गांधी

यह चमड़ेके कागजपर सुन्दर-सुनहले अक्षरोंमें लिखा गया था और कुमारी ऐडा एम० विसिक्सने, जिनके हाथोंमें यह काम सौंपा गया था, इसके लिए एक बिलकुल मौलिक नमूना सोचा था। मानपत्रका बाईं ओरका सारा भाग भारतके सुन्दर पक्षी मोरके हूबहू चित्रने घेर लिया है। अक्षर भी बहुत सुन्दर हैं और सारी सजावट एक कलाकृति है। मानपत्र ठोस चाँदीके डिब्बेमें बन्द था जिसपर कमलके फूल खुदे हुए थे। मानपत्र और डिब्बा दोनों ही उस विशिष्ट प्राप्तिकर्ता और भारतीय समाजके अनुरूप थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०४

२४५. एशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन

जबतक यह लेख छपेगा -- ट्रान्सवालमें तथाकथित राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुकेगा। जोहानिसबर्गकी प्रतिनिधि संस्थाओंने अब अपने नुमाइन्दे भेजनेका निश्चय कर लिया है और श्री बोर्क और श्री लवडेने उन संस्थाओंके सुझाये संशोधन स्वीकार कर लिये हैं। इसलिए प्रस्तावोंमें मुआवजेका सिद्धान्त आ गया है। परन्तु हमारी रायमें सब संशोधनोंको मिलाकर देखा जाये तो वास्तवमें उनका अर्थ बहुत थोडा निकलेगा। पिछले अनुभवसे हमें चेतावनी मिलती है कि ऐसे सिद्धान्तके अपना लिये जानेसे भी कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। पाठकोंको याद होगा कि उस एशियाई आयोगने, जो सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था और जो सौभाग्यवश, *हबीब मोटन* बनाम *सरकार* नामक परीक्षात्मक मुकदमेके कारण निष्फल हो गया था, उन सब भारतीयोंके दावे अस्वीकार कर दिये थे, जो लडाई छिडनेसे ठीक पहले व्यापारमें लगे हुए थे। पॉचेफस्ट्रमके लोगोंने काफी स्पष्ट कर दिया है कि उनके खयालसे मुताबिक मुआवजा उन्हींतक सीमित रहना चाहिए जिनके पास लड़ाई छिडनेके समय पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। इसलिए हमारे खयालसे मुआवजेका अर्थ या तो बहुत थोड़ा-सा है या कुछ नहीं है। तब इस सारे भारतीय-विरोधी आन्दोलनका क्या होगा? अगर राष्ट्रीय सम्मेलनकी ही विजय होनी है तो हम उसका परिणाम जानते हैं। उस हालतमें प्रत्येक स्वाभिमानी ब्रिटिश भारतीयको अवश्यम्भावीका सामना करने और इस देशसे चले जानेके लिए तैयार रहना चाहिए। कहनेका अर्थ यह है कि उसे अपने ही घरमें अन्त्यज होकर रहना पड़ेगा। भारतीयोंको बचपनसे ही, बहुधा अंग्रेज शिक्षकों द्वारा और ब्रिटिश देखरेखमें छपी और प्रकाशित हुई पुस्तकोंके माध्यमसे सिखाया गया है कि ब्रिटिश सरकारकी दीर्घ भुजा सबलसे निर्बलकी रक्षा करती है। जैसा कि गुजरातके स्वर्गीय राष्ट्रकविने[1] कहा है: "देखो, शत्रुता समाप्त हो गई, दुष्कर्मी सदाके लिए कुचल दिये गये और अब (अंग्रेजी राज्यमें) कोई मेमनेके भी कान नहीं ऐंठता।" भारतीयोंको यह भी सिखाया गया है कि जो देश ब्रिटिश नरेश और सम्राट्के राज्यमें शामिल हैं उनमें प्रत्येक प्रजाजनको पूरी स्वतन्त्रता और तमाम नागरिक अधिकार प्राप्त हैं — यहाँ तक कि, ब्रिटिश भूमिपर विदेशियोंके भी बन्धन टूटकर गिर जाते हैं। हम कहते हैं कि अगर राष्ट्रीय सम्मेलनकी जीत हो गई तो भारतीयोंको यह सब भूल जाना होगा। उन्हें पट्टी पोंछ डालनी होगी और ब्रिटिश संविधानमें अबतक उन्होंने जो-कुछ सुन्दर समझा है उस सबको विस्मृत कर देना होगा और अपनी रोजीका साधन छिनता हुआ देखकर सन्तोष करना पड़ेगा। परन्तु हमें यह विश्वास नहीं होता कि जबतक ट्रान्सवाल ब्रिटिश ध्वज (यूनियन जैक) की इज्जत करता है तबतक वहाँ ऐसी कोई घटना सम्भव है। हम कल्पना नहीं कर सकते कि श्री लिटिलटन अपने खरीतेमें उल्लिखित नीतिसे मुँह मोड़ लेंगे और ऐसी बात मंजूर करेंगे जो भाषामें नहीं तो भावोंमें अवश्य ही ब्रिटिश प्रजाजनोंके अधिकारोंको जब्त करनेकी कार्रवाई होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

१. गुजराती कवि श्री दलपतराम, जो एक वर्ष पूर्व मृत्युको प्राप्त हुए थे।

२४६. नेटालका भारतीय आहत-सहायक दल[1]

हमारा लन्दनसे प्रकाशित सहयोगी *इंडिया* इस दलके सम्बन्धमें सरकारी आँकड़े स्वीकार करके गलतीका शिकार हो गया है, यद्यपि स्वयं उसकी फाइलोंमें सही आँकड़े मौजूद हैं। दुर्भाग्यसे इस दलके बारेमें पदक देनेका सारा काम ही गड़बड़ हो गया है। इसलिए हम आम जानकारीके लिए सही बातें फिरसे बता दें। दलकी रचना पहले-पहल कोलेंजोकी लड़ाईमें सेवा करनेके लिए की गई थी। उस समय उसमें २५ नायक — सरदार नहीं और ६०० डोलीवाहक थे। नायकोंको कुछ भी वेतन नहीं मिलता था — उनकी वर्दियोंकी लागत भी भारतीय व्यापारियोंने दी थी। थोड़े समयकी सेवाके बाद दल भंग कर दिया गया। जब स्पियनकॉपकी तरफ बढ़नेकी पहली कोशिश की गई तब कर्नल गालवेने आज्ञा दी कि दल फिरसे बनाया जाये। उस समय लगभग ३० नायक और कमसे-कम १,१०० से १,२०० तक डोलीवाहक थे। इस बार दलने ६ सप्ताह सक्रिय सेवा की और इस बीच आश्चर्यजनक यात्राएँ कीं — यहाँतक कि, वह घायलोंको लेकर प्रतिदिन २५-२५ मीलतक चला। जनरल बुलरने अपने खरीतोंमें उसके कामका खास तौरसे उल्लेख किया है। यह किसीको पता नहीं कि सिर्फ आठ ही तमगे क्यों बाँटे गये। नायकोंमें से प्रत्येक उनका हकदार है और अगर युद्ध-कार्यालयका इन लोगोंमें पदक बाँटनेका इरादा है, जैसा कि अवश्य होना चाहिए, तो हम लगभग सभीका पता लगानेकी जिम्मेदारी ले लेंगे। उस समय डोलीवाहकोंके नाम-पते वगैराकी पूरी सूची रखी गई थी और वह दल-व्यवस्थापकके पास होनी चाहिए। जिस ढंगसे पदक बाँटे गये हैं उसके बारेमें हमने बहुत नहीं कहा है, क्योंकि हम चाहते हैं कि जिन नायकोंने काम किया, वे किसी पुरस्कारसे अपना सम्बन्ध न रखें। उन्होंने विशुद्ध कर्तव्य समझकर यह कार्य अपने जिम्मे लिया था; और उनकी योग्यताकी कद्र की जाती है या नहीं, इसकी परवाह न करके उन्हें यह कर्तव्य फिर भी हाथमें लेनेके लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८।

२४७. एडविन आर्नोल्ड-स्मारक

एडविन आर्नोल्ड-स्मारक समितिके जारी किये हुए परिपत्रकी एक प्रति हमें मिली है। समितिका —

> खयाल है कि सर एडविनके कामका सबसे उचित सम्मान वह होगा जिससे उनका नाम प्राच्य साहित्यके प्रति उनकी महान सेवाओंके साथ जुड़ जाये। यह उनका विशेषाधिकार था कि अपनी काव्य-प्रतिभा . . . और पूर्वी सभ्यता, रीति-रिवाजों और घटनाओंपर अपने सजीव और प्रदीप्त गद्य-लेखोंके द्वारा उन्होंने यूरोप और अमेरीकाके पाश्चात्य लोगोंको पूर्वके लोगोंका अधिक ज्ञान कराया और इस प्रकार उनमें आपसी दिलचस्पी और हमदर्दी पैदा की, जिससे दोनोंके कल्याण और सुखकी वृद्धि हुए बिना नहीं रह सकती। . . . इसलिए समिति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें प्राच्य साहित्यमें प्रवीणता प्राप्त करनेके लिए छात्रवृत्ति या छात्रवृत्तियाँ देना अथवा पुरस्कारोंकी स्थापना करना चाहती है।

समितिमें परम माननीय लॉर्ड ब्रेसी, अध्यक्षके रूपमें हैं और सर आगा खाँ, सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी, सर जॉर्ज वर्डवुड, परममाननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन, वायकाउंट हयाशी, श्री रूडयार्ड किपलिंग और दूसरे लोगोंके नाम भी हैं। चन्दा श्री हेनरी एस० किंग ऐंड कं०, ६५ कॉर्नहिल, लन्दनके पतेपर भेजा जा सकता है। अगर हमारे कोई पाठक हमारे पास अपना चन्दा भेजेंगे तो हम *इंडियन ओपिनियनमें* खुशीसे उसकी प्राप्ति स्वीकार करेंगे और उसको समय-समयपर खजानचीको भेज देंगे। सर एडविनकी पूर्व और पश्चिमके प्रति सेवाओंकी अभी-तक काफी कद्र नहीं की गई है। समय ही बतायेगा कि उनकी ये सेवायें कितनी बड़ी थीं। पश्चिमी मानसपर अकेले एशियाकी ज्योति (*लाइट ऑफ एशिया*) ग्रन्थकी छाप ही सदाके लिए अमिट हो गई है। कहा जाता है कि अपने मानसके पूर्वी रुझानके कारण ही उन्हें राजकविका पद नहीं मिल पाया। इसलिए हमें आशा है कि हमारे पाठक, भारतीय और यूरोपीय दोनों, इस स्मारक-कोषमें बहुतायतसे चन्दा भेजेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

१. इसमें खुद गांधीजीने ३ पौंड ३ शिलिंग चन्दा दिया था।

M. K. GANDHI,
Attorney

21-24 Court Chambers.
Corner Rissik & Anderson Streets
P.O. Box 6522

Johannesburg. [illegible] November 19[illegible]

The Honorable Dadabhai Naoroji,
22 Kennington Road.
LONDON.

Dear Sir,

I have your letter of the 13th. October. As a rule I do send the weekly letter to you, Sir William, Sir Mancherjee, and the East India Association. I enclose herewith copy of the [illegible] by me to Lord Milner on the plague correspondence.

I remain,
Yours truly,
M. K. Gandhi

दादाभाई नौरोजीके नाम एक पत्र

२४८. सम्राट चिरायु हों!

हम महामहिम सम्राट्को उनकी वर्षगाँठपर आदर और भक्तिपूर्वक अपनी बधाई अर्पित करते हैं। महामहिमने पिछले बुधवारको अपना ६३ वाँ वर्ष पूरा किया और साम्राज्यके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक भगवान्से प्रार्थना की गई कि उनके जीवनमें इस दिनके अनेकानेक सुखमय प्रत्यावर्तन हों। यूरोपके तमाम राजाओंमें से कोई ऐसा नहीं है जो सम्राट् एडवर्डकी तरह आदर्शकी पूर्ति करता हो। एक वैधानिक राजतंत्रकी मर्यादाओंको मानते हुए भी उन्होंने साबित कर दिया है कि वे अपनी कुशलता और सज्जनतासे साम्राज्यकी जबरदस्त सेवा कर सकते हैं। फ्रान्समें उनका कार्य, पोपसे उनकी भेंट, और कैसरसे उनकी मुलाकात — इन सबसे शान्तिके पक्षको बल मिला है। यह एक खुला रहस्य है कि बोअर युद्धकी समाप्ति करानेमें महामहिमका बड़ा हाथ था। अपने प्रजाजनोंके प्रति उनकी उदारता और उनकी सहानुभूति सुप्रसिद्ध है। उन्होंने हमेशा भारतीय राष्ट्रके कल्याणका बड़ा खयाल रखा है। और जब वे युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) थे, तब अपनी भारत-यात्रासे उन्होंने अपने प्रति भारतीय राष्ट्रका व्यक्तिगत आदरभाव प्राप्त किया था। सर्वशक्तिमान परमेश्वरसे हमारी विनीत प्रार्थना है कि वह साम्राज्यके लिए महामहिमको चिरायु करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

२४९. ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीय

ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें सरकार और लोग दोनों बराबर प्रतिक्रियावादी और भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। अन्यत्र हम कुछ उद्धरण छाप रहे हैं जिनसे जाहिर होता है कि भारतीय किस तरह खदेड़े जा रहे हैं। सरकार यह आग्रह करके सन्तुष्ट नहीं मालूम होती कि उपनिवेशमें बसनेका इच्छुक प्रत्येक भारतीय यह घोषणा करे कि जबतक वह वहाँ रहेगा तबतक सदा किसी-न-किसीकी नौकरीमें रहेगा। इसलिए अब उसका आग्रह यह है कि भारतीय जब अपना मालिक या कामका स्वरूप बदले तब हर बार इसकी नई घोषणा करे। और फिर भी यह बिलकुल अधिकारियोंकी मर्जीपर निर्भर रहेगा कि वह उपनिवेशमें ठहरे या नहीं। इस तरहकी परिस्थिति तुरन्त खतम होनी चाहिए या सुधरनी चाहिए। हमने उपनिवेशमें एशियाइयोंके विरुद्ध कड़े कानूनोंकी तरफ प्रायः ध्यान दिलाया है। परन्तु हमने अभीतक तो कोई राहत मिलती देखी नहीं है। क्या हम समझें कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति यह अपमानजनक व्यवहार हमेशा होता रहेगा और भारत-कार्यालय चुपचाप बैठा रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

२५०. लॉर्ड रॉबर्ट्स और ब्रिटिश भारतीय

हम लॉर्ड रॉबर्ट्सको रजत मंजूषासह मानपत्र भेंट करनेपर ट्रान्सवालवासी स्वदेश भाइयोंको बधाई देते हैं। हम इस मानपत्रकी संलिपि और मंजूषाका विवरण एक दूसरे स्तम्भमें छाप रहे हैं।[1] उनका यह कार्य बहुत ही शोभाजनक था। जैसा कि मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवालोंने कहा है, भारतीयोंके लिए यह कुछ कम गर्वकी बात नहीं कि साम्राज्यको इस जमानेका सबसे बड़ा सिपाही भारतने दिया है। अपनी कठोर सैनिकताके बावजूद लॉर्ड रॉबर्ट्समें दयालुता बहुत अधिक है। उन्होंने बोअर युद्धके दिनोंमें कैदियोंके प्रति बरतावमें बहुत ज्यादा लिहाजसे काम लिया। भारतीय सिपाहियों और भारतसे सम्बन्धित सभी बातोंमें उन्होंने सदा सहानुभूतिपूर्ण रस लिया है; और ट्रान्सवालके भारतीयोंने इस देशमें आनेपर लॉर्ड महोदयका सम्मान किया यह बिलकुल उचित ही था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

२५१. तार: दादाभाई नौरोजीको

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४]

सेवामें
इनकाज[2]
लंदन

सारे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी वृहद् सभा। एशियाई सम्मेलनकी कार्यवाहीके विरोधमें प्रस्ताव क्योंकि ब्रिटिश प्रजाजनों और अन्यों — वतनियों और भारतीयों — में अन्तर नहीं किया गया [और] सम्मेलनके प्रस्तावों पर अमलका अर्थ जब्ती और बरबादी, सम्मेलनके आरोपकी खुली जाँचकी माँग, सामान्य आधार पर — जातीयपर नहीं — प्रवास प्रतिबन्ध सिद्धान्त स्वीकृत, कानून सुझाया गया कि स्थानीय निकाय नये व्यापारिक परवाने दें जिनपर सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके।

ब्रिटिश भारतीय

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सी०ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविज्युअल्स-एन।

१. यह वस्तुतः नवम्बर १९, १९०४ के अंकमें इस टिप्पणीके साथ छापा गया था: "हमें खेद है कि निम्न रिपोर्ट हमारे पिछले अंकमें शामिल करनेसे छूट गई थी।" देखिए "अभिनन्दनपत्र : लॉर्ड रॉबर्ट्सको", नवम्बर १९, १९०४।

२. दादाभाई नौरोजीका तारका पता। दादाभाईने तारकी प्रति उपनिवेश-सचिवके पास भेजी। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविज्युअल्स-एन) *इंडियाने* अपने नवम्बर २५, १९०४ के अंकमें तारको निम्नलिखित सम्पादित रूपमें प्रकाशित किया था:

जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४

ट्रान्सवालके सब भागोंसे आये हुए ब्रिटिश भारतीयोंकी जोहानिसबर्गमें एक विशाल सभा हुई है और

२५२. मुख्य न्यायाधीश और ब्रिटिश भारतीय

उस दिन सर हेनरी वेलने कहा कि अदालत भवनमें आनेवाले भारतीयोंका व्यवहार जाहिरा तौरपर अनादरपूर्ण होता है, क्योंकि उससे अदालतके प्रति सम्मानका कोई बाहरी लक्षण प्रकट नहीं होता। वे अपनी पगड़ी या टोपी नहीं उतारते, क्योंकि उनका रिवाज इसके विपरीत है, और जूते उतारे नहीं जा सकते, क्योंकि ऐसा करना असुविधाजनक होता है। महानुभावने निर्णय दिया कि प्रत्येक भारतीयको अदालतमें घुसनेपर सलाम करना होगा। अगर यह नहीं किया जायेगा तो इसे अदालतका अपमान समझा जायेगा। हम महानुभावका ध्यान आदरपूर्वक इस तथ्यकी ओर आकर्षित करते हैं कि पगड़ी बाँधना या भारतीय टोपी लगाना ही आदरका चिह्न है। क्योंकि जैसे यूरोपीय रिवाजके अनुसार किसी स्थानमें प्रवेश करने पर टोप उतारना आवश्यक होता है, वैसे ही भारतीय रिवाजके अनुसार पगड़ी बाँधे रखना या टोपी पहने रहना, जैसी भी स्थिति हो, आवश्यक होता है। आदरका अभाव भारतीयोंकी विशेषता नहीं है, और हम महानुभावको विश्वास दिलाते हैं कि सलाम न करनेमें उनका आशय अनादर करना नहीं हो सकता। सलाम तभी होता है जब सलाम करनेवाले और लेनेवाले दोनोंकी आँखें मिलें और यह अदालत-भवनमें सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ तो न्यायाधीश अपने सामने पेश मामलेमें व्यस्त होता है। हमारी रायमें केवल यह एक बात सम्भव है कि गवाहके कठघरेमें जानेपर भारतीयसे बेशक सलाम कराया जाये। मगर हमारे खयालसे यह चेतावनी आवश्यक नहीं है, क्योंकि गवाहके कठघरेमें प्रवेश करनेपर प्रत्येक भारतीय स्वभावसे ही अदालतके प्रति समुचित सम्मान व्यक्त करता है। फिर भी भारतीय मुकदमेबाजोंके लिए यह अच्छा ही है कि जब अदालतोंमें जानेका मौका पड़े तब वे महानुभावकी हिदायतोंको ध्यानमें रखें। हमें किसी भी हालतमें किसीको इस सन्देहका भी अवसर नहीं देना चाहिए कि हम न्यायाधीशों अथवा दूसरे अधिकारियोंका कोई अनादर करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०४

उसमें ११ नवम्बरको प्रिटोरियामें हुए "सम्मेलन" की ट्रान्सवालमें एशियाई-प्रवास सम्बन्धी कार्यवाईके विरोधमें प्रस्ताव पास किये गये हैं।

विरोधका आधार यह है कि उक्त "सम्मेलन" ने दक्षिण आफ्रिकाके वतनियों और भारतीयोंमें, जो ब्रिटिश सम्राट्की प्रजा हैं, कोई अन्तर नहीं किया।

सभाने घोषित किया कि यदि "सम्मेलन" के प्रस्तावोंपर अमल किया गया तो उसका अर्थ अरबी और भारतीय व्यापारियोंका सर्वनाश होगा।

इसके अतिरिक्त सभाने "सम्मेलन" के आरोपोंकी पूरी जाँचकी माँग की और सामान्य आधारपर — जातीयतापर नहीं — प्रवासपर प्रतिबन्ध लगानेका सिद्धान्त स्वीकार किया। यह सुझाया गया कि एक कानून बनाया जाये जिसके अनुसार स्थानीय निकाय नये व्यापारिक परवाने दें; किन्तु उनके बारेमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके।

२५३. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और ब्रिटिश भारतीय

८ तारीखको ब्लूमफॉटीनमे जो किसान-सम्मेलन हुआ था उसमे ऑरेंज रिवर उपनिवेशके परमश्रेष्ठ गवर्नरने उस उपनिवेशके भारतीय-विरोधी कानूनके बारेमे निम्नलिखित विचार प्रकट किये :

> इस उपनिवेशमें एशियाइयोंके आगमनके बारेमें बात यह है कि मेरे लिए इस सवालको थोड़ा छेड़ना भी बहुत खतरनाक है। क्योंकि ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें हमारे इंग्लैंडवासी लोगोंकी भावना बहुत तीव्र है, परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि कानूनमें पिछली सरकारके मंजूर किये हुए कानूनसे फिलहाल कोई परिवर्तन नहीं होगा और न अभी कोई परिवर्तन करनेका हमारा खयाल है।

तो अब हमे उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंकी निर्योग्यताओंके बारेमे राज्यके प्रधानकी तरफसे एक निश्चित घोषणा मिल गई है। इसलिए जाहिर है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रवेश करते ही भारतीयोंपर जो अपमानजनक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं, उनसे कोई राहत नही मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०४

२५४. लॉर्ड नॉर्थब्रुककी मृत्यु

बुधवारकी दोपहरको माननीय लॉर्ड नॉर्थब्रुककी[1] मृत्युका समाचार पढ़कर हमें अत्यन्त खेद हुआ। वर्षोसे हम लोग लॉर्ड नॉर्थब्रुकका नाम सुन रहे है। लॉर्ड मेयोका खून होनेके बाद लॉर्ड नॉर्थब्रुक भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल बने। उनके समयमे हमेशा याद रखने लायक दो ऐतिहासिक घटनाएँ हुईं — हमारे युवराज (प्रिन्स ऑफ वेल्स) ने भारतकी यात्रा की[2] और बड़ौदा-नरेश श्री मल्हारराव गायकवाड गद्दीसे उतारे गये[3]। हमारे लिए विशेष दुःखका कारण यह है कि हम लोगोंके प्रति उनकी बहुत सद्भावना थी। १८९७-९८ मे, जब दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रतिनिधि लन्दनमे थे, इन माननीय महोदयने अनेक प्रसंगोंपर उन्हे उत्तम परामर्श दिया था और आवश्यकता प्रतीत होनेपर खासी सहायता भी दी थी। इतना ही नही, बल्कि यह भी कहा था कि यदि हमारा प्रश्न कभी लॉर्ड-सभामें उठाना पड़े तो वे पूरी सहायता देंगे। इसके बाद उनकी सहानुभूतिके पत्र बराबर भी आया करते थे। हमारा विश्वास है कि यहाँकी कांग्रेस उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत करके अपने कर्तव्यका पालन करेगी। जोहानिसबर्गमे ट्रान्सवालके भारतीयोंने उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत किया, यह बड़ा अच्छा किया है, इसमे हमारी पूरी सहमति है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०४

१. सन् १८७२ से ७६ तक भारतके वाइसराय।

२. सन् १८७५ में।

३. ब्रिटिश रेजिडेंटकी हत्याका प्रयत्न करनेके आरोपमें; यद्यपि जाँच-अदालत उनके अपराधके सम्बन्धमें सर्वसम्मत निर्णयपर नहीं पहुँच सकी।

२५५ हुंडामलका परवाना

जैसी कि हमें आशा थी, श्री हुंडामल अपीलमें जीत गये हैं और इस विजयपर हम उन्हें और उनके वकील श्री विन्स दोनोंको बधाई देते हैं। किन्तु विद्वान मुख्य न्यायाधीशके फैसलेसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि संघर्ष किसी प्रकार खतम नहीं हुआ है। अपीलका फैसला करीब-करीब एक गौण मुद्देपर हुआ है। न्यायाधीशने यह राय दी है कि श्री हुंडामलको परवानेके बिना व्यापार करनेके आरोपमें सम्मन भेजनेमें भूल की गई है, क्योंकि उनके पास परवाना था। परन्तु उन्होंने अपीलमें उठाये गये इस मुद्देपर निर्णय देनेसे इनकार किया है कि परवाना-अधिकारीको किसी खास स्थानमें व्यापारको सीमित करनेका हक है या नहीं। इसलिए भारतीय समाजको काफी चिन्ता और भयके साथ नये सालको शुरू करना है। ब्रिटिश उपनिवेशमें ऐसी हालत नहीं रहने दी जानी चाहिए और हमें भरोसा है कि जल्दी ही इस कानूनमें संशोधन कर दिया जायेगा। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने कहा था कि उन्होंने नगर-परिषदको व्यापक सत्ता इसलिए दी थी कि उन्हें उसकी सौम्यतापर भरोसा था। हमें यह कहते हुए दुःख होता है कि डर्बन नगर-निगमने अनेक अवसरोंपर उन अपेक्षाओंको गलत साबित किया है और यदि इस उपनिवेशका प्रमुख नगर-निगम उन्हें उचित सिद्ध नहीं कर सका तो उससे छोटी संस्थाओंसे क्या अपेक्षा रखी जा सकती है? सभी मानते हैं कि विक्रेता-परवाना अधिनियम दमनका एक भयंकर साधन है। तब क्या हम अपने विधानमण्डल-सदस्योंसे यह अपील नहीं कर सकते कि वे स्थानीय अधिकारियोंसे यह प्रलोभन छीन लें? तभी परवानोंके जारी करनेके कामको नियमित और नियन्त्रित रखना पूरी तरह सम्भव होगा, और शायद कहीं अधिक सन्तोषजनक ढंगसे। अपीलसे दूसरा विचार यह उत्पन्न होता है कि अपनी जीतके बावजूद श्री हुंडामलकी हार ही हुई है। केवल अभियोग-पक्षकी सनकों और, हम आदरपूर्वक कह सकते हैं, मजिस्ट्रेटके उतावलीमें दिये गये फैसलेके कारण ही उन्हें भारी खर्च उठाना पड़ा है। यह मान लिया गया है कि मुकदमा गलतीसे चलाया गया था। फिर भी श्री हुंडामलको इस गलतीका नुकसान उठाना पड़ा है। यह संघर्ष असमान है और इसके आर्थिक पहलूको कभी नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। नगर-परिषदसे कमसे-कम इतना करनेकी तो अपेक्षा रखी ही जा सकती है कि उसकी गलतियोंके कारण इन गरीब लोगोंको जो खर्च उठाना पड़े वह उन्हें वापस कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५६. एशियाई-विरोधी सम्मेलन और ब्रिटिश भारतीयोंकी सभा

इसी मासकी १० तारीखको प्रिटोरियामे हुए एशियाई-विरोधी सम्मेलनके कुछ उल्लेखनीय परिणाम हुए है, जिनकी कल्पना सयोजकोने शायद कभी नही की थी। कुछको छोडकर बाकी सब दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोने भी उसकी कार्रवाई मनमानी और अन्यायपूर्ण बताई है और उसकी निन्दा की है। लन्दन *टाइम्सने* इस बारेमे अगुआई की है और कहा है कि कार्र-वाईसे प्रतिनिधियोमे राजनयिक चतुरताका अभाव प्रकट होता है। उसने यह भी कहा है कि इस प्रकारके आन्दोलनसे, चाहे वह कितना ही तीव्र हो, साम्राज्य-सम्बन्धी कर्त्तव्योकी अवहेलना नही करने दी जा सकती और श्री लिटिलटनने अपने खरीतेमे इस प्रश्नपर जो प्रस्ताव रखे है उनका त्याग नही किया जा सकता एव ब्रिटिश भारतीयोको हानि नही पहुँचाई जा सकती। हमने सम्मेलनके बारेमे सब समाचार पढे है। हमे जिस बातसे सबसे अधिक दुःख हुआ है, वह यह है कि अगर कार्रवाईका यह सार ठीक है तो, हमारे खयालसे, उसमे वक्ताओका निपट अज्ञानी होना प्रकट होता है। ब्रिटिश भारतीयोके बारेमे और साम्राज्य-सरकारके इरादोके बारेमे भी अनर्गल बाते कही गई है। हमने सुना है कि जो भाषण दिये गये वे अत्यन्त उत्तेजक थे और सवाददाताओने उनको बहुत नरम बना दिया है। हमे बताया गया है कि कुछ वक्ताओने तो साम्राज्य-सरकारको भी चुनौती दी। जैसे, जहाँतक यूरोपीयो और भारतीयोका सम्बन्ध है, यह मान लिया गया है कि यूरोपीय प्रमुख हिस्सेदार रहेगे, वैसे ही क्या यह तथ्य नही है कि जहाँतक साम्राज्य-सरकार और उपनिवेशोका सम्बन्ध है, साम्राज्य-सरकारकी आवाज प्रमुख है? एक बोअर प्रतिनिधिने कहा था, वे जो चाहे सो सब उन्हे मिलना ही चाहिए। यदि सम्मेलनके सदस्योका यही दावा हो, तो एक अत्यन्त गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता है कि उस सम्बन्धका क्या महत्त्व है जिसमे एक पक्षको सब-कुछ लेना जरूरी हो और दूसरे पक्षको सब-कुछ देना। साम्राज्यका वर्तमान रूप न्याय और औचित्यकी नीवपर बना है। उसने सबलसे निर्बलकी रक्षा करनेकी चिन्ता और क्षमताके सम्बन्धमे ससारव्यापी ख्याति प्राप्त की है। युद्धकी अपेक्षा शान्ति और दयाके कामोसे ही उसने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। और, हम कहना चाहते है, यदि सम्मेलनके सदस्य यह समझते हो कि उनके स्वार्थोकी पूर्तिके लिए साम्राज्य-सरकारकी निश्चित नीति अचानक बदल दी जायेगी और उनके कहनेसे ही, श्री क्विनके शब्दोमे, साम्राज्य-सरकार यह लूटपाट कर डालेगी, तो वे बडी भूल कर रहे है। इसलिए यद्यपि सम्मेलनकी हिसापूर्ण कार्रवाईसे ब्रिटिश भारतीयोमे डर पैदा होनेकी जरूरत नही है, फिर भी यह अच्छा ही हुआ कि ब्रिटिश भारतीय सघने सम्मेलनकी कार्रवाईपर विचारके लिए तुरन्त उपनिवेश-भरके भारतीयोकी सार्वजनिक सभा[1] बुला ली। हमने पिछले सप्ताह जो पूरा विवरण प्रकाशित किया था उससे जाहिर होता है कि सभामे बहुत लोग उपस्थित थे। उसमे उपनिवेशके तमाम हिस्सोसे प्रतिनिधि आये थे और उसकी कार्रवाई बिलकुल सौम्य, किन्तु साथ ही काफी जोरदार हुई थी। श्री अब्दुल गनीने अपने भाषणमे स्पष्ट किया कि प्रिटो-रियाके सम्मेलनमे उन हालतोकी कल्पना कर ली गई थी जो कभी थी ही नही, और फिर उनका इलाज शुरू कर दिया गया था। यह भी अच्छा हुआ कि उन्होने इस तथ्यपर जोर

१. १७ नवम्बरको एशियाई-विरोधी सम्मेलनकी कार्रवाईपर आपत्ति प्रकट करनेके लिए बुलाई गई सभा। (*इंडियन ओपिनियन*, नवम्बर १९, १९०४)

दिया कि सम्मेलनने ब्रिटिश प्रजाजनों और गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोंके भेदकी ओर, साथ ही दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगों और ब्रिटिश भारतीयोंके भेदकी भी बिलकुल उपेक्षा की है। इन दो मौलिक तथ्योंकी अवहेलनासे भारतीयोंकी जितनी हानि हुई है उतनी और किसी बातसे नहीं हुई। जिन सज्जनोंका भारतीयोंको ट्रान्सवालसे निकाल देनेमें स्वार्थ है उन्हें यह अनुकूल हो सकता है कि वे भारतीयोंको पहले तमाम एशियाइयोंमें शामिल करें और फिर एशियाइयोंको दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोंके साथ मिलायें एवं इस प्रकार असली मुद्देको गड़बड़ीमें डाल दें। उनके लिए ऐसा करना कुछ उचित है, क्योंकि सर आर्थर लाली भी अपने खरीतेमें इस विचारके शिकार हो गये हैं। परन्तु हमें विश्वास है कि अब, जब कि सम्मेलनमें उपस्थित अधिकतर लोगोंके असली इरादे साफ-साफ मालूम हो गये हैं, हम चाहेंगे कि श्री अब्दुल गनीने जिन भेदोंपर जोर दिया है, ब्रिटिश सरकारके अधिकारी भी उन्हें स्वीकार करें। ब्रिटिश भारतीय संघने जिन प्रस्तावोंको सभामें दुहराया है हम उनकी तरफ भी अधिकारियोंका ध्यान खींचते हैं। यदि हमें यह कहनेकी अनुमति हो तो हम कहेंगे कि उन्होंने इस पेचीदा सवालका पूरा और साथ ही राजनीतिज्ञतापूर्ण हल सुझाया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०४

२५७. रोगका घर

हम फेरेरास बस्तीके बारेमें डॉ० पोर्टरका सजीव विवरण उद्धृत कर रहे हैं। इनसे मालूम होगा कि यह स्थान जोहानिसबर्गकी पुरानी भारतीय बस्तीकी अपेक्षा सफाईकी दृष्टिसे बेहद खराब है। यह ब्रिटिश संविधानकी ताकत भी है और साथ ही कमजोरी भी कि उसके अन्तर्गत कानूनी अधिकारके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता, भले ही वह साफ तौरपर सार्वजनिक हितमें ही क्यों न हो। जोहानिसबर्ग प्लेग-समितिको पता चला है कि इस स्थानमें प्लेग फैले या न फैले, उसे कानूनन वह उपाय अमलमें लानेका अधिकार नहीं है जिसे श्री क्विनने अग्नि-चिकित्सा कहा है। और, इसलिए, जोहानिसबर्गको बरसातके मौसममें दुबारा प्लेग फैलनेकी जोखिम उठानी ही होगी। हमें आशा है कि इस विषम स्थितिका कोई उपाय ढूँढ़ा जायेगा और जल्दी ही फेरेरास बस्तीकी सीमाके भीतरके इलाकेका योग्य सुधार किया जायेगा। डॉ० पोर्टरके दिये हुए आँकड़ोंसे अध्ययनकी रोचक सामग्री मिलती है। सारे इलाकेकी आबादीमें २८८ भारतीय, ५८ सीरियाई, १६५ चीनी, २९७ केपवाले, ७५ काफिर और ९२९ गोरे हैं। इनमें से डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार सही तौरपर गन्दे इलाकेकी आबादीका बँटवारा यहाँ देते हैं। भारतीय २५५, सीरियाई १७, चीनी १२६, केपवाले १९२, काफिर ३१ और गोरे २४१। इस प्रकार हम देखते हैं कि नीचे दर्जेके लोग सभी जातियोंमें लगभग समान हैं। किन्तु हमारे खयालसे असली अपराधी मकान-मालिक हैं। जबतक उनको भारी किराया मिलता है तबतक उन्हें इस बातकी जरा भी परवाह नहीं होती कि बेचारे किरायेदारोंपर क्या बीतती है या वे कैसे रहते हैं। और, मकान-मालिक खून चूसनेकी कार्रवाई इसीलिए कर सके हैं कि जोहानिसबर्ग नगर-परिषद बहुत ज्यादा लापरवाह है। परिषद बहुत पहले ही इस स्थानका मामला तय कर सकती थी। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि इस मामलेमें मकान-मालिक भारतीय बिलकुल नहीं हैं, बल्कि यूरोपीय हैं। मगर इस कथनसे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि इन यूरोपीय

मकानमालिकोंसे, जो फेरेरास बस्तीमें भरे हैं, उसी वर्गके भारतीय मकान-मालिकोंमें कोई खास गुण ज्यादा हैं। यह तो सिर्फ इस बातका सबूत है कि मानवका स्वभाव लगभग एक-सा ही होता है, चाहे उसकी चमड़ी गोरी हो या भूरी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५८. बॉक्सबर्गके ब्रिटिश भारतीय

बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्तीमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंको नीचे लिखी सूचना मिली है:

सूचना

बॉक्सबर्गकी एशियाई बस्तीमें रहनेवाले एशियाइयोंको याद दिलाया जाता है कि उनकी किरायेदारी केवल अस्थायी और १९०३ की सरकारी आज्ञा सं० १३७१ के अनुसार एक महीनेकी पूर्व सूचनापर समाप्य है। इसलिए जो व्यक्ति स्थायी इमारतें बनायेंगे वे अपनी ही जोखिमपर बनायेंगे और यदि किसी समय बस्तीका स्थान बदला गया तो उन्हें उससे जो भी हानि होगी उसका मुआवजा पानेका हक नहीं होगा।

निवासियोंको यह याद दिलाना आवश्यक नहीं था कि उनकी किरायेदारी अस्थायी है, परन्तु सूचनासे कुछ ऐसा अर्थ निकलता है जो अशुभ-सूचक है। यह समझना कठिन है कि ये गरीब लोग इधरसे उधर क्यों खदेड़े जायें। बस्तीकी स्थितिपर कोई ऐतराज नहीं किया जा सकता, उसमें आवश्यकतासे अधिक भीड़ नहीं है और वह शहरसे पृथक् है। लोगोंको लड़ाईके पहलेसे वहाँ रहने दिया जा रहा है और जो बात गणराज्य सरकारने कभी नहीं की या जिसे वह कभी नहीं कर सकी, वही अब ब्रिटिश सरकारके शासनमें की जा रही है या करनेकी धमकी दी जा रही है। यद्यपि स्वर्गीय श्री क्रूगरके शासनमें ऐसी सब किरायेदारियाँ अस्थायी थीं, तथापि किसीने कभी किरायेदारोंके कब्जेमें हस्तक्षेपका विचारतक नहीं किया था। सूचनामें यह नहीं कहा गया है कि लोगोंको किसी निश्चित समयपर हट जाना होगा; परन्तु स्थायी इमारतें बनानेके विरुद्ध चेतावनी दी गई है। बहुतसे भारतीय अच्छे ढंगसे रहनेकी इच्छासे उपयुक्त मकान बनाने लगे हैं और यह सूचना इसीका परिणाम है। इस प्रकार कृत्रिम रूपसे अधिक अच्छे ढंगके जीवनके प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा की जाती हैं और फिर उनसे जो परिणाम होते हैं उनके लिए दोष दिया जाता है उन लोगोंको, जिन्हें ऐसी निर्योग्यताओंका भार उठाना पड़ता है। बॉक्सबर्गके 'पहरेदार' लोग फिर भी तिरस्कारपूर्वक अँगुली उठाकर कह सकेंगे कि भारतीय भवन-निर्माणपर खर्च नहीं करते और सभ्योचित ढंगसे नहीं रहते। वे लोग यह भूल जायेंगे कि भारतीयोंकी यह दशा परिस्थितियोंकी मजबूरीके कारण है। इस अशुभ अवस्थाका अन्त कब होगा? यदि सरकार इन लोगोंको हटाना ही चाहती है तो उन्हें स्पष्ट दीर्घकालीन और निश्चित सूचना देना असम्भव क्यों होना चाहिए? और जिन लोगोंने सूचनासे पहले ही कीमती इमारतें बना ली हैं उनके सम्बन्धमें वह क्या करना चाहती है? हम सरकारसे न्याय और उचित व्यवहारकी अपील करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५९. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें "आंग्ल भारतीय"

हमारी मेजपर समीक्षाके लिए एक रोचक लेख पड़ा है। वह १० नवम्बरके *रैंड डेली मेलमें* छपा था। उसका शीर्षक था: "असली भारतीय खतरा" इसका लेखक एक "आंग्ल भारतीय" है। लेखकने भारतीयोंको बिलकुल बहिष्कृत करनेके पक्षमें बड़ी ही अजीब दलीलें दी हैं। वह कहता है:

> गोरोंके देशके रूपमें ट्रान्सवालके भविष्यकी खातिर यह आशा की जानी चाहिए कि भारतीय व्यापारियोंको दूर रखनेके लिए मूर्ख-नगरीकी-सी प्रतिबन्ध-प्रणाली काफी नहीं समझी जायेगी।

फिर वह कहता है:

> इसका कारण कोई भारतीय भावना या सफाई, तन्दुरुस्ती या सदाचारका खयाल या कोई अन्य अर्द्धभावुकता नहीं है। जो एशियाइयोंको जानते हैं उनका विश्वास है कि उनका बाहर रहना ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए बेहतर है। यह सावधानी आत्मरक्षाकी स्वाभाविक भावनासे प्रेरित है।

फिर लेखक वह कारण बताता है जिससे वह भारतीयोंको खतरनाक समझता है, और कारण यह है:

> एक लाख भारतीयोंको दक्षिण समुद्रके किसी वीरान टापूमें रख दीजिए और दूसरे टापूमें एक लाख काफिरोंको। दोनोंको एक शताब्दीतक अपने-अपने उद्धारके उपाय करनेके लिए छोड़ दीजिए। इस अवधिके अन्तमें आप देखेंगे कि काफिर तो मिट्टीकी झोपड़ियोंवाले गांवमें बैठे जौकी शराब पी रहे हैं, और भारतीयोंने एक राज्य कायम कर लिया है, कुछ शहर बना लिये हैं, जहाजोंका बेड़ा तैयार कर लिया है और दूसरे देशोंके साथ व्यापार स्थापित कर लिया है एवं ऐसी संस्कृति तथा ऐसे धर्मका विकास कर लिया है जो कई बातोंमें पश्चिममें उपलब्ध किसी भी संस्कृति और धर्मकी बराबरीके हैं।

इस तरहका तर्क बड़ा भ्रामक है। लेखकने स्पष्ट ही कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी, और इतिहासके अनुभवकी भी, अवहेलना की है। हमें श्री लिटिलटन बताते हैं कि दक्षिण आफ्रिका गोरोंका देश नहीं है और जबतक यूरोपीयों और काफिरोंके बीच संख्याकी बड़ी असमानता काफिरोंके पक्षमें रहती है तबतक, यह बहुत आश्चर्यकी बात है, कोई व्यक्ति दक्षिण आफ्रिकाको गोरोंका देश कैसे कह सकता है। अभी उस दिन श्री लिटिलटनने कहा था कि ऐसा न होता तो वे चीनियोंको ट्रान्सवालमें लानेकी मंजूरी कभी न देते। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि, गलत हो या सही, गोरे लोग दक्षिण आफ्रिकामें आदिसे अन्ततक मालिक बनकर रहना चाहते हैं। वे शारीरिक काम नहीं करना चाहते। ऐसी परिस्थितियोंमें दक्षिण आफ्रिकाकी अर्थ-व्यवस्थामें अवश्य ही काफिरोंका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग रहेगा और जबतक दक्षिण आफ्रिकामें ऐसी परिस्थि-तियां रहेंगी तबतक भूरे लोगोंका स्थान भी यहां अवश्य रहेगा। अगर ऐसा न होता तो

निश्चय ही वे दक्षिण आफ्रिकामें कभी न आये होते। लेखकने पूर्वी आफ्रिकाका उदाहरण देकर यह बताना चाहा है कि किस प्रकार वहां भारतीय छा गये हैं। यह बयान भ्रमोत्पादक है; क्योंकि इसमें जो कुछ कहना अभीष्ट है, उसको देखते हुए यह सही नहीं है। अर्थात्, पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंने गोरोंकी जगह नहीं ली है। वहां जिस तरहकी जलवायु और जमीन है उससे गोरे निवासी आकर्षित नहीं हो सके हैं और इसलिए देशका विकास करनेके लिए भारतीयोंको प्रोत्साहन दिया गया है। लेखक द्वारा भारतीयोंकी यह प्रशंसा भारतीय मानसके लिए हर्षप्रद है, परन्तु वह सर्वथा भ्रामक है। वस्तुतः हम चाहते थे कि हम इस सारी स्तुतिके पात्र होते। जहां इसमें बहुत-कुछ सचाई है वहां हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जब-जब यूरोपीय और भारतीय पारस्परिक सम्पर्कमें आये हैं तब-तब यूरोपीयोंने ऊँचे दर्जेकी संगठन-शक्ति, कदाचित् ऊँचे दर्जेकी साम्प्रदायिक वृत्ति और उत्कृष्ट दूरदर्शिताका परिचय दिया है। परिणाम यह है कि एक वर्गके रूपमें भारतीयोंका दर्जा नीचा रहा है। लेखकने यूरोपका उदाहरण पहले क्यों नहीं दिया? वहां भारतीयोंके प्रवासपर बिलकुल पाबन्दी नहीं है, तो भी वहां भारतीय एक भी गोरेको अपदस्थ करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। इसका कारण स्पष्ट है। वहां न उनका कोई उपयोग है और न उनकी कोई मांग है। इसके विपरीत दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे काम हैं जिन्हें गोरे करना नहीं चाहते और काफिर कर नहीं सकते। इसी कारण भारतीयोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें रहना सम्भव हो सका है। कुछ उदाहरणोंमें एक-दूसरेके क्षेत्रमें हस्तक्षेप हो सकता है। लेकिन आम तौरपर प्रत्येक जातिको अपना स्तर और अपना धंधा मिल गया है। हमारे खयालसे किसीका यह कहना दुस्साहस ही है कि गोरोंका स्थान भारतीयों द्वारा ले लेनेका कोई गम्भीर खतरा है। इस तर्ककी तरह ही, जिसपर हम विचार कर रहे हैं, चौकानेवाले तर्कोंका उद्देश्य यह है कि असली मुद्दा गड़बड़में पड़ जाये और समस्याका उचित हल रुक जाये। दूरदर्शिताका काम यह है कि आगेकी बात सोचकर उसके पक्ष या विपक्षमें व्यवस्था की जाये। परन्तु जहां कोई खतरा न हो वहां खतरेकी कल्पना कर लेना पागलपन-भरी दूरदर्शिता है। किसीका यह कहना नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकामें एशियासे या, यों कहिये कि, संसारके किसी भागसे आनेवाले प्रवासियोंपर बिलकुल पाबन्दी ही न लगाई जाये। उचित प्रतिबन्ध प्रस्तावित हुए हैं और यदि उनपर अमल नहीं हुआ तो इसमें केवल उन लोगोंका कसूर है जो "आंग्ल भारतीय" के विचारोंसे सहमत हैं। यह "आंग्ल भारतीय" भारतमें रह चुका है इसलिए संसारमें अन्य किसीकी भी अपेक्षा उसे ज्यादा मालूम होना चाहिए कि उसके लेखमें जिस खतरेकी भविष्यवाणी की गई है वह केवल भ्रम है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०४

२६०. प्रार्थनापत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ३, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

अब्दुल गनी, अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गका आवेदनपत्र।

सविनय निवेदन है कि,

आपका आवेदक रैंड प्लेग-समितिके सामने पेश किये गये ब्रिटिश भारतीयोंके कुछ दावोंके सम्बन्धमें आदरपूर्वक महामहिमके समक्ष उपस्थित होना चाहता है। ये दावे उस माल-असबाबसे सम्बन्ध रखते हैं, जो इस वर्ष उपनिवेशमें प्लेग फैलनेपर उक्त समितिके आदेशसे नष्ट कर दिया गया था।

जोहानिसबर्गकी पूर्व भारतीय बस्तीमें प्लेग फैलनेका पता लगनेके बाद उसके निवासियोंको कुछ दिनोंके लिए घेरेमें रखा गया था। बादमें उन्हें क्लिप्सप्रूटके एक पृथक शिविरमें हटा दिया गया था। क्लिप्सप्रूट ले जानेकी कार्रवाई बहुत थोड़े समयकी सूचनापर की गई थी। जब बस्तीके लोगोंको क्लिप्सप्रूट हटाया गया, उन्हें आम तौरपर बिस्तरके अलावा कोई सामान ले जाने नहीं दिया गया। उन्हें आदेश दिया गया था कि वे अपनी सब कीमती चीजें, साज-सामान और यहाँ तक कि पलंग भी वहीं छोड़ जायें।

उनके विरोध करनेपर विशेष प्लेग-अधिकारी डॉ० पेक्सने उन्हें आश्वासन दिया था कि समिति नष्ट किये जानेवाले सारे मालका मुआवजा चुकायेगी; इसलिए भारतीयोंको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसी समझौतेपर भारतीय अपने साथ कोई सामान लिये बिना क्लिप्सप्रूट चले गये थे। मालिकोंके विरोधके बावजूद कुत्ते-बिल्ली जैसे घरेलू जानवरोंको भी मार डाला गया था, और अधिकतर पक्षियोंकी भी यही हालत की गई थी। डॉ० पेक्सके आश्वासनके बावजूद रैंड प्लेग-समितिने अपनी जिम्मेदारीसे इनकार कर दिया है। इनकारी किस आधारपर की गई, यह दावेदारोंको भेजे गये पत्रोंमें स्पष्ट किया गया है। समितिके सहायक सेक्रेटरी दावोंको अस्वीकार करते हुए लिखते हैं:

> मुझे आपको सूचित करनेका निर्देश हुआ है कि, वकीलकी सलाहपर चलते हुए, समिति इस रकमका भुगतान करनेका दायित्व स्वीकार नहीं कर सकती। प्लेग-सम्बन्धी नियमोंके अनुसार, कोई भी ऐसी वस्तु, जिसमें गिलटीवाले अथवा पूर्वीय प्लेगकी छूत लग जानेकी सम्भावना हो, या जिससे गिलटीवाले अथवा पूर्वीय प्लेगकी छूत फैलनेकी आशंका हो, छूत रहित की जा सकती है, और यदि किसी कारणसे छूत रहित करना असम्भव हो तो उसे नष्ट किया जा सकता है। समितिको सलाह दी गई है कि इन विनियमों (रेगुलेशन्स) के अनुसार अपने अधिकारों या कर्तव्योंके पालनके लिए उसे जो काम करने पड़े उनके लिए उसपर मुआविजेका दायित्व नहीं है।

मेरे संघका आदरपूर्वक निवेदन है कि समितिकी कानूनी स्थिति कुछ भी हो, वह अपने उस एकमात्र अधिकारीके, जो उस संकटके समय जनताकी सुरक्षाके लिए जिम्मेदार था, दिये हुए वचनका आदर करनेके लिए नैतिक दृष्टिसे बाध्य है। अगर ऐसा वादा न किया गया होता तो यह सन्देहजनक है कि वहाँके निवासियोंने जिस तरह बिना किसी शिकायतके अपना सामान छोड़ दिया था, उस तरह, प्लेग-अधिकारीकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए, वे उसे छोड़ते। जो सामान नष्ट किया गया, उसमें सूखे अनाज और दालके भरे हुए बोरे और डिब्बोंमें बन्द खाद्य-पदार्थ भी थे, जिन्हें वियेना-सम्मेलनने छूत न फैलानेवाला करार दिया है। लकड़ी और धातुकी घरेलू साज-सज्जाको भी नष्ट कर दिया गया था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ऐसी चीजें छूत रहित नहीं की जा सकती थीं।

लम्बी वार्ताओंके बाद समितिने उस सामानके दावोंको मंजूर कर लिया है, जिसे उसने बस्तीकी दूकानोंसे निकालकर काममें ले लिया था। एक समय तो इन दावोंको भी लगभग अस्वीकार कर दिया गया था। यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि जो सामान काममें लाया गया, वह उसी किस्मका था, जिस किस्मका कुछ सामान नष्ट किया गया था। दूसरी खाद्य-वस्तुओंको काममें लानेके बदले नष्ट कर देनेका कारण यह बताया गया है कि समिति पृथक् शिविरोंमें जरा-सी भी छूतकी जोखिमको टाल देना चाहती थी। सच तो यह है कि कुछ सामान क्लिपस्प्रूट भी भेजा गया था। वहाँके निवासी बस्तीकी दूकानोंका सामान स्वयं खपा लेनेको बिलकुल तैयार थे।

सामान खरीदीकी माँगें भी सबसे समान या निष्पक्ष रूपसे नहीं की गईं, यह उल्लेखनीय है। समितिकी खरीददारी कुछ गिने-चुने दूकानदारोंतक ही सीमित रही। इस प्रकार, कुछ भाग्यशाली लोग अपनी दूकानोंके सारे मालसे छुट्टी पा गये। और उनके दावे दूकानोंतक ही सीमित होनेके कारण, उन्हें उसका पूरा भुगतान मिल गया। परन्तु उनके कम भाग्यशाली भाइयोंको बिलकुल ही कुछ नहीं मिला।

बहुतसे लोग अपना सामान इस तरह पूरा-पूरा नष्ट कर दिये जानेके कारण लगभग कंगाल बन गये हैं।

इसलिए मेरा संघ महामहिमसे हस्तक्षेपका अनुरोध करता है। हमें विश्वास है कि रैंड प्लेग-समितिके आदेशसे जो माल नष्ट किया गया था उसके मूल्यके सम्बन्धमें पूर्व भारतीय बस्तीके निवासियोंके दावोंपर महामहिम अनुकूल विचार करानेकी कृपा करेंगे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

(ह.) अब्दुल गनी,
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–१२–१९०४

२६१. पत्र: "स्टार" को[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर ९, १९०४

महोदय,

आपके ८ तारीखके अंकमें श्री टी० क्लाइनेनबर्गके नामसे जो पत्र प्रकाशित हुआ है, उसके सिलसिलेमें मैं उनके वक्तव्यपर[2] विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ। मैं श्री क्लाइनेनबर्गके दिये हुए आँकड़ोंको स्वीकार नहीं करता। मैं नहीं मानता कि इस समय पीटर्सबर्गमें ४९ भारतीय व्यापारी हैं। भारतीय बस्तीसे अलग पीटर्सबर्ग नगरमें भारतीयोंके केवल २८ वस्तु-भंडार हैं और इनमें कुछके मालिक एक ही भारतीय हैं। मैंने अपने पहले बयानमें संशोधन करनेका प्रयत्न किसी तरह भी नहीं किया। मैंने उसमें इस आरोपका खण्डन किया था कि युद्धके पहले और उसके बाद नगरमें कारोबार करनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी संख्याके अनुपातमें बहुत विषमता है। युद्धके पहले जो लोग परवानोंके बिना व्यापार करते थे, वे कानून भंग करनेवाले नहीं कहे जा सकते। और खास तौरसे श्री क्लाइनेनबर्ग तो ऐसा कह ही नहीं सकते, क्योंकि वे ठीक-ठीक हालत जानते हैं और, उन्हें श्रेय देनेके लिए कहा जाये तो शायद उन्होंने यह परिस्थिति पैदा करनेमें मदद भी की थी। यह सच है कि भारतीय परवानोंके बिना व्यापार करते थे; परन्तु वे वकीलोंकी सलाहसे, गणराज्य सरकारकी जानकारीमें, परवानोंका शुल्क देनेका लिखित वादा करके और ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें ऐसा करते थे। अगर यह कानूनको भंग करना था तो मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं इन शब्दोंका अर्थ नहीं जानता। युद्धके पहले नगरके अन्दर कमसे-कम २३ भारतीय वस्तु-भण्डार थे। उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं।[3] सम्भवतः उनकी संख्या इससे ज्यादा थी, परन्तु मैं अभी जो संख्या और नाम दे रहा हूँ उनके बारेमें मेरे पास अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं। जिस मूल सूचीसे ये नाम लिये गये हैं वह सरकारके सामने पेश करनेके लिए मार्च, १९०३ में बनाई गई थी। मैं समझता हूँ कि मैंने श्री क्लाइनेनबर्गको जाँच-पड़ताल करनेके लिए काफी सामग्री दे दी है। अगर मेरे आँकड़े गलत हों तो मुझे उनमें सुधार स्वीकार कर लेनेमें खुशी होगी। इसके विपरीत, अगर

१. यह "श्री क्लाइनेनबर्ग और ब्रिटिश भारतीय संघ" शीर्षकसे छपे एक लेखके भागके रूपमें इस प्रारम्भिक टिप्पणीके साथ प्रकाशित किया गया था:

स्टारके साथ निम्न पत्र-व्यवहार हमारे इससे पहलेके अंकोंमेंसे सामग्रीकी अधिकतासे रुक गया था। विलम्बसे ही सही, हम इसे श्री अब्दुल्लाके ब्रिटिश भारतीयोंकी सार्वजनिक सभामें, जो अभी जोहानिसबर्गमें हुई थी, दिये गये वक्तव्यकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिए प्रकाशित करते हैं।

श्री क्लाइनेनबर्गके पत्रकी प्रतिलिपि, जिसका उत्तर इस पत्रमें दिया गया है, यहाँ छोड़ दी गई है।

२. इसमें ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको चुनौती दी गई है कि वे श्री क्लाइनेनबर्ग द्वारा राष्ट्रीय सम्मेलनमें पेश किये गये अंकोंको गलत साबित करनेके लिए प्रमाण दें।

३. देखिए अगला अनुच्छेद।

उनमें कोई गलती न निकाली जा सके और आप समझें कि मेरा वक्तव्य सही प्रमाणित हो गया है तो, मुझे आशा है, आप श्री क्लाइनेनबर्गसे ५० पौंड वसूल करके नासरत-हाउसको दे देंगे। एक बात और कहकर मैं समाप्त कर दूंगा। आपको कष्ट देनेमें मेरा उद्देश्य जनताके सामने सत्य और केवल सत्य पेश करना है। श्री क्लाइनेनबर्ग पीटर्सबर्गके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए सुपरिचित हैं। मुझे कोई सन्देह नहीं कि उनकी नीयत अच्छी है। और, मेरे संघने राष्ट्रीय सम्मेलनमें कही गई बातोंको उठाकर जहाँ-कहीं भी आवश्यक हो, उनका प्रतिवाद करना जो अपना कर्तव्य समझा है, वह इसलिए कि मेरा विश्वास है, इस विवादमें जानकारीका अभाव सबसे ज्यादा उपद्रवकारी है।

ऊपर जिन वस्तु-भण्डारोंका संकेत किया गया है वे हैं:

हासिम मोती ऐंड कं० (३), तार मुहम्मद तैयब (२), अहमद मूसा भायात (२), अहमद इब्राहीम वाड़ी, अब्दुललतीफ अली, कासिम सुलेमान, कासिम तैयब, उस्मान मुहम्मद ऐंड कं० (२), गनी हासिम, हाजी मुहम्मद, तैयब हाजी खान मुहम्मद (३), जमील अहमद उस्मान, हासिम मुहम्मद, अभेचन्द, इब्राहीम मुहम्मद और गडीत।

आपका, आदि,

अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०४

२६२. रैंड प्लेग-समिति

ब्रिटिश भारतीय संघने स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नरके नाम जो आवेदनपत्र[1] भेजा है उसे हम दूसरे स्तम्भमें प्रकाशित कर रहे हैं। गत मार्चमें जोहानिसबर्गमें प्लेगकी बीमारी फैलनेपर रैंड प्लेग-समितिके निर्देशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके सम्बन्धमें समितिके सामने कुछ दावे दायर किये गये हैं; संघका आवेदनपत्र इन्हीं दावोंके सम्बन्धमें है। उससे रैंड प्लेग-समितिकी क्षुद्रता और तमाम नैतिक दायित्वोंकी हृदयहीन उपेक्षापर प्रकाश पड़ता है। आवेदकोंके कथनानुसार, माल-असबाब जलानेके पहले डॉ० पेक्सने निश्चित वादा किया था कि सामानके मालिकोंको मुआवजा दिया जायेगा; और अगर यह सच हो कि लकड़ीकी साज-सज्जा, धातुकी चीजें और सूखे खाद्य-पदार्थोंसे भरे बोरेके-बोरे जला दिये गये थे, तो यह सत्यानाश अवश्य ही लोगोंके स्वास्थ्यको खतरेसे बचानेके लिए उतना न किया गया होगा, जितना उनकी कल्पनाको प्रभावित करने और उनकी भावनाओंको तुष्ट करनेके लिए किया गया होगा। यह मान लेना भयानक होगा कि लोहेका पलंग या लकड़ीका साज-सामान भी ठीक तरहसे छूतसे रहित नहीं किया जा सकता था। यह स्मरणीय है कि जब पहले-पहल नेटालमें प्लेग फैला, तब नेटाल सरकारने भारत सरकारसे पूछा था कि क्या, उसके खयालसे, चावल तथा अन्य खाद्य पदार्थों द्वारा प्लेगकी छूत फैलनेकी सम्भावना है। भारत-सरकारने उसे विशेषज्ञोंका यह अभिमत सूचित किया था कि भारतके प्लेग-ग्रस्त जिलोंसे भी चावलके बोरे और ऐसे ही अन्य खाद्यपदार्थ मँगानेमें छूत फैलनेका कोई खतरा नहीं है।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको", दिसम्बर ३, १९०१।

फिर, वस्तियोंके लोग इसलिए तैयार थे कि वहाँ जो खाद्यपदार्थ पाये गये थे, वे उनको ही बाँट दिये जायें। इस सबके वावजूद सारेके-सारे सामानका जो विनाश किया गया उससे सार्वजनिक सुरक्षा जरा भी बढ़ी हो, इसमें हमें बहुत सन्देह है। कुछ भी हो, अगर रैंड प्लेग-समितिने गरीब लोगोंका माल जला डालनेका आनन्द लेना पसन्द किया था तो अब वह उसका मूल्य चुकानेकी जिम्मेदारीसे बच नहीं सकती। उपर्युक्त परिस्थितियोंमें कानूनी संरक्षणका सहारा लेकर भुगतानको टालनेकी कोशिश करना, हमारे नम्र विचारमें, नितान्त अपयशजनक है। हम यह बात दस बार दुहरायेंगे कि प्लेग जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूर्ण उपेक्षासे फैला था। यह स्वीकार किया जा चुका है कि उस संकटके समयमें भारतीयोंने अपना व्यवहार अत्यन्त आदर्श रखा। नगरपालिकाके उत्तरदायी अधिकारीके वादेपर विश्वास करके वे अधिकारियोंको जरा भी कष्ट दिये विना जल्दीसे-जल्दी क्लिपस्प्रूट चले गये थे। ऐसे लोगोंके न्यायपूर्ण दावे माननेसे मुकरनेका अर्थ बिना किसी औचित्यके उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लेना है। जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें थोड़ेसे अभागे लोग बचे थे। उनका सारा माल-असबाब जला देना एक हृदयहीन और, रैंड प्लेग-समिति जैसी महान संस्थाके लिए अयोग्य कार्रवाई थी। जो लोग क्लिपस्प्रूट चले गये थे और जिन्हें लगभग प्रतिबन्धमें रखा गया था और अपना रोजमर्राका धंधा करनेसे रोक दिया गया था, वे सहानुभूति और ज्यादा अच्छे सलूकके पात्र हैं। हमें आशा है कि स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय श्री अब्दुल गनीके आवेदनपत्रपर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे और मुआवजा चुकानेका आदेश देकर ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०४

२६३. पीटर्सबर्गके भारतीय

श्री अब्दुल गनीने हाल ही में जोहानिसबर्गकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए पीटर्सबर्गमें युद्धके पहले और बाद व्यापार करनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी जो संख्या बताई थी उसे पीटर्सबर्गके श्री क्लाइनेनबर्गने *स्टारमें* प्रकाशित एक पत्रमें चुनौती दी है। अपने कथनके समर्थनमें श्री क्लाइनेनबर्गने कुछ आँकड़े दिये हैं और गर्वपूर्वक घोषणा की है कि यदि उनके आँकड़ोंको गलत सिद्ध कर दिया जाये तो वे ५० पौंड दण्ड देंगे जो नासरत-हाउसको भेज दिया जायेगा। शर्त यह है कि अगर वे आँकड़े ठीक सिद्ध हो जायें तो दूसरा पक्ष भी उतनी ही रकम दण्डमें देनेके लिए तैयार हो। श्री अब्दुल गनीने तत्परताके साथ *स्टारको* पत्र लिखा है जिसमें यह चुनौती स्वीकार की गई है। हमें आश्चर्य है कि इतना अनुभव रखते हुए भी श्री क्लाइनेनबर्ग दूसरोंके दिये हुए आँकड़ोंसे भ्रान्त हो गये। वास्तवमें, अगर युद्धके पहले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको दिये गये परवानोंकी संख्या प्रत्यक्ष व्यापार करनेवालोंकी असली संख्या जाननेकी कोई कसौटी होती तो हमें मालूम होता कि सारे ट्रान्सवालमें मुश्किलसे १०० भारतीय व्यापारी थे। मगर असल बात दूसरी ही थी। इस देशके बारेमें जानकारी रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको मालूम है कि वस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें १०० से बहुत अधिक ब्रिटिश भारतीय व्यापारी अपना कारोबार चला रहे थे। यह स्थिति इसलिए सम्भव हुई थी कि ब्रिटिश एजेंटने परवानोंसे रहित भारतीय व्यापारियोंको दृढ़तापूर्वक संरक्षण प्रदान किया था। इस तरह, भारतीयोंकी सभामें जो यह कहा गया था कि ट्रान्सवालकी इस

नागरिक अवश्य ही मामला अपनी इच्छाओंके अनुसार निपटानेकी माँग करेंगे। अगर व्यापारके मामलेमें भारतीय लोग नागरिकोंकी इच्छाओंका विरोध करते हैं, जिसका उदाहरण क्वीन स्ट्रीटकी मनहूस काफिर-मंडी है, और तब उनपर पहलेसे कहीं अधिक कठोर ढंगकी पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं, तो उन्हें आश्चर्य न होना चाहिए। मुझे ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंका पूरा खयाल है। परन्तु भारतीयोंको आम तौरपर समझ लेना चाहिए कि अगर वे बाधक होंगे और इस समाजपर अपनी इच्छाएँ थोपेंगे और इस नगरपर मॉरिशसकी तरह छा जाना चाहेंगे, तो वे देखेंगे कि सभी वर्गोंके गोरे लोग उनके खिलाफ एक हो गये हैं। यह अच्छा है कि यह बात साफ-साफ बता दी जाये। इस नगरके नागरिक, जिन्होंने इसे बनाया है और जिनपर इसकी जिम्मेदारी है, भारतीयोंके नचाये नहीं नाचेंगे। वे ऐसा संगठन बनाकर सही रास्तेपर चल रहे हैं जो यह आग्रह करेगा कि नगर-परिषद इस ढंगपर काम करे या ऐसी सत्ता प्राप्त करे जिससे भारतीयोंके लिए धोखेधड़ीकी गुंजाइश न रहे और भारतीय समाज बहुत-कुछ बँध जाये। क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीके बारेमें जो रवैया इख्तियार किया गया है, अकेला वही समाजके क्रोधको भड़कानेके लिए काफी है और एकबार कानूनी अधिकार निश्चित हो जानेके बाद परवानोंके बारेमें विरोध करनेसे परिस्थितिमें सुधार नहीं होगा।

हमारे सहयोगीने क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीको हुडामलके मुकदमेसे मिला दिया है, जिससे उसका दूरका भी सम्बन्ध नहीं है। और उसने हुडामलके मुकदमेको भारतीय परवानोंके सारे प्रश्नसे जोड दिया है और फिर नागरिकोंको भारतीयोंके खिलाफ भड़काया है।

काफिर-मंडी ऐसी खटकनेवाली चीज है, जिसके पक्षमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस मामलेको उसके गुण-दोषोंके आधार पर निपटाना है। परन्तु एक व्यक्तिके दुराग्रहके लिए सारी जातिको दोष देना ठीक नहीं होगा। यह कहना भी ठीक नहीं है कि नागरिकोंकी उचित इच्छाओंका दृढ़तापूर्वक विरोध करनेका विचार बाँध रखा गया है। हम मानते हैं कि परवाने बदलनेके कामका नियमन होना चाहिए। परन्तु मौजूदा मामलेमें हमारा खयाल है कि नगर-परिषदकी कार्रवाई मनमानी, द्वेषपूर्ण, अत्याचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण है। श्री हुडामलका पक्ष औचित्यकी दृष्टिसे अत्यन्त सबल है। उनका मकान बढ़िया हालतमें है और अपनी श्रेणीमें वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे मकानके मुकाबलेमें अच्छा ठहर सकता है। वे स्वयं बहुत ही साफ-सुथरी आदतोंके व्यक्ति हैं। उनका व्यापार ऊँचे दर्जेके यूरोपीयोंमें है और उनपर बहुत-सी यूरोपीय कोठियोंका विश्वास है। कानून उनके पक्षमें दिखाई देता है। तब वे इनसाफकी रूसे जिस बातके हकदार हैं उसके लिए क्यों न लड़ें? और यदि नगर-परिषदका सारा जोर उनके खिलाफ अन्यायपूर्ण ढंगसे लगा दिया जाता है और आम भारतीय इस पीड़ित व्यापारीके सहायतार्थ एक हो जाते हैं तो ऐसा करना उनका कर्त्तव्य ही है और हमारे खयालसे हमारे सहयोगीको भारतीयोंके न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नकी नुक्ताचीनी करनेके बजाय सराहना करनी चाहिए। जब इस सिद्धान्तपर अमल हो जाये तब भारतीयोंसे अपील करनेका समय आयेगा कि वे नगर-परिषदकी इच्छाओंकी पूर्ति करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

२६७. राजनयिक श्री लवडे !

हमें अपने सम्पादकीय स्तम्भमें नीचेका विवरण देते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है। इसके लेखक पाँचेफस्ट्रूमकी सभाका विवरण[1] देनेके लिए हमारे द्वारा विशेष रूपसे वहाँ भेजे गये थे, और श्री लवडेने, उस अन्यथा गम्भीर रह सकनेवाली सभाको जिस वातावरण और कटुतासे व्यंजित करना ठीक समझा उसपर एक अंग्रेज होते हुए भी लेखकने बड़ी तीव्रतासे क्षोभ प्रकट किया है; और यद्यपि सिद्धान्त रूपसे हम अपने सम्पादकीय स्तम्भोंमें तीखी, चुटीली शैलीके विरुद्ध हैं फिर भी इसे अपवाद मानकर देनेमें हमें हिचक नहीं है, क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्तिकी सच्ची भावनाओंको प्रतिध्वनित करता है जो उन कार्यवाहियोंका साक्षी था और जिसे उसकी सत्य-न्याय बुद्धिने अंधेको अंधा कहनेसे विरत नहीं किया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

२६८. क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडी

जिन लोगोंका क्वीन स्ट्रीटकी शर्मनाक काफिर-मंडीकी व्यवस्थासे सम्बन्ध है उनके विरुद्ध चारों ओरसे निन्दाकी आवाज उठी है। हम उनका पूरी तरह साथ देते हैं। यह जितनी जल्दी हमारे बीचसे मिटा दी जाये, सब सम्बन्धित जनोंके लिए उतना ही अच्छा होगा। हम इस चर्चामें भारतीय प्रश्नको बीचमें लानेकी प्रवृत्ति देख रहे हैं। परन्तु थोड़ा विचार करनेसे ही मालूम हो जायेगा कि उससे भारतीय प्रश्नका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सही है कि ऊपरी क्षेत्रका मकान-मालिक एक भारतीय है। पाठकोंको याद होगा कि ऐसी मंडियाँ दो थीं। उनमेंसे एकके मालिक श्री उमर हाजी आमदने अपनी मंडी, ज्यों ही उनका ध्यान इस आपत्तिजनक वस्तुकी ओर दिलाया गया त्यों ही, तुरन्त बन्द कर दी। इससे भारतीयोंके स्वभावका उज्ज्वल पक्ष प्रकट होता है। दूसरी मंडीका मालिक हठी है और नगर-परिषदको कठिनाईका सामना करनेका कोई रास्ता खोजना पड़ेगा। परन्तु सम्भवतः यह याद रखना अच्छा होगा कि यह जगह यूरोपीयोंको किरायेपर दी गई है और वे ही मंडीका प्रबन्ध कर रहे हैं। यह सवाल हरएक समाजके लिए मामूली सामाजिक दबाव डालनेका है और आवश्यकता हो तो इसमें कुछ कानूनी मदद ली जा सकती है। इस बुराईके साथ भारतीयोंका वर्गके रूपमें उतना ही सम्बन्ध है, जितना यूरोपीयोंका; और यदि यह हकीकत ध्यानमें रखी जाये और जिन दूसरे जातीय प्रश्नोंका इस मामलेपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता उनसे दूर रहा जाये तो इससे समाज तन्त्रके निर्विघ्न संचालनमें सुविधा होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

१. इस सम्पादकीय टिप्पणीके बाद दिया गया सभाका विवरण यहाँ छोड़ दिया गया है।

२६९. कोयलेकी खानोंके गिरमिटिया मजदूर

नेटालकी कोयलेकी खानोंके गिरमिटिया मजदूरोंकी स्थितिपर हम अन्यत्र *विटनेसके* तिनिधिकी रिपोर्ट छाप रहे हैं। यदि ये आरोप सच हैं तो उनसे पता चलता है कि स्थिति यकर है। हमारे सहयोगीने जाँचकी माँग की है। हम उसके इस अनुरोधमें उसके साथ हैं। वान मालिकोंको इसका स्वागत करना चाहिए। लेकिन अगर जाँच की जाती है तो, हमें विश्वास है कि, वह खुली, सार्वजनिक और पूर्णतः निष्पक्ष होगी। विश्वास जमानेके उद्देश्यसे आयोगमें प्रमुखता गैर-सरकारी सदस्योंकी होनी चाहिए; और, यदि हम यह कह सकें तो, उनमें एक प्रतिष्ठित भारतीय भी हो। इस उपनिवेशमें गिरमिटिया मजदूरोंकी सामान्य स्थिति सन्तोषजनक है और यदि सन्देहके भी कारण दूर कर दिये जायें तो इससे उसकी नेकनामीमें वृद्धि ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

२७०. पाँचेफस्ट्रूमकी सभा

प्रस्तावोंमें गलतबयानियाँ

अब हम पाँचेफस्ट्रूमकी आम सभामें पास किये गये प्रस्तावोंको लेना चाहते हैं और बताना चाहते हैं कि वे गलतबयानियोंसे कितने भरे हुए हैं।

हम एक-एक प्रस्ताव क्रमानुसार लेंगे।

पहला इस वक्तव्यसे प्रारम्भ होता है:

> जब कि इस देशकी सरकार और इंग्लैंडकी सरकारने निर्णय कर लिया है कि एशियाइयोंको गिरमिटपर ही प्रवेश करनेकी अनुमति होनी चाहिए और एशियाइयोंके प्रवासका नियमन करनेके लिए एक श्रमिक-आयातक अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन ऑर्डिनेन्स) पास हो गया है।

अब, न ब्रिटिश सरकारने और न ट्रान्सवाल सरकारने निर्णय किया है कि एशियाई प्रवास केवल गिरमिटपर ही हो सकता है। "एशियाइयोंके प्रवासका नियमन करनेके लिए" भी कोई श्रमिक-आयातक अध्यादेश पास नहीं हुआ। जो वास्तवमें हुआ है सो यह है। इस वर्ष, ११ फरवरीको "ट्रान्सवालमें अकुशल अयूरोपीय श्रमिकोंके प्रवेशके नियमनके लिए" एक अध्यादेश, सन् १९०४ का सं० १७ स्वीकृत किया गया। वास्तवमें यह बिलकुल ही अलग प्रस्ताव है और ऐसा है जिससे मामलेका समूचा रूप बदल जाता है। इसके अतिरिक्त इसी अध्यादेशके खण्ड ३४ में हम पढ़ते हैं:

> गवर्नर द्वारा स्वीकृत रेलमार्गोंके बनाने या अन्य सार्वजनिक कामोंके लिए नियुक्त उन ब्रिटिश भारतीय मजदूरोंपर इस अध्यादेशमें कही गई कोई भी बात लागू नहीं होगी जिन्हें इस कालोनीमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा प्रवेश दिया गया है; सिवा इसके

कि यह प्रवेश सदा उन नियमोंके अनुसार होगा जिन्हें विधान-परिषद स्वीकार करे; और भी, सिवा इसके कि श्रमिकोंकी अपने मूल-देशमें वापसी आवश्यक परिवर्तनोंके साथ ऐसे ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होगी।

इस तरह इस अध्यादेशके मार्गदर्शक नियमोंका न केवल सिर्फ "अकुशल" अयूरोपीय श्रमिकोंसे ताल्लुक है; और ब्रिटिश भारतीय श्रमिक अध्यादेशकी कार्य-परिधिसे साफ तौरपर न केवल बाहर बताये गये हैं; बल्कि उनकी विशेष परिस्थितिसे निपटनेके लिए विधान-परिषद्में विशेष नियम बनाना आवश्यक होगा। और, "ब्रिटिश भारतीयोंका निर्बाध प्रवेश" — इस वाक्यांशमें यह गृहीत है कि देशमें भारतीय बड़े पैमाने पर प्रवेश करते रहे हैं। तथ्य यह है कि वास्तविक शरणार्थियोंको छोड़कर ब्रिटिश भारतीयोंका प्रवेश एकदम बन्द कर दिया गया है।

हमारे पाठकोंको यह भलीभाँति याद होगा कि कुछ ही महीने पहले प्रमुख अनुमतिपत्र-सचिवने उच्चायुक्तको सूचित किया था कि किसी नये भारतीयको उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और अनुमतिपत्र वास्तविक शरणार्थियोंको इक्के-दुक्के दिये जाते हैं।

दूसरे प्रस्तावमें कहा गया है:

जबकि एशियाइयोंको खुले हाथों व्यापार-परवाने दिए जानेसे पीटर्सबर्गमें गोरोंकी अपेक्षा एशियाइयोंकी संख्या तिगुनी है।

पीटर्सबर्गमें युद्धके पहले २३ भारतीय भण्डार थे, तथ्य यह है। इस समय यह संख्या २८ है। हम कहनेकी स्वतन्त्रता लेते हैं कि पीटर्सबर्गमें गोरोंके भण्डार १४ से अधिक हैं।

प्रस्ताव सं० ३ एशियाइयों द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारों और जमीनोंसे लगी हुई जायदादोंकी कीमतें गिरनेका उल्लेख करता है। तथ्य फिर यही है कि वास्तवमें भारतीयों द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारों और जमीनोंसे लगी हुई जायदादोंकी कीमतें बढ़ गई हैं, कारण सीधा है कि उनका अच्छा किराया मिलता है।

और अधिक तफसीलमें जानेकी जरूरत नहीं है। यदि प्रस्तावोंमें, जैसी हमने ऊपर बतायी हैं, ऐसी अतिशयोक्तियाँ हैं तो नतीजा साफ निकलता है कि उनपर बोलनेवाले वक्तव्योंकी असावधानीमें पीछे नहीं रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

२७१. पत्र : "स्टार"को[1]

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर २४, १९०४के पूर्व

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय,

पिछले शनिवारको विधान-परिषदके सदस्य श्री लवडेने पॉचेफस्ट्रूममें आयोजित एक एशियाई-विरोधी सभामें जो भाषण किया उसमें उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंपर बड़ा जहरीला आक्रमण किया है। क्या मैं उसके सिलसिलेमें आपके सौजन्यका लाभ उठानेकी अनधिकार चेष्टा कर सकता हूँ? श्री लवडेने मेरे उस भाषणका जवाब देनेकी कृपा की, जो मैंने भारतीयोंकी सार्वजनिक सभामें[2] किया था। और अपनी आलोचनाकी गर्मीमें वे गालियों और अंधाधुंध बयानोंपर उतर आये। इससे अधिक अंधाधुंधी मैंने उनके जैसी उत्तरदायी स्थितिके किसी व्यक्तिमें नहीं देखी। उन्हें मुझपर "इरादतन निरंकुश, और दुष्टतामय असत्य वक्तव्य देने और पूर्वीय छल-कपटसे काम लेनेका" आरोप मढ़नेमें कोई संकोच नहीं हुआ है। परन्तु उनके स्तर-पर उतरनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। फिर भी मैंने अपने भाषणमें जो-जो बातें कही थी, उनमें से हरएकको फिरसे दुहराता हूँ और कोई बात वापस नही लेता। आपकी अनुमतिसे मैं उनके अनेकानेक प्रमाणोंमें से कुछ यहाँ देनेका प्रयत्न करूँगा। श्री लवडेने मेरे भाषणके उस हिस्सेपर नाराजगी जाहिर की है, जिसमें मैंने शिकायत की थी कि उन्होने राष्ट्रीय सम्मेलनमें १८८४ के समझौतेका इतिहास बताते हुए यह हकीकत प्रकट नहीं की कि उस समय उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीय मौजूद थे; और उन्होंने यह भी नहीं बताया था कि १८८५ का कानून ३ वस्तुस्थितिके गलत रूपमें पेश किये जानेके कारण स्वीकार किया गया था। अगर आपने और आपके सहयोगियोंने उक्त सम्मान्य महाशयके भाषणका विवरण जरा भी सही प्रकाशित किया था, तो मेरा कथन पूरी तरह सच है। *स्टारमें* प्रकाशित विवरणके अनुसार श्री लवडेने यह कहा था :

> जब १८८१ का समझौता हुआ था, उस समय ट्रान्सवालमें भारतीय थे ही नहीं; और इसमें जरा भी शक नहीं कि उस समझौता-पत्रके लेखकोंके सामने, जिनकी बैठक प्रिटोरियामें हुई थी, एशियाइयोंका प्रश्न कभी उपस्थित हुआ ही नहीं। उस समझौतेकी सब धाराओंके अध्ययनसे साफ जाहिर हो जाता है कि उसमें सिर्फ गोरी कौम और देशके वतनियोंका ही विचार किया गया था। रोक-थामके कानूनका प्रस्ताव तो सर्वप्रथम भारतीय व्यापारियोंके आने और १८८१ के समझौतेके बदलेमें १८८४ का समझौता स्वीकार होनेके बाद ही पेश किया गया था।

इस प्रकार, अगर श्री लवडेके भाषणका विवरण सही छापा गया है तो, उन्होंने दावा किया है कि चूंकि १८८४ के पहले यहाँ कोई भारतीय आये नहीं थे, इसलिए "वतनियोंके अलावा"

१. यह *इंडियन ओपिनियनमें* "श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय संघ" शीर्षकसे छापा गया था।
२. यह उल्लेख १७ नवम्बरकी जोहानिसबर्गकी सभाका है, देखिए *इंडियन ओपिनियन* १९-११-१९०४।

शब्द केवल यूरोपीयोंके लिए ही लागू हो सकते थे। इसके उलटे, सच बात यह है कि १८८४ के समझौतेके स्वीकृत होनेके पहले ही भारतीय प्रवासी यहाँ मौजूद थे। मैंने आपके विवरणको दूसरे पत्रोंके विवरणोंसे मिला कर देखा है और सार रूपमें वह उनसे मिलता है। इसलिए, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मेरी यह शिकायत पूरी तरह न्यायोचित है कि श्री लवडेने इस प्रश्नका इतिहास पेश करते हुए एक महत्त्वकी हकीकत छोड़ दी थी। अब, जहाँतक उस गलतबयानीका सम्बन्ध है, जिसके आधारपर १८८५ का कानून ३ पास किया गया, मैं एक अर्जीका निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ। यह अर्जी उन अनेकानेक अर्जियोंमें से एक है, जिनके आधारपर हमारी पूर्वगामी सरकारने ब्रिटिश सरकारको उक्त धाराको कानूनी रूप देनेकी अनुमति प्रदान करनेके लिए राजी किया था। अर्जीके अंश ये हैं:

> **सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोंके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है।**

और भी,

> **चूँकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।**

इन अर्जियोंपर उत्तरदायी लोगों और जनताके प्रतिनिधियोंने हस्ताक्षर किये थे। और इन अंधाधुंध, अन्यायपूर्ण और असत्य बयानोंके कारण ही १८८५ का अधिनियम ३ मंजूर किया गया था। श्री लवडेने अपना कथन फिरसे दुहरा देना उचित समझा है कि एक अरब व्यापारी ४० पौंड सालानासे ज्यादा खर्च नहीं करता। उन्होंने अपने समर्थनमें एशियाई व्यापारी आयोग (एशियाटिक ट्रेडर्स कमीशन) की कार्रवाईका हवाला दिया है। मगर उस आयोगके सदस्योंने ऐसी कोई बात कही ही नहीं। पॉचेफस्ट्रूममें उन्होंने और भी जोरोंसे अपनी बात कही है। इसलिए मैं फिरसे उस कथनका खण्डन करता हूँ और सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि श्री लवडेकी अपेक्षा मुझे इस बातका ज्ञान ज्यादा होना चाहिए कि भारतीय व्यापारी कितना खर्च करता है। कुछ लोगोंको तो सालमें नहीं, महीनेमें ४० पौंडतक सिर्फ किराया ही दे देना पड़ता है। क्या श्री लवडे किसी एक भी भारतीय व्यापारीसे परिचित हैं? उन्होंने कभी भारतीय व्यापारियोंके बहीखाते देखे हैं? क्या उन्होंने एशियाई आयोगकी रिपोर्ट पढ़ी है? मैं खुशीके साथ उनके सामने २० भारतीय व्यापारियोंके बहीखाते पेश करनेको तैयार हूँ; क्या अब वे उन्हें देखना पसन्द करेंगे? मैं इस बयानका खण्डन करता हूँ कि भारतीय व्यापारियोंके कर्मचारियोंको २० शिलिंग माहवारसे ज्यादा नहीं मिलता। मैं उनके सामने ऐसे भारतीय कर्मचारियोंके नाम रखनेको तैयार हूँ, जिन्हें भोजन और निवासके खर्चके अलावा १०० पौंड सालाना वेतन मिलता है। श्री लवडेने मेरे इस वक्तव्यको, कि किसी भारतीयको देशमें आनेकी अनुमति नहीं दी जाती, "दुष्टतामय असत्य" बताया है। अगर मैंने गलती की है तो परवाना-विभागके मुख्य सचिवने भी वही किया है। आपको याद होगा, कुछ ही महीने पहले मुख्य सचिवने लॉर्ड मिलनरको रिपोर्ट दी थी कि किन्हीं भी नये भारतीयोंको उपनिवेशमें आनेकी अनुमति नहीं दी जाती। उन्होंने यह भी कहा था कि परवाने सिर्फ बहुत कम संख्यामें प्रामाणिक शरणार्थियोंको दिये जाते हैं। श्री लवडेने इस बयानके विरोधमें प्रिटोरिया और पॉचेफस्ट्रूमका उदाहरण देते हुए कहा है कि युद्धके बादसे प्रिटोरियामें भारतीय प्रवासियोंकी आबादी दूनी हो गई है; युद्धके पहले जहाँ १५-२० व्यापारी ही थे वहाँ अब ९० से १०० तक हैं। यह बिलकुल निराधार है। प्रिटोरियामें भारतीयोंकी आबादी बढ़ी जरूर है, किन्तु वह दुगुनी नहीं हुई। इस बढ़तीका कारण यह है कि उपनिवेशके दूसरे हिस्सोंके

लोग वहाँ आ गये है, क्योंकि दूसरी जगहोंमें उन्हें न तो परवाने मिले और न रोजी कमानेके कोई दूसरे साधन ही। परवाना-अधिकारीके कथनानुसार, उपनिवेशमें १०,००० से ज्यादा भारतीय नही हैं। १८९६ में ट्रान्सवालमें लगभग १०,००० भारतीय थे और निस्सन्देह १८९९ में यह संख्या बहुत बढ़ गई होगी। माननीय सज्जनने आगे कहा हे कि "युद्धके पूर्व पीटर्मेवर्गमें १३ भारतीय दूकानें थी, आज उनकी ४९ दूकानें है।" इसके खिलाफ, मैं यह कहनेकी ढिठाई करता हूँ कि युद्धके पूर्व सिर्फ शहरमें ही २३ दूकानें थी, आज २८ हैं। इसके बाद श्री लवडेने कहा है:

> **भारतीय हमसे कहते हैं कि उनके कुछ अधिकार हैं; उन्हें वे 'स्वतन्त्रताका घोषणा-पत्र' कहते है। परन्तु क्या भारतमें भारतीयों और गोरोंके बीच कोई भी सामाजिक व्यवहार होता है? वहाँ किसी तरहका कोई व्यवहार नहीं है।**

यह प्रश्न बेकार ही उठा दिया गया है। भारतीयोंने यहाँ कोई सामाजिक व्यवहार शुरू करनेकी माँग नही की। उन्होने सिर्फ व्यापारकी उचित सुविधाओके प्राथमिक अधिकारका, सामान्य प्रतिबन्धोके अन्तर्गत प्रवासकी उचित सुविधाओंका, सम्पत्ति रखने और आवागमनकी स्वतन्त्रता पानेका दावा किया है। परन्तु श्री लवडेकी जानकारीके लिए मै बता दूं कि भारतमें भारतीयो और अंग्रेजोके बीच कुछ हदतक सामाजिक सम्बन्ध भी है। कूचबिहारके महाराजा द्वारा आयोजित सहनृत्य (बॉल-डान्स) में सर्वश्रेष्ठ यूरोपीय समाज सम्मिलित होता हे। वाइसराय और गवर्नरोके कार्यक्रमो और भोजोंमें सब वर्गोके भारतीयोको आमन्त्रित किया जाता है। भारतके मुख्य शहरोमें समय-समयपर जो दरबार हुआ करते है, वे शहशाहकी अंग्रेज प्रजाके बराबर ही भारतीय प्रजाके लिए भी खुले होते हैं। अगर मै यह सब कह रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए कि हमारे सबसे पुराने परिषद-सदस्यका शोचनीय अज्ञान प्रकट हो जाये, अपने देशभाइयोंके दिलोमे सामाजिक कार्योमे भाग पानेकी जरा भी इच्छा जागृत करनेके लिए नही। उपनिवेशके गोरे आव्रजकोकी सामाजिक व्यवस्थामें अपने-आपको ठूँसनेकी हमारी कोई इच्छा नही है। यह विषय मेरे लिए बड़ा दर्दभरा है, इसलिए इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नही। पॉचेफस्ट्रूममें इन माननीय महाशयने जो भाषण किया उसे ललकारे बिना छोड़ देना असम्भव था। परन्तु रंग-भेद सम्बन्धी प्रश्नपर विचारके समय अगर उन्होने सब बातोका सच्चा रूप देखनेमे अपने-आपको बिलकुल असमर्थ न बना लिया हो, तो मै उनसे अनुरोध करूँगा कि वे अपनी न्याय तथा औचित्यकी बुद्धिका प्रयोग करे। मैं उनसे सिर्फ यह कहूँगा कि वे अपने इतिहास और तथ्योंका अध्ययन करें। ब्रिटिश भारतीय संघके प्रस्तावोंपर भी, जिन्हे मैं बहुत ही नर्म और उचित समझनेकी धृष्टता करता हूँ, वे विचार करे। और बादमें वे अपने-आपसे पूछे कि क्या वे अपनी शक्तिका अपव्यय नही कर रहे है? जिन लोगोंपर उनका इतना नियन्त्रण हे उन्हे गलत रास्तेपर भटका नही रहे है? देशमें उनकी जो उत्तरदायी हस्ती है उसके प्रति अन्याय नही कर रहे है? और जिस साम्राज्यकी प्रजा होनेका, वे दावा करते हैं, उन्हे अभिमान है, उसकी कुसेवा नही कर रहे है?

आपका, आदि,
अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७२. अपनी बात[1]

इंडियन ओपिनियन अपने जीवनके डेढ़ वरसके छोटेसे कालमें अपने कार्यकी तीसरी मंजिलमें प्रवेश कर रहा है। इसके संचालकने देशभक्ति-पूर्ण उद्देश्योंसे प्रेरित होकर, अत्यल्प साधनोंके साथ, यह कार्य आरम्भ किया था। पत्रके सम्पादनके लिए उन्हें शुद्ध स्वैच्छिक और अवैतनिक सहायतापर निर्भर रहना पड़ा। यह सहायता उन्हें तत्परताके साथ मिली। संचालकका इरादा था कि साधारण छपाईसे जो लाभ हो उससे पत्रका अपेक्षित घाटा पूरा करके पत्रको स्वावलम्बी वना लिया जाये। मगर ऐसा हुआ नहीं। यद्यपि यह पत्र एक सच्ची जरूरत पूरी करता था, फिर भी जिसे व्यापारिक माँग कहा जा सकता है, उसको पैदा करनेकी जरूरत थी। दूसरे शब्दोंमें, पत्रको न सिर्फ अपनी सामग्री जुटानी थी, वल्कि पाठक भी खोजने थे। इसके अलावा, पाँच सौ से अधिक प्रतियाँ भेंटमें भेजनी पड़ती थीं। यह वहुत वड़ी वाधा थी। इसलिए आर्थिक सहायता माँगनी पड़ी। नेटाल भारतीय कांग्रेस और ब्रिटिश भारतीय संघने यह सहायता दी और भेंटकी प्रतियोंकी छपाई तथा उनके भेजनेके खर्चकी मदमें कुछ रकमें देना स्वीकार किया।

फिर भी पत्र सर्वभक्षी मगर-मच्छकी भाँति जो भी आमदनी हुई, उसे खाता गया और अभी वह और माँगता ही था। स्थितिको सँभालना केवल पुरुषार्थमय उपायोंसे सम्भव था। छुटपुट प्रयत्न वेकार थे। क्षणिक राहतकी दवाएँ खतरनाक थीं। तव सिर्फ यह एक उपाय रह गया कि निष्ठावान कार्यकर्ताओं और मित्रोंसे एक नवल और क्रान्तिकारी योजनाको इख्तियार करनेका अनुरोध किया जाये। उनको वर्तमानको नहीं, वल्कि भविष्यको देखना था; अपनी जेवोंका नहीं, वल्कि पत्रका खयाल पहले रखना था। और वे ऐसा क्यों न करते? *इंडियन ओपिनियनका* ध्येय सम्राट एडवर्डकी यूरोपीय और भारतीय प्रजाओंमें निकटतर सम्वन्ध स्थापित करना था। उसका ध्येय लोकमतको शिक्षित करना, गलतफहमीके कारणोंको दूर करना, भारतीयोंके सामने उनके अपने दोष रखना और उन्हें, जव कि वे अपने अधिकारोंकी प्राप्तिका आग्रह कर रहे हैं, उनका कर्त्तव्य-पथ दिखाना था। यह समस्त एक साम्राज्यीय और शुद्ध आदर्श था और इसकी पूर्तिके लिए कोई भी व्यक्ति निःस्वार्थ भावसे प्रयत्न कर सकता था। इसलिए यह कुछ कार्यकर्ताओंको अच्छा लगा।

संक्षेपमें योजना यह थी। अगर शहरके भीड़-भड़क्केसे दूर जमीनका कोई काफी वड़ा टुकड़ा ऐसा मिल जाये, जिसपर मकान वनाकर छापेखानेकी कल और मशीनें रखी जा सकें, तो हरएक कार्यकर्ताको भी रहनेके लिए जमीन मिल सकती है। इससे वहुत खर्च उठाये विना ही स्वच्छ और आरोग्यप्रद अवस्थाओंमें रहनेकी समस्या भी सरल हो जायेगी।

कार्यकर्ताओंको हर महीने उतना रुपया पेशगीके तौरपर दिया जा सकता है, जितना कि उनके एक महीनेके जरूरी खर्चके लिए काफी हो और सालके अन्तमें सारा लाभ उनके वीच

१. यह वादमें ३१-१२-१९०४ के अंकमें इस परिचयात्मक टिप्पणीके साथ परिशिष्टके रूपमें पुनः छापा गया था:

"निम्न अग्रलेख हमारे दिसम्बर २४, १९०४ के अंकमें प्रकाशित हुआ था और चूँकि हम तव इसकी माँगकी पूर्तिके लायक प्रतियाँ नहीं छाप सके थे, हम इसे अव परिशिष्टके रूपमें प्रकाशित करते हैं। हम अपने हमदर्दों और मित्रोंको इसकी जितनी वे चाहें उतनी प्रतियाँ मुफ्त वितरणके लिए देंगे। (सं० - इं० ओ०)"

बाँटा जा सकता है। इस तरह प्रबन्धकोंको हर सप्ताह बहुत बड़ी रकम जुटानेकी जरूरत न होगी। कार्यकर्ताओंको यह भी सहूलियत दी जा सकती है कि अगर वे चाहें तो अपने मकानकी जमीन लागत-मूल्यपर खरीद लें।

ऐसी अच्छी अवस्थाओं और सुन्दर स्थितियोंमें, जिनके कारण नेटालका नाम उद्यान-उपनिवेश (गार्डन कालोनी) पड़ा है, रहते हुए कार्यकर्ता अधिक सादा और प्राकृतिक जीवन बिता सकते हैं। साथ ही वहाँ रस्किन और टॉल्स्टायके विचारोंका शुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तोंके साथ समन्वय भी किया जा सकता है। या, यह भी हो सकता है कि अगर कार्यकर्ता चाहें तो वे शहरी जिन्दगीकी कृत्रिमता फिरसे पैदा कर लें। फिर भी आशा तो यह की जा सकती है कि हमारी योजनाकी तहमें जो भावना है और कार्यकर्ता जिन परिस्थितियोंमें रहेंगे उनका उनके ऊपर शिक्षाप्रद प्रभाव होगा। वहाँ यूरोपीय और भारतीय कार्यकर्ता ज्यादा नजदीकी और भाई-चारेके साथ मिलजुलकर रहेंगे। यह भी सम्भव है कि रोजाना काम करनेका समय घटाया जा सके। हरएक कार्यकर्ता खुद अपनी खेती कर सकता है। अंग्रेज कार्यकर्ता इस तानेको झूठा साबित कर सकेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले अंग्रेज जमीन जोतना और अपने हाथसे काम करना नहीं चाहते। यहाँ उन्हें ऐसे कामके लिए सब सहूलियतें उपलब्ध होंगी और कमियाँ कोई न होंगी। भारतीय कार्यकर्ता जो अभी थोड़ेसे लाभके लिए निरन्तर गुलामोंकी तरह परिश्रम किया करते हैं, अपने यूरोपीय भाईका अनुकरण करके स्वस्थ मनोरंजनकी शान और उपयोगिता समझ सकेंगे।

सब लोगोंको प्रेरणा देनेवाली तीन बातें होंगी — *इंडियन ओपिनियन*के रूपमें एक आदर्शके लिए काम करना; निवासके लिए पूरी तरहसे स्वास्थ्यप्रद वातावरण और अत्यन्त अनुकूल शर्तोंपर तुरन्त जमीन पानेकी सम्भावना; और योजनामें सीधा ठोस स्वार्थ और हिस्सा।

संक्षेपमें, यही हमारे तर्ककी रूपरेखा थी, जो अब कार्यरूपमें परिणत की जा चुकी है। छापाखाना नॉर्थ कोस्ट लाइनके फीनिक्स स्टेशनके पास जमीनके एक बड़े टुकड़ेपर ले आया गया है। वहाँ अंग्रेज और भारतीय कार्यकर्ता योजनाको कार्यान्वित करनेमें लगे हुए हैं। अभी उसके नतीजेका अनुमान लगानेका समय नहीं आया है। क्योंकि, प्रयोग बड़ा साहसपूर्ण है और उसमें बहुत महत्त्वके परिणाम सन्निहित हैं। हमें किसी भी ऐसे धार्मिकेतर संगठनका ज्ञान नहीं है, जो उपर्युक्त सिद्धान्तोंके अनुसार चलाया जाता हो या चलाया गया हो। अगर यह सफल हुआ तो हम जरूर यही खयाल करेंगे कि यह अनुकरणके योग्य होगा। हम अवैयक्तिक रूपसे लिख रहे हैं और इस पत्रके कार्यकर्ता-मण्डलमें से कोई भी सामग्रीके लिए विशेष श्रेयका दावा नहीं करता। इसलिए हम मानते हैं कि जनताके सामने सारी बात प्रकट कर देना ही उचित है। जनताका समर्थन हमें बहुत प्रोत्साहन देगा और निस्सन्देह योजनाकी सफलतामें बहुत सहायक होगा। हम दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले दोनों महान समाजोंसे अनुरोध कर सकते हैं, और हमें विश्वास है कि वे इस योजनाको सफल बनानेमें व्यवस्थापकोंकी सहायता करेंगे। हमारा विश्वास है कि योजना सफल बनाने योग्य है।

[अंग्रेजी से]

इंडियन ओपिनियन, २४–१२–१९०४

२७३. जाँचके योग्य मामला

भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको मारने-पीटनेके सम्बन्धमें हाल ही लेडीस्मिथमें जो मुकदमे चले हैं उनकी कार्रवाइयाँ सहयोगी *नेटाल विटनेस* प्रमुखताके साथ प्रकाशित करता जा रहा है। रैमजे कोयला-खानके एक यूरोपीय भूगर्भ-प्रबन्धकके विरुद्ध खानके एक भारतीय गिरमिटिया मजदूरको मारने-पीटनेके आरोपमें जो मुकदमा चला, उसकी कार्रवाईके लिए *नेटाल विटनेसने* अपने इसी १६ तारीखके अंकमें डेढ़ कालम स्थान दिया है। इसके लिए वह बधाईका पात्र है। प्रबन्धकको अपराधी करार दिया गया है। राजकी ओरसे सार्जेन्ट लेम्प्रियरने निर्भीकताके साथ जो बयान दिया उसके मुताबिक मारपीट संगीन थी। साथ-साथ एक स्त्रीके बेचे जानेकी भी बात उठी थी। अगर वह सच है तो भारी कलंककी बात है। सन्तोष इस बातका है कि इस उपनिवेशमें इस सार्जेन्टके समान सरकारी वकील मौजूद हैं, जो अपने कर्त्तव्यसे विचलित नहीं होते। तथापि सरकार द्वारा इस सारे मामलेकी सावधानीके साथ जाँच की जानेकी जरूरत है। मुकदमेकी कार्रवाई पढ़नेसे मनपर एक बुरा प्रभाव रह जाता है। निष्पक्ष जाँचसे सचाई प्रकट हो जायेगी और, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कोयला-खान कम्पनीको इस जाँचका स्वागत करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७४. पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार और ब्रिटिश भारतीय

पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदार" (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंट्स) फिर पागल हो रहे हैं। वे अपने शहरसे सब भारतीयोंको बिलकुल निकाल देना चाहते हैं। अपने पहले जोश-खरोशके बाद, हमें याद होगा, वे बहुत-कुछ ठंडे पड़ गये थे, और अपने बॉक्सबर्गके मित्रोंके विरोध करनेपर भी उन्होंने फैसला किया था कि जिन भारतीयोंको *बाजारोंमें* खदेड़ा गया है, उन्हें मुआवजा दिया जाये। परन्तु अब साफ मालूम होता है कि उन्हें अपनी उस नर्मीपर पछतावा हुआ है। अब वे कानूनको अपने हाथमें लेना और पॉचेफस्ट्रूममें आतंकका राज्य जमाना चाहते हैं। भारतीय किसीको हानि नहीं पहुँचाते और कानूनका पालन करनेवाले लोग हैं। फिर भी "पहरेदार" उनकी धार्मिक भावनाओंकी अवहेलना करेंगे। वे अपने शहरमें भारतीयोंको मसजिद नहीं बनाने देना चाहते। जो लोग भारतीयोंके साथ किसी भी प्रकारका कारोबार करेंगे वे उनका जीवन दूभर कर देंगे। गृहस्थोंको सामाजिक बहिष्कारके द्वारा भारतीयोंसे सौदा न खरीदनेके लिए बाध्य किया जायेगा। इसी प्रकार व्यापारी उनके साथ व्यापार न करेंगे। और भू-स्वामियोंको अपने भारतीय किरायेदारोंको बेदखल कर देना होगा। स्वार्थकी दृष्टिसे तो भारतीयोंको इस प्रकारके उन्मादपूर्ण विरोधका स्वागत ही करना चाहिए, क्योंकि वह अपनी ही हिंसासे मर जायेगा। परन्तु साम्राज्य-सम्बन्धी दृष्टिसे पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदारों" की कार्रवाइयोंकी जितनी भी निन्दा की जाये, थोड़ी होगी। ब्रिटिश शासनका इतिहास सांविधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश झंडेके नीचे कानूनकी इज्जत करना लोगोंके स्वभावका हिस्सा बन गया है। हमारे "पहरेदार" दोस्त उस शानदार संविधानको ही कुचल रहे हैं और इस तरह वे ब्रिटिश शासनके प्रति अपनी

वफादारीके दावेको झूठा साबित कर रहे हैं, जिसके बलपर ही वे वाणीकी इतनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे हैं, जितनी कि संसारमें और कहीं नहीं है। परन्तु उन्होंने इस वाणी-स्वतन्त्रताको वाणी-स्वैरता समझनेकी गलती की है। क्या हम उनसे अनुरोध कर सकते हैं कि वे थोड़ी संजीदगीसे काम लें?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७५. एक नया साप्ताहिक

जोहानिसबर्गसे *रैंड रेट पेयर्स रिव्यू* नामके एक नये साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। उसका मुद्रा-वाक्य है — "जनता सत्य है"। पत्रकी छपाई-सफाई अच्छी है। एशियाइयोंके प्रश्नपर उसने जो विचार प्रकाशित किये हैं उनसे मालूम होता है कि वह एक बहुत उपयोगी और स्वतन्त्र पत्र होगा। अलबत्ता शर्त यह है कि उसका आरम्भ जिस रूपमें हुआ है वह आगे जारी रहे। उसमें प्रकाशित विचार निम्नलिखित हैं —

> जोहानिसबर्ग डाकघरसे तीन मीलके अन्दर ही एक टेकरीपर एक स्तम्भ खड़ा हुआ है, जिसके नीचे अनेक बस्तियोंका शीघ्रताके साथ विकास हो रहा है। उस स्मारकस्तम्भके पास ही एक छोटा-सा कब्रिस्तान है। उसमें कब्रोंके कई बड़े-बड़े टीले हैं और एक पत्थरका कुतबा है जिसपर खुदा हुआ है — 'लाइलाहो इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह' (अल्लाहके सिवा कोई परमात्मा नहीं, और मुहम्मद उसका पैगम्बर है)। उस कब्रिस्तानमें हमारे भारत-साम्राज्यके काले सैनिकोंकी लाशें दफन हैं। इन्होंने अपनी जानें ट्रान्सवालमें ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ते-लड़ते कुरबान की थीं। हम इसका खयाल अपनी नगर-परिषद्के सदस्योंकी २ नम्बरकी पहली बैठकमें दिये गये मतोंके और इससे अगले सप्ताह प्रिटोरियाके नाटकघर (ऑपेरा-हाउस) में हुई ट्रान्सवालके सब हिस्सोंके प्रतिनिधियोंकी बैठकके सिलसिलेमें कर रहे हैं। इस बैठकमें एकके बाद एक कई सदस्योंने खड़े होकर ऐसे प्रस्ताव पास करनेकी चीख-पुकार मचाई थी, जिनके अमलमें आनेसे हमारे भारतीय सह-प्रजाजन इस उपनिवेशमें कोई भी अधिकार पानेसे वंचित हो जायेंगे। उन्हें सिर्फ वे ही अधिकार रहेंगे जो गिरमिटिया मजदूर बनाकर लाये गये चीनी काफिरोंको प्राप्त हैं। हमें लगता है कि जो लोग प्रस्ताव बनानेके लिए विषय खोजनेका प्रयत्न करते हैं उनकी भाषामें कुछ सुधार और कुछ अधिक विचारशीलताकी जरूरत है। जब कि इस तरहके पूर्वग्रह मौजूद हैं, क्या ताज्जुब कि लॉर्ड कर्जनने लॉर्ड मिलनरके स्थानपर यहाँ आनेसे इनकार कर दिया। और अगर ब्रिटेनके अधिकारियोंके सामने ट्रान्सवालको 'उत्तरदायी शासन' देनेमें देरी करनेका कोई कारण है, तो वह कोई दूसरा नहीं, केवल यह भय है कि कहीं इस अधिकारका प्रयोग उन लोगोंके विरुद्ध न किया जाये जिन्होंने ब्रिटिश सरकारको यह उपनिवेश प्राप्त करनेमें मदद की है। सभी जानते हैं कि बोअर लोगोंने व्यापार करनेवाले एशियाइयोंको परवानोंके जरिये कुछ सहूलियतें दी थीं। परन्तु उन

सहूलियतोंको न तो न्यायोचित माना जाता था और न पूर्ण। यह तथ्य इंग्लैंडके सामने सशस्त्र हस्तक्षेपकी जरूरतके एक अतिरिक्त कारणके रूपमें जोरोंके साथ पेश किया गया था। उन तर्कोंको पेश करनेवाले लोग उन्हें भूल जानेके लिए भले ही उत्सुक दिखलाई पड़ते हों, मगर इंग्लैंड इन्हें इतनी जल्दी नहीं भूल सकता। और यूरोपीयोंके अलावा "किसीको कोई अधिकार नहीं" दिये जायें इस विचारहीन चिल्लाहटके बीचमें डचेतर गोरोंकी वह आवाज अब भी अनेक शोकाकुल ब्रिटिश परिवारोंमें साफ-साफ गूंज उठती है। रैंड (ट्रान्सवाल) का सौभाग्य है कि यहाँ बहुतसे योग्य और सम्पन्न व्यक्ति मौजूद हैं, जो पूर्वग्रहोंको न्यायकी खरी भावनापर हावी न होने देंगे।

हम अपने सहयोगीको उसकी निर्भीक विचार-स्वतंत्रताके लिए और न्याय-परायणताके साहसके लिए बधाई देते हैं। हमारी कामना है कि उसे पूरी सफलता प्राप्त हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७६. सालाना लेखा-जोखा

जो व्यापारी अपनी साल-ब-साल हालतका लेखा-जोखा नहीं करता, वह मूर्ख माना जाता है। मिशनरियोंकी एक भजन-पुस्तकमें उपदेश किया गया है कि "अपने वरदानोंको एक-एक करके गिनो" और देखो कि भगवानने हमारे लिए कितना किया है। इसलिए अगर हम दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले अपने देशभाइयोंकी स्थितिका, जिसके कारण हमारा अस्तित्व आवश्यक हुआ है, संक्षेपमें सिंहावलोकन करें तो यह एक अच्छे उदाहरणका अनुसरण होगा, और हमारा यह कार्य परिपाटीके बिलकुल अनुकूल होगा। तथापि हमें खेद है कि हम इस महाखण्डमें अपने देशवासियोंके लिए "बहुतसे वरदानोंकी गिनती" नहीं कर सकते। हमें अपने आसपास छाई काली घटाओंके घोर रूपको, जहाँ-तहाँ दीखनेवाले शुभ चिह्नोंकी ओर ध्यान खींचकर, मृदु मात्र बनाकर ही सन्तोष मान लेना होगा।

हम नेटालसे ही आरम्भ करें। जहाँतक नये कानूनका सम्बन्ध है, यहाँ स्थिति पहले जैसी ही है। परन्तु एशियाई-विरोधी कानूनोंके अमलकी प्रवृत्ति निश्चित रूपसे ऐसी पाबन्दीकी ओर रही है जो अक्सर कठोरताकी हदतक पहुँचती है। नया प्रवासी-अधिनियम लोगोंको अब भी बहुत अधिक कष्ट पहुँचा रहा है। भारतीय यात्रियोंको लेकर आनेवाले जहाजोंका निरीक्षण पहलेसे बहुत सख्त हो गया है। "अधिवासी" शब्दका अर्थ बहुत संकुचित कर दिया गया है और बहुतसे सुपात्र भारतीयोंको, यद्यपि वे पहले इस बस्तीमें रह चुके हैं, बाहर रखा जा रहा है। विक्रेता-परवाना अधिनियमसे लोगोंको बहुत कष्ट हुआ है, और अब भी हो रहा है। हुंडामलके मुकदमेकी याद अभी ताजी ही है। एक पुराने व्यापारीको, जो अपने वस्तुभण्डारको साफ-सुथरा रख कर प्रथम कोटिके यूरोपीय ग्राहक-मण्डलको माल बेचा करता था, इसलिए सताया गया कि उसने अपने वस्तु-भण्डारको कुछ ही दूकानोंके फासलेपर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें हटा देनेका साहस किया। कारण यह है कि दूकान हटाकर वेस्ट स्ट्रीटमें ले जाई गई है, जिसे नगर-परिषद यूरोपीयोंके साथ व्यापारके लिए नहीं, बल्कि सिर्फ यूरोपीय दूकानदारोंके लिए सुरक्षित रखना चाहती है। नगर-परिषद और भारतीय-समाजके बीचके इस प्रश्नका निबटारा

वफादारीके दावेको झूठा साबित कर रहे है, जिसके बलपर ही वे वाणीकी इतनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे है, जितनी कि संसारमें और कही नही हे। परन्तु उन्होंने इस वाणी स्वतन्त्रताको वाणी-स्वैरता समझनेकी गलती की है। क्या हम उनसे अनुरोध कर सकते हैं कि वे थोड़ी संजीदगीसे काम ले?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७५. एक नया साप्ताहिक

जोहानिसबर्गसे रैंड रेट *पेयर्स रिव्यू* नामके एक नये साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। उसका मुद्रा-वाक्य है—"जनता सत्य है"। पत्रकी छपाई-सफाई अच्छी हे एशियाइयोके प्रश्नपर उसने जो विचार प्रकाशित किये है उनसे मालूम होता है कि वह एक बहुत उपयोगी और स्वतन्त्र पत्र होगा। अलबत्ता शर्त यह है कि उसका आरम्भ जिस रूपमें हुआ है वह आगे जारी रहे। उसमें प्रकाशित विचार निम्नलिखित है—

> जोहानिसबर्ग डाकघरसे तीन मीलके अन्दर ही एक टेकरीपर एक स्तम्भ खड़ा हुआ है, जिसके नीचे अनेक बस्तियोंका शीघ्रताके साथ विकास हो रहा है। उस स्मारकस्तम्भके पास ही एक छोटा-सा कब्रिस्तान है। उसमें कब्रोंके कई बड़े-बड़े टीले हैं और एक पत्थरका कुतबा है जिसपर खुदा हुआ है—'लाइलाही इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह' (अल्लाहके सिवा कोई परमात्मा नहीं, और मुहम्मद उसका पैगम्बर है)। उस कब्रिस्तानमें हमारे भारत-साम्राज्यके काले सैनिकोंकी लाशें दफन हैं। इन्होंने अपनी जानें ट्रान्सवालमें ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ते-लड़ते कुरबान की थीं। हम इसका खयाल अपनी नगर-परिषद्के सदस्योंकी २ नम्बरकी पहली बैठकमें दिये गये मतोंके और इससे अगले सप्ताह प्रिटोरियाके नाटकघर (ऑपेरा-हाउस) में हुई ट्रान्सवालके सब हिस्सोंके प्रतिनिधियोंकी बैठकके सिलसिलेमें कर रहे हैं। इस बैठकमें एकके बाद एक कई सदस्योंने खड़े होकर ऐसे प्रस्ताव पास करनेकी चीख-पुकार मचाई थी, जिनके अमलमें आनेसे हमारे भारतीय सह-प्रजाजन इस उपनिवेशमें कोई भी अधिकार पानेसे वंचित हो जायेंगे। उन्हें सिर्फ वे ही अधिकार रहेंगे जो गिरमिटिया मजदूर बनाकर लाये गये चीनी काफिरोंको प्राप्त हैं। हमें लगता है कि जो लोग प्रस्ताव बनानेके लिए विषय खोजनेका प्रयत्न करते हैं उनकी भाषामें कुछ सुधार और कुछ अधिक विचारशीलताकी जरूरत है। जब कि इस तरहके पूर्वग्रह मौजूद हैं, क्या ताज्जुब कि लॉर्ड कर्जनने लॉर्ड मिलनरके स्थानपर यहाँ आनेसे इनकार कर दिया। और अगर ब्रिटेनके अधिकारियोंके सामने ट्रान्सवालको 'उत्तरदायी शासन' देनेमें देरी करनेका कोई कारण है, तो वह कोई दूसरा नहीं, केवल यह भय है कि कहीं इस अधिकारका प्रयोग उन लोगोंके विरुद्ध न किया जाये जिन्होंने ब्रिटिश सरकारको यह उपनिवेश प्राप्त करनेमें मदद की है। सभी जानते हैं कि बोअर लोगोंने व्यापार करनेवाले एशियाइयोंको परवानोंके जरिये कुछ सहूलियतें दी थीं। परन्तु उन

सौभाग्यसे भारत सरकारने दृढ़ता दिखलाई है और आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही कठिनाइयोंका कोई उचित हल निकल आयेगा।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश अपनी औपनिवेशिक नीतिमें सर्वथा अडिग रहा है। वह ब्रिटिश आदर्शोंका विरोधी है, इसकी उसके निवासियोंको कोई चिन्ता नहीं। युद्ध तो दूसरोंके साथ-साथ भारतीयोंके लिए भी लड़ा गया था। ब्लूमफॉंटीनपर यूनियन जैक फहराता हुआ भी ब्रिटिश भारतीयोंको कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता। ब्रिटिश भारतीय अछूतोंके समान दूर रखे जाते हैं।

केप उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंके लिए भिन्न-भिन्न कानूनोंका विचित्र नजारा दिखलाई पड़ता है। फलतः केप टाउनमें रहनेवाले भारतीय तो नागरिक-जीवनकी साधारण स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं; परन्तु ईस्ट लन्दनमें उन्हें पैदल-पटरियोंपर चलने और ट्रान्सकाईके अधीनस्थ राज्यमें प्रवेशकी भी अनुमति नहीं है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह प्रतिक्रियावादी नीति ट्रान्सवालमें लॉर्ड मिलनरकी *बाजार*-सूचनाकी सीधी उपज है। उसके द्वारा उन्होंने दुनियाको बता दिया कि ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंको सामान्य संरक्षण भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। फिर अगर शुभाशा अन्तरीपके स्वशासित उपनिवेशने शीघ्रतापूर्वक और भरसक इस उदाहरणका अनुकरण किया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

वर्षके अन्तमें ब्रिटिश भारतीयोंके लिए स्थिति ऐसी विषम है। परन्तु मुसीबतके फल मीठे होते हैं। मुसीबत उसका ज्यादा नुकसान करती है, जो उसे ढाता है, बनिस्बत उसके कि जिसपर वह ढाई जाती है। एक विद्वान धर्मात्मा पुरुषने कहा है:

> इस भौतिक जीवनकी मुसीबत सहना मनुष्यके लिए अच्छा है, क्योंकि वह उसे हृदयके पवित्र एकान्तकी ओर वापस ले जाती है और केवल वहीं वह देखता है कि वह तो अपने ही मूल गृहसे निर्वासित है।

इसलिए अगर हम अपनी मुसीबतका सही-सही उपयोग करें तो उससे हमें पता चलता है कि हमें वह पवित्र करेगी और सही रास्ता दिखायेगी। निराशाके लिए कोई कारण नहीं है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवानपर छोड़ दें, जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

अगर हमें यह कहनेके लिए माफ किया जाये तो, हमारा विश्वास है कि *इंडियन ओपिनियन* समाजका एक ऐसा मित्र और वकील है, जो कभी पैर पीछे न हटायेगा। हमने शक्ति-भर अपने देशवासियोंकी सेवा करनेका प्रयत्न किया है। और चूँकि हम विश्वास करते हैं कि आखिरकार सत्य और न्यायकी विजय होगी और चूँकि ब्रिटिश जनताकी सद्बुद्धिपर हमें आस्था है, इसलिए, यद्यपि आज घटाएँ काली दिखाई देती हैं, हम सफलताकी प्रत्येक आशाके साथ, अपने देशभाइयों और अपने अन्य सब पाठकोंके लिए कामना करते हैं —

नव वर्ष मंगलमय हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१–१२–१९०४

अबतक नहीं हुआ है। यह मामला पुनर्विचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अधीन है। परन्तु इतना तो बहुत साफ है कि अगर नेटाल परवाना-अधिनियमका मंशा भारतीयोंको जरा भी शान्ति देनेका है, तो उसमें ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालयको न्याय-सम्बन्धी सब निर्णयोंपर पुनः विचार करनेका स्वतः सिद्ध अधिकार फिर मिल जाये —— भले ही वह निर्णय देनेवाला अफसर कोई भी क्यों न हो; वह मजिस्ट्रेट या परवाना-अधिकारी, कुछ भी क्यों न कहलाता हो। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी हालतकी जब-तब समीक्षा करना जरूरी होता है। लेडीस्मिथमें हालमें हुए मुकदमोंकी, जिनकी ओर हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* विशेष ध्यान आकर्षित किया है, जाँचकी आवश्यकता है। नेटालवासी भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वका है। भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक श्री बार्नेटने ठीक ही कहा है कि अगर केवल गोरे लोगोंके हितका ही खयाल किया जाये तो भी उन बच्चोंकी उपेक्षा करनेमें खैरियत नहीं हो सकती। भारतीय बच्चोंको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिए या तो साधारण स्कूलोंके द्वार खुले रखने चाहिए, या नये स्कूलोंकी स्थापना होनी चाहिए। यहाँ हम उल्लेख कर दें कि साधारण पाठ्यक्रममें भारतीय भाषाओंकी शिक्षा जोड़ देना वांछनीय होगा। उपनिवेशमें दुभाषियोंका काम जिस तरह चल रहा है, वह बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है; फिर भी उसमें दुभाषियोंका कोई दोष नहीं। अगर भारतीय नवयुवकोंको भारतीय भाषाओंकी शिक्षा दी जाये तो योग्य दुभाषिये प्राप्त करनेका यह एक सस्ता तरीका होगा।

जहाँतक ट्रान्सवालकी बात है, वह अब भी भारतीय समाजके लिए सर्वाधिक चिन्ताका विषय बना हुआ है। वहाँ अभी किसी बातका फैसला नहीं हुआ। १८८५ का कानून ३ कठोरताके साथ कार्यान्वित किया जा रहा है। सच तो यह है कि वर्तमान सरकार कानूनकी मर्यादाको भी लाँघ गई है। भारतीयोंको ट्रान्सवालसे बाहर रखनेके लिए उसने शान्ति-रक्षा अध्यादेशका, जो कि एक शुद्ध राजनीतिक कानून है, प्रयोग किया है। प्रामाणिक शरणार्थियोंको भी देशमें आनेसे रोका जाता है। *हबीब मोटन* बनाम *महान्यायवादीके* मुकदमेसे भारतीय व्यापारियोंको एक तरहकी राहत मिली है और वे बिलकुल नामशेष हो जानेके खतरेसे बच गये हैं। परन्तु उस मुकदमेकी जीतसे ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध एक हिंसात्मक, आक्रमणात्मक और अज्ञानमय आन्दोलनको जन्म मिला। उसकी परिसमाप्ति उस एशियाई-विरोधी समझौतेमें हुई, जो अब काफी बदनाम हो चुका है और जिसमें कठोर तथा ब्रिटिश आदर्श-विरोधी कार्रवाइयोंकी सिफारिश की गई है। और, उत्तेजक भाषणों द्वारा उसका समर्थन किया गया। श्री लवडेने एक भाषण देकर ख्याति कमायी और उनके उस भाषणने ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको एक तीखा प्रत्युत्तर देनेके लिए बाध्य कर दिया। श्री लवडेने श्री अब्दुल गनीके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेका प्रयत्न किया; परन्तु श्री अब्दुल गनीने उन्हें फिर चकरा दिया है। उन्होंने *स्टारको* एक पूर्ण, और बिना लाग-लपेटका प्रतिवाद[1] लिख भेजा है। इस तरह, यद्यपि ब्रिटिश भारतीय संघ सच्ची परिस्थितियाँ सामने रखकर बहुधा लोगोंके अनर्गल वक्तव्योंका मुकाबला कर सका है, फिर भी स्थिति तो उग्र बनी ही है। पॉचेफस्ट्रूम और अन्य स्थानोंके लोग स्थानीय भारतीयोंके बहिष्कारकी आवाजें उठा रहे हैं और भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंपर आघात भी कर रहे हैं। इसी बीच, सदा परिवर्तित होती रहनेवाली नीतिका अवलम्बन करके मूल्यवान समयका नाश किया जा रहा है। लॉर्ड मिलनर न्यायके पक्षमें दृढ़ रहनेमें असफल हुए हैं और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकार, चीख-पुकार भरे स्वार्थी आन्दोलनसे प्रभावित होकर, परार्पित कर दिये हैं।

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*", दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व; पृष्ठ : ३४२-४४।

सौभाग्यसे भारत सरकारने दृढ़ता दिखलाई है और आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही कठिनाइयोंका कोई उचित हल निकल आयेगा।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश अपनी औपनिवेशिक नीतिमें सर्वथा अडिग रहा है। वह ब्रिटिश आदर्शोका विरोधी है, इसकी उसके निवासियोंको कोई चिन्ता नहीं। युद्ध तो दूसरोंके साथ-साथ भारतीयोंके लिए भी लड़ा गया था। ब्लूमफॉंटीनपर यूनियन जैक फहराता हुआ भी ब्रिटिश भारतीयोंको कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता। ब्रिटिश भारतीय अछूतोंके समान दूर रखे जाते हैं।

केप उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंके लिए भिन्न-भिन्न कानूनोंका विचित्र नजारा दिखलाई पड़ता है। फलतः केप टाउनमें रहनेवाले भारतीय तो नागरिक-जीवनकी साधारण स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं; परन्तु ईस्ट लन्दनमें उन्हें पैदल-पटरियोंपर चलने और ट्रान्सकाईके अधीनस्थ राज्यमें प्रवेशकी भी अनुमति नहीं है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह प्रतिक्रियावादी नीति ट्रान्सवालमें लॉर्ड मिलनरकी *बाजार*-सूचनाकी सीधी उपज है। उसके द्वारा उन्होंने दुनियाको बता दिया कि ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंको सामान्य संरक्षण भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। फिर अगर शुभाशा अन्तरीपके स्वशासित उपनिवेशने शीघ्रतापूर्वक और भरसक इस उदाहरणका अनुकरण किया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

वर्षके अन्तमें ब्रिटिश भारतीयोंके लिए स्थिति ऐसी विपम है। परन्तु मुसीवतके फल मीठे होते हैं। मुसीवत उसका ज्यादा नुकसान करती है, जो उसे ढाता है, वनिस्वत उसके कि जिसपर वह ढाई जाती है। एक विद्वान धर्मात्मा पुरुषने कहा है:

> **इस भौतिक जीवनकी मुसीवत सहना मनुष्यके लिए अच्छा है, क्योंकि वह उसे हृदयके पवित्र एकान्तकी ओर वापस ले जाती है और केवल वहीं वह देखता है कि वह तो अपने ही मूल गृहसे निर्वासित है।**

इसलिए अगर हम अपनी मुसीवतका सही-सही उपयोग करें तो उससे हमें पता चलता है कि हमें वह पवित्र करेगी और सही रास्ता दिखायेगी। निराशाके लिए कोई कारण नहीं है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे वरावर करते रहें और परिणाम भगवानपर छोड़ दें, जिसकी अनुमति या जानकारीके विना पत्ता भी नहीं हिलता।

अगर हमें यह कहनेके लिए माफ किया जाये तो, हमारा विश्वास है कि *इंडियन ओपिनियन* समाजका एक ऐसा मित्र और वकील है, जो कभी पैर पीछे न हटायेगा। हमने शक्ति-भर अपने देशवासियोंकी सेवा करनेका प्रयत्न किया है। और चूँकि हम विश्वास करते हैं कि आखिरकार सत्य और न्यायकी विजय होगी और चूँकि ब्रिटिश जनताकी सद्बुद्धिपर हमें आस्था है, इसलिए, यद्यपि आज घटाएँ काली दिखाई देती हैं, हम सफलताकी प्रत्येक आशाके साथ, अपने देशभाइयों और अपने अन्य सब पाठकोंके लिए कामना करते हैं—

नव वर्ष मंगलमय हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०४

अवतक नही हुआ है। यह मामला पुर्नविचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अवीन हे। परन्तु इतना तो बहुत साफ हे कि अगर नेटाल परवाना-अधिनियमका मंशा भारतीयोको जरा भी शान्ति देनेका हे, तो उसमे ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालयको न्याय-सम्वन्धी सव निर्णयोपर पुनः विचार करनेका स्वतः सिद्ध अधिकार फिर मिल जाये — भले ही वह निर्णय देनेवाला अफसर कोई भी क्यो न हो; वह मजिस्ट्रेट या परवाना-अधिकारी, कुछ भी क्यो न कहलाता हो। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोकी हालतकी जब-तव समीक्षा करना जरूरी होता है। लेडीस्मिथमे हालमे हुए मुकदमोकी, जिनकी ओर हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* विशेप घ्यान आकर्षित किया है, जाँचकी आवश्यकता है। नेटालवासी भारतीयोके वच्चोकी शिक्षाका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वका है। भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक श्री बार्नेटने ठीक ही कहा हे कि अगर केवल गोरे लोगोके हितका ही खयाल किया जाये तो भी उन बच्चोकी उपेक्षा करनेमे खैरियत नही हो सकती। भारतीय वच्चोको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिए या तो साधारण स्कूलोके द्वार खुले रखने चाहिए, या नये स्कूलोकी स्थापना होनी चाहिए। यहाँ हम उल्लेख कर दे कि साधारण पाठ्यक्रममे भारतीय भाषाओकी शिक्षा जोड़ देना वाछनीय होगा। उपनिवेशमे दुभापियोका काम जिस तरह चल रहा है, वह बिलकुल सन्तोषजनक नही है, फिर भी उसमे दुभापियोका कोई दोष नही। अगर भारतीय नवयुवकोको भारतीय भाषाओकी शिक्षा दी जाये तो योग्य दुभापिये प्राप्त करनेका यह एक सस्ता तरीका होगा।

जहाँतक ट्रान्सवालकी वात है, वह अब भी भारतीय समाजके लिए सर्वाधिक चिन्ताका विषय वना हुआ है। वहाँ अभी किसी वातका फैसला नही हुआ। १८८५ का कानून ३ कठोरताके साथ कार्यान्वित किया जा रहा हे। सच तो यह है कि वर्तमान सरकार कानूनकी मर्यादाको भी लाँघ गई है। भारतीयोको ट्रान्सवालसे वाहर रखनेके लिए उसने शान्ति-रक्षा अध्यादेशका, जो कि एक शुद्ध राजनीतिक कानून हे, प्रयोग किया हे। प्रामाणिक शरणार्थियोको भी देशमे आनेसे रोका जाता है। *हवीब मोटन* वनाम *महान्यायवादीके* मुकदमेसे भारतीय व्यापारियोको एक तरहकी राहत मिली है और वे विलकुल नामशेप हो जानेके खतरेसे वच गये हैं। परन्तु उस मुकदमेकी जीतसे ट्रान्सवालमे ब्रिटिश भारतीयोके विरुद्ध एक हिसात्मक, आक्रमणात्मक और अज्ञानमय आन्दोलनको जन्म मिला। उसकी परिसमाप्ति उस एशियाई-विरोधी समझौतेमे हुई, जो अब काफी वदनाम हो चुका है और जिसमे कठोर तथा ब्रिटिश आदर्श-विरोधी कार्रवाइयोकी सिफारिश की गई है। और, उत्तेजक भापणो द्वारा उसका समर्थन किया गया। श्री लवडेने एक भापण देकर ख्याति कमायी और उनके उस भापणने ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको एक तीखा प्रत्युत्तर देनेके लिए वाध्य कर दिया। श्री लवडेने श्री अब्दुल गनीके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेका प्रयत्न किया, परन्तु श्री अब्दुल गनीने उन्हे फिर चकरा दिया है। उन्होंने *स्टारको* एक पूर्ण, और विना लाग-लपेटका प्रतिवाद[1] लिख भेजा है। इस तरह, यद्यपि ब्रिटिश भारतीय सघ सच्ची परिस्थितिया सामने रखकर बहुधा लोगोके अनर्गल वक्तव्योका मुकाबला कर सका है, फिर भी स्थिति तो उग्र वनी ही है। पॉचेफस्ट्रूम और अन्य स्थानोके लोग स्थानीय भारतीयोके वहिष्कारकी आवाजे उठा रहे हैं और भारतीयोकी धार्मिक भावनाओपर आघात भी कर रहे हैं। इसी वीच, सदा परिवर्तित होती रहनेवाली नीतिका अवलम्बन करके मूल्यवान समयका नाश किया जा रहा है। लॉर्ड मिलनर न्यायके पक्षमे दृढ रहनेमे असफल हुए हैं और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोके अधिकार, चीख-पुकार भरे स्वार्थी आन्दोलनसे प्रभावित होकर, परार्पित कर दिये हैं।

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*", दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व; पृष्ठ : ३४२-४४।

[illegible]

இந்தியன் ஒப்பீனியன்.

வாரமொருமுறை பிரசுரிக்கப்படும்.

[illegible] 1905ஆ [illegible] 7உ சனிக்கிழமை

[illegible]

மார்க்கட் விலை

	நரம்—வரை	
[illegible] அரிசி.	18 6	19 -
[illegible] அரிசி.	1 - 1 -	1 - 5 -
[illegible]	16 -	19 6 ·
[illegible]	15 6	16 -
[illegible] பருப்பு	15 -	15 9
[illegible]	8 6	8 9
[illegible]	26	2 [illegible]
[illegible]	27	2 [illegible]
[illegible]	2 8	2 10 [illegible]
[illegible]	1 - 10	1 - 20
[illegible]	[illegible]	1 - 1 -
[illegible]	1 5 6	1 1 [illegible]
[illegible]	20 5	10 6
[illegible]	6 [illegible]	[illegible]
[illegible]	5 [illegible]	6 [illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible] 70	70 [illegible]

[illegible]

இப்பத்திரிகையில் [illegible]

...வொப்பக்காரர்கள் சென்றவ குவருஷத்திற்குச் சேரவேண்டி ய கையொப்பத்தொகையும் நிகழும் வருஷத்தின் தொ கையும் தாமதஞ்செய்யாம ல் அனுப்பும்படி வணக்க மாகக் கேட்டுக்கொள்ளப்ப டுகிறது.

கையொப்பக்காரர்களுக்கு வாரந்தோறும் பத்திரிகை கிடைக்காமலிருந்தால் தயவு செய்து பத்திராதிபருக்கு அதுவிஷயத்தைத் தெரியப் படுத்தும்படி கேட்டுக்கொள் ளுகிறோம்.

இந்தியன் மெயில்.

[illegible] 15உ [illegible] இந்தியா வுக்கு புறப்படும்

"இந்தியன் ஒப்பீனியன்" பீனிக்ஸ் செட்டில் சனிக்கிழமை

1905ஆ [illegible] 7உ

இந்தியன் ஒப்பீனியன்.

இந்தியன் ஒப்பீனியன் என்ற பத்திரிகையானது [illegible]

[illegible]

"इंडियन ओपिनियन" के तमिल-विभागका प्रथम पृष्ठ जब पत्र छोटे आकारमें निकलने लगा था।

२७७. हमारी कसौटी

हम पिछले अंकमें अपनी स्थितिके विषयमें लिख चुके हैं। हमने उसमें यह भी लिखा था कि यहाँ जो लोग काम करते हैं उनमें तीन अंग्रेज हैं। अपने पाठकोंको, हमने जो नया कदम उठाया है, उसका अधिक अन्दाज हो जाये, इस हेतुसे इन तीन अंग्रेजोंने कौन-सा जोखिम उठाया है, वे कौन हैं और किसलिए प्रेसमें आये हैं, यह हम बताना चाहते हैं।

इनमें से एकका नाम श्री वेस्ट[1] है। वे छापाखानेके कामके खासे जानकार हैं। जोहानिसबर्गमें उनका छापाखाना था। वहाँ उनकी आमदनी ठीक थी और उनके अधीन कितने ही लोग थे। *ओपिनियनपर* जब वास्तविक संकट पड़ा उस समय वे २४ घंटेमें तैयारी करके अपना काम बन्द करके चले आये।[2] ये सज्जन इस समय खाने-पहनने लायक लेकर, अन्तमें लाभ होगा[3], ऐसा विश्वास रखकर रहते हैं और अपना ही काम मानकर सुबहसे शामतक मेहनत किया करते हैं।

दूसरे श्री किचन[4] हैं। वे बिजलीके ठेकेदार थे। उनकी अपनी पेढ़ी थी और वे अच्छी कमाई करते थे। नये परिवर्तनकी खबरसे उनका मन उत्साहित हुआ। उन्होंने देखा कि *ओपिनियनका* ध्येय बहुत अच्छा है। पैसेका उन्हें लोभ नहीं है, और जिस पद्धतिसे फीनिक्समें रहना है वह सरल, सस्ती और सरस है; इसलिए वे अपना धंधा छोड़कर केवल निर्वाहके योग्य मिलनेवाले पैसेमें सन्तोष मानकर प्रेसमें शामिल हो गये।

तीसरे श्री पोलक[5] हैं। वे अभी *क्रिटिक*[6] समाचारपत्रके सहसम्पादक हैं। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है किन्तु अत्यन्त सादे विचारके होनेके कारण तथा यह मानकर, कि *इंडियन ओपिनियनमें* वे इच्छानुसार अत्याचारके विरुद्ध अपनी भावना प्रकट कर सकेंगे, उन्होंने ऊपरकी नौकरी छोड़नेकी सूचना अपने प्रधानको देदी है और अगले वर्षके प्रारम्भमें यहाँ आ पहुँचेंगे। इस बीच अखबारके

१. अल्बर्ट वेस्टसे गांधीजीकी पहली मुलाकात जोहानिसबर्गके एक उपाहार-गृहमें हुई। वेस्टका जन्म लिंकनशायरके एक कृषक-कुटुम्बमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण हुई थी। बादमें श्री वेस्ट फीनिक्स आश्रममें गांधीजीके साथ काम करने चले आये और उनकी माता, बहन कुमारी एडा और पत्नी भी आश्रममें रहने लगीं। श्री वेस्ट सत्याग्रह आन्दोलनमें गिरफ्तार भी हुए। देखिये *आत्मकथा* (गुजराती), भाग ४, अध्याय १६।

२. छापाखाना पहले डर्बनमें स्थापित हुआ था। फिर १९०४ में उसे फीनिक्समें हटाया गया।

३. पहले आधा लाभ और १० पौंड प्रतिमास वेतन निर्धारित हुआ था। किन्तु जब प्रेस आत्मनिर्भर नहीं हुआ और फीनिक्स ले जाया गया तब वर्ण या जातिके भेद-भावके बिना सबका वेतन ३ पौंड मासिक तय किया गया।

४. श्री हर्बर्ट किचन एक थियॉसफिस्ट थे। उन्होंने श्री नाजरकी अकाल मृत्युके बाद *इंडियन ओपिनियनका* सम्पादन किया। कुछ दिनों गांधीजीके साथ रहे और बोअर युद्धमें उनके साथ काम किया।

५. श्री हेनरी एस० एल० पोलकसे भी गांधीजीकी भेंट वेजीटेरियन रेस्तराँमें हुई थी। पोलकने ही गांधीजीको रस्किनकी पुस्तक *अन टु दिस लास्टकी* प्रति दी थी जिससे प्रभावित होकर गांधीजीने फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की। गांधीजीकी सलाहपर पोलकने वकालतकी शिक्षा ली और उनके सहयोगीकी तरह काम करने लगे। किचनके बाद *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादक हुए। दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें मदद करनेके लिए भारत और इंग्लैंड गये तथा सत्याग्रह आन्दोलनमें कारावास भोगा।

६. *ट्रान्सवाल क्रिटिक*।

இந்தியன் ஒப்பீனியன்.

வாரமொருமுறை பிரசுரிக்கப்படும்.

டர்பன் ... 1905ஆ ஜனவரி 7௳ சனிக்கிழமை

[illegible]

வொப்பக்காரர்கள் சென்றவருஷத்திற்குச் சேரவேண்டிய கையொப்பத் தொகையும் இவரும் வருஷத்தின் தொகையும் தாமதஞ்செய்யாமல் அனுப்பும்படி வணக்கமாகக் கேட்டுக்கொள்ளப்படுகிறது.

கையொப்பக்காரர்களுக்கு வாரந்தோறும் பத்திரிகை கிடைக்காமலிருந்தால் தயவுசெய்து பத்திராதிபருக்கு அறிவிக்கையைத் தெரியப்படுத்தும்படி கேட்டுக்கொள்ளுகிறோம்.

இந்தியன் மெய்ல்.

[illegible] ஜனவரி 15௳ [illegible] இந்தியாவுக்கு புறப்படும்.

"இந்தியன் ஒப்பீனியன்"

பினிக்ஸ் டெர்பன்

சனிக்கிழமை

1905 ஜனவரி 7௳

இந்தியன் ஒப்பீனியன்.

[illegible]

மார்க்கட் விலை.

[illegible]

வெண்டுகோள்.

[illegible]

"इंडियन ओपिनियन" के ... का प्रथम पृष्ठ

जब पत्र छोटे ... लगा था।

२७७. हमारी कसौटी

हम पिछले अंकमें अपनी स्थितिके विषयमें लिख चुके है। हमने उसमें यह भी लिखा था कि यहाँ जो लोग काम करते है उनमें तीन अंग्रेज है। अपने पाठकोंको, हमने जो नया कदम उठाया है, उसका अधिक अन्दाज हो जाये, इस हेतुसे इन तीन अंग्रेजोंने कौन-सा जोखिम उठाया है, वे कौन है और किसलिए प्रेसमें आये है, यह हम बताना चाहते है।

इनमें से एकका नाम श्री वेस्ट[1] है। वे छापाखानेके कामके खासे जानकार है। जोहानिसवर्गमें उनका छापाखाना था। वहाँ उनकी आमदनी ठीक थी और उनके अधीन कितने ही लोग थे। *ओपिनियनपर* जब वास्तविक संकट पड़ा उस समय वे २४ घंटेमें तैयारी करके अपना काम बन्द करके चले आये।[2] ये सज्जन इस समय खाने-पहनने लायक लेकर, अन्तमें लाभ होगा[3], ऐसा विश्वास रखकर रहते है और अपना ही काम मानकर सुबहसे शामतक मेहनत किया करते है।

दूसरे श्री किचन[4] हैं। वे बिजलीके ठेकेदार थे। उनकी अपनी पेढ़ी थी और वे अच्छी कमाई करते थे। नये परिवर्तनकी खबरसे उनका मन उत्साहित हुआ। उन्होंने देखा कि *ओपिनियनका* ध्येय बहुत अच्छा है। पैसेका उन्हें लोभ नहीं है, और जिस पद्धतिसे फीनिक्समें रहना है वह सरल, सस्ती और सरस है; इसलिए वे अपना धंधा छोड़कर केवल निर्वाहके योग्य मिलनेवाले पैसेमें सन्तोष मानकर प्रेसमें शामिल हो गये।

तीसरे श्री पोलक[5] है। वे अभी *क्रिटिक*[6] समाचारपत्रके सहसम्पादक हैं। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है किन्तु अत्यन्त सादे विचारके होनेके कारण तथा यह मानकर, कि *इंडियन ओपिनियनमें* वे इच्छानुसार अत्याचारके विरुद्ध अपनी भावना प्रकट कर सकेंगे, उन्होने ऊपरकी नौकरी छोड़नेकी सूचना अपने प्रधानको देदी है और अगले वर्षके प्रारम्भमें यहाँ आ पहुँचेंगे। इस बीच अखबारके

१. अल्बर्ट वेस्टसे गांधीजीकी पहली मुलाकात जोहानिसवर्गके एक उपाहार-गृहमें हुई। वेस्टका जन्म लिंकनशायरके एक कृषक-कुटुम्बमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण हुई थी। बादमें श्री वेस्ट फीनिक्स आश्रममें गांधीजीके साथ काम करने चले आये और उनकी माता, बहन कुमारी एडा और पत्नी भी आश्रममें रहने लगीं। श्री वेस्ट सत्याग्रह आन्दोलनमें गिरफ्तार भी हुए। देखिये *आत्मकथा* (गुजराती), भाग ४, अध्याय १६।

२. छापाखाना पहले डर्बनमें स्थापित हुआ था। फिर १९०४ में उसे फीनिक्समें हटाया गया।

३. पहले आधा लाभ और १० पौंड प्रतिमास वेतन निर्धारित हुआ था। किन्तु जब प्रेस आत्मनिर्भर नहीं हुआ और फीनिक्स ले जाया गया तब वर्ण या जातिके भेद-भावके बिना सबका वेतन ३ पौंड मासिक तय किया गया।

४. श्री हर्बर्ट किचन एक थियॉसफिस्ट थे। उन्होंने श्री नाजरकी अकाल मृत्युके बाद *इंडियन ओपिनियनका* सम्पादन किया। कुछ दिनों गांधीजीके साथ रहे और बोअर युद्धमें उनके साथ काम किया।

५. श्री हेनरी एस० एल० पोलकसे भी गांधीजीकी भेंट वेजीटेरियन रेस्तराँमें हुई थी। पोलकने ही गांधीजीको रस्किनकी पुस्तक *अन टु दिस लास्टकी* प्रति दी थी जिससे प्रभावित होकर गांधीजीने फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की। गांधीजीकी सलाहपर पोलकने वकालतकी शिक्षा ली और उनके सहयोगीकी तरह काम करने लगे। किचनके बाद *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादक हुए। दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें मदद करनेके लिए भारत और इंग्लैंड गये तथा सत्याग्रह आन्दोलनमें कारावास भोगा।

६. *ट्रान्सवाल क्रिटिक*।

இந்தியன் ஒப்பினியன்.

வாரமொருமுறை பிரசுரிக்கப்படும்.

செப்டம்பர் மீ 1905 ஞ் ... 7௳ சனிக்கிழமை

கையொப்பக்காரர்கள் சென்ற வருஷத்திற்குச் சேரவேண்டிய கையொப்பத்தொகையும் நிகழும் வருஷத்தின் தொகையும் தாமதஞ்செய்யாமல் அனுப்பும்படி வணக்கமாகக் கேட்டுக்கொள்ளப்படுகிறது.

கையொப்பக்காரர்களுக்கு வாரந்தோறும் பத்திரிகை கிடைக்காமலிருந்தால் தயவுசெய்து பத்திராதிபருக்கு அதுவிஷயத்தைத் தெரியப்படுத்தும்படி கேட்டுக்கொள்ளுகிறோம்.

இந்தியன் மெயில்.

[illegible]

"இந்தியன் ஒப்பினியன்" பிரசுரிக்கும் வெளியிடல் சனிக்கிழமை

1905 ஞ் ... 7௳

இந்தியன் ஒப்பினியன்.

[illegible]

மார்க்கட் விலை

[illegible]

[illegible]

"इंडियन ओपिनियन" के तमिल-विभागका प्रथम पत्र

ઇંડિયન ઓપિનિયન.

પુસ્તક ૨. ફીનીક્સ—શનીવાર, તારીખ ૭ મી જાનેવારી, ૧૯૦૫. અંક ૩૨.

અઠવાડિક પંચાંગ.

—:o:—

ખ્રસ્તી—તા૦ ૭ જાનેવારીથી, તા૦ ૧૩ જાનેવારી સુધી, ઇ૦ સ૦ ૧૯૦૫

હીંદુ—પોશ શુદ ૨ થી, પોશ શુદ ૭ સુધી, સંવત ૧૯૬૧.

મુસલમાની-તા. ૩૦ મી સવાલથી, તા. ૬ મા સવાલ સુધી ૧૩૨૨ હીજરી.

વાર.	ખ્રિસ્તી તારીખ	હિંદુ તીથી.	મુસલમાની તારીખ	સૂર્યોદય ક. મી.	સૂર્ય અસ્ત ક. મી.
શની...	૭	૨	૩૦	૫ ૫	૬ ૫૯
રવી..	૮	૩	૧	૫ ૬	૬ ૫૯
સોમ.	૯	૪	૨	૫ ૭	૭ ૦
મંગળ	૧૦	૫	૩	૫ ૭	૭ ૦
બુધ..	૧૧	૬	૪	૫ ૮	૭ ૦
ગુરૂ...	૧૨	૬	૫	૫ ૯	૭ ૦
શુક્ર..	૧૩	૭	૬	૫ ૧૦	૬ ૫૯

નોટીસ.

અમારા ... તથા વાંચનારાઓને ખબર ... છે કે અમારું પ્રેસ ... છે અને ... તેના ... ઉપર ... કરવામાં આવશે.

ઇંડિઅન ઓપિનિઅન.

શનીવાર, તા૦ ૭ જાનેવારી ૧૯૦૫.

કરારનામામાં આવતા મજુરોની સ્થિતિ.

—o—

કરારનામામાં આવતા હિંદી મજુરોની, એટલે સાધારણ વાતમાં કહેવાતા 'ગીરમીટીઆ'ની સ્થિતિ વિષે વારંવાર ફરિયાદ આવે છે, અને તેઓ બહુ કંગાળ હાલતમાં હોય છે, તેમ તેમની તરફ ફરિયાદ પર પૂરતું ધ્યાન અપાતું નથી, એમ મનાય છે. કરારનામાની સરતો કબુલ કરી તેઓ આવે છે, એટલે થોડી પણ ગુલામગીરી કરવા તેઓ બંધાઇને આવે છે. હિંદુસ્થાનમાં અતિશય ગરીબાઇ છે, તે સાથે મોંઘવારી વધતી જાય છે, એટલે લાખો અને કરોડો આદમીઓ પોતાનો નિર્વાહ મહામુશીબતથી કરે છે; તેમાં જ્યારે વરસાદ અને રોગથી નુકશાન થાય છે ત્યારે તો હદ વળી જાય છે, અને લાખો ગરીબ આદમી ઘરબાર વગરનાં થઇ જાય છે, અને પેટની વેઠ કરવા ગમે તેવી મખાત સરતો પણ સમજવા કે જાણવાની દરકાર બતાવ્યા વિના દૂર દેશ ખાવા જેટલું પણ મળવાની આશાથી ગમે તેવું કામ કરવા ખુશીથી બહાર નીકળી પડે છે. અહીંયા કામ પડવા અને સવાર સાંજ દરરોજ ખાવા મળ્યું પછીજ તેમને તેમની સ્થિતિનો કાંઇ ખ્યાલ આવે છે. આવા અનાથ અને કંગાલ લોક પર હદથી વિશેષ જુલમ નહિ થવા, અને તેમને ઠીકપણે સુખાકારી અને દેખરેખનો લાભ મળે એના દરેક હેતુથી નામદાર હિંદી સરકાર, જે સરકાર એવા મજુરોને મોકલે છે તેની સાથે ખાસ સરત કરે છે કે મજુર મંગાવનાર સરકારે એક ખાસ અમલદાર રાખવા કે જેની આગળ પોતાના દુઃખ હોય તો તે મજુરો રડે, અને બની શકે તેમ તે અમલદાર મજુરોની ઓરદાસ્ત કરે અને તેમને હક્કનો ગેરઇનસાફ થવા નહિ દે. હિંદી સરકાર આવી ખાસ સરત કરે છે એટલુંજ નહિ, પણ એમ પણ તજવીજ રાખે છે કે તે અમલદારે દર વરસે કરારનામામાં આવતા તમામ હિંદીઓની સ્થિતિ વિષે રિપોર્ટ ખબર મોકલવી, કે તેમની ખાતરી થાય કે મજુરી કરવા ગયેલા લોક સુખાકારીમાં તેમનું ભરણપોષણ કરે છે. જ્યાં જ્યાં સંખ્યાબંધ મજુરો કામ કરતાં હોય ત્યાં ત્યાં તે અમલદારે જાતે જઇ પુછપરછ કરી, તેઓની જગાઓ તપાસવી, અને કાંઇપણ ખોડખાંપણ જણાય તો તે સુધરાવવી—અર્થાત, ટુંકમાં, મજુરોના બેલી તરીકે વર્તવાની અમલદારની ફરજ છે, અને તે સંતોષકારક રીતે અદા કરે છે તે અને સરકારે જોવું એવી સમજુતી છે. આ પરથી હિંદી સરકાર મજુરોની બાબતમાં પણ કાળજી રાખે છે એમ સાફ જણાય છે. હવે, આટલી કાળજી છતાં ગઇ સાલમાં લખ્યું તે પ્રમાણે શાને છે. તો કારણ તપાસવાં જોઇએ. અમારી ખાતરી છે કે જો કાંઇ બારે ખોડ સરકારના ધ્યાનમાં નહિ હોય, અને તે સ્પષ્ટ બતાવી હોય તો, દયાળુ બ્રિટિશ સરકાર તે ખોડ બનતી ત્વરાથી જરૂર સુધારે. એટલે, જો અસંતોષ હોય તેના કારણ તપાસવાં અને માલમ પડે તો તે પર સરકારનું ધ્યાન ખેંચવું કે જેથી અસંતોષ મટાડવા તજવીજ થાય—એમ કરવાની આપણી ફરજ છે.

આજ કાંઇ કેટલાં વરસ થયાં હિંદુસ્થાનની સરકાર હિંદીઓને દૂરદેશ મજુરી કરવા કરારનામામાં બંધાઇ જવા દે છે એ સહુ કોઇ જાણે છે કે આ દૂરદેશ બ્રિટિશ રાજનો ભાગ છે, એટલે, બ્રિટિશ અમલવાળા દેશોમાંજ હિંદી મજુરોને જવા દે છે. જર્મનિ વિગેરે દેશોએ હિંદી સરકારને મજુરો પોતાનાં રાજ્યમાં જવા દેવાની અરજ કરી હતી, પણ તે સ્વિકારી નથી. તેનું કારણ એમ બતાવાય છે કે મહોટાં પર-રાજ એકવાર હિંદી સરકાની સરતો તોડે તો તેથી રાજકારભારમાં બહુ અગવડ નડે, અને ઘટતી દેખરેખ રખાય નહિ. આપણું એક જમાનાની બલિહારી છે, કે યુરોપનાં મહોટા રાજ્યોજ મજુરો મેળવવા તજવીજ કરે છે; અને આમ તજવીજ કરવાનું કારણ એ કે યુરોપિઅનો સાથે પાકા સંબંધમાં આવતા મુલકોમાં ગુલામગીરી તદન નાબુદ થઇ ગઇ છે. મહેનતુ મજુરો વિના તેઓની આબાદાની થાય નહિ (અને તેથીજ કુદરતના ખેલમાં મજુર એક નોંધપાત્ર છે) દુનિયાનો નિયમ એવો ... માણસ ... વગર ... થાય છે એટલે તેને મહેનત મજુરી ... કરવા ... નથી, ... થય, અને

"इंडियन ओपिनियन" के गुजराती-विभागका प्रथम पृष्ठ

लिए लिखना शुरू कर दिया है। पाँचेफस्ट्रूममें हम लोगोंके विरुद्ध एक बड़ी सभा की गई थी। उसका समूचा विवरण इन्होंने भेजा था; वह बहुतोंने अंग्रेजीमें देखा होगा। भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री क्रूगरकी अन्त्येष्टि-क्रियाका अंग्रेजीमें विवरण भी श्री पोलकने ही लिखा था।

मेरे अनुभवके प्रमाणसे तीनों अंग्रेज सज्जन भले, बुद्धिमान और निःस्वार्थ व्यक्ति हैं। जब दूसरी कौमके लोग इतना अधिक करते हैं तो मनमें यह सवाल आना ही चाहिए कि हमें क्या करना चाहिए। हर व्यक्ति, जिसका इस साहसिक काममें मदद करनेका विचार हो, अपनी शक्तिके अनुसार मदद कर सकता है और उसमें उसका कुछ नहीं जाता। एक हाथसे ताली नहीं बजती। यह समाचारपत्र सब भारतीयोंका है, ऐसा समझना चाहिए और हम जब ऐसा समझकर काम करेंगे, तभी पार लगेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१–१२–१९०४

२७८. पाँचेफस्ट्रूमकी कुछ और गलतबयानियाँ

पाँचेफस्ट्रूमकी सभामें, जिसका विवरण[1] हाल ही में हमारे स्तम्भोंमें छप चुका है, दिये गये कुछ वक्तव्योंपर हम चर्चा किये बिना नहीं रह सकते। क्योंकि, हम अपने यूरोपीय मित्रोंके सामने सच्ची बातें पेश करना जरूरी मानते हैं, ताकि वे भारतीयोंकी स्थितिको सही रूपमें समझ सकें।

हम ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रवेशके बारेमें श्री लवडेके शब्द ही उद्धृत करेंगे :

> **रोक-थामके कानूनका प्रस्ताव तो सर्वप्रथम भारतीय व्यापारियोंके आने और १८८१ के समझौतेके बदलेमें १८८४ का समझौता स्वीकार होनेके बाद ही पेश किया गया था।**

अतः, श्री लवडे यह बताना चाहते हैं कि १८८४ से पहले ट्रान्सवालमें कोई भारतीय व्यापार कर ही नहीं रहे थे और, इसलिए, जब समझौता तैयार किया गया तब भारतीयोंका कोई खयाल किया ही नहीं गया था।

तथापि सत्य यह है कि समझौतेके अमलके बारेमें भारतीयोंका खयाल किया गया था और १८८१ तथा १८८२ में और, फलतः, १८८४ के पहले, भारतीय व्यापारी ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे थे। इस तरह, श्री लवडेके "तथ्य" कमसे-कम इस विषयमें तो सदोष हैं। इसके अलावा, जैसा कि श्री गनीने स्टारको लिखे एक पत्रमें[2] बताया है, १८८५ का कानून ३ गोरी आबादीके एक बहुत बड़े भागकी गम्भीर गलतबयानीके कारण पास किया गया था। कुछ वक्तव्य यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं :

> **सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोंके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है।**

१. देखिए "पाँचेफस्ट्रूमकी सभा", दिसम्बर १७, १९०४।

२. देखिए "पत्र: *स्टारको*", दिसम्बर २४, १९४० के पूर्व।

और भी

चूँकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।

ये वक्तव्य, हम जिसे उचित और न्यायसंगत बयान मानते है, उससे मेल नही खाते।

जिस तरहके आरोप हमने उद्धृत किये है, उनका प्रतिवाद करनेका कष्ट उठाना अनावश्यक है।

तो फिर, जैसा कि हम कह चुके है, श्री लवडे कथनीयको न कहने और अकथनीयको कहनेके अपराधी हुए हैं। और व्यक्तिगत दुर्गुणोंका असम्बद्ध विषय छेड़कर असली मुद्देसे लोगोंका ध्यान बँटानेका प्रयत्न करना उनके लिए शोभास्पद न था।

अब रही अरब व्यापारियों द्वारा सालमें ४०पौंडसे ज्यादा खर्च न करनेकी बात। यह कहना गलत है कि भारतीय व्यापारी सालमें ४०पौंडसे ज्यादा खर्च नहीं करता। अगर श्री लवडेके कथनानुसार, उसके पास पाँच सहायक हों, जैसे कि बहुधा होते ही है, और प्रत्येकको २४ पौंड सालाना दिया जाता हो, तो यह आरम्भिक खर्च ही १२० पौंड हो गया। उसका अपना व्यापारका खर्च, व्यक्तिगत खर्च, भाड़ा, और कर इसके अलावा है। किसी भी हालतमें, अनुभवके आधारपर हम यह अपेक्षा नही करते कि श्री लवडे श्री गनीकी चुनौती स्वीकार करेंगे।

ट्रान्सवालमें वर्तमान भारतीयोंकी संख्याके बारेमें और इस कथनके विषयमें, कि उपनिवेशमें उनका आना लगातार जारी है, हम एक अन्य लेखमें[1] अपने विचार व्यक्त कर चुके है। हमें सिर्फ इतना ही कहनेकी जरूरत है कि मुख्य परवाना-सचिवके प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं, और उनके अनुसार श्री लवडेके "तथ्य" गलत है। *प्रिटोरियामें* वस्तु-भण्डारोंकी संख्याका जिक्र करते हुए श्री लवडेने यह कहकर अत्यन्त असावधानी दिखाई है कि उनकी संख्या बहुत बढ गई है। सच बात यह है कि *प्रिटोरियामें* युद्धके समयसे भारतीय वस्तु-भण्डारोंकी संख्या लगभग *३० फी सदी* घटी है; जब कि गोरोंके भण्डारोंकी संख्या इतनी ही बढ़ी है। बस्तीकी बात बिलकुल जुदा है, और झूठा असर पैदा करनेके उद्देश्यसे उसका यहाँ जबरदस्ती घसीट लाना उचित नही था। तो फिर, अगर श्री लवडे अपने ही शहरके बारेमें गलत जानकारी रखते है तो उनसे ट्रान्सवालके अन्य शहरों, दक्षिण आफ्रिकाके अन्य उपनिवेशों और स्वयं भारतके बारेमें सच्ची स्थितिकी जानकारी रखनेकी अपेक्षा कैसे की जा सकती है? भारतीयोंपर असत्यका जो आरोप लगाया गया है उसपर एक दूसरे लेखमें विचार करनेका हमारा इरादा है। हम यह बतानेका भी प्रयत्न करेंगे कि जो व्यक्ति इस प्रकारके विषयमें अपना मत देनेके पूर्णतः योग्य है, वे बहुत भिन्न विचार रखते हैं; और हम सब उचित सम्मानके साथ निवेदन करते हैं कि श्री लवडे उसके योग्य नही हैं।

श्री लवडेने कहा था कि भारतमें सरकारी वकीलको कैदियोंपर फिरसे मुकदमे चलाने, सजाओंको रद करने और मामलोंको ऊँची अदालतोंमें ले जानेके कतिपय अधिकार प्राप्त है, क्योंकि भारतमें झूठी गवाही देना उचित बात मानी जाती है। झूठी गवाहीका प्रश्न तो दूर रहा, श्री लवडेको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतमें सरकारी वकीलको ट्रान्सवालके महान्यायवादीकी अपेक्षा ज्यादा अधिकार प्राप्त नही हैं और वास्तवमें उसके अधिकार इतने व्यापक है ही नही।

परन्तु अबतक श्री लवडेने अपनी जानकारीपर विचार नही किया है, क्योंकि उन्होंने इस मुख्य तथ्यका जिक्र ही नहीं किया कि इन सरकारी वकीलोंमें से बहुतसे भारतीय रहे है, और हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण और अर्थगर्भित बात है जो छोड दी गई है।

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*" दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व।

अब कुछ भारतीयोंके मताधिकारके विषयमें। यह बात सत्य है कि उन्हें एक बहुत निश्चित मताधिकार प्राप्त है। भारतके प्रायः प्रत्येक महत्त्वके कस्बेमें नगरपालिका या स्थानीय-निकाय मौजूद हैं। उसका चुनाव अंशतः या पूर्णतः करदाता करते हैं, जिनमें बहुमत भारतीयोंका है। इसलिए, वहाँ आरम्भ ही नगरपालिका-मताधिकारसे होता है। फिर विभिन्न प्रदेशोंकी धारा-सभाओंके कुछ सदस्योंका चुनाव निगमोंके सदस्य करते हैं और ये निगम-सदस्य स्वयं करदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रीतिसे चुने जाते हैं। इस तरह वहाँ एक अप्रत्यक्ष राजनीतिक मताधिकार भी है। अतः "भारतीय मताधिकार" शब्दोंके प्रयोगमें हम अपने अधिकारोंकी मर्यादाके भीतर ही हैं। इसलिए सदाके समान श्री लवडेका यह कहना भी गलत ही है कि भारतमें "किसी तरहकी प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं ही नहीं, और सब उपस्थित लोगोंको मालूम है कि भारतीय सैनिक सत्ता द्वारा शासित हैं, एवं इसमें भारतीयोंके धर्म और जातिप्रथा सहायक हैं।" वहाँ भारतीयों और गोरोंके बीच कोई सामाजिक व्यवहार नहीं है, यह कहते हुए श्री लवडे उन विशाल स्वागत-समारोहोंको भूल जाते हैं जो वाइसराय और सरकारकी ओरसे किये जाते हैं और जिनमें समाजके दोनों पक्ष आपसमें मिलते-जुलते हैं। और कूच-विहारके[1] राजा द्वारा आयोजित सहनृत्यों (बॉल डान्स) जैसे समारोहोंकी स्मृति भी उन्हें नहीं रहती जिनमें गोरे और भारतीय दोनों बराबरीकी हैसियतसे शामिल होते हैं। परन्तु ये सब बातें यहाँ अप्रासंगिक हैं; क्योंकि दक्षिण आफ्रिकाका भारतीय समाज गोरोंके साथ सामाजिक व्यवहार कतई नहीं चाहता, और न उसने कभी इसकी माँग ही की है। वह मानता है कि अनेक कारणोंसे यह अनावश्यक और अनुचित है।

अफसरोंके भोजनालयोंमें तो भारतीयोंका सत्कार होता ही है। सम्राटके निजी मित्र और अंग-रक्षक कर्नल सर प्रतापसिंहका उदाहरण इसका प्रमाण है। और, निस्सन्देह, गोरे सैनिक ऊँची श्रेणीके भारतीय अफसरोंको सलाम भी करते हैं।

भारतीयों और गोरोंके सम्बन्धसे वर्णसंकर जातिके उत्पन्न होनेका प्रश्न भी, स्पष्ट कारणोंसे, सभामें पेश किया गया था। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि जिसे भारतीय जीवन और भारतीय रीति-रिवाजोंकी जानकारी न्यूनतम भी है वह व्यक्ति भी इस प्रकारका तर्क पेश करनेका कभी स्वप्न तक न देखता। अतएव हम इस विषयको तूल न देंगे।

तथापि श्री लवडेने सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीका जिस तिरस्कारपूर्ण ढंगसे जिक्र किया है, उसके बारेमें हमें एक बात कहनी है।

श्री लवडेने कहा :

इंग्लैंडके लोग अपने-आपको इतना भूल गये हैं कि उन्होंने एक काले आदमीको ब्रिटिश संसदका सदस्य चुन दिया है। इस देशके निवासी ऐसा कदापि न करेंगे। वे अपने रंगको इस हदतक नहीं भूलेंगे।

परन्तु ऐसे अभद्र कथनका कोई क्या उत्तर दे सकता है? हम समझते हैं कि जिन निर्वाचकोंने स्वर्गीय लॉर्ड सैलिसबरी द्वारा मखौल उड़ानेपर भी, दादाभाई नौरोजीको संसदका सदस्य चुना था, उन्होंने लगभग ४ करोड़ ब्रिटिश जनताके संचित राजनीति-ज्ञानका उचित परिचय दिया था। हमें केवल एक और गलतीका खण्डन करना है। श्री सैम्सनने कहा था कि जोहानिसबर्गमें भारतीय घरोंमें मेज-कुर्सियाँ बनाते और उन्हें गोरे कारीगरोंकी स्पर्धामें खुले बाजारमें बेचते हैं। मुँहफट भाषामें कहें तो यह असत्य है। जोहानिसबर्गमें इस पैमानेपर काम करनेवाले कोई भारतीय कारीगर नहीं हैं। निश्चय ही ऐसे वक्तव्यकी बेहूदगी स्वतः ही काफी स्पष्ट है।

१. असममें एक भूतकालीन छोटी रियासत।

इस वक्तव्यसे हमें उस व्यापारीकी कहानी याद आती है, जिसने एक दिन अपने गु गुमाश्तेसे कहा था : "काम लाओ, हो सके तो ईमानदारीसे लाओ; मगर काम लाओ।" मा होता है कि पॉचेफस्ट्रूमकी सभाके वक्ताओंके मनमें ऐसी ही कल्पना प्रबल थी। मानो, उन्ह एक-दूसरेसे कहा था : "जोरदार भारतीय-विरोधी भावना पैदा करो, हो सके तो ईमानदा पैदा करो; मगर पैदा करो।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१–१९०५

२७९. श्री क्लाइनेनबर्ग और श्री अब्दुल गनी

हमने अपने प्रतिष्ठित सहयोगी जोहानिसबर्ग *स्टार*के स्तम्भोंको सावधानीके साथ देखा परन्तु उसमें हमे अभीतक यह दिखाई नही दिया कि श्री टी० क्लाइनेनबर्गने भारतीय संघके अध्यक्ष चुनौती स्वीकार की हो। श्री गनीने अपन विरोधीको मौका दिया है कि वे भारतीयोंकी अ सभामें कही गई बातोंका खण्डन करें। अगर श्री क्लाइनेनबर्ग इस मौकेका लाभ उठाना चा है, तो हमें इसकी जानकारी प्राप्त करके खुशी होगी। हमें यह प्रतीत होता है कि श्री क्लाइने वर्ग इस मामलेको जहाँका तहाँ छोड़ देनेसे सिर्फ श्री अब्दुल गनी और साधारण जनताके प्रति नही, बल्कि स्वय अपने प्रति भी अन्याय करेंगे। हम यह जानते है कि श्री क्लाइनेनबर्ग कि इज्जतदार व्यक्ति है; अतः हमें यह विश्वास है कि उनका श्री गनीकी चुनौतीकी उपेक्षा करने कोई इरादा नही है। हमें कोई सन्देह नही है कि अगर श्री क्लाइनेनबर्ग यह देखते है श्री गनीके तथ्योंका प्रतिवाद करनेके प्रयत्नमें वे एक गम्भीर गलती कर गये है, तो उनमें श्री गन दिये हुए आंकड़ोको सही मानने और अपने वक्तव्यको वापस लेनेका नैतिक साहस अव होगा। स्वतः श्री गनीने खुले तौरसे जाहिर कर दिया है कि अगर उनका दोष पाया जायेगा वे खुली और पूरी माफी मॉगनेको तैयार है। ऐसी स्थितिमें हमे कोई कारण दिखलाई नही पड कि जो बात एक-दूसरे पक्ष द्वारा उपस्थित तथ्योंसे मण्डन और खण्डनके बाद इतनी सरलताके स तय की जा सकती है, उसका यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र कोई अन्तिम फैसला क्यों न हो जा

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१–१९०५

२८०. पॉचेफस्ट्रूमका ओछापन

पॉचेफस्ट्रूमके व्यापारी, जिनका उस स्थानसे केवल एक दूरका और अस्थायी सम्बन्ध या तो उनके तर्कहीन भारतीय-विरोधी पूर्वग्रहसे प्रभावित है, या आतंकित किये जा रहे फलतः वे ऐसे काम करते है जिनके लिए वे अपने अपेक्षाकृत मुक्त क्षणोंमे पूरी तरह शर्मि हुए होंगे। एक सम्मान्य सवाददाताने हमे सूचना दी है कि बीमा-एजेंटोंने एकाएक, बि पूर्वसूचनाके बिना, भारतीय व्यापारियोंकी आग-बीमेकी पालिसियाँ वापस ले ली है। इस तरह उदाहरण हमने कभी, और कहीं भी, नही सुना है। हमे बताया गया है कि ये छोटे-छोटे ए जो हमारे उपर्युक्त कथनके अनुसार, स्थानिक पूर्वग्रह या आतंकके सामने झुक गये है, संसार-प्रसि बीमा कम्पनियोंके प्रतिनिधि है। अगर इन कम्पनियोंके प्रधान अधिकारी इन एजेंटोंकी मूर्खता और अव्यापारिक कार्रवाईपर अपनी मजूरीकी मुहर लगा दे तो हमे बहुत आश्चर्य होग

हम आशा करते हैं कि एजेंट और प्रधान कार्यालयोंके प्रबन्धक दोनों इन पंक्तियोंको देखेंगे; और हम भारतीय व्यापारियोंको भी जोरदार सलाह देते हैं कि वे प्रधान कार्यालयोंको अपने आवेदन भेजें। इस विषयमें पाँचेफस्ट्रूमके लोगोंकी जो नीति बनती जा रही है वह नितान्त अब्रिटिश है। अब यह देखना शेष है कि ट्रान्सवालके अन्य भागोंमें उसका समर्थन कहाँतक किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपीनियन, ७–१–१९०५

२८१. प्लेग

ईस्ट लंदनसे खबर आई है कि वहाँ दो गोरोंको प्लेग हो गया है। ऋतु गर्म और वर्षाकी है, इसलिए यह प्लेग फैलनेका वक्त है। हमारा एक संवाददाता जो लिखता है उसके अनुसार हम लोग अभी जागृत नहीं हुए। डॉ० म्यूरिसनकी[1] हमदर्दी पूरी है। वे हम लोगोंको सहायता देना चाहते हैं। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि उनके द्वारा दिये गये अवसरका लाभ लें। केवल स्वार्थमें अथवा आलस्यमें पड़े रहकर हमें जो करना चाहिए वह न करेंगे तो हमें भय है कि भविष्यमें पछतानेका समय आयेगा। पहलेकी तरह एक समिति नियुक्त करके घरोंमें जाँच करनेकी और जहाँ गन्दगी हो वहाँसे उसे हटानेका प्रयत्न करनेकी पूरी आवश्यकता है। और हमें आशा है कि अगुआ लोग इस दिशामें तुरन्त कदम उठायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–१–१९०५

२८२. डर्बनमें सार्वजनिक पुस्तकालयका उद्घाटन

नीचे दी हुई रिपोर्ट गांधीजीके एक भाषणकी है, जो उन्होंने नेटाल सनातन धर्म सभाके संस्थापक स्वर्गीय श्री ल्लूभाईकी स्मृतिमें स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन करते हुए दिया था।

[डर्बन
जनवरी १०, १९०५]

उन्होंने अपने भाषणमें पुस्तकालयकी स्थापना करनेवालोंको कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि डर्बन जैसे बड़े शहरमें, जहाँ भारतीयोंकी खासी आबादी है, एक अच्छे पुस्तकालयकी निस्सन्देह ही जरूरत है; और इसे पूरा करनेके लिए कुछ समय पहले डर्बनके अग्रगण्य व्यापारियों और नागरिकोंने प्रयत्न करके हीरक-जयन्तीकी यादगारमें उसी नामका एक पुस्तकालय[2] खोला था। किन्तु बादमें पर्याप्त सार-सँभाल और देखरेखके अभावमें वह बंद हो गया। उन्होंने आशा प्रकट की कि इस पुस्तकालयकी हालत वैसी नहीं होगी बल्कि दिनपर-दिन अच्छी होगी

१. डर्बनके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३५७। हीरक-जयन्ती पुस्तकालयका साज-सामान और पुस्तकें नये पुस्तकालयको दे दी गईं।

और इसके संस्थापक आज सरीखी उमंग सदा बनाये रखेंगे और पुस्तकालयको स्थायी बनानेका प्रयत्न करते रहेंगे।

इसके बाद, पुस्तकें कौन-सी रखी जायें और वाचनका समय कौन-सा तय किया जाये — इस बारेमें श्री गांधीने अनेक महत्त्वके सुझाव दिये। उन्होंने रविवारके दिन विशेष रूपसे पुस्तकालयमें आकर मूक सन्मित्र — पुस्तकों — के बीचमें बैठकर उनसे लाभान्वित होनेका आग्रह भी किया।

फिर उन्होंने उपस्थित सज्जनोंसे हमारे *इंडियन ओपिनियनके* बारेमें दो शब्द कहकर भाषण समाप्त किया और पुस्तकालयका उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०५

२८३. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १३, १९०५

सेवामें
माननीय प्रो० गोखले
पूना

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

इंडियन ओपिनियन निकल रहा है, यह आप जानते हैं। अब वह एक ऐसा कार्यक्षेत्र अपना रहा है जिसमें मैं अपने विचारसे आपकी सक्रिय सहानुभूतिके लिए औचित्यपूर्वक प्रार्थना कर सकता हूँ। मैं आपको सब-कुछ साफ-साफ लिखना चाहता हूँ, क्योंकि आप मुझे इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि गलतफहमी नहीं हो सकती। जब मैंने देखा कि श्री मदनजीत बिना आर्थिक सहायताके पत्रको और नहीं चला सकते और चूँकि मैं जानता था कि वे पूर्णरूपेण देशभक्तिकी भावनासे प्रेरित हैं, मैंने अपनी बचतका अधिकांश उन्हें सौंप दिया। किन्तु यह काफी नहीं हुआ, अतः तीन महीने पहले मैंने सारी जिम्मेदारी और व्यवस्था ले ली। अब भी श्री मदनजीत बरायनाम मालिक और प्रकाशक हैं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उन्होंने समाजके लिए बहुत-कुछ किया है। फिलहाल मेरा अपना दफ्तर *इंडियन ओपिनियनके* काममें लगा है और मुझपर लगभग ३,५०० पौंडकी जिम्मेदारी आ चुकी है। कुछ अंग्रेज मित्रोंके सामने, जो मुझे घनिष्ठ रूपसे जानते हैं, मैंने संलग्न पत्रमें वर्णित योजना रखी। उन्होंने विचारको उठा लिया और इस समय उसपर पूरी तरह अमल किया जा रहा है। यद्यपि इसमें फर्ग्युसन कॉलेज पूनाके संस्थापकोंके आत्मत्यागके मुकाबिलेका आत्मत्याग दिखायी नहीं पड़ता, फिर भी मैं कह सकता हूँ कि यह उसका बुरा अनुकरण नहीं है। अंग्रेज मित्रोंको इस निर्भयतासे सामने आते देखना मेरे लिए एक बड़ी ही खुशीकी बात हुई है। वे साहित्यिक नहीं हैं किन्तु खरे, ईमानदार और स्वतन्त्र विचारके लोग हैं। इनमेंसे हरएकका — अपना काम या धन्धा था और वह ठीक तरह चल रहा

था। फिर भी उनमेंसे किसीने केवल निर्वाह-खर्च लेकर, कार्यकर्ताकी तरह सामने आनेमें तनिक-सा भी आगा-पीछा नहीं किया — जिसका अर्थ यह है कि सुदूर भविष्यमें लाभ होनेकी आशासे तीन पौंड प्रतिमास उन्होंने अभी लेना स्वीकार किया है।

यदि मुझे आमदनी होती रही तो मेरा यह भी इरादा है कि एक ऐसी पाठशाला खोलूँ जो दक्षिण आफ्रिकामें किसीसे कम न हो और जो मुख्यतया भारतीय बच्चोंके, और फिर दूसरे बच्चोंके, शिक्षणके लिए हो। ये सब बच्चे पाठशालाके अहातेमें बने छात्रावासमें रहेंगे। इसके लिए भी स्वेच्छासे सामने आनेवाले दो कार्यकर्ताओंकी जरूरत है। यहाँ एक अथवा दो अंग्रेज पुरुषों और स्त्रियोंको इस काममें अपना जीवन लगानेको प्रेरित किया जा सकेगा। किन्तु भारतीय शिक्षकोंकी आवश्यकता अनिवार्य है। क्या आप ऐसे किन्हीं दो स्नातकोंको प्रेरित कर सकेंगे, जिनमें पढ़ानेकी योग्यता हो, जिनका चरित्र निष्कलंक हो और जो केवल निर्वाह-खर्चपर काम करनेको तैयार हो जायें? जो आना चाहें वे पहले दर्जेके जाँचे-परखे व्यक्ति होने चाहिए। मुझे कमसे-कम दो या तीन व्यक्ति चाहिए। किन्तु ज्यादाकी गुंजाइश भी निकाली जा सकती है। जब पाठशाला चलने लगेगी तब स्वच्छताके आधारपर खुलेमें चिकित्साके लिए एक आरोग्य-सदन जोड़नेका इरादा है। किन्तु मेरा तात्कालिक उद्देश्य *इंडियन ओपिनियनको* लेकर है। मैंने उसके बारेमें जो कहा है यदि आप उस सबको ठीक समझें तो कृपया सम्पादकके नाम प्रकाशनके लिए एक उत्साहवर्धक पत्र भेजें और यदि कुछ समय निकाल सकें तो उसके लिए कभी-कभी, छोटा ही सही, लेख भेजते रहें। मैं ऐसे अवैतनिक अथवा वैतनिक संवाददाताओंके लिए भी चिंतित हूँ जो अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और तमिलमें साप्ताहिक टिप्पणियाँ दें। यदि यह महँगा हो जाता है तो मुझे कदाचित् केवल अंग्रेजी टिप्पणियोंसे संतुष्ट होना पड़े — उनका अनुवाद तीनों भारतीय भाषाओंमें किया जा सकेगा। क्या आप ऐसा या ऐसे कोई संवाददाता सुझा सकेंगे? भारतीय प्रश्नको लेकर आपकी तरफ क्या कुछ किया जा रहा है — साप्ताहिक टिप्पणियोंमें, समाचार-पत्रोंसे तत्सम्बन्धी विज्ञप्तियोंके अंश लेकर, इसका अंदाज देना चाहिए और उनमें ऐसी बातें होनी चाहिए, जो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको दिलचस्प लग सकें। पत्रमें लिखे गये विषयके हितमें यदि आवश्यक जान पड़े तो आप अपनी मर्जीके मुताबिक पत्रकी बातें पूरी या अंशतः जाहिर कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ होंगे।

आपका विश्वस्त,

मो० क० गांधी

१ संलग्न[1]

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१०४) से।

1. यह उपलब्ध नहीं है।

२८४. भारतीयोंकी सत्यपरायणता

यह खयाल आम तौरपर फैला दिखाई पड़ता है कि सत्यपरायणता -- सत्यकी अनन्त खोजकी वाह्य अभिव्यक्ति -- एक ऐसा सद्गुण है जो भारतीयोंके स्वभावमें पाया ही नहीं जाता। इस मान्यतामें गलतफहमीकी सम्भावनाके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। भ्रांतिकी सम्भावनाके लिए कोई अवकाश नही। बस, भारतीयको एकदम ठग, बदमाश, झूठा, आवारा -- सारांश यह कि, ऐसा मनुष्य ठहरा दिया जाता है जो इज्जतके प्रत्येक चिह्नसे रहित है।

इस देशमें जो भारतीय आये हैं उनके बीच कोई फर्क नहीं किया जाता। सब आँख मूँदकर "कुली" या "अरब" की कोटिमें रख दिये जाते हैं और सबपर एक समान प्रत्यक्ष या सम्भाव्य झूठा होनेका कलंक लगा दिया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि दक्षिण आफ्रिकामें सामान्यतः भारतीयोंके दो मुख्य वर्ग हैं -- एक तो गिरमिटिया मजदूरोंका और दूसरा व्यापारियोंका। गिरमिटिया भारतीयोंमें लगभग आधे नीची जातियोंके लोग हैं। वे भारतमें अपने अभ्यस्त वातावरण और अपने निवास-स्थानके नैतिक प्रतिबन्धोंसे जुदा कर दिये गये हैं। फलतः भारतमें उन्होंने अपने लिए चरित्रका जो मानदण्ड स्थिर कर रखा था, उससे उनका पतन हो जाना ठीक वैसे ही सम्भव है जैसे कि इसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें पड़े किन्हीं भी दूसरे लोगोंका। इस सम्बन्धमें एक बहु-प्रचारित पुस्तिकाके[1] निम्नलिखित अंश उद्धृत कर देना ज्यादा अच्छा होगा :

> इस उपनिवेशमें मैं जिससे भी मिला हूँ, हरएकने भारतीयोंकी असत्यवादिताकी बात कही है। कुछ हदतक मैं इस आरोपको स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु अगर मैं इस आपत्तिका उत्तर यह कहकर दूँ कि दूसरे वर्ग भी, खास तौरसे इन अभागे भारतीयोंकी हालतोंमें रखे जानेपर, ज्यादा अच्छे नहीं ठहरते, तो यह मेरे लिए बड़े अल्प सन्तोषकी बात होगी। फिर भी, अन्देशा है कि मुझे उस तरहके तर्कका सहारा लेना ही होगा। मैं चाहूँगा तो बहुत कि वे ऐसे न हों, परन्तु यह सिद्ध करनेमें अपनी पूरी असमर्थता कबूल करता हूँ कि वे मनुष्य नहीं, मनुष्यसे कुछ ज्यादा हैं। वे भुखमरीकी मजदूरीपर नेटाल आये हैं (मेरा मतलब सिर्फ गिरमिटिया भारतीयोंसे है)। वे अपने-आपको एक विचित्र स्थिति और प्रतिकूल वातावरणमें पाते हैं। *जिस क्षण वे भारतसे रवाना होते हैं*, उसी क्षणसे, अगर वे उपनिवेशमें बस जाते हैं तो, सारे जीवन उन्हें बिना किसी नैतिक शिक्षाके रहना पड़ता है। हिन्दू हों या मुसलमान, उन्हें नाम-लायक कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती। और वे खुद इतने पढ़े-लिखे होते नहीं कि दूसरोंकी सहायताके बिना स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लें। ऐसी हालतमें वे झूठ बोलनेके छोटेसे-छोटे प्रलोभनके भी शिकार हो सकते हैं। होते-होते उन्हें झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है, बीमारी हो जाती है। वे बिना किसी कारणके, बिना किसी फायदेकी आशाके, झूठ बोलने लगते है। सचमुच तो वे जानते ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। वे जिन्दगीकी एक ऐसी मंजिलपर पहुँच जाते हैं, जहाँ कि उनकी नैतिक शक्तियाँ उपेक्षाके कारण बिलकुल मन्द पड़ जाती हैं . . . तब क्या उन लोगोंपर दया करनेकी अपेक्षा

१. "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; देखिए खण्ड १, पृष्ठ १४२-६६।

उनका तिरस्कार करना उचित है? क्या उनके साथ दयाके अयोग्य बदमाशों जैसा बरताव किया जायेगा या उन्हें ऐसा असहाय प्राणी माना जायेगा, जिन्हें हमदर्दीकी बुरी तरहसे जरूरत है? क्या कोई ऐसा वर्ग देखनेमें आता है, जो इसी तरहकी परिस्थितियोंमें उनके समान ही व्यवहार नहीं करेगा?[1]

जहाँतक भारतीय व्यापारियोंका सम्बन्ध है, हम दावेके साथ कहते हैं कि उनमें किसी भी दूसरी जातिके किसी भी व्यापारीसे ज्यादा झूठ बोलनेकी वृत्ति नहीं है। शायद दूसरे ज्यादातर लोगोंसे उनमें झूठ बोलनेकी लत कम ही है। कारण यह है कि वे उतनी विलासी आदतोंके लोग नहीं हैं, जितने कि उनके अधिक जटिल सभ्यतावाले प्रतिस्पर्धी। इसलिए "पेढ़ीके हितके लिए" झूठ बोलनेकी प्रेरणा उन्हें इतनी ज्यादा नहीं होती।

और यहाँ हम बेधड़क कह देना चाहते हैं कि कम संस्कारी अंग्रेजोंकी एक दुर्भाग्यपूर्ण विशेषता यह है कि जब वे किसी ऐसी वस्तुके सम्पर्कमें आते हैं, जो उनके लिए अपरिचित हो और जिसके वे अभ्यस्त न हों, तब वे उसकी प्रकृतिकी छानबीन नहीं करते। परन्तु उसे जीवनके प्रति अपने दृष्टिकोणसे भिन्न चीज मानकर ठुकरा देते हैं और जितनी भी बुराइयोंकी कल्पना कर सकते हैं, उन सबको उसमें आरोपित कर देते हैं।

हम समझते हैं कि इस प्रसंगमें यह जान लेना फायदेमन्द होगा कि कुछ प्रतिष्ठित अंग्रेजोंने भारतीयोंकी सत्यपरायणताके बारेमें सार्वजनिक रूपसे क्या कहा है।

भारतीय जीवनका अच्छा-खासा अनुभव रखनेवाले एक अंग्रेज सर जॉर्ज बर्डवुडका कथन है:

नैतिक सत्यनिष्ठा बम्बईके (ऊँचे) सेठिया वर्गका उतना ही बड़ा गुण है, जितना कि स्वयं ट्यूटॉनिक[2] जातिका। संक्षेपमें, भारतके लोग किसी असली अर्थमें हमसे ओछे नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापी जानेवाली बातोंमें तो वे हमसे आगे ही हैं।[3]

श्री पिनकॉट कहते हैं:

तमाम सामाजिक बातोंमें अंग्रेज लोग हिन्दुओंके गुरु बननेके प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उनके चरणोंके पास बैठने और शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेनेके ही बहुत अधिक योग्य हैं।[4]

और सत्य निस्सन्देह एक सामाजिक सद्गुण है।

एलफिन्स्टनने कहा है:

हिन्दुओंमें किसी समुदायके लोग इतने चरित्रहीन नहीं हैं, जितने कि हमारे अपने बड़े-बड़े नगरोंके निकृष्ट लोग।

सर जॉन मालकॉमका कथन है:

मैंने देखा है कि जहाँ भारतीय हमारी भाषा जानते थे, या जहाँ उन्हें किसी सुविज्ञ और विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा शान्तिपूर्वक बात समझा दी गई, वहाँ नतीजेसे

१. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; खण्ड १, पृष्ठ १६०–६१।
२. जर्मन, स्कैंडेनेवियन, डच, ऐंग्लो-सैक्सन आदि।
३. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; खण्ड १, पृष्ठ १५८।
४. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; खण्ड १, पृष्ठ १५९।

हम नम्रतापूर्वक बताना चाहते हैं कि इतिहास-लेखकोंमें से मेकॉले एक ऐसे इतिहास-लेखक हैं, जिनकी पुस्तकें अब अपनी सचाई या घटनाओंके तथ्य-मात्रके यथावत् वर्णनके लिए नहीं पढ़ी जातीं, बल्कि लेखककी साहित्यिक शैली और गुणोंके लिए पढ़ी जाती हैं। फिर भी, जब मेकॉलेका उद्धरण दिया ही गया है तो हम उनके निम्नलिखित शब्द उद्धृत करनेके लिए कोई क्षमा-याचना नहीं करते। ये शब्द अभी, आज और सदा-सर्वदा — जबतक भारत और इंग्लैंड एक साथ बँधे हुए हैं — सार्थक रहेंगे।

> मैं एक सम्पूर्ण समाजको अफीम खिलानेकी, अपने हाथोंमें ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान् राष्ट्रको सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देनेकी सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियन्त्रणमें रहनेके अधिक उपयुक्त बन जाये। उस सत्ताका क्या मूल्य, जिसकी नींव दुर्गुणोंपर, अज्ञानपर और दुःख-दैन्यपर रखी गयी हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्तव्योंको भंग करके ही कर सकते हों, जिनके लिए हम शासकोंकी हैसियतसे शासितोंके प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्तव्योंके रूपमें साधारणसे अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता और बौद्धिक प्रकाशके धनीके नाते हमें उस जातिका ऋण चुकाना है, जो तीन हजार वर्षके निरंकुश शासन और पुरोहितोंकी धूर्ततासे अधःपतित हो गई है? *अगर हम मानव-जातिके किसी अंगको अपने ही बराबर स्वतन्त्रता और सभ्यता प्रदान करनेको तैयार नहीं हैं, तो व्यर्थ ही स्वतन्त्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।*[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०५

२८५. भारतीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वो[2]

एक तुलना – १

सर विलियम वेडरबर्न और सर हेनरी कॉटनको लन्दनसे विदाई देनेके पूर्व नवम्बर २९, १९०४ को वहाँके निवासी हमारे भारतीय भाइयों और यूरोपीय मित्रोंने वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटलमें एक भोज दिया था और कई विशिष्ट महानुभावोंको निमन्त्रित किया था। उस अवसरपर भाषण भी दिये गये थे। सर हेनरी कॉटनने अपने भाषणमें भारतीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वोकी थोड़ी-सी तुलना की थी, और उसके बादके जो समाचार प्राप्त हुए हैं उनके आधारपर उनकी तुलना कुछ विचार उत्पन्न करती है।

भारतीय कांग्रेस क्या है, उसकी पैदाइश, उसका कार्य, और लोगों एवं सरकारपर उसका प्रभाव — इन सब बातोंके बारेमें प्रत्येक भारतीयको सामान्य जानकारी है, और न हो तो होनी चाहिए। कांग्रेसकी स्थापनाको आज बीस वर्ष हो चुके हैं। उसका पहला अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, और उस समय हमारे भारतीय नेताओंकी हौस और हिम्मतको देखकर दीर्घदर्शी लोगोंको भरोसा हो गया कि यह संस्था भारतको जीवन देनेमें अवश्य समर्थ होगी। कांग्रेसका यह मूल खास तौर

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १६४।

२. रूसकी स्थानीय क्षेत्रीय सभाएँ, जो रूसी जिलोंमें राज-काजका नियंत्रण करती थीं और बोल्शेविकों द्वारा सन् १९१७ में भंग कर दी गईं।

मे ध्यानमे रखनेकी आवश्यकता हे। इस प्रकारकी काग्रेस स्थापित की जानी चाहिए, ऐसी लॉर्ड डफरिनकी मान्यता थी। उन्होने इस सम्बन्धमे अपने विचार श्री ह्यूमको बताये और श्री ह्यूमको यह बात बहुत पसन्द आई। इसलिए उन्होने इसपर भारतके प्रसिद्ध पुरुषोसे परामर्श किया और फलस्वरूप यह काग्रेस कायम की गई। यह बात याद रखना आवश्यक हे, क्योकि काग्रेसके शत्रु जो अनेक आरोप लगाते है उनका निवारण करनेमे यह काम देगी। काग्रेसकी स्थापना होनेपर विशेषतः तानाशाह, सकुचित-दृष्टि और उद्दण्ड अधिकारी अत्यन्त आतकित हो गये। क्योकि वे यह ताड गये थे कि काग्रेस दिनो-दिन जोर पकडती जायेगी और लोग उसे माता मानकर, उसके अधिवेशनोमे निडरतासे अपनी भावनाएँ प्रकट करेगे। और इस कारण तानाशाही और उद्दण्डता वे-रोक-टोक न चल पायेगी। वे घबरा उठे, और अपने समाचारपत्रोके द्वारा अपना रोप प्रकट करने लगे तथा राज्यके प्रति वफादार काग्रेसपर यह मानकर अगणित, अनुचित एव अशोभनीय आरोप लगाने लगे कि ऐसा करनेसे काग्रेस देरतक नही टिक सकेगी। ये अधिकारी और उनके अखबार नेताओको पानी पी-पीकर कोसने लगे और यह बतानेका प्रयत्न करने लगे कि यह सस्था राज-द्रोही है, और यदि सरकार इसे कुचल न देगी तो राजका नुकसान होगा। लॉर्ड रिपनके[1] समयमे दलीलोका जो वाग्युद्ध हुआ उससे उनकी आखे खुल गई और यह साबित हो गया कि भारतीय अपना हित समझ सकते है, यही नही, अपने लिए प्रामाणिक योजना तैयार कर सकते है। काग्रेसकी स्थापना होनेपर ये विचार पूरी तेजीसे याद आये और सरकारपर भी इसका दवाव पडने लगा। दूसरी ओर काग्रेसमे आपसी फूट पैदा करनेके इरादेसे हिन्दुओ और मुसलमानोकी बात होने लगी और हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच भी बगाली, पजाबी और मद्रासी आदिकी फच्चरे लगाकर फूट डालनेकी भरसक कोशिशे तेजीसे की जाने लगी। थोडे ही समयमे इन विघ्नसन्तोषियोने इतनी चीख-पुकार मचाई कि लॉर्ड डफरिन जैसे धीर-गम्भीर राजनयिकपर भी उसका प्रभाव पड गया। और, उन्होने कलकत्तेसे विदा होनेसे पूर्व सेंट एन्ड्रूके भोजमे भाषण देते हुए काग्रेसके सम्बन्धमे अपना दुर्भाव प्रकट किया जिस पर आग्ल-भारतीयोने तालिया बजाकर उन्हे सम्मानित किया। अलबत्ता स्वर्गीय श्री ब्रेडलॉने[2] जब इस सम्बन्धमे अपने विचार व्यक्त किये तब लॉर्ड डफरिनने लिखकर उनका समाधान करना उचित समझा। परन्तु यह बात दूसरी है। हमे तो फिलहाल यही देखना है कि ऐसी-ऐसी मुसीबतोके होते हुए भी हमारे नेता हिम्मत नही हारे, बल्कि मनको स्थिर रखकर अपना कर्त्तव्य पूरा करते चले गये। परिणामत आज उन्होने यह समय ला दिया हे कि काग्रेसकी महत्ता उसके शत्रुओको भी स्वीकार करनी पडती हे और घमडी अधिकारियोको भी उसकी सूचनाओपर ध्यान देना पडता हे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०५

१. लॉर्ड रिपन, भारतके वाइसराय, १८८०–८४ और उपनिवेश मंत्री १८९२–९५।

२. चार्ल्स ब्रैडलॉ (१८३३–१८९१), एक सुविख्यात लोक सेवक, ब्रिटिश संसदके सदस्य और कट्टर नास्तिक। भारतीय मामलोंमें ये बहुत दिलचस्पी रखते थे और इन्होंने १८८९ में भारतीय विधान परिषदोंके सुधारके लिए एक विधेयकका मसविदा बनाया था। ये १८८९ में कांग्रेसके तृतीय अधिवेशन (बम्बई) में शामिल हुए थे। जब गांधीजी लन्दनमें पढ़ रहे थे उन दिनों वे श्री ब्रैडलॉकी अन्त्येष्टिमें सम्मिलित हुये थे।

२८६. प्लेग और शराब

पंजाव सरकारकी शराव-सम्वन्धी रिपोर्टमें वताया गया है कि पंजावमें प्लेगके डरसे लोग वहुत शराव पीने लगे हैं — और आवकारी-करमें वहुत वड़ी वृद्धि हो गई है। उसमें यह भी वताया गया है कि शराव पीनेसे प्लेग नहीं होता, यह मानकर जिन-जिन गाँवोंमें लोग शराव पीने लगे हैं उन-उन गाँवोंमें प्लेग और भी अधिक जोरसे फैला है तथा मनुष्योंकी वरवादी अधिक हुई है। किन्तु जिन गाँवोंमें लोग शराव पीते ही नहीं हैं, उन गाँवोंमें प्लेगसे वहुत कम हानि हुई है। इस रिपोर्टसे यह तो सावित नहीं होता कि शराव पीनेवालोंको प्लेग नहीं होता, परन्तु यह तो साफ-साफ सावित होता है कि शराव पीनेसे पूरा-पूरा नुकसान होता है। जोहानिसवर्गमें डॉ० मेलिसका, जो प्लेगके अस्पतालके मुख्य अधिकारी थे, विचार भी यही है कि शराव पीनेसे प्लेगका जोर वढ़ता है, घटता नहीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०५

२८७. जोहानिसवर्गमें प्लेग[1]

जोहानिसवर्ग
जनवरी १६, १९०५

मालूम होता है, जोहानिसवर्गमें प्लेग भड़क उठा है। एक फेरीवाले मुसलमानके वेटेको कुछ दिन पहले सोवर स्ट्रीटमें वीमारी हो गई थी। शनिवारको उसके डॉक्टरने अधिकारियोंको सूचना दी। रविवारको उसे प्लेगके अस्पतालमें ले गये और वह जवान आज गुजर गया और दफना दिया गया। उसके शवकी धार्मिक रीतिसे क्रिया करनेका मौका नहीं आया, क्योंकि वह दफन कर दिया गया था; वरना अधिकारी लोग उसे खुशीसे दे देते।

यह वटा हमपर दुवारा घुमड़ आई है। इसलिए हमारे सव भाई नीचेके नियम याद रखेंगे तो वड़ा लाभ होगा। नहीं तो वहुत वड़ा नुकसान होगा। इतना ही नहीं, वल्कि हमारे खिलाफ अधिक कड़े कानून वनानेमें यह घटना वतौर दलीलके पेश की जायेगी।

१. किसीको यह न समझना चाहिए कि सरकार रोगीको अस्पतालमें ले जाकर दुःख देगी।

२. वुखार या दमेकी वीमारी अकस्मात् हो जाये तो तुरन्त सरकारको खवर दी जाये।

३. डॉक्टरकी सलाह तुरन्त ली जाये।

४. कोई भी भागे नहीं; और जहाँ है वहाँ वना रहे।

५. जो व्यक्ति प्लेगके रोगीके संसर्गमें आये हों वे छिपें नहीं, वल्कि प्रकट हो जायें और अपने कपड़े आदि सफाईके लिए दे दें।

६. अपने पैसे वनानेकी नीयतसे सोनेकी कोठरी दूकानसे सटी हुई कदापि न रखें।

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें प्रकाशित किया गया था।

७. दूकानका माल घरमें जरा भी न रखें।

८. घरको बहुत ही साफ रखें।

९. प्रत्येक घरमें या कोठरीमें खुले उजालेका और हवाका आवागमन होना चाहिए।

१०. खिड़कियाँ खुली रखकर सोयें।

११. पहनने और सोनेके कपड़े साफ रखे जायें।

१२. आहार हलका और सादा हो।

१३. दावतें बन्द रखनी चाहिए।

१४. पाखानेमें जहाँ बालटियाँ रखी जाती हों वहाँपर सदैव सूखी मिट्टी और राख रखी जाये और प्रत्येक व्यक्ति शौचके बाद उसमें से मिट्टी या राख लेकर अच्छी तरहसे मैलेपर डाले ताकि वह ढक जाये और उस पर मक्खी आदि न बैठें।

१५. पाखाने और पेशाबकी जगह बहुत साफ-सुथरी रखी जानी चाहिए।

१६. घरके फर्श और अन्य भागोंको कीटाणुनाशक घोल मिलाकर गरम पानीसे खूब धोया जाये।

१७. जहाँ प्लेगका रोग हुआ हो वहाँका कोई सामान ठीक-ठीक साफ किये बिना अन्यत्र उपयोगमें न लाया जाये।

१८. एक साधारण कोठरीमें दोसे अधिक व्यक्ति न सोयें।

१९. रसोई बनानेकी या भोजन करनेकी जगहोंमें और जहाँ खानेकी चीजें रहती हों वहाँ बिलकुल न सोना चाहिए।

२०. घरमें चूहे न आ सकें इस तरह घरमें या दीवारोंमें सीमेंट आदि लगायें। विशेषतः यह सावधानी रखी जाये कि चूहे खानेकी वस्तुओंतक न पहुँचें।

२१. जिनको हमेशा दिन-भर घरमें बैठकर काम करना पड़ता हो उनको स्वच्छ वायुमें जाकर दो-तीन मीलतक चलनेका व्यायाम करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२८८. पत्र : जे० स्टुअर्टको[1]

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १९, १९०५

श्री जे० स्टुअर्ट
आवासी न्यायाधीश
डर्बन

प्रिय श्री स्टुअर्ट,

मैं *इंडियन ओपिनियन* पत्रकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह अठारह महीनोंसे निकल रहा है। इस अवधिमें मेरा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह दक्षिण आफ्रिकाके दो महान् समाजोंके बीच दुभाषियेकी तरह काम करता है, इसलिए मेरी नम्र सम्मतिमें यह एक मूल्यवान सेवा कर रहा है। उसका उद्देश्य साम्राज्य-भावनाका पोषण है, और यद्यपि वह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंपर जोर देता है, और उसे जोर देना भी चाहिए, वह प्रायः भारतीय समाजकी भावनाओंको नरम बनाता है और उसे साफ तौरपर उसकी त्रुटियाँ बतानेसे कभी नहीं चूकता। किन्तु अब अपने नये वेष और नये घरमें वह इससे बहुत अधिकका प्रतीक है। अब वह उस योजनाका प्रतीक है, जिसका संक्षिप्त वर्णन संलग्न है[2] और वह सफल हो गई तो सम्भव है, व्यवसायके तरीकोंमें वह क्रान्ति-सूचक हो। कुछ भी हो, चार स्वतन्त्र अंग्रेजोंने अपने धन्धे, जिनमें वे लगे थे इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए छोड़ दिये हैं और उतने ही भारतीयोंने भी वैसा ही किया है,[3] उनकी यह बात आपके मनको भायेगी। किन्तु इन आठ संस्थापकोंके दलके बावजूद योजनाकी सफलताके लिए सार्वजनिक सहयोगपर अवलम्बित रहना पड़ेगा। मुझे लगता है, आप कई तरहसे इस प्रयासमें मदद कर सकते हैं। एक तरीका है उसका ग्राहक बन जाना और कभी-कभी नामसे या गुमनाम उसमें लेख लिखना। वार्षिक मूल्य नेटालमें १२ शि० ६ पेंस और नेटालके बाहर १७ शि० है। कार्यालय फीनिक्स नेटालमें स्थित है। यदि आपको *इंडियन ओपिनियनका* उद्देश्य ठीक जान पड़े और वह जिस योजनाका प्रतीक है वह आपको

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८६–८७।

२. यह उपलब्ध नहीं है। किन्तु जान पड़ता है वह वही पत्र है जो गांधीजीने गोखलेको १३ जनवरीके अपने पत्रके साथ *इंडियन ओपिनियनके* फीनिक्ससे प्रकाशनके बारेमें लिखा था। गांधीजीने अपने दिसम्बर १०, १९०४के दादाभाई नौरोजीको लिखे गये पत्रमें जो उल्लेख किया है उससे सिद्ध होता है कि यह कदाचित् "अपनी बात" शीर्षक *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकीयकी नकल या अलगसे मुद्रित प्रतियाँ थीं।

३. सम्भवतः अंग्रेजोंमें हर्बर्ट किचिन, अल्बर्ट वेस्ट, तथा हेनरी पोलक और भारतीयोंमें छगनलाल गांधी, मगनलाल गांधी और आनन्दलाल गांधीकी ओर इशारा है। मगनलाल और आनन्दलाल १९०२में गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिका गये थे।

सहारा देनेके योग्य लगे तो क्या ऊपरकी दो प्रार्थनाओंके सिवा कृपया उत्साह देनेवाला एक पत्र मुझे लिख भेजेंगे जिसे मैं प्रकाशनके लिए सम्पादकोंको दे सकूँ?

आपका विश्वस्त,

मो० क० गांधी

पुनश्च : मैं सोचता हूँ, आप जब-तब पत्रके लिए अराजनैतिक विषयोंपर लिख सकेंगे।[1]

मो० क० ग०

मूल अंग्रेजीसे अनुवादित कुमारी केली कैम्बैल, डर्बनके सौजन्यसे।

२८९. भारतीयोंकी उदारता और उसका परिणाम

पाठक इस अंकके एक अन्य स्तंभमें पॉचेफस्ट्रूमके मुख्य पुलिस-अधिकारी और पॉचेफस्ट्रूमकी ब्रिटिश भारतीय-समितिका पत्रव्यवहार देखेंगे। यह एक साजसज्जा-युक्त अग्निशामक दल (फायर ब्रिगेड) बनानेकी योजनाको चलानेके लिए समितिके चन्देके बारेमें है। यह पत्रव्यवहार कुछ सप्ताह पहले हुआ था और इससे भारतीय चरित्रके एक ऐसे पहलूपर दिलचस्प प्रकाश पड़ता है, जिसकी उपेक्षा अबतक पॉचेफस्ट्रूमके गोरे निवासियोंने सावधानीके साथ की है। आशा है कि इन दो पत्रोंमें जिन तथ्योंका उल्लेख है उनका अन्य समाचारपत्र अधिक व्यापक प्रचार करेंगे, क्योंकि यह बहुत वांछनीय है कि हमारे विरोधी पॉचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीय समाजका रुख सही-सही समझ लें।

हमें मालूम हुआ है कि नगरपालिका अग्निशामक दलकी योजनाके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता देनेमें असमर्थ रही और, जहाँतक हम जानते हैं, इसी कारण वह योजना विफल हो गई।

परन्तु जो बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं, यह है कि जिस समय कप्तान जोन्सने प्रस्ताव किया और श्री रहमानने उसे स्वीकार किया, उस समय अनेक भारतीय व्यापारी और वे भी, जो योजनाके कोषमें सबसे ज्यादा चन्दा देते, पहलेसे ही आगका बीमा कराये हुए थे।

परिणामको दृष्टिमें रखते हुए हम चाहते हैं कि इस विषयको बहुत सावधानीके साथ समझ लिया जाये, क्योंकि इससे पॉचेफस्ट्रूम "पहरेदार संघ" की बदलेकी वृत्तिकी कुछ मनहूस पृष्ठभूमिके सामने वहाँके ब्रिटिश भारतीय समाजके हेतुओंकी निःस्वार्थता अत्यन्त स्पष्ट रूपमें अंकित हो जाती है।

अपने ७ जनवरीके अंकमें हमने पॉचेफस्ट्रूमके एक आग-बीमेके एजेंटकी इस कार्रवाईकी ओर तत्काल ध्यान आकर्षित किया था कि उसने कुछ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी पालिसियोंको, जिनके द्वारा उनके स्थानोंका आग-बीमा किया गया था, पहले सूचना दिये बिना, रद करा दिया। ये पालिसियाँ अभी कई महीनोंतक समाप्त होनेवाली नहीं थीं। मालूम हुआ है कि यह भला आदमी दुनियाकी एक सबसे पुरानी आग-बीमा कम्पनीका प्रतिनिधित्व करता है। कमसे-कम छः बड़े व्यापारियोंपर इसका असर पड़ा है और उनके मकानों-दूकानोंका अब आग-बीमा नहीं

१. यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है। शेष पत्र, जो कदाचित् प्रभावशाली व्यक्तियोंको भेजा गया, परिपत्र होनेके कारण टाइप किया हुआ है।

रहा है। हमें अच्छेसे-अच्छे प्रमाणोंके आधारपर बताया गया है कि यह भला आदमी यदि 'एशियाई-विरोधी पहरेदार संघमें' प्रत्यक्ष रूपसे शामिल नहीं हो गया है तो, कमसे-कम आतंकवादियोंकी उस संस्था द्वारा प्रतिकूल दिशामें प्रभावित तो किया ही गया है। इस तरह संघर्षका आह्वान हो चुका है और दुनिया अब जान गई है कि पॉचेफस्ट्रूमके गोरोंने बहिष्कारकी एक योजना बना ली है, जिसके प्रत्यक्ष प्रभावसे निर्दोष नागरिकोंके मकान खतरेमें पड़ गये हैं। और इससे भारतीय व्यापारियोंके सामने अपने अनेक वर्षोंके कठोर और कष्टमय परिश्रमके समस्त फलको अपनी आँखोंके सामने स्वाहा होता हुआ देखनेकी जोखिम आ खड़ी हुई है। द्रोह सीमातक पहुँच गया है। अग्निशामक दल पास न होनेपर ये अभागे लोग अब असहाय हैं और हवासे उड़कर आनेवाली किसी भी चिनगारीकी या किसी भी ऐसे उपद्रवीकी दयापर निर्भर हैं, जिसका रंग-भेदका पागलपन उसे जिस आकर्षक भंडारपर भी पहले नजर पड़ जाये उसीके मालिकको आगसे तबाह कर देनेके लिए प्रेरित कर सकता है।

हम उन्माद-भरी अनर्गल बातें नहीं करते हैं; क्योंकि खतरा बहुत सच्चा है। पॉचेफस्ट्रूमम भारतीयोंके विरोधका प्रचंड संक्रामक रोग जब पराकाष्ठापर पहुँचा उसके थोड़े ही दिन बाद आगजनीका जो कायरतापूर्ण प्रयत्न किया गया था उसकी याद हमारे पाठकोंको अब भी ताजा होगी। यहाँ हम "आगजनी" शब्दका प्रयोग स्वयं मुख्य पुलिस-अधिकारीके कथनके बलपर कर रहे हैं। और यह सोचकर हमें खेद होता है कि जिन भंडारोंपर इस तरहका कायरतापूर्ण आक्रमण हो सकता है उनमेंसे प्रत्येककी रक्षा करनेकी स्थितिमें यह शिष्ट अधिकारी नहीं है।

स्वयं आग-बीमा कम्पनीके दृष्टिकोणसे, पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय वस्तु-भंडारोंकी जोखिम कमसे-कम उतनी ही अनुकूल होनी चाहिए, जितनी कि यूरोपीय व्यापारियोंके भंडारोंकी है; क्योंकि, हमें जो ज्ञान है उसके अनुसार अगर दोनों समाजोंके वस्तु-भंडारोंकी तुलनाकी जाये तो भारतीय वस्तु-भंडार घटिया दर्जेके न निकलेंगे। फलतः कम्पनीने पालिसियोंको रद करनेकी जो कार्रवाई की है उसका कोई कारण हम देख नहीं पाते। निश्चय ही इसमें व्यापारिक ईमानदारीका प्रश्न नहीं हो सकता; नहीं तो उन व्यापारियोंको पालिसी दी ही न जाती। इसके अलावा, वे सब चरित्रवान सुविख्यात व्यापारी हैं और बिलकुल सरसरी तौरपर पूछताछ करनेसे भी स्पष्ट हो जाता कि उनकी इज्जत और विश्वस्ततापर शंका करनेका कोई आधार नहीं हो सकता।

सारा मामला पॉचेफस्ट्रूमके लिए बहुत प्रशंसनीय नहीं है। और जो निन्दनीय कार्य इस प्रकार किया गया है; उससे सम्बन्धित बीमा-कम्पनीके माथेपर कलंक लगता है।

हमारा इरादा कम्पनीके प्रधान कार्यालयके अधिकारियोंका ध्यान तुरन्त इस मामलेकी ओर खींचनेका है। हमें विश्वास है कि कम्पनीकी न्याय और निष्पक्षताकी ब्रिटिश भावना, उसे अत्यन्त कठोर जाँच करनेकी प्रेरणा देगी और हमें कोई सन्देह नहीं है कि यह असह्य स्थिति प्रस्तुत परिस्थितियोंमें जितनी जल्दी हो सके, मिटा दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२९०. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वो

एक तुलना – २

प्रत्येक चतुर राज्यकर्त्ता अपनी प्रजाकी सही परिस्थिति एवं उसके सुख-दुःख जाननेके लिए उत्सुक होता है; और ऐसे ही, थोड़े-बहुत अंशमें, हमारे माननीय सम्राट एडवर्ड एवं रूसके जार भी हैं। दोनों सम्राटोंकी ख्वाहिश एक-सी ही है, परन्तु उसकी पूर्तिके लिए अलग-अलग किस्मकी कोशिशें करनी पड़ती हैं। हम लोगोंके सौभाग्यसे भारतीय अधिकारियोंमें रूसी अधिकारियोंके समान घमंड नहीं है और उनकी सत्ता भी एक-सी नहीं है। मतलब यह है कि भारतीय अधिकारीको मजबूरन कुछ नियम पालने पड़ते हैं, और रूसी अधिकारी जिस हदतक अपने पदका घमंड और स्वेच्छाचार दिखा सकता है उस हदतक भारतमें सम्भव नहीं। सार यह है कि भारतका अधिकारी इरादा करे तो भी, प्रजाका उत्पीडन उस सीमातक नहीं कर सकता जिसतक रूसी अधिकारी कर सकता है। फिर भी रूसी और भारतीय प्रजाके कई कष्ट एक समान ही हैं। यद्यपि रूसके कष्ट भारी हैं और उससे तुलना करनेपर भारतके कष्ट उतने कठिन नहीं हैं, फिर भी भारतीय प्रजाको अपने दुःख साधारण प्रतीत होते हैं, ऐसी बात नहीं है। और यह आसानीसे समझने योग्य बात है। रूस देशमें अधिकारी और प्रजाके बीच चमड़ीके रंगका, बोलीका, धर्मका, अथवा जात-पाँतका अन्तर नहीं है। भारतमें अधिकारी इनमें से प्रत्येक बातमें जनतासे भिन्न हैं। इसलिए परायापन (नहीं होना चाहिए फिर भी) प्रतीत होता है, और इस वजहसे कष्टोंमें, जितना उचित है उससे अधिक, खेद स्वभावतः होता है। फिर भी दोनों देशोंमें प्रजा और अधिकारियोंके बीच अलगाव रहता है और वह प्रजाको बहुत अखरता है। जनता यह मानती है कि राजा और प्रजाका आपसी सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ होना चाहिए, परस्पर विश्वास होना चाहिए, और एक-दूसरेके सुख-दुःखमें प्रत्येकको भाग लेना चाहिए तथा प्रेम और ममताका व्यवहार रखना चाहिए —— संक्षेपमें राजा और प्रजाका हित एक ही होना चाहिए और प्रजाके सुखी होनेपर ही राजा सुखी माना जाना चाहिए। राजा सत्ता धारण करता है, किन्तु सत्ताका दुरुपयोग किया जाये तो राजा एवं प्रजा दोनोंकी हानि होती है, इसी कारण चतुर शासक अपनी प्रजाकी स्थिति और उसके सुख-दुःखको जाननेके लिए उत्सुक रहता है।

पुराने राज्य आम तौरसे आजके मुकाबिले बहुत ही छोटे होते थे, इसलिए राजा आसानीसे अपनी रियायाकी देख-भाल कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यों राज्य विशाल बनते गये त्यों-त्यों अधिकारियोंकी नियुक्तिकी आवश्यकता बढ़ती गई। फलस्वरूप आज सभ्य संसारमें हर जगह राजा केवल नामके रह गये हैं और अधिकारी लोग अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। बिना अधिकारीके राजा नहीं हो सकता, अधिकारी यह समझते हैं। इसलिए स्वभावतः ही वे अपने महत्त्वमें और रोबदाब अथवा सत्तामें खलल न हो ऐसे उपाय करते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि वे अपने कर्त्तव्यके मुकाबले स्वार्थका महत्त्व अधिक समझने लगते हैं और प्रजाके सुख-दुःखकी ओर आवश्यक ध्यान नहीं देते। इससे प्रजामें बेचैनी पैदा होती है, और प्रजाकी शिकायत सुनने या आलोचना सहनेका धैर्य अधिकारियोंमें न होनेकी वजहसे अलगाव पैदा हो जाता है। ऐसा होनेपर अधिकारियोंका घमंड तोड़नेके लिए और अपने स्वत्वोंको सुरक्षित रखनेके लिए प्रजा यथाशक्ति परिश्रम करती है और योजनाएँ बनाती है। जहाँपर राज्य-शासन अच्छा होता है वहाँपर ऐसे उदाहरण कम दीखते हैं और जहाँपर ढीला होता है वहाँपर अधिक। रूस और भारतकी

राजनीतिमें बड़ा अन्तर है, दोनों देशोंके लोगोंकी स्थितियों और भावनाओंमें अन्तर है; परन्तु अधिकारी संख्यामें थोड़े-से, किन्तु विशेष सत्ताधारी हैं। और इससे जनता और उनके बीचका सम्बन्ध शोभाजनक नहीं है। भारत और रूसकी परिस्थितियाँ भिन्न हैं, फिर भी लोगोंकी भावनाएँ और माँगें कई बातोंमें एक ही हैं यह बात, ऊपर जो-कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट हो गई होगी। कारण है, दोनों देशोंमें राजा और प्रजाके बीच अयोग्य और थोड़ा सम्बन्ध। जिस प्रकार कारण समान हैं उसी प्रकार परिणाम भी समान हैं।

कुदरत एक आश्चर्य है। गत नवम्बर मासमें बम्बईमें भारतीय कांग्रेसमें चर्चा-योग्य विषयों पर खुला विचार हुआ। उसी समय रूसमें वहाँकी स्थानिक संस्थाओंने, जो जेम्स्त्वो कही जाती हैं, अपनी भावनाओं और माँगोंकी घोषणा की। कांग्रेसमें प्रस्तुत किये जानेवाले प्रस्तावोंपर प्रान्तोंकी स्थानिक सभाओंमें पहलेसे चर्चा की गई थी, और बादमें वे मुख्य कमेटीकी ओरसे घोषित किये गये थे। जेम्स्त्वोके प्रस्ताव सेंट पीटर्सबर्गमें प्रकाशित किये गये थे और उनके पक्षमें ३४ में से ३१ स्थानिक जैम्स्त्वो संगठनोंकी सम्मति प्राप्त हुई थी।

(अपूर्ण)[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२९१. प्लेग[2]

जोहानिसबर्ग,
जनवरी २३, १९०५

मैं पिछले सप्ताह प्लेगके फैलनेके समाचार और उसके सम्बन्धमें कुछ नियम लिख चुका हूँ।[3] इस बीच समाचार प्राप्त हुआ है कि डर्बनमें प्लेगकी छः या सात घटनाएँ हो चुकी हैं। इनमें भारतीय और काफिर ही हैं। यह साफ दीखता है कि हम लोगोंमें प्लेग फैलनेमें देर नहीं लगती। यदि प्लेगने घर कर लिया तो फिर घूमना-फिरना बड़ा कठिन होगा। इसलिए मैं पिछले सप्ताह जो नियम दे चुका हूँ उनके पालनमें किसीको भी चूकना नहीं चाहिए।

जो लड़का प्लेगसे गुजर गया था उसके मामा उसे देखने आये थे। वे डरसे भागकर प्रिटोरिया चले गये। नतीजा यह हुआ कि उनके ऊपर बहुत मुसीबत आई। उनको तथा उनके परिवारको टीके लगाये गये और वे थोड़े दिन सूतक (क्वारन्टीन) में भी रखे गये। यदि वे भागते नहीं और अधिकारियोंकी देख-रेखमें यहीं रहे होते तो उनको इतनी तकलीफ न उठानी पड़ती।

यहाँपर मलायी बस्तीकी हालत कितनी ही बातोंमें बहुत बिगड़ गई है। लोग खचाखच भर गये हैं और कई तो सफाई रखनेकी बाततक नहीं सुनते। एक समिति नियुक्त की गई है जो हर रातको घरोंकी देखभालके लिए निकलती है। और अब ऐसा विचार किया गया है कि यदि लोग उसकी बात कान न धरें तो अधिकारियोंको सूचित कर दिया जावे। निःसन्देह ऐसा

१. यह लेखमाला आगे जारी नहीं रखी गई।
२. यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें छपा था।
३. देखिए, "जोहानिसबर्गमें प्लेग", १६-१-१९०५।

करना अधिक अच्छा है। यदि इस समय हमारी गन्दगी कुछ भी छिपाई जायेगी और बादमें प्लेग फैल जायेगा तो मलायी बस्ती भी भारतीय बस्तीकी तरह मिट जायेगी और हम लोगोंको हाथ मलकर बैठ जाना पड़ेगा। इसलिए इस समय जो लोग गन्दगीसे निकलना न चाहते हों उनके नाम घोषित करना, उनके अपने एवं दूसरोंके निजी लाभके लिए कड़वी दवा पिलानेके समान है।

यहाँके डॉक्टरसे विनती की गई है कि प्लेगके अस्पतालमें किसी भारतीयकी मृत्यु हो तो उसकी खबर हम लोगोंको तुरन्त दी जाये। इस विनतीको उन्होंने स्वीकार किया है। ऐसा करनेका उद्देश्य यह है कि शवके मिल जानेपर उसकी क्रिया धार्मिक रीतिसे की जा सके।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०५

२९२. पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय

एक अन्य स्तम्भमें हम अपने पॉचेफस्ट्रूमके संवाददाताका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित करते हैं। सम्मेलनमें दो बिलकुल साफ गलतबयानियाँ की गई थी — एक तो पीटर्सबर्गके बारेमें और दूसरी पॉचेफस्ट्रूमके बारेमें। इन दोनों नगरोंके सम्बन्धमें वक्ताओंने साहसपूर्वक कहा कि भारतीय यूरोपीय व्यापारपर छाये जा रहे हैं और उनकी वर्तमान संख्या युद्धके पहलेकी संख्यासे बहुत ज्यादा है। जहाँतक पीटर्सबर्गका सम्बन्ध है, भ्रान्तिका भंडाफोड़ हो चुका है। श्री क्लाइनेनबर्गने अबतक साबित नहीं किया कि श्री अब्दुल गनीके *स्टारमें*[1] प्रकाशित वक्तव्य गलत हैं। अब हमें पॉचेफस्ट्रूमसे एक विवरण मिला है और यह देखते हुए कि हमारे संवाददाताने शहरकी सीमामें व्यापार करनेवाले वर्तमान ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंके नाम दिये हैं, हम समझते हैं कि जनताको यह विवरण सन्तोषजनक मान लेना चाहिए। हमारे लिए तो यह सन्तोषजनक है ही। अगर यह सच भी हो कि अब पॉचेफस्ट्रूममें, या किसी दूसरी जगहमें भी, भारतीय दूकानदारोंकी संख्या पहलेसे अधिक है, तो भी इस कारण उनके अधिकारोंकी जब्ती कदापि नहीं की जा सकती। परन्तु चूँकि ऐसे सनसनीदार वक्तव्य दिये गये है, जिनमें सचाई बिलकुल नहीं है, इसलिए जनताके सामने सच्ची बातें पेश करना और भारतीय-विरोधी दलकी अतिशयोक्तियोंसे इस प्रश्नके भारतीय पक्षको हानि पहुँचनेसे बचाना ठीक ही होगा। तथापि, इस सारे मामलेका सबसे दुःखजनक भाग यह है कि जो लोग नेता होनेका दावा करते हैं उन्होंने अपने सामने रखे गये मामलोंकी सत्यताकी छानबीन करनेमें भी अपने-आपको नितान्त अयोग्य सिद्ध किया है। साथ ही उन्होंने भारतीय-विरोधी दलीलें ढूँढ़नेकी उत्सुकतामें जो भी कपोल-कल्पना सामने रखी गई वह स्वीकार कर ली है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०५

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*," दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व।

२९३. प्लेग

हम बरसात आनेके साथ-साथ प्लेगकी अफवाहें और प्लेगसे दरअसल बीमार होनेकी घटनाएँ भी सुनते हैं। हमें एक बार फिरसे अपने भारतीय मित्रोंका ध्यान डर्बन क्षेत्रके स्वास्थ्य-अधिकारीके उस पत्रकी ओर आकर्षित करना होगा, जो हमने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित किया था। हमें यह खयाल होता है कि यह अवसर भारतीयोंके लिए अपनी क्षमता दिखानेका और नेताओंके लिए आगे आने और साधारण लोगोंको सफाईके नियमोंका सख्तीसे पालन करनेके लिए कहनेका है। प्लेग, निस्सन्देह गरीबी और गन्दगीकी उपज है। हम जानते हैं कि ज्यादा गरीब वर्गके भारतीय सभी जरूरी कार्रवाइयाँ नहीं कर सकते। उदाहरणके लिए, वे सम्भवतः स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें अच्छे हवादार कमरों और मकानोंमें नहीं रह सकते। परन्तु इन सब बातोंके लिए गुंजाइश छोड़नेके बाद भी बहुत-सी बातें ऐसी रहती हैं जो समुचित सहयोग और नरमीसे समझाने-बुझानेसे करायी जा सकती हैं। और हमें आशा है कि समाज अवसरके अनुकूल व्यवहार और जरूरी एहतियाती कार्रवाई करेगा। साथ ही हम अपने आदरणीय स्वास्थ्य-अधिकारीका ध्यान भी वेस्टर्न फ्ले और ईस्टर्न फ्ले[1] की हालतकी ओर खींचना चाहेंगे। इन दोनों स्थानोंकी ओर तुरन्त ध्यान देना जरूरी है। भारतीय इनकी अवस्था नहीं सुधार सकते। परिषदको चाहिए कि वह साहसपूर्ण कदम उठाये और या तो इन दोनों स्थानोंको हमेशाके लिए सुधार दे या मिटा दे। कुछ भी हो, ये बस्तियाँ दक्षिण आफ्रिकाके इस प्रमुख नगरपर आक्षेप-रूप हैं। जोहानिसबर्गसे प्राप्त अशान्तिकारी समाचारोंसे भी हमें सावधान हो जाना चाहिए और हमें कोई शक नहीं कि वहाँके भारतीय, अपना कर्तव्य पूरा करेंगे और पिछले वर्ष जो प्लेग फैला था उसकी पुनरावृत्तिको रोकनेमें अधिकारियोंको हर सम्भव तरीकेसे मदद देंगे। हमें बताया गया है कि मलायी बस्तीकी हालतकी ओर अधिकारियोंका ध्यान कई बार खींचा जा चुका है। यद्यपि इस बस्तीको इसके निवासी बहुत अच्छी हालतमें रखते हैं और मकान अच्छे बने हैं, फिर भी यह तथ्य न भुलाया जाना चाहिए कि भस्मीभूत बस्तीकी लगभग समस्त भारतीय आबादी इस समय उसी बस्तीमें एकत्र है और अगर वहाँ प्लेग फैलता है तो जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद अपने-आपको दोषमुक्त नहीं कर सकेगी। अबतक वह भारतीय बस्तीके जल जानेसे बेघरबार हुए लोगोंको स्थायी निवासस्थान देनेके अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें असफल रही है। अब अगर उसने मलायी बस्तीमें भीड़-भाड़ कम नहीं की तो वह लोक-स्वास्थ्यकी संरक्षिकाकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यके पालनमें और भी असफल होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०५

१. पश्चिमी दलदल और पूर्वी दलदल।

२९४. क्या काफिर महसूस करता है?

जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद कुछ दिनोंसे वतनी साइकिलवालोंके प्रश्नपर विचार कर रही है। पिछले सप्ताह निर्माण-समितिने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी और यह सलाह दी थी कि एक ऐसा उपनियम मंजूर किया जाये जिसके अनुसार "साइकिलका परवाना रखनेवाला और नगरपालिका-क्षेत्रमें साइकिलकी सवारी करनेवाला प्रत्येक वतनी अपनी बाईं भुजामें एक नम्बर पड़ा हुआ बिल्ला लगाये, जो साफ तौरसे दिखाई दे। यह बिल्ला उसे परवानेके साथ दिया जाये।" जोहानिसबर्ग जैसे एक सर्वसमाजी नगरमें परिषदका भारी बहुमतसे ऐसा कड़ा उपनियम पास करना दक्षिण आफ्रिकामें रंग-विद्वेषकी भावना प्रबल होनेपर भी हमारे लिए दु:खमय आश्चर्यकी बात है। श्री लैंगरमानने उपनियमका जोरदार समर्थन किया और श्री मैकी निवेन और श्री क्विनने हलका-सा विरोध। श्री लैंगरमानने इस बिनापर उपनियमको उचित बताया कि उन्हें वतनी और गोरे साइकिल सवारोंमें भेद करना ही होगा। उन्होंने कहा — "बिल्ला सामनेकी ओर होना चाहिए। वतनियों और गोरोंके बीच पहचानके लिए चिह्न रखना बिलकुल जरूरी है।" स्वभावत: इन शब्दोंसे कुछ हँसी भी हुई; क्योंकि श्री लैंगरमानके विपरीत, दूसरे सदस्य वतनियोंको बिल्लेके बिना ही गोरोंसे अलग पहचान लेनेमें पूर्णत. समर्थ थे। हमारे खयालसे श्री लैंगरमान इस कहावतकी सचाई सिद्ध करते हैं कि जिन्होंने अत्याचार सहे हैं वे उनसे बचनेके बाद अत्याचार-पीड़ितोंके प्रति सहानुभूति रखनेके बजाय दूसरोंको उत्पीडन करनेमें प्रसन्नता अनुभव करते हैं। श्री लैंगरमान रूसमें अपने सहधर्मियोंपर होनेवाले अत्याचारोंका विरोध करनेमें कभी शिथिलता नहीं दिखाते। फिर क्या वतनी उनसे यह सवाल नहीं पूछ सकते: क्या हमारे कोई भावनाएँ नहीं है? फिर भी हमें तो श्री लैंगरमानके विचारोंकी अपेक्षा नगर-परिषदके बहुसंख्यक सदस्योंके द्वारा प्रकट किये गये सामान्य रुखकी अधिक चिन्ता है। नगर-परिषदके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहते हैं कि परिषदकी बैठकमें जो भाषण दिये गये उनकी ध्वनि अत्यन्त निन्द्य थी। उससे श्री निवेन, क्विन, रॉकी और पिमका अल्पमत और भी अधिक सम्माननीय सिद्ध होता है। उनमें अपना विश्वास व्यक्त करनेका साहस था और उन्होंने अनावश्यक और दुराग्रहपूर्ण अपमानसे वतनियोंकी रक्षा करनेमें आगा-पीछा नहीं किया। आम तौरपर हमारी इच्छा ऐसी बातोंकी मीमांसा करनेकी नहीं रहती, जो इस पत्रके क्षेत्रके अन्दर खास तौरसे नहीं आती। परन्तु परिषदकी कार्रवाई हमारे खयालसे इतनी अपयश-जनक है कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाके समाजके हितमें अपना विनम्र विरोध व्यक्त न करें तो हम अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०५

२९५. हुंडामलका मामला

हुंडामलका मामला अब आखिरी मंजिलमें या, यों कहें कि, नये दौरकी पहली मंजिलमें पहुँच गया है। अब हुंडामल व्यक्ति दृष्टिसे ओझल हो गया है, परन्तु भारतीय व्यापारी-समाज उसके स्थानमें आ गया है। *हुंडामल* बनाम *सम्राज्ञी-सरकार*के परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयने आखिरी निर्णय दे दिया है और डर्बन नगर-परिषदकी क्षणिक जीत हो गई है।

हमने "क्षणिक" शब्दका प्रयोग जानबूझकर किया है। हम सोच ही नहीं सकते कि पक्षपात और अन्यायकी विजय भी कभी स्थायी हो सकती है। ऐसा निष्कर्ष इतिहास और दर्शनकी तमाम शिक्षाओंके विपरीत होगा।

क्या कोई भी व्यक्ति ऐसा है जो यह कहनेका साहस करे कि डर्बन नगर-परिषदने इस अभागे मनुष्यको न्याय प्रदान करनेकी जरा भी इच्छा या प्रवृत्ति दिखाई है? उसने उसका सर्वनाश करनेके प्रत्येक साधनका प्रयोग किया है; क्योंकि, परवाना-अधिकारीके शब्दोंमें, "वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाइयोंको और परवाने नहीं देने चाहिए।" सरकारी तौरपर तो उसके इन शब्दोंपर नापसन्दगी जाहिर की गई है, परन्तु हमारे पास यह विश्वास करनेका जरूरतसे ज्यादा कारण मौजूद है कि खानगी तौरपर नगर-परिषदके सदस्योंने इनका समर्थन किया है।

कभी-कभी ऐसे मौके आते हैं जब, जो बात हृदयके निकटतम होती है, वह ओठोंके भी निकटतम होती है। और हमें भय है कि यद्यपि नगर-परिषदने सरकारी तौरपर खण्डन किया है, फिर भी परवाना-अधिकारीका मत ही उसके मालिकोंका जोरदार मत है। और शायद अनजाने ही यह रहस्य प्रकट कर दिया गया है। तब, सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका असर यह है कि वेस्ट स्ट्रीटको गोरे व्यापारियोंके लिए बिलकुल सुरक्षित कर दिया जाये, और उस चुनिन्दा सार्वजनिक बाजारमें व्यापार करनेके लिए परवानेकी "अर्जी कोई भारतीय न दे।"

परन्तु हम पूछते हैं — क्या इस मामलेको जहाँका-तहाँ पड़ा रहने दिया जा सकता है? क्या ऐसी हालत जारी रहने देनेकी हिम्मत की जा सकती है? हम समझते हैं — हरगिज नहीं। इस समय हम मामलेके कानूनी गुण-दोषोंकी चर्चा नहीं करते। परन्तु सर्वोच्च न्यायालयका यह निर्णय विचित्र ही नहीं, उससे भी कुछ अधिक मालूम होता है कि व्यापारका परवाना रखनेवाले किसी आदमीका परवाना केवल उसी शहरकी सीमामें एक स्थानसे दूसरेमें चले जानेसे ही रद किया जा सकता है। कुछ भी हो, हमें लगता है कि मामला और ऊँचे न्यायालयमें ले जानेके लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः दूसरी दलीलें भी पेश की जा सकती हैं जिनके फलस्वरूप वर्तमान परिस्थितियोंमें कुछ परिवर्तन होगा।

जिस समय सर्वोच्च न्यायालयके सामने यह नाटक रचा जा रहा था, उसी समय नगर-परिषदके भवनमें एक अवान्तर प्रश्नपर विचार किया जा रहा था। डर्बन निगमने वेस्ट स्ट्रीटमें हुंडामल-दुर्गपर चौतरफा आक्रमण किया है और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि जड़ खोदनेकी चालें उसकी नींवें खोखली करनेमें सफल हो गई हैं। इन आड़े-टेढ़े तरीकोंसे दुर्ग प्रत्यक्ष रूपमें तो गिर गया है; परन्तु अभी प्रतिरक्षक परास्त नहीं हुआ है; क्योंकि दुर्गके ध्वंसावशेषोंसे और भी ज्यादा शक्तिशाली योद्धा उत्पन्न होगा, जो अनिच्छुक हाथोंसे न्याय करा लेगा और परिस्थितियोंको अपनी आवश्यकताओंके अनुकूल बदलनेके लिए बाध्य करेगा।

हमने जिस अवान्तर प्रश्नका उल्लेख किया है वह था, वेस्ट स्ट्रीटके मकानके बारेमें परवाना-अधिकारीके परवाना न देनेके निर्णयके विरुद्ध नगर-परिषदमें श्री हुंडामलकी अपील। श्री बर्नके शानदार ऐतराजके बावजूद नगर-परिषदने परवाना-अधिकारीका परवाना न देनेका निर्णय बहाल रखा है और यद्यपि उसने परवाना-अधिकारीके दिये हुए कारणसे सार्वजनिक रूपमें असहमति प्रकट की है, फिर भी उसने उस अस्वीकृत कारणके बदले अपना निजी कारण कोई नहीं दिया है।

परन्तु इस सुनवाईके सिलसिलेमें एक और आश्चर्यजनक प्रश्न उठता है। महापौरने यह असाधारण मत प्रकट किया है कि परवाना-अधिकारीका विवेक-प्रयोगका अधिकार निरंकुश है, ऐसा नहीं कि कानूनी मर्यादाओंके भीतर ही अमलमें लाया जाये, जैसी कि श्री हुंडामलके वकीलने दलील दी है। इस फैसलेके कानूनी पहलूकी समीक्षा करना हमारे क्षेत्रके अन्दर नहीं है। हम इसे सिर्फ दर्ज कर लेते हैं। मालूम पड़ता है कि यह संघर्ष अति भीषण होगा। दरअसल, भारतीय समाजको या तो लड़ना होगा या मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा। अब यह सिर्फ श्री हुंडामलके सर्वनाशका प्रश्न नहीं रहा है। ऐसा परिणाम शोचनीय तो होगा, परन्तु अपेक्षाकृत महत्त्वहीन होगा। इस मामलेका सम्बन्ध एक व्यक्तिके विशेषाधिकारोंके संरक्षणकी अपेक्षा अधिक बड़ी चीजसे है। सारे भारतीय व्यापारी समाजके सम्मुख विनाशका खतरा आ उपस्थित हुआ है। श्री हुंडामलके साथ जो-कुछ हुआ है वह प्रत्येक अन्य भारतीय व्यापारीके साथ हो सकता है। जबतक कानूनकी यह नई व्याख्या कायम है तबतक किसी भी भारतीयके व्यापारका मूल्य उसकी एक दिनकी आमदनीके बराबर भी नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका शुद्ध परिणाम यह है: सभी जानते हैं कि गोरे लोग भारतीय व्यापारियोंको एक-एक करके मिटा देना चाहते हैं। फैसला यह दिया गया है कि परवाने केवल खास मकानोंके लिए दिये जाते हैं और वे बदले नही जा सकते। फलतः मकान-मालिक अपने किरायेदारसे मनमाना किराया वसूल कर सकता है, और व्यापारी बुरी तरहसे असहाय रहता है। वह या तो अनिवार्य रूपसे मकान-मालिकके हाथों नष्ट हो जाये, या दूसरा मकान खोजे। अगर वह दूसरा उपाय पसन्द करता है तो उसका परवाना रद हो जाता है और उसका व्यापार करनेका विशेषाधिकार छिन जाता है। वह फिर परवाना नही ले सकता, जो तब नया परवाना माना जायेगा। क्योंकि, ठीक जैसे एशियाई लोगोंको वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करनेके नये परवाने देना (गैर-सरकारी तौरपर) अनावश्यक माना जा सकता है, उसी तरह शहरके हरएक व्यापारी मुहल्लेमें भी उसके लिए रोक हो सकती है। और वह दीपककी लौमें पतिंगेके समान पूर्णतः नष्ट हो जायेगा।

यह विषय व्यक्तिगत रूपसे विचार करनेका नहीं, बल्कि दक्षिण आफ्रिका-भरके सम्पूर्ण भारतीय समाजके मिलकर विचार करनेका है। युद्धका क्षेत्र अस्थायी तौरपर ट्रान्सवालसे हटकर नेटाल चला गया है। जो बात डर्बनमें लागू होती है वह सारे उपनिवेशमें लागू होती है और आज जो नेटालमें लागू है वह, असम्भव नही, सारे दक्षिण आफ्रिकामें लागू हो जाये। बुरे उदाहरणका अनुसरण शीघ्रतासे किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

२९६. क्या यह अंग्रेजियत है?

पिछले अंकोंमें हमने पाँचेफस्ट्रूमके कारनामोंकी चर्चाको काफी जगह दी है। ऐसा हमने पाँचेफस्ट्रूमके विचार-केन्द्र होनेके नाते उतना नहीं किया जितना इस नाते किया है कि हम उस नगरको दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय समाजके प्रति जो दुर्भावनापूर्ण रुख है उसका बहुत-कुछ नमूना मानते हैं। जब "स्वेच्छा न्याय" (लिंच-लॉ) के नामसे विदित अपवित्र विधानके अन्तर्गत कानूनको हाथमें लेकर अमेरिकाकी जनताके कुछ दल अभागे हब्शियोंकी बलि चढ़ा देते हैं तब अंग्रेज उसके प्रति निरपेक्ष घृणाका भाव प्रकट किया करते हैं। प्रत्यक्ष है कि पाँचेफस्ट्रूम इसी तरह ब्रिटिश सभ्यताकी सीमारेखाका उल्लंघन करनेके लिए प्रयत्नशील है; क्योंकि नगरमें एक मसजिदके निर्माणके विषयमें हमने यह पढ़ा है: "यदि भारतीयोंने जनताकी भावनाओंकी उपेक्षा करना जारी रखा तो सम्भवतः इस मामलेको लेकर बखेड़ा खड़ा हो जायेगा; जैसा कि लोग इस बारेमें उग्रताके साथ सम्मतियाँ प्रकट कर चुके हैं। न्यायोचित क्या है, यह एक बात है; और किस बातपर क्रोध आ जायेगा, यह दूसरी बात है।" ये शब्द हमारे सहयोगी *पाँचेफस्ट्रूम बजट*के हैं। इस वक्तव्यके दो अर्थ नहीं हो सकते। इसका सीधा अर्थ जहाँतक कानून जानेकी आज्ञा देता है उससे आगे बढ़नेकी प्रेरणा देना है। हम खयाल करते हैं कि यह मान लिया गया है कि पाँचेफस्ट्रूम नगर-परिषदको मसजिदका निर्माण रोकनेका कानूनी अधिकार नहीं है। तब क्या हमारा सहयोगी कानूनके अलावा दूसरे तरीकोंसे मसजिदका निर्माण रोकनेकी धृष्टतापूर्ण सलाह देना चाहता है? यह महान् ब्रिटिश जातिकी न्यायनिष्ठाकी परम्पराके अनुरूप नहीं है। किन्तु हम निराश होकर ऐसा कुछ सोच रहे हैं कि कहीं दक्षिण आफ्रीकियोंने ब्रिटिश राष्ट्रीय सम्मानके मूलभूत सिद्धान्तोंको तिलांजलि तो नहीं दे दी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९७. पीटर्सबर्गके व्यापारी

हम अपने पीटर्सबर्गके संवाददातासे प्राप्त एक समाचार अन्य स्तम्भमें प्रकाशित कर रहे हैं। उसके साथ जल्दी दूकानें बन्द करनेके सम्बन्धमें मालिक-संघ और स्थानिक ब्रिटिश भारतीय-समितिके बीचका पत्रव्यवहार भी है। इन कागजातको पढ़नेसे साफ मालूम हो जायेगा कि इस विषयमें पीटर्सबर्गमें बड़ी तीव्र भावना व्याप्त है। हमने बार-बार बताया है कि एशियाइयों और यूरोपीयोंके बीच, खास तौरसे व्यापारिक मामलोंमें, ईर्ष्या-द्वेषपूर्ण भेद-भाव किया जाता है। हमने बार-बार यह भी बताया है कि गोरे लोग भारतीय समाजपर किस तरह उत्तरदायित्व और दण्डका हिस्सा तो लादनेके लिए प्रयत्नशील रहे हैं, परन्तु उन्हें कोई विशेषाधिकार देनेसे सावधानीके साथ बचे हैं। अब, संयोगसे, मानवी स्वभाव कुछ ऐसा बना है कि वंचित लोग विशेषाधिकारोंसे वंचन और समान उत्तरदायित्व या भार वहनको बराबर नहीं मानते। और ऐसी स्थितिमें, अगर भारतीय समाजने उन गोरे निवासियों द्वारा, जो उन्हें समान अवसर देनेसे हठपूर्वक इनकार करते हैं, लादे हुए उत्तरदायित्वको स्वीकार करना बार-बार अस्वीकार

किया है, तो इसपर आश्चर्य नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि, पीटर्सबर्गके भारतीय व्यापारियोंने तबतक बराबर अपने गोरे व्यापारी भाइयोंकी इच्छाओंकी पूर्ति की है, जबतक कि उन्होंने उनपर विशेष निर्योग्यताएँ नहीं लादीं। परन्तु जब गोरे व्यापारियोंने उनका बहिष्कार करने और उनको शहरसे निकालनेके तरीके शुरू किये तब भारतीय व्यापारी यह महसूस करने लगे कि उन्हें अपने-आपको शेष समाजसे पृथक् समझना चाहिए। इसका परिणाम उस पत्रव्यवहारमें मिलेगा, जिसका उल्लेख हमने किया है। अगर गोरे व्यापारी चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी उनकी स्थापित की हुई रीति-नीतिका पालन करें तो उन्हें अपना व्यवहारका तरीका बदलना होगा। दोनों ही ओरसे आदान-प्रदान होना आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९८. रंगदार लोगोंका मताधिकार

इस अंकके एक अन्य स्तम्भमें ४ तारीखके जोहानिसबर्ग *स्टारमें* प्रकाशित एक लम्बी खबरके कुछ अंश दिये जा रहे हैं। यह खबर ट्रान्सवालमें हुई रंगदार लोगोंकी एक सभाके बारेमें है। इस सभामें एक प्रस्ताव पेश किया गया था, जिसमें सम्राट-सरकारसे प्रार्थना की गई थी कि जो संविधान अब बनाया जा रहा है, उसका निर्माण करते समय ट्रान्सवालमें सम्राटकी रंगदार प्रजाके न्यायपूर्ण अधिकारों और विशेषाधिकारोंको न तो भुलाया जाये और न उनमें काट-छाँट की जाये। हम सिर्फ इतना कह सकते हैं कि राजनीतिक विस्मरणसे आत्मरक्षाके प्रयत्नमें रंगदार समाजके साथ हमारी पूरी-पूरी सहानुभूति है। एक समय था जब कि स्वर्गीय श्री रोड्सने अपना यह प्रसिद्ध मत प्रकट किया था कि जैम्बेसीके दक्षिणमें प्रत्येक सभ्य व्यक्तिको मताधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह आदर्श, इधर कुछ दिनोंसे, शीघ्रताके साथ बदनाम होता जा रहा है। आजकल आदर्श सम्मुख रखनेका दोषी बनना रिवाजके विरुद्ध है, और कोई रखे तो उसके अनुसार आचरणकी बेशर्मी दिखाना अपराध है। हमने अभी हालमें ही देखा है कि किस प्रकार वतनी-आयोगने एक सरकारी रिपोर्ट निकाली है और यह सिफारिश की है कि जिन रंगदार लोगोंको मताधिकार दिया जा चुका है उनका वह अधिकार केवल राज्यके चुनावोंके लिए कायम रहना चाहिए; परन्तु जब संघीय संसदके चुनावोंका मौका आये तब वह उनसे वापस ले लिया जाना चाहिए। इसके स्पष्ट अन्यायपर जोर देनेकी जरूरत नहीं है। यह रंगदार लोगोंके प्रति दक्षिण आफ्रिकी गोरे निवासियों द्वारा इख्तियार किये हुए आम रुखसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। दुर्भाग्यवश रंग-विद्वेषके मामलोंमें लोगोंसे तर्कके द्वारा सत्य स्वीकार करवाना लगभग असम्भव है। जहाँ अन्ध पूर्वग्रहका शासन होता है वहाँ न्याय नहीं होता। हमें भय है कि ट्रान्सवालके रंगदार समाजको अपने उन अधिकारोंको, जिन्हें हम न्यायोचित समझते हैं, स्वीकार करानेके लिए अभी बहुत दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। हमें भरोसा है कि वे इस अविचारपूर्ण व्यवहारके प्रति अपना विरोध और अपनी माँगोंमें निहित न्याय्यता पर आग्रह जारी रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९९. काफिरोंपर आक्रमण

काफिर गोरोंकी तरह वाइसिकलपर वैठते हैं, यह जोहानिसवर्गकी नगर-परिषदसे देखा नहीं गया, और इसलिए उसने अपनी पिछली वैठकमें प्रस्ताव किया है कि जिस काफिरको वाइसिकल रखनेका अनुमति-पत्र मिला है या मिले वह वाइसिकलपर शहरमें घूमते समय साफ दिखाई दे, इस तरह वायें हाथपर एक नम्बर-युक्त विल्ला लगाये।

आजकल ट्रान्सवालका राजकाज ऐसा चल रहा है कि इस प्रस्तावसे हमें आश्चर्य नहीं होता। आज हम इस विषयपर इसलिए लिखते हैं कि अपने भारतीय भाइयोंको यह याद दिला दें (यद्यपि याद दिलाना नितान्त आवश्यक नहीं जान पड़ता) कि आजकलका जोहानिसवर्ग लड़ाईके पहलेके जोहानिसवर्गसे वहुत भिन्न है। जिनके हाथमें इस समय सत्ता है उनमें से अधिकतर लोग लड़ाईका आरम्भ होनेसे पहले डचेतर गोरे (एटलांडर) कहलाते थे और इनसाफकी माँगके सम्वंधमें वहुत प्रयत्नशील रहा करते थे। वे दूसरे देशोंके निवासी ब्रिटिश प्रजा वनकर ब्रिटिशोंके योग्य अधिकार प्राप्त करनेकी भरसक कोशिश करते थे; और अंग्रेज, रूसी, जर्मन आदि सवके-सव एक हो गये थे। उस समय वोअर राज्य था और ये लोग यह चिल्ला-चिल्ला कर कान फाड़े डालते थे कि इन्साफ नहीं किया जाता। भारतीयोंके विरुद्ध वोअर-सरकारको उत्तेजित करनेवाले ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। और फिर किस प्रकार वोअर-सरकार भारतीयोंके विरुद्ध कानून वना सकती है, यह वतानेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। अन्तमें लॉर्ड मिलनर और श्री चेम्वरलेनके द्वारा लड़ाई करानेवाले भी ये ब्रिटिश प्रजाजन ही थे। लड़ाईके वाद खरा इन्साफ होगा, और रंग-भेद या जातिभेद कानूनसे हटा दिये जायेंगे — लड़ाईके समय इस प्रकार ढोल पीटनेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। यह था नाटकका एक अंक।

दूसरे अंकमें सव कुछ भुला दिया गया और ये ही ब्रिटिश प्रजाजन स्वार्थसाधनमें लीन हो गये। फिर आया तीसरा अंक। उसमें भारतीयोंके प्रति सरेआम दुश्मनी वताई जाने लगी, और इस समय चालू चौथे अंकमें अत्याचारपूर्ण कानून वनाये जाने लगे हैं एवं अमलमें, वह भी पूरी सख्तीके साथ, आने लगे हैं।

यह सारा प्रताप इसी ब्रिटिश प्रजाका समझिए। यह आक्रमण जिस प्रकार भारतीयोंपर हुआ है उसी प्रकार काफिरों और रंगदार लोगोंपर नियमित रूपसे होगा और इसलिए यदि एकपर आक्रमण हो तो दूसरेको सचेत हो जाना चाहिए कि देर-सवेर वह भी इस फन्देमें अवश्य ही फँसेगा। अर्थात् आज काफिरोंके लिए इस किस्मका कानून वनाया गया है यदि कल वह भारतीयोंपर लागू हो जाये तो यह अधिक अचम्भेकी वात न होगी।

खूवी यह है कि ऐसे निर्दयतापूर्ण कानूनकी वात प्रस्तुत करनेवाली अन्य देशीय प्रजा, अभी-अभी कुछ-ही समय पहले कथित ब्रिटिश प्रजा वनी है। श्री लैंगरमान[1] इस प्रस्तावपर वहुत वोले, और जोशमें काफिरोंका रंगतक भूल गये, जिसपर सभामें खूव हँसी हुई। उन्होंने कहा, विल्ला सामने लगाना चाहिए ताकि काफिर गोरा न समझ लिया जाये। ऐसी विचारपूर्ण वात श्री लैंगरमान ही कह सकते हैं, और हमारी ओरसे उन्हें वधाई है कि उन्होंने यह सूचना दी कि विल्ला आगे न होगा तो कभी काफिर भूलमें गोरा समझ लिया जायेगा। किन्तु श्री

१. नगर-परिषद्के एक सदस्य।

लैंगरमान कौन हैं इस सम्बन्धमें थोड़ी जानकारी हो तो उनके कथनका यथोचित वजन हो सकता है। श्री लैंगरमानको अपने रूसी भाइयोंके लिए बड़ी हमदर्दी है, इसलिए वे रूसी राज्यपर बहुत टीका करते हैं। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति अन्याय और अत्याचारके बीच पला हो वह जब मुक्त होता है तब अपने दु:खके दिन भूलकर पाई हुई मुक्तिका अनुचित लाभ लेता है और निर्दय बन जाता है; इसलिए पोलैंडसे आये हुए और इन दिनों ब्रिटिश प्रजा बने हुए साहबोंकी उछल-कूद बढ़ जाये तो यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

इस प्रस्तावपर जो चर्चाएँ की गई उनमें सन्तोषप्रद बात यह प्रतीत होती है कि सर्वश्री मेकी निवेन, क्विन, रॉकी और पिम यह नहीं भूले कि काफिर भी मनुष्य हैं और उनका व्यर्थमें अपमान न किया जाये, यह विरोध उन्होंने किया। परन्तु नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कोई सुनता नहीं। ऐसे ही वे भी कामयाब नहीं हो सके। फिर भी उन्होंने जनसाधारणकी विचार-धाराकी परवा न करके अपने सही और उचित विचार प्रकट किये, इसलिए उनको श्रेय मिलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३००. केप कालोनीमें कसाईखानोंकी हालत

केप कालोनीके इन्स्पेक्टर कैननने वहाँके कसाईखानोंकी स्थितिपर रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह पढ़ने योग्य है। उसने लिखा है कि उसने जिन कसाईखानोंका निरीक्षण किया उनमें से दो-एक बहुत गन्दे पाये गये। मेडलैंडमें मुख्य सड़कपर उसने दीवारके ऊपर खूँटीपर टंगी आँतें और चर्बी देखीं। लोहू, खाद और सड़न फर्शसे चार फुट ऊँचाईतक दीवारोंपर जमे हुए थे। इन जगहोंपर यह रिवाज देखा गया कि सड़न आदिकी तहोंपर ही सफेदी पोत दी जाती है। इसलिए अब दीवारोंपर सफेदी और सड़नकी तहें जमी हुई हैं। इन्स्पेक्टरने काम करते हुए आदमियोंका निरीक्षण किया। वे गन्दे थे। उनके कपड़े बहुत मैले थे; उनपर चर्बी जमी हुई थी। ये कपड़े मांससे लगते रहते थे।

हमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब गोरों द्वारा चलाये जानेवाले कसाई-खानोंमें देखा गया है। प्रश्न यह है कि इतने दिनोंतक ऐसे अपराध क्योंकर छिपे रहे। ऐसी गन्दगीमें तैयार किये गये मांसके कारण कितने आदमी बीमार पड़े होंगे। अगर इस प्रकारकी खराब स्थिति भारतीयोंकी होती तो उनकी क्या दुर्दशा की जाती? गोरे एकदम हुल्लड़ मचा देते कि अपराधियोंको ही नहीं किन्तु सारी भारतीय कौमको निकालकर बाहर करना चाहिए, अथवा उसके ऊपर बहुत सख्ती की जानी चाहिए। लेकिन हमारे सौभाग्यसे यह गन्दगी गोरोंकी दूकानोंमें है। अब देखना यह है कि उसका उपाय किस प्रकार किया जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३०१. कांग्रेस और लॉर्ड कर्जन[1]

इस बारके कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष सर हेनरी कॉटनने कांग्रेसके कुल प्रस्ताव माननीय वाइसरायको खुद जाकर देनेकी सूचना दी थी। परन्तु वाइसरायने सर हेनरी कॉटनसे कांग्रेसके अध्यक्षके नाते मिलने और प्रस्तावोंको लेनेसे इनकार कर दिया। फिर भी उन्होंने यह दिखानेके लिए कि वे इस प्रकार सर हेनरी कॉटनका अपमान करना नहीं चाहते, व्यक्तिगत रूपमें मिलना स्वीकार कर लिया। मतलब यह हुआ कि कर्जन साहबने कांग्रेसका अपमान करनेमें रत्ती-भर भी आगा-पीछा नहीं किया। *इंडिया* अखबारसे यह भी मालूम पड़ता है कि इस प्रकार सर हेनरीसे न मिलनेका हेतु यह था कि यदि एक बार उनसे मिलेंगे तो बादमें अन्य अध्यक्षोंसे भी मिलना होगा। और, ऐसे ही कारणसे पहले भी लॉर्ड लैन्सडाउनने[2] इनकार किया था। तब फिर पिछली परिपाटीको कर्जन साहब किस प्रकार तोड़ सकते थे? पुरानी परिपाटी आदिसे इस प्रकार चिपके रहनेसे करोड़ों मनुष्योंकी भावनाको ठेस पहुँचेगी यह प्रश्न हमारे वाइसराय साहबके मनमें पैदा नहीं हुआ। फिर भी जिस प्रकार कांग्रेसने २० वर्ष निकाले हैं उसी प्रकार अब भी निकालेगी और दिनोंदिन बढ़ती जायेगी, इसमें शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३०२. केप टाउनमें नाइयोंके लिए नियम

केप टाउनकी नगरपालिकाने नाइयोंके लिए नियम बनाये हैं। वे *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित किये गये हैं। उनके बलपर डॉक्टरको प्रत्येक नाईकी दूकान जाँचनेका अधिकार है। उनके अनुसार प्रत्येक नाईको अपनी दूकान स्वच्छ रखनी चाहिए। वह जिन कैंचियों, उस्तरों आदिको एक ग्राहकके लिए काममें ला चुके, उनको साफ किये बिना दूसरोंके लिए काममें न लाये। वह ब्रश आदिको ठीक तरह धोकर साफ रखे, प्रत्येक ग्राहकके लिए नये अंगोछे बरते और यदि उसने किसी रोगीके बाल काटे हों अथवा दाढ़ी बनाई हो तो उसके काममें लाये गये कुल सामानको कीटाणुनाशक पानीसे साफ करके काममें ले। जो नाई ऐसा न करे उसे पाँच पौंडतक जुर्मानेकी सजा है। इन नियमोंपर अमल ठीक-ठीक किया जा रहा है या नहीं इसका निरीक्षण करनेके लिए अधिकारियोंको छान-बीन करनेके हक दिये गये हैं। ये नियम हैं तो बहुत ठीक, परन्तु इनको अमलमें लाना बहुत कठिन है। फिर भी इनके होनेसे नाइयोंपर कुछ दबाव पड़ना सम्भव है। ऐसे नियम हमने पहली ही बार केप टाउनकी नगरपालिकामें देखे हैं। हमें लगता है कि और जगहोंमें भी इनके लागू होनेकी सम्भावना है। इसलिए इनपर से हमारे नाइयोंको सचेत हो जाना चाहिए। हमारे नाइयोंकी दूकानोंमें सुधार होना निहायत जरूरी है। देखा गया है कि उनके औजार और अंगोछे स्वच्छ नहीं रहते। उन्हें स्वच्छ करनेमें केवल

१. भारतके वाइसराय, १८९९–१९०५।

२. भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल १८८८–९४।

लैंगरमान कौन हैं इस सम्बन्धमें थोड़ी जानकारी हो तो उनके कथनका यथोचित वजन हो सकता है। श्री लैंगरमानको अपने रूसी भाइयोंके लिए बड़ी हमदर्दी है, इसलिए वे रूसी राज्यपर बहुत टीका करते हैं। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति अन्याय और अत्याचारके बीच पला हो वह जब मुक्त होता है तब अपने दुःखके दिन भूलकर पाई हुई मुक्तिका अनुचित लाभ लेता है और निर्दय बन जाता है; इसलिए पोलैंडसे आये हुए और इन दिनों ब्रिटिश प्रजा बने हुए साहबोंकी उछल-कूद बढ़ जाये तो यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

इस प्रस्तावपर जो चर्चाएँ की गई उनमें सन्तोषप्रद बात यह प्रतीत होती है कि सर्वश्री मेकी निवेन, क्विन, रॉकी और पिम यह नहीं भूले कि काफिर भी मनुष्य हैं और उनका व्यर्थमें अपमान न किया जाये, यह विरोध उन्होंने किया। परन्तु नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कोई सुनता नहीं। ऐसे ही वे भी कामयाब नहीं हो सके। फिर भी उन्होंने जनसाधारणकी विचार-धाराकी परवा न करके अपने सही और उचित विचार प्रकट किये, इसलिए उनको श्रेय मिलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३००. केप कालोनीमें कसाईखानोंकी हालत

केप कालोनीके इन्स्पेक्टर कैनने वहाँके कसाईखानोंकी स्थितिपर रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह पढ़ने योग्य है। उसने लिखा है कि उसने जिन कसाईखानोंका निरीक्षण किया उनमें से दो-एक बहुत गन्दे पाये गये। मेडलैंडमें मुख्य सड़कपर उसने दीवारके ऊपर खूँटीपर टंगी आँतें और चर्बी देखीं। लोहू, खाद और सड़न फर्शसे चार फुट ऊँचाईतक दीवारोंपर जमे हुए थे। इन जगहोंपर यह रिवाज देखा गया कि सड़न आदिकी तहोंपर ही सफेदी पोत दी जाती है। इसलिए अब दीवारोंपर सफेदी और सड़नकी तहें जमी हुई हैं। इन्स्पेक्टरने काम करते हुए आदमियोंका निरीक्षण किया। वे गन्दे थे। उनके कपड़े बहुत मैले थे; उनपर चर्बी जमी हुई थी। ये कपड़े मांससे लगते रहते थे।

हमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब गोरों द्वारा चलाये जानेवाले कसाई-खानोंमें देखा गया है। प्रश्न यह है कि इतने दिनोंतक ऐसे अपराध क्योंकर छिपे रहे। ऐसी गन्दगीमें तैयार किये गये मांसके कारण कितने आदमी बीमार पड़े होंगे। अगर इस प्रकारकी खराब स्थिति भारतीयोंकी होती तो उनकी क्या दुर्दशा की जाती? गोरे एकदम हुल्लड़ मचा देते कि अपराधियोंको ही नहीं किन्तु सारी भारतीय कौमको निकालकर बाहर करना चाहिए, अथवा उसके ऊपर बहुत सख्ती की जानी चाहिए। लेकिन हमारे सौभाग्यसे यह गन्दगी गोरोंकी दूकानोंमें है। अब देखना यह है कि उसका उपाय किस प्रकार किया जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३०१. कांग्रेस और लॉर्ड कर्ज़न[1]

इस वारके कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष सर हेनरी कॉटनने कांग्रेसके कुल प्रस्ताव माननीय वाइसरायको खुद जाकर देनेकी सूचना दी थी। परन्तु वाइसरायने सर हेनरी कॉटनसे कांग्रेसके अध्यक्षके नाते मिलने और प्रस्तावोंको लेनेसे इनकार कर दिया। फिर भी उन्होंने यह दिखानेके लिए कि वे इस प्रकार सर हेनरी कॉटनका अपमान करना नहीं चाहते, व्यक्तिगत रूपमें मिलना स्वीकार कर लिया। मतलव यह हुआ कि कर्ज़न साहवने कांग्रेसका अपमान करनेमें रत्ती-भर भी आगा-पीछा नहीं किया। *इंडिया* अखवारसे यह भी मालूम पड़ता है कि इस प्रकार सर हेनरीसे न मिलनेका हेतु यह था कि यदि एक वार उनसे मिलेंगे तो वादमें अन्य अध्यक्षोंसे भी मिलना होगा। और, ऐसे ही कारणसे पहले भी लॉर्ड लैन्सडाउनने[2] इनकार किया था। तव फिर पिछली परिपाटीको कर्ज़न साहव किस प्रकार तोड़ सकते थे? पुरानी परिपाटी आदिसे इस प्रकार चिपके रहनेसे करोड़ों मनुष्योंकी भावनाको ठेस पहुँचेगी यह प्रश्न हमारे वाइसराय साहवके मनमें पैदा नहीं हुआ। फिर भी जिस प्रकार कांग्रेसने २० वर्ष निकाले हैं उसी प्रकार अव भी निकालेगी और दिनोंदिन वढ़ती जायेगी, इसमें शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३०२. केप टाउनमें नाइयोंके लिए नियम

केप टाउनकी नगरपालिकाने नाइयोंके लिए नियम वनाये हैं। वे *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित किये गये हैं। उनके वलपर डॉक्टरको प्रत्येक नाईकी दूकान जाँचनेका अधिकार है। उनके अनुसार प्रत्येक नाईको अपनी दूकान स्वच्छ रखनी चाहिए। वह जिन कैंचियों, उस्तरों आदिको एक ग्राहकके लिए काममें ला चुके, उनको साफ किये विना दूसरोंके लिए काममें न लाये। वह व्रश आदिको ठीक तरह धोकर साफ रखे, प्रत्येक ग्राहकके लिए नये अंगोछे वरते और यदि उसने किसी रोगीके वाल काटे हों अथवा दाढ़ी वनाई हो तो उसके काममें लाये गये कुल सामानको कीटाणुनाशक पानीसे साफ करके काममें ले। जो नाई ऐसा न करे उसे पाँच पौंडतक जुर्मानेकी सजा है। इन नियमोंपर अमल ठीक-ठीक किया जा रहा है या नहीं इसका निरीक्षण करनेके लिए अधिकारियोंको छान-वीन करनेके हक दिये गये हैं। ये नियम हैं तो वहुत ठीक, परन्तु इनको अमलमें लाना वहुत कठिन है। फिर भी इनके होनेसे नाइयोंपर कुछ दवाव पड़ना सम्भव है। ऐसे नियम हमने पहली ही वार केप टाउनकी नगरपालिकामें देखे हैं। हमें लगता है कि और जगहोंमें भी इनके लागू होनेकी सम्भावना है। इसलिए इनपर से हमारे नाइयोंको सचेत हो जाना चाहिए। हमारे नाइयोंकी दूकानोंमें सुधार होना निहायत जरूरी है। देखा गया है कि उनके औजार और अंगोछे स्वच्छ नहीं रहते। उन्हें स्वच्छ करनेमें केवल

१. भारतके वाइसराय, १८९९–१९०५।
२. भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल १८८८–९४।

थोड़ा-सा समय जाता है, बस; परन्तु खर्च कुछ नहीं आता। औजार अच्छे रखनेमें उनकी आयु बढ़ती है और अंगौछे आदि स्वच्छ रखनेसे ग्राहकोंकी संख्या। गोरे नाई भी अपने औजार आदि गन्दे रखते हैं। परन्तु हम लोगोंको बुरी बातोंमें उनकी नकल करनेकी आवश्यकता नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३०३. "रंगका प्रश्न"

रैंड *रेटपेयर्स' रिव्यूमें* उपर्युक्त शीर्षकसे एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसका एक उद्धरण हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं, और यह इसलिए कि हमारे सहयोगीने ठीक-ठिकानेकी और खरी बातें कही हैं। लेख एक ऐसे व्यक्तिका लिखा हुआ है जो — दक्षिण आफ्रिकाके कुछ छुटभैये राजनीतिज्ञोंके विपरीत — इस विषयकी चर्चा करते समय परिस्थितियोंका ठीक अनुपात स्मरण रख सकता है। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि दक्षिण आफ्रिका एक अब्रिटिश और एशियाई-विरोधी नीतिपर अपनी मुहर लगा देता है तो उसके परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं। परन्तु हम विश्वास नही कर सकते कि हमारे राजनीतिज्ञ स्थानिक मामलोंपर विचार करते हुए साम्राज्यिक हितोंको भुला देंगे। एशियाई-विरोधी जिहादको हम स्वयं अपने सहयोगीकी अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं देते; क्योंकि वस्तुस्थितिको जरा-सा देख लेनेसे ही किसीको भी पता चल सकता है कि इस प्रकारके आन्दोलनके लिए कितना कम आधार है। सारी बातका आरम्भ व्यापारिक ईर्ष्यासे हुआ है। केवल इस तुच्छ हेतुसे ही भारतीय-विरोधी आन्दोलनको स्फूर्ति मिल रही है और यह उन सबके लिए बिलकुल स्पष्ट है, जो रंग-द्वेषसे अंधे नहीं बन गये हैं। *रिव्यूने* यह कहकर सरल सत्यमात्र व्यक्त किया है:

> **भारतीय व्यापारियोंको साम्राज्यके किसी भी भागमें व्यापार करनेसे रोकनेके लिए ग्रामवासियोंका सार्वजनिक सभाएँ करनेका गौरवहीन दृश्य बहुत ही बेहूदा और मूर्खतापूर्ण है।**

हम जानते हैं कि बॉक्सबर्ग और पॉचेफस्ट्रूमकी ओर लेखकका ध्यान विशेष रूपसे रहा है। बॉक्सबर्ग तो एक ऐसा गाँव है, जो अपनी तुच्छ, संकीर्ण रूढ़ियोंके विचारसे ऊपर उठ नहीं सकता। और पॉचेफस्ट्रूम एक छोटा-सा गाँव है, जो एशियाइयोंका कट्टर विरोधी बननेपर ही प्रसिद्ध हुआ है। और फिर भी अपेक्षा यह की जाती है कि भारतीयोंको — जिनकी संख्या, *रिव्यूके* कथनानुसार, साम्राज्यकी कुल जनसंख्याकी आधी है — तुच्छ प्रान्तीय कस्बोंकी चीख-पुकारके कारण ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंसे वंचित कर दिया जायेगा।

माना कि भारतीय व्यापारी यूरोपीयोंसे सस्ते दामोंपर माल बेचते हैं। तो क्या प्रत्येक यूरोपीय व्यापारी भी अपने प्रतिस्पर्धीके साथ ठीक ऐसा ही नहीं करता? क्या स्पर्धा ही व्यापारका प्राण नहीं है? माना कि भारतीय "तेलहे चिथड़ेकी बू" पर जिन्दगी बसर कर सकते हैं; परन्तु क्या कोई भी चिकित्साशास्त्री यह नहीं कहेगा कि यूरोपीयोंको जरूरत ठीक इस बातकी है कि वे अपने आहारको सीधा-सादा बनायें? तो फिर भारतीयोंपर उनके इस सद्गुणका ऐसा आरोप क्यों, कि मानो वह कोई अपराध हो? सच बात यह है कि यूरोपीय अपने भारतीय प्रतिस्पर्धियोंसे घृणा करते हैं, क्योंकि उन्हें स्वयं ग्राहकोंसे अपने मालकी खूब बढ़ाई-चढ़ाई कीमतें वसूल करनेका मौका नहीं मिलता। अगर एशियाई-विरोधियोंकी विजय हो गई तो

जिन लोगोंको सबसे अधिक हानि भोगनी पड़ेगी वे होंगे — गोरे ग्राहक। दक्षिण आफ्रिकी लोगोंको यह याद रखना चाहिए।

रिव्यूने कहा है:

> **बहुत-से ऐसे तरीके मौजूद हैं, जिनसे गोरे लोग अपने हितों और अधिकारोंका संरक्षण कर सकते हैं, और जिनमें सम्राटकी प्रजाके एक समुदायका दूसरे समुदायके प्रति बार-बार यह तिरस्कार व्यक्त करते रहना जरूरी नहीं है। अगर कुछ थोड़े-से गोरे लोग व्यापार करनेवाले एशियाइयोंसे द्वेष करते हैं, जबकि वे उन्हें मजदूरोंके तौरपर लानेके लिए समुद्र और पृथ्वी एक कर डालते हैं, तो फिर वे उन भारतीयोंके साथ व्यापार करनेके लिए बाध्य तो नहीं हैं। क्यों नहीं वे उनका पिंड छोड़ देते, और अपनी ही जातिके लोगोंके साथ व्यापार करते?**

एशियाई-विरोधी स्थितिको उग्र करनेके लिए यह एक तर्क और काममें लाया जाता है कि वे लोक-स्वास्थ्यके लिए खतरनाक हैं। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। परन्तु यदि ऐसा है तो निश्चय ही दोष भारतीयोंका नहीं, सफाई-अधिकारियोंका है।

सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंने स्वास्थ्यके नियमोंके प्रति विशेष अनुकूलता दिखलाई है। जोहानिसबर्गमें हालमें जो प्लेग फैला था उसमें सारे भारतीय समाजने जिस तरह प्लेग-अधिकारियोंके निर्देशोंको शिरोधार्य किया, उससे इसका निर्विवाद और उल्लेखनीय प्रमाण मिलता है।

एक अन्य आरोप भारतीयों पर यह लगाया गया है कि उन्होंने पिछले दक्षिण आफ्रिकी युद्धमें साम्राज्यके हितार्थ हथियार नहीं उठाये। इस आरोपमेंके निर्माताओंका अज्ञान नमूनेका है, क्योंकि खुद इन लोगोंके सिवा सारा संसार जानता है कि भारतीय साम्राज्यके लिए लड़ने, और जरूरत होनेपर मर जानेके लिए, उतने ही तैयार थे जितनी कि साम्राज्यकी कोई भी अन्य जाति। परन्तु उनको वैसा करने नहीं दिया गया। कुछ लोग मौजूद हैं जो जानते हैं कि नेटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोंने बार-बार नेटाल-सरकारको अर्जियाँ दी थीं कि उन्हें किसी भी हैसियतसे" युद्धमें जानेकी इजाजत दी जाये। और कुछ ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो जानते हैं कि सारी ब्रिटिश फौजमें नेटाल भारतीय स्वयंसेवक आहत-सहायक दल (नेटाल इंडियन वॉलंटियर एम्बुलैंस कोर)[1] के नेता ही ऐसे थे जिन्होंने सेवा तो की, परन्तु कोई भी पुरस्कार नहीं लिया।

सच बात यह है कि भारतीय समाजमें ऐसे लोग हैं, जो अधिकतर एशियाई-विरोधियोंसे अधिक ब्रिटिश हैं। उन्होंने देशभक्ति तथा लोकसेवाकी उस भावनामें अपना पूरा-पूरा हिस्सा बँटाया है, जिससे साम्राज्य, जैसा भी आज है, वैसा बना है। यह मानना एक भोंड़ी बात होगी कि जो लोग अपनी ब्रिटिश प्रजा की हैसियतसे परिचित हैं वे चुपचाप *बाजार* या बस्तियोंमें निर्वासित हो जाना मंजूर कर लेंगे। इतना ही नहीं देशभक्तिकी इस भावनाको मिटानेका प्रयत्न करना एक अपराध है। और यह आशा करना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है कि वे गलतबयानी, अन्याय और धमकियोंके तरीकोंसे कुचल जायेंगे। दक्षिण आफ्रिकाके एशियाई-विरोधियोंके रुख का सार संक्षेपमें यह बताया जा सकता है — कुत्तेको पहले बदनाम करो फिर मौतके घाट उतार दो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-२-१९०५

1. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८-३९।

३०४. प्लेगका छिपाव

हमें खेद है कि डर्बनमें अब भी ऐसे भारतीय है जो अबतक छूतके रोगको छिपानेके गम्भीर परिणामोको नही जानते। गत सोमवारको डर्बन-निगमके एक भारतीय कर्मचारीको एक प्लेगके मरीजको छिपानेके आरोपमे २० पौंड जुर्माने या तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा दी गई। सजा शिक्षात्मक है, और यह ठीक ही है। मामला एक लडकीका था। उसके पिताने जैसे देखा कि वह बीमार है, उसे एक खाली मकानमें हटा दिया था। मजिस्ट्रेटके सामने उसने कारण बताते हुए कहा, मै नही चाहता था कि यूरोपीय डॉक्टर उसे मेरे पाससे ले जायें। शायद यह बहुत स्वाभाविक था; परन्तु भारतीयोको जानना चाहिए कि इस मामलेमे वे उसी कानूनके अधीन है, जिसके अधीन यूरोपीय है। रोगी कोई भी हो, छूतकी बीमारीके हरएक मरीजकी सूचना अधिकारियोंको दी जानी चाहिए, और हरएकको, चाहे वह भारतीय हो या यूरोपीय, अपनी निजी भावनाओको सामान्य हितकी दृष्टिसे अपने ही भीतर रखना चाहिए। यह आशा करना बहुत अधिक है कि गिरमिटिया वर्गका प्रत्येक भारतीय इस विषयको इसी निगाहसे देखेगा; परन्तु ऊँचे वर्गके भारतीयोसे यह आशा करना बहुत अधिक नही कि वे रोगकी रोकथाम करनेमे डॉ० म्यूरिसनकी मदद करेगे। हम फिर अपने १० दिसम्बरके अकमें प्रकाशित स्वास्थ्य-अधिकारीके पत्र और उसपर अपनी टिप्पणीकी ओर पाठकोका ध्यान आकर्षित करते है। हमारे भारतीय मित्र याद रखे कि इस प्रकारके प्रत्येक मुकदमेसे — अनुचित रूपसे ही सही — सारा समाज बदनाम होता है। लेकिन कसूर सिर्फ भारतीयोका नही है। हम *नेटाल मर्क्युरीके* इस कथनसे सहमत नही हो सकते कि "कतिपय भारतीयोके कार्योंके कारण ही हमें अबतक प्लेगने नही छोडा है।" यह सच है कि भारतीय ही आम तौरपर इस भयकर बीमारीके शिकार होते है; परन्तु जैसा कि हमारे गत सप्ताहके अकमे एक पत्र-लेखकने इस प्रश्नका कि, "हमारे प्लेगोका प्रजनक कौन है?" उत्तर देते हुए लिखा है — "भारतीयोको ऐसी परिस्थितियोमें कौन रखता है, जिनसे कि वे प्लेग-प्रजनक बनते है?" डर्बनमे, नगर-परिषदके सीधे नियन्त्रणमे, "प्लेगके मुकाम" मौजूद है; फिर अगर कुदरती नतीजेके तौरपर प्लेग फैलता है तो सारा दोष बेचारे भारतीयोके सिर क्यों मढा जाता है? वास्तवमे बात इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे सहजमे छोडा नही जा सकता। अगले अकमे हम नगरपालिकाके सफाईके पूरे प्रश्नपर चर्चा करना चाहते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-२-१९०५

३०५. भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत – १

सेठ हुंडामलके परवानेके सम्बन्धमें आज कई महीनोंसे चर्चा चल रही है। हमारे पाठक जानते हैं कि सेठ हुंडामल डर्बनमें करीब १० वर्षसे व्यापार करते आ रहे हैं। शुरूमें उन्होंने डर्बनकी मुख्य वीथी वेस्ट स्ट्रीटमें दूकान खोली। इस दूकानके मालिकको उसकी मरम्मत करानी थी; इसलिए उसने सेठ हुंडामलसे वह दूकान खाली करा ली। वेस्ट स्ट्रीटमें पसन्दकी जगह न मिलनेसे उन्होंने पास ही ग्रे स्ट्रीटमें एक अच्छी दूकान ले ली और वहाँ व्यापार शुरू कर दिया। कुछ महीने बीतनेपर उस दूकानको भी खाली करनेकी आवश्यकता पड़ गई। इसलिए उन्होंने, एक भारतीय मकान-मालिकसे पासमें ही, वेस्ट स्ट्रीटमें, कुछ समय पहले एक भारतीय व्यापारी द्वारा खाली की गई एक अच्छी और बड़ी दूकान किरायेपर ले ली और वहाँ व्यापार शुरू किया; तथा परवाना-अधिकारीको दरखास्त दी कि दूकान बदल जानेके कारण उनके परवानेपर नया पता लिख दिया जाये। इस दरखास्तको उक्त अधिकारीने स्वीकार नहीं किया, यही नहीं, बल्कि उनपर परवानेके बिना व्यापार करनेका इल्जाम लगाया। मजिस्ट्रेटकी अदालतमें बाकायदा मुकदमा चला और सेठ हुंडामलपर जुर्माना हुआ। सेठ हुंडामलने मजिस्ट्रेटके फैसलेपर अपील की। इस अपीलकी सुनवाईसे पहले नगर-परिषदने सेठ हुंडामलको मजिस्ट्रेटकी अदालतमें दो-तीन बार घसीटा, और मजिस्ट्रेटने हर बार उनपर जुर्माना किया। और एक बार तो मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्टने अपनी पद-मर्यादा भूलकर गैर-कानूनी हुक्म दिया कि सेठ हुंडामल अपनी दूकान बन्द कर दें। अलबत्ता, गैर-कानूनी होनेसे सेठ हुंडामलने इस हुक्मकी परवाह नहीं की, और उनके वकील श्री वाइलीने उनकी ओरसे मजिस्ट्रेट और पुलिसको लिखित रूपमें कड़ी चेतावनी दी कि अगर उक्त गैर-कानूनी हुक्मकी तामील की जायेगी तो उसकी तामील करानेवाले अफसरको उसकी जोखिम उठानी पड़ेगी। मजिस्ट्रेटको बेहद गुस्सा आया; लेकिन हुक्म सरासर गैर-कानूनी ही था, इसलिए उसे अपना-सा मुँह लेकर बैठ जाना पड़ा। डर्बनमें जब मण्डल-अदालत (सर्किट कोर्ट) बैठी तब अपीलकी सुनवाई हुई और सेठ हुंडामल निरपराध साबित हुए। तब पुलिसने उनपर दूसरा जुर्म लगाया और उसमें मजिस्ट्रेटने दुबारा उन्हें अपराधी ठहराया। इस महीनेमें सर्वोच्च न्यायालयमें उसकी अपील हुई और भारतीय व्यापारियोंके दुर्भाग्यसे उस बड़ी अदालतमें न्यायाधीशोंने हुंडामलके विरुद्ध फैसला दिया।

उक्त अपीलकी सुनवाई तो इस मास न हुई। पिछले मासमें चालू वर्षके परवानेके लिए सेठ हुंडामलने अर्जी दी थी और परवाना-अधिकारीने वह स्वीकार नहीं की। इसपर से नगर-परिषदमें बाकायदा अपील की गई। परवाना न देनेके सम्बन्धमें परवाना-अधिकारीने यह बताया कि वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाइयोंको अधिक परवाने नहीं मिलने चाहिए, इसलिए सेठ हुंडामलको परवाना न मिलेगा। जब नगर-परिषदके समक्ष सेठ हुंडामलके वकीलने यह कारण उपस्थित किया तब स्वभावत: नगर-परिषदके सदस्य शर्मिन्दा हो गये, क्योंकि परवाना-अधिकारीने यह भी कहा कि नगर-परिषदके सदस्योंकी इच्छा भी यही है। परिषदमें श्री बर्न सदस्य हैं और वे भी एक प्रख्यात वकील हैं। उन्होंने यह बात सुनते ही विरोध किया कि परवाना-अधिकारी यह कह नहीं सकता कि नगर-परिषदके सदस्योंकी इच्छा भी यही है। इसपर उन अधिकारीने उठकर जवाब दिया कि इससे पहले भी उसने यही कारण बताकर दरखास्तें नामंजूर की थीं और उनका दिया हुआ वह फैसला नगर-परिषदने मान्य किया था; इसलिए इस बार भी उसका

कहना दोपयुक्त नहीं समझा जा सकता। इस झगड़ेको बढ़नेसे रोकनेके लिए नगर-परिपदके एक सदस्यने दरखास्त की कि इस अपीलको खारिज किया जाये। और एक दूसरे सदस्यने उसका अनुमोदन किया। साथ-साथ कानूनकी यह दलील भी पेश की कि कानूनके अनुमार यह अधिकार परवाना-अधिकारीको है कि वह किसीको परवाना दे या न दे। जब कानूनकी बात की गई तब अर्जदारके वकीलने कहा कि अधिकार भी कानूनके अनुमार ही बरता जा सकता है और कानून तोड़ा जाये अथवा कानूनका उल्लंघन किया जाये तो यह न्याय नही गिना जा सकता। परिपदके सदस्योंको यह कथन उचित नही जँचा। फलतः सेठ हुंडामलको परवाना प्राप्त नही हुआ और इस कारण दूकान बन्द करनी पड़ी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०५

३०६. कारपोरेशनकी गन्दगी

डर्बन नगर-परिपदकी साधारण मासिक बैठकमें इसी ७ तारीखको ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले (पूर्वी और पश्चिमी दलदली बस्तियों)के सम्बन्धमें गदगी-निरीक्षक (इन्सपेक्टर ऑफ न्यूसेन्सेज)की रिपोर्ट पेश की गई थी। यह उल्लेखनीय है कि इसमें उक्त अधिकारीने कुछ खास क्षेत्रोंका जिक्र किया है। उसने उन क्षेत्रोंके ज्यादातर मकानोंको गिराऊ और सफाई तथा निर्माणकलाकी दृष्टिसे सदोप बताते हुए यह भी कहा है कि बस्तियोंकी जमीन पानी निकाल कर सुखाई नही गई। इसके अलावा, उसने इन मकानोंको "निवासके उद्देश्यसे प्रयुक्त" और "मनुष्यके निवासके अयोग्य" घोपित किया है।

हमें बरबस उस सभाकी याद आती है, जो जून १९०३ में नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमे हुई थी और जिसमे महापौरके एक आरोपकी जोरोंके साथ चर्चा की गई थी। महापौरने नगरपालिकाके सामने एक कार्य-विवरण पेश करते हुए भारतीयोंकी गदी आदतोंका जिक्र किया था और बताया था कि अनेक कारणोंमें से एक कारण यह है, जिसमे भारतीयोंको बस्तियोंमे या — जैसा कि उन्हे नरम भापामे नाम दिया गया है — *बाजारोंमें* भेज दिया जाना चाहिए।

स्मरण रहे, लॉर्ड मिलनरने अपनी १९०३ की स्मरणीय सूचना ३५६ द्वारा उन एशियाइयोंके बारेमे किये जानेवाले अपवादकी ओर खास तौरपर ध्यान आकर्षित किया था, जिनकी रहन-सहनकी आदते और जिनके विशेप गुण यूरोपीय विचारो या सफाईके आदर्शोंके प्रतिकूल न हों। हम कहनेका साहस करते है कि प्रत्येक डॉक्टर या अस्पतालकी परिचारिका हमारे इस कथनकी पुष्टि करेगी, कि ऊँचे वर्गोंके यूरोपीय भी वैज्ञानिक सफाईको सदा अनुकूल दृष्टिसे नही देखते। परन्तु यह तो गौण बात हुई। असल बात यह है कि यूरोपीयोंके *सामान्य मतको* उचित मापदण्ड मान लेना सदा ही ठीक नही होता। वे तो उन बातोंके बारेमे भी बहुधा बिलकुल अज्ञानमे होते हैं जिनका उन्हे सबसे ज्यादा निश्चय होता है; और जिन परिस्थितियोंसे वे अपरिचित होते है उनके विरुद्ध अक्सर उनके पूर्वग्रह भी होते है। यह कोई छिपी बात नही है कि जन-साधारणका मत सुशिक्षित लोगोंके मतसे बहुत भिन्न और अक्सर विरुद्ध भी होता है। अध्ययनशील व्यक्ति जो बाते कहता है उन्हे इकट्ठा करने, उनकी छान-बीन करने और उनके गुण-दोषोंका निर्णय करनेका ज्यादा बड़ा और ज्यादा बार मौका पाता रहता है।

भारतीयों और भारतीयोंमें अन्तर है। कुछ भारतीय सफाईके वैज्ञानिक यूरोपीय मापदण्डके पूरी तरह कायल हैं और कुछ ऐसे हैं जो अवतक सफाईके वे ही तरीके काममें लाते जा रहे हैं, जिनका अवलम्बन वे भारतके सुदूरस्थ जिलोंमें स्मरणातीत कालसे करते चले आते हैं। उनसे जरा भी भिन्न तरीके उन्होंने अख्तियार नहीं किये। ऐसे ही भेद सारी दुनियाके सभ्य राष्ट्रोंके लोगोंके बीच किये जा सकते हैं। शिक्षितों और अल्प-शिक्षितोंके बीच यह भेद सदासे है और आगामी बहुत वर्षों तक रहेगा।

इसलिए, जब हम बार-बार भारतीयोंके खिलाफ यह आरोप सुनते हैं कि वे अस्वच्छ हैं तो हम यह पूछनेके लिए बाध्य हो जाते हैं कि "आपका मतलब किन भारतीयोंसे है? और आप व्यक्तिगत सफाईकी बात कहते हैं या घरेलू सफाईकी?" क्योंकि, इससे अधिक महत्त्वकी बात और क्या है कि जो लोग इस तरहका अस्पष्ट आरोप लगाते हैं उन्हें किसी ज्यादा निश्चित और कम खतरनाक रूपमें अस्पष्ट बातपर स्थिर किया जाये? अक्सर देखा जाता है कि विचार-हीन व्यक्तिका ध्यान बातोंको सर्व-सामान्य रूपमें पेश करनेसे सफलतापूर्वक खिंच जाता है, जब कि तथ्यको निश्चित रूपमें पेश करनेसे तो वह दब ही जायेगा।

हमारा अनुभव यह है कि प्रायः भारतीय अस्वच्छ नहीं होते। परन्तु हम यह नहीं कहते कि *कोई* भारतीय अस्वच्छ है ही नहीं। इसे भली-भाँति याद रखना चाहिए। हम यह तर्क विभिन्न भारतीय समाजोंकी परम्पराओं और राष्ट्रीय प्रथाओंके आधारपर पेश करते हैं। हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि भारतीयोंका धर्म उनके लिए एक जीती-जागती चीज है, फिर भले ही वे हिन्दू हों, या मुसलमान; और वह धर्म उन्हें व्यक्तिगत सफाई और परिणामतः घरेलू सफाईके निरपेक्ष सिद्धान्तोंकी शिक्षा देता है। यह बात नीचीसे-नीची श्रेणियोंके लोगोंके बारेमें भी सही है, और भारतीय जीवनकी साधारण हालतोंसे परिचित कोई भी व्यक्ति इसकी पुष्टि कर सकता है।

परन्तु हमारे यहाँ क्या है? हमारे यहाँ तो ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले हैं। हमने *बाजारों* और बस्तियोंके बारेमें, छूत-निवारण और पृथक्करणके बारेमें बहुत ही सख्त बातें सुनी हैं। परन्तु प्रस्तावकी शेष बातोंको, मालूम होता है, बहुत सोच-समझकर — या यों कहें कि लापर-वाहीके साथ — विचारसे अलग रखा गया है।

सफाई और आरोग्यके प्रश्नोंमें दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंके लिए हम नगरपालिकाकी सफाई-समितिकी सन् १८९९में *नेटाल मर्क्युरीमें* प्रकाशित रिपोर्टके कुछ उद्धरण देना चाहते हैं। इस समितिके अध्यक्ष माननीय आर० जेमिसन थे।

> (२) बादमें हमने वेस्टर्न फ्ले (पश्चिमी दलदली बस्ती) कहलानेवाले स्थानमें बने अहातेका निरीक्षण किया। वहाँ दो नालीदार चद्दरके मकान हैं, जिनमें २२ मर्द और ३३ औरतें तथा बच्चे रहते हैं। ये इमारतें बहुत-कुछ अच्छी हालतमें पाई गईं। परन्तु इनको सफाईके उपनियमोंके अनुकूल बनानेके लिए इनमें छप्पर, नालियों, बरसाती नलों (डाउन पाइप्स), अधिक, प्रकाश अधिक हवा तथा एक और पाखानेकी जरूरत है। वर्तमान पाखाना शिष्टताकी दृष्टिसे काफी नहीं है। चहारदीवारीकी मरम्मतकी जरूरत है। मकानोंके अन्दर सफेदी करनी चाहिए। पानीका प्रबंध पास ही है, इसलिए नहाने-धोनेके लिए लोहेकी चद्दरोंका एक छोटा-सा खोखा बना देना चाहिए। पासकी खुली नालियोंको बरसात शुरू होनेके पहले भली-भाँति साफ करके खोल देना जरूरी है, क्योंकि यह जगह दलदली है।

यह है उस महान *बाजार*, या बस्ती, या अहातेकी, या आप उसे जो भी कह कर पुकारें, हालतका वर्णन; और वह भी स्वयं निगम जैसी अधिकारी संस्थाके सीधे नियन्त्रणमें। हम पूछते हैं अगर गंदगीके ठीक बीचों-बीच इस प्रकारके मकानोंमें बसाये गये भारतीयोंकी आदतें गंदी हैं तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या भारतीय? हर्गिज नहीं। और फिर भी, यद्यपि इस रिपोर्टको पेश हुए लगभग साढ़े पाँच वर्ष बीत गये हैं, वह दुर्गन्धयुक्त क्षेत्र आज भी करीब-करीब उसी हालतमें है, जिसमें उस समय था।

ऐसी घिनौनी हालतोंको सुधारनेके लिए निगम (कारपोरेशन) क्या कर रहा है? वह परवानोंके सम्बन्धमें मुकदमे चलानेके लिए शक्ति और समय निकाल सकता है, फिर बीमारी और मौतके इस केन्द्र और दूसरे केन्द्रोंको मिटानेमें अपनी उसी शक्तिका थोड़ा-सा अंश क्यों नहीं लगा सकता?

नेटाल मर्क्युरी कहता है:

> **कुली सफाई-पसन्द व्यक्ति नहीं हैं और अगर उन्हें अपनी मर्जीपर छोड़ दिया जाये तो वे बस्तीसे बाहर बने बढ़िया सदनको भी शीघ्र ही सूअरबाड़े जैसा गन्दा बना देंगे।**

और वह आगे कहता है:

> **परन्तु यह उनके मालिकोंका, और खास तौरसे प्रवासियोंके संरक्षकका काम है कि न सिर्फ उनके अपने हितके लिए, बल्कि सारे समाजके हितके लिए, सफाईके मामलेमें उन्हें उनकी मर्जीपर न छोड़ा जाये। यह मामला उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारीके ध्यान देनेका है। और अगर मालिक लोग अपने कुलियोंको नाकाफी और गंदे मकान देते हों तो उन्हें अपने तरीके सुधारनेके लिए बाध्य करना चाहिए।**

इनमेंसे दूसरे मन्तव्यसे हम पूरी तरह सहमत हैं। इससे सचमुच उनको बहुत-कुछ जवाब मिल जाता है, जो सारेके-सारे भारतीयोंकी कथित गन्दी आदतोंपर जोर देते हैं। पहले मन्तव्यको मंजूर करनेके पहले जाँचना होगा। उसका निबटारा ऊपर बताई हुई रिपोर्टके निम्नलिखित अंशसे हो जाता है:

> **यहाँ (क्वीन स्ट्रीट अहातेमें) खास तौरसे देखा गया कि *जितने भी स्थानोंका हमने निरीक्षण किया उन सबकी तुलनामें यह बहुत साफ है।* इसका कारण यह है कि यह भूमिगत नाली-प्रणालीसे सम्बद्ध है और इससे यहाँ नहाने-धोने और पाखानोंकी व्यवस्था काफी अच्छी है।**

इस प्रकार हमारे पास लिखित प्रमाण है कि यह बुराई निगमको बताई जा चुकी है; और यह भी कि इस तरहकी बुराइयाँ अगर जारी रहती हैं तो वे उस संस्थापर कलंक-रूप हैं, जो इन्हें बरदाश्त करती है; और आखिरी बात यह है, यद्यपि वह उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, कि निगमने ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्लेमें इन्हें मिटानेका कोई अमली प्रयत्न नहीं किया। फिर किसको अधिकार है कि वह भारतीयोंकी अस्वच्छताको कारण बताकर उनका नाम-निशान मिटा देनेपर जोर दे और इस प्रकार जलेपर नमक छिड़के? निगमकी अहस्तक्षेपकी नीतिका परिणाम स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है। मूल कारण कितने दिनोंतक बे-निपटा पड़ा रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०५

३०७. प्लेग

सफाईके प्रश्नपर, जहाँतक उसका असर भारतीय समाजपर पड़ता है, सम्पूर्ण रूपसे पहले ही विचार किया जा चुका है।[1] अब हमारी तजवीज है कि जो ख़ास बीमारी महामारीके रूपमें फैलकर अभागे लोगोंका शिकार कर रही है, उसके कारणकी छानबीन की जाये और उस कारणके परिणामोंपर विचार किया जाये।

गत शनिवारके *मर्क्युरीमें* एक लम्बा अनुच्छेद छपा है। उसमें अधिकारियोंके प्रति "भारतीयों" के उस रवैयेकी चर्चा है जो, कहा जाता है, उन्होंने खास तौरसे प्लेगकी बीमारीको छिपानेके बारेमें अपनाया है। लेखकने कई विचित्र और अधूरी बातें कही हैं, उनके आधारपर बहुत-से शिकायती प्रश्न उठाये हैं और अन्तमें यह सुझाव देकर वक्तव्य समाप्त किया है कि "सम्भवतः इस आचरण (प्लेगके छिपाव) का बीमारीके समय-समयपर फैलनेके साथ गहरा सम्बन्ध है।"

सीधे-सच्चे तथ्य क्या हैं? हमारा समाज गोरों और भारतीयोंसे बना है। गोरोंमें भारतीयोंकी अपेक्षा गरीब लोग कम हैं। तब इससे निष्कर्ष निकलता है कि एशियाई आबादीके गरीब लोगोंके यूरोपीय गरीबोंकी अपेक्षा अधिक संख्यामें रोगका शिकार होनेकी गुंजाइश है। दूसरे, एक यह आरोप लगाया गया है कि "भारतीय जानकारी देनेसे इनकार करके और अगर कोई बीमार हो तो हर तरहसे उसका पता-ठिकाना छिपानेका प्रयत्न करके" अधिकारियोंके काममें गम्भीर बाधा डालते हैं। हम फिर पूछते हैं — "कौनसे भारतीय?" निश्चय ही भारतीय समाजके सबसे ज्यादा नासमझ वर्गके कुछ लोगोंका दोष *सारे* भारतीय समाजपर मढ़नेका इरादा तो इस आरोपमें नहीं है। तो फिर, लापरवाहीके साथ ये सामान्यीकरण क्यों? क्या समझदार जनताको यह समझाना सम्भव नहीं है कि भारतीयोंके बीच उतने ही बारीकीसे बने उपविभाग हैं, जितने कि किन्हीं भी अन्य सभ्य लोगोंमें हैं? यह देखकर निराशा होती है कि किस प्रकार निहायत गैर-जिम्मेदारीके साथ ये झूठी बातें निरन्तर कही जाती हैं। इससे आश्चर्य होता है कि क्या कभी इतिहासके तथ्योंका अध्ययन किया गया है और क्या वे आजके जीवन-दर्शनका अंग बन गये हैं।

ऊँचे वर्गोंके भारतीय अपने कम भाग्यशाली भाइयोंको शिक्षा तथा व्यक्तिगत उदाहरणसे यह बताते कभी थकते नहीं कि जो निर्दय रोग हमारे बीच फैला है, उसका मूलोच्छेद करनेके प्रयत्नोंमें अधिकारियोंके साथ सहयोग करनेकी आवश्यकता है, ताकि उनके प्रयत्न विफल न हों। स्वयं हमने बार-बार अपने इन स्तंभोंमें अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं दोनोंके द्वारा यह बतानेका अधिकसे-अधिक प्रयत्न किया है कि "सफाईका स्थान ईश्वर-भक्तिके बाद दूसरा है।" और फिर भी हमारे बीच ऐसे मूर्ख लोग हैं जो पूछते हैं — "भारतीय" अधिकारियोंके साथ सहयोग क्यों नहीं करते!

इसके अलावा, अगर भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच वर्गगत तुलना की जाये, तो हमें निश्चय है कि भारतीयोंमें प्लेगकी घटनाओंको छिपाने तथा प्लेगके रोगियोंको विज्ञापित करनेके प्रति अनिच्छाके मामले यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा नहीं हैं। हम इस वस्तुस्थितिपर विशेष जोर देना नहीं चाहते और न यह तर्क ही पेश करना चाहते हैं कि आप भी तो ऐसा ही करते हैं। फिर भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

आत्मरक्षाके लिए हमें यह सब करना पड़ा है; क्योंकि यह संकेत करना स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है कि कुछ भारतीयोंका ऐसा व्यवहार, जिसकी निन्दा हमसे ज्यादा और कोई नही करता, "यूरोपीयोंकी दृष्टिमे भारतीय समाजके प्रति बहुत बुरी धारणा पैदा करता है।" तथापि, ये छिपावके मामले क्यों होते हैं, इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। हमें बताया गया हे कि प्लेगके अस्पतालमें भारतीयों और काफिरोंके बीच कोई फर्क नहीं किया जाता। सबको अंधाधुन्ध एक साथ डाल दिया जाता है। भारतीयोंकी आदतों और भावनाओंका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाला कोई भी व्यक्ति एकदम ताड़ सकता है कि यह बात अधिकारियोंके जारी किये हुए अच्छे काममें कितनी बाधक है। हम केवल यह कह सकते हैं कि जबतक भारतीयोंको अलग स्थान नही दिया जाता और जबतक स्वयं भारतीयोंके बीच, उनकी धार्मिक प्रथाओं और परम्परागत विश्वासोंका उचित खयाल रखते हुए, जाति और धर्मका फर्क नहीं किया जाता, तबतक अधिकारियोंको व्यर्थ ही उन कठिनाइयोंको झेलते रहना होगा, जो जरा-सी दूरदर्शितासे सरलतापूर्वक दूर की जा सकती है।

हम अंशतः यह बता चुके है कि गरीब वर्गके भारतीयोंके लिए कैसे और क्यो गन्दगीकी हालतें पैदा की जाती हैं। डर्बनमें प्लेग फिरसे फूट पड़ा है। उसके सबसे पहले शिकार कौन हैं? भारतीय। परन्तु हम इस विषयको लेकर प्रश्न करते हैं — *कौनसे* भारतीय? वे भारतीय *कौन* है? उनके अलावा और कोई नहीं, जो दक्षिण आफ्रिकाका आदर्श नगर होनेका अभिमान करनेवाले नगरके निगमकी नौकरियोंमें हैं, उसके मकानोंमें रहते हैं और जिनकी वह "हिफाजत" करता है। निगमने इन भारतीयोंको गन्देसे-गन्दे काम करनेके लिए नौकर रखा हे। उनसे नालियाँ और गटरें साफ करायी जाती है और उन्हें ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले (पूर्वी और पश्चिमी दलदल) जैसे "स्वच्छ" मुहल्लोमें "बसाया" जाता है। तब फिर अगर ये अभागे इस प्लेगकी बीमारीको और दूसरी हरएक गन्दगीकी बीमारीको पकड़ लेते हैं तो ताज्जुब क्या? सफाई-आयोग (सैनिटरी कमिशन) की रिपोर्टमें, जिसकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गई है, उन भयानक परिस्थितियोंका काफी यथार्थ वर्णन किया गया है, जिनमें इन अभागे लोगोंको स्थायी रूपसे निकृष्ट जीवन बितानेके लिए बाध्य किया जाता है। और जब ऐसी परिस्थितियोमें प्लेग स्वभावतः फैल जाता है — यद्यपि इसके बारेमें भारतीय समाजने अधिकारियोंसे बार-बार शिकायते की और उन्ही अधिकारियों द्वारा नियुक्त विशेषज्ञोंने भी बार-बार चेतावनियाँ दी — तब बिना किसी भेदभावके सारे भारतीयोंपर गन्दी आदतोंका दोष मढ़ दिया जाता है और "कुली"को फौरन "रोग-संवर्धक" की उपाधि दे डाली जाती है। जिस आदमीको सूअरोंके बाड़ेमें रखा जाता हो उसका उस बाड़ेके असली निवासी पशुओंके समान ही गन्दी आदतोंवाला बन जाना असम्भव नही है। ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरने विधान-परिषदमें ट्रान्सवालकी भारतीय बस्तियोंके बारेमें बोलते हुए कहा है:

> जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है, और क्यों? इसलिए कि ये गरीब लोग दरबेमें मुर्गीके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर हैं और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर श्री रेट (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि सफाईके मामलेमें गुनहगार स्वयं निगम है। इसलिए अपने मकानोंकी भयानक हालत तथा प्लेगसे होनेवाली मौतोंके लिए मुजरिमाना जिम्मेदारी उसके ही सिर है। इन तथ्योंके प्रकाशमें भारतीय समाज या अभागे "कुलियों"पर भी "गन्दी

ुराईको मिटानेमें अधिकारियोंके साथ सहयोगके प्रयत्न जान-बूझकर न करनेका
ग्ल मुख्य विषयसे लोगोंका ध्यान बँटा देना है।

और निगम द्वारा नियुक्त किये हुए प्लेग-विशेषज्ञोंके प्रति हम अपना आभार प्रकट
ने बुराईका इलाज करनेकी शक्ति-भर कोशिश की है और सरकारसे सिफारिशें
न्तु सब व्यर्थ। परिणामको पकड़कर उसे कारण मानना बिलकुल व्यर्थ है। परिणाम
ाम ही रहता है, और कारण, जो कुछ बताया गया है उससे बिलकुल भिन्न होनेके
खोजना शेष ही है।

वके बावजूद हम देखते हैं कि कुछ जिम्मेदार लोग ऐसे हैं जो लॉर्ड मिलनरकी विज्ञप्तिमें
तरीकोंके अनुसार नये कानून बनानेके पक्षमें हैं। वे चाहते हैं कि इन कानूनोंके
तीयोंको *बाजारोंमें* ढकेल दिया जाये और उन विभीषिकाओंको स्थायी बना दिया
निगमकी भूमिपर बसी बस्तियोंमें फैली हैं। भारत-सरकारके अंक-विभागके भूतपूर्व
क श्री जे० ई० ओ'कोनरने इस नीतिकी निन्दा करते हुए ठीक ही कहा है कि भारतीयोंको
ढकेलनेका मतलब है कि "वे अपनी फिक्र खुद ही करें।" यह माना जाता है कि अच्छी सरकारकी सच्ची कसौटी यह है कि वह अकिंचनमें भी कर्त्तव्यकी ऊँची भावना भरती है, वह उसे निम्नतर कोटिकी दासतामें कभी भी नहीं गिराती, किन्तु निश्चय ही कोई "मूर्खतापूर्ण लकीरकी फकीरी," राजनीतिज्ञताकी उदार भावना, डर्बन नगरपालिकाकी सफाई तथा राजनीति-सम्बन्धी नीतियोंकी निर्मात्री नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०५

३०८. दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भारतीयोंसे अपील

अपने पाठकोंसे हमारी सिफारिश है कि इन दिनों भारतसे जो समाचारपत्र आते हैं वे गौरसे पढ़ें। क्योंकि उन्हें उनको पढ़नेसे यह यकीन हो जायेगा कि हमारे भारतके भाई हमारे सहायतार्थ दौड़कर आनेके लिए तैयार हैं। बम्बईमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ उसमें हम लोगोंके कष्टोंके सम्बन्धमें अच्छी चर्चा की गई थी, और यहांके निवासियों द्वारा दिये गये भाषणोंका उस महान संस्था कांग्रेसपर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि नेताओंने हमारे प्रश्नका महत्व समझकर हमारी परिस्थितिमें सुधारका प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है। समाचारपत्रोंने भी हमारी समस्याको भली-भांति हाथमें ले लिया है। ये सारी बातें बहुत सन्तोषप्रद हैं। और हमें ईश्वरका अनुग्रह मानना चाहिए कि भारतके लोक-प्रतिनिधियोंने खुद हमारी शिकायतपर ध्यान दिया है। हमें भी अधिक उत्साहसे अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें तत्पर हो जाना चाहिए। कहावत है कि "हिम्मते मर्दां मददे खुदा" और "अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।" इसलिए हमें अपना कर्त्तव्य पूरा करना ही चाहिए। यदि नहीं करते तो हमारी आकांक्षा फलीभूत नहीं होगी। भारतसे ज्यों-ज्यों मदद मिलती जाये त्यों-त्यों हमारे जोशमें बढ़ती होनी चाहिए, क्योंकि मदद मिलनेपर जिम्मेदारी बढ़ती है। अपने दुःखोंको मिटानेके लिए हमारा कोशिश करना तो स्वाभाविक ही है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम लोगोंको पशुओंसे भी गया-गुजरा माना जायेगा। जब हम लोगोंकी सहायताके लिए सहायक लोग निकल पड़े हैं तब हमें उनके प्रति अपने कर्त्तव्योंका भी विचार करना चाहिए। और उनको संतोष तथा प्रोत्साहन देनेके लिए अधिक उमंग और उत्साहसे

कोशिशें करनी चाहिए ताकि उन्हें यह प्रतीत हो कि हम अपात्र नहीं हैं, सुपात्र है। अपनी योग्यता साबित कर देनेसे उनका हौसला भी बढ़ेगा और इससे हमें बहुत लाभ होगा। दुनिया-दारीमें व्यस्त आदमी भी यह बात समझ सकता है। फिर जो लोग धर्मके सम्बन्धमें विचार करते हों, उनको तो इस बातका औचित्य तुरन्त दिखाई देगा।

दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भाइयोंसे हमारी खास विनती है कि वे ऊपर लिखी बातपर विशेष रूपसे विचार करें और अपना फर्ज अदा करनेके लिए तुरन्त तैयार हो जायें। भारतीय नेता हमारी मदद करनेके लिए तैयार हैं तो उनके लिए उसके साधन जुटा देना हमारा साफ फर्ज है। क्योंकि, हमें समझना चाहिए कि यदि हम ऐसा नही करते तो उन लोगोंसे इच्छानुकूल मदद नही मिल सकती। फिलहाल तीन साधनोंकी आवश्यकता है: (१) हम अपनी कोशिशें जारी रखें; (२) उन्हें अपनी सही हालतसे वाकिफ रखें; (३) हमारी ओरसे काम करनेमें उन्हें खर्च करना पड़ता हो, तो रुपये-पैसेकी पर्याप्त सहायता दें। ये तीनों साधन बड़े कामके है। हम पहले दो साधन कुछ-कुछ जुटा देते है अर्थात् हमारी कोशिशें थोड़ी-बहुत चालू हैं और हम यहाँकी सही हालत भी प्रकाशित करते हैं। तीसरे साधनपर, यानी रुपये-पैसेके सम्बन्धमें, हमने कुछ नहीं किया है। इसलिए उस विषयपर अविलम्ब पूरा विचार करना आवश्यक है। पैसेकी मदद करना एक भारी हथियार देनेके बराबर है। दुनिया ऐसी है कि उसमें आजकल पग-पगपर पैसा चाहिए, और पैसेकी कमी पड़ जाये तो चाहे जैसी बड़ी और ऊँची उम्मीद मनमें बाँधी हो, अन्तमें नाउम्मीद हो जाना पड़ता है। जिस प्रकार मनुष्यको आहारकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार सार्वजनिक काममें पैसेकी जरूरत रहती है। सहायक अपना बहुमूल्य समय दें, और खुशीसे मिहनत करे; तिसपर भी उन्हे पैसेकी आवश्यकता हो और तब हम अपनी थैलीका मुँह बन्द रखें तो हम नीच और अधम गिने जायेंगे।

हमें सोचना चाहिए कि नेता किस प्रकार सहायता कर सकते हैं। इस देशमें हमारा जो अनुभव है उससे यह समझना कठिन नही है। ब्रिटिश राज्यमें अपनी अभिलाषा पूरी करानेके लिए कैसे काम करना चाहिए यह हमने प्रत्यक्ष अनुभवसे सीखा है। ट्रान्सवालके लोगोंने चाहा तो युद्ध करवाया और इस समय चाहें तो हमें इतना कष्ट दे सकते है। यह कैसे होता है? वे लोग, सर्व-साधारण जनतासे अपने विचारोंका समर्थन प्राप्त करनेकी दृष्टिसे, जगह-जगह सभाएँ करते है; सब लोग सभाओंमें हमेशा उपस्थित नही हो सकते, इसलिए समाचारपत्र निकालते है और उनमें यथारुचि लेख लिखते है, पत्रक और पत्रिकाएँ छपवाते है; अर्जियाँ तैयार करते है, छपवाते है और उनके ऊपर बहुतसे दस्तखत कराते हैं, और जो कुछ करते हैं उसकी खबर देनेके लिए तार भेजते है। अब यह सब करनेके लिए पैसेकी बड़ी आवश्यकता रहती है। और इसलिए उनके नेता अपनी जेबें जरा हल्की करनेमें झिझकते नही है। वे लोग बलवान है, अक्लमन्द है, संगठित है; उनका इस देशमें एवं विलायतमें पूरा-पूरा प्रभाव है; फिर भी वे निश्चित काम निर्विघ्न पूरा करनेके लिए बुद्धिमतासे काम लेकर तमाम कोशिशें हमेशा जारी रखते हैं। ऐसे लोगोंसे हमें टक्कर लेनी पड़ती है। हम कमजोर है; अक्लमें पिछड़े हुए हैं; ऐक्यका पूरा महत्त्व समझकर सब एक नही हो सकते; सरकारपर हमारा कुछ प्रभाव नही है; और जिस उमंग और विवेक-विचारसे हमे अपनी मनुष्यता दिखानी चाहिए उसका हममें अभाव है। तब उनसे टक्कर कैसे ली जाये? हमारी प्रायः सभी कमियोंके बदलेमें हमारे पक्षमें इन्साफ है; और इन्साफ विरोधी पक्षको हरा सकता है। किन्तु फिर भी हमें जय प्राप्त करनेके लिए अपनी मनुष्यता और योग्यता अवश्य दिखानी ही चाहिए। क्योंकि ऐसा न करें तो इन्साफ कमजोर पड़ जाता है।

हमारे सौभाग्यसे यहाँके कई प्रतिष्ठित महानुभाव इन दिनों भारतमें हैं। उनके द्वारा यहाँके नेताओंको सहायता मिलनी चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे — खास करके नेटाल और ट्रान्सवालसे पैसेकी जितनी बन पड़े सहायता भेजकर भारतके नेताओंको बल देना चाहिए, ताकि वे ब्रिटिश राज्यकी रीतिके अनुसार जनताकी भावनाओंको प्रकाशमें लाकर सरकारसे इन्साफकी माँग करें। यहाँकी जैसी महँगाई भारतमें नहीं है। वह देश गरीब है, इसलिए वहाँ थोड़े पैसोंसे काम हो सकता है; फिर वह बहुत विशाल है। इन सारी बातोंको ध्यानमें रखकर यहाँके नेताओंको अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य अविलम्ब पूरा करना चाहिए — अर्थात् वहाँ अच्छी-खासी रकमें तत्काल भेज देनी चाहिए, जिससे उनका उत्साह मन्द न हो जाये। और अखबारोंमें निकलवा कर तथा सभाएँ करके समूचे देशमें आवाज गुंजा देनी चाहिए, जिससे कहा जा सके कि भारतकी सरकारको जनताका पूरा समर्थन मिला है, और विलायतकी सरकारको भी उसपर ध्यान देना लाजिमी हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०५

३०९. केपके सामान्य व्यापारी

केपके *गवर्नमेंट गज़टमें* सामान्य व्यापारियोंके व्यापारका नियमन करनेके लिए एक विधेयकका मसविदा प्रकाशित हुआ है। व्यापारियोंके परवानोंके नियमनकी बात तो हम समझ सकते हैं, मगर कानून व्यापारियोंका भी नियमन करे, यह एक बिलकुल अनूठी कल्पना है। हम विधेयककी असली उपधाराओंको दूसरे स्तम्भमें उद्धृत कर रहे हैं। इसमें कुल ३५ खण्ड हैं, जिनमें से अधिकांशको न्यूनाधिक रूपमें टाला जा सकता था। परन्तु, इसके साथ ही हमें यह भी मंजूर करना होगा कि यद्यपि विधेयक काफी सख्त है, फिर भी उससे मालूम होता है कि उसके निर्माताओंने सामान्य व्यापारियोंके हितोंका बहुत खयाल रखा है। इस दृष्टिसे वह निस्सन्देह नेटाल अधिनियमकी अपेक्षा कम आपत्तिजनक है। विधेयकके अनुसार, सब वर्तमान परवानेदार व्यापारियोंको तबतक संरक्षण प्रदान किया गया है जबतक कि उन्होंने इतवारको व्यापार, शराब-बिक्री और सफाईसे सम्बन्धित कानूनका भंग न किया हो, या उनके ग्राहकों, साथियों अथवा उनकी खुदकी आदतोंके कारण उनके अहाते पास-पड़ोसके लोगोंके लिए कष्टदायक न बन गये हों। जहाँतक नये परवानोंका सम्बन्ध है, कोई आवासी मजिस्ट्रेट आवेदकको परवाना प्राप्त करनेके लिए प्रमाणपत्र दे सकेगा अथवा इस प्रश्नका फैसला परवाना देनेवाली अदालत कर देगी। मजिस्ट्रेट और परवाना-अदालत दोनोंको अधिकार होगा कि वे दूसरी बातोंके साथ-साथ आवेदकके चाल-चलन, किसी यूरोपीय भाषामें लिखनेके सामर्थ्य अथवा कारोबारका समझमें आने लायक लेखा रखनेकी अयोग्यताके आधारपर उसे परवाना देनेसे इनकार कर दें। परवानेदारको भी अधिकार होगा कि अगर उसका परवाना रद कर दिया जाये तो वह सर्वोच्च न्यायालयमें अपील कर सके। अपील केवल उस हालतमें नहीं हो सकेगी, जब कि परवाना शराब-कानूनके अन्तर्गत सजाके कारण रद किया गया हो। सारे विधेयकमें सबसे अधिक आपत्तिजनक उपधारा यूरोपीय भाषाओंके सम्बन्धमें है। इस तरहकी व्यवस्थाका अर्थ है — लाखों ब्रिटिश भारतीयों और उनकी सुसंस्कृत भाषाओंका स्वभावतः अपमान। उसके कारण ही केप-निवासी भारतीयोंके लिए विधेयकका विरोध करना आवश्यक हो गया है; अन्यथा वे सहर्ष उससे सहमत हो जाते। इस तरहकी

त्रासदायक व्यवस्थाओंसे भारतीयोंका सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। हम नहीं समझ सकते कि किसी ऐसे व्यक्तिको, जो एक योग्य व्यापारी हो, पूरी तरह ईमानदार हो और दूसरोंकी सहायतासे अपना हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेमें समर्थ हो, क्यों परवाना प्राप्त करनेमें वंचित किया जाना चाहिए। हम ऐसी बीसियों दुर्दशाग्रस्त झोपड़ियाँ बता सकते हैं, जिनके मालिक "किसी यूरोपीय भाषा"का ज्ञान रखते हैं, परन्तु जो किसी भी महत्त्वके शहरके लिए हर तरहसे लज्जाजनक हैं। ऐसे लोगोंको परवाने क्यों मिलें और किसी अच्छे शिष्ट भारतीय प्रजाजनका, जिसके व्यापारका स्थान बिलकुल स्वच्छ हो और जिसका चरित्र आपत्ति-रहित हो, मुँहपर यह थप्पड़-सा मारकर अपमान क्यों किया जाये कि वह अयोग्य है, क्योंकि उसे कोई यूरोपीय भाषा नहीं आती? हमें विश्वास है कि केप-निवासी ब्रिटिश भारतीय अपने ऊपर भार लादनेके इस नये प्रयत्नका विरोध करनेमें सहयोग करेंगे। हमें यह भी आशा है कि सरकार विधेयकमें से इस आपत्तिजनक उपधाराको निकालकर सम्बन्धित व्यापारियोंके भारी समाजका सक्रिय सहयोग प्राप्त करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–३–१९०५

३१०. भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत – २

ये दोनों हारें[1] सेठ हुडामलकी ही हारें हुईं, ऐसा न समझा जाये, बल्कि ये नेटालके तमाम भारतीय व्यापारियोंकी हुईं, ऐसा मानना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि सर्वोच्च न्यायालयने जानबूझकर गैरइन्साफी की है, किन्तु हम मानते हैं कि यदि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेपर सम्राटकी न्यायपरिषद (प्रीवी कौंसिल)में अपील की जाये तो परिणाम अवश्य भारतीय व्यापारियोंकी दलीलके पक्षमें होगा। यदि कानून बनानेवालोंका मन्शा सर्वोच्च न्यायालयके कथनानुसार हो तो प्रश्न यह उठता है कि परवानेका फार्म पहले जैसा ही क्यों नहीं था? उसमें तो केवल शहरका ही नाम था, स्थानका नहीं। यह स्थान लिखनेकी बात बादमें ही दाखिल की गई है। और यह सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेकी काट है। परन्तु, फिलहाल कानूनी बारीकीकी छानबीन आवश्यक नहीं। यह समझना आवश्यक है कि परवानेका कानून कुल मिलाकर भारतीय व्यापारियोंके लिए अत्यन्त हानिकर है; और इस कानूनको बदलवानेके लिए यथासम्भव उपाय किये जाने चाहिए। कानून अत्याचारपूर्ण है, उससे बहुत गैरइन्साफी हुई है और अनेक दूकानदार बरबाद हुए जा रहे हैं, यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो चुकी है और सब लोग यह स्वीकार करते हैं; तब हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है कि हम ऐसे कानूनको बदलवानेकी भरसक कोशिशें करें और जबतक सफलता नहीं मिलती तबतक सुस्त न पड़ें। यह स्पष्ट है कि ऐसी बातोंमें थोड़ी-सी भी लापरवाही करना बहुत खतरनाक है।

फिलहाल, फौरन क्या किया जाये इसका विचार करें। पूरी, भरोसेकी, पक्की जानकारी प्रत्येक नगरमें प्राप्त करनी चाहिए कि वहाँ वर्षके आरम्भमें भारतीयोंको बाकायदा परवाने मिले हैं या नहीं, और यह जानकारी यथासम्भव प्रकाशित करनी चाहिए। जो अगुआ हैं उन्हें इस जानकारीपर विचार करना चाहिए और उचित कदम उठाने चाहिए। भारत और विलायतमें हमारी ओरसे काम करनेवाले लोगोंके कानोंतक ये सब तथ्य पहुँचाने चाहिए, जिससे हमारे स्थानीय प्रयत्नोंके साथ-साथ वहाँ भी हम लोगोंका समर्थक आन्दोलन चल पड़े। जबतक इस प्रकार काम नहीं होगा तबतक हम व्यापारियोंकी परिस्थिति सुधरनेकी आशा रखना व्यर्थ

१. देखिए "भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत" १८–२–१९०५।

समझते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि कुछ इसी प्रकारकी बात हमने १८९८ में की थी; उसके फलस्वरूप १८९९ में उपनिवेश-सचिवने श्री चेम्बरलेन द्वारा लिखित सख्त सूचनाओंके आधार-पर नेटालकी प्रत्येक नगरपालिकाको एक गुप्त पत्र लिखा था कि यदि भारतीय व्यापारियोंपर जुल्म किया गया तो कानून बदलना पड़ेगा और भारतीयोंकी माँगोंके अनुसार सर्वोच्च न्याया-लयमें अपीलकी छूट देनी पड़ेगी। इसके बाद कुछ ही समयमें युद्ध शुरू होनेसे वह सब बन्द हो गया। किन्तु अब फिर वे बातें उठ रही हैं। अतः हम लोगोंको सावधान रहनेकी पूरी आवश्यकता है। हमें उक्त उदाहरणसे साहस बटोरकर काम करना चाहिए। यदि हम अपने कर्त्तव्योंको ठीक-ठीक पूरा करेंगे तो अन्तमें हमारा मन्तव्य पूरा हुए बिना नहीं रहेगा।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ४-३-१९०५

३११. हिन्दू धर्म

[जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९०५]

श्री मो० क० गांधीने पिछले शनिवारकी शामको मेसॉनिक टेम्पल, प्लीन स्ट्रीटमें उपर्युक्त विषयपर जोहानिसबर्ग लॉज ऑफ दि थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्त्वावधानमें चार व्याख्यानोंकी मालामें से पहला व्याख्यान दिया। उपाध्यक्ष मेजर पीकॉक सभापति थे।

विषयका प्रारम्भ करते हुए गांधीजीने कहा कि विभिन्न धार्मिक पद्धतियोंके अध्ययनके प्रति उत्कण्ठा जगानेका जोहानिसबर्ग लॉजका प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय है, क्योंकि इससे लोगोंकी सहा-नुभूतिका विस्तार होता है और अपनेसे भिन्न मत और वर्णवालोंके व्यवहारके मूलमें रहनेवाले उद्देश्यों और विश्वासोंको समझनेकी शक्ति बढ़ती है। वे स्वयं अपने ग्यारह बरसके आफ्रिका-निवासमें अपने देशवासियोंके प्रति फैले हुए द्वेष और अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करते रहे हैं।

आगे बोलते हुए भाषणकर्त्ताने "हिन्दू" शब्दका अर्थ आर्योंकी उस शाखाके सन्दर्भमें समझाया जो सिन्धु नदीके पारके भारतीय अंचलोंमें आकर उसके विशाल भूभागमें बस गई थी। भारतके करोड़ों लोग जो धर्म मानते हैं उसकी व्याख्याके विचारसे वास्तवमें "हिन्दू धर्म" की अपेक्षा "आर्यधर्म" शब्द अधिक अर्थसूचक होता।

हिन्दू जिस धर्मको मानते हैं, आत्मत्याग उसकी अत्यन्त उल्लेखनीय विशेषताओंमें से एक है और यह बात स्वयं उस धर्मके नामसे ही जाहिर है। संसारमें फैले हुए अन्य बड़े धर्मोंकी तरह उसका नामकरण किसी गुरु या पैगम्बरके नामपर नहीं हुआ — यद्यपि उसके अन्तर्गत अनेक महान विभूतियाँ हुई। भाषणकर्ताने आगे चलकर अपनी मान्यताके प्रमाणमें अरकाटके ऐतिहासिक घेरेका उदाहरण दिया कि जब सारी ब्रिटिश फौजके सामने भूखसे मर जानेका खतरा था तब भारतीय सिपाहियोंने अपने हिस्सेके चावलोंकी रसद अंग्रेज सिपाहियोंको दे दी और स्वयं उस माँड़से सन्तोष किया जो अमूमन पसाकर फेंक दिया जाता था। उन्होंने गिरमिटिया मजदूर प्रभुसिंहकी[1] बात भी कही जिसे घेरेके समय जानकी जोखिम उठाकर पेड़के ऊपर छिपे-छिपे घंटी बजाकर बोअरोंकी हर अग्निवर्षासे लेडीस्मिथके निवासियोंको सावधान करनेका सम्मानपूर्ण काम सौंपा गया था। सर जॉर्ज व्हाइटने कई बार इस व्यक्तिका खरीतोंमें उल्लेख किया है।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १७९ और *दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास*, प्रथम खण्ड, अध्याय ९।

हिन्दुओंका अपना दावा यह है कि उनके शास्त्रोंकी निर्माणतिथि पुरातन कालके कुहरेमें आच्छन्न है, क्योंकि ये शास्त्र अपौरुषेय हैं। इसके विरुद्ध कुछ यूरोपीयोंकी मान्यता है कि ये शास्त्र ३,००० या ४,००० वर्षोंसे अधिक पुराने नहीं है। तथापि संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान श्री तिलकने इन ग्रंथोंमें आये हुए ज्योतिषके कतिपय तथ्योंके आधारपर इन्हें कमसे-कम दस हजार वर्ष पुराना गिना है — भले ही वे केवल ईसाके कोई तीन सौ वर्ष पूर्व लिपिबद्ध किये गये हों। वेदोंके — जो इन शास्त्रोंकी संज्ञा है — विभिन्न सूक्त हैं। प्रत्येकका विशिष्ट काल है और वे एक-दूसरेसे बिलकुल स्वतन्त्र हैं। उनमें एक विशेषता यह है कि उनके एक भी प्रणेताका नाम भावी पीढ़ियोंको ज्ञात नहीं हुआ। वेदोंने पश्चिमके कई प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोंके विचारोंको प्रेरणा दी है जिनमें आर्थर शॉपेनहॉर और प्रोफेसर मैक्समूलरके नाम लिये जा सकते हैं।

हिन्दू धर्मावलम्बियोंकी संख्या बीस करोड़से ऊपर होगी। धर्म उनके प्रत्येक आचारमें प्रविष्ट है। आध्यात्मिक पक्षमें हिन्दू धर्मका प्रधानस्वर है — मोक्ष, अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मतत्त्वमें आत्माका अन्तिम रूपसे विलीन हो जाना। धर्मसे सम्बन्धित मुख्य विशेषता है अखिल-देवतावाद, और नीतिके स्तरपर सर्वाधिक द्रष्टव्य गुण है आत्मत्याग तथा उससे निःसृत उसका अनुमेय सहिष्णुता। सामाजिक व्यवहारमें जाति सर्वोपरि थी और आचारमें पशुओंका बलिदान। जब हिन्दू धर्म अपेक्षाकृत अधिक कर्मकाण्डी हो गया तब राजपुत्र गौतम बुद्धने दीर्घकालतक तपस्या करके वस्तुओंके आध्यात्मिक मूल्यको जानकर यह उपदेश करना प्रारम्भ किया कि पशुबलि अनाध्यात्मिक है और प्रेमके परम स्वरूपकी अभिव्यक्ति, जीवित प्राणियोंका नाश करनेकी दिशासे विमुख होकर, उस सहिष्णुताकी भावनाको फैलाना है जो पहलेसे उनके धर्मका सिद्धान्त है। हिन्दू धर्म कभी ईसाई अथवा इस्लाम मतकी तरह प्रचारक धर्म नहीं रहा; किन्तु, सम्राट् अशोकके समयमें देश-देशान्तरोंमें बौद्ध भिक्षु इस नये मतका प्रचार करनेके लिए भेजे गये। हिन्दू धर्मपर बौद्ध मतका कुछ वैसा ही सुधारक प्रभाव पड़ा जैसा कैथोलिक मतपर प्रोटेस्टेंट मतका हुआ था। किन्तु इस सुधारकी आन्तरिक भावना बहुत अलग थी। किसी हिन्दूके मनमें बौद्धोंके प्रति दुर्भावना नहीं थी। यह एक ऐसी बात है जो प्रोटेस्टेंटों और कैथोलिकोंके बारेमें नहीं कही जा सकती। कई बार कहा जाता है कि बादमें भारतमें बौद्ध मतका ह्रास हो गया। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। बौद्ध भिक्षुओंने अत्यधिक लगनसे अपने मतका प्रचार किया और तब हिन्दू पुरोहितोंमें ईर्ष्या जागी। उन्होंने बौद्धोंको देशके सीमान्त भागों — तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मदेश और लंकामें खदेड़ दिया। किन्तु बौद्ध भावना भारतमें रह गई और उसने हिन्दुओं द्वारा मान्य प्रत्येक सिद्धान्तको बल दिया।

इस सम्बन्धमें भाषणकर्त्ताने जैनमतका धर्मके एक बहुत आकर्षक रूपकी तरह संक्षेपमें उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि जैनोंका दावा है कि जैनमत बौद्धमतसे एकदम स्वतन्त्र है; वह उसमें निकला हुआ नहीं है। यह मानते हुए कि उसके पवित्र शास्त्र मानवकृतित्वके परिणाम हैं, वे अन्य मतवादियोंकी तरह यह दावा नहीं करते कि उनका धर्म अपौरुषेय है। शायद सारे धर्मोंमें जैनमत सबसे अधिक तर्कसंगत है और उसकी सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विशेषता जीवमात्रके प्रति उसका हार्दिक सद्भाव है।

भाषणके बाद कुछ श्रोताओंने प्रश्न पूछे और श्री गांधीने उनके उत्तर दिये तथा कार्यवाही आभार-प्रदर्शनके बाद समाप्त हुई जिसे श्री गांधीने मुसकराते हुए इस आधारपर रोकना चाहा कि वे अभीतक कृतज्ञता-प्रदर्शनके पात्र नहीं हैं।

व्याख्यान-मालाका दूसरा भाषण अगले शनिवार ता० ११ की शामको उसी भवनमें होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १०-३-१९०५

३१२. श्री रिचकी विदाईपर भाषण

यह गांधीजीके उस भाषणकी संक्षिप्त रिपोर्ट है जो उन्होंने रिचके[1] विदाई-समारोहमें जोहानिसबर्गमें दिया था।

[मार्च ९, १९०५]

श्री गांधीने कहा कि वे श्री रिचके चरित्रके बारेमें और अपने दफ्तरमें उनके वास्तविक कार्यके बारेमें अपने प्रशंसात्मक भाव प्रकट करना चाहते हैं। उन्होंने श्री रिचके साथ अपने सम्बन्धोंका इतिहास बताया और कहा कि हम दोनों भाई-भाई जैसे प्रेम-भावसे परस्पर आबद्ध रहे हैं। श्री रिचने पिछले साल प्लेगके समय बहुत आत्मत्याग दिखाया था और प्लेगसे पीड़ित भारतीयोंकी सेवा करनेके लिए बहुत ज़िद की थी। उन्होंने उसमें यह खयाल भी नहीं किया कि उनके ऊपर इसका सम्भावित परिणाम क्या होगा[2]। श्री गांधीने इसकी चर्चा विशेष जोर देकर की। उन्होंने अपना खयाल बताते हुए कहा कि श्री रिच जिस कारणसे स्वदेश लौट रहे हैं वह उनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह है और उन्हें इसमें कोई शक नहीं कि जो कुछ घटित हुआ है उसीमें उनका सर्वोत्तम हित होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–३–१९०५

१. एल॰ डब्ल्यू॰ रिचने १९०३ में अपना व्यवसाय छोड़ा और गांधीजीके मुन्शी हो गये। वे थियोसॉफिस्ट थे और उन्होंने गांधीजीको थियोसॉफिकल सोसाइटीसे परिचित कराया। वे सन् १९०५ में कानून पढ़नेके लिए इंग्लैंड गये और वहाँ दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी ओरसे पत्रोंमें बार-बार लेख लिखकर बहुत-सा अमूल्य काम करते रहे।

२. इस घटनाके सम्बन्धमें गांधीजीने बादमें लिखा: "श्री रिचका परिवार बड़ा था। वे खतरेमें कूदनेके लिए तैयार थे; किन्तु उन्हें मैंने रोक दिया। मुझमें उनको खतरेमें डालनेका साहस नहीं था। इसलिए उन्होंने खतरेके क्षेत्रसे बाहरका काम संभाला" (*आत्मकथा*, भाग ४, अध्याय १५)। हम नहीं कह सकते कि *इंडियन ओपिनियनमें* उनके भाषणकी रिपोर्ट गलत है या जब २० वर्ष बाद उन्होंने उक्त बात लिखी तब उनकी स्मृतिने उनका साथ नहीं दिया।

३१३. एक राजनीतिक डाक्टरी रिपोर्ट

पॉचेफस्ट्रूमके स्वास्थ्य-अधिकारीने नगर-परिषदके निर्देशसे उस शहरके भारतीय मुहल्लोंकी हालतपर एक रिपोर्ट तैयार की है। जिन परिस्थितियोंमें वह तैयार की गई है वे जरा विलक्षण है। जैसा कि हमारे पाठकोको मालूम है, पॉचेफस्ट्रूमके लोग भारतीय मुसलमानोंके एक मसजिद बनानेके विचारसे बड़े बौखला उठे है। नगर-परिषदकी बैठकमें, प्रतिकूल कानूनी सलाहके बावजूद, सदस्योंने मसजिद बनानेका विरोध करनेका निश्चय किया, और एक प्रस्ताव पास करके स्वास्थ्य-अधिकारीको निर्देश भी दिया कि वह शहरके उस हिस्सेका निरीक्षण करे और तुरन्त परिषदको रिपोर्ट दे। लोग सोचेंगे कि मसजिद बनाने और आसपासके मकानोकी स्वच्छता-विषयक स्थितिके बीच कोई सम्बन्ध नही है —— मसजिद तो विशुद्ध रूपमें धार्मिक आराधनाकी इमारत है, जो कभी भी रहनेकी जगहके तौरपर काममें नही लाई जाती। तथापि, पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदको तो, मेमने और भेड़ियेवाली कहानीके भेड़ियेके समान, कदम उठानेके लिए किसी आरोपकी जरूरत थी। स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० फ्रीएलने परिषदके वफादार नौकरके तौरपर, अवसरके अनुकूल तत्परता दिखाकार उसके इच्छानुसार एक रिपोर्ट दे दी है। वह रिपोर्ट एक विलक्षण वस्तु है। डॉक्टरने कहा है:

> **कुल मिलाकर अहाते काफी साफ है। मगर यदि कोई बीमारी फैल गई तो उन्हें छूत-रहित करना बहुत कठिन होगा; क्योंकि वे ज्यादातर सब आकार-प्रकारोंकी झोपड़ियोंके भोंड़े समुदाय-मात्र है।**

कुदरतन सवाल उठता है कि, यह अधिकारी इस सारे समय क्या करता रहा? ट्रान्सवालमें प्लेगको आये अब एक बरस हो गया है और अबतक ये अहाते खतरेके उद्गम स्थान नही पाये गये थे। आज वे शहरके लिए अविलम्ब खतरेकी चीजें हो गये है और उनका इलाज तुरन्त होना चाहिए —— प्लेगकी रोकथाम करनेके लिए नही, मसजिद बनाना रोकनेके लिए! अगर यह इतने खुले तौरपर बेईमानीकी बात न होती, तो, निस्सन्देह इसे भोंडापन तो माना ही जाता। डॉक्टरका कथन है कि हरएक अहातेमे स्वच्छताकी सुविधाऍ मौजूद है। परन्तु, चूॅकि इस प्रकारका वक्तव्य नगर-परिषदके प्रयोजनके लिए बहुत हानिकारक है, इसलिए सचमुच उन्हे कहना ही चाहिए था कि ज्यादातर मामलोमे स्नानका पानी सडकोपर फेक दिया जाता है। उसने यह नही बताया कि पॉचेफस्ट्रूमके कितने यूरोपीय लोग भी स्नानका पानी सड़कोंपर फेक देते है, और जहॉतक हमारा खुदका सम्बन्ध है, हमे प्रबल शका है कि जो भारतीय ऐसा करते है उनके लिए और कोई चारा ही नही है। इतनेपर भी डॉक्टर उपनियमोके उल्लंघनका मामला तैयार नही कर सका, इसलिए उसने कहा है:

> **भले ही प्रत्यक्ष रूपमें उपनियमोंका उल्लंघन न होता हो, फिर भी नियमोंनें वायु-क्षेत्रकी जो कमसे-कम मर्यादा है उसके अनुसार ही मकान बनाये गये है, और कमरोंमें हवा और रोशनीका इन्तजाम बहुत खराब है।**

हमे कौतूहल है कि क्या पॉचेफस्ट्रूम-नगरपालिकाके उपनियमोमे रोशनी और हवाका खराब इन्तजाम बरदाश्त किया जाता है? अगर ऐसा है तो नगरपालिका उपनियमोमे संशोधनकी माग क्यो नही करती, ताकि वे स्वास्थ्य और स्वच्छताकी जरूरत पूरी करे? हम तो सचमुच

यह जानते हैं कि पॉचेफस्ट्रूम नगरपालिकाने सरकार द्वारा बनाये हुए स्वास्थ्य-सम्बन्धी उप-नियमोंको स्वीकार किया है और वे नियम सख्त और अत्यधिक व्यय-साध्य हैं। डॉक्टरने रिपोर्टके स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिस्सेको यह कहकर समाप्त किया है कि, कुल मिलाकर उनका रहन-सहन आजकलके स्तरके अनुकूल नहीं है और शहरके बीचोंबीच बने हुए ये मकान और इनके निवासी लोक-स्वास्थ्यके लिए सतत खतरेके बायस हैं। रिपोर्टमें, जिसमें इतनी स्पष्टताके साथ परस्पर-विरोधी बातें कही गई हैं, हमें ऐसी कोई बात दिखलाई नहीं पड़ती, जिससे डॉक्टरका दिया हुआ मत जरूरी हो। और, मानो, डॉक्टरकी दी हुई स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट काफी नहीं थी, इसलिए वह आगे बढ़कर कानूनी सलाह देता है और सुझाता है कि सरकारसे कहना चाहिए कि सब एशियाइयों और बाकायदा परवाना-प्राप्त व्यापारियोंके अलावा दूसरे लोगोंको *बाजारोंमें* रहनेके लिए बाध्य किया जाये।

यद्यपि हमारे मतसे यह रिपोर्ट अपने-आपमें ही निन्दित है, जिन मकानोंपर डॉ० फ्रीएलने अपना निर्णय दिया है उनपर एक निष्पक्ष सम्मति दे देना कदाचित् उपयोगी होगा। सद्भाग्यसे हमारे पास जिला-सर्जन डॉ० टॉमस जे० डिक्सनकी रिपोर्ट मौजूद है, जो उन्होंने पॉचेफस्ट्रूमके भारतीयोंके अनुरोधसे तैयार की है। वे कहते हैं:

> मुझे यह कहते खुशी होती है कि विभिन्न अहातोंको देखनेपर, मेरे मनपर हर जगहका बहुत अच्छा असर पड़ा। मैंने अन्दरसे और बाहरसे भी देखा है। कुल बातोंका खयाल करते हुए, पीछेके आँगन बिलकुल साफ और स्वास्थ्यकर हैं। मैंने कूड़ेके ढेर लगे नहीं देखे। मुझे मालूम हुआ कि सारा कूड़ा रोजाना ठेकेदार ले जाया करता है। शहरके दूसरे हिस्सोंके समान यहाँ बालटी-पद्धति काममें लायी जाती है। इसकी भी कमाईका प्रबन्ध है, जो सफाई विभाग द्वारा किया जाता है। मैंने जो-कुछ देखा उसमें मैं कोई दोष नहीं बता सकता। जहाँतक सोनेके स्थानकी बात है, मुझे कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। प्रत्येक व्यापार-स्थानके पीछे, उससे अलग, मैंने एक प्रकारका भोजन-गृह-सा देखा, जिसमें ५ से ८ आदमियों तकके बैठनेका स्थान है और हरएकमें उसका रसोईघर है। ये सब भी साफ-सुथरे रखे जाते हैं।

डॉक्टरके जाँचे हुए प्रत्येक घरकी विस्तृत रिपोर्ट हमारे सामने मौजूद है। यह एक निष्पक्ष डाक्टरी रिपोर्ट है, जो एक ऐसे सज्जनकी दी हुई है, जिसे किसी मालिकको खुश नहीं करना है। उसने देखा है कि भारतीय मकान सफाईकी दृष्टिसे आपत्ति करने योग्य नहीं हैं।

हम देखते हैं कि डॉ० फ्रीएलकी रिपोर्ट नगर-परिषदने सरकारके पास भेज दी और हम राह देख रहे हैं कि सरकार उसपर क्या कहती है। वह रिपोर्ट प्रत्यक्षतः एक ऐसे व्यक्तिके उद्गार हैं, जिसका रुझान उसकी अन्तरात्माके प्रतिकूल है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–३–१९०५

३१४. पढ़े-लिखे भारतीयोंका स्वास्थ्य

जब हम अन्य देशोंके शिक्षित पुरुषोंसे भारतके इसी वर्गकी तुलना करते हैं तो निराशा होती है। इंग्लैडमें हालमें नये उदारदली मन्त्रिमण्डलके निर्माणकी योजना चल रही है। इस मन्त्रिमण्डलके मुखियोंकी आयुके अंक ऐसे हैं जिनसे अमूल्य जानकारी मिलती है। श्री ब्राइस और श्री जॉर्ज मॉर्लेकी आयु ६७ वर्षकी, लॉर्ड ब्रेसी और सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैनकी ६९ की, अर्ल स्पेंसरकी ७० की, ड्यूक ऑफ डेवनशायरकी ७२ की और सर हेनरी फाउलरकी ७५ वर्षकी है। सर चार्ल्स डिल्ककी, जिनके नये मन्त्रिमण्डलमें शामिल होनेकी सम्भावना कम है, आयु भी ६० वर्षकी और लॉर्ड रोजबरीकी ५७ वर्षकी है। नये मन्त्रिमण्डलमें ऊपर बताये व्यक्तियोंमें से थोड़े-बहुत आयेंगे ही।

अब भारतके किसी भी क्षेत्रके पुरुषोंकी शारीरिक स्थितिकी ओर नजर डालें तो पकी आयुके, अक्षुण्ण आरोग्य और जोशके व्यक्ति क्वचित् ही दिखाई देंगे। इसका कारण खोजनेपर भारतके जलवायुका दोष बताया जायेगा; किन्तु यह बहुत कम अंशमें सत्य माना जा सकता है। हमारे पुराने जमानेके लोग पूर्ण रूपसे स्वस्थ और उत्साही रहकर लम्बा आयुष्य भोगते थे। वे लोग डील-डौलमें भी ऐसे थे कि उनकी तुलनामें आजके लोग बिलकुल दुर्बल दिखाई देते हैं। पहले भारतका जलवायु ऐसा बलप्रद था तो अब शारीरिक गठनके लिए प्रतिकूल हो, ऐसा नहीं हो सकता। सही कारण तो यही है कि हम लोग तन्दुरुस्तीके नियमोंके प्रति लापरवाह रहते हैं। शालाओं और विद्यालयोंमें जो लापरवाही शुरू होती है वह बड़ी आयु प्राप्त होनेपर भी ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। अपने काममें, पैसे कमानेमें और जीवनको उन्नत बनानेमें हम लोग व्यस्त रहते हैं। हमें ऐसे मौकोंपर होश नहीं रहता कि अत्यधिक कार्य-बोझ उठानेसे शरीरका जीर्णशीर्ण होना स्वाभाविक है। प्रायः सभी लिखे-पढ़े भारतीयोंमें नियमित शारीरिक व्यायामकी आदत नहीं होती। मनको विश्रान्ति देनेकी आवश्यकता है इस बातसे वे बेखबर दीखते हैं। कुछ जगहोंमें क्लब और मण्डल देखनेमें आते हैं, परन्तु उनमें भाग लेनेवाले बहुत थोड़े होते हैं। कुछ लोग, जिन्हें घरमें कुछ काम नहीं करना होता, इस प्रकारके क्लबोंमें बातचीत या बिलियर्डकी एक दो बाजी खेलते हुए अधिक हलके मनोरंजनको ज्यादा पसन्द करते हैं। फिर तन्दुरुस्ती और सुखके महत्त्वका मूल्यांकन करनेवाले बुद्धिशाली यूरोपीयोंके समान उनके यहाँ गोष्ठियाँ, नाचके समारोह अथवा नाटक या ऐसे कोई दूसरे खेल आदि होते नहीं हैं। उनको अलग-अलग रोजगारोंकी ओर ध्यान देना पड़ता है, इसका हिसाब न लगायें तो उनकी जिन्दगी बिलकुल ही शिथिल और एक ही ढर्रेकी कही जा सकती है। ऐसी कुटेव सारी प्रजाको तबाह करनेवाली है; फिर भी यह अफसोसकी बात है कि इस कुटेवके भयानक परिणामको कोई देख नहीं पाता। खास समयतक उनको कुछ हानि प्रतीत नहीं होती, इसलिए वे अपनेको रोग-रहित मानते हैं। वे काम कर सकते हैं, खाना हजम कर सकते हैं, और उन्हें कोई कष्ट अनुभव नहीं होता इसलिए वे अपनेको तन्दुरुस्त समझते हैं। अकस्मात् उनके इस सुखकी अनुभूति बदल जाती है। वे किसी गम्भीर रोगमें घिर जाते हैं और निराश हो जाते हैं। जो हमसे पहले इस कुटेवको शिकार हुए हैं, उनके उदाहरणसे हमें सचेत होना चाहिए। किन्तु इन उदाहरणोंसे लाभ उठानेमें हम लोग सुस्त और लापरवाह हैं। इस तौर-तरीकेके कारण शिक्षासे सम्मानित भारतीयोंमें हमें पकी उम्रके लोग दिखलाई नहीं पड़ते। यह

दोष एक ही व्यक्ति अथवा एक ही परिवारमें नहीं है; बल्कि इससे समस्त भारतीय प्रजा दूषित है। इस प्रकार एक भारतीय युवकको असमय मुरझानेसे बचानेका सार्वजनिक प्रयास करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–३–१९०५

३१५. राक्षसोंकी लड़ाई

जापान और रूस

रणक्षेत्रसे जो खबरें आ रही हैं उनसे पता चलता है कि मुकदनके पास जापान और रूसके बीच आजकल जो लड़ाई चल रही है वह प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहासकी सबसे बड़ी लड़ाई गिनी जायेगी। मनको स्तब्ध करनेवाले समाचार अखबारोंमें बार-बार निकलते हैं। इससे जन-समुदायको इस प्रकारकी खबरोंके प्रति अरुचि पैदा होना स्वाभाविक है। इस वजहसे यदि इस समय मुकदनमें चालू लड़ाई बड़ीसे-बड़ी लड़ाई कही जाये तो सम्भवतः वह अत्युक्ति समझी जायेगी। फिर भी हमें यह बता देना चाहिए कि इन दिनों मुकदनकी लड़ाईमें, दोनों पक्षोंके लाखों मनुष्योंका संहार हो रहा है। इस जगह जापानने पूर्व, पश्चिम और दक्षिणकी ओरसे हमला किया है, अर्थात् रूसी सेनाके व्यूहपर हमला सामनेसे न करके पक्षोंसे किया है। इन पक्षोंके भंग हो जानेसे बीचका मोर्चा भी भंग हो जानेकी संभावना है।

इन सारी प्रवृत्तियोंके सूत्र-संचालक जापानके वीर पुरुष मार्क्विस ओयामा हैं। रणक्षेत्रका विस्तार कोई सौ मील है, और उसमें दस लाख मनुष्य उतरे हैं। संहारके हथियारोंमें छोटीसे-छोटी रायफलोंसे लेकर बड़ीसे-बड़ी तोपेंतक काममें लाई जा रही हैं। मनुष्योंका संहार त्वरासे किस प्रकार किया जाये, इस सम्बन्धमें मानव-बुद्धि जो कुछ कर सकती है वह करनेमें जरा भी कसर नहीं छोड़ी गई है। हिम्मत और सहनशक्तिको कसनेमें कसर नहीं रहती। एक लाख मनुष्योंका संहार हो चुका है। अगर इस हमलेमें जापान रूसको हरा सका तो इस लड़ाईका अन्त सन्निकट है, ऐसा अनुमान करनेका प्रबल कारण है। रूसके हाथमें अब समुद्री ताकत नहीं है, क्योंकि पोर्टआर्थर निकल चुका है[1]। और खुश्कीके रास्ते मंचूरियामें अधिक मनुष्य भेजे जानेकी सम्भावना नहीं है। रूसमें लड़ाईके प्रति घृणा पैदा हो गई है। इसलिए जो फौज मंचूरियामें इस समय मौजूद है, वह हार जाये तो जापानको अधिक बलिदान देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–३–१९०५

१. अगस्त १०, १९०४ को।

३१६. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च ११, १९०५

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन

प्रिय श्री दादाभाई,

यह पत्र आपको जोहानिसबर्गके श्री एल० डब्ल्यू० रिचका परिचय दे सकेगा। श्री रिच और मैं कई बरसोंसे एक दूसरेको अच्छी तरह जानते हैं। श्री रिचके भारतीयोंके पक्षमें खूब निश्चित विचार हैं और कई बातोंके साथ भारतीय हितकी ज्यादा ठीक सेवा कर सकनेके खयालसे वे बैरिस्टरी पढ़ने इंग्लैंड रवाना हो रहे हैं।

मैं बड़ी कृपा मानूँगा यदि आप अपनी सहायताका लाभ उन्हें दे सकें। श्री रिचने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्नका अध्ययन किया है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६६) से।

३१७. हिन्दू धर्म

[जोहानिसबर्ग
मार्च ११, १९०५]

श्री गांधीने शनिवारकी शामको जोहानिसबर्ग थियोसॉफिकल लॉजके तत्त्वावधानमें मेसॉनिक टेम्पलमें हिन्दू धर्मपर दूसरा भाषण दिया। भवन खचाखच भरा था।

पिछले भाषणका सारांश देनेके बाद वक्ताने कहा कि दूसरे भाषणमें हिन्दू धर्मके उस कालका निरूपण किया जायेगा, जिसे उसका अद्वितीय युग कह सकते हैं। बुद्धके उपदेशोंके प्रभावसे जो आन्तरिक सुधार हुए उनके बाद हिन्दू धर्म मूर्तिपूजाका अत्यधिक अभ्यस्त हो गया। वक्ताने बातको निर्दोष दिखानेके लिए कई स्पष्टीकरण किये, किन्तु वे इस तथ्यको अस्वीकार नहीं कर सके कि हिन्दू दृश्य रूपमें लकड़ी-पत्थर जैसी जड़ चीजें पूजते हैं। हिन्दू दार्शनिक ईश्वरको सरलतासे शुद्धतम आत्माके रूपमें जानते और पूजते थे तथा अद्वैतवादके आधारपर उच्चतम कल्पनातक पहुँच जाते थे। इसी भाँति अज्ञानी जन-साधारण इससे निम्नतम अवस्थामें गिर जाते थे। यदि बाल-बुद्धि ईश्वरका अनुभव निर्गुण आत्माके रूपमें नहीं कर पाती

तो उसके विविध सगुण रूपोंके माध्यमसे उसको पूजनेमें उसे कोई कठिनाई नहीं होती। अनेक उसे सूर्य, चन्द्र और तारोंके माध्यमसे पूजते हैं और अनेक उसे लकड़ी-पत्थरके रूपमें भी पूजते हैं। दर्शन-प्रधान हिन्दू धर्मको सहिष्णु-भावनाके कारण पूजाका यह प्रकार अंगीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। इस प्रकार हिन्दू-जीवनका चक्र आनन्दसे चलता रहा। किन्तु तभी अरवके मरुस्थलमें एक ऐसी शक्ति उदित हुई जो विचारोंमें क्रान्ति उत्पन्न किये और जीवनपर अपनी स्थायी छाप छोड़े विना रह नहीं सकती थी। मुहम्मद वचपनसे ही अपने आसपासके लोगोंको मूर्तिपूजा, विलासपूर्ण असंयम और शरावखोरीमें डूवा देखकर मन ही मन क्रोधसे सुलगते रहते थे। उन्होंने यहूदी धर्मको धराशायी और ईसाइयतको पतित देखा। उन्होंने मूसा और ईसाकी ही तरह अनुभव किया कि उनके पास एक दिव्य सन्देश है। उन्होंने संसारको अपना सन्देश देनेका निश्चय किया और पहले अपने कुटुम्वी-जनोंको उसका पात्र चुना। जो लोग इस्लामको तलवारका धर्म मानते हैं वक्ताने अपनेको उनसे अलग वताया और कहा कि वाशिंगटन इरविनने इस्लाम धर्मपर अपने ग्रंथमें प्रश्न उठाया है, "अपनी पहली अवस्थामें इस्लामके पास तलवार चलानेवाले लोग कहाँ थे?" उनके विचारमें इस्लामकी सफलताका कारण अधिकतर उसकी सादगी और मनुष्यकी कमजोरियोंकी स्वीकृति है। मुहम्मदने सिखाया कि ईश्वर एक और केवल एक है, और वे उसके पैगम्वर हैं। उन्होंने यह भी सिखाया कि आत्मोत्थानकारी प्रभावके रूपमें प्रार्थना नितान्त आवश्यक है। जो कर सकें ऐसे अपने समस्त अनुयायियोंको उन्होंने, वर्षमें भले ही एक वार, इकट्ठा होनेके लिए मक्काकी यात्राका विधान किया। और यह मानकर कि लोग धन-संग्रह करेंगे, उन्होंने अपने अनुयायियोंसे अनुरोध किया कि वे उसका एक निश्चित अंश दान-कार्यके लिए धर्मवुद्धिसे अलग सुरक्षित कर दें। वहरहाल इस्लामकी मुख्य ध्वनि उसकी समताकी भावना थी। जो उसके दायरेमें आये उसने उन सवको ऐसे भावसे समान व्यवहार प्रदान किया जैसे भावसे संसारके किसी और धर्मने नहीं किया था। इसलिए जब ईसाके ९०० वर्ष वाद उसके अनुयाइयोंने भारतपर चढ़ाई की, तव हिन्दू धर्म किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसे ऐसा लगा कि इस्लामको सफलता मिलकर रहेगी। जातिभेदसे त्रस्त जनतापर समताके सिद्धान्तका प्रभाव पड़े विना नहीं रह सकता था। इस आन्तरिक शक्तिके साथ तलवारकी ताकत भी जोड़ दी गई। वे कट्टर हमलावर, जो समय-समयपर भारतमें आ घुसते थे, यदि समझा-वुझाकर सम्भव न होता तो तलवारके वलपर धर्म-परिवर्तन करनेमें हिचकते नहीं थे। मूर्तियोंपर मूर्तियाँ तोड़ते हुए उन्होंने लगभग सारा देश रौंद डाला और यद्यपि राजपूती शौर्य हिन्दुत्वकी ओर था, किन्तु वह इस्लामके अचानक हमलेसे उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ रहा। प्रारम्भमें हिन्दू धर्मकी भावनाके अनुरूप दोनों धर्मोंके समन्वयका प्रयत्न किया गया। वाराणसीमें लगभग १२वीं शताब्दीमें कवीर नामके एक सन्त हुए जिन्होंने हिन्दूधर्मके प्रधान सिद्धान्तोंको अक्षुण्ण रखकर और थोड़ा-वहुत इस्लामसे लेकर दोनों धर्मोंके एकीकरणकी चेष्टा की, किन्तु उनका वह प्रयत्न वहुत सफल नहीं हुआ। जहाँसे होकर मुसलमान विजेता भारतमें वड़ी संख्यामें घुसे और जिसने उनकी पहली अनीको झेला उस पंजावने सिख धर्मके संस्थापक गुरु नानकको जन्म दिया। उन्होंने अपने धर्मके सिद्धान्त कवीरसे लिए और उनमें लड़ाकू हिन्दू-तत्त्वको मिलाया। उन्होंने मुस्लिम भावनाओंका आदर करते हुए समझौतेके लिए हाथ वढ़ाया; किन्तु यदि वह स्वीकार नहीं किया गया तो वे हिन्दू धर्मकी इस्लामके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए भी उतने ही तैयार थे। और इस तरह सिख धर्म इस्लामका सीधा परिणाम था। यह सर्वविदित है कि सिख कैसा वहादुर होता है और उसने ब्रिटिश सत्ताकी क्या सेवा की है। हिन्दू धर्मपर इस्लामका यह प्रभाव हुआ कि उसने सिख धर्मको जन्म दिया और धर्मके एक प्रधान गुण अर्थात् सहि-

ष्णुताको उसके सच्चे और पूर्ण रूपमे व्यक्त किया। जिन दिनों कोई राजनीतिक प्रभाव काम नही करते होते थे तब बिना कठिनाईके हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी भावनाका आदर करते हुए और बिना किसी विघ्न-बाधाके अपना-अपना धर्म पालते हुए पूर्ण शान्ति और सद्भावनाके साथ-साथ रहते थे। हिन्दू धर्मने ही इस्लामको अकबर दिया जिसने अचूक अन्तर्दृष्टिसे सहिष्णुताकी भावनाको पहचाना और भारतपर शासन करनेमें उसे स्वय अपनाया। इसके सिवाय हिन्दू धर्मने अपना लचीलापन इस तरह भी जाहिर किया कि भयानक सघर्षके बाद भी विशिष्ट वर्गो और साधारण जनताका बहुत बडा भाग एकदम अप्रभावित रह गया और हिन्दू धर्म सघर्पमे से ऐसा तरोताजा होकर निकला जैसे हम शीतल जलमे से स्नान करनेके बाद तेजस्वी होकर निकलते है। इसमे सन्देह नही कि पहला धक्का जोरका लगा था; किन्तु जल्दी ही हिन्दू धर्मने दृढतासे अपनेको फिर स्थापित कर लिया। वक्ताने फकीरों और योगियोंका भी उल्लेख किया और कहा कि यद्यपि फकीर इस्लामको और योगी हिन्दू धर्मको मानते थे, तथापि उनकी जीवन-पद्धति लगभग एक-सी होती थी।

भाषणके अन्तमे अनेक दिलचस्प सवाल पूछे गये और सदाकी तरह सभा मधन्यवाद समाप्त हुई।

भाषण-मालाका तीसरा व्याख्यान[1] अगले शनिवारको ८ बजे मेसॉनिक टेम्पलमे होगा। व्याख्यानमे निम्नलिखित विषयोंपर प्रकाश डाला जायेगा भारतमे ईसाई मतका उदय, हिन्दुओंपर प्रभावकी दृष्टिसे इस्लाम और ईसाई मतकी तुलना, हिन्दू धर्मपर ईसाई मतका असर, ईसाई मत और आधुनिक अथवा पाश्चात्य सभ्यताका मिश्रण, भारतमे ईसाई मतकी प्रत्यक्ष असफलता और अप्रत्यक्ष सफलता; राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द, थियॉसफी, ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज, हिन्दू धर्मकी वर्तमान स्थिति, उसकी दीर्घायु और जबर्दस्त जीवन-शक्तिका रहस्य।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १८-३-१९०५

१. *स्टारमें* तीसरे और चौथे भाषणका विवरण प्रकाशित भी हुआ हो तो उपलब्ध नहीं है। किन्तु इन भाषणोंका सारांश बादमें *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुआ था। देखिये, "धर्मपर व्याख्यान", १५-४-१९०५।

३१८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च १४, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

मेरा संघ आपका ध्यान *पॉचेफस्ट्रूम बजटकी* संलग्न कतरनों[1] की ओर सादर आकर्षित करता है। उनमें इसी ४ तारीखको शनिवारके दिन पॉचेफस्ट्रूमके मार्केट स्क्वेयरमें भारतीय वस्तुभण्डारोंके सामने किये गये एशियाई-विरोधी प्रदर्शनका विवरण छपा है।

पॉचेफस्ट्रूमवासी ब्रिटिश भारतीयोंने मेरे संघको सूचना दी है कि प्रदर्शनकी कार्रवाई हिंसापूर्ण थी और उसमें ऐसे भाषण दिये गये जो लोगोंकी निकृष्टतम भावनाओंको उत्तेजित करें। भाषण समाप्त होनेपर शरारतके लिए आमादा लोग भारतीय वस्तु-भण्डारोंकी खिड़कियोंपर पत्थर फेंकने लगे। यदि पुलिस इस संकट-कालके लिए इस प्रकार सक्षम रूपसे तैयार न होती तो हिंसा कितनी बढ़ जाती, यह कहना कठिन है। इसीलिए हानि खिड़कियोंके काँच तोड़े जाने तक ही सीमित रही। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रदर्शनकारियोंका नेतृत्व नगरके कुछ प्रमुख व्यक्ति कर रहे थे, जैसे पॉचेफस्ट्रूम व्यापार-संघके अध्यक्ष, नगर-परिषदके एक प्रमुख सदस्य और सरकारी तथा अर्धसरकारी पदोंपर नियुक्त अन्य लोग। नगरमें एक मसजिद बनानेका प्रस्ताव है। यह बात भारतीय समाजके विरुद्ध जनताके पूर्वग्रहको उत्तेजित करनेके लिए उपयोगमें लाई गई। लेकिन मेरे संघको सूचित किया गया है कि प्रस्तावित मसजिदका स्थान —

(क) नगरके केन्द्रमें नहीं है;

(ख) मुख्य आवागमनके मार्गपर नहीं है;

(ग) नये होटलसे, जिसपर, कहा जाता है कि, ३०,००० पौंड खर्च हुए हैं, कुछ दूरीपर है; उनसे संलग्न नहीं, जैसा कि बताया जाता है।

(घ) वह स्थान एक पीछेकी गलीमें है और प्रस्तावित इमारतें पासकी किसी भी सड़कसे दिखाई नहीं देंगी।

(ङ) उस स्थानके बिलकुल आसपासकी इमारतें केवल लकड़ी और लोहेकी बनी हैं और प्रस्तावित मसजिदकी इमारतोंसे उनकी बनावट बहुत घटिया दर्जेकी रहेगी।

इसलिए मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि पॉचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीय लोग सरकारसे यह घोषणा करानेके अधिकारी हैं कि पॉचेफस्ट्रूममें एशियाई-विरोधी आन्दोलन जिस ढंगसे चलाया जा रहा है वह उसको नामंजूर करती है; और साथ ही वे सरकारसे यह आश्वासन पानेके हक-

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।

दार भी हैं कि उनके प्राणों और उनकी सम्पत्तिकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। शायद सरकारको मालूम होगा कि पाँचेफस्ट्रूम पहरेदार संघ तथा उपनिवेशकी इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ, जैसा कि उन्होंने कहा है, सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे आन्दोलन चलाती हैं। उनका कथन है कि सरकार उनकी माँगें स्वीकार करनेके लिए तैयार है और उनकी रायमें वह इसी उद्देश्यको लेकर इंग्लैंडकी सरकारसे, इस समय, बातचीत करनेमें संलग्न है।

मेरा संघ यह खयाल भी नहीं कर सकता कि सरकारका ऐसा कोई उद्देश्य हो सकता है। किन्तु संघके नम्र विचारमें सरकारकी स्पष्ट विपरीत घोषणाके अभावका गलत अर्थ लगाया जा सकता है और उससे आन्दोलनमें हिंसा तीव्र हो सकती है।

इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि सरकार कृपा करके ऐसे उपाय करेगी जो पाँचेफस्ट्रूम तथा उपनिवेशके अन्य नगरोंके शान्तिप्रिय ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए आवश्यक हों।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज: एल० जी० ९३, विविध फाइलें ९७/३, एशियाटिक्स १९०२/१९०७।

३१९. नेटाल नगर-निगम विधेयक

नेटाल सरकारका २१ फरवरी, १९०५ का *गज़ट* हमारे सामने है। इसमें "नगर-निगमोंसे सम्बन्धित कानूनको संशोधित और संघटित करनेके लिए एक विधेयक" है। हम एक अन्य स्तम्भमें उसकी वे धाराएँ उद्धृत कर रहे हैं, जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नपर पड़ता है। यह सरकारका इस विधेयकको पेश करने और कानूनके रूपमें पारित करनेका दूसरा प्रयत्न होगा। उसमें "रंगदार व्यक्ति" और "असभ्य प्रजातियों" की जो परिभाषाएँ दी गई हैं वे बहुत असन्तोषजनक हैं। उनसे "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषासे पैदा हुई शरारत विधेयकमें दाखिल हो जायेगी। विधेयकके अनुसार, उक्त संज्ञामें, दूसरोंके साथ-साथ "प्रत्येक हाटेंटाट, कुली, बुशमैन या लशकार" सम्मिलित हैं। अब, स्वयं "कुली" और "लशकर" शब्दोंकी व्याख्या करनेकी जरूरत है। इनकी व्याख्या करनेका काम महान्यायवादीसे लेकर काफिर पुलिस-सिपाहीतक कानूनके सभी प्रशासकोंपर छोड़ देना बहुत खतरनाक है। उदाहरणके लिए काफिर पुलिस-सिपाही कैसे जानेगा कि कौन "कुली" है और कौन "लशकर"? फिर, जब यह सभी जानते हैं कि "कुली" शब्द कितना घृणास्पद बन गया है, तब उसे विधेयकमें रखा ही क्यों जाये?

"असभ्य प्रजातियाँ" शब्दोंकी परिभाषा सम्बन्धित भारतीयोंके लिए अपमानजनक है और उनके वंशजोंके लिए तो और भी अपमानजनक है। सभ्यताकी एक अचूक कसौटी यह है कि जो आदमी सभ्य होनेका दावा करता है वह बुद्धिपूर्वक श्रम करनेवाला हो, और वह श्रमका गौरव समझे और उसका काम ऐसा हो कि उससे उसके समाजके हितोंकी वृद्धि हो। इस कसौटीपर तुच्छसे-तुच्छ गिरमिटिया भारतीयको भी कसें तो वह खरा उतरेगा। फिर उसे असभ्य प्रजातिका

सदस्य क्यों कहा जाये? और यदि भारतीय मजदूरको असभ्य कहना ठीक भी हो — क्योंकि उसने शर्तोंमें बँधकर उपनिवेशकी सेवा करना मंजूर किया है — तो भी उसके वंशजोंपर यह अभिशाप क्यों लादा जाये? ऊँची श्रेणीके जिस भारतीय विद्यालयकी गवर्नर और भूतपूर्व प्रशासकने सुखद और सुन्दर शब्दोंमें प्रशंसा की है, उसमें गिरमिटिया भारतीयोंके बहुत-से बच्चे हैं। ये बच्चे किसी भी समाजका मान बढ़ा सकते हैं। ये होशियार हैं और उदार शिक्षा पाते हैं। तब क्या इनपर "असभ्य प्रजातियोंका" बिल्ला लगाना उचित है? ऐसे भारतीयों तथा अन्य भारतीयोंके बीच अन्तर करना अकारण ही होगा, क्योंकि, हम विधेयकके निर्माताओंको विश्वास दिलाते हैं कि अनेक गिरमिटिया भारतीय बिलकुल उतने ही अच्छे हैं जितने कि अपना खर्च स्वयं उठाकर स्वतन्त्र लोगोंकी हैसियतसे इस उपनिवेशमें आये हुए कुछ दूसरे भारतीय। सच तो यह है कि अगर गिरमिटिया भारतीय किसी चीजके पात्र हैं तो इसके कि उनके साथ स्वतन्त्र भारतीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा बरताव किया जाये, क्योंकि वे इस उपनिवेशमें आनेके लिए आमन्त्रित और प्रेरित किये गये हैं और उन्होंने इसको समृद्धिशाली बनानेमें कम योग नहीं दिया है।

अब हम विधेयककी उपधारा २२ पर विचार करेंगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्ब और स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनने राजनीतिक मताधिकार विधेयक पेश करते समय विधानसभामें उसकी सिफारिश इस आधारपर की थी कि उसका प्रभाव नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर नहीं पड़ता है। उनकी इस घोषणाके प्रतिकूल हम देखते हैं कि संसदीय मताधिकार अधिनियम (पार्लमेंटरी फ्रैंचाइज़ ऐक्ट) की व्यवस्थाएँ नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर लागू की जा रही हैं और यदि यह विधेयक ज्यों-का-त्यों कानूनके रूपमें स्वीकृत हो जाता है तो ऐसा कोई आदमी नगर-पालिका-सम्बन्धी मताधिकार प्राप्त न कर सकेगा, जो कि १८९६ के अधिनियम ८ के अन्तर्गत संसदीय मताधिकारके अयोग्य ठहरा दिया गया हो। अर्थात् जिन प्रजातियोंने अबतक प्रातिनिधिक-प्रणालीका उपभोग नहीं किया, उनके सदस्य नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंमें मतदाता होनेके अयोग्य ठहरा दिये जायेंगे, भले ही उन्होंने अपने देशमें प्रातिनिधिक नगरपालिका-सम्बन्धी प्रणालीका उपभोग क्यों न किया हो। यह सभी जानते हैं कि भारतके सभी मुख्य शहरोंमें निर्वाचित नगर-पालिकाएँ मौजूद हैं और ऐसी नगरपालिकाएँ सैकड़ोंकी संख्यामें हैं और हजारों मतदाता उनके सदस्योंका निर्वाचन करते हैं। उन लोगोंको अयोग्य क्यों ठहराया जाये? भारतीय समाजने नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंकी बाबत कितने भारी आत्म-संयमसे काम लिया है, इसका विधेयक-के निर्माताओंने कोई खयाल नहीं किया। उन्होंने नागरिकोंकी नामावलीमें अपने नाम दर्ज करानेका लोभ संवरण किया है, और उन्हें उसका पुरस्कार दिया गया है इस विचाराधीन उपधाराके रूपमें! हम इस उपधाराको जान-बूझकर किया जानेवाला अपमान समझते हैं और हमें आशा है कि भारतीय समाजके ऐसे अपमानको विधानसभाके सदस्य अपना समर्थन प्रदान न करेंगे।

उपधारा १८२ द्वारा नगरपालिकाओंको अधिकार दिया जायेगा कि वे रंगदार लोगों द्वारा खरंजों, पैदल-पटरियों और रिक्शा-गाड़ियोंके उपयोगका नियमन करनेके लिए उपनियम बना सकें। यहाँ "कुली" तथा "लश्कर" शब्दोंकी व्याख्या करना आवश्यक है और यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि अगर वर्तमान व्याख्या कायम रखी गई तो ये उपनियम अत्याचारके कैसे भयानक साधन सिद्ध हो सकते हैं। स्पष्ट है कि यह उपधारा ट्रान्सवाल सरकारकी ढुलमुल नीतिका और उन आन्दोलनका नतीजा है जो "रंगदार" लोगों द्वारा सड़ककी पटरियोंके उपयोगके बारेमें ट्रान्सवालमें अब भी चलाया जा रहा है।

उपधारा २०० में यह व्यवस्था है कि शहरमें रहने और काम करनेवाले असभ्य प्रजातियोंके सब लोग अपना पंजीयन (रजिस्टरी) करायें। उन काफिरोंके पंजीयन करानेकी बात तो समझमें आ सकती है जो काम नहीं करते; परन्तु जो गिरमिटिया भारतीय शर्तोंसे मुक्त हो चुके हैं उनका और उनके वंशजोंका, जिनके बारेमें सामान्य शिकायत यह है कि वे बहुत ज्यादा काम करते हैं, पंजीयन कराना जरूरी क्यों हो? क्या गिरमिटिया भारतीयके क्लार्ककी नौकरी खोजनेवाले लड़केका पंजीयन किया जायेगा?

विधेयकमें और भी आपत्तिजनक उपधाराएँ हैं; मगर हम फिलहाल इस संक्षिप्त मीमांसामें उनपर ध्यान नही देते। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको कुचलनेका जो प्रयत्न किया जा रहा है यह विधेयक उसके बहुत-से प्रमाणोंमें से केवल एक है, क्योंकि इस समय जो आन्दोलन चल रहा है वह यद्यपि सारेका-सारा नाममात्रके लिए "रंगदार" लोगोंके खिलाफ है, तथापि उसके वास्तविक लक्ष्य ब्रिटिश भारतीय हैं। जो नीति बरती जा रही है, वही है जिसका आरोप युद्धके पूर्व किम्बरलेके अपने प्रसिद्ध भाषणमें लॉर्ड मिलनरने डचेतर गोरोंके सिलसिलेमें बोअरोंपर किया था। लॉर्ड महोदयने उसे छेड़खानीकी नीति कहा था। फिर भी डचेतर गोरे अपने ऊपर लादी जानेवाली राजनीतिक अयोग्यताओंके बावजूद बेहद खुशहाल थे और भारतीयोंकी अपेक्षा उन्हें बरदाश्त करनेमें ज्यादा समर्थ भी थे। अगर डचेतर गोरोंके प्रति व्यवहार छेड़खानीकी नीति कहा जाये तो दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति जो नीति बरती जा रही है उसे हम क्या कहेंगे? जैसा कि नेटालकी विधानसभाके एक सदस्यने एक बार कहा था, औपनिवेशिक आदर्श ऐसा होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके जीवनको, जितना हो सके, कष्टमय बना दिया जाये, जिससे उनका धैर्य समाप्त हो जाये और वे इस देशको छोड़कर चले जायें।

इस अग्नि-परीक्षामें अब ब्रिटिश भारतीयोंका कर्त्तव्य क्या है? इसका उत्तर सीधा-सादा है। धैर्य भारतीयोंकी विशेषता है और यह तथ्य उन्हें किसी भी कारणसे नही भूलना चाहिए। यह उनकी मूल्यवान विरासत है और यदि वे इसके साथ केवल उद्योगकी एक बड़ी मात्रा और जोड दें और सम्राट्की प्रजाकी हैसियतसे अपने अधिकारोंके अपहरणका एक होकर निरन्तर विरोध करते रहें तो वे फिर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं — भले ही उनके सामने कठिनाइयाँ क्यों न हों। उनमें अविचल पैगम्बरकी श्रद्धा होनी चाहिए, जो ईश्वरमें जीवन्त विश्वाससे उत्पन्न साहसके साथ शत्रु-दलका मुकाबला करनेके आदी थे और जिन्होंने अपने शिष्योंके याद दिलानेपर कि शत्रुओंकी भारी संख्याके मुकाबले वे केवल तीन ही हैं, यह मुँहतोड़ उत्तर दिया था: हम तीन नही, चार हैं, क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु अदृश्य रूपमें हमारे साथ है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९०५

३२०. केपका सामान्य विक्रेता-विधेयक

हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि केप-संसदके वर्तमान अधिवेशनमें जो विक्रेता-विधेयक पेश किया जानेवाला है उसके सम्बन्धमें, केपके ब्रिटिश भारतीय बराबर आन्दोलन करते रहे हैं। सर विलियम थॉर्न और माननीय एडमंड पॉवेलके नेतृत्वमें उनका एक शिष्टमण्डल माननीय महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) से पहले ही मिल चुका है। तथापि हमें यह स्वीकार करना होगा कि श्री सैम्सनके लचर उत्तरसे हमें निराशा हुई है। उनके लिए यह कह देना बड़ा सरल है कि "किसी यूरोपीय भाषामें हिसाब रखनेके प्रश्नका खयाल करनेके लिए कोई आवासी मजिस्ट्रेट बाध्य नहीं है। विधेयकमें विधान है कि वह चाहे तो उसका खयाल करे, चाहे न करे।" हम सब जानते हैं कि इन विवेकाधिकारोंका अर्थ क्या है। अतीतमें इनका दुरुपयोग किया गया है; और भविष्यमें नहीं किया जायेगा, ऐसा कोई निश्चय नहीं है। हम यह आश्वासन माननेके लिए बिलकुल तैयार हैं कि विधेयक "भारतीयोंपर प्रहार" नहीं है। परन्तु जहाँतक विवेकाधिकारका सम्बन्ध है, यदि उसका उपयोग इस प्रकार करनेकी गुंजाइश है तो विधेयकका अर्थ प्रहार करना ही होगा। हम साहसपूर्वक कहते हैं कि यह विधेयक निःसन्देह ऐसा है, जो भारी पैमानेपर उत्पीड़नका साधन बन जायेगा। फिर, महान्यायवादीने जब बहस करते हुए कहा कि प्रश्न किसी यूरोपीय भाषामें हिसाब-किताब रखनेका है तब उनका ध्यान मुख्य मुद्देपर बिलकुल नहीं गया। विधेयक तो इससे बहुत आगेतक जाता है और परवाना-अधिकारीको अधिकार देता है कि अर्जदारको कोई यूरोपीय भाषा न जाननेकी बिनापर परवाना देनेसे इनकार कर दे। हमें अंग्रेजीमें हिसाब-किताब रखनेके बारेमें कोई आपत्ति न होती; यह योग्य मुनीमोंके द्वारा कराया जा सकता है। परन्तु अर्जदार कोई यूरोपीय भाषा जाने, यह आग्रह करना बिलकुल दूसरी ही बात है। अगर इस उपधाराका उद्देश्य धोखा-धड़ीको रोकना है तो हम नहीं समझ सकते कि हिसाब-किताब अंग्रेजीके अलावा किसी भी यूरोपीय भाषामें क्यों रखा जाये। यदि यह परिवर्तन सिर्फ हिसाब-किताबतक ही सीमित रखा जाये और परवाना-प्राप्त लोगोंतक विस्तृत न किया जाये तो इस धारामें से भारतकी महान भाषाओंके प्रति अपमानका दोष निकल जायेगा। विद्वान महान्यायवादी आगे चलकर भारतीयोंको एक प्रवचन सुनाते हुए कहते हैं:

> मैं ऐसी बातोंके बारेमें नहीं कह रहा हूँ जिन्हें मैं जानता नहीं। मैं न्यायप्रिय आदमी हूँ और स्थितिसे परिचित हूँ। उदाहरणके लिए, रविवारके दिन भारतीयोंके व्यापार करनेकी बात ही ले लीजिए। क्या आप मुझसे यह कहना चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी रविवारको व्यापार नहीं करते?

हम बड़े आदरके साथ निवेदन करते हैं कि वे नहीं करते। और अगर जहाँ-तहाँ करते भी हैं, तो उनका मुहकमा क्या कर रहा है? क्या केपमें रविवासरीय व्यापार-कानून नहीं है? क्या गैरकानूनी रविवासरीय व्यापार कड़ाई करके बन्द नहीं किया जा सकता? और अगर हम इस दलीलको काममें ला सकें कि "आप भी तो करते हैं", तो क्या गैरकानूनी व्यापार भारतीयोंतक ही सीमित है? इसके अलावा, यह दुःख और आश्चर्यकी बात है कि केपके कानूनी पेशेवरोंके नेताने अपनी व्यवस्थाके समर्थनमें एक ऐसी दलील पेश करके, जिसका उस विषयपर

कोई असर नही पडता, कानूनकी परम्पराओकी अवहेलना की है, क्योंकि रविवारको गैरकानूनी व्यापार करने और भारतीय व्यापारियोंको किसी एक यूरोपीय भाषाका ज्ञान रखनेके बीच क्या सम्भव सम्बन्ध हो सकता है? परवानेके अर्जदारके लिए किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान आवश्यक करके वे रविवासरीय व्यापारको कैसे रोकेंगे? माननीय सज्जन आगे कहते है :

> **भारतीयोंके सम्बन्धमें एक कठिनाई और है। वे अक्सर अपने परिवारोंके साथ निकलते हैं और सारा परिवार व्यापार करता है। अगर व्यापारी थक जाता है तो उसकी पत्नी कुछ देर काम चलाती है; और जब वह थकती है तो बच्चे दूकान देखते हैं। उन्हें मालूम होगा कि यूरोपीय लोगोंको दूसरे ही ढंगसे रहना पड़ता है। उन्हें अपने बच्चोंको दिनके बहुत बड़े हिस्सेके लिए स्कूलोंमें भेजना पड़ता है, इसलिए वे उन लोगोंके साथ ठीक तरहसे होड़ नहीं कर सकते जिनपर ये दायित्व नही हैं।**

हमे यह कहनेमे कोई सकोच नही कि वक्तव्य देते समय उक्त माननीय सज्जन भारतीयोको छोडकर और लोगोकी बात सोच रहे थे, क्योंकि जब हम यह कहते है कि ऐसे भारतीय बहुत ही कम हैं, जिनकी पत्नियाँ बिक्रीके काममे उनकी मदद करती हैं तो हम जानकारीके साथ कहते हैं। हाँ, ज्यादा गरीब दूकानदारोके बच्चे ऐसा भले ही करते हो, इसमे इनकार करनेके लिए हम तैयार नही हैं। परन्तु भारतीय बच्चोकी शिक्षाके प्रति ईर्ष्या-भाव ही इसका ज्यादातर कारण हो सकता है, और कुछ नही। भारतीयोकी शिक्षाके मार्गमे हर तरहकी बाधा डालना और फिर यह कहना कि माता-पिता अपने बच्चोको पढाते नही, न्यायसगत नही है। क्या यह असमानता — अगर वह यही हो तो — भारतीय दूकानदारसे यूरोपीय भाषा जाननेकी अपेक्षा करके दूर की जायेगी?

यह कही ज्यादा अच्छा और गौरवपूर्ण होता, अगर श्री सैम्सनने कोई समझौता कराया होता और भारतीयोंकी भावनाके प्रति कुछ खयाल दिखाया होता। विक्रेता-परवाना अधिनियमका सिद्धान्त ऐसा है, जिसे दक्षिण आफ्रिकाकी वर्तमान परिस्थितियोंमे सब सही विचार करनेवाले लोग मजूर करेंगे। महान्यायवादीका सारा तर्क, जहाँतक वह सगत है, बताता है कि सब दूकानदारोंका हिसाब-किताब अंग्रेजीमे रखा जाना चाहिए। अगर यह बात है तो उपधारामे इसे उसी तरहसे कहना चाहिए। इससे सारी आलोचना व्यर्थ हो जायेगी, और विधेयकके उपबन्धोपर अमल करानेमे कानून-विभागको बहुत मदद मिलेगी, क्योंकि तब उन लोगोमे से अधिकतर, जिनपर कि विधेयकका असर पडनेकी सम्भावना है, उन उपबन्धोको स्वीकार कर लेंगे।

यहा सरसरी तौरपर हम अपने पाठकोका ध्यान एक विचित्र प्रासगिक जानकारीकी ओर भी खीचना चाहते है जो श्री सैम्सनने, शायद अनजाने, सरकारके रुखके सम्बन्धमे दे दी है। उन्होंने कहा

> **हालाँकि यिडिश[1] भाषाको प्रवासियोके निमित्त एक यूरोपीय भाषाके रूपमें स्वीकार किया गया है, वह उस रूपमें उस हिसाब-किताबपर लागू नहीं होती जो किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाना है।**

१. यहूदियोंकी एक प्राचीन जर्मन बोली, जिसमें अनेक यूरोपीय भाषाओंके शब्द मिले हुए हैं।

स्पष्ट है कि सरकार जरूरत पड़नेपर किसी कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए किसी भाषाको यूरोपीय बना सकती है और दूसरे कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए उसे गैर-यूरोपीय भी ठहरा सकती है।

उपर्युक्त लेख लिखनेके बाद महान्यायवादीके साथ मुलाकातकी पूरी रिपोर्ट प्राप्त हुई। उससे मालूम होता है कि किसी यूरोपीय भाषाके ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली आपत्तिजनक उपधारा वापसे ले ली जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–३–१९०५

३२१. केपके वकील

केपका विधिवत् स्थापित वकील-मण्डल (इनकारपोरेटेड लॉ सोसाइटी) एक विधेयक पास कराना चाहता है, जिसके द्वारा उसका इरादा केप-स्थित सर्वोच्च न्यायालयके वकील-मण्डल और अन्य छोटी अदालतोंके वकील-मण्डलोंमें रंगदार वकीलोंको प्रवेश पानेसे रोकनेका है। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी देशमें ऐसे कानूनका उपक्रम किया गया हो, यह हम नहीं जानते। अबतक केपको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोंमें सबसे उदार और रंग-भेदसे सर्वाधिक मुक्त होनेकी प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। जिस उपनिवेशकी परम्पराएँ ऐसी रही हों, उसमें ऐसे लोगोंके एक समुदायका होना, जिन्हें समाजमें सबसे बुद्धिशाली माना जाता है, और जो खराबसे-खराब किस्मके वर्ग-भेद कानूनको प्रोत्साहित करना चाहते हैं, एक उल्लेखनीय बात है; क्योंकि इस प्रकारकी कार्रवाईका कोई औचित्य दिखलाई नहीं पड़ता। हम प्रस्तावित विधेयकको लन्दनके इन्स ऑफ कोर्ट्स और इनकारपोरेटेड लॉ सोसाइटीकी भी नजरोंमें लाना चाहते हैं। हम जानना चाहेंगे कि इस नितान्त गैरमामूली प्रस्तावके बारेमें उनका कहना क्या है। अबतक यह माना जाता रहा है कि किसी एक इन्स ऑफ कोर्टकी परीक्षा पास करके निकले हुए बैरिस्टरके लिए सारा ब्रिटिश साम्राज्य बैरिस्टरी करनेके लिए खुला है। क्या अब यूनियन जैक फहरानेवाला केप उपनिवेश इन्सके बनाये हुए नियमोंको किनारे रख देगा और अगर किन्हीं बैरिस्टरोंकी चमड़ी काली हो तो उन्हें बैरिस्टरी न करने देगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–३–१९०५

३२२. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
२० मार्च, १९०५

श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन
इंग्लैंड

प्रियवर,

भारतीयोंके प्रति सारे दक्षिण आफ्रिकामें प्रतिगामी नीति बरती जा रही है। मैं आपका ध्यान *इंडियन ओपिनियनके* हालके अंकोंकी ओर खींचना चाहता हूँ। उनमें आप पायेंगे कि केपमें एक सामान्य विक्रेता-परवाना विधेयक (जनरल डीलर्स लाइसेंसेज बिल) लागू करनेकी कोशिश की जा रही है। इस विधेयकसे केपमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंको जबरदस्त नुकसान होनेकी सम्भावना है। इसी प्रकार नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* एक शस्त्र-विधेयक छपा है, जिससे गैरजरूरी तौरपर ब्रिटिश भारतीयोंकी तौहीन होती है। फ्राइहीड नामके जिलेमें, जो अभी-अभी नेटालमें शामिल किया गया है, ट्रान्सवाल जैसा एशियाई-विरोधी कानून लगाया गया है और वहाँके नगर-निगम विधेयकमें भी अनेक धाराएँ बहुत ही आपत्तिजनक हैं। ऑरेंज रिवर कालोनीमें उपनियम बनाकर भारतीयोंपर एकके बाद एक निर्योग्यताएँ लादी जा रही हैं और मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि इंग्लैंडकी लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) में ट्रान्सवाल कानून और नेटाल कानूनके सम्बन्धमें तो बहुत-कुछ किया गया है, किन्तु कभी ऑरेंज रिवर कालोनीके बारेमें वहाँ एक प्रश्न भी नहीं पूछा गया, ऐसा मेरा खयाल है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यह सवाल भी उठाया जायेगा। *इंडियन ओपिनियनका* ताजा अंक कई बातोंके साथ-साथ नेटाल नगर-निगम विधेयकपर भी प्रकाश डालता है। पत्रमें उल्लिखित अन्य तथ्योंपर अगले अंकमें ब्यौरेवार लिखा जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६७) से।

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रकी प्रति भारत मन्त्री और उपनिवेश-सचिवको भेजी थी। यह पत्र १८-८-१९०५ को *इंडियामें* भी छपा था।

३२३. ऑरेंज रिवर कालोनी और एशियाई

हमने एकाधिक बार ऑरेंज रिवर कालोनीकी उग्र एशियाई-विरोधी नीतिकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया है। इस तरहकी नीतिमें भूतपूर्व बोअर सरकार वर्तमान सरकारके नजदीकतक नहीं पहुँची थी। वर्तमान सरकार प्रचलित रंगभेदपर सम्राट्के नामपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा रही है। श्री चेम्बरलेनके इस वादेकी पूर्ति की, कि ऑरेंज रिवर कालोनीके एशियाई-विरोधी कानूनोंको ब्रिटिश विचारोंके अनुरूप संशोधित कर दिया जायेगा, हमारी अबतककी प्रतीक्षा निष्फल हुई है। वे संशोधित तो जरूर किये जा रहे हैं, परन्तु अबतक हमें यह जानना बाकी है कि जिस तरीकेसे उनमें फेरफार किया जा रहा है वह उन परम्पराओंके अनुरूप है, जो सदा "ब्रिटिश" शब्दके साथ संलग्न रही हैं। सबसे ताजा उदाहरण इसी माहकी १० तारीखके ऑरेंज रिवर कालोनीके *गवर्नमेंट गज़टमें* उपलब्ध है। ओडेंडाल्सरस्ट नामक गाँवके लिए बने नियमोंमें, जिनपर परम श्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर और कार्य-समितिकी मंजूरी मिल चुकी है, वतनी लोगोंके बारेमें कुछ उपधाराएँ हैं। उनका सम्बन्ध उनके बस्तियोंमें रहने, उनके काफिर-बियर बनाने और बेचने, बस्तियोंमें नाचके जलसे करने तथा उनमें मेहमानोंको रखने, कुत्ते पालने आदिसे है। अब, नियमोंमें जिस "वतनी" शब्दका प्रयोग किया गया है उसका अर्थ यह लगाया जायेगा कि उसमें दक्षिण आफ्रिकाकी किसी भी जन-जातिके सोलह वर्षकी प्रत्यक्ष अथवा अनुमानित आयुके स्त्री-पुरुष सम्मिलित हैं; *और उसमें सब रंगदार लोग, और वे सब लोग भी जो कानून या प्रथाके अनुसार रंगदार कहे जाते हैं, या जिनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है — भले ही वे किसी भी प्रजाति या राष्ट्रके क्यों न हों — सम्मिलित हैं।* वे नियम इन सबपर लागू माने जायेंगे। इसलिए बिलकुल साफ शब्दोंमें, उस गाँवकी "नगरपालिका" को "वतनी" शब्दमें ब्रिटिश भारतीयों और अन्य "रंगदार" लोगोंको शामिल करनेकी अनुमति दे दी गई है। यदि ऑरेंज रिवर कालोनीकी विधान-परिषदमें ऐसी व्याख्या और नियम स्वीकृत किये गये तो वे ब्रिटेन-स्थित सरकारके निषेधाधिकारके विषय बन सकेंगे; परन्तु, क्योंकि उन्हें एक ग्राम-निकाय स्वीकार कर रहा है और वही "वतनी" शब्दकी नाजायज व्याख्या करना पसन्द करता है, इसलिए ब्रिटेन-स्थित सरकारसे परामर्श किया ही नहीं जायेगा, और नरम तबीयतकी स्थानिक सरकारको तो उपर्युक्त तरीकेके व्यापक प्रतिबन्धोंका अनुमोदन करनेमें कोई पसोपेश है ही नहीं। साफ तो यह है कि उस सरकारका इस बातसे कोई वास्ता ही नहीं कि ऐसे नियम सम्राट्की भारतीय प्रजाकी भावनाओंको ठेस पहुँचाते हैं, या नहीं। इन नियमोंको हम विस्तारके साथ अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इनसे जो कलंक व्यक्त होता है उसकी ओर हम इंग्लैंडके उन लोकसेवकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं, जो न्याय और औचित्यकी लोकविश्रुत भावनाओंके धनी हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

३२४. नेटालकी भारतीय-विरोधी प्रवृत्ति

फरवरी २८के नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* वन्दूकोंके उपयोगका नियमन करनेवाला एक विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसका खण्ड ४ वतनियों और एशियाइयों द्वारा वन्दूकोंके उपयोगसे संबंध रखता है। अन्यत्र हम सव धाराएँ प्रकाशित कर रहे हैं। जाहिर है कि विधेयकके निर्माताओंने लगभग सहज वृत्तिसे एशियाइयोंको वतनियोंके साथ मिला दिया है और इस मनोवृत्तिका ही हमने सदा दृढ़ता और आदरके साथ विरोध किया है। एक वर्ग और दूसरे वर्गके बीच भेद किया गया है, इसलिए एशियाइयोंको तवतक न्याय प्राप्त नहीं हो सकता, जवतक कि उन्हें वतनियोंसे अलग न माना जाये। वतनियोंका प्रश्न दक्षिण आफ्रिकाका वहुत वड़ा प्रश्न है। उनकी जनसंख्या वहुत वड़ी है। उनकी सभ्यता एशियाई या यूरोपीय सभ्यतासे विलकुल भिन्न है। वे इस भूमिके ही अपत्य हैं, इसलिए उन्हें अच्छा व्यवहार पानेका अधिकार है। परन्तु वे जो-कुछ भी हैं उसके ही कारण, कदाचित्, प्रतिवन्धात्मक प्रकारके किसी कानूनकी जरूरत है। इसलिए, वह एशियाइयोंपर कभी लागू नहीं हो सकता। वन्दूकोंके इस मामलेमें एशियाइयोंको जो वतनी लोगोंके साथ जोड़ दिया गया है, वह वहुत ही अनुचित है। वन्दूके रखनेके सम्वन्धमें विधेयक द्वारा वतनी लोगोंपर जो प्रतिवन्ध लगाये गये हैं, वैसे कोई प्रतिवन्ध ब्रिटिश भारतीयों-पर लगानेकी जरूरत नहीं है। प्रवल गोरे वतनी लोगोंको शस्त्र-सज्जित होनेसे रोक कर प्रवल वने रह सकते हैं। परन्तु क्या ब्रिटिश भारतीयोंको इस प्रकार रोकनेमें न्यायका जरा-सा भी अंश है? सभी जानते है कि जो ब्रिटिश भारतीय इस उपनिवेशमे बसे है वे लड़ाकू नही हैं। वे अत्यन्त सीधे-सादे हैं। फिर उन्हें वतनियोके ही वर्गमें रखकर उनका अपमान क्यो किया जाये? क्या नेटालमें आनेवाला कोई अपरिचित व्यक्ति इस प्रकारके कानूनको देखकर यह निष्कर्ष नही निकालेगा कि ब्रिटिश भारतीयोका समाज वहुत तकलीफदेह होगा? ऐसे प्रसंग आते हैं जव कि कोने-किनारेमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोको वन्दूक या रिवॉल्वरकी जरूरत हो। अगर यह विधेयक कानूनमे परिणत हो गया तो उन्हे साधारण अधिकारियोके पास नही, वल्कि वतनी मामलोंके सचिवके पास, जिसका ब्रिटिश भारतीयोंके साथ कोई सम्वन्ध नही है, रिवॉल्वर या वन्दूक रखनेकी इजाजतकी याचना करनेके लिए जाना होगा — मानो, भारतीयोंके वन्दूक रखनेके वारेमें मजिस्ट्रेट लोग अपने विवेकका उपयोग करनेके अयोग्य हों। हमे लगता है कि क्या इस दुराग्रही तरीकेसे भारतीय-विरोधी पूर्वग्रहोंका पोषण करके सरकार ब्रिटिश भारतीयोंको गैरजरूरी तौरपर संतप्त नही कर रही है? हमें आशा है कि जव विधेयक नेटालकी संसदके सामने आयेगा, उसमें संशोधन कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–३–१९०५

३२५. फुटकर मिनिटोंका मूल्य

किसी कामको शुरू करनेसे पहले उसको करनेके सोच-विचारमें ही कितना समय बीत जाता है। इस प्रकारका समय फुटकर मिनिट समझा जाता है। हम समयके इन टुकड़ोंको कोई परवाह किये बिना छीज जाने देते हैं। नगण्य समझे जानेवाले इन छुट-पुट मिनिटोंका जोड़ लगानेपर वह जीवनका बड़ा भाग हो जाता है। और इनका सही उपयोग न करना आयुष्यको व्यर्थ खो देनेके बराबर है।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने शिक्षण, सुधार और प्रगतिके सम्बन्धमें कम या ज्यादा चर्चा करता रहता है। खाली समयका सबसे बढ़िया उपयोग क्या किया जाये, हम इसके लिए आयोजन करते हैं। परन्तु जब छुट-पुट समयमें अवकाशके थोड़े-बहुत मिनिट मिलते हैं तब स्त्रियाँ और पुरुष — उनमें भी विशेष रूपसे स्त्रियाँ — उनका खयाल मनसे उतार कर उन्हें खो देते हैं। जब समय मिल जायेगा तब हम क्या-क्या करेंगे, इसके हवाई किले हम बनाते रहते हैं। समय तो पाव घंटेका, आधे घंटेका अथवा थोड़े मिनटोंका ही मिलता है। उस समय हम कहेंगे कि कुछ नहीं, अभी काफी समय नहीं है। इस प्रकार सुवर्ण अवसर बीत जाता है और हम स्वप्न ही देखते रहते हैं।

जिसे दस पौंडकी आवश्यकता है, ऐसा व्यक्ति रोज मिलनेवाले चन्द शिलिंगोंकी परवाह न करे तो उसे हम कैसा मूर्ख बतायेंगे; और फिर भी हम उसके समान ही आचरण करते हैं। समय नहीं मिलता, इसके लिए मनमें दुःखित होते हैं और उन छुट-पुट शिलिंगोंके समान, जिनका जोड़ एकाध बैंक-नोटके बराबर हो सकता है, हम छुट-पुट मिनटोंको, जिनको जोड़नेसे दिन बन सकते हैं, आलसी बनकर खोते रहते हैं।

एक गौरांग नवयुवती महिला ऐसे मिनटोंका नित्य प्रति नियमपूर्वक उपयोग करनेसे इटालियन भाषा सीखनेमें कामयाब हो गई थी। एवं एक अन्य महिला इस प्रकारके फुरसतके समयमें दान-धर्मके लिए कढ़ाईका काम करके वर्ष-भरमें आश्चर्यजनक बड़ी रकम पैदा कर सकी थी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

३२६. स्फूर्ति प्राप्त करनेका उत्तम साधन — निद्रा

यदि कोई मनुष्य थक गया हो और अपना काम करते-रहनेमें समर्थ न हो तो इसका उपाय यह है कि वह सो जाये। और सम्भव हो तो एक सप्ताहतक भी सोता रहे। खोई हुई शक्तिको — विशेषतः मस्तिष्ककी शक्तिको — पुनः प्राप्त करनेके लिए यह सबसे अच्छा साधन है; क्योंकि नीदमें मस्तिष्क पूर्ण विश्रामका अनुभव करता है और श्रम करनेमें मस्तिष्कके जो अणु खर्च हुए हों वे इस अवस्थामें रक्तसे वापस मिल सकते हैं। जिस प्रकार एक शानदार स्टीमरके चक्रका एक-एक घुमाव उसके बॉइलरकी भट्टीमें सुलगते इंधनका परिणाम है, उसी प्रकार मस्तिष्कमें उत्पन्न प्रत्येक विचार उसके अन्दरके अणुओंके व्ययका परिणाम है। मस्तिष्ककी खर्च हो जानेवाली वस्तु केवल रक्तके पौष्टिक पदार्थमें से मिल सकती है। और रक्त, हमने जो अन्न खाया है, उससे बनता है। मस्तिष्ककी रचना ही इस प्रकारकी है कि वह खोये हुए अणुओंको विश्राम अथवा नीदकी शान्त स्थिरताके द्वारा ही पुनः प्राप्त कर सकता है। नशीली वस्तु मस्तिष्कको कुछ भी पोषण नहीं पहुँचा सकती। वह केवल मस्तिष्कको अपने अणुओंका अधिक खर्च करनेके लिए बाध्य करती है। परिणामस्वरूप अन्तमें थककर — जिस प्रकार भूख-प्यासके मारे मृत्युके सन्निकट पहुँचे हुए व्यक्तिके सम्मुख उत्तम प्रकारका खाद्य अथवा पेय धर देनेपर भी वह गलेके नीचे नहीं उतर पाता उसी प्रकार — मस्तिष्क अपने लिए आवश्यक आहार प्राप्त करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–३–१९०५

३२७. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च २५, १९०५

माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन, एस० ई०

प्रिय श्री दादाभाई,

*साउथ आफ्रिकन बुलेटिन*के बारेमें आपके २० जनवरीके पत्रका उत्तर इससे पहले नहीं दे सका। फिलहाल उस पत्रको पैसेकी कोई मदद कर सकना बहुत मुश्किल है; क्योंकि यहाँ स्थानिक लड़ाई चलानेमें लगभग सब चुक गया है। फिर भी यदि आप पत्रको मददके योग्य मानते हैं तो, मुझे लगता है, १० पौ० उसको दे सकना सभव हो जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,

३२८. दुधारी गश्ती-चिट्ठी

नेटाल उपनिवेशकी कानूनकी किताबमें एक कानून[1], सन् १८९७ का अधिनियम संख्या २८ है, जिसका मंशा उन भारतीय प्रवासियोंको संरक्षण देना है जो गिरमिटिया भारतीयोंपर लागू कायदोंकी सीमामें नहीं आते। जब वह पास किया गया था तब भारतीय समाजने कहा था कि यह एक ऐसा कानून है जिसका उपयोग उत्पीड़नके साधनके रूपमें किया जा सकता है। उसका उद्देश्य, जो आवेदन करें, उनको यह प्रमाणपत्र देना है कि प्रमाणपत्र-प्राप्त व्यक्ति गिरमिटिया भारतीय नहीं है; ताकि उसे गिरमिटिया होने और अपने मालिकको छोड़नेके सन्देहमें गिरफ्तार न किया जाये। बहुत संभव है कि गरीब फेरीवाले और ऐसे दूसरे भारतीय वास्तवमें ऐसा प्रमाणपत्र लेकर सताये जानेसे रक्षा पा सकें। किन्तु उसका प्रभाव निःसन्देह बहुत कष्टप्रद और ईर्ष्या-द्वेषजनक हुआ है; क्योंकि यद्यपि अधिनियम केवल अनुमतिसूचक है, किन्तु वह इस तरह बरता गया है मानो बन्धनकारी हो; और अनेक भारतीय नजरबन्द किये गये हैं और उनको अधिनियमके अन्तर्गत पास पेश करने या यह सिद्ध करनेका आदेश दिया गया है कि वे गिरमिटिया नहीं हैं।

उपनिवेश-सचिवके दफ्तरसे नेटालके न्यायाधीशोंके नाम जारी की गई तत्सम्बन्धी एक गश्ती-चिट्ठीके कारण इस अधिनियममें एक और उलझन जुड़ गई है। प्रमुख उपसचिव श्री सी० बर्ड न्यायाधीशोंको इस प्रकार लिखते हैं:

> मुझे यह निवेदन करना है कि आप सन् १८९७ के अधिनियम संख्या २८ के अन्तर्गत प्रवासी-संरक्षकको पासके लिए प्रार्थनापत्र भेजते समय साथमें प्रार्थीका अधिवास-प्रमाणपत्र अथवा इस आशयका वक्तव्य भी भेजें कि प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जा चुका है।

मंशा बिलकुल साफ है। इसका मंशा है, जो भारतीय प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका उल्लंघन करके उपनिवेशमें आ गये हैं, उन्हें उपर्युक्त अधिनियमके अन्तर्गत संरक्षकसे पास प्राप्त करने और इस तरह प्रवासी अधिनियमकी अवज्ञा करनेसे रोकना। किन्तु हमें जो खबरें मिली हैं उनके अनुसार इस गश्ती चिट्ठीसे बड़ा अनर्थ हुआ है। इसके द्वारा कुछ अपराधियोंको ढूंढ़ निकालनेके लिए एक समूचे समाजको दण्ड दिया जाता है। इससे गरीब लोगोंपर दो शिलिंग छः पेंसका निरर्थक जुर्माना भी लदता है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ के अन्तर्गत जिन्हें पासकी जरूरत हो उन्हें सबसे पहले अधिवास-प्रमाणपत्र लेना पड़ता है और इसके लिए २ शि० ६ पें० शुल्क देना जरूरी है। और जब ऐसा प्रमाणपत्र मिल जाये तब संरक्षकसे पास लेनेकी एक शिलिंग फीस और देनी पड़ती है।

अब वास्तवमें ऐसी झंझट-भरी पद्धति नितान्त अनावश्यक है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ के अन्तर्गत प्राप्त पाससे प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत कार्यवाही किये जानेसे कतई छुटकारा नहीं मिलता, और यदि अधिवास-प्रमाणपत्र आवश्यक है तो निःसन्देह सबसे अच्छी बात यह है कि सन् १८९७ का अधिनियम २८ रद कर दिया जाये, ताकि जो भारतीय उपनिवेशमें हैं और प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत उपनिवेशमें रहनेके अधिकारी हैं उन्हें यदि सताये जानेका डर हो तो, वे अधिवास-प्रमाणपत्र ले लें। उनसे श्री बर्ड द्वारा निर्धारित दुहरी प्रक्रियामें से गुजरनेकी उम्मीद करना उचित और न्यायपूर्ण नहीं है और हमें इसमें बहुत

१. देखिए, खण्ड २, पृष्ठ ३८६–८७।

सन्देह है कि क्या जैसी गश्ती चिट्ठीकी ओर हमने ध्यान आकर्षित किया है वैसी गश्ती चिट्ठियों द्वारा कानूनके अमलमें बाधा डालना उचित है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ में ऐसा कुछ नही है जिससे अधिवास-प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना जरूरी हो। हमें इसमें कोई सन्देह नही है कि यदि कोई भारतीय आग्रह करे तो वह प्रार्थनापत्र देकर कानूनकी रूसे संरक्षकको पास देनेके लिए मजबूर कर सकता है। तब फिर अधिवास-प्रमाणपत्र पेश करनेकी बात जरूरी तौरपर रखना अधिनियममें एक गैरजरूरी चीज जोड़ना है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि या तो उक्त गश्ती चिट्ठी वापस ले ली जायेगी या सरकार सन् १८९७ के अधिनियम २८ को जल्दी ही रद कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३२९. भारतीयोंके प्रति सहानुभूति

जोहानिसबर्ग कांग्रिगेशनल चर्चके मुखपत्र, *आउटलुक*के वर्तमान अंकमें "भारतीयोंके प्रति न्याय" शीर्षकसे एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका सारांश हम अन्यत्र उद्धृत करते हैं। हमारा सहयोगी अनुभव करता है कि समाजके रंगदार हिस्सेको प्रभावित करनेवाले कुछ वर्तमान विचारोंके प्रति विरोध प्रकट करनेका समय आ गया है। वह कबूल करता है कि ब्रिटिश भारतीयोंका जिस सड़े ढंगसे विरोध किया जाता है वह घृणास्पद है। उसने विभिन्न स्थानोंमें एशियाई-विरोधी कार्यवाहियोंके विवरणोंको "उनके अन्यायपूर्ण रुख और गलत वक्तव्योंके कारण तिरस्कारजनित ग्लानिसे" पढ़ा है। वह स्वीकार करता है कि कुछ लोग वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंकी उपस्थितिको सार्वजनिक हितकी बाधक मानते हैं। वह आपत्तिका कारण बतलाते समय कड़ाईके साथ ईमानदारी बरतनेकी हिमायत करता है, और यह सही ही है। जब आपत्ति वास्तवमें रंग-विद्वेषपर आधारित हो तब भारतीयोंके विरुद्ध निराधार आरोप लगाना ठीक नही है। इसी प्रकार जब वे असुविधाजनक प्रतिस्पर्धी मात्र हों तब उनके रूपमें "सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरा" खोज निकालना ठीक नही होगा। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय स्वयं अपनी ही कमी पूरी करते हैं। नेटालकी समृद्धि बहुत कुछ गिरमिटिया मजदूरोंपर ही निर्भर है। और, जैसा कि *आउटलुक* कहता है, उन धन्धोंमें, जिन्हें उन्होंने खास तौरसे अपना ही बना लिया है, भारतीयोंके बिना काम नही चल सकता। शराबसे परहेज करने और कानूनका आदर करनेके कारण वे उत्तम नागरिक बन गये हैं। हम यह कहनेका साहस करते हैं कि यदि इस उपमहाद्वीपके लोग एशियाई प्रश्नपर तटस्थ होकर विचार करें तो अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंमें भी भारतीय समाजके व्यवहारकी वे प्रशंसा ही करेंगे। ऐसे त्रासकारी कानूनोंके होते हुए भी, जिनकी ओर हम हालमें ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं, ब्रिटिश न्याय-भावनामें उनका विश्वास अडिग बना है। अन्तमें उनके साथ न्याय होगा ही। दक्षिण आफ्रिकाके सुसंस्कृत यूरोपीयोंमें भारतीयोंके मित्रोंकी संख्या लगातार बढ़ रही है। इसलिए एक दिन आयेगा जब उनकी पुकार सुनी जायेगी। इस सर्वथा सामयिक लेखके लिए हम अपने सहयोगीको धन्यवाद देते हैं। जहाँ-कहीं भी *आउटलुक* पढ़ा जाता है, उसकी प्रत्यक्ष ईमानदारी, उदारता और बुद्धिमत्ताका आदर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३३०. तुच्छ शंका

पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार संघ (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंस असोसिएशन) के मुखपत्रने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित एक हालके लेखका हवाला देकर हमें इज्जत बख्शी है। लेख उन तथाकथित गन्दी अवस्थाओंके बारेमें था जिनमें मार्केट स्क्वेयरमें[1] भारतीय रहते बताये जाते हैं। परन्तु, साथ ही, पत्रने डॉक्टर डिक्सनकी रिपोर्टकी वैधतापर शंका भी की है। वह रिपोर्ट हमने यह बताते हुए प्रकाशित की थी कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय समाजपर गन्दगीका वैसा कोई आरोप न्यायपूर्वक नहीं लगाया जा सकता। हम बिलकुल नहीं जानते कि हमारा सहयोगी तथ्योंका इस तरह बार-बार मजाक क्यों उड़ाता है, प्रतिष्ठित वक्तव्योंका गलत अर्थ क्यों लगाता है या उनकी उपेक्षा क्यों करता है। ऐसा मालूम होता है कि, अगर राजा कोई गलत काम नहीं कर सकता, तो भारतीय कोई सही काम नहीं कर सकता। जिनपर विपरीत मत हावी हो गया हो उन्हें समझानेके लिए कोई कितना भी प्रमाण पेश करे, सब व्यर्थ होगा। हमें तो ऐसी नुक्ताचीनी करनेवाली टीका-टिप्पणियोंका उत्तर देना मरे घोड़ेको चाबुक लगाने जैसा मालूम होता है। हमारे ऐसा करनेका कारण केवल एक यह है कि पूर्वग्रहोंसे रहित पाठकोंको विचार करनेकी सामग्री मिले और हम जिस विषयकी पैरवी कर रहे हैं उसके औचित्य और अनौचित्यका वे ज्यादा न्यायपूर्वक निर्णय कर सकें। डॉ० डिक्सनने भारतीय समाजके अनुरोधपर गत अक्टूबर मासके आरम्भमें, जब कि भारतीय-विरोधी भावनाएँ अपनी उचित सीमाओंको भंग करने लगी थीं, यह जाँच की थी। उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे अपने ही समयमें अपनी सुविधाके अनुसार और जैसा भी तरीका ठीक समझें उस तरीकेसे यह जाँच करें। इसलिए सम्बद्ध भारतीयोंकी ओरसे उनके कार्यपर कोई सम्भव नियन्त्रण नहीं था। और न भारतीयोंको उनके आनेके बारेमें कोई सूचना ही दी जाती थी। इसके अलावा, जिला-सर्जन (डॉ० डिक्सन) ने इस तरहकी जांच भी की, जैसा कि उनकी रिपोर्टसे स्पष्ट है, जिससे कि रातको बहुत भीड़ होनेका आरोप झूठा सिद्ध हो जाता है। परन्तु, मालूम होता है कि *बजटसे* हमारे वाद-विवादका पूरा मुद्दा ही चूक गया है। हमने दावा किया था कि डॉ० फ्रीएलकी रिपोर्टकी तहमें स्पष्ट राजनीतिक प्रयोजन है। उसके बावजूद वे सिद्ध नहीं कर सके कि भारतीयोंने नगरपालिकाके नियमोंको भंग किया है। उन्होंने कहा कि वे ऐसे ढंगसे रहते हैं, जो मेरे अपने मानदण्डपर सन्तोषजनक नहीं उतरता। वह मानदण्ड क्या है, डॉक्टर फ्रीएलके अलावा कोई नहीं जानता। और अबतक *बजटने* हमारी बातोंका उत्तर नहीं दिया है। इसी बीच, हमें मालूम हुआ है कि सरकारने काफी स्पष्टतासे संकेत कर दिया है कि नगरपालिका जो-कुछ करना चाहेगी वह अवैध होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-४-१९०५

१. देखिए "एक राजनीतिक डाक्टरी रिपोर्ट", ११-३-१९०५।

३३१. सत्यका प्राच्य आदर्श

लॉर्ड कर्जनने दीक्षान्त-अभिभाषणमें घोषणा की है कि "सत्यका उच्चतम आदर्श बहुत हदतक पाश्चात्य कल्पना है", और "निःसन्देह, पाश्चात्य आचार-संहिताओंमें सत्यको, प्राच्य देशोंसे पहले ही, ऊँचा स्थान प्राप्त हो चुका था। प्राच्य देशोंमें वैसा पीछे जाकर हुआ; यहाँ तो सदासे कुटिलता और कूटनीतिक चतुरताका ही अधिक आदर होता आया है।" हम वाइसराय महोदयसे सिफारिश करते हैं कि वे सत्य और असत्यके विषयमें, प्राच्य शास्त्रों, महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थों तथा नीति-सम्बन्धी अन्य रचनाओंकी निम्न शिक्षाओंपर ध्यान देनेकी कृपा करें; और यदि वे सत्यका तथा इस देशके लोगोंका कुछ भी आदर करते हों — और हमें सन्देह नहीं कि वे करते हैं — तो, भारतके वाइसराय, कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति और एक अंग्रेज सज्जनकी हैसियतसे, उनके सम्मानका तकाजा है कि वे अपने निराधार और आक्रामक आक्षेपोंको वापस ले लें।

> **दुर्लंघ्य मार्गोंको लांघो; क्रोधको अक्रोधसे, और असत्यको सत्यसे जीतो। — *सामवेद*, अरण्यगान, अर्कपर्व।**
>
> **सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्यका ही वह मार्ग है जिसपर देव अर्थात् विद्वान लोग चलते हैं। इसी मार्ग पर चलकर, अपनी सब कामनाओंको पूर्ण कर चुकनेवाले ऋषि, उस ब्रह्ममें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं जो सत्यका परम निधान है।[1] — *मुण्डकोपानिषद्*, मुण्डक ३, खण्ड १, वाक्य ६।**

जब शिष्य यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ना शुरू करता है तब आचार्य उसे पहला उपदेश यह देता है:

> **सत्य बोलो। धर्मपर चलो। . . . सत्यसे कभी विचलित न हो।[2] — *तैत्तिरीयोपनिषद्*, शिक्षावल्ली, ग्यारहवाँ अनुवाक, वाक्य १।**

हिन्दू धर्मके अनुसार, सत्य ब्रह्मका तत्त्व है:

> **ब्रह्म सनातन सत्य है, अप्रमेय ज्ञान है।[3] — *तैत्तिरीयोपानिषद्*, ब्रह्मवल्ली, प्रथम अनुवाक, वाक्य १।**
>
> **वाणी सत्यमें ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब सत्यमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए विद्वान् सत्यको ही सबसे ऊँचा बताते हैं।[4] — *महानारायणोपानिषद्*, २७, १।**
>
> **सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं। वस्तुतः सत्य ही धर्मका मूल है।[5] — *महाभारत*।**

१. सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

२. सत्यं वद। धर्मं चर। . . . . सत्यान्मा प्रमदितव्यम्॥

३. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

४. वाक् सत्ये प्रतिष्ठिता। सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

५. न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

युवराज रामचन्द्रको दरबारके एक पुरोहितने सलाह दी थी कि वे अपने पिताको दिये चौदह वर्षतक वनमें रहनेके वचनसे मुकर जायें। किन्तु उसे उत्तर देते हुए अमरकीर्ति रामचन्द्र कहते हैं:

> सत्य और दया, राजधर्मके अविस्मरणीय अंग हैं। इसलिए राज्यशासन तत्त्वतः सत्य ही है। सत्य ही संसारका आधार है। ऋषि और देव दोनोंने सत्यका आदर किया है। जो मनुष्य इस लोकमें सत्य बोलता है वह श्रेष्ठ और अमर पदको प्राप्त करता है। मिथ्यावादी मनुष्यसे लोग, भय और आतंकके मारे, ऐसे परे भागते हैं जैसे कि साँपसे। संसारमें धर्मका मुख्य तत्त्व सत्य है। सत्य प्रत्येक वस्तुका आधार कहा जाता है। सत्य संसारमें सर्वोपरि है। धर्मका आधार सदा सत्य ही होता है। सब वस्तुओंका आधार सत्य ही है। कोई भी वस्तु इससे ऊँची नहीं। मैं अपने वचनका पालन क्यों न करूँ अपने पिताके सत्य आदेशपर सचाईसे क्यों न चलूँ? मैं लोभ-लालच, बहकावे या अज्ञानके वशमें होकर या अपनी दृष्टि कलुषित हो जानेके कारण सत्यकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करूँगा। मैं पिताजीको दिये हुए वचनका पालन अवश्य करूँगा। मैं उन्हें वनवासका वचन दे चुका हूँ। अब मैं उनके आदेशका उल्लंघन करके भरतकी बात कैसे मान सकता हूँ?[1] (प्रोफेसर मैक्समूलरके अंग्रेजी अनुवादसे)। —*रामायण*।

प्रकृतिके नियमोंमें ही सत्यका प्रकाश होता है। सब सद्गुण सत्यके और सब अवगुण असत्यके रूप हैं। भीष्मने *महाभारतमें* उनका वर्णन इस प्रकार किया है:

> सत्य-परायणता, न्यायवर्तिता, आत्मसंयम, आडम्बरहीनता, क्षमा, नम्रता, सहिष्णुता, अनसूया, दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मजय, दया और अहिंसा—ये तेरहों सत्यके रूप हैं। —*महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ८ व ९।

किसी वस्तुका होना सत्य और न होना असत्य है। भीष्मने कहा है:

> सत्य सनातन ब्रह्म है. . . . सब कुछ सत्यमें प्रतिष्ठित है। —*महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ५।

१. सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः १०९। १० ॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परमं गच्छति चाक्षयम् १०९। ११ ॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यं परो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते १०९। १३ ॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये पद्मा प्रतिष्ठिता।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् १०९। १४ ॥
सोऽहं पितुर्नियोगं तु किमर्थं नानुपालये।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् १०९। १६ ॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः १०९। १७ ॥
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः १०९। २४ ॥

आर्य क्षत्रियोंने बहुधा कहा है:

मेरे मुखसे असत्य कभी नहीं निकला।

अश्वमेध पर्वमें श्रीकृष्णने कहा है:

सत्य और धर्मका मुझमें नित्य निवास है।

भीष्मने सत्यका बखान करते हुए उसे उच्चतम त्याग बतलाया है और कहा है:

एक बार एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सत्य एक तराजूमें तोले गये। सत्य सहस्र अश्वमेध यज्ञोंसे कहीं भारी उतरा। —*महाभारत,* शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक २६।

सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं और सत्यको अन्य समस्त वस्तुओंसे पवित्र मानना चाहिए। —*रामायण।*

सत्य महात्माओं और प्रभुको सदा प्रिय रहा है, और जिसकी वाणी इस जीवनमें सत्यका पालन करती है वह मृत्युके पश्चात् उच्चतम लोकोंमें जाता है। जो सत्यसे घृणा करता है उससे हम इसी प्रकार परे रहते हैं जिस प्रकार साँपके विष-भरे दाँतसे। —*रामायण।*

जिन गुणोंसे मनुष्यको योग और साम्यकी प्राप्ति होती है, शान्ति और संतोष मिलता है, और अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायता मिलती है उनकी चर्चा श्रीकृष्णने इस प्रकार की है:

हे अर्जुन, निर्भयता, सत्त्व शुद्धि, ज्ञानकी प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न, दान, इन्द्रिय-दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, अन्तःकरणकी सरलता, मन, वचन और कर्मकी अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा न करना, प्राणिमात्रपर दया, लोभ-लालचका न होना, कोमलता, अनुचित कार्य करनेमें लज्जा, अचपलता, तेजस्विता, क्षमा, धीरता, शुद्धता, अद्वेष और निरभिमानता, ये गुण उस व्यक्तिमें होते हैं जो दैवी सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है।[1] —*भगवद्गीता,* अध्याय १६, श्लोक १–३।

वाणीके तपकी व्याख्या *भगवद्गीतामें* इस प्रकार की गई है:

किसीका चित्त दुखानेवाली बात न कहना, केवल सत्य, प्रिय और हितकारी वचन बोलना और वेद-शास्त्रोंका पढ़ना, वाणीका तप कहलाता है।[2] —अध्याय १७, श्लोक १५।

हिन्दू धर्मके अनुसार, ईश्वर सत्यका ही रूप है। देवोंके आवाहन करनेपर, जब ईश्वर उनके सम्मुख श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुआ, तब उन्होंने उसकी स्तुति इस प्रकार की:

१. अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति, सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

२. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

तुम अपने वचनके सच्चे हो, लक्ष्यके सच्चे हो, तुम तिगुने सत्य हो, सत्यके तुम स्रोत हो, तुम्हारा निवास सत्यमें है, तुम सत्योंके सत्य हो, न्याय और सत्यके तुम चक्षु हो, इसलिए हे सत्यात्मा, हम आपमें आश्रय माँगते हैं। —*भागवत पुराण*, स्कन्ध १२, श्लोक २६।

सर विलियम जोन्सका मत है कि *मनुस्मृतिका* रचना-काल, यदि १५८० ई० पूर्व नहीं, तो १२८० ई० पूर्व अवश्य है। मनुने धर्मके जो दस लक्षण बताये हैं उनमें कई ऐसे हैं जो मनकी साधना और उच्चतम सत्यकी प्राप्तिके लिए अति आवश्यक हैं:[1]

धैर्य, क्षमा, आत्म-संयम, चोरी न करना, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, ज्ञान, सत्य और अक्रोध, ये दस धर्मके लक्षण अर्थात् साधन हैं।[1] —*मनुस्मृति*, अध्याय ६, श्लोक ९२।

एक और स्थानपर उनकी संक्षेपसे चर्चा इस प्रकार की गई है:

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी या छिपाव न करना), शुद्धि और इन्द्रिय-निग्रह, इन कार्योंका मनुने चारों वर्णोंके लिए विधान किया है।[2] —*मनुस्मृति*, अध्याय ६, श्लोक ६३।

जो लोग वाणी द्वारा बेईमानी करते हैं उनकी निन्दा मनुने इस प्रकार की है:

सब कार्य वाणी द्वारा नियन्त्रित होते हैं, वाणी उनका मूल है, वाणीसे उनकी उत्पत्ति होती है; और जो मनुष्य वाणीमें ईमानदार नहीं, वह सभी कामोंमें बेईमान होता है।[3] —*मनुस्मृति*, अध्याय ४, श्लोक २५६।

आर्योंके धर्मग्रन्थोंमें निरन्तर सत्यके आचरण और कर्त्तव्यके पालनका आदेश दिया गया है। देखिए:

जो मनुष्य सच्चा नहीं, या जो झूठ बोलकर धन कमाता है, या जो दूसरोंको दुःख देनेमें सुख मानता है, वह इस संसारमें कभी सुखी नहीं हो सकता। पापसे पीड़ित होकर भी पापमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए; ऐसा करनेवाला पाप और पापियोंका पतन शीघ्र ही प्रत्यक्ष देख लेता है। संसारमें पापाचरणका फल, गौके समान, शीघ्र प्रकट नहीं होता, परन्तु वह धीरे-धीरे पापीकी जड़तकको काट डालता है।[4] —*मनुस्मृति*, अध्याय ४, श्लोक १७०-१७२।

१. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्॥

२. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

३. वाच्यर्था नियता सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥

४. अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिंसारतश्च योनित्यं नेहासौ सुखमेधते॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनो धर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकानां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम्॥
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥

सत्य बोले, परन्तु प्रिय सत्य बोले। अप्रिय सत्य न बोले। साथ ही प्रिय झूठ भी न बोले। यही सनातन धर्म है।[1] -- *मनुस्मृति*, अध्याय ४, श्लोक १३८।

मनुष्यको सदा सत्य, न्याय, प्रशंसनीय आचरण और पवित्रतामें सुख मानना चाहिए।[2] -- अध्याय ४, श्लोक १७५।

चुगलखोर या झूठी गवाही देनेवालेका अन्न न खाये।[3] -- अध्याय ४, श्लोक २१४।

जो योग्य लोगोंके सामने अपनी प्रशंसा सत्यके विपरीत करता है, वह संसारमें अत्यन्त नीच और पापी होता है। वह चोरोंका चोर और मनकी चोरी करनेवाला होता है।[4] -- अध्याय ४, श्लोक २५५।

जो भोजन केवल जीवित रहनेके लिए करता है, और जो भाषण केवल सत्य बोलनेके लिए करता है, वह सब आपत्तियोंपर विजय पा सकता है। -- *हितोपदेश*।

वाणीके पाप चार हैं:

१. झूठ बोलना, २. परनिन्दा करना, ३. गाली देना और, ४. निष्प्रयोजन बकवाद करना। -- बौद्ध धर्मकी एक शिक्षा।

सच और झूठकी टक्कर ऐसी है जैसी कि पत्थर और मिट्टीके बर्तनकी। पत्थर मिट्टीके बर्तनपर गिरेगा तो बर्तन टूट जायेगा। दोनों हालतोंमें नुकसान मिट्टीके बर्तनका ही होगा। -- सिक्ख धर्मकी सीख।

साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप।। -- कबीर।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-४-१९०५

१. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

२. सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।

३. पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा।

४. योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः।।

३३२. केपके भारतीय भाइयोंका स्तुत्य कार्य

नये विधेयकके सम्बन्धमें सभा और शिष्टमण्डल

हम अपने केप-वासी भारतीय भाइयोंको मुबारकबादी देते हैं कि वे नये बननेवाले कानूनके बारेमें ठीक समयपर सतर्क हो गये और अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें लग गये। केपके *गवर्नमेंट गज़टमें* व्यापारियोंके परवाना-अधिनियमका मसविदा प्रकाशित होते ही हमारे नेता उसका मतलब समझ गये, और उन्होंने केप टाउनमें एक विराट सभा[1] करके उसमें उसके सम्बन्धमें अपनी भावना प्रकट की एवं प्रस्ताव पास किये। (इसका विवरण[2] हमने छापा है)। वे इस मामलेकी गम्भीरतासे वाकिफ थे, इसलिए उन्होंने इतना करके ही सन्तोष नहीं माना। उन्होंने एक शिष्टमण्डल बनाकर केप कालोनीके माननीय महान्यायवादीसे मुलाकात भी की। और उस अवसरपर वे प्रस्ताव उनके सामने पेश किये जो सभामें स्वीकार किये गये थे तथा उनपर उनसे चर्चा की।

उन्होंने शिष्टमंडल बनानेमें भी चतुराईसे काम लिया, अर्थात् उसमें दो स्थानीय सुप्रतिष्ठित संसद-सदस्य[3] सम्मिलत किये और उनको नेतृत्व सौंपा। महान्यायवादी श्री सेम्सनने कई बातोंका स्पष्टीकरण किया जिनमें से कुछ स्पष्टीकरण उचित थे। अन्य उत्तर कुल मिलाकर सन्तोषप्रद थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता, और उनपर विचार करनेसे स्पष्ट पता चलता है कि जब यह कानून संसदमें पेश किया जाये तब भारतीय नेताओंको सजग रहनेकी पूरी आवश्यकता है। मुख्यतः विचार भाषाके सम्बन्धमें हुआ। कानूनमें एक धारा ऐसी है कि व्यापारिक परवानेका आवेदन देनेवाले व्यक्तिको किसी भी एक यूरोपीय भाषाका जानकार होना चाहिए। इस सम्बन्धमें श्री सेम्सनने साफ-साफ बातें कहीं, और कुछ बातोंपर ऐसे उत्तर दिये मानो वे चतुराईसे टाल देनेकी कोशिश कर रहे हों। उन्होंने एक सन्तोषप्रद बात यह कही कि वे भाषा-सम्बन्धी धारामें स्पष्ट कर देंगे कि केवल बहीखाता किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाये। आवेदकको वह भाषा आती है या नहीं, इस बातपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। बहीखाता यूरोपीय भाषामें रखनेकी बात भारतीयोंको मंजूर है, फिर भी महान्यायवादीने इस सम्बन्धमें बहुत टीका की। यद्यपि टीका तर्कपुष्ट नहीं थी फिर भी उसपर से हमारे भारतीय भाइयोंको बहुत सावधान हो जाना चाहिए। मजिस्ट्रेटकी मर्जीके सम्बन्धमें जो टीका की गई उसपरसे चौकन्ने रहनेकी आवश्यकता है। आजकल यदि कोई बात मजिस्ट्रेटकी मर्जीपर छोड़ दी जाये तो समझना चाहिए कि वह गड़बड़में पड़ गई। सारे दक्षिण आफ्रिकामें हम देख रहे हैं कि ऐसी मर्जीका परिणाम एक ही होता है और वह सदैव भारतीयोंके विरुद्ध। श्री सेम्सनने यह बताना चाहा कि भारतीयोंको अधिक डरनेका कारण नहीं है, परन्तु ऐसा करनेमें वह मर्यादासे बाहर निकल गये, इसलिए अन्तिम उत्तर देते समय श्री पॉवेलने पोल खोल दी कि वे लोगोंको खुश करनेके लिए ही ऐसी गोल-मोल बातें कह रहे हैं। उनका उत्तर एक मजाक-सा लगता है।

१. ब्रिटिश भारतीय संघके तत्त्वावधानमें केप टाउनके प्रमुख भारतीय निवासियोंकी एक सभा मेसॉनिक हॉल, केप टाउनमें हुई थी।

२. देखिए, *इंडियन ओपिनियन*, १८–३–१९०५ और २५–३–१९०५।

३. सर विलियम थॉर्न, एम० एल० ए० और माननीय एडमंड पॉवेल, एम० एल० सी०।

"मजिस्ट्रेटको अर्जी भी अंग्रेजीमें देनेकी जरूरत नहीं है; यद्यपि वह उसकी समझमें आ सके, ऐसी होनी चाहिए।" इसका क्या मतलब है?

कानून बनानेके प्रयोजनके सम्बन्धमें बोलते हुए श्री सेम्सनने कई तरहकी बातें कहीं। इससे प्रतीत होता है कि खुद इन साहबके मनमें भी वहम है और वे भारतीयोंके प्रति अच्छी भावना नहीं रखते। ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने गम्भीरतासे बात की हो; और जो उदाहरण उन्होंने बताये वे हमारे मतसे तो असंगत थे। एक बार उन्होंने कहा कि यह कानून विशेष रूपसे भारतीयोंके लिए नहीं बनाया गया है; और दूसरी बार कहा कि व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) आदि व्यापारी-मण्डल शिकायत किया करते हैं और दबाव डालते हैं कि भारतीयोंके बही-खाते बहुत बेढंगे होते है, इसलिए ऐसा कानून बनानेकी जरूरत पड़ रही है। भारतीयोंके बही-खातोंसे अदालतमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेमें बड़ी असुविधा होती है, ऐसा उनका अपना अनुभव है, इत्यादि। इस प्रकार यूरोपीय व्यापारियोंका रक्षण करनेके लिए यह कानून बन रहा है। स्पष्ट ही ये स्पष्टीकरण पूरा विचार किये बिना ही दिये गये प्रतीत होते हैं। फिर वे स्वयं अपनी न्यायप्रियता बताने लगे। और भारतीयोंके बारेमें अपनी निजी जानकारी दिखाने लगे। इसी सिलसिलेमें उन्होंने रविवारको व्यापार होनेका उल्लेख किया; और पूछा कि क्या भारतीयोंका पूराका पूरा परिवार रविवारको व्यापार करता हो, ऐसा उदाहरण देखनेमें नहीं आता? श्री सेम्सनने बताया कि उनके पास एक पत्र आया है कि एक पूरा भारतीय कुटुम्ब, अर्थात् औरत और बच्चों सहित, रविवारको गैरकानूनी व्यापार करता है। इन लोगोंके साथ गोरोंकी स्पर्धा नहीं हो सकती। भारतीय और यूनानी इस बातमें बुरे हैं और कुछ लोगोंके कारण सबको दंड भुगतना पड़ता है, इत्यादि, इत्यादि। श्री गुलने[1] तुरन्त उनकी बात काटी और कहा कि चिट्ठी लिखनेवाला ईर्ष्यालु होगा और यह विवरण गलत है। फिर भी अगर कोई कसूर करता है तो कायदेके अनुसार उसे सजा क्यों नहीं देते?

सार रूपमें उपर्युक्त बातें हुईं। अब हमारे मनमें यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या अंग्रेजी या यूरोपीय भाषा जान लेनेसे यह भ्रष्टता खत्म हो जायेगी? महान्यायवादी एक होशियार वकील हैं। फिर भी ऐसी दलीलबाजी करनेमें वे झिझके नहीं, इसलिए हमें आश्चर्य और खेद होता है। मनुष्यकी भाषाका उसके चालचलनसे क्या सम्बन्ध है? भारतीय व्यापारी उक्त भाषामें बहीखाते लिखवा लें क्या तब शिकायत मिट जायेगी?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०५

१. श्री जी० एम० एच० गुल, केप टाउनके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी और शिष्टमण्डलके एक सदस्य।

३३३. प्लेगसे तबाही

प्लेगने देशमें तबाही फैलाई है। इस वर्ष इसका जोर बहुत ज्यादा है। सरकारने हाथ ढीले कर दिये हैं। लोग कायर हो गये हैं। पंजाबमें तो इतना जोर है कि व्यापारको बहुत धक्का लगा है और पहले अच्छी तरह रहनेवाले लोगोंको रोग थोड़ा होता था, परन्तु अब तो वे भी उससे मुक्त नहीं रहे। फिर भी, यह भयंकर रोग अबतक देशी लोगोंमें ही फैला है। बहुतसे लोगोंकी धारणा यह है कि हमारे पाप बहुत अधिक बढ़ गये हैं; अतः प्लेग ईश्वरके प्रकोपके रूपमें आया है। इसपर *टाइम्स ऑफ इंडियाके* एक लेखकने यह सुझाया है कि सरकारको भारतमें एक ऐसा दिन मनाना चाहिए जिस दिन सारा देश ईश्वरसे इस रोगके अन्तके लिए स्तुति करे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३३४. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान-सभाको[1]

अप्रैल ७, १९०५

आपके प्रार्थी अमुक दो विधेयकोंके विषयमें इस माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित होनेकी धृष्टता कर रहे हैं। ये विधेयक आपके विचारके लिए इसी सत्रमें पेश किये जायेंगे। इनमें से एक है—"नगर-निगम सम्बन्धी कानूनको संशोधित तथा संघटित करनेवाला" विधेयक और दूसरा है—"बारूदी हथियारोंके उपयोगको नियन्त्रित करनेवाला" विधेयक। प्रार्थियोंका निवेदन निम्नलिखित है:

आपके प्रार्थियोंका खयाल है कि उपर्युक्त प्रथम विधेयकमें "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंकी जो परिभाषा दी गई है वह नितान्त असन्तोषजनक है। उसमें इनका अर्थ है अन्योंके साथ-साथ कोई भी "कुली या लशकर", जिन्हें कि स्वयं परिभाषाकी आवश्यकता है। पुलिस सिपाहीके लिए यह समझना अत्यन्त कठिन होगा कि कौन कुली है, कौन लशकर; क्योंकि ये शब्द किसी विशेष प्रजातिके द्योतक नहीं हैं, बल्कि इनका प्रयोग अकुशल श्रमिकों तथा नाविकोंके लिए होता है।

आपके प्रार्थियोंके विचारमें "असभ्य प्रजातियाँ" शब्दोंकी परिभाषा भी असन्तोषजनक है और ये शब्द स्वयं उन लोगोंके लिए दुःखदायी हैं जिन्हें कि इनमें शामिल करना अभीष्ट है। इसके अतिरिक्त, आपके प्रार्थी यह समझनेमें भी असमर्थ हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चे "असभ्य प्रजातियोंके" वर्गमें क्यों रखे जायें। उनमें बहुतसे अपने परिश्रम द्वारा शिक्षा और संस्कृतिमें बहुत ऊँचे उठ गये हैं और उपनिवेशमें कर्मचारियों या स्वतन्त्र व्यक्तियोंके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर स्थित हैं।

१. अब्दुल कादिर तथा अन्य ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे इस प्रार्थनापत्रकी एक नकल बादको लॉर्ड एल्गिनको भेजे गये अगस्त १५, १९०६के प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न की गई थी और १८–८–१९०६के इंडियन ओपिनियनमें छपी थी।

धारा (क्लॉज) २२ की उपधारा (ग) के अन्तर्गत उन लोगोंको नागरिकताका अधिकार प्राप्त करनेके अयोग्य ठहराया गया है जिन्हें कि १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार संसदीय मताधिकार उपलब्ध नहीं है। १८९६ का अधिनियम ८ उन लोगोंको मताधिकारसे वंचित करता है जो कि ऐसे देशोके निवासी हैं, जिनमें अबतक संसदीय मताधिकारपर आधारित प्रातिनिधिक संस्थाएँ नही है।

आपके प्रार्थी निवेदन करते है कि संसदीय मताधिकार तथा नगरपालिका मताधिकारमें कोई सम्बन्ध नही हे, और यदि तर्कके लिए यह सच मान भी लिया जाये कि भारतमें भारतीयोंको संसदीय मताधिकार उपलब्ध नही है, तो भी यह निश्चयपूर्वक सिद्ध किया जा सकता हे कि उन्हें काफी हदतक नगरपालिकाके मताधिकार उपलब्ध हैं। आपके प्रार्थियोंमें से कुछ लोग भारतमें स्वयं नगरपालिकाओं या परिषदोके सदस्य रह चुके है। उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयों का भूतकालीन इतिहास भी उपर्युक्त प्रकारकी निर्योग्यताको उचित नही ठहराता। इसलिए आपके प्रार्थी नम्र निवेदन करते है कि यदि प्रस्तुत धाराको आपका अनुमोदन मिल गया तो यह ब्रिटिश भारतीयोंका अनावश्यक अपमान होगा।

उपनिवेशकी नगर-परिषदोंको "रंगदार व्यक्तियो" द्वारा पैदल पटरियों तथा रिक्शोके उपयोगके सम्बन्धमें उपनियम बनानेका जो अधिकार दिया गया है उसमे — जहाँतक ये शब्द भारतीयोंको शामिल करते हैं — आपके प्रार्थियोंको कोई औचित्य नजर नही आया हे। इस प्रकार इस सम्बन्धमें "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषा अपना प्रभाव डालती हे और खयाल किया जाता है कि इससे बहुत-सी शरारतें पैदा होंगी।

आपके प्रार्थी उक्त विधेयककी धारा २०० का भी नम्रतापूर्वक विरोध करते हैं। उसमें परिषदको वतनियों या "असभ्य प्रजातियों" के लोगोके पंजीकरणकी एक प्रणाली स्थापित करनेके लिए उपनियम बनानेका अधिकार दिया गया है। आपके प्रार्थियोके विचारमें उन भारतीयोंका, जो "असभ्य प्रजाति" शब्दोमे शामिल किये गये है, पंजीकरण करना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि भारतीयोंको मेहनतसे मुँह मोड़ते हुए कभी नही पाया गया है। प्रस्तुत धारासे आगे यह भी मालूम पड़ता हे कि सुसंस्कृत भारतीयोके भी पंजीकरणकी आवश्यकता होगी।

दूसरे विधेयकके सम्बन्धमें आपके प्रार्थी निवेदन करते हैं कि इससे उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोको, बड़ा दु:ख हुआ है। सं० ४४ से ४७ तकके खण्ड वतनियो तथा एशियाइयो द्वारा बारूदी हथियारोके उपयोगसे सम्बद्ध हैं। आपके प्रार्थियोके विचारसे भारतीयोंका वतनियोके साथ मिला दिया जाना उचित नही है। भारतीय अत्यन्त सीधे-सादे उपनिवेशी हैं और उन्होंने कभी भी किसीको कष्ट नही दिया। इसलिए आपके प्रार्थी सादर निवेदन करते है कि भारतीयों और वतनियोको साथ मिलाना तथा भारतीयोंको इस बातके लिए मजबूर करना, कि वे बारूदी हथियारोके लिए, जिनकी कि आत्मरक्षाके लिए आवश्यकता पड़ सकती हे, अनुमतिपत्र प्राप्त करनेसे पहले वतनी विभागसे पूछ-ताछ करें, नितान्त अपमानजनक होगा।

अन्तमे आपके प्रार्थियोकी प्रार्थना है कि उपर्युक्त विधेयकोको इस प्रकार संशोधित कर दिया जाये कि उनसे शिकायतकी सभी बातें दूर हो जायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-९-१९०६

३३५. ट्रान्सवालके भारतीयोंपर श्री लिटिलटनका वक्तव्य

स्थानिक पत्रोंमें प्रकाशित एक तारसे मालूम होता है कि श्री लिटिलटनने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा है, *मोटन* बनाम सरकारके परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेसे[1] ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिमें सुधार हो गया है। पूर्ण और उचित आदरके साथ हमारा खयाल यह है कि यह वक्तव्य तथ्योंके अनुरूप नहीं है। और फिर, अगर स्थितिमें कोई राहत मिली भी है तो उसके लिए उनको या सरकारको जरा भी श्रेय क्यों मिलना चाहिए, क्योंकि वह तो सरकारके विरोधके बावजूद प्राप्त की गई है? क्या यह सच नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालयको परवानेके लिए जो आवेदन दिया गया था उसका सरकारने विरोध किया था? सरकारकी ओरसे तीन अग्रगण्य वकील पैरवी कर रहे थे और वास्तवमें तो उसने सारे भारतीय समाजको यह परीक्षात्मक मुकदमा लड़नेके लिए मजबूर कर दिया, क्योंकि यह मुकदमा तब दायर किया गया था जब कि पुराने प्रामाणिक व्यापारियोंको भी इस बिनापर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया कि युद्धके ऐन पहले उनके पास परवाने नहीं थे। इस बातको काफी नहीं माना गया था कि वे युद्धके पूर्व बस्तियोंके बाहर व्यापार करते थे।

वस्तुतः हमें युद्ध-पूर्वके दिनोंकी जबरदस्त याद दिलाई गई है। जिस प्रकारके परीक्षात्मक मुकदमेका उल्लेख श्री लिटिलटनने किया है, ठीक उसी प्रकारका मुकदमा[2] उस समय भी चला था। तब ब्रिटिश सरकारने मुकदमा लड़नेमें भारतीयोंकी मदद की थी। भारतीयोंके स्वर-में-स्वर मिलाकर उसने यह दावा किया था कि १८८५ के कानून ३ के मातहत बस्तियोंके बाहर भारतीयोंको व्यापार करनेकी मनाही नहीं थी। परन्तु ट्रान्सवालके ब्रिटिश हाथोंमें चले जानेके बाद एक और ही तरहकी तान छेड़ी गई। मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमें उसी ब्रिटिश सरकारने अपने वकीलोंको भारतीय तर्कका विरोध करनेका निर्देश किया। इस सबकी जानकारी रखते हुए भी श्री लिटिलटन परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेका श्रेय स्वयं लें तो यह एक अजीब बात है। परन्तु, जैसा कि हमने कहा है, भारतीयोंकी स्थिति बोअर शासनकालमें जैसी थी, उससे किसी भी तरह सुधरी नहीं। हाँ, वह परीक्षात्मक मुकदमेके पहले जैसी थी, उससे बेहतर जरूर हो गई है। परन्तु, ट्रान्सवालमें ब्रिटिश सरकारकी स्थापनाके बाद सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत भारतीय *परवाना-शुल्क देनेके बाद* जहाँ चाहें वहाँ व्यापार कर सकते हैं। युद्धके पूर्व, ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें, भारतीय *कोई परवाना-शुल्क दिये बिना ही* जहाँ चाहते, व्यापार कर सकते थे। यह सच है कि भारतीय परवाना-शुल्क पेश करते थे, परन्तु बोअर सरकार उसे लेनेसे इनकार कर देती थी। भारतीय उसकी जानकारीमें और उसे सूचित करके बस्तियोंके बाहर व्यापार किया करते थे और वह ब्रिटिश विरोधके कारण उनपर मुकदमे चलानेमें असमर्थ थी। इस तरह, जहाँतक व्यापारका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति आजकी अपेक्षा युद्धके पूर्व बेहतर थी। दूसरी बातोंमें भी स्थिति काफी बुरी है, और वह युद्धके पहलेकी स्थितिसे किसी कदर भी कम निराशाजनक नहीं है।

१. फैसला यह था कि भारतीय व्यापारी हबीब मोटनको बस्तीके बाहर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार नहीं किया जा सकता।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १, ८, १०।

जहांतक इस देशमें भारतीयोंके प्रवासका सम्बन्ध है, वह अनुचित रूपसे दु:खद है। युद्धके पहले हर-किसी भारतीयको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी स्वतन्त्रता थी। आज किसी प्रामाणिक भारतीय शरणार्थीको भी, जो यह साबित करनेकी स्थितिमें है कि वह पहले ट्रान्सवालका अधिवासी रह चुका है और युद्धके पूर्व इस उपनिवेशमें बसनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमें ३ पौंडकी रकम अदा कर चुका है, उपनिवेशमें प्रवेशकी अनुमति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। और कोई ऐसा ब्रिटिश भारतीय, जो शरणार्थी नही है -- फिर भले ही उसकी योग्यता या दर्जा कुछ भी क्यो न हो -- सम्भवत: यहाँ प्रवेश नही कर सकता। ऐसे व्यक्तिकी अर्जीपर सरकार विचार ही नही करती। और भारतीयोंके प्रवासपर पूरा तो नही, किन्तु यह सारा प्रतिबन्ध खुले और उचित तरीकोंसे नही, बल्कि एक राजनीतिक अध्यादेशको अमलमें लाकर लगाया गया है। पहले-पहल यह अध्यादेश ट्रान्सवालमें उन लोगोंका प्रवेश रोकनेके लिए जारी किया गया था, जिनपर यह शक था कि इनका इरादा बगावत करनेका है। अब भारतीयोंको देशसे बाहर रखनेके उद्देश्यसे इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। पुराने शासन-कालमें भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंको शायद ही कभी छेड़ा गया हो; परन्तु अब यद्यपि यह सच है कि सरकारके खिलाफ कुछ कहा नही जा सकता, फिर भी इस विषयमें हकीकत यह है कि आज पॉचेफ-स्ट्रूममें एक मसजिदके निर्माणके खिलाफ आन्दोलन चल रहा है, और यह मसजिद शहरके किसी मुख्य स्थानमें नही, जैसा कि लोग बताते है, बल्कि एक गलीमें बनेगी। हम भारतीयोंके कष्टोंको और भी गिना सकते है और बता सकते है कि कैसे, ब्रिटिश सरकारके व्यवहार और ब्रिटिश मन्त्रियोंके भाषणोंसे भारतीयोंके दिलोंमें उठी हुई तमाम आशाओंके विपरीत, भारतीयोंके सामने जीवन और मरणका संघर्ष उपस्थित हो गया है। ऐसी स्थितिमें श्री लिटिलटनका यह कहना कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति सुधर गई है, यदि कमसे-कम कहा जाये तो, अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह कहना कि वे फिरसे ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे उपलब्ध सब अधिकारोंका भोग करनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन बन गये हैं, तबतक सम्भव नहीं होगा, जबतक कि १८८५ का कानून ३ और ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे नियम कानूनकी पुस्तक (स्टैटयूट बुक) से निकाल नही दिये जाते और न्याय-सम्बन्धी ब्रिटिश विचारोंके अधिक अनुरूप नही बनाये जाते। आज तो भारतीय सौतेला लड़का है, जो अपने माता-पितासे संरक्षण चाहता है और उसके लिए लालायित है, परन्तु वह संरक्षण उसे मिलता नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-४-१९०५

३३६. ट्रान्सवालके भारतीयोंके बारेमें महत्त्वपूर्ण फैसला

सभी यह जानते हैं कि ट्रान्सवालमें अनेक भारतीय अपने नामसे जमीन नहीं रख सकते, इसलिए गोरोंके नामपर रखते हैं। श्री सैयद इस्माइल नामके एक व्यक्ति जोहानिसबर्गके निवासी हैं। उनके नामपर कुछ जमीन थी जो उन्होंने ल्यूकस नामक अपने गोरे मित्र और जमीन मालिकके नाम कर रखी थी। यह जमीन जोहानिसबर्गके नगर-निगमने जब बस्ती (लोकेशन) आदि ली तब ले ली और हरजानेके रूपमें २,००० पौंड ल्यूकसके नामपर देनेका प्रस्ताव हुआ। ल्यूकस लड़ाईके समयमें गुजर गया। उसकी जायदाद दिवालियापनमें गई। चूँकि उसके लेनदारोंको पूरा चुकाया जा सके, इतना पैसा ल्यूकसकी मिलकियतमें नहीं था, इस कारण उसके न्यासियों (ट्रस्टियों) ने ल्यूकसके नामपर दर्ज सैयद इस्माइलकी जमीनके पैसोंपर हक जमाया। इसपर सैयद इस्माइलने उच्च न्यायालयमें मुकदमा दायर किया कि उक्त २,००० पौंड उसे मिलने चाहिए। इसमें ल्यूकसके लेनदारोंने दो सवाल उठाये। अर्थात्, सैयद इस्माइल जो पैसे माँगते हैं वे पैसे ल्यूकसके नामपर हैं और जिस जमीनपर सैयद इस्माइल हक बताते हैं, उस जमीनपर, अचल सम्पत्ति होनेके कारण, सैयद इस्माइलको मालिकीका हक नहीं है। सैयद इस्माइलकी ओरसे यह सफाई दी गई कि वह जमीन निन्यानबे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण अचल सम्पत्ति नहीं कही जा सकती, इसलिए भारतीयोंके उसकी मालिकी भोगनेपर रोक नहीं होनी चाहिए। और यदि यह सफाई उचित न मानी जाये तो जिस कानूनसे भारतीयोंको अचल सम्पत्तिपर स्वामित्व नहीं दिया जाता वह कानून ऐसा नहीं कहता कि गोरे तथा दूसरे लोग भारतीयोंकी तरफसे अचल सम्पत्ति अपने नामपर नहीं रख सकते। माननीय जजने फैसला सैयद इस्माइलके पक्षमें देते हुए बताया कि निन्यानबे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण उसे अचल[1] सम्पत्ति नहीं कहना चाहिए। इसलिए ऐसी जमीन भारतीयोंके नामपर नहीं चढ़ सकती। किन्तु सैयद इस्माइलकी दूसरी सफाई मंजूर करते हुए कहा कि भारतीयोंके लाभके लिए गोरे जमीन रख सकते हैं; और यदि गोरे धोखा देना चाहें तो ऐसी हालतमें भारतीय मालिकके हकके रक्षणका कर्त्तव्य कानून सँभालेगा। यह निर्णय बड़ा सन्तोषप्रद है; और यदि गोरेके नाम भारतीय लोग जमीन लेनेमें डरते हों तो उन्हें अब डरनेकी जरूरत नहीं है। फिर भी यह याद रखना चाहिए कि गोरा विश्वासपात्र व्यक्ति होना चाहिए और उससे साफ-साफ दस्तावेज लेने चाहिए। इस निर्णयसे हमको सरकारसे स्वत्वोंके विषयमें मोर्चा लेते हुए बल मिलेगा, ऐसा निश्चित दीखता है। हमें खबर मिली है कि उच्च न्यायालयके निर्णयके विरुद्ध ल्यूकसकी मिलकियतके न्यासीने अपील दायर की है। देखें, इसका क्या परिणाम होता है!

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-४-१९०५

१. यहाँ मूलमें भूल हो गई है "अचल" के बजाय "चल" शब्द चाहिए।

३३७. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके बारेमें लॉर्ड कर्ज़नका भाषण

रायटरके तारसे मालूम होता है कि भारतकी विधानसभामें लॉर्ड कर्ज़नने हमारे पक्षमें जोरदार भाषण किया है। इस भाषणमें उन्होंने कहा है कि जबतक भारतीयोंके स्वत्वोंकी सम्पूर्ण रक्षा करनेका सबूत दक्षिण आफ्रिकाके राज्य नहीं देते तबतक उनको भारतकी ओरसे सहायता नहीं मिलेगी। भारतीयोंका रक्षण करनेका काम भारत सरकारका है और उस कामको वह अंजाम देती रहेगी।

ये वचन हमें आनन्द देनेवाले हैं। इनका प्रभाव अच्छा ही पड़ेगा। यह भाषण बताता है कि यहाँपर जो परिश्रम हम कर रहे हैं वह व्यर्थ नहीं जा रहा है। हमारे लिए मुनासिब है कि हम और भी अधिक परिश्रम करते रहें और जब-जब प्रसंग आये, ढाये जानेवाले कष्टोंके बारेमें शिकायत करें। हमें यकीन है कि ऐक्यसे और मिलकर मेहनत करनेसे हम जीतेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–४–१९०५

३३८. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
१० अप्रैल, १९०५

माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन

प्रियवर,

कहते हैं, श्री लिटिलटनने यह कहा है कि ट्रान्सवालके परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके बाद ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति युद्धके पहलेकी स्थितिसे अच्छी हो गई है। *इंडियन ओपिनियन*के ८ अप्रैलके अंकके पहले सम्पादकीय लेखमें इस वक्तव्यका उत्तर दिया गया है। साधारणतः स्थिति तबसे अच्छी नहीं, खराब हुई है। परीक्षात्मक मुकदमेसे जो सुविधा भारतीयोंको मिली है, यह है कि वे युद्धके पहलेके दिनोंकी हालतमें पहुँच गये हैं। मगर इसका श्रेय भी सरकारको शायद ही मिल सकता है, क्योंकि उन्होंने सर्वोच्च न्यायालयके सामने भारतीयोंके मतका बड़े जोरसे विरोध किया था।

१. इस पत्रको दादाभाईने नीचेका अंश जोड़कर भारत-मन्त्री और उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेज दिया था:
"मुझे पूरी आशा है कि आप विरोध करेंगे और सम्राट्की ब्रिटिश भारतीय प्रजाके प्रति, जो आपसे राहतकी उम्मीद करती है, न्याय करेंगे।"

नेटालमें भारतीय-विरोधी रुखवाले कितने ही विधेयक पेश किये जा रहे हैं। *इंडियन ओपिनियनमें* इनका उल्लेख है। और ऑरेंज रिवर कालोनी रंगदार प्रजापर अपना शिकंजा हमेशा कड़ा करती जा रही है। एक नगरके बाद दूसरे नगरमें ऐसे नियम लगाये जा रहे हैं जो मेरी रायमें ब्रिटिश संविधानकी दृष्टिसे अनैतिक हैं। यदि ये ही विधान-परिषदके सामने विधेयकके रूपमें पेश होते तो श्री लिटिलटनकी सहमति उन्हें कभी न मिलती।

मैं गम्भीरतापूर्वक आशा करता हूँ कि आप महामहिम सम्राटके ब्रिटिश प्रजाजनोंकी रक्षा करेंगे और उनके साथ न्याय करेंगे। भारतीय सहायताके लिए आपका ही मुँह जोहते हैं।

आपका विश्वासपात्र,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६९) से।

३३९. पत्र: उपनिवेश-सचिवको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल ११, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
ब्लूमफॉंटीन

महोदय,

ऑरेंज रिवर कालोनीकी विभिन्न नगरपालिकाओंके संबंधमें उनके अन्तर्गत रहनेवाले रंगदार लोगोंकी बाबत *गवर्नमेंट गज़टमें* समय-समयपर जो विनियम छपते रहते हैं उनकी ओर, और "ब्लूमफॉंटीन नगरपालिकाकी कानूनी व्यवस्थाओंको संशोधित तथा परिपूर्ण करने" के अध्यादेशकी ओर मेरे संघका ध्यान आकर्षित किया गया है।

रेडर्सबर्ग शहरके विनियमोंमें मेरे संघने देखा है कि "वतनी" शब्दकी व्याख्या इस तरह की गई है कि उसमें सब रंगदार लोग शामिल हो जाते हैं। ब्रिटिश भारतीय भी इसमें अपवाद-रूप नहीं हैं। और इस शहरके, वैसे ही फ्रीड शहरके विनियमोंके अन्तर्गत भी, वहाँके रंगदार निवासियोंको नियंत्रित करनेके नियम बनाये गये हैं। मेरे संघके विनम्र मतसे ये नियम जलालत-भरे, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक हैं। बहुत संभव है कि उन शहरोंमें कोई भी ब्रिटिश भारतीय न रहते हों। फिर भी इस कारणसे उक्त आपत्तिजनक विनियम कम कष्टदायक नहीं हो जाते, क्योंकि यदि कोई भूला-भटका भारतीय उनमें से किसी भी शहरमें पहुँच जाये तो वह अकस्मात् अपने-आपको भयानक प्रतिबन्धोंसे जकड़ा हुआ पायेगा।

मेरे संघको यह देखकर दुःख हुआ है कि ब्लूमफॉंटीन नगरपालिकाको भी एक अध्यादेश द्वारा वैसे ही अधिकार दे दिये गये हैं। मेरा संघ यह समझता है कि ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस तरहकी रंगविरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओं तथा महारानीके मन्त्रियों द्वारा समय-समयपर की गई घोषणाओंके विरुद्ध है। मेरा संघ यह समझनेमें असमर्थ है कि ऑरेंज रिवर कालोनी क्यों इस प्रकारके कानूनों और विनियमोंको बर्दाश्त करती है।

यदि आप कृपाकर मुझे सूचित करेंगे कि क्या सरकारका इरादा इस विषयमें किसी प्रकारकी राहत देनेका है, तो मेरा संघ आपका बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४०. श्री बार्नेटका आरोप और श्री ऐंकेटिल

भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक (एजुकेशन सुपरिटेंडेंट) श्री बार्नेटने नेटालके कुछ गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंपर भारतीयोकी झोंपड़ियोंकी हालतके सम्बन्धमें — जिन्हे उन्होंने "सूअरोंके वाड़े" कहा है — आरोप लगाया था। इस आरोपके सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्रीसे सवाल पूछनेपर श्री ऐंकेटिल बधाईके पात्र हैं।

श्री मेडनने[1] उत्तर दिया है कि श्री बार्नेट द्वारा लगाया गया आरोप बहुत अतिरंजित है और भारतीय संरक्षक गिरमिटिया भारतीयोंकी सुख-सुविधाका प्रबन्ध करता है। श्री मेडनने इस आरोपपर संरक्षककी रिपोर्ट सदनके सामने पेश करनेका वादा किया। हम उपनिवेश-मन्त्रीके उत्तरको प्रत्येक दृष्टिसे असन्तोषजनक मानते हैं। आरोप अत्यन्त गम्भीर हे और भली-भाँति सोच-विचार कर ऐसे सुसंस्कृत लोगोंकी सभामे लगाया गया है, जिनकी उपनिवेशमे अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति है। उस समय श्री बार्नेट नेटालमे शिक्षाके प्रश्नपर आम भाषण कर रहे थे, और उपर्युक्त आरोप उनके भाषणका कोई प्रसंगसे पृथक्कृत अश नही हे। भाषण नेटालमें प्रचलित शिक्षा-प्रणालीपर एक गम्भीर आक्षेप है। ऐसे मामलेमे प्रवासी-सरक्षककी रिपोर्ट मॉगना बहुत-कुछ वैसा ही है, जैसा कि किसी आदमीको अपने ही मामलेके निर्णयका काम सौपना। हमारा दावा है कि श्री बार्नेटके आरोपमें सारेके-सारे भारतीय प्रवासी-विभागकी निन्दा शामिल है। हम यह नही कहते कि श्री बार्नेटका कथन सही है, परन्तु यह जरूर कहते है कि जिस विभागकी निन्दा की गई है उसीसे उस निन्दाके प्रतिवादमे रिपोर्ट प्राप्त करना आरोपका उत्तर देनेका तरीका नही है।

यह प्रश्न केवल गिरमिटिया भारतीयोके हितोंकी जानकारी प्राप्त करनेका नही है, बल्कि उपनिवेशकी नेकनामीका है। हम समझते हैं कि सरकारका प्रश्नकी तहतक छानबीन न करना और जनताको पूर्णरूपसे सन्तोष न देना बहुत ही अबुद्धिमत्तापूर्ण होगा। अगर स्वतंत्र जाँचके परिणामसे किसी तरह श्री बार्नेटके आरोपका समर्थन होता है तो जितनी जल्दी यह कलंक मिटाया जाये, उपनिवेशके लिए उतना ही अच्छा है; और अगर आरोप गलत सिद्ध होता है तो, श्री बार्नेटसे, भूतपूर्व सरकारी सेवकके नाते, कैफियत माँगी जाये। इसलिए हमे आशा है कि श्री ऐंकेटिल तबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे प्रश्न करते रहेंगे जबतक कि आवश्यक कार्रवाई न की जाये।

१. नेटालके उपनिवेश-सचिव।

यह भी देखनेकी बात है कि श्री बार्नेट ने अपना आक्रमण एक ऐसी श्रोता-मण्डलीके सामने किया था, जिसमें नेटालके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री सर अल्बर्ट हाइम और उपनिवेशके अन्य अनेक प्रमुख व्यक्ति शामिल थे। वक्ताके व्याख्यान दे चुकनेपर सर अल्बर्ट हाइमने एक लम्बी मीमांसा की थी और उसमें हमें श्री बार्नेटके गम्भीर आरोपका खण्डन कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ता। क्या उपनिवेश-मन्त्रीको इसमें विचारकी सामग्री प्राप्त नहीं होती?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-४-१९०५

३४१. धर्मपर व्याख्यान

जोहानिसबर्गके समाचारपत्रोंसे पता चलता है कि वहाँकी थियोसॉफिकल सोसाइटीने श्री गांधीको हिन्दू धर्मपर भाषण देनेके लिए आमन्त्रित किया और उसपर उन्होंने मेसॉनिक टेम्पलमें चार भाषण दिये। हर बार भवन भर जाता था। अन्तिम भाषण मार्च महीनेकी २५ वीं तारीखको दिया। इनमें से दो भाषणोंका विवरण स्टार[1] अखबारमें आ गया है। अपने अनेक पाठकोंकी माँगपर हम गांधीजीसे प्राप्त चारों भाषणोंका संक्षिप्त सार लेकर नीचे दे रहे हैं।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका अपमान

थियोसॉफिकल सोसाइटीने मुझे भाषण करनेके लिए बुलाया तब मैंने दो बातें सोचकर वह आमन्त्रण स्वीकार किया। मुझे दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए बारह बरस होने आते हैं। यहाँ मेरे देशवासियोंपर जो तकलीफें आती हैं, उनकी खबर सबको है। लोग उनके रंगको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह सब गलतफहमीसे होता है और यह गलतफहमी दूर करनेमें मुझसे जितनी बने, उतनी मदद करनेके हेतुसे मैं दक्षिण आफ्रिकामें पड़ा हूँ। इसलिए मुझे लगा कि यदि मैं सोसाइटीका आमन्त्रण स्वीकार करूँ तो जो मेरा कर्त्तव्य है उसमें एक हदतक मदद मिलेगी, और यदि मैं आपको इन भाषणोंसे भारतीयोंके प्रति थोड़ा भी अच्छा खयाल करा सका तो अपना भाग्य धन्य समझूँगा। मुझे आपको बताना तो [हिन्दुओं][2] ही के विषयमें है; किन्तु हिन्दू और अन्य जो भारतीय हैं उनकी बहुत-सी रीति एक ही है। सारे भारतीयोंके गुण-दोष समान हैं और सारे एक ही शाखासे उतरे हैं। फिर दूसरा कारण यह था कि थियोसॉफिकल सोसाइटीके उद्देश्योंमें से एक उद्देश्य विभिन्न धर्मोंका मिलान करके उनका तत्त्व खोजकर लोगोंको यह बताना है कि वास्तवमें देखा जाये तो सारे धर्म ईश्वरको पहचाननेके अलग-अलग मार्ग हैं और कोई धर्म खराब है, ऐसा कहते हुए हिचक होनी चाहिए। मैंने सोचा कि यदि मैं हिन्दू धर्मके बारेमें दो बातें कहूँगा तो थोड़ा-बहुत यह हेतु भी सिद्ध होगा।

हिन्दू

हिन्दू वास्तवमें हिन्दुस्तानके रहनेवाले नहीं माने जाते। पश्चिमके विद्वान कहते हैं कि हिन्दू और यूरोपके अधिकांश लोग एक समय मध्य एशियामें निवास करते थे। वहाँसे अलग होकर कुछ लोग यूरोप गये, कुछ ईरान गये और कुछ हिन्दुस्तानमें पंजाबके रास्तेसे पहुँचे और वहाँ

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. यहाँ मूलमें भूलसे 'हिन्दुओं' की जगह 'हिन्दियों' हो गया है।

आर्यधर्मका प्रसार हुआ। हिन्दुओंकी संख्या २० करोड़से ऊपर है। उनका नाम हिन्दू इसलिए पड़ा कि वे सिन्धु नदीके पार बसते थे। उनकी प्राचीनतम पवित्र पुस्तकें वेद हैं। बहुत-से श्रद्धालु हिन्दू ऐसा मानते हैं कि वेद ईश्वरकृत और अनादि हैं। पश्चिमके विद्वानोंकी मान्यता है कि ईसासे २,००० वर्ष पहले वेद रचे गये। पूनाके प्रख्यात विद्वान श्री तिलकने बताया है कि वेद कमसे-कम १०,००० वर्ष पुराने हैं।[1] हिन्दुओंकी प्रधान विशेषता है उनका सर्वव्यापक ब्रह्ममें विश्वास। पृथ्वीपर प्रत्येक व्यक्तिका लक्ष्य होना चाहिए मोक्ष प्राप्त करना, और मोक्षका अर्थ है जन्म-मरणके भयसे छूटना और ब्रह्ममें लीन हो जाना। उनकी नीतिमें मृदुता और समदृष्टि मुख्य गुण है और उनके लौकिक व्यवहारमें जाति-भेद सर्वोपरि है।

हिन्दू धर्मकी पहली कसौटी जब बुद्धदेवने जन्म लिया तब हुई। बुद्धदेव स्वयं एक [राजा]के[2] पुत्र थे। उनका जन्म ईसासे ६०० वर्ष पहले हुआ बताया जाता है। उस समय हिन्दू ऊपरके दिखावेपर मोहित हो रहे थे और ब्राह्मण स्वार्थके कारण हिन्दू धर्मकी रक्षाका अपना कर्त्तव्य भूल गये थे। जब यह सब बुद्धकी दृष्टिमें पड़ा तब उन्हें अपने धर्मकी यह दशा देखकर दया आई। उन्होंने संसार छोड़कर तपस्याको अपनाया। कितने ही वर्ष ईश्वर-भक्तिमे लीन रहकर व्यतीत किये। अन्तमें उन्होंने हिन्दू धर्ममे सुधार सूचित किये। उनकी पवित्रताका ब्राह्मणोंपर असर हुआ और बहुत हदतक यज्ञके लिए प्राणियोका वध बन्द हो गया। इस तरह बुद्धदेवने नया धर्म स्थापित किया, ऐसा नही कहा जा सकता। पर उनके बाद जो लोग आये उन्होने उसे एक अलग धर्मका रूप दिया। महान् सम्राट अशोकने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए भिन्न-भिन्न देशोंमें लोग भेजे; और लंका, चीन, ब्रह्मदेश आदि मुल्कोमें बौद्ध धर्मको फैलाया। इस समय हिन्दू धर्मकी यह खूबी प्रकट हुई कि किसीको जबरदस्ती बौद्ध नही बनाया गया। केवल वादविवाद द्वारा तर्क करके और प्रधान रूपसे अपने शुद्ध चालचलनसे प्रचारकोंने लोगोके मनपर छाप डाली थी। ऐसा कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म भारतमें तो एक ही थे और आज भी दोनोंके मूल तत्त्व एक ही है।

मुहम्मद पैगम्बरका जन्म

आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर बौद्ध धर्मका असर अच्छा हुआ और उससे हिन्दू धर्मके रक्षक जागृत हुए। आजसे १,००० वर्ष पहले हिन्दू धर्म एक दूसरे सम्पर्कमें आया जो ज्यादा जोरदार था। हजरत मुहम्मद अबसे १,३०० वर्ष पहले जन्मे। उन्होंने अरबस्तानमें बहुत अनाचार देखा। यहूदी धर्म तब गोते खा रहा था। ईसाई धर्म वहाँ पाँव नही धर पाता था और लोग विषयी और स्वच्छन्द हो गये थे। यह सब मुहम्मदको ठीक नही लगा। उनका मन सुलगने लगा और उन्होंने ईश्वरका नाम लेकर अपने देशवासियोंको होशमें लानेका निश्चय किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि आस-पासके लोगोंपर उनके हार्दिक जोशकी छाप तुरन्त पड़ी और बड़ी तेजीसे इस्लामका प्रचार हुआ। जोश इस्लामकी जबरदस्त खूबी है। इससे कई अच्छे काम हुए और कई बार बहुत बुरे काम भी हुए। १,००० वर्ष पूर्व इस्लाम फैलानेके लिए भारतपर गजनीकी सेना चढ़ आई। हिन्दू मूर्तियोंका खण्डन शुरू हुआ और सोमनाथतक हमलावर गये। इस तरह एक तरफसे जबरदस्ती हो चली और दूसरी तरफसे इस्लामी फकीर उसकी वास्तविक खूबी बताने लगे। जो इस्लाममें आते हैं वे सब बराबर हैं, इस बातका असर हलके वर्णके लोगोंपर बहुत अच्छा पड़ा और लाखो हिन्दुओंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इससे हिन्दुओमे बड़ी खलबली मची।

१. देखिए, *आर्कटिक होम इन दि वेदाज्*।

२. यहाँ मूलमें 'सम्राट' शब्दका प्रयोग है।

बनारसमें कबीर पैदा हुए। उन्होंने सोचा कि हिन्दू विचारके अनुसार हिन्दू-मुसलमानमें भेद नहीं है। अगर दोनों अच्छा काम करें तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं। मूर्तिपूजा हिन्दू धर्मका आवश्यक तत्त्व नहीं है — यह सोचकर उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्मको एक करना शुरू किया। किन्तु उसका बहुत असर नहीं हुआ और वह एक अलग पंथ होकर रह गया जो अभीतक देखनेमें आता है। कुछ बरसों बाद पंजाबमें गुरु नानक हुए। उन्होंने वही कबीरका तर्क मानकर, दोनों धर्मोंको एक करनेका विचार पसन्द किया; किन्तु उसके साथ-साथ उनका खयाल यह भी था कि जरूरत पड़े तो इस्लामका तलवारसे मुकाबला करके हिन्दू धर्मकी रक्षा की जाये। इसीमें से सिक्ख धर्म उत्पन्न हुआ और लड़नेवाले सिक्ख तैयार हुए। इस सबका नतीजा यह हुआ है कि भले ही इन दिनों भारतमें हिन्दू और मुसलमान ऐसे दो मुख्य धर्म हैं, फिर भी दोनों कौमें हिल-मिलकर रहती हैं और दोनों, एक-दूसरेकी भावनाको चोट न पहुँचे, ऐसा बर्ताव करती हैं। हाँ, राजनीतिक संघर्ष और उत्तेजनासे खटास उत्पन्न होती है। हिन्दू योगी अथवा मुस्लिम फकीरके बीच बहुत थोड़ा अन्तर देखनेमें आता है।

पैगम्बर यीशु ख्रीस्त

इस तरह जब इस्लाम और हिन्दू धर्ममें प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी उसी बीच लगभग ५०० वर्ष पहले ईसाई गोवाके बन्दरगाहमें उतरे और हिन्दुओंको ईसाई बनाने लगे। उन्होंने भी कुछ बलपूर्वक और कुछ समझाकर काम लेनेकी पद्धति अपनाई। उनमें कई पादरी अत्यन्त कोमल और दयालु थे। उनको सन्त कहें तो भी गलत नहीं होगा। उनका असर फकीरोंकी तरह हिन्दू जातिके निचले वर्णोंपर बहुत हुआ। परन्तु बादमें जब ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यताका गठबन्धन किया गया तब हिन्दुओंने ईसाई धर्मको पसन्द नहीं किया। और आज हम देखते हैं कि उनके ऊपर एक बहुत बड़ी ईसाई शक्तिका राज्य होनेपर भी विरला ही हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार करता है। फिर भी ईसाई धर्मका असर हिन्दू धर्मपर बहुत अधिक हुआ है। उन पादरियोंने ऊँचे प्रकारका शिक्षण दिया, हिन्दू धर्मकी बड़ी-बड़ी कमियाँ बताई और परिणाम यह हुआ कि कबीर जैसे दूसरे हिन्दू शिक्षक पैदा हुए और उन्होंने ईसाई धर्ममें जो अच्छा था उसे सीखना शुरू किया और हिन्दुओंकी कमियाँ दूर करनेका आन्दोलन चलाया। राजा राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ऐसे ही व्यक्ति थे। पश्चिम भारतमें दयानन्द सरस्वती हुए और वर्तमानकालमें भारतमें ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज बने। यह निश्चय ही ईसाई धर्मका असर है। फिर श्रीमती ब्लेवेट्स्कीने[1] भारतमें आकर हिन्दू-मुसलमान दोनोंको पश्चिमी सभ्यताके दोषोंसे परिचित कराया और उन्हें समझाया कि उसपर आसक्त नहीं होना चाहिए।

हिन्दू धर्मके तत्त्व

इस तरह आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर तीन आक्रमण — बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मके हुए। किन्तु कुल मिलाकर देखें तो हिन्दू धर्म उनसे उबरकर निकला है। हरएक धर्ममें जो अच्छाई थी उसे उसने ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है। इस धर्मके लोग क्या मानते हैं, यह जान लेना चाहिए। ईश्वर है। वह अनादि है। निर्गुण है। निराकार है। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान है। उसका मूल स्वरूप ब्रह्म है। वह करता नहीं है, कराता नहीं है। वह सत्ता नहीं चलाता। वह आनन्दरूप है और उसके द्वारा ही सारी सृष्टिका पालन होता है। आत्मा है, सो देहसे पृथक् है। वह भी अनादि है, अजन्म है। उसके मूल स्वरूप और ब्रह्ममें भेद नहीं है। किन्तु

१. थियोसोफिकल सोसाइटीकी संस्थापिका।

कर्मवश या मायावश समय-समय पर देह धारण करता रहता है और अच्छे या बुरे कर्मोंसे अच्छी या बुरी योनियोंमें जनमता रहता है। जन्म-मरणके चक्रके बन्धनसे छूटना और ब्रह्ममें लीन होना मोक्ष है। मोक्ष पानेका साधन बहुत अच्छे काम करना, जीव-मात्र पर दया करना और सत्यमय होकर रहना है। इस ऊँचाईतक जा पहुँचनेपर भी मोक्ष नहीं मिलता; क्योंकि ऐसे अच्छे कामोंका फल भोगनेके लिए भी शरीर मिलता ही है। इसलिए इससे भी एक कदम आगे बढ़ना जरूरी है। कर्म करना तो अनिवार्य है ही, अब उनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। उन्हें करनेके लिए करें किन्तु उनके परिणाम पर नजर न रखें। थोड़ेमें, सब ईश्वरको अर्पण करें। हम कुछ कर रहे हैं या कर सकते हैं, स्वप्नमें भी ऐसा गुमान नहीं रखना चाहिए। सबको समान-भावसे देखना चाहिए। ये हैं हिन्दू धर्मके तत्त्व। हिन्दुओंमें अनेक सम्प्रदाय हैं; फिर लौकिक आचारोंको लेकर कुछ फिरके बन गये हैं। उन सबका विचार इस प्रसंगपर करना जरूरी नहीं है।

परिसमाप्ति — सुननेवालोंसे प्रार्थना

यदि आपमें से किसीपर भी यह सब सुनकर अच्छा असर हुआ हो और यदि आपको ऐसा लगा हो कि हिन्दू या भारतीय, जिनके देशमें ऐसा धर्म प्रचलित है वे एकदम नीची प्रजातिके लोग नहीं होंगे, तो आप राजनीतिके मामलोंमें बिना उलझे मेरे देशवासियोंकी सेवा कर सकते हैं।

हम सबको प्रेमसे रहना है यह सारे धर्म सिखाते हैं। मेरा हेतु आपको धर्मका उपदेश देना नहीं था। मैं वैसा करने योग्य हूँ भी नहीं। मेरा इरादा भी नहीं है। फिर भी यदि आपके मनपर कोई अच्छा असर पड़ा हो तो उसका लाभ मेरे भाइयोंको देनेकी कृपा करें। जब उनकी निन्दा हो तो उनका पक्ष लें जो अंग्रेज जातिको शोभता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–४–१९०५

३४२. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १७, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जिन मामलोंका उल्लेख करते हो, उनपर तुम्हें श्री किचिनसे बात कर लेनी चाहिए। चुप नहीं बैठना चाहिए। तुम देखोगे कि तुम्हारी उत्सुकतासे, जो बिलकुल वाजिब है, उन्हें बुरा नहीं लगेगा। नया इंतजाम कैसा रहा? क्या जॉब-वर्क अब पूरा हो गया है, या होनेको है? जबतक तुम यह नहीं बताते हमारी हिन्दी ग्राहक-संख्या क्या है अथवा हिन्दी पाठक एक निश्चित संख्या की गारंटी नहीं देते तबतक हम हिन्दी-स्तंभ नहीं बढ़ा सकते। मैं एक पत्र तुम्हारे इस पत्रको पानेके पहले डाकमें छोड़ चुका हूँ। वास्तवमें उसमें मैंने यही लिखा है कि यदि पर्याप्त ग्राहक नहीं बनते तो मैं हिन्दी स्तंभोंमें कमी कर देना भी पसन्द करूँगा। यही बात तमिल पर लागू होती है। फिलहाल मेरे वहाँ पहुँच सकनेकी कोई सूरत नहीं है। मैं १०० पौंड भेज ही चुका हूँ। आगेके तीन महीनोंतक तुम एम० सी० कमरुद्दीनके नाम रुक्कों पर दस्तखत मत करना।

हमें कमसे कम छः महीनोंकी मुहलत मिलनी चाहिए। श्री नाजर तुम्हें गुजराती दें चाहे न दें, चिंता नहीं करना। क्या तुम निश्चित रूपसे मईके शुरूमें आ सकते हो? यदि अपनी तारीख पहलेसे तय करो तो मैं तुम्हारे लिए अनुमतिपत्रका प्रबंध कर सकता हूँ। यदि अप्पू चाहता है कि उसे दो प्रतियाँ भेजी जायें तो बेशक केवल एकका पैसा लगाकर ऐसा कर सकते हो। और बंबईमें श्री रुस्तमजीको नियमसे तीन प्रतियाँ भेजते रहना है। क्या लंदन और भारतकी भेंट-सूची छोटी नहीं की जा सकती? विदेशोंमें यानी ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकाके बाहर भेंटमें कुल कितनी प्रतियाँ जाती हैं? मैं बड़े परिश्रमसे तमिल सीख रहा हूँ और यदि सब ठीक रहा तो मैं अधिकसे-अधिक दो महीनोंमें तमिल लेख काफी समझने लगूँगा। मैं तमिल पुस्तकें पानेके लिए जरा आतुर हो उठा हूँ। अगर आसानीसे न मिलें तो उनके लिए कोशिश करो। मेरा खयाल है, तुम मेरी जरूरत समझ गये हो। तुम श्री मूडलेके घर जा सकते हो। मैंने उन्हें लिख दिया है।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३२) से।

३४३. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग

अप्रैल १९, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। हिन्दी और तमिलके बारेमें, मुझे आशा है, तुम किचिनसे बातें कर लोगे। निःसन्देह खुद मुझे दोनों भाषाओंको छोड़ देनेका बड़ा दुःख होगा। मैनरिंगके बारेमें मैं तुमसे बिलकुल सहमत हूँ। श्री वेस्टसे इसपर चर्चा कर लेना। मैनरिंगके कबतक जानेकी संभावना है? उम्मीद करता हूँ कि शाह कल शामको रवाना हो रहा है, उसके साथ तुम्हें केक भिजवा सकूँगा। तमिल पुस्तकें मिल गई हैं। वे उपयोगी होंगी। वैसे मुझे पोपके बड़े व्याकरणकी जरूरत थी। मैंने मदनजीतको अपनी जो किताब दे दी सो तुमने देखी है। तुमसे केक ठीक नहीं बनती तो भट्टी ठीक नहीं होगी। या तुम काफी मोन नहीं डालते। आटेको पानीमें कोई तीन घंटे फूलने देना चाहिए। जब केक बनाने लगो तब पहले घीका मोन दो और उसे आटेमें एक-जी कर दो। तब पानी डालो और खूब अच्छी तरह उसे गूंधो।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३३) से।

३४४. पत्र : "आउटलुक" को[1]

[अप्रैल २२, १९०५
के पूर्व]

सेवामें
सम्पादक,
आउटलुक
जोहानिसबर्ग

महोदय,

श्री डब्ल्यू० हिल्सने *आउटलुकको* लिखे अपने पत्रमें ऐसी बातें कही है, जो तथ्योंसे प्रमाणित नही होती। सम्पादकने किसी ऐसी नीतिका समर्थन नही किया है "जिससे ट्रान्सवाल एक परोपजीवी प्रजातिके हाथोंमें चला जायेगा।" स्वयं श्री हिल्स अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते है कि ब्रिटिश भारतीय बहुत उद्यमी और परिश्रमी है। ऐसे लोगोकी प्रजातिको परोपजीवी कह कर पुकारना न्यायसंगत नही है।

श्री हिल्स कहते हैं, एशियाइयोंके प्रति उनका विरोध "रंग-द्वेष-जनित नही, बल्कि आर्थिक कारणोंसे है।" इसके समर्थनमें वे सब नेटालवासियोके अनुभवका उल्लेख करते है। अब सब नेटालवासियोके अनुभवकी जानकारी हासिल करना तो बहुत कठिन है। कुछ लोगोका अनुभव, जो नेटाली लोगोके प्रतिनिधि भी माने गये हैं, कागजातमें मौजूद है। स्वर्गीय श्री सॉंडर्स, स्वर्गीय सर हेनरी बिन्स, स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन, स्वर्गीय श्री एस्कम्ब, वर्तमान उपनिवेश-सचिव श्री मेडन, सर जी० एम० सटन, सर जेम्स हलेट और अन्य अनेक सज्जनोंने नेटालके भारतीयोकी उपयोगिताकी साक्षी दी है। स्वर्गीय सर हेनरी बिन्सने एक आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था कि भारतीयोके प्रवासका खयाल तब किया गया था, जब कि नेटाल दिवालियापनके कगार पर खड़ा था। सर जेम्स हलेटने अभी कुछ ही महीने पहले वतनी मामलोके आयोगके सामने गवाही देते हुए जोरदार शब्दोंमे कहा था कि नेटालकी समृद्धिका श्रेय भारतीय प्रवासियोको है और उनके बिना नेटालका काम नही चल सकता तथापि, नेटालको भारतीयोंकी जरूरत है, इसके समर्थनमे सबसे बड़ा प्रमाण तो स्वय श्री हिल्सने ही दिया है। अगर १८९६ से लेकर, अब तक यहाँ भारतीयोकी आबादी दुगुनी हो गई है तो इसका कारण क्या है? कारण सिर्फ यह है कि नेटालके मुख्य उद्योगो — अर्थात् चीनी, चाय और कोयलाके उद्योगों — को चालू रखनेके लिए अधिकाधिक भारतीयोकी आवश्यकता प्रकट की जा रही है। याद रखना चाहिए कि श्री हिल्स जिन भारतीयोका खयाल कर रहे है वे बिना बुलाये नही आये है, बल्कि उपनिवेशके लिए वस्तुतः आमंत्रित किये गये है। भारतीय प्रवासी न्यास निकाय (इंडियन इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) के सामने अब भी १८,००० आवेदन-पत्र मौजूद है, जिनको निबटाना बाकी है। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोकी उपलब्धिकी अपेक्षा माँग बहुत ज्यादा है। वेरुलममे हमेशा भारतीयोकी बहुत बड़ी आबादी रही है। श्री हिल्स यह खेद व्यक्त करते हुए, कि वह भारतीय नगर बन गया है, यह भूल जाते है कि उसके सामने दो ही चारे थे — या तो वह भारतीयोका नगर बन जाता, या नगर रहता ही नही। सबसे ज्यादा

१. यह पत्र *आउटलुकमें* "गा०" के सांकेतिक नामसे १४ मार्चके श्री डब्ल्यू० हिल्सके पत्रके साथ छपा था। पत्रके सम्पादकने श्री हिल्सका पत्र "इस विषयके एक विशेष जानकार व्यक्ति" को भेज दिया था। संकेत गांधीजीकी ओर था। पत्र और उत्तर दोनों बादमें *इंडियन ओपिनियनमें* छपे थे। श्री हिल्सका पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

GANDHI,

21-24 Court Chambers.
Corner Rissik & Anderson Streets
P.O. Box 6522.

188

Johannesburg, 17th April 1905.

My dear Chhaganlal,

I have your letter. You should talk to Mr. Kitchin about the matters you mention. You should not sit still. You will find that your curiosity, which will be quite legitimate, will not be resented. How is the new arrangement working? Is the job work now finished, or about to be?. Before you tell me how many Hindi subscribers we have, or unless the Hindi people would guarantee so many subscribers, we cannot afford to increase the Hindi columns. In fact the letter that crossed your letter, under reply, would show you that I would even decrease the Hindi columns if you have not enough support. The same thing applies to Tamil. There is no prospect of my being able to go there at present. I have already sent £100. You should not sign the notes in favour of M.C. Camroodeen three months hence. We should get at least six months. You need not bother about Mr. Nazar giving you any Gujarati. Can you definitely come in the beginning of May? If you fix your date before hand I can arrange for your permit. If Appoo wants you to send two copies do so by all means charging for one only, and you should regularly send three copies to Mr. Rustomji at Bombay. Can you not reduce the complimentary list for India and London? What is the total of foreign complimentary copies, that is outside British South Africa? I am studying Tamil very diligently and if all is well I may be able to fairly understand the Tamil

- articles -

छगनलाल गांधीके नाम एक पत्र



भारतीय नेटालके उत्तरी तटपर जाते हैं। उसका विकास या तो भारतीय मजदूरोंसे होगा या बिलकुल होगा ही नहीं। नेटालके लोगोंने सोचनेमें ज्यादा बुद्धिमानी की है। उन्होंने भारतीय मजदूरोंके जरिये तटवर्ती जमीन पर खेती करानेमें पसोपेश नहीं किया। और, याद रहे, उत्तरी तटपर भी जो बड़ी-बड़ी महलों जैसी इमारतें हैं और जिनमें गोरे लोग रहते हैं, पूर्ण रूपसे भारतीय प्रवासियोंकी ही मददसे बनी हैं, और वे उन्हींके मालिकोंकी सम्पत्ति भी हैं। इस तरह, नेटालका उदाहरण पूर्णतः भारतीयोंके पक्षमें है और जिन "आर्थिक कारणों" पर श्री हिल्स इतना जोर देते हैं, उन्हींसे नेटालके लोग भारतीयोंकी सहायताका आश्रय लेनेके लिए विवश हुए हैं।

फिर, श्री हिल्स यह कहनेमें भी भूल करते हैं कि "पिछली सरकारके अधीन कानून द्वारा, जैसी कि उसकी १५ वर्ष तक व्याख्या की जाती रही थी, एशियाई बस्तियोंमें ही रहनेके लिए बाध्य थे" यह तो एक सुविदित तथ्य है कि पिछली सरकारके शासनमें भारतीय पूर्णतः दण्ड-भयसे मुक्त होकर बस्तियोंके बाहर रहते थे और इस तरह रहनेके कारण ही वर्तमान सरकारको उन्हें बेदखल करना कठिन हो रहा है। यह सच है कि उस समय उन्हें ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त था, इसलिए अब उसे वापस नहीं लिया जा सकता। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि बोअरोंके शासनमें भारतीयोंके प्रवासपर कोई रुकावट नहीं थी। इसके विपरीत आज, जैसा कि मुख्य परवाना-सचिवने बताया है, केवल उन भारतीयोंको उपनिवेशमें पुनः प्रवेशकी इजाजत दी जाती है जो युद्धके पहले देशमें बसे हुए थे — और सो भी बहुत पूछताछ और विलम्बके बाद। यद्यपि श्री हिल्स सामान्य गोरी आबादी और उसके कल्याणकी बातें करते हैं, अपने सिद्धान्तोंको लागू करनेमें वे सिर्फ भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंका ही खयाल करते हैं। तो क्या उनकी आपत्ति केवल भारतीय व्यापारियोंके बारेमें ही है? श्री हिल्स यह मान कर फिर गलती करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकी रंगदार लोगोंको तो परवाने देनेसे इनकार किया जाता है, जबकि वे भारतीयोंको बेरोकटोक दे दिये जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत सरकार किन्हीं रंगदार लोगोंको, रंगदार होनेके आधार पर, परवाने प्राप्त करनेसे रोक ही नहीं सकती। और अगर श्री हिल्सकी आपत्ति अन्ततः — जैसी कि वह दिखलाई पड़ती है — उपनिवेशका व्यापार पूर्णतः या अधिकांशमें भारतीयोंके हाथोंमें जाने देनेके विरुद्ध है, तो उनके साथ सहानुभूति व्यक्त करनेमें बहुत कठिनाई नहीं है; और न *आउटलुकके* सम्पादकने यह सुझाव दिया है कि इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धाका साधारण कानून द्वारा विनियमन न किया जाये। परन्तु भारतीय व्यापारका इस प्रकारसे विनियमन करना और हर प्रकारसे हैरान करनेवाले कानून बना-बनाकर भारतीयोंको उपनिवेशसे खदेड़ देना दो भिन्न बातें हैं। एकके साथ, जबतक कि निहित स्वार्थोंको हानि नहीं पहुँचाई जाती और भारतीयोंको, भारतीय होनेके नाते ही, परवाने देनेसे इनकार नहीं किया जाता, प्रत्येक समझदार उपनिवेशी पूरी तरहसे सहमत रहेगा। परन्तु, भारतीयोंको ऐसे कार्योंसे, जैसे सड़कोंकी पटरियों पर चलनेसे, जमीन-जायदाद खरीदनेसे, कड़े म्यूनिसिपल विनियमोंके अनुसार निवास करनेसे, या जहाँ वे चाहें वहाँ मसजिद बनानेसे रोकना शायद ही न्याय और औचित्यके अनुकूल है। अगर ऐसे प्रतिबन्धों का मूल रंगभेद-जनित नहीं है तो वे निरर्थक हैं। और यह शंकाजनक है कि इस प्रकारके द्वेषभावकी लपटोंको उत्तेजित करनेवाले लोग आगामी पीढ़ियोंका कोई भला कर रहे हैं। हकीकतें जैसी हैं, वैसी मंजूर करनी चाहिए। भारत भी ट्रान्सवालके समान ही ब्रिटिश साम्राज्यका भाग है। इन दोनोंके बीच आदान-प्रदानकी नीति तो होनी ही चाहिए, मगर साथ ही, गैरजरूरी तौरपर उन लोगोंकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेवाली कोई कार्रवाई न की जानी चाहिए जो, आखिरकार तो, उसी सम्राटकी प्रजा हैं, जिसकी प्रजा वे स्वयं हैं, और जिनकी विशिष्ट परम्पराएँ हैं तथा जो एक आश्चर्यजनक प्राचीन सभ्यताके उत्तराधिकारी हैं।

सारी कठिनाई दो सीधे-सादे विधेयकोंसे दूर की जा सकती है। एकसे तो तमाम व्यापारिक परवानोंका नियंत्रण स्थानिक संस्थाओंको सौंप दिया जाये; हाँ, विशेष मामलोंमें सर्वोच्च न्यायालयको पुनर्विचार करनेका अधिकार रहे; और दूसरेके द्वारा, केप प्रवासी अधिनियमके आधारपर उपनिवेशमें प्रवासका विनियमन कर दिया जाये।

श्री हिल्सके एक और कथनमें भूल-सुधार करना आवश्यक है। *स्टारमें* एक वक्तव्य प्रकाशित करके इस कथनको चुनौती दी गई थी कि पीटर्सबर्गमें १३ गोरे वस्तु-भंडार मालिक हैं और उनके विरुद्ध ४९ भारतीय वस्तु-भंडार मालिक। इसके बाद कमसे-कम कुछ तो सावधानी जरूरी है। ब्रिटिश भारतीय संघने निश्चयात्मक रूपसे प्रकट किया है[1] कि उस शहरमें केवल २३ भारतीय वस्तु-भंडार है। श्री हिल्सने जिन श्री क्लाइनेनबर्गकी नकल की है वे उस कथनका खंडन नहीं कर सके। इसलिए श्री हिल्सके लिए जरूरी है कि वे श्री क्लाइनेनबर्गसे दरियाफ्त कर लें कि क्या उन्होंने *स्टार*में जो आँकड़े दिये थे उनकी पुष्टि की जा सकती है। अब तक ब्रिटिश भारतीय संघका ही कथन अंतिम है। यह अत्यन्त महत्त्वर्ण है कि जो लोग लोकमतके नेतृत्वके जिम्मेदार है वे अपने सामने सच्ची बातें ही रखें, सच्ची बातोंके अलावा और कुछ नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४५. ऑरेंज रिवर कालोनी

जोहानिसबर्गके कर्मठ ब्रिटिश भारतीय संघका पत्र[2] अन्यत्र मिलेगा। यह पत्र ऑरेंज रिवर कालोनीके उपनिवेश-सचिवको उपनिवेशकी एशियाई-विरोधी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें भेजा गया है। इस लोकापवादके मामलेमें कदम उठानेके लिए हमें संघको अवश्य ही बधाई देनी चाहिए। अबतक हमें नगरोंके विनियमोंकी ओर ध्यान आकर्षित करना पड़ा है। ये विनियम जिस छूटके साथ बने और काममें आये, उससे हिम्मत पाकर ब्लूमफॉंटीनकी नगरपालिकाने अब एक अध्यादेश बनवा लिया है। इसके द्वारा उसे लगभग वे ही अधिकार प्राप्त हो गये हैं, जो कि उपनिवेशके अनेक नगरोंमें उन विनियमोंके द्वारा हड़प लिये गये है, जिनकी ओर इस पत्र द्वारा अनेक बार ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। अध्यादेशके पास होनेसे मालूम होता है कि उसकी एशियाई-विरोधी उपधाराएँ साम्राज्यके उपनिवेश-मन्त्रीने स्वीकार कर ली हैं। जैसा कि ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने अपने पत्रमें कहा है, निस्सन्देह ऐसा कानून "पतनकारी, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक" है। और, "ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस प्रकारकी रंगदार-विरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओं और स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियों द्वारा बार-बार की गई घोषणाओंके विरुद्ध है।"

हम देखते है कि सर मंचरजी[3] श्री लिटिलटनसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके सम्बन्धमें फिर-फिर प्रश्न पूछ रहे है। हम मानते है कि यद्यपि ऑरेंज रिवर कालोनीमें यह प्रश्न अभीतक सक्रिय रूपसे ब्रिटिश भारतीयोंके मार्गमे बाधक नही हुआ है, फिर भी यदि वे इसे संजीदगीके साथ उठायेंगे तो उन्होंने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी जो अनेक सेवाएँ की है, उनमें यह कार्रवाई और जुड़ जायेगी। हम उस दिनके आगमनके बारेमें निराश नही है, जब कि भारतीयोंको एक उचित अनुपातमे उस उपनिवेशमे बसने दिया जायेगा। इस समय भी वहाँ शायद २०० भारतीयोंसे कम न होंगे, जो उपनिवेशके भिन्न-भिन्न शहरोंमे रहकर अपनी आजीविका उपार्जित कर रहे है। हम

१. देखिए, "पत्र: *स्टारको*" दिसम्बर २४, १९०४से पूर्व।
२. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," अप्रैल ११, १९०५।
३. लन्दनके दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष।

अनुभव करते हैं कि उनकी भी — क्योंकि वे मुट्ठी-भर हैं — जानबूझ कर किये जानेवाले इस अपमानसे रक्षाकी जरूरत है। राज्यके कानूनोंके कारण ही वे इस अपमानके शिकार बनाये गये हैं।

शुद्ध साम्राज्यीय दृष्टिकोणसे तो हम एक कदम और आगे जा सकते हैं और कुछ पूछ सकते हैं कि क्या यह दूरदर्शितापूर्ण या उचित है कि इस भूमिके मूल निवासियोंको अनावश्यक प्रतिबन्ध लगा-लगाकर परेशान किया जाये? ब्रिटिश शासनमें किसी समाजको गतिरुद्ध अथवा अप्रगतिशील नहीं रहने दिया जाता। मूल निवासियोंको धीरे-धीरे शिक्षा दी जा रही है। यह मान लेना गलत होगा कि उनकी कोई भावनाएँ नहीं हैं, या वे अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रतामें कमी होनेपर दुःखी नहीं होते। हम ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोंको नियन्त्रित करनेके विनियमोंकी तुलना उन नियमोंसे करते हैं जो किसी व्यवस्थित जेलमें कैदियोंका नियन्त्रण करनेके लिए बनाये जाते हैं। और ऐसी तुलनामें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अगर ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोंको थोड़ी-सी ज्यादा स्वतंत्रता है तो उसमें सिर्फ मात्राका अन्तर है, प्रकार का नहीं। ट्रान्सवालके आदिवासियोंका बहुत लम्बा प्रार्थनापत्र बताता है कि उनमें ब्रिटिश झंडेकी छत्रछायामें अपने अधिकारोंकी भावना जाग रही है। सच्ची राजनीतिज्ञता यह होगी कि उनकी मुनासिब जरूरतोंका पहले ही से अनुमान कर लिया जाये और वे पूर्ण कर दी जायें। ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें तो दीख पड़ता है कि मूल निवासियोंके मनमें कोई भावना है, ऐसा माना ही नहीं जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४६. लन्दन विश्वविद्यालयमें तमिल भाषा

लंकासे हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है। उसमें हमसे अनुरोध किया गया है कि हम मैट्रिक तथा कला-विषयक अन्य परीक्षाओंके पाठ्य-क्रममें तमिल भाषाको वैकल्पिक विषयके रूपमें स्थान देनेके लिए लन्दन विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको प्रार्थनापत्र भेजनेके उद्देश्यसे एक सभा आयोजित करें। हम तमिल शिक्षा-प्राप्त भारतीयोंका ध्यान इस मामलेकी ओर आकर्षित करते हैं। हमारा खयाल है कि इस विषयको हर तरहसे प्रोत्साहन देना चाहिए। तमिल शिक्षा-प्रेमियोंको एक सभा करके लन्दन विश्वविद्यालयकी बाह्य परीक्षाओंके रजिस्ट्रारके नाम भेजनेके लिए एक सीधा-सादा प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें जाकर बसे हुए तमिल लोगोंने अपने प्रार्थनापत्र पहले ही भेज दिये हैं और हमें कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग भी वैसा ही क्यों न करें। तमिल सबसे बड़ी द्राविड़ भाषाओंमें से एक है और उसका साहित्य बहुत सम्पन्न है। वह भारतकी इतालवी भाषा मानी जाती है। इसलिए वह लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा वैकल्पिक विषयके रूपमें स्वीकार की जानेके सर्वथा योग्य है। लन्दन विश्वविद्यालय दुनियाकी सबसे उदार संस्था माना गया है और यह देखते हुए कि तमिल भाषा सम्राटकी प्रजाके करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाती है, साम्राज्यकी राजधानीके विश्वविद्यालयके लिए उचित ही होगा कि वह तमिल-भाषी आवेदकोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

सारी कठिनाई दो सीधे-सादे विधेयकोंसे दूर की जा स
परवानोंका नियत्रण स्थानिक संस्थाओंको सौंप दिया जाये;
लयको पुनर्विचार करनेका अधिकार रहे; और दूसरेके द्वारा,
उपनिवेशमें प्रवासका विनियमन कर दिया जाये।

श्री हिल्सके एक और कथनमें भूल-सुधार करना
प्रकाशित करके इस कथनको चुनौती दी गई थी कि पीटर्सन
और उनके विरुद्ध ४९ भारतीय वस्तु-भंडार मालिक। इसके बाद
है। ब्रिटिश भारतीय संघने निश्चयात्मक रूपसे प्रकट किया है
वस्तु-भंडार हैं। श्री हिल्सने जिन श्री क्लाइनेनवर्गकी नकल की
सके। इसलिए श्री हिल्सके लिए जरूरी है कि वे श्री क्लाइनेनवर्ग
स्टारमें जो आँकड़े दिये थे उनकी पुष्टि की जा सकती है। अ
कथन अंतिम है। यह अत्यन्त महत्त्वर्ण है कि जो लोग लोकमत
सामने सच्ची बातें ही रखें, सच्ची बातोंके अलावा और कुछ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४५. ऑरेंज रिव

जोहानिसबर्गके कर्मठ ब्रिटिश भारतीय संघने
कालोनीके उपनिवेश-सचिवको उपनिवेशकी एशि
इस लोकापवादके मामलेमें कदम उठानेके
अबतक हमें नगरोंके विनियमोंकी ओर ध्य
साथ बने और काममें आये, उससे हिम्म
बनवा लिया है। इसके द्वारा उसे ल
अनेक नगरोंमें उन विनियमोंके द्वा
ध्यान आकर्षित किया जा चुका
विरोधी उपधाराएँ साम्राज्यके
संघके अध्यक्षने अपने पत्रमें
जनक" है। और, "ऑ
परम्पराओं और स्वर्गीया

हम देखते हैं कि
फिर प्रश्न पूछ रहे हैं।
रूपमें ब्रिटिश भारती
तो उन्होंने दक्षिण
जुड़ जायेगी। हम
अनुपातमें उस उप
न होंगे, जो उर्पा

१. देखिए,
२. देखिए
३. लन्दनो

मंचरजी मेरवानजी भाव-
नंतोषजनक है। श्री लिटि-
बात है। किन्तु जब ताजे
। ऐसे अरुचिकर मामलोंका
ुल पर्याप्त कारण है। श्री
ऐसा कहनेसे उनका आशय
यह मामला पेश किया हो,
तरपर टिप्पणी करते हुए इसे
हराता है। भारतीय संरक्षकके

खानोंमें नियुक्त भारतीयोंका
ा, और यह खुद ऐसी बात है

ार करनेमें चूकती है
नहीं किया
किसी दबावके

३४८. डर्बनमें जाड़ा-बुखार या मलेरिया

मलेरिया डर्बनमें बड़े जोरसे चल रहा है। पिछली जनवरीमें मलेरियाके केवल १२ रोगी थे, और अभी जो मार्च महीना बीता उसमें इसके ६१२ रोगी हुए। इतनी बड़ी तादाद खौफनाक है। इसमें मौतें ज्यादा नहीं होतीं यह तसल्लीकी बात है। फिर डॉक्टर म्यूरिसनने बताया है कि यह बीमारी ज्यादातर औरतों, बच्चों और उनको हुई है, जो घरमें अधिक रहते हैं। इसका कारण यह बताते हैं कि जूलूलैंडसे मच्छरों द्वारा मलेरिया आया है। मलेरियाको रोकनेके लिए डॉ० म्यूरिसन नीचे लिखे उपाय बताते हैं:

१. बहुत बारीक छेदवाले पर्दे [मच्छरदानी] अपनी खाट पर हरएकको लगाने चाहिए। खाटके ऊपर कुछ मच्छर हों तो उन्हें दूर करके चारों ओरसे गद्दोंके किनारोंको पर्दों पर दबा देना चाहिए। पर्दा फटा हुआ हो तो जबतक उसे सुधार न लिया जाये तबतक वह निकम्मा समझा जाये।

२. जबतक सम्भव हो मलेरिया रोकनेके लिए कुनैन न ली जाये। किन्तु यदि मलेरिया-वाले घरमें रहना पड़ रहा हो या पर्दोंके बिना सोनेकी मजबूरी हो तो रोज सवेरे नाश्तेसे पहले पाँच जौ-भर कुनैन ली जाये।

३. घरमें या आसपास पानी बिलकुल जमा न होने दिया जाये। नाली आदिको जाँच कर गड्ढे बन्द कर दिये जायें।

४. जहाँ पानीके बड़े गड्ढे हों वहाँ, वे जबतक बन्द न हो जायें, उनमें मिट्टीका तेल डाला जाये।

५. यदि घरके आसपास अपनी हदमें पानी जमा रहता हो अथवा झाड़-झंखाड़ उग निकलते हों तो अधिकारियोंको इस सम्बन्धमें सूचित करना चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। सार यह है कि घर और आँगन साफ रखना, मच्छर न होने देना, शरीर स्वच्छ रखना और आहार हलका लेना चाहिए।

मलेरियाके रोगियोंकी संख्या गोरोंमें काले आदमियोंसे ज्यादा है। ६१२ रोगियोंमें ४०० गोरे, १८५ एशियाई, और २७ काफिर थे। इससे पता चलता है कि कुछ रोग कुछ कौमोंको अधिक पकड़ते हैं, कुछको कम। प्लेगके शिकार भारतीय लोग अधिक होते हैं। यो देखें तो "कठौती कूंडीकी क्या हँसी करे" की-सी बात तय होती है। फिर भी मलेरिया भयावह रोग नहीं है। लेकिन प्लेग जबरदस्त और मारक रोग है। जांच करने पर दोनोंके कारणोंका पता लग सकता है। इसलिए पूरी सावधानी बरतना हमारा कर्त्तव्य है और उसमें हमें चूकना नहीं चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४९. ईस्ट लंदनमें भारतीय

ईस्ट लंदनमें भारतीयोंके पैदल पटरियोंपर चलने और नगरमें रहनेपर कुछ प्रतिबन्ध हैं। वहाँका कानून ऐसा है कि जो भारतीय जमीनके मालिक हों अथवा अच्छे किरायेदार हों वे शहरमें आजादीसे रह सकते हैं। किन्तु नगर-परिषदसे उन लोगोंको पास प्राप्त कर लेना चाहिए। जो माँगे, उसे पास देनेके लिए टाउन क्लार्क बँधा हुआ है। भारतीयोंने आम तौरसे इस प्रकार पास लेनेमें आनाकानी की। डेढ़ वर्ष तक जूझते रहे और काम चलता रहा; किन्तु जब नगर-परिषदने मुकदमा दायर कर दिया तब मजिस्ट्रेटने नगर-परिषदके हकमें फैसला दिया। इसके विरोधमें भारतीयोंने अपील की। उसमें यह मुद्दा रखा कि वे "एशियाई" नहीं है, परन्तु भारतमें बादमें जाकर बसे हैं। वे "आर्य" हैं। हमें इस मौकेपर कहना चाहिए कि हमारे भाइयोंने इस मुकदमेमें पैसे बरबाद किये और अपनी हँसी कराई। "आर्य है" इत्यादि बात सही है। परन्तु अदालतमें इस प्रकारकी दलील देनेसे नुकसान ही होता है, और हुआ भी।

ईस्ट लंदनका कानून जब बना उस समय जागनेकी जरूरत थी। बने हुए कानूनोंको रद कराना बहुत मुश्किल होता है। अब हमारी सलाह है कि चुपचाप कानूनका पालन करके प्रमाण-पत्र ले लेना चाहिए। दूसरी जगहों, जैसे ट्रान्सवाल आदिकी तुलनामें ईस्ट लंदनमें अब भी स्थिति बेहतर है। कानूनके अनुसार चलें और तब भी लड़ाई लड़ते रहें। परन्तु वह लड़ाई संसदकी मार्फत लड़नी चाहिए। ईस्ट लंदनमें हमारे पास वोटकी ताकत और वोटका हक है। इसलिए उसका ठीक उपयोग करनेसे अच्छा परिणाम निकलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३५०. गिरमिटिया भारतीय

नेटालके *गवर्नमेंट गज़टसे* पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्तिपर ३ पौंडका जो कर लगाया गया है उसके लागू होनेके बाद सन् १९०४ के दिसम्बरकी ३१ वीं तारीखतक ११,१७५ मर्द और ५,३३४ औरतें गिरमिटसे मुक्त हुए। उनमें से ७,५८५ मर्दोंने और १,८४५ औरतोंने ३ पौंडका कर दिया है। अर्थात् मुक्त होनेवाले गिरमिटियोंमें से ५० प्रतिशतने प्रति व्यक्ति लगाया गया यह कर सरकारको दिया है। और वे लोग इस समय कालोनीमें नौकरी अथवा दूसरा धन्धा करते है।

इन व्यक्तियोंसे सरकार २८,२९० पौंडकी उगाही कर चुकी है। इसपर विचार करें तो यह कोई मामूली रकम नहीं है। ब्रिटेनकी रियायाको ऐसी सजा दी जाती है, यह बहुत दुःखकी बात है। लेकिन जहाँ चारा न हो वहाँ सन्तोष कर लेना पड़ता है। लॉर्ड कर्जनके लगाये हुए हिसाबके अनुसार प्रत्येक भारतीयकी औसत वार्षिक आय ३० रुपयेकी होती है। मतलब यह हुआ कि यह कर हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानीकी औसत आयसे डेढ़ गुना अधिक है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३५१. जोहानिसबर्गमें मलायी बस्ती

जोहानिसबर्गकी सरकारने फ्रीडडॉर्पकी कुछ जमीन लेनेके विचारसे कानून बनानेके लिए आयोग नियुक्त किया है। फ्रीडडॉर्पमें मलायी बस्ती आ जाती है या नहीं यह अभी निश्चित नहीं हुआ है; लेकिन सम्भव है कि उसका कुछ अंश उसमें आ जायेगा। आयोग इस तरह विचार करेगा :

१. किस रीतिसे रहनेवालोंके पाससे जमीन ली जाये।

२. यदि जमीन ली जाये तो उन लोगोंको हरजाना किस तरह दिया जाये।

३. इस सम्बन्धमें प्रमाण प्राप्त करना।

आयोगके मुखिया जोहानिसबर्गके मुख्य मजिस्ट्रेट श्री वडव नामजद हुए हैं। आयोग कब बैठेगा, यह अभी निश्चित नहीं हुआ है। लेकिन निश्चित हो जानेपर जो लोग मलायी बस्तीमें रहनेवाले हैं, उन्हें सावधानी रखनी होगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३५२. ज्यूजित्सु

यूरोपकी प्रजाकी आँख धीरे-धीरे खुलती जा रही है। कवि नर्मदाशंकरने गाया है कि :

राज करे अंग्रेज देश रहता है दबकर,
दबे न क्योंकर देश, देहका देखो अन्तर,
वह पँचहत्या ज्वान, पांच सौ को भी पूरे।

कविने इसमें यह बताया है कि अंग्रेजोंके शरीरकी काठी विशाल है, यह उनकी बढ़तीका एक मुख्य कारण है। जापानियोंने दिखा दिया है कि दारोमदार शरीरके कदपर कोई खास नहीं है। रूसी लोग बहुत बड़े कदवाले हैं फिर भी बौने और पतले जापानियोंके सामने उनकी कुछ चल नहीं पाती। इसपर अंग्रेज अमलदार विचारमें पड़ गये और उन्होंने यह तय पाया कि व्यायाम और शरीरके नियमोंके सम्बन्धमें यूरोप बहुत पिछड़ा हुआ है। शरीरके भिन्न-भिन्न जोड़ और हड्डियों-पर कब क्या असर पड़ता है यह जापानी लोग बड़ी अच्छी तरह समझ सकते हैं, और इसलिए वे लोग अजेय बन गये हैं। व्यायाम करते समय गर्दनकी और पैरोंकी किस नस पर दबाव पड़नेसे क्या असर होता है, यह तो हमारे बहुत-से पाठकोंको ज्ञात होगा। जापानियोंने उसी बातका सम्पूर्ण शास्त्र बनाया है। अंग्रेजोंकी फौजको यह शास्त्र सिखानेके लिए एक जापानी शिक्षक रखा गया है, और हजारोंको यह युक्ति सिखा दी गई है। इस शास्त्रका जापानी नाम ज्यूजित्सु है। फिर भी यह सवाल बना रहता है कि जब सभी प्रजा ज्यूजित्सु सीख लेगी तब फिर कुछ नई खोज करनी होगी; और इस प्रकार चरखी चलती ही रहेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

इस हफ्ते अंग्रेजीका काम कैसा हुआ। क्या रघुवीर बिलकुल चला ही गया? मुझे उसके लिए बहुत अफसोस है। क्या तुमने रातको काम करना बन्द कर दिया?

निःशुल्क-सूचीमें श्री एडवर्ड बी० रोज, ४५, ग्रेट ऑर्मन्ड स्ट्रीट, ब्लूम्सबरी, लन्दनका नाम चढ़ा लो। तुम इसी चालू अंकसे शुरू कर सकते हो।

शुभचिन्तक

मो० क० गांधी

[पुनश्च]

मिठाइयाँ देसाई लाये थे यह मालूम हो गया।[1]

संलग्न : एक वक्तव्य

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३४) से।

३५६. पत्र : छगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग
मई १, १९०५ के बाद][2]

चि० छगनलाल,[3]

तुम्हारी चिट्ठी और पोपकी पुस्तिका मिली। अगर पी० डेविस तीनों भाग ३० शिलिंगसे कममें देनेको राजी हों तो तुम २५ पौंडमें[4] तीनों खरीद सकते हो। अगर वे पहला भाग १२ शिलिंग ६ पेंसमें बेचें तो तुम उसकी कीमत चुका सकते हो। अगर वे तीनों भाग एक-साथ देने अन्यथा बिलकुल न देनेका आग्रह करें और तीनोंके ३० शिलिंग ही माँगें तब भी तुम्हें दाम चुका देना चाहिए और दूसरे दो भाग लेकर भेज देने चाहिए।

हाँ, प्रेसमें तुम्हारे नियोजनके बाद मैंने तुम्हें ५ पौंड १ शि० ६ पेंस भेजे थे। मैंने वह रकम प्रेसके नाम इसलिए डलवा दी है कि अन्तमें मेरी स्थिति क्या रहती है यह मैं देख सकूँ। निस्सन्देह यह रकम और शाहकी १६ पौंडकी रकम इस सालके खर्चेमें शामिल नहीं होगी। शाहको दिये गये ५ पौंड और उनको उस्तरेके लिए दिये गये ५ शिलिंग मेरे नाम लिख देना। इस हफ्ते भेजी गई गुजराती सामग्री काफी है या अभी और भेजूँ?

शुभचिन्तक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३५) से।

१. यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

२. इस पत्रमें जो पोपकी पुस्तिका हैंड बुक ऑफ *तामिल ग्रामरका* उल्लेख किया है और खर्चेका ब्योरा दिया है, इन दोनोंकी चर्चा इससे पहलेके पत्रमें है; इससे मालूम होता है कि यह पत्र बादकी तारीखका है।

३. मूल फटा-फटा है। नामके अन्तिम दो वर्ण बच रहे हैं। विषयसे जान पड़ता है कि पत्र छगनलाल गांधीको लिखा गया था। देखिए पिछला शीर्षक।

४. पौंड स्पष्ट ही भूलसे लिखा गया है। शिलिंग होना चाहिए।

३५७. ट्रान्सवालका संविधान

जबसे ट्रान्सवालका संविधान प्रकाशित हुआ है तबसे दक्षिण आफ्रिकामें हरएक की जबानपर उसकी ही चर्चा है। लोगोंका जितना ध्यान इस संविधानकी ओर आकर्षित हुआ है, उतना किसी अन्य ब्रिटिश उपनिवेशीय संविधानकी ओर आकर्षित हुआ हो, यह हमें याद नहीं आता। हर समाचारपत्रने इसपर सम्पादकीय प्रकाशित किये हैं; दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्तिने उसपर अपना मन्तव्य दिया है और उक्त संविधानके सम्बन्धमें प्रकट की गई सम्मतियोंका सार कुल मिलाकर प्रशंसात्मक ही जान पड़ता है; यद्यपि उनमें कुछ विरोधी आलोचना भी है। वास्तवमें लॉर्ड मिलनरने जोहानिसबर्गमें अपने विदाई भाषणमें ऐसे परिणामकी पूर्व कल्पना कर ली थी। उन्होंने कहा था कि यह संविधान कदाचित् पूरी तरह किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर सकेगा, किन्तु सब निष्पक्ष व्यक्ति इसे अंग्रेजों और बोअरोंको एक दूसरेके समीप लाने तथा निकट भविष्यमें जनताको पूर्ण स्वराज्यके लिए तैयार करनेके सच्चे प्रयत्नके रूपमें ग्रहण करेंगे।

तफसीलके बारेमें की गई आपत्तियाँ ऐसी आपत्तियाँ हैं जो हमारी रायमें, अन्य स्वशासित उपनिवेशोंके संविधानोंकी जानकारीके अभावमें की गई हैं। बात यह है कि यद्यपि स्वराज्य अथवा अन्य प्रातिनिधिक संस्थाओंकी प्राप्तिके लिए जोरदार आन्दोलन किये जाते रहे हैं; किन्तु पहले तफसीलकी जाँच इतनी बारीकीसे कभी नहीं की गई। लोग अबतक एक सिद्धान्तकी स्वीकृति-मात्रसे सन्तुष्ट हो जाया करते थे; किन्तु हम देखते हैं कि आज वे हर तफसील अपने खयालातके अनुसार रखनेका आग्रह करते हैं। इसलिए विधानके बारेमें ताज द्वारा निषेधाधिकार सुरक्षित करनेकी बातका इतनी गम्भीरतासे विरोध किया जाता है। किन्तु यदि स्वशासित उपनिवेशोंके संविधानोंकी जाँच-पड़ताल करनेकी तकलीफ उठाई जाये तो यह मालूम हो जायगा कि निषेधाधिकार सदा ही सुरक्षित रखा गया है और कभी-कभी उसका उपयोग भी किया गया है। उदाहरणार्थ, जब आस्ट्रेलिया सरकारने एशियाइयोंको एशियाई होनेके नाते अलग रखनेका एशियाई-विरोधी अधिनियम बनाया तब श्री चेम्बरलेनने उस अधिनियमको अस्वीकार करनेमें कोई आगा-पीछा नहीं किया; और ऐसा ही नेटालमें भी हुआ। उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल द्वारा भारतीयोंको भारतीय होनेके नाते मताधिकारसे वंचित करनेके लिए की गई पहली कार्यवाहीको लॉर्ड रिपनने मुस्तैदीसे रोकथाम की थी। उत्तरदायी शासनसे पूर्व आजतक जितने संविधानोंके मंजूर होनेकी हमें जानकारी है उनमें ट्रान्सवालका संविधान शायद सबसे अधिक उदारतापूर्ण है। यह तथ्य सहूलियतके साथ भुला दिया गया है। दूसरी आपत्ति यह है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशके साथ वही व्यवहार नहीं किया गया है जो ट्रान्सवालके साथ किया गया है। उनका सम्बन्ध समस्त शासनके मूलसे है। जबतक ब्रिटेन प्रमुख शक्ति है और जबतक शासन-सत्ताएँ अन्ततः शक्ति-पर निर्भर करती हैं, तबतक प्रस्तुत स्थितियोंमें जो-कुछ अपरिहार्य है, उससे असन्तोष प्रकट करना निरर्थक है।

संविधानके निहित गुण-दोषोंके सिवा, सबसे मुख्य बात तो लॉर्ड लिटिल्टनका वह खरीता है जिसने स्वयं संविधानकी भूमिकाका काम दिया है। वह एक ब्रिटिश मन्त्रीके योग्य मानवतापूर्ण प्रलेख है।

विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोणसे विचार करें तो यह अनुभव न करना कठिन है कि ब्रिटिश भारतीय और उसी तरह रंगदार ब्रिटिश लोग केवल सौतेली सन्तान हैं और वे उपेक्षित छोड़

दये गये हैं। उपनिवेश-सम्बन्धी मामलोंमें उनकी बात नहीं पूछी जाती। वे जानबूझकर पृथक् रके अपमानित किये जाते हैं। श्री लिटिलटन कहते हैं:

> **महामहिमकी सरकार, १९०२ की सन्धिकी शर्तोंके लिहाजसे महामहिमकी रंगदार प्रजाको प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था करनेमें असमर्थ रही है।**

ौर यहाँ इसपर ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्री लिटिलटनने भी "वतनी" शब्दके न्तर्गत अन्य लोगोंको लेनेकी आम गलती की है। सन्धिकी शर्तोंमें केवल दक्षिण आफ्रिकाके तनियोंका उल्लेख है। तब फिर यह निष्कर्ष क्यों निकाला गया कि उसमें अन्य रंगदार लोग ामिल हैं? श्री लिटिलटन आगे कहते हैं:

> **तथापि आबादीके जिन अंशोंको विधानसभामें सीधा प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, उनके हितोंकी रक्षाके लिए आजकी तरह गवर्नरको अपनी हिदायतोंसे ऐसे किसी भी विधेयकको सुरक्षित रखना आवश्यक होगा जिसके द्वारा गैर-यूरोपीय लोगोंपर वे रुकावटें और निर्योग्यताएँ लगाई जा सकती हों जो जन्मजात यूरोपीय लोगोंपर लागू न हों।**

आशा की जाती है कि इस रक्षित अधिकारका व्यवहार पूरा-पूरा किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-५-१९०५

३५८. भारतीयोंकी शिक्षा

नेटालकी संसदमें शिक्षाके सम्बन्धमें बोलते हुए संसद-सदस्य श्री विलशायरने कहा कि सरकारको भारतीयोंकी शिक्षाके लिए अधिक साधन उपलब्ध करने चाहिए। भारतीयोंको शिक्षाकी ावश्यकता है और जिन भारतीयोंका जन्म नेटालमें हुआ है उनके प्रति सरकारकी जिम्मोरी खास है। इस भाषणके लिए हमें इन सज्जनका आभार मानना चाहिए। ज्यों-ज्यों शिक्षाका सार अधिक होगा त्यों-त्यों हर प्रकारसे हमारी स्थितिमें सुधार होनेकी सम्भावना है। आखिर पना कर्तव्य पूरा किये बिना सरकारका छुटकारा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि डीस्मिथमें भारतीयोंकी अलग पाठशाला नहीं है, इसीलिए सरकारने अच्छी स्थितिके भारतीयोंके च्चोंको वर्तमान पाठशालामें प्रविष्ट करनेकी स्वीकृति दे दी है।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके शिक्षा विभागके भूतपूर्व अधीक्षक श्री आर्जेटने ॉरेंज रिवर कालोनीमें भाषण देते हुए कहा कि वे काफिरों (हब्शियों) की शिक्षाके लिए बसूटोडमें विशेष प्रयास करेंगे। औद्योगिक शिक्षाकी ओर उनका ध्यान पर्याप्त है। भारतीयोंकी ाक्षाके प्रति भी उनका खयाल बहुत सहानुभूतिपूर्ण था और वे ट्रान्सवालमें उनके बच्चोंके लिए ाठशालाएँ स्थापित करनेका प्रयास सदा करते रहे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-५-१९०५

३५९. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक और ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ६, १९०५

[चि० छगनलाल,][1]

आज सारी गुजराती सामग्री भेज रहा हूँ; शायद अब और न भेजूँ। खंडेरियाने मुझे बताया कि उसने पीटर्सबर्ग-अभिनन्दनका[2] विवरण भेजा है। मैं गुजरातीमें जो सम्पादकीय उपलेख भेज रहा हूँ अगर इसके खिलाफ कुछ हो तो तुम वह भाग काट देना यानी स्थानापन्न उच्चायुक्तकी झूठी तारीफकी कोई बात नहीं हो। उसका उत्तर उतना सन्तोषप्रद नहीं है जितना हो सकता था। मैं जो भेज रहा हूँ उससे यह साफ दिखेगा।

देसाईने बताया कि तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं है। तुम्हारे फुंसी-फोड़े हो रहे हैं। यह अक्षम्य है। जरूर भोजनकी कोई गड़बड़ी होगी। वेस्टके सादे जीवनका अनुकरण करो। इसपर जितना जोर दूँ उतना थोड़ा है। दोपहरके भोजनमें हम सब कूनेकी रोटी, मूँगफली, मक्खन और मुरब्बा ले रहे हैं। रोटी घर काट लेते हैं और दफ्तरमें ले जाते हैं और भोजन वहीं हो जाता है। अगर शहरमें भोजन करना पड़े तो तुम भी ऐसा ही कर सकते हो। मैं चाहता हूँ कि तुम बहुत संभालकर सब-कुछ करो। भूकम्प-निधिके[3] बारेमें तुम्हें गुजरातियोंसे मिलना चाहिए। वह कहीं ठप न हो जाये। यहाँ मैं जो-कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। क्या कावा अभीतक नहीं आये? श्री मुखर्जी और श्री दादाभाई दोनोंने मुझे लिखा है कि अप्रैलके बीचमें उन्हें *ओपिनियनके* अंक नहीं मिले[4]। . . . . . चैकोंके सम्बन्धमें हैं . . . . . .

तुम्हारा और चि० मगनलालका पत्र मिला। इस बार पिछली बारसे गुजराती सामग्री दुगुनी भेज रहा हूँ। अभी और भी भेजनेकी उम्मीद है। वहाँकी तकलीफोंका तुम्हारी चिट्ठीसे अन्दाज कर सकता हूँ। मैं अपने अवकाशका बहुत-सा समय तमिलमें लगाता हूँ। इसलिए जितना चाहिए उतना नहीं कर पाता। अबसे जहाँतक बनेगा गुजरातीकी तो काफी सामग्री आजकी तरह शनिवारकी डाकसे रवाना कर दिया करूँगा। मैं जो कुछ लिखता हूँ उसे दुबारा नहीं पढ़ता, इसका ध्यान रखना। मुझे *इंडियन रिव्यू* भेजना। मैं उसमें से तरजुमा कर सकूँगा।

चि० मगनलालकी चिट्ठी पढ़कर सन्तोष हुआ। तुम लोगोंने शाक-सब्जी उगा ली है, यह अच्छा किया। कीड़े शाक-सब्जीको नुकसान तो नहीं पहुँचाते, यह लिखना। सबसे अच्छी किसकी क्यारी है? दादा सेठने अभीतक मुझे बुलाया नहीं है। अगर वे बुलायेंगे तो मैं आऊँगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२३६) से।

१. दफ्तरी नकलमें सम्बोधन नहीं है; किन्तु पत्रकी इबारतसे यह असन्दिग्ध रूपसे प्रकट है कि यह किसको लिखा गया था।

२. यह अभिनन्दनपत्र उच्चायुक्तको दिया गया था; "देखिए सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय," १३-५-१९०५।

३. देखिए "भारतमें भूकम्प," १३-५-१९०५।

४. यहाँसे आगे शब्द अपठनीय हैं। इसके आगे दो अनुच्छेद गुजरातीमें हैं जिनका अनुवाद यहाँ दिया गया है।

३६०. नये उच्चायुक्त और भारतीय

[मई ६, १९०५][1]

परमश्रेष्ठ लॉर्ड सेल्बोर्न अब थोड़े ही दिनोंमें जोहानिसबर्ग पहुँच जायेंगे। ब्रिटेनके प्रसिद्ध पत्रकार श्री स्टेडने अप्रैल मासके *रिव्यू ऑफ रिव्यूज़* नामक पत्रमें उनका जीवन-वृत्त दिया है, उससे प्रकट होता है कि परमश्रेष्ठ सेल्बोर्नने जब नवम्बर १, १८९९ को लड़ाईके बारेमें भाषण दिया था तब वे श्री चेम्बरलेनके सचिव थे। उन्होंने भाषण देते हुए बताया था कि युद्ध करनेका उद्देश्य बोअरोंके अधिकार छीन लेना नहीं था बल्कि बोअरों तथा अंग्रेजोंको समान अधिकार देना था। ब्रिटिश सरकारने स्वार्थ-भाव या आर्थिक विचारोंसे प्रेरित होकर यह कार्रवाई नहीं की थी; बल्कि उसे तो दूसरोंके अधिकारोंकी छानबीन करके उनका संरक्षण करना था। ब्रिटिश सरकार जैसे कैनेडा तथा आस्ट्रेलियाके लोगोंकी संरक्षक है वैसे ही दक्षिण आफ्रिकाके सिद्दियों और ट्रान्सवालमें बसे भारतीयोंकी भी संरक्षक है। इसलिए उनकी रक्षाके लिए युद्ध कर्त्तव्य हो गया था। ब्रिटिश सरकारने जो वचन दिया है उसकी पूर्ति करना उसका कर्त्तव्य हो तो उसे उपर्युक्त सब लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करनी चाहिए। ब्रिटिश सरकारका कर्त्तव्य था कि वह ब्रिटिश प्रजाके, फिर वह काली हो या गोरी और चाहे जहाँ जाये वहाँ, अधिकार सुरक्षित रखे। परमश्रेष्ठने इस विचारसे लड़ाईका समर्थन किया।

श्री स्टेड इस भाषणका विवरण देते हुए कहते हैं कि अब यह देखना है कि लॉर्ड सेल्बोर्न किस तरह अपने वचनका पालन करते हैं। हम आशा करते हैं कि उक्त महोदय अपने वचनोंपर दृढ़ रहकर अंग्रेजोंका नाम उज्ज्वल करेंगे और भारतीयोंको उन अत्याचारोंसे मुक्त करायेंगे, जो उनपर किये जा रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

1. देखिये "पत्र: छगनलाल गांधीको," मई ६, १९०५।

३६१. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ११, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। काबाने मुझे लिखा है कि वे जब रवाना होना चाहते थे तब रवाना नहीं हो सके। वे १९ अप्रैलको जरूर रवाना हो चुके होंगे। उनका जो पत्र अभी मिला है उसमें उन्होंने लिखा है कि वे अपनी पत्नीको साथ नहीं ला रहे हैं। वे अपने साथ शायद हरिलाल और गोकुलदासको लायें; मगर चूंकि उनका कोई तार नहीं आया है, इसलिए मेरा यह खयाल नहीं कि वे रवाना हुए हैं। मुझे ऑर्चर्ड बहुत असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। तुमने उनके बारेमें कुछ नहीं कहा है। मेहरबानी करके मुझे बताओ कि क्या बात है। आनन्दलालकी[1] एक अजीब चिट्ठी मिली है। उनका कहना है कि वे अकेले रहते हैं और चाहते हैं कि जिन कमरोंमें बीन रहते थे मैं उन्हें उनमें रहने दूं। इसका कारण क्या है? तुम इस विषयमें चुप्पी क्यों साधे रहे? श्री एम०सी० कमरुद्दीनकी पेढ़ीने मुझे अपने ब्यौरे भेज दिये हैं। एक ९२ पौंड २ शिलिंग ११ पैंस का किरायेके बाबत है और दूसरा २३८ पौंड ९ शिलिंग २ पैंसका दूसरे सामानके बाबत। क्या तुमने उन्हें जांच लिया है? लन्दनसे आये हुए मालके मूल बीजक तुम्हारे पास हैं या नहीं? मैं उन्हें किरायेके हिसाबकी रकमका ड्राफ्ट भेज रहा हूँ। अलबत्ता हिसाबमें कोई भूल-चूक होगी तो उसमें सुधार होगा ही। मेरे पास फिलहाल कुछ पैसा है, इसलिए मैं पारसी रुस्तमजीको ५०० पौंड भेज रहा हूँ ताकि वे उसका उपयोग कर सकें और जब तुम्हें रुपयेकी जरूरत पड़े तो तुम उनसे कुछ ले सको।

शुभचिन्तक,
[मो० क० गांधी][2]

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस०एन० ४२३७)से। सौजन्य : श्री अरुण गांधी, बम्बई।

१. अमृतलाल गांधीके पुत्र और गांधीजीके भतीजे।
२. पत्रका यह अंश फट गया है।

३६२. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई ११, १९०५

श्री उमर हाजी आमद
बॉक्स ४४१
डर्वन

श्री सेठ उमर हाजी आमद,

आपका पत्र मिला। अब्दुल्ला सेठके बारेमें बहुत दुःखी हूँ। कृपया दादा सेठको कहे कि अगर वे मुझे बुलाये तो बगैर पैसे आनेके लिए कहकर संकोचमें न डालें। फीनिक्समें रुपया खर्च हो जानेसे मुझे बहुत सोच-विचार कर चलना पड़ता है।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०।

३६३. सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय

परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त एक कृषि-प्रदर्शनीके सम्बन्धमें पीटर्सबर्ग आये हुए है। ब्रिटिश भारतीयोंने उक्त अवसरसे लाभ उठाकर उन्हे राजभक्तिपूर्ण अभिनन्दनपत्र दिया। यह कार्य प्रशंसनीय है। उन्होंने अभिनन्दनपत्रके उत्तरमे सर आर्थर लालीसे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें कुछ बातें कहलवा ली। बताया जाता है कि परमश्रेष्ठने यह कहा,

> इस समय सरकारके सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं उनमें इस देशमें ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेसे सम्बन्धित कठिनाईसे बड़ी अन्य कोई कठिनाई नहीं है। सरकार अनुभव करती है कि उन्होंने भारतमें और अन्य भागोंमें साम्राज्यकी विशिष्ट और गौरवास्पद सेवाएँ की हैं। सरकार उनकी कीमतको भलीभाँति जानती है। परन्तु इस देशके लोग यह मानते हैं कि भारतीयोंकी स्थिति यहाँ वैसी नहीं है जैसी उस देशमें है जिससे वे आये हैं। रंगदार वर्गोंके साथ जो पुराना इतिहास जुड़ा है उसके कारण यहाँ लोगोंके मनमें पूर्वग्रह उदित हो गये हैं और भारतीयोंकी उपस्थितिपर एक बिलकुल ही अलग दृष्टिकोणसे विचार किया जाता है। उन्हें भरोसा है कि भारतीय इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। निष्पक्ष रूपसे न्याय करना सरकारका कर्त्तव्य है और ब्रिटिश सरकार और औपनिवेशिक प्रशासनके बीच अभीतक इस प्रश्नपर पत्र-व्यवहार हो रहा है।

हम भारतकी साम्राज्यके प्रति सेवाओंको मान्य करनेके लिए सर आर्थर लालीको धन्यवाद देते है। किन्तु हमे यह कहते हुए दुःख होता है कि इस मान्यताका परिणाम प्रायः नगण्य है। हम परमश्रेष्ठ द्वारा श्री लिटिलटनको दी गई इस सलाहको स्मरण किये बिना नहीं रह सकते कि ब्रिटिश भारतीयोंसे जो वादे अज्ञानवश किये गये थे उन्हे पूरा करनेके बजाय तोड़ देना ज्यादा

अच्छा है। ब्रिटिश भारतीय संघने यह बात निर्णयात्मक रूपसे सिद्ध कर दी है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंसे वादे परिस्थितियोंको पूरी तरह जानते हुए किये गये थे, अज्ञानवश हरगिज नहीं। हमें भय है कि परमश्रेष्ठने — यदि हम आदरपूर्वक कहें तो — अपने उक्त कथनमें वही गलती की है। वे भारतीयोंको अन्य रंगदार वर्गोंमें किसलिए मिला देते हैं? यदि ट्रान्सवालमें श्वेत लोगोंका बड़ा भाग किसी भेदको न देख पाये तो क्या उसे ठीक-ठीक समझानेकी दृष्टिसे प्रशिक्षित करना सरकारका कर्तव्य नहीं है? भारतीयोंसे अनुचित पूर्वग्रहको स्वीकार करनेकी आशा कैसे की जाती है — जब इसका अर्थ यह है कि वे उसके आगे झुकें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे पूर्वग्रहको तथ्य रूपमें स्वीकार करना आवश्यक है; किन्तु यह केवल इसलिए आवश्यक है कि यह पूर्वग्रह शान्तिके साथ विचार-विनिमय करके और जनताके सामने सच्चे तथ्योंको प्रस्तुत करके दूर किया जा सके। सरकार तभी "निष्पक्ष न्याय करेगी" जब वह प्रश्नको साहसपूर्वक हाथमें लेगी और अप्रत्यक्ष रूपसे प्रचारित पूर्वग्रहको बढ़ावा देनेके बजाय दृढ़ रुख इख्तियार करके उसकी लहरको रोकनेका प्रयत्न करेगी। जहाँतक ब्रिटिश सरकारसे पत्रव्यवहार चलानेका सम्बन्ध है, हमारे पास यह माननेके पर्याप्त कारण हैं कि इसका मंशा उस सरकारसे जैसे भी हो वैसे ब्रिटिश भारतीयोंपर और भी निर्योग्यताएँ लादनेकी स्वीकृति प्राप्त करना है। क्या परमश्रेष्ठने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयों द्वारा प्रस्तुत अत्यन्त नम्र प्रस्तावोंका अध्ययन ध्यानसे किया है? क्या उनकी सरकारने ट्रान्सवालके लोगोंसे कभी यह कहा है कि भारतीयोंकी मांगें अत्यन्त उचित हैं और उन्होंने श्वेत उपनिवेशियोंके मतसे यथासम्भव समझौता करनेकी प्रशंसनीय इच्छा व्यक्त की है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६४. बच्चोंमें धूम्रपान

केप *गवर्नमेंट गज़टके* एक हालके अंकमें एक मनोरंजक विधेयक छपा है। इसे केप विधान-सभामें प्रसिद्ध सदस्य श्री टी० एल० श्राइनर पेश करेंगे। श्री श्राइनर एक लोक-हितैषी और नीति-वादी व्यक्ति विख्यात हैं। प्रस्तुत विधेयकका नाम "बाल धूम्रपान-निषेध विधेयक" है। उसका उद्देश्य उन बालकोंमें धूम्रपान रोकना है जो १६ वर्षकी आयुके या उससे कम आयुके हों या जिनकी आयु इतनी लगती हो। माननीय सदस्य जिस रीतिसे अपने उद्देश्यको सफल करना चाहते हैं वह बहुत सरल है। विधेयकके अनुसार तम्बाकू-विक्रेताओंके लिए उनको तम्बाकू, सिगार अथवा सिगरेट बेचना अपराध होगा जो १६ वर्षके या उससे कम आयुके लगते हों। उससे पुलिसको यह अधिकार प्राप्त होगा कि यदि उसे ऐसे बालकोंके पास तम्बाकू, पाइप, सिगार अथवा सिगरेट मिलें तो वह उन्हें जब्त कर ले और नष्ट कर दे। उसके अनुसार माता-पिताओं अथवा अभिभावकों को अधिकार होगा कि वे उन हानिकर वस्तुओंके विक्रेता पर, उन वस्तुओंके नष्ट कर दिये जानेके बावजूद, बालकोंने प्राप्त रुपया वापस करनेके लिए मुकदमा दायर करें। साथ ही उसमें सर-कारी शालाओंके शिक्षकोंको यह अधिकार मिल जायेगा कि वे धूम्रपानको शाला-सम्बन्धी अपराध मानकर लड़कोंको धूम्रपान करनेपर दण्ड दें। यह प्रायः कहा गया है कि लोग संसदिक विधानोंसे परहेजगार नहीं बनाये जा सकते और सम्भव है, यह बात श्री श्राइनर के विधेयक पर उसी तरह लागू हो; किन्तु हम इस विचारसे सहमत नहीं हो सकते कि नशा-बन्दी कानूनसे कोई अच्छा फल नहीं निकला है। हमें ऐसा लगता है कि यदि यह विधेयक

केप विधानसभाके द्वारा स्वीकृत हो गया तो यह ठीक दिशामें एक कदम होगा। तम्बाकू पीना किसी भी हालतमें कोई वांछनीय या स्वच्छ आदत नहीं है। और मुमकिन है किसी विशेष स्थितिमें उसका कुछ उपयोग हो और उससे किसी दर्दमें भी बहुत राहत मिलती हो; किन्तु तम्बाकू पीनेकी आदत बालकोंके लिए बेशक नुकसानदेह है और उसे समस्त वैध साधनोंसे रोकना उचित है। विधेयक शायद बुराईके व्यापक अस्तित्वका प्रमाण है। वस्तुतः यह आदत तार चपरासियों और हरकारोंमें, जिनकी आयु १६ वर्षसे बहुत कम होती है, अक्सर देखी जाती है। बच्चोंके धूम्रपानके पक्षमें प्रायः यह भ्रामक तर्क दिया जाता है कि जब वह वयस्कोंके लिए अच्छा है तो बालकोंके लिए बुरा नहीं हो सकता। किन्तु तार्किक सज्जन यदि क्षण-भर सोचें तो उन्हें विश्वास हो जायेगा कि जो चीज एकके लिए अच्छी होती है वह अनिवार्यतः दूसरेके लिए अच्छी नहीं होती; और तम्बाकू एक ऐसी चीज है जिसका व्यवहार बालकोंको निर्भयतापूर्वक नहीं करने देना चाहिए। इससे उनके शरीरमें घुन लग जाता है और मानसिक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री श्राइनर केप विधानसभाको यह विधेयक स्वीकार करनेके लिए रजामन्द कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६५. भारतमें भूकम्प

भारतसे हालकी डाकमें प्राप्त ताजे समाचारोंसे यह जानकारी पूरी तरह मिलती है कि भारतमें भूकम्पसे कैसी हानि हुई है। इस ईश्वरीय प्रकोपसे भारतके उत्तरी क्षेत्रके निवासियोंपर जो मुसीबत आई है वह वर्षोतक नहीं भुलाई जा सकेगी। अनेक पुरानी ऐतिहासिक इमारतें, अनेक गाँव और बड़े-बड़े शहरोंके मध्य मकान, गरीबोंके सादे झोंपड़े और तम्बुओंमें आबाद सैनिक छावनियाँ — सभी बरबाद हो गई हैं। कितने ही परिवारोंका नाम-निशान भी नहीं रहा है। धर्मशाला, काँगड़ा घाटी, पालनपुर और मंसूरीमें सबसे अधिक हानि हुई है। इस आकस्मिक घटनाके शिकार लोगोंकी दुर्दशाका विवरण अत्यन्त करुणाजनक है। कई क्षेत्रोंसे तारका सम्बन्ध टूट गया है। इससे वहाँके लोगोंकी कैसी दुर्दशा हुई है इसका समाचार तक प्राप्त नहीं हो सका है। फलस्वरूप सहायता और पानीके अभावमें बिलखते हुए लोग मृत्युके ग्रास हो गये हैं। सरकारकी ओरसे बड़ी सहानुभूति प्रदर्शित की गई और सहायताके लिए खास रेलगाड़ियाँ चलाकर यथासम्भव सहायता पहुँचाई गई। संकटग्रस्त लोगोंकी सहायताके लिए भारत और इंग्लैंडमें चन्दे किये गये हैं। इनमें बड़ी-बड़ी रकमें दी गई हैं। हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि अपने इन रावसे रंक बने भारतीय भाइयोंके सहायतार्थ हमारी ओरसे एक कोष खोला गया है। आशा है, इसमें सभी भाई यथाशक्ति रकमें भेजकर अपना कर्तव्य पूरा करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६६. पत्र : एनी बेसेंटको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्रीमती एनी बेसेंट
सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज
बनारस सिटी

प्रिय महोदया,

इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेसके प्रबंधकोंने आपका वह पत्र मेरे पास भेजा है जो आपने अपनी *भगवद्गीताको* छापनेके सम्बन्धमें उनको लिखा था। पुस्तकको छापने और उसमें आपकी तसवीर लगानेकी सलाहकी सारी जिम्मेदारी अवश्य ही मेरे ऊपर है। मैं जानता हूँ कि मामूली तौरपर किसी लेखककी किताब उसकी अनुमतिके बिना छापना उचित नहीं माना जाता। एक सज्जनने प्रस्ताव किया था कि अगर प्रबन्धक भगवद्गीताका कोई अनुवाद लागत-मात्र लेकर छापें तो वे हिन्दू लड़कों और दूसरोंमें बाँटनेके लिए पुस्तक छपवा लेंगे। उन्हें इसकी जल्दी भी थी। आपके अनुवादको छापनेका सुझाव दिया गया। इस मामलेमें मेरी सलाह माँगी गई। चूँकि आपसे पूछनेका समय नहीं था, इसलिए बहुत सोच-विचार कर मैंने सलाह दी कि वे दक्षिण आफ्रिकामें प्रचारके लिए आपका अनुवाद छाप सकते हैं। मुझे लगा कि प्रबन्धकोंका उद्देश्य शुद्ध है और यह संस्करण जिन परिस्थितियोंमें प्रकाशित किया गया था उनको जाननेपर आप भी इस प्रत्यक्ष अनौचित्यकी उपेक्षा कर देंगी। किताबके प्रकाशनके साथ ही साथ सारी स्थितिको स्पष्ट करते हुए प्रबन्धक और मालिकके हस्ताक्षरोंसे आपको पत्र भेजा गया था। प्रतीत होता है, वह कहीं गुम हो गया। हम सब हैरान थे कि आपका स्वीकृति या अस्वीकृतिका पत्र क्यों नहीं आया। परन्तु आपके २७ मार्चके पत्रसे स्पष्ट है कि इसके पहले आपकी कोई सूचना क्यों नहीं मिली। तसवीरके बारेमें इतना ही कह सकता हूँ कि अगर कोई गलती हुई है तो वह आपके प्रति अत्यधिक आदर-भावके कारण ही। मैंने जब तसवीर लगानेका सुझाव दिया था तब कुछ लोग इसका जो अर्थ लगा सकते हैं, वह मेरे ध्यानमें था। किन्तु फिर मैंने अनुभव किया कि जब आप जानेंगी कि पुस्तककी बहुत-सी प्रतियाँ भारतीय युवकोंको मिली हैं तब आप इस गलतीको, अगर वह गलती है तो, माफ कर देंगी। सही हो या गलत, आप जानती ही हैं, भारतमें पवित्र पुस्तकोंमें ऐसी तसवीरोंका प्रकाशन या मुद्रण असाधारण नहीं है। केवल १,००० प्रतियाँ छापी गई थीं। उनमें से शायद २०० से अधिक शेष नहीं हैं और ये अब शायद प्रति मास ५ प्रतियोंकी दरसे बाँटी या बेची जा रही हैं — सो भी सच्चे जिज्ञासुओंको।

मैंने सारी स्थिति आपके सामने रख दी है और मैंने आपकी भावनाओंके विरुद्ध जो अपराध किया है, अब उसके लिए गहरा खेद-प्रकाश करना और क्षमा माँगना शेष रहता है। यदि आपके खयालसे कोई सार्वजनिक वक्तव्य देना या पुस्तककी बिक्री पूर्णतः बन्द करना या केवल तसवीरको पुस्तकमें से निकाल देना आवश्यक हो तो आपकी इच्छाओंकी पूर्ति अवश्य की जायेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३८)से।

३६७. श्री गांधीका स्पष्टीकरण[1]

मई १३, १९०५

सम्पादकजीने ऊपरका पत्र मेरे पास भेजा है, इससे मुझे प्रसन्नता हुई। श्री वावड़ाने अपना विचार बताया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैंने जो भाषण दिये उनमें मेरा एकमात्र हेतु था भारतीयोंकी सेवा करना। भारतमें हिन्दू धर्मका क्या रूप है इसका चित्र उपस्थित करनेका निमन्त्रण मुझे मिला था। उसको मैंने स्वीकार कर लिया। उस विषयका विवेचन करते हुए दूसरे धर्मोंसे तुलना करना आवश्यक हो गया। किन्तु उसमें मेरा एक ही इरादा यह था कि मैं, जहाँतक बने, हर धर्मकी अच्छी बातें बताकर गोरोंके मनपर अच्छी छाप डालूँ। मैंने जो-जो तथ्य बताये वे सब उस इतिहाससे लिये गये है जिसे हम बचपनसे पाठशालामें पढ़ते आये हैं। इस्लामका प्रचार जोर-जबरदस्तीसे हुआ, यह बात इतिहास बताता है। किन्तु उसके साथ मैंने बताया कि इस्लामके प्रचारका प्रबल कारण है — उसकी सादगी और सबको समान समझनेकी खूबी। निम्नवर्गीय हिन्दू ज्यादातर मुसलमान हुए, यह बात भी सिद्ध होने योग्य है और मेरी समझमें इसमें कोई बुराई नही है। मेरे अपने मनमें ब्राह्मण और भंगीके बीच कोई भेद नहीं है और मै इसमें इस्लामधर्मकी श्रेष्ठता मानता हूँ कि जो लोग हिन्दू धर्मके भेदभावसे असन्तुष्ट हुए उन्होंने इस्लामको स्वीकार करके अपनी स्थिति सुधारी है। फिर मैंने यह भी नही कहा कि जितने हिन्दू मुसलमान हुए वे सब नीचे वर्णके थे और नीचे वर्णमें केवल ढेढ़ ही आते है ऐसा तो मुझे खयालतक नही है। ऊँचे वर्णके हिन्दू अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय भी मुसलमान हुए है मै यह स्वीकार करता हूँ, किन्तु उसमें अधिक भाग उनका नही था, यह जगत-प्रसिद्ध बात है। परन्तु मुझे मुख्य जोर इस बातपर देना है कि नीचे वर्णके हिन्दू मुसलमान हुए इसमें इस्लाम धर्मकी तनिक भी हीनता नही है। उलटे यह बात उसकी खूबी बताती है और मुसलमानोंको इसका गर्व होना चाहिए।

जुनून (जोश) के बारेमें मेरा मत जैसा मैंने बताया वैसा ही है। श्री वावड़ा जुनूनका अर्थ उलटा लगाते है। मैंने जुनून शब्दका सारार्थ लिया है और मैंने स्पष्ट कहा है कि यह इस्लामकी एक शक्ति है। सच्चे जुनूनके बिना कोई अच्छा काम नही हो सकता। तुर्क जब सच्चे जुनूनसे जानकी बाजी लगाकर लड़े तभी वे रूस और ग्रीसके साथ टक्कर ले सके और आज सब लोग तुर्क सिपाहियोंसे भय खाते हैं। जबतक राजपूत लोग जुनूनसे लड़े तबतक कोई राजपूतानेको हाथ भी नही लगा सका। जुनूनसे जापान जूझता है तभी तो वह पोर्ट आर्थरका किला सर कर सकता है।[2] जिस तरह युद्धमें, उसी तरह दूसरे कामोंमे भी जुनूनकी

१. गांधीजीने जोहानिसबर्ग थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्वावधानमें "हिन्दू धर्म" पर दिये गये अपने भाषणोंमेंसे (देखिए "हिन्दू धर्म", मार्च ४ और ११, १९०५) एकमें इस्लामके प्रचारकी चर्चा करते हुए कहा था कि इस्लाम धर्मको अधिकतर निम्नवर्गीय लोगोंने अपनाया। उन्होंने यह भी कहा था कि "जोश" या "जुनून" इस्लामकी एक जबर्दस्त खूबी है, जिससे कई अच्छे काम हुए हैं और कई बार बुरे भी।

गांधीजीके इस कथनसे भारतीय मुसलमानोंमें खलबली पैदा हो गई और इसके विरुद्ध *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकको कई पत्र भेजे गये। सम्पादकने इनमें से तीन पत्र गांधीजीके इस स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशित किये थे। यह स्पष्टीकरण श्री ए० ई० वावड़ाके मई ९, १९०५ के पत्रका उत्तर है।

२. पोर्ट आर्थरके रूसी जहाजी बेड़ेको जापानियोंने अगस्त १०, १९०४को हराया।

जरूरत है और यह अच्छा गुण है। जुनूनसे एडीसन बड़ी-बड़ी खोजें करता है। जुनूनसे ही वाटने रेलकी खोज की और संसारमें यात्राको सरल बनाया। और यही जुनून हुआ तो हम इकट्ठे होकर गोरोंके साथ संघर्षमें जीतकर अपनी शिकायतें दूर करा सकेंगे। यह जुनून इस्लामका खास गुण है। ऐसा ही जुनून दूसरे कामोंमें भी बरता जाये तो बड़ा लाभ हो।

अब मेरे कहनेके लिए अधिक नहीं रहता। मुझे मालूम है, जो सवाल श्री बावड़ाने उठाया है वही दूसरोंने भी उठाया है। मैंने जो सच समझा है, वह कहा है। वैसा कहनेमें मेरा इरादा एक भी व्यक्तिकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नहीं था और मेरे मनमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाईके बीच कोई भेद नहीं है। ऐसा मैं कई बार कह चुका हूँ और मुझे लगता है कि मैंने उसीके अनुसार आचरण किया है। मेरा आग्रह है कि हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण या भंगीके बीच कोई भी भेदभाव रखे बिना सबके प्रति समदृष्टि रखनी चाहिए। हिन्दू धर्मकी शिक्षा यही है और यही मेरा धर्म है।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३६८. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१-२४, कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १३, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। उससे आनन्दलालके बारेमें समाधान हो जाता है। तो भी मैं उनसे यह जाननेको उत्सुक हूँ कि वे अकेले क्यों रहना चाहते हैं। अगर रुस्तमजीकी पेढ़ीके लोग ढीले हैं तो तुम उनसे जल्दी कराओ। एम० के० पटेलने अभीतक अदायगी नहीं की है। मेरा खयाल है, मुझे वह रुपया अगले महीनेमें किसी समय मिल जायेगा। सूचना मैं तुमको समझा चुका हूँ। उसमें तुमने जो ६ पौंडकी रकम देखी वह उस चन्देका हिस्सा है जिसे मैं केप टाउनसे लाया था। मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि उस सूचीमें जो तीन रकमें दर्ज हैं वे केप टाउनसे लाये गये चन्देकी हैं। और इन रकमोंको देनेवालोंके नाम, जिसमें विज्ञापकोंके नाम भी शामिल हैं, तुम्हारे पास भेजे ही जा चुके हैं। क्या तुमको वे नहीं मिले? १ पौंड १४ शिलिंगकी रकम श्री गुलके वसूल किये दो और चन्दोंकी है। उनमें से एक ग्राहक विल्सन हैं। दूसरे ग्राहकका नाम मुझे लच्छीरामसे नहीं मिला। वही रुपया लाये थे। लच्छीरामको पार्सल तो मिल गया है, लेकिन उसने अभी रुपया नहीं दिया है। तुम्हें पांच पौंड प्रेसको नहीं देने हैं। मैंने बता दिया है कि मैंने यह रकम प्रेसके नाम क्यों डाली है। वह पूंजीगत व्ययका हिस्सा है। इसलिए तुम्हें उनकी फिक्र करनेकी जरूरत नहीं। आशा है, जो लोग बीमार थे, अब अच्छे होंगे।

सामके[1] गोली दागनेके मामलेमें हलकी झिड़की और समझाना-बुझाना ही एक उपाय है। मैं समझता हूँ उससे अधिक कुछ नहीं किया जा सकता। किचिनके बारेमें मेरा सुझाव है, तुम्हें उनके पास जाकर पूछना चाहिए कि वे निठल्लापन क्यों दिखा रहे हैं। मैं जानता हूँ, वे बुरा न मानेंगे। बहरहाल यह अच्छा ही होगा कि तुम उन्हें भलीभाँति समझ लो। साप्ताहिक विवरणकी चिन्ता मत करो। तुम्हें तो मासिक पत्रिकाकी केवल दो और प्रतियाँ छापनी हैं। पता नहीं, पूरी रकम वसूल हो सकेगी या नहीं। फिर भी, मुझे आशा तो है कि हो जायेगी। इतना कर चुकनेके बाद मुझे लगता है कि हमें बारहों अंक छाप देने चाहिए। तुम ग्यारहवाँ अंक तो अब छाप ही रहे हो; सिर्फ १२ वाँ प्रकाशनके लिए बच जायेगा। शेषके बारेमें, अगर वे चाहते हैं कि हम उन्हें प्रकाशित करें तो हम उनसे गारंटी माँगेंगे। मुझे खुशी है कि तुमको मेरे व्याख्यानोंके सम्बन्धमें गुजराती पत्र मिल गया है। अगले अंकमें उसे पूरा-पूरा छाप देना और मेरा पत्र भी।[2] इससे मालूम होता है कि हमारा पत्र बड़े चावसे पढ़ा जाता है। और यही तो हम चाहते भी हैं। कभी-कभी गलतफहमियाँ होंगी ही। परन्तु इससे हमें अपने कर्त्तव्यसे विमुख नहीं होना चाहिए। वह पत्र पहले छापा जाये और मेरा स्पष्टीकरण उसके नीचे। यहाँ भी, वैसी ही कुछ चर्चा चली थी। यद्यपि मैं खुलासा करनेकी कोशिश तो करता रहा हूँ, परन्तु तुमने जो पत्र मुझे भेजा है उससे मैं अधिक विस्तारके साथ और सार्वजनिक रूपसे स्पष्टीकरण कर सकूँगा। फिलहाल तुम मुझसे हर हफ्ते गुजरातीके ३२ सफोंकी आशा रख सकते हो। एन० सेनको बिल क्यों भेजा गया? क्या मदनजीतकी सूचना पर? यदि ऐसी बात है तो तुम उन्हें इस आशयका पत्र लिखो कि मदनजीतके लिखनेपर आपको हिसाब भेजा गया था। नहीं तो, उन्हें लिख भेजो कि बिल भूलसे चला गया था, और व्यवस्थापक उसके लिए क्षमा-प्रार्थी हैं। मैं तुम्हारे देखनेके लिए और अगर किचिन, वेस्ट और बीनने श्रीमती बेसेंटका पत्र देखा हो तो उनके देखनेके लिए भी, श्रीमती बेसेंटके नाम प्रेषित अपने पत्रकी[3] नकल भेज रहा हूँ। उन्होंने श्रीमती बेसेंटका पत्र न देखा हो तो भी तुम उन्हें वह बात बताकर यह नकल दिखा दो। प्रत्यक्ष है कि बीन तुम्हारे लिए पोलकका रिक्त स्थान पूरा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि वे फीनिक्स चले गये — कमसे-कम तुमसे और मगनलालसे जान-पहचान हो जानेके लिहाजसे ही सही।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३९) से।

१. "साम" फीनिक्स बस्तीके इंजीनियर और शिकारी — गोविन्द स्वामी।
२. देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण", १३–५–१९०५।
३. देखिए "पत्र: एनी बेसेंटको," मई १३, १९०५।

३६९. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

भाई कैखुसरू व अब्दुल हक,

इसके साथ ५०० पौंडकी हुंडी भेज रहा हूँ। इसे प्रेस खातेमें जमा करें। बात यह है कि इतना पैसा मेरे पास अभी बच सकता है। इसीलिए मैंने यह भेजा है। मैं जानता हूँ कि इतनी रकम वहाँ रहेगी तो सेठको उसका व्याज बचेगा। उसमें से चि० छगनलालको जितनेकी जरूरत पड़े उतना दे दें बाकी जब मुझे जरूरत पड़ेगी तब मैं मँगा लूँगा। लेकिन मेरे पास जो रुपया फालतू हो उसे वहाँ रखना अधिक ठीक समझता हूं; इसीलिए यह हुंडी भेजता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ३५।

३७०. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्री रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू
११, खेतवाड़ी लेन
खेतवाड़ी
बम्बई

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आशा है, आप अच्छी तरह पहुँच गये होंगे।

भाई कैखुसरू और अब्दुल हकके पत्र मुझे नियमसे मिलते हैं। वे आपको पत्र लिखते ही हैं; इसलिए ज्यादा कुछ कहने लायक नहीं है।

मैं जानता हूँ आपको ओवर-ड्राफ्टपर व्याज देना पड़ता है। फिलहाल मेरे पास थोड़ा पैसा होनेसे दूकानको ५०० पौंडकी हुंडी भेजी है।[2] उसमें से थोड़ा, करीब २५० पौंड, चि० छगनलालको चला जायेगा। फिर भी बाकी वहाँ जमा रहेगा। मुझे जरूरत पड़ेगी तो उसे वापस मँगा लूँगा और मेरे पास अतिरिक्त बचेगा तो और भी भेज दूंगा। आपको छापाखानेपर वाजिब

१. ये दोनों जालभाई सोराबजी ब्रदर्सकी पेढ़ीके व्यवस्थापक थे। पेढ़ीके मालिक पारसी रुस्तमजी उन दिनों भारतमें थे।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

बड़ी रकम लम्बे अर्से रखना मनमें अच्छा नहीं लगता और जब मेरे पास अतिरिक्त रुपया हो तब तो ऐसा होना ही नहीं चाहिए। यह मेरी मान्यता है।

बच्चोंकी पढ़ाईकी चिन्ता रखें। मैंने आपकी तबीयतके बारेमें जो-कुछ कहा है उसे न भूलें।

माजीको सलाम

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), नं० ३६।

३७१. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

[जोहानिस्बर्ग
मई १५, १९०५]

[महोदय,]

नेटालमें अभी हालमें भारतीय-विरोधी आन्दोलन बहुत सक्रिय हो उठा है। हमारा ध्यान विभिन्न विधेयकोंकी ओर गया है जो *गवर्नमेंट गज़टमें* छपे हैं और अब नेटाल संसदके सामने हैं।

बन्दूक आदि शस्त्र-विधेयक भारतीयोंको किसी औचित्यके बिना ही वतनियोंके साथ सम्बद्ध कर देता है और जहाँतक उस विधेयकका सम्बन्ध है, उन्हें वतनी मामलोंके मुहकमेके अन्तर्गत रख देता है। इसका नैतिक प्रभाव क्या हो सकता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

एक दूसरा विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार नेटालके देहाती क्षेत्रोंमें भारतीयोंका भूमि-अधिकार अधिकार ही नहीं रह जाता। यदि किसी व्यक्ति या कम्पनीके अधिकारमें २४९ एकड़से अधिक देहाती जमीन हो और वह बेकार पड़ी हो तो उसपर इस विधेयकमें प्रतिवर्ष प्रति एकड़ आधा पेंस कर लगानेका विधान है। इस विधेयकके अन्तर्गत यदि ऐसी भूमि भारतीयोंके अधिकारमें हो, परन्तु वे उसके मालिक न हों तो उन्हें कर देना होगा। यह अपमानजनक और अन्यायपूर्ण है। भारतीयोंने ही समुद्रतटकी भूमिमें कृषिको सम्भव बनाया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १६५०।

१. मूल उपलब्ध नहीं है। यह केवल एक अंश है जिसे दादाभाई नौरोजीने भारत-मन्त्रीके नाम अपने जून ६, १९०५ के पत्रमें उद्धृत किया था।

३७२. पत्र : हाजी दादा हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
मई १५, १९०५

श्री हाजी दादा हाजी हबीब
बॉक्स ८८
डर्वन

श्री सेठ हाजी दादा हाजी हबीब,

आपका तार मिला। मैंने जवाब दिया है। लॉर्ड सेल्बोर्न[1] इसी महीने आनेवाले हैं। इसलिए जबतक वे आ नहीं जाते मेरा निकलना बहुत मुश्किल है। उन्हें मानपत्र देनेकी बात चल रही है और अगर वह दिया गया तो मुझे अवश्य रुकना होगा। वे महाशय मानपत्र स्वीकार करेंगे या नहीं, यह इस अठवाड़ेमें मालूम हो जायेगा। बीचमें मैंने अब्दुल्ला सेठको लिखा है कि खर्चमें न पड़ें।

अगर मुझे आना ही पड़े तो मैंने कमसे-कम ४० पौंड[2] मँगाये हैं। इस समय मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं अपने खर्चसे आ सकूँ। इसके लिए माफी चाहता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४०।

३७३. पत्र : महान्यायवादीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

सेवामें
महान्यायवादी
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

मैं प्रमुख प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी और अपने बीच एक ब्रिटिश भारतीयकी जमानतकी जब्तीके सम्बन्धमें किये गये पत्रव्यवहारकी[3] प्रतिलिपि सेवामें भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

मैं केवल इस तथ्यपर जोर देना चाहता हूँ कि पासके मालिकने कतई धोखाधड़ी नहीं की। उसके खुदके कहनेके मुताबिक वह इतना बीमार था कि उपनिवेशसे बाहर जानेके लायक नहीं था। किसी भी हालतमें पासका दुरुपयोग करनेका उसका कोई इरादा नहीं था और वह एक गरीब आदमी है जिसे १० पौंड एक दोस्तने उधार दिये थे।

१. ट्रान्सवालके उच्चायुक्त और गवर्नर, १९०५–१९१०।
२. मई १५, १९०५ का तार: "महीनेके अखीरतक भेजनेसे काम चलेगा। कमसे-कम ४० पौंड जरूर भेजें।"
३. यह उपलब्ध नहीं है।

इस परिस्थितिमें और यह देखते हुए कि अदालती कार्रवाईको छोड़कर जब्तीका कोई औचित्य नहीं है, मुझे भरोसा है कि आप प्रमुख प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीको जमानतकी रकम लौटानेका अधिकार देनेकी कृपा करेंगे। इसके कानूनी पहलूपर जोर देनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है, किन्तु प्रार्थीके प्रति न्याय-दृष्टिसे आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ६५।

३७४. पत्र: पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

[सेवामें]
श्री रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। आप अपनी माताजीसे मिले। मुझे निश्चय है कि इससे उन्हें बहुत हर्ष हुआ होगा। आपकी यह इच्छा पूरी हुई, यह बड़े संतोषकी बात है।

आशा है, अब आप बच्चोंके शिक्षण और चालचलनपर खूब ध्यान देंगे।

आपने जहाजमें खुराक सादी रखी, यह बहुत ठीक किया। इससे भी बहुत प्रसन्नता होती है कि आप बम्बईमें अपना घूमना, खाना और नहाना नियमानुसार चलाते रहनेका आश्वासन देते हैं। मैंने आपकी कुछ सेवा की है, मनमें ऐसा खयाल करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आपकी तन्दुरुस्ती हमेशा सुधरती चली जाये और आप दीर्घायु होकर अच्छे काम करें।

आप मेरे बच्चोंसे जब मिलें तो उन्हें यहाँ आनेके लिए समझायें।

यहांके कामकी जरा भी फिक्र न करें। मुझे समय-समयपर आपके पत्र मिलते हैं। मुझे लगता है कि दोनों व्यक्ति सन्तोषपूर्वक काम करते हैं।

मैं पिछले मुकदमोंके बिलोंके बारेमें पूछताछ कर रहा हूँ।

माजीको सलाम। भाई जालको[1] मुझे चिट्ठी लिखनेके लिए कहें। उसके नीचे सोराबसे[1] भी लिखवायें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका, (१९०५), सं० ७०।

१. पारसी रुस्तमजीके पुत्र।

३७५. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

श्री जालभाई सोरावजी ब्रदर्स

भाई कैखुसरू और अब्दुल हक,

तुम्हारा पत्र मिला। भूचाल-पीड़ित सहायक कोषमें ज्यादासे-ज्यादा पाँच गिन्नी चन्दा देना बशर्ते कि उमर सेठ इतना दें। उनकी राय ले लेना। उनसे कहना कि दोनों इतना ही चन्दा दें, यह मेरी सलाह है। अगर उमर सेठ इससे कम दें तो तुम भी उनके बराबर ही देना, उनसे अधिक नहीं। दूसरोंसे भी चन्दा लेनेकी तजवीज करना।

रुस्तमजी सेठका पत्र आया है। उसमें श्री लॉटनके पिछले मुकदमोंके बिलोंके बारेमें पूछा है। उनमें कुछ कमी संभव हो तो करा लेना और उनका रुपया चुकाया न हो तो चुका कर उसकी खबर उनको दे देना।

रुस्तमजी सेठ चाहते हैं कि तुम दोनों भाइयोंमें से एक अधिकतर हमेशा दूकानमें रहे, ऐसा प्रबंध करना और इसके बारेमें उन्हें आश्वासनप्रद पत्र लिख देना। मैंने उनको लिखा है कि तुम्हारे हाथोंमें काम हमेशा ठीक ही रहेगा और उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं करनी है।

तसवीर वहाँ खिचवाई, यह ठीक किया।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ७२।

३७६. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

सेवामें
श्री ईसा हाजी सुमार
रानावाव
पोरबन्दर
भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। आपका मत मेरे मतसे मिलता है, यह जानकर मुझे खुशी होती है। यदि आप श्री जोशीको ले जायें, तो कागज वगैराका खर्च इतना कम आयेगा कि उसकी माँग करना व्यर्थ है। जब आप विलायत जायेंगे तब उनका लाभ होगा, ऐसा मैं समझता हूँ।

दूसरे भाई आपकी मददके लिए नहीं बढ़ते, इससे जरा भी हिम्मत हारनेकी जरूरत नहीं है। जो अपना फर्ज समझते हैं उन्हें ही वह फर्ज अदा करना है, दूसरे शामिल हों या न हों।

जायदादके बारेमें जो मुकदमा चल रहा है उसका हाल *इंडियन ओपिनियनमें* देखा होगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ७१।

३७७. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ हाजी उमर आमद,

आपका पत्र मिला। मैं, जितनी जल्दी बनेगा, वहाँ जाऊँगा। किन्तु लॉर्ड सेल्बोर्नको मान-पत्र देनेकी बात है, इसलिए इस कामको निबटानेसे पहले रवाना होना कठिन है।

मैं पैसा न माँगता, किन्तु मेरी स्थिति ऐसी है कि इस समय खुद खर्च करके आना बहुत मुश्किल है। इसलिए अगर दादा सेठ थोड़ा-बहुत पैसा भेज दें तो अच्छा हो।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ७५।

३७८. पत्र : एस० बी० पटेलको

[जोहानिसबर्ग]
मई १९, १९०५

श्री एस० बी० पटेल
पो० ऑ० बॉक्स २०८
क्लार्क्सडॉर्प

प्रिय महोदय,

कदाचित् चिकित्सा-शास्त्रकी श्रेष्ठ शिक्षा जर्मनीमें मिल सकेगी, किन्तु उसके लिए जर्मन भाषाका ज्ञान आवश्यक होगा। सामान्यत: चिकित्साकी ग्लासगोसे प्राप्त उपाधि बहुत अच्छी मानी जाती है, और बम्बईसे चाहे जो उपाधि ली हो, पाठ्यक्रम प्राय: ५ सालका होता है। दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी भागमें व्यवसायके लिए ग्लासगोकी उपाधि काफी मानी जायेगी।

समाचारपत्र *इंडियाका* पता, ८४–८५, पैलेस चेम्बर्स, वेस्टमिन्स्टर, लन्दन है।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ९३।

३७९. दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्जनका भाषण

वाइसरायकी परिषदमें, बजटकी बहसके समय दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्ज़नका पूरा भाषण आजकी भारतीय डाकसे प्राप्त हुआ है।

परमश्रेष्ठने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके दर्जेकी लम्बी चर्चा की, इसलिए दक्षिण आफ्रिकी प्रवासी ब्रिटिश भारतीयोंको उनकी इस जोरदार वकालतके लिए अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। परमश्रेष्ठके भाषणका खासा हिस्सा नेटालकी स्थितिके सम्बन्धमें था और हमें अब पहली बार मालूम हुआ है कि कुछ समय पूर्व नेटाल सरकारकी ओरसे जो प्रतिनिधि भारत गये थे, उनका काम किस किस्मका था। उनका उद्देश्य यह था कि नौकरीकी समाप्तिपर गिरमिटिया भारतीयोंकी वापसी नितान्त अनिवार्य करार देकर उनपर और भी प्रतिबंध लागू किये जायें। हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जबतक नेटाल सरकार उपनिवेशमें आबाद गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको कुछ रियायतें न दे दे तबतक लॉर्ड कर्ज़नने किसी भी ऐसे सुझावको माननेसे इनकार कर दिया। लॉर्ड महोदयने तीन पौंडी करकी अन्ततः समाप्ति, विक्रेता-परवाना अधिनियममें संशोधन तथा जिन कानूनोंके अन्तर्गत भारतीय असभ्य जातियोंमें वर्गीकृत किये जाते हैं उनमें और अन्य छोटी-छोटी बातोंमें परिवर्तनकी माँग की।

यह सब अत्यन्त संतोषजनक है और इससे जाहिर होता है कि भारतीयोंने वाइसरायसे जो अपील की थी उसपर पूरा विचार किया गया है। परमश्रेष्ठने यह भी कहा कि वे एक रियायत स्वीकृत भी करा सके हैं, अर्थात् नेटाल-सरकारने उपनिवेशमें तीन वर्षका निवास भारतीयोंको प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनके अन्तर्गत लगे निषेधसे मुक्त करनेकी शर्तके रूपमें मान लिया है। इसका यह अर्थ है कि लॉर्ड महोदयको किसी तरह यह विश्वास हो गया है कि यह नेटाल-सरकार द्वारा दी गई रियायत है। यदि ऐसी बात है तो हमें दुःख है, क्योंकि यह वक्तव्य भ्रामक होगा। वस्तुतः नेटाल सरकार "पूर्व निवास" शब्दोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें कुछ नियम बनानेके लिए बाध्य थी। कानूनमें, जैसा वह पहले था, कहा गया था कि वे भारतीय, जो उपनिवेशके "पूर्व निवासी" हैं, शैक्षणिक प्रतिबन्धोंसे मुक्त रहेंगे। व्यवहारतः दो वर्षका निवास श्री स्मिथ[1] द्वारा प्रायः "पूर्व-निवास" के प्रमाणके रूपमें स्वीकार कर लिया जाता था; और श्री स्मिथकी सिफारिशपर ही सरकारने यह अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी है और उसे कानूनमें शामिल कर लिया है। हम परमश्रेष्ठको यह भी सूचित कर दें कि तीन वर्षका निवास "पूर्व-निवास"का प्रमाण मान ही लिया जाये, यह जरूरी नहीं है। हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि यदि कानूनमें यह संशोधन न किया जाता तो किसी भारतीयको, जो उपनिवेशमें छः महीने भी रह चुका हो और जो यह सिद्ध कर सकता हो कि वह अब नेटालमें रहने लग गया है और वहांका निवासी होना चाहता है, छूट देनेसे इनकार करना संभव नहीं था। इसलिए हमें बहुत ही नम्रतापूर्वक यह कहना पड़ता है कि लॉर्ड महोदय जिसे रियायत समझते हैं वह कतई रियायत नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या लॉर्ड महोदय वहीं रुक सकते हैं जहां उन्होंने बात छोड़ी है। चालू वर्षमें नेटाल संसद सक्रिय रूपसे भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण करती रही है। हम उन विधेयकोंकी ओर ध्यान आकर्षित कर ही चुके हैं जिनमें भारतीय-विरोधी धाराएँ

१. प्रवासी-अधिकारी।

हैं। विक्रेता-परवाना अधिनियम सतत चिन्ता और परेशानीका सबब है। तब क्या यह उचित है कि नेटाल भारतको अपनी उन्नतिके साधनके रूपमें बरतता चला जाये और स्वतन्त्र ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे भारत सरकारके सुझावोंको अस्वीकृत कर दे? हमें कमसे-कम यह तो कहना ही चाहिए कि यह एकतरफा सौदा है जिसमें बदलेमें कुछ दिए बिना नेटाल सब लेता ही है।

परमश्रेष्ठने ट्रान्सवालकी स्थितिकी भी चर्चा की। उनका वक्तव्य श्री लिटिलटनके खरीतेका संक्षेप है; किन्तु उससे यह प्रकट हो जाता है कि वह अपने आश्रितोंके हितोंके बारेमें पूरी तरह सावधान हैं। हम आशा करते हैं कि उनकी सतर्क अभिभावकतामें भारतीय निकट भविष्यमें उन कष्टप्रद प्रतिबन्धोंसे छुटकारा पा जायेंगे जिनके कारण वे उस शाही उपनिवेशमें उत्पीड़ित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३८०. नेटालमें भारतीय-विरोधी कानून

नेटाल *गवर्नमेंट गज़टके* एक हालके अंकमें तीन विधेयक प्रकाशित हुए हैं। उनसे पता चलता है कि इस उपनिवेशकी आर्थिक स्थिति कितनी खराब है। उनमें से एक विधेयकका उद्देश्य १८ वर्ष या उससे अधिक उम्रके प्रत्येक वयस्क पुरुषपर एक पौंडका व्यक्तिकर लगाना है। उसके अनुसार इस करकी अदायगीसे वे लोग मुक्त रहेंगे जो या तो गरीब हैं या अशक्त हैं या गिरमिटिया मजदूर हैं। परन्तु गिरमिटिया मजदूर उसी वक्ततक मुक्त रहेंगे जबतक वे गिरमिटके अन्तर्गत हैं। दूसरे विधेयकमें मृत व्यक्तियोंकी जायदादपर उत्तराधिकार-कर लगानेकी तजवीज है। इस करकी न्यूनतम दर मृत व्यक्तिके पूर्वजों अथवा वंशजोंके लिए एक फी सदी है। अगर ये दोनों विधेयक नेटाल संसद द्वारा स्वीकृत कर लिये गये तो इनसे सरकारको अच्छी-खासी आमदनी होनेकी सम्भावना है।

लेकिन वह तीसरा विधेयक है जिससे हमारा अधिक सम्बन्ध है और भारतीय समाजको प्रभावित करनेवाला एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। इस विधेयकको शीर्षक दिया गया है — "अनधिकृत देहाती जमीन-कर विधेयक"। इसका उद्देश्य है २५० एकड़ या उससे अधिक अनधिकृत देहाती भूमिपर आधा पेंस फी एकड़की दरसे कर लगाना। विधेयककी पाँचवीं धारामें कहा गया है कि,

> **जिस जमीनपर उसका मालिक या कोई यूरोपीय किसी सालमें पहली मार्चसे पहले बारह महीनोंमें से कमसे-कम नौ महीनेतक लगातार न रहा हो वह जमीन अनधिकृत समझी जायेगी।**

इस प्रकार, अगर यह विधेयक पास हो गया तो देहाती भूमिका कोई भी टुकड़ा, जिसपर उसके मालिकके अलावा उपनिवेशके किसी अन्य भारतीयका दखल है, आधा पेंस प्रति एकड़ कर लगानेके उद्देश्यसे अनधिकृत माना जायेगा। समुद्र-तटवर्ती जिलोंमें, जहाँ जमीनकी काश्त केवल भारतीय ही करते हैं, भारतीय जमींदार इस विधेयकसे प्रभावित हो सकते हैं।

श्री लिटिलटनको, साम्राज्यके हितकी दृष्टिसे, भारतीयोंको अकारण ही लगातार अपमानित और परेशान करनेकी इस नीतिको रोकना चाहिए। यह सच है कि नेटाल पूर्ण रूपसे स्वशासित राज्य है, और इसलिए वह अपने कानून स्वयं बनानेके लिए स्वतंत्र है। लेकिन जब स्वतन्त्रता

स्वच्छन्दता बन जाती है, तब सवाल यह पैदा होता है कि क्या इंग्लैंडकी सरकारको, जो साम्राज्यकी सम्मानित परम्पराओंकी संरक्षिका है, ऐसे कानूनका निर्माण नहीं रोकना चाहिए, जिसके द्वारा विधान-सभामें प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्वसे वंचित ब्रिटिश प्रजाका अपमान होता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–५–१९०५

३८१. केपमें प्रवासी कानून

केपमें जो प्रवासी कानून बना है उसके अमलके बारेमें वहाँके प्रवासी-अधिकारी डॉक्टर ग्रेगरीकी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। इससे पता चलता है कि पिछले महीनेमें जिन लोगोंने उपनिवेशमें प्रवेशका प्रयत्न किया उनमें से २३८ को लौटा दिया गया है। उनमें से ५६ लोगोंको अंग्रेजी पढ़ना न होनेसे, १५६ को कंगाल होनेसे और ३४ को अनपढ़ और गरीब होनेसे अनुमति नहीं दी गई। उनमें से १२ वेश्यायें थीं अतः उन्हें उतरनेकी मनाही कर दी गई। डॉक्टर ग्रेगरी मानते हैं कि समय खराब होनेके कारण ऐसे बहुत-से लोग नहीं आये हैं जो अन्यथा आना चाहते। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि कानूनका वास्तविक प्रभाव क्या हुआ है। डॉक्टर ग्रेगरी विश्वास करते हैं कि बहुतसे भारतीयोंको उतरने नहीं दिया गया, अतः उन्हें कष्ट उठाने पड़े हैं। और यदि यह भी मान लिया जाये कि यह कानून भारतीयोंका प्रवेश रोकनेके लिए अच्छा है तो भी यह प्रश्न हो सकता है कि जब यिडिशभाषी यहूदी, जो वस्तुतः भिखमंगे हैं, अपने दोस्तोंसे रुपया उधार लेकर आ सकते हैं तब क्या ब्रिटिश भारतीय लोगोंको प्रवेश करनेसे रोकना न्यायपूर्ण है। इस रिपोर्टसे मालूम होता है कि डॉक्टर ग्रेगरी स्वयं इस कानूनको अन्यायपूर्ण मानते हैं। केप-सरकारने केपके भारतीयोंको वचन दिया है कि उक्त कानूनमें भाषा-ज्ञान सम्बन्धी शर्तमें परिवर्तन कर दिया जायेगा ताकि एक भारतीय भाषाका ज्ञान स्वीकृत हो सके। इस वचनकी पूर्ति कराना केपके प्रमुख भारतीयोंका कर्तव्य है। यदि वे इस सम्बन्धमें जोर-शोरसे काम करेंगे तो हमें पक्का भरोसा है कि सरकार उक्त विधेयकमें आवश्यक परिवर्तन कर देगी। हम आशा करते हैं कि केपके भारतीय इस मामलेको पूरी शक्तिसे हाथमें लेंगे और सफल करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–५–१९०५

३८२. स्वर्गीय श्री ताता[1]

गत अप्रैलके आरम्भमें बम्बईके टाउन हॉलमें स्वर्गीय श्री ताताकी यादगार कायम करनेके उद्देश्यसे एक विशाल सभा की गई थी। इसमें अध्यक्ष पदपर गवर्नर लॉर्ड लेमिंगटन सुशोभित हुए और स्मारक बनानेके सम्बन्धमें प्रथम प्रस्ताव बम्बई उच्च न्यायालयके लोकप्रिय प्रधान न्यायाधीश सर लॉरेंस जेंकिंसने पेश किया। उस सभामें न्यायाधीश बदरुद्दीन तैय्यबजी,[2] न्यायाधीश चन्दावरकर, माननीय श्री पारेख[3] और सर भालचन्द्र[4] आदिने भाग लिया था। गवर्नर तथा अन्य सभी वक्ताओंने यह कहा कि श्री ताताके समान उदार, सरल और बुद्धिमान सज्जन भारतमें कम ही हुए हैं। श्री ताताने जो कुछ किया उसमें अपना स्वार्थ नहीं देखा। उन्होंने सरकारसे खिताब लेनेकी आकांक्षा नहीं की, और जात-बिरादरीका भेद भी नहीं माना। न्यायाधीश बदरुद्दीनके कथनानुसार उनके लिए पारसी, मुसलमान और हिन्दू सभी समान थे। उनके लिए भारतीय होना ही बस था। उनका दयाभाव बहुत ही गहन था। वे गरीबोंके दुःखोंका विचार करके स्वयं रो पड़ते थे। उनके पास अपार धन था; किन्तु उन्होंने उसमें से अपनी सुख-सुविधाके लिए कुछ भी खर्च नहीं किया। उनकी सादगी जबरदस्त थी। हम चाहते हैं, भारतमें बहुतसे ताता हों।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३८३. सर फीरोजशाह मेहता

सर फीरोजशाह मेहताने बम्बईकी जैसी सेवा की है वैसी और किसीने नहीं की। आज तीस वर्षसे वे नगर निगममें हैं और बड़े-बड़े मुकदमे छोड़कर निगमकी बैठकोंमें उपस्थित रहे हैं; इसलिए वे निगमके पिता माने जाते हैं। इस वर्ष उनको नगर निगमके अध्यक्षका पद देनेकी बात चल रही है क्योंकि इस वर्ष प्रिंस ऑफ वेल्स भारत जानेवाले हैं। उनको नाइटकी उपाधि प्राप्त है। इसलिए *टाइम्स ऑफ इंडियाने* सुझाया है कि जब सर फीरोजशाह अध्यक्षके स्थानपर विराजमान हों तब सरकार उनको "लॉर्ड मेयर" की उपाधि दे तो अनुचित न होगा। यदि मेल्बोर्न तथा सिडनीके निगमोंके अध्यक्ष लॉर्ड मेयर कहे जाते हैं तो कलकत्ता और बम्बईमें ऐसा क्यों न हो?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

१. सर जमशेदजी नसरवानजी ताता (१८३९-१९०४), महान भारतीय उद्योगपति और दानी।

२. बम्बईके वकील-मंडलके एक प्रमुख सदस्य और बादमें बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश। दिसम्बर १८८७ के मद्रास कांग्रेस अधिवेशनकेअध्यक्ष।

३. सर गोकुलदास काहनदास पारेख — बम्बई विधान-परिषद्के सदस्य।

४. सर भालचन्द्र भातवड़ेकर — बम्बईके एक प्रमुख डॉक्टर और सार्वजनिक सेवक।

३८४. पत्र : हाजी मुहम्मद हाजी दादाको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा
बॉक्स ७३,
डर्बन

श्री सेठ हाजी मुहम्मद हाजी दादा,

मैंने *कसस्सुल अंबिया*[1] पुस्तक पढ़ी नहीं है। अगर आप मुझे उसकी प्रति भेज दें तो मैं कह सकूँगा कि *इंडियन ओपिनियनमें* उसके उद्धरण ले सकेंगे या नहीं। अंग्रेजीके पाठकोंके कामकी तवारीख हो तो अंग्रेजीमें भी छापी जा सकती है। मैंने इस पुस्तकका नाम कई बार सुना है। क्या यह सम्भव नहीं है कि उसमें दी हुई बातें बहुत-से पाठक जानते हों? यदि ऐसा हो तो छापें कि नहीं, यह सवाल आ जायेगा।

गुणवंतरायसे रुपया वसूल कर रहा हूँ। २५ पौंड आ गये हैं और सेठ हाजी हबीबके खातेमें जमा कर दिये हैं। मेरा खयाल है, बाकी रकमका ५ पौंड हर महीना आयेगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०२।

३८५. पत्र : अब्दुल हक व कैखुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री ५ भाई अब्दुल हक व कैखुसरू,

आपका पत्र मिला। सेठ आजम गुलाम हुसैनकी तरफसे मुख्त्यारीके इख्तियार मिल गये हैं।

हुसेन ईसप दूकानका नौकर जान पड़ता है। वह १५ पौंड तनख्वाह पेटे पेशगी माँगता है। वह कहता है कि आपने उसको मेरी स्वीकृति लानेके लिए कहा है। अगर वह आदमी काम बहुत अच्छा करता हो, विश्वास करने लायक हो और उसे रुपयेकी सचमुच जरूरत हो तो मुझे लगता है कि उसे पेशगी रुपये देनेमें हर्ज नहीं है। पर यह मैं आपके निर्णयपर छोड़ता हूँ।[2]

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०३।

१. एक उर्दू पुस्तक जिसमें इस्लामके नबियों और फकीरोंके जीवन-चरित्र हैं।

२. जान पड़ता है कि गांधीजी पारसी रुस्तमजीकी अनुपस्थितिमें उनके सलाहकारका काम करते थे और उनकी पेढ़ीके व्यवस्थापक सब तरहकी समस्याएँ उनके सामने रखते थे और उनके सम्बन्धमें उनसे सलाह लेते थे।

३८६. पत्र : उमर हाजी आमद और आदमजी मियाँखांको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री सेठ उमर हाजी आमद और श्री आदमजी मियाँखाँ,

मैंने पहले श्री नाजरके मार्फत जो अर्जी[1] भेजी थी वह विधानसभामें दे दी होगी। न दी हो तो शायद अब समय थोडा रह गया है।

मैं आज दूसरी अर्जी भेजता हूँ।[2] वह एक दूसरे कानूनके बारेमें है। मुझे आशा है, इस मामलेमे ढील नही होगी।

यह डर्बनका एक गैरसरकारी विधेयक है, जिसके बारेमें वकीलकी मार्फत सुनवाई हो सकती है। मैंने श्री नाजरको वैसा करनेकी सूचना दे दी है।

इस वक्त आप दोनोंको ताकत दिखानी है और हिम्मतसे काम करना है। कम हस्ताक्षर हों तो भी हर्ज नही है। अगर अध्यक्ष और मन्त्रीके हस्ताक्षर हों तो भी काम चल सकता है।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न—१

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०४।

३८७. पत्र : हाजी दादा हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

श्री हाजी दादा हाजी हबीब
बॉक्स ८८
डर्बन

श्री सेठ हाजी दादा हाजी हबीब,

आपका पत्र और रुक्का मिला। मेरे लिए रुक्केका कोई उपयोग नही है, इसलिए वापस भेजता हूँ। मेरी स्थिति ऐसी है कि मैं अपनी गाँठका पैसा कुछ समयके लिए भी खर्च करनेमें हिचकिचाता हूँ। फिर भी आपका आग्रह है, इसलिए अगर अब्दुल्ला सेठका सन्तोषजनक जवाब नही मिला तो यथासम्भव शीघ्र यहांसे रवाना हो जाऊँगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ११६।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको," ७–४–१९०५।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

३८८. पत्र : पारसी कावसजीको

[जोहानिसवर्ग]
मई २३, १९०५

श्री पारसी कावसजी
११५, फील्ड स्ट्रीट
डर्वन

श्री पारसी कावसजी,

आपका पत्र मिला। आपके वारेमें मेरी रुस्तमजी सेठसे वातचीत हुई थी। उनका विचार जमानतके विना मदद करनेका नहीं था, इसलिए मैं हाँ नहीं कह सकता। मुझे सीवा रास्ता यह दिखाई देता है कि आप रुस्तमजी सेठको लिखें और जवतक जवाव न आये तवतक चुप रहें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ११९।

३८९. पत्र : चिन्दे-स्थित सरकारी अफसरको

[जोहानिसवर्ग]
मई २३, १९०५

सरकारी अफसर
प्रतिनिधि, उपनिवेश-सचिव
चिन्दे
ब्रिटिश मध्य आफ्रिका

महोदय,

मैंने सुना है कि सरकार चिंदेमें रेलमार्ग वनवा रही है। यदि वहाँ काम मिल सके तो इस समय ट्रान्सवालमें कुछ सौ भारतीय हैं जो चिंदेको[1] रवाना होनेके लिए उत्सुक हैं। इनमें से कुछ लोग चिंदेमें या ब्रिटिश मध्य आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें काम भी कर चुके है।

मैं आपका कृतज्ञ हूँगा यदि आप कृपया मुझे यह सूचित करेंगे कि वहाँ उनके लिए कोई गुंजाइश है या नहीं, और यदि है तो उन्हें अपनी दरख्वास्तें कहाँ भेजनी चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १२०।

१. पुर्तगाली पूर्वी आफ्रिकामें एक छोटा शहर, जहाँ १९२३ तक ब्रिटिशोंको विशेषाधिकार प्राप्त थे।

३९३. पत्र : कैखुसरू और अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री भाई कैखुसरू और अब्दुल हक,

आपका पत्र मिला। रुस्तमजी सेठने नूरुद्दीनके बारेमें जैसी सूचना दी है वैसा ही करना। नूरुद्दीनको मैंने सेठ रुस्तमजीको सीधा पत्र लिखनेके लिए कहा है।

हुसेन ईसपको, अगर वह अच्छा काम करता हो और विश्वासी हो तो, ७ पौंडतक पेशगी वेतनपेटे दे दीजिये।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १५३।

३९४. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०५

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद झवेरी,

आपका पत्र तथा सेठ हाजी मुहम्मदके पत्रकी नकलें मिली। पत्र पढ़कर बहुत आश्चर्य और दुःख होता है कि बुजुर्ग और समझदार व्यक्तिको भी भान नहीं रहता। मुझे लगता है कि जब पत्र मिला था तभी आपने छोटा-सा जवाब दे दिया होता तो ठीक था। परन्तु अभीतक जवाब नहीं दिया, इसलिए अब मुझे जवाब देनेकी जरूरत दिखाई नहीं देती। मुझे पत्र मिलेगा तो आपको लिखूंगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १५७।

३९५. साम्राज्य-दिवस

साम्राज्य-दिवस — स्वर्गीया सम्राज्ञीका जन्म-दिवस — ब्रिटेनके बाहर साम्राज्यके सब भागोंमें सब वर्गोंकी सम्मतिसे अपनी अत्यन्त प्रिय महारानीके शासनकी स्मृति मनानेके लिए निश्चित किया गया दिवस है। यह दिन "विक्टोरिया"–दिवसकी अपेक्षा "साम्राज्य" – दिवसके नामसे ज्यादा विख्यात हो रहा है। इससे तो उनके प्रति अधिक गम्भीर आदर ही व्यक्त होता है। क्योंकि यह इस बातकी स्वीकृति है कि जिन विशाल उपनिवेशोंकी वे महारानी थीं उन्हें पास-पास लानेमें उनसे अधिक काम किसी अन्य व्यक्तिने नहीं किया। अपने हृदयकी विशालता और व्यापक सहानुभूतिसे; अपनी योग्यता और राजसी गुणोंसे; तथा इन सबसे बढ़कर नारीके रूपमें अपने व्यक्तिगत भलेपनके कारण उन्होंने ब्रिटिश ध्वजाके नीचे बसी सब जातियोंके हृदयोंमें सदाके लिए अपना स्थान बना लिया है। उनके छोटे शासनाधिकारियोंसे गलतियाँ हुई होंगी; उनके नाम पर गैर-इन्साफियाँ भी की गई होंगी; किन्तु लोग सदा जानते थे कि वे गलतियाँ और गैर-इन्साफियाँ नेक विक्टोरियाकी नहीं हैं। वे जितनी योग्य रानी थीं, उतनी ही योग्य पत्नी और माता भी सिद्ध हुईं। वे जानती थीं, कि केवल गार्हस्थिक पवित्रता परिवारको सुखी और समृद्ध बनाती है। बाइबिलके इस वचनमें उनकी श्रद्धा अटूट थी : पवित्रता जातियोंको उदात्त बनाती है; किन्तु पाप सभी लोगोंको अपयश देता है। उन्होंने सबसे पहले यह समझा कि ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव पवित्रता — वैयक्तिक पवित्रता और जातीय पवित्रता — की चट्टान पर डाली जानी चाहिए। तभी उसकी उन्नति स्थायी होगी। अतीतमें दूसरे राष्ट्र और साम्राज्य भी हुए हैं; किन्तु वे सब इस "पापकी चट्टान" पर पतित होकर नष्ट हो गए। जब उन्होंने वे सरल शब्द कहे थे कि मैं नेक बनूँगी, तभी सारे संसारमें उन्होंने अपनी प्रजाका स्नेह अर्जित कर लिया था। यहाँ यह देखा जा सकता है कि विक्टोरियाको अपनी यह महानता विधिके विधानके अन्तर्गत अपनी बुद्धिमती मातासे मिली थी। असंख्य महान पुरुष और स्त्री इस सत्यको कर्तव्यनिष्ठाके साथ पहले भी स्वीकार कर चुके हैं और उनके बाद भी। यह चिर सत्य है कि अच्छी माता अपने बच्चेको बुद्धिमान बनाती है। इसका दूसरा उदाहरण ब्रिटिश सिंहासन पर आसीन वर्तमान महानुभाव हैं। हम देखते हैं कि उनके प्रति सब संतोष अनुभव करते हैं। वे इस समयतक भी अपनी कुशलता और बुद्धिमत्तासे साम्राज्य और संसारके लिए कितना काम कर चुके हैं। बादशाह एडवर्डमें वह विशिष्ट प्रतिभा उनके सब समकालीन बादशाहोंसे अधिक दिखाई देती है जो सच्चे राजाका प्रधान गुण है। और उसके मूलमें अधिकतर प्रभाव उनकी गौरवशालिनी माता का है।

इस तरह जब हम साम्राज्यके विषयमें सोचते हैं तब विक्टोरियाका नाम हर तरह आदरणीय ठहरता है और यह उचित ही है कि इसके लिए निश्चित किया गया दिवस उस क्षणकी वर्षगाँठ हो जिसमें वे संसारमें आई थीं।

विशेषतः भारतीयोंके लिए, विक्टोरिया-दिवस पुण्य दिवस होना चाहिए। भारतकी स्वतंत्रताके लिए जितना स्वर्गीया महारानीने किया उतना दूसरे किसी व्यक्तिने नहीं किया। यह बात करोड़ों भारतीय स्वीकार करते थे। यह उनके देहान्तके बाद सारे देशमें व्यक्त किए गये साधारण शोक-प्रदर्शनोंसे स्पष्ट हो गया था। वाइसरायने उनके बारेमें बोलते हुए कहा था :

महारानीने, जिसमें माता, नारी और रानीका अद्वितीय और सुन्दर समन्वय हुआ है, समस्त भारतीयोंके हृदय मिला दिये हैं। उनके आश्चर्यजनक शासनकालने भारतीय इतिहासपर जो छाप छोड़ी है उसके विषयमें बहुत-कुछ कहना और उन बहुत-सी बातोंको बताना सरल है, जिनमें स्वर्गीया सम्राज्ञीने विवेकपूर्वक हाथ डाला था और जिनपर उनका प्रभाव पड़ा था, किन्तु क्या १८५८ की वह प्रसिद्ध घोषणा उनके समूचे शासन और चरित्रको व्यक्त नहीं करती, जो भारतका मैग्ना-कार्टा और हमारे व्यवहार और महत्त्वाकांक्षाओंका उत्तम मार्गदर्शक है? उनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतको स्तम्भ बनाकर ब्रिटेनको एक विश्वव्यापी साम्राज्यमें बदल दिया।

विक्टोरिया भारतके प्रति सदा व्यक्तिगत और गहरी दिलचस्पी रखती थी। इतना ही नहीं कि उनके *समीपस्थ नौकर-चाकर बहुतसे भारतीय होते थे और उन्होंने हिन्दुस्तानी लिखना*-बोलना सीखा था (जो राज्यकी चिंताओंसे ग्रस्त व्यक्तिके लिए कोई आसान काम नहीं है); बल्कि वे वाइसरायसे *प्रत्येक डाकसे* भारतकी स्थितिका विवरण मँगाती थीं, और लॉर्ड नार्थब्रुकके नाम लिखे हुए पत्रोंमें से एक पत्रके निम्न अंशसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनको भारतीय मामलोंका आन्तरिक ज्ञान प्राप्त था:

महारानीका विश्वास है कि अब अंग्रेज पहलेकी अपेक्षा भारतके देशी लोगोंके प्रति अपने व्यवहारमें अधिक सदय हैं। अब ईसाइयोंके लिए अशोभनीय इन भावनाओंका निर्मूल होना बहुत जरूरी है। उनकी सर्वत्र सबसे बड़ी इच्छा यह है कि सब वर्गोंके बीच, जो आखिरकार भगवानकी दृष्टिमें समान हैं, अधिकतम प्रेम और सद्भाव हो।

"भगवानकी दृष्टिमें समान" — यही वह भावना थी जिससे प्रेरित होकर वह महान घोषणा की गई थी और साम्राज्य जिसके योग्य सिद्ध नहीं हुआ। हम यह दुःखके साथ कहते हैं और दुःखके साथ ही हमें अपने पाठकों और अधिकारियोंका ध्यान उन बहुत-सी बातोंकी ओर आकर्षित करना पड़ता है जिनमें नेक विक्टोरियाकी भावना भंग की गई है। वैसे हमने इस समय पसन्द यही किया होता कि हमारे पत्रके कमसे-कम इस अंकमें ऐसी कोई बात न होती जो हमारे इस संतोषमें बाधक प्रतीत होती कि हम अंग्रेजी साम्राज्यके अंग हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

३९६. परीक्षात्मक मुकदमेके सदृश

सर्वोच्च न्यायालयने एक मुकदमेमें एक महत्त्वपूर्ण फैसला दिया है। उस मुकदमेमें कोई सईद इस्माइल तथा एक अन्य व्यक्ति वादी और ल्यूकस नामके किसी मृत व्यक्तिकी दिवालेकी जायदादके न्यासीके रूपमें एल० के० जैकब्स प्रतिवादी थे। मुकदमा सबसे पहिले जोहानिसबर्गके उच्च न्यायालयमें दायर किया गया था। वहाँ वादियोंकी कुछ जमीन-जायदाद थी; किन्तु चूँकि वे उसकी मिल्कियतका अपने नाम पंजीयन करानेसे रोक दिये गये थे, इसलिए उन्होंने उसका पंजीयन अपने मित्र मृत ल्यूकसके नाम करा दिया। यह बात १८९६ की है। अभी कुछ समय पहलेतक वे उसपर काबिज थे और यह बात अधिकारियोंकी जानकारीमें थी। वे सारा महसूल और दूसरे कर भी दे चुके थे। उन्होंने जोहानिसबर्गकी एक प्रमुख वकील पेढ़ीकी सलाहसे यह रास्ता इख्तियार किया था; और अपने बचावके विचारसे मृत ल्यूकससे जायदादके बारेमें कार्रवाईकी मुख्त्यारीका पक्का इख्तियार और पट्टा ले लिया था। इसके साथ एक धारा जुड़ी थी जिसमें पट्टा हमेशा अपने आप नया होते रहनेकी व्यवस्था थी। लड़ाईके पहले ल्यूकस दिवालिया हो गया और कुछ समयके बाद उसकी मृत्यु हो गई। मूल न्यासीने उक्त जायदादको कभी सूचीमें सम्मिलित नहीं किया। जोहानिसबर्ग नगरपालिकाने सन् १९०२ में अधिग्रहण अध्यादेशके अन्तर्गत दूसरी जायदादोंके साथ इसे भी अपने अधिकारमें ले लिया और उसका मुआवजा २,००० पौंड तय किया। यह निर्णय स्वभावतः पंजीकृत मालिक अर्थात् ल्यूकसके पक्षमें दिया गया था; किन्तु चूँकि वादियोंने मुकदमा दायर कर दिया था और उस पैसेके लिए दावा किया था जो उनके कथनानुसार ल्यूकसके पास उनकी ओरसे गुप्त रूपसे धरोहर रखी हुई जायदादसे मिला था, इसलिए वह पैसा सर्वोच्च न्यायालयके अध्यक्षके पास जमा कर दिया गया और दोनों पक्ष अपने अधिकारोंके सम्बन्धमें अदालती फैसला लेनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिये गये। इसलिए वादियोंने प्रतिवादीके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया कि वे अपने अधिकारोंको सिद्ध करें। और उन्होंने यह माँग भी की कि सर्वोच्च न्यायालयके अध्यक्षके नाम उनको रुपया देनेका हुक्म जारी किया जाये। सफाईमें पहले यह कहा गया कि चूँकि वादी ब्रिटिश भारतीय हैं, और १८८५ के कानून ३ के अनुसार जमीनी जायदादके मालिक नहीं हो सकते, इसलिए ल्यूकसने उनकी ओरसे जमीनी जायदाद रखनेका जो इकरारनामा किया वह गैर-कानूनी और बेअसर है और इसलिए वह कानूनन अमलमें नहीं लाया जा सकता। बचाव-पक्षकी दूसरी दलील यह थी कि अगर ल्यूकसके लिए वादियोंके साथ इकरारनामा करना उचित भी था तो भी वादियोंका अधिकार उसके विरुद्ध व्यक्तिगत ही है और इसलिए वे केवल दूसरे ऋणदाताओंके समान ही अपना दावा साबित कर सकते हैं; आम अधिकारके बलपर, दूसरे शब्दोंमें विशिष्ट ऋणदाताकी हैसियतसे, इस रुपयेके लिए अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सकते। सर विलियम स्मिथने वादियोंके पक्षमें खर्च समेत फैसला दिया, यद्यपि थोड़ा आगा-पीछा किये बिना नहीं। इसपर प्रतिवादीने अपील की और अपीलमें सर्वोच्च न्यायालयने बचाव-पक्षकी दूसरी दलीलको मान्य करते हुए प्रतिवादीके पक्षमें फैसला किया। तथापि इस महत्त्वपूर्ण फैसलेका विशुद्ध परिणाम यह जान पड़ता है कि यूरोपीयोंका भारतीयोंकी ओरसे जमीनपर कब्जा रखना गैर-कानूनी नहीं है; किन्तु अगर, ऐसे यूरोपीयोंके दिवालिया हो जानेकी अवस्थामें, मिल्कियतनामेपर उनके नाम सम्पत्तिके लाभके अधिकारीके रूपमें पंजीकृत नहीं है तो उन्हें जोखिम उठानेके लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए

भारतीय इस मुकदमेसे अपने संघर्षमें एक कदम और आगे बढ़ जाते हैं और १८८५ का कानून ३ शस्त्र रूपमें उनके खिलाफ प्रयोगकी दृष्टिसे और भी कुण्ठित हो जाता है। यदि कोई भारतीय सम्पत्तिके लाभके अधिकारीके रूपमें अपने नामका पंजीयन करानेका आग्रह करे तो उसका नाम इस तरह पंजीकृत किया जा सकता है या नहीं, इसकी परीक्षा करना एक बड़ी दिलचस्प बात होगी। यदि भारतीय ऐसे परीक्षात्मक मुकदमेमें जीत जायें तो वे तनिक भी जोखिमके बिना ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यवहारतः जमीनके मालिक हो सकेंगे और इसपर सामान्य बुद्धिके दृष्टिकोणसे विचार करें तो हमें ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयसे यह बात उपसिद्धान्तकी तरह निष्पन्न होती है। चूँकि अब यह फैसला हो गया है कि वतनी ट्रान्सवालके किसी भी भागमें जमीनी जायदादके मालिक हो सकते हैं और उसका पंजीयन अपने नाम पर करा सकते हैं, इसलिए यह निश्चय ही उनके न्याय्य अधिकारोंके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

३९७. मुस्लिम बनाम हिन्दू

हमने ईस्ट लंदनके एक समाचारपत्रमें एक हिन्दू और मुसलमान भाईके बीचका पत्र-व्यवहार बड़े खेदके साथ पढ़ा है। हम समझते थे कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके सभी वर्गोंमें अधिकसे-अधिक मेलकी प्रत्यक्ष जरूरतके आगे इस तरहके प्रेम-भावकी[1] गुंजाइश नहीं है। हम इन पत्रोंके गुण-दोषकी चर्चा नहीं करना चाहते, केवल इस प्रकारके व्यवहारके प्रति नापसन्दगी जाहिर करना चाहते हैं। हम विश्वास करते हैं कि पत्रलेखक भी हमारे साथ-साथ खेद प्रकट करनेकी समझदारी दिखायेंगे और पत्र-व्यवहारको जहाँका तहाँ रोक देंगे। यहाँ दूसरी और अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण बातें मौजूद हैं जिनकी ओर वे ज्यादा लाभप्रद रूपसे ध्यान दे सकते हैं। हमें शायद अपने पाठकोंको यह स्मरण दिलानेकी अनुमति दी जायेगी कि *इंडियन ओपिनियन* दक्षिण आफ्रिकाके सारे भारतीय मसलोंकी चर्चा करनेके लिए विशेष पत्र है; और यदि दुर्भाग्यसे भारतीयोंके बीच मतभेद उत्पन्न हों तो उनको प्रकाशमें लानेके लिए हमारे स्तम्भ स्वाभाविक और अत्यन्त उपयुक्त माध्यम हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

१. यह अंग्रेजीके जिस शब्दका अनुवाद है उसका प्रयोग शायद व्यंग्यके रूपमें किया गया है, या वह मुद्रणकी भूल है। इसके स्थानमें सम्भवतः दूसरा शब्द होगा जिसका अर्थ होता है "शत्रु-भाव"।

३९८. सर मंचरजी और श्री लिटिलटन

सर मंचरजीने श्री लिटिलटनसे पूछा कि ट्रान्सवाल राज्यके संविधानमें भारतीयोंको मताधिकार-से वंचित करनेका क्या कारण था? उन्होंने यह भी पूछा कि सरकार संविधानमें परिवर्तन करके भारतीयोंको अब मताधिकार देगी या नहीं। श्री लिटिलटनने उत्तर दिया कि लड़ाईकी समाप्तिपर जो सन्धि हुई उसका अर्थ बोअर लोग यह करते हैं कि जबतक ट्रान्सवालको पूर्ण स्वराज्य नहीं मिलता तबतक किसी भी काले आदमीको मताधिकार नहीं दिया जायेगा। इसके आधारपर श्री लिटिलटनने भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित कर दिया है जिससे बोअर लोगोंको ब्रिटिश सरकारकी ईमानदारीके बारेमें सन्देह उत्पन्न न हो। सन्धिपत्रमें जो शब्द प्रयोगमें लाया गया है वह "रंगदार लोग" नहीं है, अपितु "वतनी" है। अब "वतनी" शब्दका अर्थ किसी भी प्रकार "भारतीय" नहीं किया जा सकता। दक्षिण आफ्रिकामें यह शब्द सदैव इस देशके मूल वासियोंके लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। "वतनी" शब्दमें भारतीयोंको और दूसरे काले लोगोंको गिननेका रिवाज अभी नया ही है। और वह भी तब जब कानूनमें विशेष रूपसे उसका ऐसा उल्लेख हो। अब भी आम तौरसे इसका इस प्रकारका अर्थ नहीं किया जाता। फिर भी श्री लिटिलटनने ऊपर जो स्पष्टीकरण किया है वह आश्चर्यजनक है। और यदि भारतीय "वतनी" शब्दमें इस तरह शामिल किये जाते रहे तो उनको बहुत हानि होनेकी सम्भावना है।

स्वराज्य मिलनेपर डच या ब्रिटिश कोई भी भारतीयोंको मताधिकार देंगे, यह सम्भावना तनिक भी नहीं है। सर जॉर्ज फेरारने, जो ट्रान्सवालके एक विख्यात सज्जन हैं, कहा है कि "वतनी" लोगोंको कभी मताधिकार नहीं दिया जायेगा। भारतीयोंके सम्बन्धमें इन महानुभावके विचार बहुत ही विरोधी हैं। इसलिए "वतनी" लोगोंको मताधिकार न मिले और भारतीयोंको मिले, यह विचार उनको सपनेमें भी नहीं आ सकता।

उपर्युक्त सवाल-जवाबका अर्थ यह निकलता है कि जब-जब "वतनी" शब्दके अन्तर्गत भारतीय गिने जायें तब-तब डटकर मोर्चा लिया जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-५-१९०५

३९९. जोहानिसबर्गमें चेचक[1]

जोहानिसबर्गमें चेचक आ गई है। कहा यह जाता है कि वह मुसाफिरी जहाजोंसे आई है। इसका मलायी बस्तीसे आरम्भ हुआ है। इसका सबसे पहला रोगी एक मलायी था। उसके बाद यह रोग एक गोरेको हुआ। डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार ५ भारतीय भी व्याधिग्रस्त हुए हैं। मलायी बस्तीमें बड़ी सख्ती की जा रही है। सुबह और शाम लोगोंके घरोंकी जाँच की जाती है।

अगर चेचक अधिक फैली तो बड़ी दिक्कतें पैदा होनेकी सम्भावना है। मलायी बस्तीमें जबरन टीके लगाये गये हैं। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। नगर-परिषदने कानून बनाये हैं। और जब वे अमलमें आयेंगे तब सम्भवतः बहुत-सी कठिनाइयाँ सामने आयेंगी।

उपाय लोगोंके ही हाथमें है। घर साफ रखना, हर रोज नहाना, पानी और दूध आदि स्वच्छ रखना, कपड़े साफ पहिनना, और मकानमें हवा और रोशनी काफी आने देना। ये चेचक और दूसरी बीमारियोंको रोकनेके उपाय हैं। यदि घरमें किसीको चेचक निकले तो उसकी खबर अधिकारियोंको तुरन्त दी जाये। लोग ऐसे रोगोंको डरके मारे जितना छिपायेंगे उतना ही अधिक कष्ट होगा तथा रोग अधिक फैलेगा और अधिकारी विरोधी हो जायेंगे। फिर रोगीको अन्तमें अस्पताल तो ले जाया ही जायेगा। तब यदि हम स्वयं ही खबर दे दें तो परेशानी कम होनेकी सम्भावना है। रोगीको अस्पताल ले जानेसे कोई नुकसान नहीं होगा; बल्कि जल्दी आराम होनेकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

४००. पत्र: मुहम्मद सीदतको

जोहानिसबर्ग
मई २७, १९०५

श्री मुहम्मद सीदत
मार्फत श्री एम० सी० एंग्लिया
ग्रे स्ट्रीट
डर्बन

श्री सेठ मुहम्मद सीदत व अन्य इस्लामी न्यासी,

आपका पत्र मिला। मेरे भाषण[2] और लेखसे आपको और दूसरे सज्जनोंको बुरा लगा, उसके लिए मुझे बहुत दुःख है और मैं माफी चाहता हूँ।

उस भाषणमें मेरा उद्देश्य तमाम भारतीयोंकी सेवा करना था। मैं मानता हूँ कि वैसी ही छाप मेरे भाषणके श्रोताओंके मनोंपर पड़ी है।

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा" प्राप्त रूपमें छपा था।
२. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३९५, ४०२ और ४३५।

मैंने जो कुछ कहा है वह इतिहासपर आधारित है, इसमें कोई शक नहीं है और इसके लिए मैं आपसे *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* और हन्टरकी *इंडियन एम्पायर* आदि पुस्तकें देखनेकी सिफारिश करता हूँ।

हलके वर्गके लोग मेरी समझमें नीच नहीं हैं। मैं उनको सँभालना खुदाई काम मानता हूँ। आपने मेरा वर्ण पूछा है। मेरा वर्ण वैश्य है।

अधिक क्या लिखूँ।[1]

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १६३।

४०१. लॉर्ड सेल्बोर्नको दिया हुआ मानपत्र

जोहानिसबर्ग
[मई २८, १९०५][2]

परमश्रेष्ठ हमपर कृपालु हों

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, ट्रान्सवालमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि, परमश्रेष्ठका सम्मानपूर्ण स्वागत करनेकी इजाजत चाहते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि आपके शासनकालमें विशेष रूपसे यह देश पुनः समृद्धिको प्राप्त हो और इस उपमहाद्वीपमें बसी हुई महामहिमकी प्रजाओंके विभिन्न अंगोंमें शान्ति और सौहार्दकी स्थापना हो। क्या हम परमश्रेष्ठसे यह अनुरोध कर सकते हैं कि परमश्रेष्ठ महामहिम सम्राट और सम्राज्ञीको उनके प्रति हमारी राजभक्तिका विश्वास दिला देनेकी कृपा करेंगे?

हम हैं,
परमश्रेष्ठके विनीत सेवक,
अब्दुल गनी,
ए० ए० पिल्ले,
मो० क० गांधी
[तथा अन्य १७ व्यक्ति]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–६–१९०५

१. गांधीजी इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति कुछ विस्तारसे पहले स्पष्ट कर चुके हैं, देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण," १३–५–१९०५।

२. यह मानपत्र वस्तुतः बुधवार ७ जूनको भेंट किया गया था।

४०२. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
जून १, १९०५

सेवामें
श्री ईसा हाजी सुमार
रानावाव
पोरबन्दर
काठियावाड़, भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। जोशी चतुर आदमी है, यह ठीक है। किन्तु मुझे इस समय यहाँ कुछ भी पैसा मिलनेकी सूरत नहीं दिखती। उमर सेठने श्री मजमूदारको[1] ठीक पैसा दे दिया था। आप भी वैसा ही कर सकते हैं। विलायत जायेंगे तो उसमें उचित खर्च करना पड़ेगा। अगर उसमें थोड़ा पैसा ज्यादा खर्च हो जाये तो हिसाब लगाना ठीक नहीं है।

श्री जोशीका पत्र वापस नत्थी करता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २१०।

४०३. पत्र : एच० जे० हॉफमेयरको

निजी पत्र वाहक द्वारा प्रेषित

[जोहानिसबर्ग]
जून २, १९०५

सेवामे
श्री एच० जे० हॉफमेयर
जिमन्स बिल्डिंग्स
जोहानिसबर्ग

प्रिय श्री हॉफमेयर,

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि आपके पत्रसे, जिसके साथ एक चैक भी है, मैं असमंजसमें पड़ गया हूँ। क्योंकि मेरा खयाल है कि इसमें एक सिद्धान्तका सवाल है। वह चैक मुझे एक खास कामके लिए दिया गया था। आप जानते हैं कि यह रुपया मेरा था। मेरे पास सईद इस्माइलका जो कुछ जमा था यह रकम उसमें से नहीं ली गई है। और इस बातको देखते हुए कि जिस जायदादको खरीदनेके उद्देश्यसे यह रकम दी गई थी वह जायदाद खरीदी नहीं गई है, मेरा खयाल है कि मैं उस चैककी पूरी रकम वापस पानेका अधिकारी हूँ। मैं जानता

१. जूनागढ़के श्री त्र्यम्बकलाल मजमूदार, इंग्लैंडमें गांधीजीके सहपाठी।

हूँ कि उसमें से आपने जो खर्च काटा है उससे मैं कुछ बरबाद नहीं हो जाऊँगा। लेकिन मैं समझता हूँ कि इससे पारस्परिक सम्बन्धोंमें वैसा विश्वास जमनेमें मदद नहीं मिलती जैसा व्यवसायी लोगोंमें होना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मैंने आपको जो कुछ इतनी स्पष्ट-वादितासे लिखा है, आप उसका खयाल न करेंगे। लेकिन मैंने सोचा, मेरे मनमें आपका चैक, पत्र और बिल देखनेपर जो विचार आये, उन्हें आपको अवश्य बता देना चाहिए। निःसन्देह मैं आपका चैक स्वीकार करता हूँ। इससे इस पत्रमें मैंने जो कुछ कहा है उसका प्रभाव आपके द्वारा की गई कटौतीपर नहीं पड़ता।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २२०।

४०४. बड़ौदा: एक आदर्श भारतीय रियासत

सर विलियम वेडरबर्नने, जो कि भारतके अत्यन्त सच्चे मित्रोंमें से हैं, *इंडिया*के हालके एक अंकमें, बम्बई प्रान्तकी बड़ौदा रियासतके प्रशासनके सम्बन्धमें एक प्रशंसात्मक लेख लिखा है। इस रियासतकी आबादी बीस लाख है और इसका क्षेत्रफल आठ हजार वर्गमील है। दूसरे शब्दोंमें, यह ब्रिटेनके वेल्स प्रदेशसे कुछ बड़ी है। इसके वित्त-मन्त्री श्री रमेशचन्द्र दत्त[1] हैं, जो कि कभी उड़ीसाके कार्यवाहक कमिश्नर थे और जो साहित्य-जगतमें एक प्रतिभाशाली लेखकके रूपमें विख्यात हैं। महाराजा गायकवाड़ने, जो स्वयं भारतके सुसंस्कृत नरेशोंमें से हैं, अपने सलाहकार भी योग्य एकत्र किये हैं; और श्री दत्त उनमें ज्वलन्ततम नक्षत्र हैं। उनकी ही प्रकाशित प्रशासन-रिपोर्टके आधारपर सर विलियम वेडरबर्नने बड़ौदाकी प्रशंसा की है। श्री दत्तने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें भारतीय जनसाधारणकी दरिद्रता दूर करनेके विषयमें अपने विचार प्रकट किये हैं। इसका एक मुख्य उपाय उन्होंने यह सुझाया है कि कर-संग्रह प्रणालीको यथासम्भव अधिक लचकीला बना दिया जाये। बड़ौदामें मन्त्रिपद स्वीकार करते ही उन्हें अपने विचारोंको अमलमें लानेकी इजाजत दे दी गई थी। अब वहाँ किसान एक निश्चित लगान केवल नकद रकमके रूपमें देनेके लिए बाध्य नहीं हैं। अब वह उसे, निश्चित नियमोंके अनुसार, नकद या जिन्स, किसी भी रूपमें दे सकता है। इससे, हम फिर ब्रिटिश राजसे पहलेके जमानेमें पहुँच जाते हैं, जब भारत-भरमें किसान अपनी पैदावारका एक निश्चित भाग राजाको देता था। यह लोगोंके विचारोंके अनुकूल था और दोनों पक्षोंके लिए सुविधाजनक भी। तब राजा किसानकी समृद्धिमें हिस्सा बँटाता था, और विपत्तिमें उसके साथ हानि उठाता था। महाराजाके मन्त्रीने, जनताको परेशान करनेवाली छोटी-छोटी लागें भी उठा दी हैं। श्री दत्तका काम कर-प्रणालीके सुधारपर ही समाप्त नहीं होता। शिक्षाके विषयमें भी उनके अपने निश्चित विचार हैं। रियासतका एक उन्नत जिला, अनिवार्य शिक्षाके परीक्षणके लिए चुन लिया गया है। श्री दत्तकी रिपोर्टके अनुसार, बड़ौदामें शिक्षाकी स्थिति, ब्रिटिश भारतकी तुलनामें, निम्नलिखित है:

१. श्री रमेशचन्द्र दत्त, भारतीय सिविल सर्विसके प्रमुख सदस्य, जो १८९०में कांग्रेसके लखनऊ अधिवेशनके अध्यक्ष हुए।

शासनके अन्य किसी भी विभागमें, महाराजा गायकवाड़की दूरदर्शितापूर्ण उदारता, इतनी प्रत्यक्ष नहीं जितनी कि शिक्षामें; और उसके परिणाम भी अन्यत्र कहीं इतने वास्तविक और ठोस नहीं निकले हैं। वड़ौदामें रियासतकी आयका ६.५ प्रतिशत शिक्षापर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत, बंगालमें यह प्रतिशत १.१७, बम्बईमें १.४४, मद्रासमें १.३३, और सारे ब्रिटिश भारतमें लगभग १ है। और सारी आवादीमें शिक्षा पानेवाले बालकोंका प्रतिशत, बड़ौदामें ८.६, बंगालमें ४.०, बम्बईमें ६.२, मद्रासमें ३.०९, और समस्त ब्रिटिश भारतमें ३ से भी कम है। बड़ौदामें शिक्षाकी मदमें कुल आबादीपर प्रति व्यक्ति सात आने खर्च किये जाते हैं, जब कि ब्रिटिश भारतमें लगभग एक आना खर्च किया जाता है।

श्री दत्तकी दिलचस्पी स्वशासनकी समस्याके अतिरिक्त भारतके महान ग्राम-समाजोंको, जिन्हें स्वर्गीय सर हेनरी मेनने अपनी सजीव वर्णनशैलीमें आत्मनिर्भर गणराज्योंके रूपमें चित्रित किया है, पुनरुज्जीवित करने और कायम रखनेमें बहुत गहरी है। श्री दत्तने ग्रामोंको अपने प्रबन्धका नियन्त्रण दे दिया है और गाँवके मुखियाको भी कुछ अधिकार दे दिये हैं; उन्होंने गाँवके अध्यापकको उसके आसनपर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया है और पुरानी प्रणालीके पौधेमें सच्चे निर्वाचनात्मक प्रतिनिधित्वकी कलम लगा दी है। अब गाँवकी पंचायतके सदस्य पुश्तैनी न होंगे, वे लोगों द्वारा चुने जाया करेंगे। यह प्रयोग साहसपूर्ण है; और यदि यह सफल हो गया तो यह भारतीय रियासतोंके शासनमें एक नई प्रगतिका प्रतीक बन जायेगा। और जैसा कि सर विलियम वेडरबर्नने लिखा है, सम्भव है कि ब्रिटिश भारतकी सरकारको बड़ौदाका अनुकरण करना पड़े। सर विलियम वेडरबर्नने यह भी लिखा है कि इसमें लज्जा या झिझक अनुभव करनेकी कोई जरूरत नहीं है; प्रत्युत ब्रिटिश सरकारके लिए तो यह अभिमानकी बात होनी चाहिए; क्योंकि भारतको वर्तमान बड़ौदा नरेश और श्री दत्त जैसे असाधारण योग्यताके शासक भी तो आखिर उसने ही दिये हैं। बड़ौदा सरीखी रियासतसे दक्षिण आफ्रिकाके हमारे पाठकोंको, अपने भारत-विषयक पूर्वग्रह और भ्रान्त विचार दूर करनेमें सहायता मिलनी चाहिए। क्योंकि जिस देशमें इतने अच्छे और इतने उत्थानकारी कार्य होते हों उसे किसी भी प्रकार असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य जंगली जातियोंसे आबाद देश नहीं कहा जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०५. एक परोपकारी भारतीय

कुछ समयसे हमारे पास *इंडियन सोशिऑलॉजिस्ट* नामक पत्रकी प्रतियाँ आ रही हैं। यह पत्र "स्वतंत्रताका और राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार" का समर्थक है। यह लन्दनसे प्रकाशित होता है और इसके सम्पादक हैं पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा जो कि ऑक्स-फोर्ड विश्वविद्यालयके एम० ए० हैं और वहाँ अध्यापक भी रह चुके हैं। इस पत्रका सम्पादन निर्भीकतासे किया जाता है और इसके सम्पादक स्वर्गीय हर्बर्ट स्पेन्सरकी शिक्षाओंसे अनुप्राणित हैं। स्पष्ट है कि इस पत्रका लक्ष्य भारतीय विचारोंको स्पेन्सरकी शिक्षाओंके अनुसार ढालना है। पण्डितजी एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् हैं, और उनके पास सम्पत्ति भी अच्छी खासी है। उन्होंने कई छात्रवृत्तियाँ आरम्भ की हैं जिससे भारतीय छात्र यूरोप और अमेरिकामें अपना स्नातकोत्तर अध्ययन जारी रख सकें। प्रत्येक छात्रवृत्ति २,००० रुपये की है और वह भारतके सभी भागोंके चुने हुए स्नातकोंको इन मुख्य शर्तोंपर दी जाती है कि उम्मीदवार यूरोप या अमेरिकामें कमसे-कम दो वर्ष तक अवश्य रहेंगे और अध्ययन करेंगे एवं किसी भी अवस्थामें सरकारी नौकरी स्वीकार नहीं करेंगे। उम्मीदवारोंसे इस आशयका शर्तनामा लिखनेकी आशा की जाती है कि वे अध्ययन पूरा कर चुकनेपर इस प्रकार दी हुई रकमको सुविधाजनक किस्तोंमें चुका देंगे। प्रथम स्पर्धामें ये पाँच उम्मीदवार चुने गये हैं :– अब्दुल्ला-अल-महमूं सुहरावर्दी, एम० ए०, शरद्चन्द्र मुखर्जी, एम० ए०, परमेश्वरलाल, एम० ए०, सैयद अब्दुल मजीद, बी० ए०, और शेख अब्दुल अजीज, बी० ए०। यह प्रयोग अति साहसपूर्ण है। दानी व्यक्तिके उद्देश्य देशभक्तिपूर्ण हैं। परन्तु इस प्रयोगकी सफलता बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करती है कि प्रथम छात्र इस अवसरका उपयोग कैसे करते हैं। उनकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताएँ तो सुखद परिणामकी सूचक हैं। हम पण्डित श्यामजी कृष्ण-वर्माके प्रयत्नकी पूर्ण सफलताकी कामना करते हैं। दक्षिण आफ्रिका और अन्य स्थानोंके भारतीय व्यापारी भी उनके उदाहरणका अनुकरण बखूबी कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०६. श्री गांधीकी टिप्पणियाँ[1]

उपर्युक्त पत्रको पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। मैंने वही लिखा है जिसे मैंने सत्य माना है। फिर भी, मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग मेरे कथनसे अप्रसन्न हुए हैं। उसके लिए मुझे खेद है और मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। चूँकि मैं इस विवादको बढ़ाना नहीं चाहता, इसलिए मैं इस पत्रका उत्तर कुछ भी विस्तारसे देना ठीक नहीं समझता। मैंने इस्लामकी निन्दा करनेका प्रयत्न नहीं किया है और न मैं उसे नीचा ही मानता हूँ। मैं नहीं समझता हूँ कि जब मैंने वह भाषण दिया था तब किसी व्यक्तिके मस्तिष्कपर ऐसा प्रभाव पड़ा होगा।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०७. जोहानिसबर्गमें चेचक

यह रोग जोहानिसबर्गमें फूट निकला है; लेकिन सौभाग्यसे अधिक फैला नहीं है। हुसनमल नामका एक भारतीय मलायी बस्तीमें रहता है। उसके घरमें एक लड़केको चेचकका रोग हो गया था। उसने इसकी खबर अधिकारियोंको नहीं दी और जब अधिकारियोंने पूछताछ की तब उसने सही-सही बात नहीं बताई। इस वजहसे उसपर मुकदमा चलाया गया और १० पौंड जुर्माना किया गया। इस उदाहरणसे हम लोगोंको सबक लेना चाहिए। रोगको छिपानेसे कुछ भी लाभ नहीं, अपितु बहुत हानि है। केवल छिपानेवाला ही उसकी सजा भुगतता है, यह बात नहीं है; बल्कि वह सारी कौमको भुगतनी पड़ती है। चेचक छूत लगनेसे फैलती है, इसमें कोई शक नहीं। हजारों मनुष्य इससे दुःखी होते हैं, यह हम जानते हैं। इसलिए स्वयं अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखनेके लिए भी हमें सँभल कर रहना आवश्यक है।

फिर, दक्षिण आफ्रिकामें सँभलकर रहनेकी और भी ज्यादा जरूरत है क्योंकि हममें से किसी से भी भूल हो जाये तो उससे पूरी कौमको उलाहना मिलता है और सारी कौमके सामने बाधाएँ आती हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

१. श्री गांधीके उत्तरके बाद (देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण" १३–५–१९०५) *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादकको दो विरोध-सूचक पत्र प्राप्त हुए। उनमें से एक पत्रमें, जिसपर "एक मुसलमान"के दस्तखत हैं, यह दावा किया गया है कि . . . "लगभग एक लाख बोहरे मुसलमानोंके, जिनकी समाजमें अच्छी प्रतिष्ठा है, पुरखे सिद्धपुरके ब्राह्मण पुरोहित थे। इसके अतिरिक्त मध्य गुजरातके सुन्नी बोहरोंके पुरखे बनिया थे। इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि उच्च श्रेणियोंमें से भी कुछ लोग मुसलमान बने थे।" गांधीजीका उपर्युक्त उत्तर इसी सम्बन्धमें है।

४०८. सैम्युअल स्मिथ और भारत

श्री सैम्युअल स्मिथ भारतके शुभचिन्तक हैं। वे ब्रिटिश संसदके सदस्य हैं, और पिछली कांग्रेसमें खास तौरपर गये थे। उन्होंने लन्दन *टाइम्सको* लिखते हुए निम्न सुझाव दिये हैं:

१. ब्रिटेनमें जो इंडिया कौंसिल है उसमें तीन दक्ष भारतीय शामिल किये जायें और उनकी नियुक्ति वाइसराय करें।

२. वाइसरायकी शासन-समितिमें कमसे-कम एक भारतीय नियुक्त किया जाये।

३. ब्रिटिश संसदमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रासकी ओरसे एक-एक सदस्य नियुक्त किया जाये और उन सदस्योंका चुनाव सम्बन्धित धारासभाएँ करें।

श्री सैम्युअल स्मिथका कहना है कि इस प्रकार सुधार किया जाये तो भारतीयोंको बहुत सन्तोष होगा और शासन-प्रबन्ध बहुत अच्छा चलेगा। फिर श्री स्मिथ यह बताते हैं कि भारतकी सबसे बड़ी बीमारी कंगाली है। इसलिए रैयतको सुखी करनेके लिए भूमिका लगान सदाके लिए निश्चित कर देना चाहिए और वह बहुत कम होना चाहिए। श्री स्मिथके इन विचारोंपर सरकार ध्यान दे तो अवश्य लाभ होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०९. भारत और आम चुनाव

खयाल किया जाता है कि अब सम्भवतः कुछ ही दिनोंमें ब्रिटिश संसदका नया चुनाव होगा। ऐसे अवसरपर भारतकी अवस्था ब्रिटिश मतदाताओंको बताई जानी चाहिए। इस विचारसे गत कांग्रेसमें यह प्रस्ताव किया गया था कि भारतीय प्रतिनिधि भारतसे ब्रिटेन भेजे जायें। *इंडिया* पत्र बताता है कि इस सम्बन्धमें भारतके पक्के मित्र सर विलियम वेडरबर्नने एक सूचना निकाली है और ब्रिटेनके बड़े शहरोंके सदस्योंसे विनती की है कि वे भारतीय प्रतिनिधियोंसे भारतके दुःखोंका इतिहास सुननेके लिए सभाएँ करें। इन प्रतिनिधियोंके मुखिया श्री गोपालकृष्ण गोखले सी० आई० ई० नियुक्त किये गये हैं। ये श्री गोखले वे ही हैं जिन्होंने पूनाके फर्ग्युसन कॉलेजमें केवल अपने जीवन-निर्वाह लायक पैसा लेकर अध्यापनका काम किया था। इन दिनों वे कलकत्तामें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य हैं और प्रतिवर्ष उसमें भारतके निमित्त टक्कर लेते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४१०. भारतमें प्लेग

पिछले अप्रैल मासके अन्तिम सप्ताहमें भारतमें प्लेगसे ६५,७८० लोग बीमार पड़े और उनमें से ५७,७०२ मर गये। संयुक्त प्रान्तमें[1] २३,३८७, पंजाबमें १९,०१५, बम्बई प्रान्तमें ३,०५६ और बंगालमें ९,७०३ लोग मरे। *लिबर्टी रिव्यू* नामक पत्रने इस मृत्यु-संख्याकी कड़ी आलोचना की है, और कहा है कि इस प्लेगके लिए अंग्रेज सरकार जिम्मेवार है, क्योंकि देशमें भुखमरी बहुत है। यह हिसाब लगाया गया है कि ३० करोड़में से ३ करोड़ लोगोंको केवल एक बार खाना मिलता है। यह निश्चित बात है कि जिस मनुष्यको रोज भूखा रहना पड़ता हो उसका शरीर धीरे-धीरे कमजोर पड़ता जाता है, और अन्तमें ऐसा बिगड़ जाता है कि उसपर छूतके कीटाणुओंका असर तुरन्त होता है। फिर भी हमें कहना चाहिए *लिबर्टी रिव्यूकी* आलोचना एक हदतक नामुनासिब है। यह अनुभवके आधारपर कहा जा सकता है कि केवल भुखमरीसे पीड़ित लोगोंको ही प्लेग नहीं होता। हम देखते हैं कि अच्छी स्थितिमें रहनेवाले भी इसके शिकार हो जाते हैं। और अनुभवसे हम यह कह सकते हैं कि :

१. जिस घरमें प्लेग होता है उस घरमें अक्सर सभी लोग बीमार पड़ते हैं।
२. जिस गाँवमें प्लेग फैलता है वहाँ उसका सर्वथा उन्मूलन नहीं होता।
३. जो लोग स्वच्छतापूर्वक रहते हैं उनको प्लेग कम होता है।
४. जहाँ प्लेग हो, उस गाँवसे लोग निकल जाते हैं तो बच जाते हैं।
५. भारतीयोंमें जितना प्लेग होता है उतना गोरोंमें नहीं होता।
६. गोरे अधिक स्वच्छ रहते हैं और स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हैं।
७. भारतसे बाहर जहाँ-जहाँ प्लेग होता है वहाँ वह तुरन्त निर्मूल हो जाता है।

इससे हम देख सकते हैं कि भुखमरीके साथ प्लेगका सम्बन्ध अधिक नहीं है।

इसमें कोई शक नहीं कि प्लेग के सम्बन्धमें मुख्य बात स्वच्छता रखनेकी है। स्वच्छताका मतलब बस नहाना-धोना ही नहीं है। यह ठीक है कि शारीरिक स्वच्छता रखनी चाहिए। परन्तु इसके अतिरिक्त घर साफ रखना चाहिए, घरमें रोशनी और धूप आने देनी चाहिए। पाखाने साफ रखने चाहिए और जिस घरमें रोग हो वहाँ रोगी और दूसरोंके रहनेकी सुविधा ऐसी रखनी चाहिए कि रोगीके लिए बरता जानेवाला सामान दूसरे व्यवहारमें न लायें। प्लेगके रोगीकी तीमारदारी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उसके बारेमें इस समय अधिक नहीं कह सकते; किन्तु हमारे पाठकोंको यह याद रखना आवश्यक है कि प्लेगके समान दूसरा घातक रोग देखनेमें नहीं आता। हैजा हमेशा भयानक रोग माना गया है; लेकिन प्लेगके सामने वह कुछ नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। फिर भारतमें दिन-प्रतिदिन प्लेग बढ़ रहा है, घट नहीं रहा है। उदाहरणार्थ उससे १९०१ में २,७२,००० मौतें हुईं, १९०२ में ५,००,००० और १९०३ मे ८,००,०००; और इस वर्ष तो इतना अधिक जोर है कि सहज ही १०,००,००० मौतें हो जायेंगी। प्रतिमास इस वर्ष १,२०,०००[2] मनुष्योंकी औसत आ रही है। इस प्रकार

१. अब उत्तर प्रदेश।
२. मूल छपमें १,२०,००० का अंक प्रत्यक्षत: भूलसे लिखा गया है।

मौतें होती ही रहीं और प्रतिवर्ष बढ़ती ही रहीं तो सारा भारत १५ वर्षमें उजाड़ हो जाये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। कुछ गाँव तो उजड़ चुके हैं। पंजाबमें कई जगह लोकोपयोगी काम बन्द हो गये हैं। प्लेगसे बचे हुए लोग गाँव छोड़कर भाग गये हैं। इसलिए इसपर प्रत्येक भारतीयको विचार करना चाहिए। प्रत्येक भारतीयको अपना हृदय टटोलना है और अपने कर्त्तव्यकी रूपरेखा तैयार करनी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४११. पत्र : एम० एच० थर्स्टनको

[जोहानिसबर्ग]
जून ५, १९०५

श्री एम० एच० थर्स्टन
पो० ऑ० बॉक्स १७१२
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

मैं देखता हूँ कि जिस मकानमें रह रहा हूँ उसके भोजन-कक्षकी चिमनी बिलकुल काम नहीं करती। उसमें जो भाग लकड़ीका बना है वह बाहर उभर आया है। प्रत्येक बार, जब मैं आग जलाता हूँ, भोजनकक्ष धुएँसे भर जाता है। यह धुआँ लकड़ीके बाहर उभरे हुए भागकी दरारोंमें से निकलता है।

यदि आप इसको कृपापूर्वक अविलम्ब ठीक करा देंगे तो मैं आपका कृतज्ञ हूँगा।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकृष्ट करना चाहूँगा कि ट्रायविलेमें सब जगह किराये घट गये हैं। और यदि आप, मैं जो किराया दे रहा हूँ उसमें कुछ कमी कर देंगे तो मैं कृतज्ञ होऊँगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २५२।

४१२. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ६, १९०५

सेवामें
श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद झवेरी,

प्रिटोरियासे प्राप्त तार साथ भेजता हूँ। श्री शोन नामके एक व्यक्तिने हाजी तैयब खान मुहम्मदको दस वर्षके पट्टेके लिए ५० पौंड देनेका प्रस्ताव किया है। उसका पत्र मुझे कल ही मिला है। परन्तु मकान कितनेका है, उसने इस बारेमें कुछ नहीं लिखा। मैंने उस व्यक्तिसे पुछवाया है, किन्तु उसमें कोई सार निकलता नहीं प्रतीत होता। तारसे ऐसा जान पड़ता है कि १४,००० पौंडका मकान २० पौंडमें तय है।[1] फिर भी केलनबेकसे नहीं मिला, इसलिए मैंने तार नहीं दिया। मुझे दस्तावेज भेजना।

मैं बहुत करके ९ तारीखको रवाना हूँगा। ११ तारीख रविवार दादा सेठके काममें लगानेका विचार है। मुझे जैसे हो वैसे तुरन्त वापस आना पड़ेगा, क्योंकि यहाँ मेरी बहुत जरूरत है। मुझे कुछ समय फीनिक्सको भी देना चाहिए। बात यह है कि मुझे अधिकसे-अधिक १९ तारीखतक यहाँ पहुँच जाना चाहिए।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न — एक

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २५९।

१. पहली रकम मकानकी कीमतकी और दूसरी उसके किरायेकी है।

४१३. पत्र : खुशालभाई गांधीको[1]

[जोहानिसबर्ग]
जून ७, १९०५

सेवामें
श्री खुशाल जीवन गांधी
सरधार राजकोट होकर
काठियावाड़, भारत

आदरणीय खुशालभाई,

आज छगनलालका पत्र मिला है। वह उसमें लिखता है कि हकीकी[2] लड़की गुजर गई है। यहाँ ऐसी दुर्घटनाओंपर विचार करनेका भी अवकाश नहीं रहता। यह इस देशकी तासीर है। मैं समझ सकता हूँ कि आपके और भाभीके मनपर इस दुःखका असर कितना हुआ होगा। किन्तु ऐसे दुःख हम सबको कसौटीपर कसते हैं। इस समय धीरज रखा जा सके तभी ठीक है।

मैं दो दिनोंमें फीनिक्स जाऊँगा। तब चि० छगनलाल और मगनलालसे मुलाकात होगी।

मोहनदासका दंडवत्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २७२।

४१४. पत्र : फुलाभाईको

[जोहानिसबर्ग]
जून ७, १९०५

सेवामें
श्री फुलाभाई
बॉक्स १२८
पॉचेफस्ट्रूम

प्रिय श्री फुलाभाई,

आपके दो पत्र मिले।

अपने पत्रमें आपने मुझे फीस भेजनेके लिए लिखा था और हुसेन इब्राहीम यहाँसे गये तब भी आपने पैसा भेजनेकी बात कही थी। इसलिए मैंने आपके खाते नामे लिखनेका निर्देश दे दिया था। चाहे जिसके खाते नामे लिखें, मेरे लिए एक ही बात है; क्योंकि मैं किसीपर नालिश तो करता नहीं हूँ। इसीलिए बिना जाने-पहचाने व्यक्तियोंसे खास तौरपर अगाऊ फीस

१. गांधीजीके चचेरे भाई और श्री छगनलाल और मगनलालके पिता।
२. श्री खुशालभाईकी पुत्री हरकुँवर बेन।

४१७. जापान और रूस

जापानकी कला दिनोदिन बढती दिखाई देती है। उसने पोर्ट आर्थरका किला तोडा, मुकदन सर किया और दूसरी बहादुरियाँ दिखाई। ये सब उसके बादके पराक्रमके सामने फीकी पड जाती है। उसने रूसके विशाल जहाजी बेडेको हरा दिया, यही नही, अपितु उसके बडे जल-सेनाध्यक्षको घायल कर दिया और रूसका एक भी युद्धपोत नही छोडा। जापान इतनी बहादुरी दिखा सकेगा, ऐसा खयाल किसीने न किया था। बहुत-से लोग यह समझते थे कि रूसी बेडा सिगापुर पहुँच जायेगा तब जापान बडी कठिनाईमे पड जायेगा। यह बात सब जानते थे कि जापानका बेडा कोई बहुत मजबूत बेडा नही है, क्योकि जापानी युद्धपोत रूसी युद्धपोतोसे सख्यामें कम थे। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जापानकी सावधानी सबसे बढी-चढी थी। जल-सेनाध्यक्ष तोजोके जासूस बहुत चौकन्ने थे और जब रूसी बेडा उसके ठीक प्रहारके घेरेमे आ गया तभी उसने उसपर हमला कर दिया। यह साहस छोटा-मोटा नही कहा जा सकता। इस साहसकी तुलना नही की जा सकती। किन्तु इस प्रकार काम लेनेमे जल-सेनाध्यक्ष तोजोने जिस धीरज और दिमागी ठडेपनका प्रयोग किया है उसे हम सर्वोपरि मानते है। इसमे सम्मान प्राप्त करने अथवा दुनियाको बहादुरी जतानेके उद्देश्यसे कुछ भी नही किया गया। तोजोका हेतु एक ही था और वह यह कि सही वक्तपर और सही जगह रूसको चपत लगायी जाये। यह उसने करके दिखा दिया है। और, जो रूस दो वर्ष पहले प्राय अजेय माना जाता था वह इस समय जापानके काबूमे आ गया प्रतीत होता है। यह कहा जाता है कि इस समुद्री युद्धसे जिसकी तुलना की जा सके ऐसा एक भी युद्ध तवारीखमे देखनेको नही मिलता। १६वी सदीमे इग्लैडकी एक बडी जीत हुई थी। स्पेनका बेडा अजेय था। वह इग्लिश चैनलमे नष्ट हो गया था और अग्रेज जल-सेनाध्यक्षकी जीत हुई थी। वह लडाई बडी भारी कही जाती है, किन्तु उसमे इग्लैडको दैवी सहायता मिली थी। स्पेनका बेडा बहुत बडा था, खाडी सकरी थी, और ऐन लडाईके मौकेपर ही ऐसी जोरकी आधी चल पडी कि स्पेनका बेडा उसे बर्दाश्त नही कर सका। वह आँधी इग्लैडके बेडेके अनुकूल थी।

ट्रफालगर अन्तरीपके पास १९वी सदीमे नेल्सनने भारी विजय प्राप्त करके अग्रेजी बेडेको प्रथम स्थान दिलाया, किन्तु उस समय आजकल जैसे मजबूत जहाज नही थे। उस समय इस जमानेके भयानक हथियार नही थे।

जापानको कोई अनपेक्षित सहायता नही मिली। उसका तो केवल एक पक्का निश्चय यह था कि उसे जीतना ही है। वह निश्चय उसका सच्चा मित्र सिद्ध हुआ है। हार किसे कहते है यह इस लडाईमे जापानने जाना ही नही है।

ऐसे महा कठिन पराक्रमका स्रोत क्या है? इस प्रश्नका उत्तर हमे बार-बार दुहरानेकी आवश्यकता है, और वह एक ही है — ऐक्य, स्वदेशाभिमान, मर-मिटनेकी चाह। इस सबधमे सभी जापानियोका उत्साह एकसा ही है। इसमे कोई किसीको ज्यादा नही मानता, और उनमे फूट-फाट कुछ नही है। देशकी सेवा करनेके अतिरिक्त वे और कुछ नही जानते। जिस देशमे उन्होने जन्म लिया, जिन लोगोमे वे पले, और जिनके बीच उनको जीवन बिताना पडा, उस देशके समृद्ध होनेपर वे स्वय समृद्ध बने, उस देशकी उन्नति होनेपर स्वय उन्नत हो और उस देशको राज्यसत्ता मिलनेपर ही उसके अशके रूपमे राज्यसत्ताका उपभोग करे, ऐसा महान उनका

स्वदेशाभिमान रहा है। इस प्रकारके ऐक्य तथा स्वदेशाभिमानमें प्राणोंके प्रति अनासक्तिका योग है। जापानमें इस समय ऐसी स्थिति है। इस तरहकी स्थिति संसारके किसी अन्य भागमें नहीं है। मृत्युका भय तो उन लोगोंने जाना ही नहीं है; बल्कि देश-सेवामें मरना हर प्रकारसे अच्छा माना है। एक दिन तो सभीको मरना है, फिर लड़ाईमें ही मरनेमें क्या हानि है? लड़ाईमें नहीं जायेंगे तो घरमें बैठकर अधिक जियेंगे, यह कोई निश्चय नहीं है। कदाचित् अधिक जिये, तो भी पराजित लोगोंकी संतान बनकर रहनेमें क्या लाभ है? ऐसा विचार करके जापानी सर-फरोश हुए हैं। जो लोग इस प्रकार अपने हाड़-मांस तथा रक्त देते हों वे रणमें अजेय हों इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

ये विचार किस कामके हैं? हमें इनसे क्या सीखना है? दक्षिण आफ्रिकामें जो हम तुच्छ-सी लड़ाई लड़ रहे हैं इसमें हम ऐक्य नहीं पाते हैं, फूट-फाट चलती रहती है। स्वदेशाभिमानके बदले स्वार्थ अधिक दीख पड़ता है। "मैं बच जाऊँ, दूसरे भले ही जायें", ऐसा खयाल मनमें रहता है। हमें अपने प्राण इतने प्यारे होते हैं कि हम इन प्राणोंसे मोह करते-करते ही चले जाते हैं। इस लोकमें कल्याण नहीं हो पाता तो परलोककी आशा किसे हो? हममें से ज्यादातर लोगोंकी ऐसी ही स्थिति नजर आती है। यदि हम लोग जापानके उदाहरणसे प्रेरणा लेकर उसका थोड़ा-सा भी अनुकरण कर सकें तो जापानके युद्धकी कहानी पढ़नेकी बात फलदायक होगी। वैसे तो बहुत-से तोते राम-राम रटते हैं, किन्तु इससे वे स्वर्ग नहीं पहुँच जाते। इसी तरह इसे केवल पढ़ जानेसे हमें भी कोई लाभ नहीं है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १०–६–१९०५

४१८. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें भाषण

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी एक सभा डर्बनमें श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाकी अध्यक्षतामें हुई थी। गांधीजीने उस अवसरपर भाषण करते हुए निम्न बातें कहीं:

जून १६, १९०५

मेरी सलाह है कि कांग्रेसके सदस्य हुंडामलके परवानेके मुकदमेमें खर्च करनेका अधिकार कांग्रेसके मन्त्रियोंको दे दें। क्योंकि मुकदमा बहुत संगीन है और यदि संघर्ष नहीं किया गया तो भविष्यमें पछतानेका मौका आयेगा। श्री मदनजीत भारतमें हमारी ओरसे अच्छा आन्दोलन कर रहे हैं, इसलिए उनको मददके तौरपर पैसा भेजा जाना चाहिए।

मैंने जोहानिसबर्गमें जो भाषण[1] दिये हैं, जान पड़ता है कि कुछ लोगोंने उनका अनर्थ किया है। उन भाषणोंसे मेरा इरादा मुसलमानोंकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नहीं था। हम लोगोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भेद नहीं करना चाहिए। हम लोगोंको अच्छी तरह जानना चाहिए कि फूटके कारण हम अपना देश खो बैठे हैं और जापानी लोग संगठन और एकताके बलपर कितना कर सके हैं। हम अलग-अलग धर्मोंके लोग हैं, किन्तु हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम सार्वजनिक कार्योंमें एक ही हैं।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १–७–१९०५

१. देखिए "हिन्दू धर्म," मार्च ४ और ११ एवं 'धर्मपर व्याख्यान,' अप्रैल १५, १९०५।

४१७. जापान और रूस

जापानकी कला दिनोंदिन बढ़ती दिखाई देती है। उसने पोर्ट आर्थरका किला तोड़ा, मुकदन सर किया और दूसरी बहादुरियाँ दिखाई। ये सब उसके बादके पराक्रमके सामने फीकी पड़ जाती है। उसने रूसके विशाल जहाजी बेड़ेको हरा दिया, यही नही, अपितु उसके बड़े जल-सेनाध्यक्षको घायल कर दिया और रूसका एक भी युद्धपोत नही छोड़ा। जापान इतनी बहादुरी दिखा सकेगा, ऐसा खयाल किसीने न किया था। बहुत-से लोग यह समझते थे कि रूसी बेड़ा सिंगापुर पहुँच जायेगा तब जापान बड़ी कठिनाईमें पड़ जायेगा। यह बात सब जानते थे कि जापानका बेड़ा कोई बहुत मजबूत बेड़ा नही है; क्योंकि जापानी युद्धपोत रूसी युद्धपोतोंसे संख्यामें कम थे। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जापानकी सावधानी सबसे बढ़ी-चढी थी। जल-सेनाध्यक्ष तोजोके जासूस बहुत चौकन्ने थे और जब रूसी बेडा उसके ठीक प्रहारके घेरेमें आ गया तभी उसने उसपर हमला कर दिया। यह साहस छोटा-मोटा नही कहा जा सकता। इस साहसकी तुलना नही की जा सकती। किन्तु इस प्रकार काम लेनेमे जल-सेनाध्यक्ष तोजोने जिस धीरज और दिमागी ठंडेपनका प्रयोग किया है उसे हम सर्वोपरि मानते है। इसमें सम्मान प्राप्त करने अथवा दुनियाको बहादुरी जतानेके उद्देश्यसे कुछ भी नही किया गया। तोजोका हेतु एक ही था और वह यह कि सही वक्तपर और सही जगह रूसको चपत लगायी जाये। यह उसने करके दिखा दिया है। और, जो रूस दो वर्ष पहले प्रायः अजेय माना जाता था वह इस समय जापानके काबूमें आ गया प्रतीत होता है। यह कहा जाता हे कि इस समुद्री युद्धसे जिसकी तुलना की जा सके ऐसा एक भी युद्ध तवारीखमें देखनेको नही मिलता। १६वी सदीमे इंग्लैंडकी एक बड़ी जीत हुई थी। स्पेनका बेड़ा अजेय था। वह इंग्लिश चैनलमे नष्ट हो गया था और अंग्रेज जल-सेनाध्यक्षकी जीत हुई थी। वह लड़ाई बड़ी भारी कही जाती है; किन्तु उसमें इंग्लैंडको दैवी सहायता मिली थी। स्पेनका बेड़ा बहुत बड़ा था, खाड़ी संकरी थी, और ऐन लड़ाईके मौकेपर ही ऐसी जोरकी आँधी चल पड़ी कि स्पेनका बेड़ा उसे बर्दाश्त नही कर सका। वह आँधी इंग्लैंडके बेड़ेके अनुकूल थी।

ट्रफाल्गर अन्तरीपके पास १९वी सदीमें नेल्सनने भारी विजय प्राप्त करके अंग्रेजी बेड़ेको प्रथम स्थान दिलाया; किन्तु उस समय आजकल जैसे मजबूत जहाज नही थे। उस समय इस जमानेके भयानक हथियार नही थे।

जापानको कोई अनपेक्षित सहायता नही मिली। उसका तो केवल एक पक्का निश्चय यह था कि उसे जीतना ही है। वह निश्चय उसका सच्चा मित्र सिद्ध हुआ है। हार किसे कहते हैं यह इस लड़ाईमे जापानने जाना ही नही है।

ऐसे महा कठिन पराक्रमका स्रोत क्या है? इस प्रश्नका उत्तर हमें बार-बार दुहरानेकी आवश्यकता है, और वह एक ही है — ऐक्य, स्वदेशाभिमान, मर-मिटनेकी चाह। इस संबंधमें सभी जापानियोंका उत्साह एकसा ही है। इसमें कोई किसीको ज्यादा नहीं मानता, और उनमे फूट-फाट कुछ नही है। देशकी सेवा करनेके अतिरिक्त वे और कुछ नही जानते। जिस देशमें उन्होंने जन्म लिया, जिन लोगोंमे वे पले, और जिनके बीच उनको जीवन बिताना पड़ा, उस देशके समृद्ध होनेपर वे स्वयं समृद्ध बने, उस देशकी उन्नति होनेपर स्वयं उन्नत हों और उस देशको राज्यसत्ता मिलनेपर ही उसके अंशके रूपमे राज्यसत्ताका उपभोग करें, ऐसा महान उनका

स्वदेशाभिमान रहा है। इस प्रकारके ऐक्य तथा स्वदेशाभिमानमें प्राणोंके प्रति अनासक्तिका योग है। जापानमें इस समय ऐसी स्थिति है। इस तरहकी स्थिति संसारके किसी अन्य भागमें नहीं है। मृत्युका भय तो उन लोगोंने जाना ही नहीं है; बल्कि देश-सेवामें मरना हर प्रकारसे अच्छा माना है। एक दिन तो सभीको मरना है, फिर लड़ाईमें ही मरनेमें क्या हानि है? लड़ाईमें नहीं जायेंगे तो घरमें बैठकर अधिक जियेंगे, यह कोई निश्चय नहीं है। कदाचित् अधिक जिये, तो भी पराजित लोगोंकी संतान बनकर रहनेमें क्या लाभ है? ऐसा विचार करके जापानी सर-फरोश हुए हैं। जो लोग इस प्रकार अपने हाड़-मांस तथा रक्त देते हों वे रणमें अजेय हों इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

ये विचार किस कामके हैं? हमें इनसे क्या सीखना है? दक्षिण आफ्रिकामें जो हम तुच्छ-सी लड़ाई लड़ रहे हैं इसमें हम ऐक्य नहीं पाते हैं, फूट-फाट चलती रहती है। स्वदेशाभिमानके बदले स्वार्थ अधिक दीख पड़ता है। "मैं बच जाऊँ, दूसरे भले ही जायें", ऐसा खयाल मनमें रहता है। हमें अपने प्राण इतने प्यारे होते हैं कि हम इन प्राणोंसे मोह करते-करते ही चले जाते हैं। इस लोकमें कल्याण नहीं हो पाता तो परलोककी आशा किसे हो? हममें से ज्यादातर लोगोंकी ऐसी ही स्थिति नजर आती है। यदि हम लोग जापानके उदाहरणसे प्रेरणा लेकर उसका थोड़ा-सा भी अनुकरण कर सकें तो जापानके युद्धकी कहानी पढ़नेकी बात फलदायक होगी। वैसे तो बहुत-से तोते राम-राम रटते हैं, किन्तु इससे वे स्वर्ग नहीं पहुँच जाते। इसी तरह इसे केवल पढ़ जानेसे हमें भी कोई लाभ नहीं है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १०-६-१९०५

४१८. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें भाषण

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी एक सभा डर्बनमें श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाकी अध्यक्षतामें हुई थी। गांधीजीने उस अवसरपर भाषण करते हुए निम्न बातें कहीं:

जून १६, १९०५

मेरी सलाह है कि कांग्रेसके सदस्य हुंडामलके परवानेके मुकदमेमें खर्च करनेका अधिकार कांग्रेसके मन्त्रियोंको दे दें। क्योंकि मुकदमा बहुत संगीन है और यदि संघर्ष नहीं किया गया तो भविष्यमें पछतानेका मौका आयेगा। श्री मदनजीत भारतमें हमारी ओरसे अच्छा आन्दोलन कर रहे हैं, इसलिए उनको मददके तौरपर पैसा भेजा जाना चाहिए।

मैंने जोहानिसबर्गमें जो भाषण[1] दिये हैं, जान पड़ता है कि कुछ लोगोंने उनका अनर्थ किया है। उन भाषणोंसे मेरा इरादा मुसलमानोंकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नहीं था। हम लोगोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भेद नहीं करना चाहिए। हम लोगोंको अच्छी तरह जानना चाहिए कि फूटके कारण हम अपना देश खो बैठे हैं और जापानी लोग संगठन और एकताके बलपर कितना कर सके हैं। हम अलग-अलग धर्मोंके लोग हैं, किन्तु हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम सार्वजनिक कार्योंमें एक ही हैं।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १-७-१९०५

१. देखिए "हिन्दू धर्म," मार्च ४ और ११ एवं 'धर्मपर व्याख्यान,' अप्रैल १५, १९०५।

४१९. भारतमें प्लेगको कम करनेके उपाय

बम्बईके डॉक्टर टर्नरने बम्बई सरकारको लम्बा पत्र लिखा है। उसमें उन्होंने कहा है कि प्रतिवर्ष प्लेग बढ़ता जा रहा है। इसमें कमी होनेका एक ही रास्ता हे और वह है टीके लगवाना। उक्त डॉक्टरकी मान्यता है कि जिन्होंने टीके लगवाये हैं उनको प्लेग क्वचित् ही होता है। लेकिन लोगोंको टीका लगवानेके लिए कैसे समझाया जाये यह एक बड़ी कठिनाई है। डॉ० टर्नर लिखते हैं कि लोगोंके लिए टीका बाध्य कर देनेसे भी यह सम्भव नहीं है। मजदूरोंको उनके मालिक बाध्य करें तो अच्छा; परन्तु ऐसा करनेमें समय लगेगा। इसलिए वह भी ठीक नहीं है। अन्तमें डॉ० टर्नर कहते हैं कि सरकार टीके लगवानेवाले व्यक्तिका बीमा करे; और उसे यह दस्तावेज लिख दे कि यदि वह टीका लगवानेके बाद एक वर्षके भीतर मर जायेगा तो सरकार उसके रिश्तेदारोंको १०० रुपया देगी। डॉक्टरकी मान्यता है कि ऐसा करनेसे बहुत आदमी टीके लगवायेंगे। एक दूसरे डॉक्टरका सुझाव है कि टीके लगवानेवाले लोगोंके लिए एक लॉटरी निकाली जाये। जो लोग टीके लगवायेंगे उनके नामकी पर्चियाँ डाली जायें और जिसके नामकी पर्ची निकले उसे इनाम दिया जाये। इस प्रकार ये भलेमानुस प्लेगको नष्ट करनेके लिए निष्फल प्रयत्न करते रहते हैं।

यह सम्भव है कि कुछ लोग इस प्रकारसे टीके लगवानेसे बच जाते होंगे। परन्तु हमें इसमें कुछ भी लाभ नजर नहीं आता। टीके लगवानेका यह उपाय वैसा ही है जैसा कोई विषयी मनुष्य अपने विषय-भोगोंके परिणामसे मुक्त होनेके लिए ढूंढ़ता है। टीके लगवानेसे प्लेगके कारण निर्मूल नहीं होते। और जबतक ये कारण निर्मूल नहीं होते तबतक वास्तविक लाभ नहीं होगा। अगर प्लेग कम हो जायेगा तो उसके स्थानमें कोई दूसरा रोग पैदा हो जायेगा। जैसे जड़ें खोदे बिना पेड़ खतम नहीं होता वैसे ही प्लेगका कारण समाप्त किये बिना प्लेग समाप्त होनेवाला नहीं है। लोगोंकी गन्दगी दूर करना, लोगोंकी रीति-नीति सुधारना और लोगोंकी गरीबी मिटाना आवश्यक है। हम मानते हैं कि हम लोग स्वच्छताके नियमोंका पालन नहीं करते, यह हम पाप करते हैं। हमारी रीति-नीति ठीक नहीं है, क्योंकि हम अपने कर्तव्योंको भूल जाते हैं। तिसपर यह गरीबी है; इसलिए हमें सभी दशाएँ घेरती हैं। यह अवस्था कैसे सुधरे इसका विचार जो कर सके और विचार करके उसके अनुसार आचरण कर सके, वह मनुष्य भारतका त्राता माना जायेगा। इस प्रकारके मूलगत उपाय करनेके बाद सहायताके रूपमें दूसरे उपाय किये जायेंगे तो वे शोभा देंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

४२०. इंग्लैंडको लड़ाईमें भारतकी सहायता

इंडिया अखवारमें, इंग्लैंडको भारतीय सेनाकी कितनी मदद मिलती है, इसके कुछ आँकड़े प्रकाशित किये गये है। इनसे पता चलता है कि १८९९ में दक्षिण आफ्रिकामें ८,२१५ भारतीय सैनिकोंकी सेना आई थी। चीनमें जव वॉक्सरका गदर हुआ था तव भारतसे भारतीय सेनाके १४,३७१ सैनिक भेजे गये थे। सोमालीलैंडमें ३,३७६ भारतीय सैनिक गये थे। तिव्वतमें और उत्तर-पश्चिम सीमाकी रक्षाके लिए जो भारतीय सैनिक जाते है उनकी गिनती इससे विलकुल अलग है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

४२१. गांधीजीका उत्तर[1]

उपर्युक्त पत्रके संवंधमें मुझे केवल यह कहना है कि इतिहासकी पुस्तकोंमें जो तथ्य अंकित है वे गलत हों तो मुझे उसका पता नही है। मेरी कोई भूल हो तो मुझे उसे सुधारनेमें प्रसन्नता होगी। जिन तथ्योंकी मैंने चर्चा की है वे *एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका*, हंटरकी *हिस्ट्री ऑफ इंडिया* और अन्य पुस्तकोंमें मिलते है। खैर, मेरा कहना सही है या गलत, इसपर जोर नही देना चाहिए। परन्तु जिस उद्देश्यसे मैंने इन तथ्योंको प्रस्तुत किया है उनपर विचार किया जाना चाहिए। और यदि मैंने ऐतिहासिक तथ्योंको सद्भावसे प्रस्तुत किया है तो इससे किसीको दुःख न मानना चाहिए।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

१. *इंडियन ओपिनियन*, ३–६–१९०५ में श्री गांधीजीकी टिप्पणी प्रकाशित होनेके वाद सम्पादकको एक पत्र मिला जिसमें "इस्लामके एक अनुयायी"की ओरसे इसके विरोधमें लिखा गया था: "हिन्दुओंकी नीची जातियाँ ही मुसलमान हुई, इस वक्तव्यका समर्थन भारतीय इतिहासकी किसी उर्दू या गुजराती पुस्तकमें नहीं मिलता। यदि इतिहासकी किन्हीं रद्दी पुस्तकोंमें ऐसे विचार मिलते हैं तो वे हिन्दू कल्पनाकी गढ़न्त ही सकते हैं।... क्या श्री गांधी उस इतिहासका नाम वतानेकी कृपा करेंगे जिसमें उन्होंने ऐसी गम्भीर वातें पढ़ी हैं?" गांधीजीने इसी पत्रका उत्तर दिया है।

४२२. पत्र : न्याय-संघको

[जोहानिसबर्ग]
जून २२, १९०५

सेवामें
मन्त्री
संयुक्त न्याय-संघ
केप टाउन

महोदय,

मैंने विजर्टनके बड़े वकील श्री ई० ए० वॉल्टर्सको[1] एक रकमकी वसूलीका काम सौंपा था जो जोहानिसबर्गके एक मुवक्किलको उसी जगह या जिलेके एक निवासीसे लेनी थी।

जैसा कि कर्जदारने मुझे लिखा है, वह अपने ऊपर पूरी वाजिब रकम श्री वॉल्टर्सको अदा कर चुका है। परन्तु उन्होंने मुझे उस रकमका केवल एक हिस्सा भेजा है और मैंने पिछले बारह महीनोंमें उनको जो पत्र लिखे हैं उनकी उपेक्षा की है। उनको यह काम फरवरी १९०४ के आस-पास सौंपा गया था। मैंने उनको अपना पिछला पत्र २५ मई १९०५ को लिखा था। इसमें उनको सूचना दी थी कि यदि वे मेरे पत्रोंका उत्तर न देंगे तो मैं उनके इस कार्यकी ओर आपके संघका ध्यान आकृष्ट करूँगा। दुर्भाग्यसे उन्होंने उस पत्रका भी कोई उत्तर नहीं दिया है।

इसलिए मैं इस मामलेको आपके ध्यानमें ला रहा हूँ ताकि संघ इसके सम्बन्धमें जो कार्यवाही करना उचित समझे वह करे।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ३९३।

१. देखिए "पत्र: ई० ए० वॉल्टर्सको", मई २५, १९०५।

४२३. पत्र : टाउन क्लार्कको

[जोहानिसबर्ग]
जून २२, १९०५

सेवामें
टाउन क्लार्क
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

विषय : *भारतीयोंका नगरपालिकाकी ट्रामोंमें यात्राका अधिकार*

यदि ट्रामवे-समितिने इस मामलेपर विचार कर लिया हो तो मैं इस सम्बन्धमें प्रेषित अपने पत्रोंके उत्तरके लिए आपको धन्यवाद दूँगा।

मेरे मुवक्किलने मासिक पासके लिए प्रार्थनापत्र भेजा था। यदि समिति उसके प्रार्थनापत्रपर सहानुभूतिपूर्वक विचार न करे तो वह इस मामलेको आगे बढ़ानेके लिए उत्सुक है और अपने अधिकारकी परीक्षा करना चाहता है।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ३९७।

४२४. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
जून २३, १९०५

श्री पारसी रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू
९, खेतवाड़ी गली
बम्बई

श्री सेठ रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू,

मैं पिछले अठवाड़ेमें डर्बन गया था। तभी दूकानपर भी गया। उमरसेठ, कैखुसरू, अब्दुल हक और मैं — साथ-साथ बैठे और हिसाब देखा। भाड़ेकी आय बहुत घट गई है। वह २०० पौंडके नीचे आ गई है तथा अभी और घटेगी। मगर इसका कोई उपाय नहीं है। एवान होटलकी संचालिका महिलासे मिला। उसने कहा कि भाड़ा कम होगा, वह तभी रहेगी। मैंने उससे भाड़ा कम करनेकी हाँ कर दी है। व्यापारमें भी कोई खास तत्त्व नहीं दिखाई देता। लेकिन अब्दुल हकमें हिम्मत है, इसलिए उमर सेठकी सलाह है कि थोड़ा बहुत व्यापार करें। वे खुद देखरेख रखनेकी बात कहते हैं। इसलिए मैं मानता हूँ कि थोड़ा व्यापार करनेमें हर्ज नहीं है।

भाड़ेके बारेमें आपकी बात याद है। मगर आप इसमें उतावली न करें। समय बहुत खराब है, इसलिए भाड़ा तो घटेगा ही। लेकिन घबराना नहीं चाहिए। आप वहाँका काम प्रसन्न होकर पूरा करें। घर बनानेकी जरूरत साफ है; इसलिए उसमें विघ्न न होना चाहिए।

आपका पत्र अभी यहाँ नही आया। डर्बनमें भी नहीं पहुँचा था। निश्चित समय बाद दूकानको पत्र लिखना जरूरी है।

अपनी तबियतकी खबर दें।

माजीको सलाम कहें। जाल और सोराबसे पत्र लिखायें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४०२।

४२५. पत्र : जालभाई सोराबजी ब्रदर्सको

[जोहानिसबर्ग]
जून २३, १९०५

सेवामें
श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
११०, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

प्रिय महोदय,

मुझे आपका पत्र मिला। मैंने श्री लॉटनका हिसाब देख लिया है। मैं सोचता हूँ, व्यावसायिक दृष्टिसे, इसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता। लाटीवाला गायब हो गया है, यह देखते हुए आप उसके बिलमें कमीकी प्रार्थना कर सकते हैं। मैं एवान होटलके बारेमें आपकी कार्यवाहीकी पुष्टि करता हूँ। कृपया छगनलालको बता दें कि ७ पौंड ४ शि० किस बाबत हैं जिससे वे बहियोंमें आवश्यक इन्दराज कर लें। उम्बिलो रोडकी जायदादके बारेमें, यदि कियायेदार ६ पौंडसे ज्यादा नहीं देना चाहता तो आप उसीके अनुसार किराया घटा दें।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४०५।

४२६. पत्र : "स्टार"को[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
श्री सम्पादक
स्टार
जोहानिसवर्ग]

महोदय,

मैं देखता हूँ कि श्री लवडेने इस उपनिवेशमें बड़ी संख्यामें भारतीयोंके आगमनके विषयमें अपना वक्तव्य फिर दुहराया है। इसमें उन्होंने उन सबूतोंकी पूरी उपेक्षा की है जिन्हें पहले जारी किये गये वक्तव्योंके वाद देख चुकनेकी वात वे स्वीकार करते हैं। श्री लवडेका खयाल है कि परवाना-विभाग ब्रिटिश भारतीयोंको यहाँ आनेसे नहीं रोकता, और जो लोग शरणार्थी नहीं हैं, वे भी इस उपनिवेशमें आ रहे हैं। मुख्य परवाना-सचिवकी रिपोर्टको देखनेके पश्चात्, कोई भी इसी नतीजेपर पहुँचेगा कि श्री लवडे उस रिपोर्टपर विश्वास करनेसे इनकार करते हैं। मैं तो यही कह सकता हूँ कि ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंको भी इस उपनिवेशमें प्रविष्ट होनेमें वेहद कठिनाईका सामना करना पड़ता है। मेरे सामने परवाना-कार्यालयका एक पत्र है जो एक ब्रिटिश भारतीयको भेजा गया है। इस भारतीयने कोई सात महीने पूर्व परवानेके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। प्राप्त पत्रमें उससे पूछा गया है कि क्या उसे अव भी परवानेकी जरूरत है। वेचारा शरणार्थी महीनों ट्रान्सवालमें अपना प्रवेशाधिकार सुनिश्चित किये जानेकी राह देखता रहा। उसके वाद मित्रहीन होनेसे भारत लौट गया। यह पत्र उन सज्जनने मुझे भेजा है जिनका पता वह परवाना-कार्यालयको दे गया था। और यह इस किस्मका एक ही मामला नहीं है। यूरोपीयोंको तो, वे चाहे शरणार्थी हों, चाहे न हों, माँगते ही परवाने मिल जाते हैं, परन्तु भारतीय शरणार्थियोंको प्रवेशसे पूर्व कमसे-कम दो महीने इंतजार करना पड़ता है। और तिसपर भी, प्रत्येक प्रार्थीको पहले अनेक जाब्तोंमें से गुजरना और वहुत-सा रुपया खर्च करना पड़ता है, तव कहीं वह उपनिवेशमें प्रवेश कर सकता है। इनमें से कई शरणार्थी तो ऐसे हैं जो पुराने शासन-कालमें, देशमें रहनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमें ३ पौंड कर दे चुके हैं। प्रार्थीको प्रार्थनापत्रका फॉर्म लेनेके लिए स्वयं किसी तटवर्ती नगरके परवाना-कार्यालयमें जाना आवश्यक है। फिर उसे वह फॉर्म किसीसे भरवाना पड़ता है। उसके लिए भी वह प्रायः कुछ फीस देता है। जव प्रार्थनापत्र जोहानिसवर्गके परवाना-कार्यालयमें पहुँच जाता है, तव जिन व्यक्तियोंके नाम हवालेके लिए दिये गये हैं, उनको पत्र भेजे जाते हैं। अव इन व्यक्तियोंको हलफनामे देने पड़ते हैं जिनपर आधे क्राउनका स्टाम्प लगाना होता है। यदि पूर्व निवासके सम्वन्धमें प्रस्तुत साक्षी सन्तोषजनक समझी जाती है तो प्रार्थीको उपनिवेशमें प्रवेशका अधिकार देते हुए सूचना भेज दी जाती है। अन्त यहीं नहीं हो जाता। इसके वाद प्रार्थीको जोहानिसवर्ग पहुँचना, परवाना-कार्यालयमें जाना और जिरहके लिए खुद पेश होना पड़ता है। यदि वह वहाँ परीक्षक अधिकारीको संतुष्ट कर दे तो उसे उपनिवेशमें रहनेका स्थायी अधिकारपत्र मिल जाता

१. यह *इंडियन ओपिनियनमें* "श्री ल्वडेकी गलतबयानियोंका खण्डन" शीर्षकसे उद्धृत किया गया था।

है। मैं ऐसे मामले भी जानता हूँ जिनमें कई आदमी वापिस लौटा दिये गये हैं क्योंकि वे परीक्षक अधिकारीको यह तसल्ली नहीं करा सके कि वे शरणार्थी हैं। इसलिए यदि परवाना कार्यालयके विरुद्ध कोई शिकायत कर सकते हैं तो वे, ब्रिटिश भारतीय ही हैं। और वे उस जरायमपेशा जातिके नहीं हैं जिनका जिक्र श्री हॉस्केनने किया है। श्री लवडेने एक बार फिर पीटर्सबर्गके महापौर द्वारा प्रकाशित आँकड़ोंका हवाला दिया है। परन्तु इन आँकड़ोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीय संघने पीटर्सबर्गके महापौरको जो चुनौती दी थी उसे उन्होंने अबतक स्वीकार नहीं किया है, हालाँकि उत्तेजनाकी बात पहले उन्हींने की थी। मैं उस पत्रमें से कुछ शब्द उद्धृत करनेका साहस करता हूँ जो कि ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने आपको ९ दिसम्बरको लिखा था।

> **मैं नहीं मानता कि इस समय पीटर्सबर्गमें ४९ भारतीय व्यापारी हैं। भारतीय बस्तीसे अलग पीटर्सबर्ग नगरमें भारतीयोंके केवल २८ वस्तु-भण्डार हैं और इनमें कुछके मालिक एक ही भारतीय हैं। . . . युद्धसे पहले नगरके अन्दर कमसे-कम २३ भारतीय वस्तु-भण्डार थे।**

इन सब दूकानदारोंके नाम उसी पत्रमें दिये हुए हैं। इस वक्तव्यको मिथ्या कभी भी सिद्ध नहीं किया गया है। किन्तु श्री लवडे कहते हैं कि एशियाई व्यापारी-आयोगने रिपोर्ट दी है कि युद्धसे पहले पीटर्सबर्गमें बिना परवानेका केवल एक भारतीय व्यापारी था। यह बात भ्रामक है। मेरे सामने एशियाई व्यापारी-आयोगकी पूरी रिपोर्ट मौजूद है। पहले तो यह रिपोर्ट अन्तरिम है। दूसरे आयोगके सदस्य यह दावा नहीं करते कि उन्होंने बिना परवानोंके व्यापार करनेवाले भारतीयोंकी सख्याका निश्चित पता लगा लिया है। आयोगके सदस्योंने अपने सम्मुख प्रस्तुत किये गये दावोंका उल्लेखमात्र किया है। उन्होंने कहा है कि पीटर्सबर्गसे उन्हे केवल एक ब्रिटिश भारतीयका दावा मिला। कुल मिलाकर उनके सामने केवल २३३ दावे पेश किये गये थे। निश्चय ही इन दावोंसे उन एशियाई व्यापारियोंकी सूची खतम नहीं हो जाती जो कि यहाँ युद्धसे पहले मौजूद थे। समाचारपत्रोंमे यह जानकारी भी छपी थी कि आयोगके सदस्यो द्वारा अपने अधिकारके सम्बन्धमे निर्णय देनेके बाद ब्रिटिश भारतीयोंने अपने सब दावे वापिस ले लिये और आयोगकी कार्रवाईमे भाग लेना बन्द कर दिया। आयोगके सदस्योंने यह भी लिखा है कि सर्वोच्च न्यायालयने उपनिवेशमे ब्रिटिश भारतीयोंके स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करनेके अधिकारके विषयमे, दायर किये गये प्रसिद्ध परीक्षात्मक मुकदमेका जो फैसला दिया, उसके कारण उनका काम बीचमे ही रुक गया। अवश्य ही श्री लवडे आयोगकी रिपोर्टके सम्बन्धमे इन सब तथ्योंको जानते होंगे। उसके बावजूद यदि उन जैसे जिम्मेवार राजनीतिक नेता ऐसी बात कहे जो कि सत्य सिद्ध नहीं की जा सकती, और जनतामे भ्रम फलानेका प्रयत्न करे तो यह आश्चर्य है। मै मानता हूँ कि प्रिटोरियाकी बस्तीमे भारतीयोंकी आबादी बढ गई है। वह शायद पीटर्सबर्ग और पॉचेफस्ट्रूममे भी बढी है। परन्तु क्या वे यह तथ्य भी ध्यानमे रखेंगे कि जोहानिसबर्गकी बस्ती तो बिलकुल खतम ही हो गई है; पुरानी बस्तीमे जितने ब्रिटिश भारतीय रहते थे उनमें से अब आधे भी नहीं रहे हैं; और पिछले तीन महीनोंमे कमसे-कम ३०० ब्रिटिश भारतीय जोहानिसबर्ग छोडकर चले गये है? श्री कनिंघम ग्रीनके सामने प्रस्तुत किये गये आँकड़ोंके अनुसार, ट्रान्सवालमे युद्धसे पहले १५,००० भारतीय थे। परवाना-विभागने उनको १२,००० से अधिक परवाने नहीं दिये, और चूंकि उपनिवेश छोड़कर जानेवाले भारतीयोंकी संख्या उनसे अधिक है जो कि यहाँ आने दिये जा रहे हैं, इसलिए मै यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ

कि इस समय इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या १२,००० से कम है। श्री लवडेने और भी कहा है कि नेटालके वे गिरमिटिया भारतीय जो हालमें मुक्त हुए हैं, पॉचेफस्ट्रूम चले गये हैं और वहाँ बस गये हैं, एवं इस बातसे स्वयं पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय भी नाराज हैं। क्या माननीय सज्जन उन भारतीयोंके नाम बतानेकी कृपा करेंगे जो इस प्रकार इस उपनिवेशमें आ गये हैं? वह ऐसा करेंगे तो निश्चय ही इससे उनके अपने निर्वाचकों, एशियाई-विरोधी पहरेदारों, की भी बड़ी सेवा होगी। क्या वे उन भारतीयोंके नाम बतानेकी भी कृपा करेंगे जिन्होंने यह शिकायत की है कि यहाँ नेटालसे भारतीयोंकी बाढ़ आ रही है? यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो क्या वे उन गम्भीर वक्तव्योंको, जो उन्होंने दिये है, वापिस लेनेका सौजन्य दिखायेंगे?

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-६-१९०५

४२७. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, कैनिंगटन रोड
लन्दन, द० पू०

महोदय,]

मैं इसके साथ *इंडियन ओपिनियनकी* प्रति भेज रहा हूँ। उसके सम्पादकीयसे यह मालूम होगा कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत अब भारतीयोंके लिए जमीनी मिल्कियत हासिल करना किस हदतक मुमकिन हो गया है। सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बाद वे अचल सम्पत्तिकी मिल्कियत हासिल करनेके लिए अमली रूपमें स्वतन्त्र हैं बशर्ते कि उनको कोई यूरोपीय मित्र ऐसा मिल जाये जो उनका न्यासी बन सके। मैं आपका ध्यान इस बातकी ओर इसलिए खींच रहा हूँ कि यदि वहाँ किसी कानूनका मसविदा बनाया जाये तो इस बातको तथ्य न मान लिया जाये कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत भारतीयोंका अचल सम्पत्ति रखना असम्भव है।

यहाँ जो-कुछ हो रहा है उससे जान पड़ता है कि १८८५ के कानून ३ की जगह जो नया कानून बनेगा वह यथासम्भव १८८५ के कानून ३ के ढंगका होगा; अर्थात् नेटाल-सरकारका इरादा भारतीयोंको १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारोंसे कुछ अधिक अधिकार देनेका नहीं है। इसलिए श्री लिटिलटनने जिस तरह यह कहा है कि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेको देखते हुए वे भारतीयोंके व्यापारिक अधिकारोंको सीमित करना मंजूर नहीं करेंगे और उन्होंने इस तरह एक रुख अपनाया है, उसी प्रकार अब उनको ऐसे किसी भी कानूनको मंजूर

१. मूल उपलब्ध नहीं है। हम इसे दादाभाई नौरोजीके उस पत्रसे लेकर दे रहे हैं जो उन्होंने २४ जून १९०५ को भारत-मन्त्रीको लिखा था।

करनेसे इनकार कर देना चाहिए जिससे भारतीयोंका अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार सीमित होता हो।

नेटालकी संसदमें इस समय जिस भारतीय-विरोधी कानूनपर विचार किया जा रहा है उससे स्थिति खतरनाक है यह पता चलता है। प्रायः हर *गज़टमें* उसके बारेमें कुछ-न-कुछ रहता है। बन्दूकें वगैरा रखनेके बारेमें भारतीय वतनी-विभागके अन्तर्गत लाये जायेंगे।

किसी भी देहाती जमीनपर, जिसके मालिक वे खुद नहीं हैं, जमीन-कर लगानेके उद्देश्यसे, उनका कब्जा कब्जा नही माना जायेगा।

डर्बन नगर-परिषद दूकानदारोंपर परवाने लादनेका अधिकार माँग रही है और उन्हें विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत ले आना चाहती है।

संयुक्त नगर-निगम अधिनियमका मंशा भारतीयोंको नगरपालिका-मताधिकारसे वंचित करना है।

नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* जो विधेयक अभी-अभी प्रकाशित हुए हैं उनका मंशा वतनी भोजनालयोंके मालिकोंको विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत लाना और फेरीवालोंके परवानोंके क्षेत्रको उस मजिस्ट्रेटी हलकेतक सीमित करना है, जिसमें वे जारी किये गये हों। (अबतक जिसके पास नगरपालिकाकी हदोंके बाहर फेरी करनेका परवाना होता था वह नगरपालिकाके क्षेत्रोंको छोड़कर उपनिवेशमें हर जगह फेरी लगा सकता था।)

इन कानूनोंको बनाना अनावश्यक और अपमानजनक है। इसलिए मेरा खयाल है कि, जैसा कि लॉर्ड कर्ज़नने अपने बजट-सम्बन्धी भाषणमें कहा था, यदि नेटाल-सरकार अपनी भारतीय-विरोधी कार्रवाइयोंको बन्द नही कर देती और विक्रेता-परवाना अधिनियममें सुधार करके कमसे-कम पीड़ित पक्षको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार नही देती तो अगला कदम उठानेका — अर्थात नेटालका गिरमिटिया भारतीयोंका प्रवास बन्द कर देनेका — समय अब आ गया है।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: ४१७, जिल्द ४१४, इंडिया ऑफिस।

४२८. लड़ाईके दिनोंकी अन्धेरगर्दी

यह ठीक है कि लड़ाईके दिनोंमे देशभक्तिकी भावना प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें जागृत होती है। इस भावनामें बहुत फायदा होता है। इसके नशेमें बहुत-से देश-हितैषी लोगोंने थोड़ी-थोड़ी फौज लेकर ऐसे काम कर दिखाये हैं जिनसे संसार चकित हो गया है। एक ओर जब कुछ स्थानोंमें ऐसी भावनाकी कुछ बाढ़ आई है तब दूसरी ओर युद्धमें काफी बन्दोबस्त करनेमें अधिकारियोंकी असमर्थताका फायदा उठानेवाले कुछ खुदगर्ज लोगोंकी कारगुजारियोंके फल-स्वरूप सैकड़ों हजारों और लाखों लोगोंकी जानें चली गई हैं, और वे तबाह हो गये हैं या गुलाम बन गये हैं। लड़ाईके जमानेमें कुछ साधारण लोगोंने इस अन्धेरगर्दीसे लाभ उठाकर ऐसे काम किये हैं जिन्हे करनेकी बात वे किसी और समयमे सोच ही नही सकते थे; और, ऐसा करके उन्होंने इस अन्धेरगर्दीको और भी बढ़ाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लड़ाईके समय नीति और प्रामाणिकताके नियम मानो बिलकुल बिसर ही जाते हैं। छोटी लड़ाईके मुकाबले बड़ी लड़ाईके दिनोंमें इन नियमोंका उल्लंघन और भी ज्यादा देखनेमें आया है।

इसका कारण यह बताया जाता है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिकी परख संकटके समय होती है। जबतक किसीको सफलतापूर्वक अपराध करनेका मौका नहीं मिलता तबतक तो यही माना जाता है कि उसकी परीक्षा नहीं हुई। जब वह मौका मिलनेपर भी अचल रहे तभी यह गिना जाता है कि वह कसौटीपर खरा उतर गया। ऐन मौकेपर ऐसी अटल दृढ़ता क्वचित् और विरले लोगोंमें ही पाई जाती है।

लड़ाई ज्यों-ज्यों बड़ी होगी त्यों-त्यों अन्धेरगर्दीकी सीमा बढ़ेगी। क्रीमियाकी लड़ाई[1] के षड्यन्त्रोंका जो भेद खुला और छोटे-मोटे दूसरे तथ्य प्रकाशमें आये, वे अत्यन्त दुःखदायक जान पड़े। उस युद्धके समय सैनिकोंके लिए बहुतसे बूट थोकमें खरीदकर मोर्चेपर भेजे गये थे। सबके-सब बूट बायें पैरके थे। फौजके खानेके लिए ब्रिटेनसे बड़ी मात्रामें खाद्य-सामग्री रवाना की गई थी। वह खाद्य-सामग्री जब काममें लाई गई तब वह सहारा देनेके बदले नुकसानदिह साबित हुई क्योंकि उसमें बहुत दिनोंका रखा हुआ सड़ा मांस था। यही नहीं कि इसमें केवल व्यापारी ही लखपती बननेके लिए धोखाधड़ी करते थे; बल्कि स्वयं युद्धभूमिपर आये हुए सेनापति और बड़ी संख्यामें अमूल्य प्राणोंकी आहुति देनेके लिए कटिबद्ध राजनीतिज्ञ और राज्यके तथाकथित हितचिन्तक नेता एवं मुखिया भी थे। शय्याओंपर पड़े हुए मरणासन्न सैनिकों और सरदारोंके लिए विशाल मात्रामें रवाना की हुई उपयोगी ओषधियाँ उचित अस्पतालोंमें पहुँचनेके पहले ही अधबीच कहीं गायब हो गई थीं। उनका कहीं पतातक नहीं चला। व्यापारी और तथाकथित देशभक्त सरदार या राज्यतन्त्रके संचालक, देशकी खातिर घर-बार छोड़कर लड़ाईपर गये हुए सैकड़ों गरीब सैनिकोंकी बलि चढ़ाकर, अपनी खाली थैलियाँ भरनेके लिए सैकड़ों उपयोगी और कीमती वस्तुएँ इस प्रकार हजम करते रहे। सेवस्टपोलपर जो सेना पड़ी हुई थी उसका वर्णन करते हुए समाचारपत्रके एक संवाददाताने जब पूरी खबर लिखकर भेजी तब वहाँकी जनता इतनी अधिक उत्तेजित हो गई कि तत्कालीन मंत्रिमण्डलको त्यागपत्र देना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी भयंकर अत्याचारोंकी बहुत बड़ी सूची है। लेकिन वे घटनाएँ इस अन्तिम बोअर युद्धमें घटी घटनाओंके मुकाबिले उपेक्षणीय हैं। इस अन्तिम युद्धमें फौजके उपयोगके लिए खाद्य पदार्थों और कपड़े आदि वस्तुओंके जो ठेके दिये जाते थे उनकी और उन ठेकोंकी पूर्ति किस प्रकार की जाती थी, इसकी बारीकीसे छानबीन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि जनताके पैसेकी निरी बरबादी ही हुई है। यह आपाधापी करनेवाले अधिकारियोंकी खराबियोंका ही नतीजा है। अपने परिचित और कृपापात्र ठेकेदारोंको ठेके देनेवाले विभागोंकी ओरसे आँख मींचकर ठेके दिये जाते थे। इनमें कुछ सामानपर ये लोग ५० प्रतिशतसे ५०० प्रतिशत-तक मुनाफा लेते थे। ऐसी अन्धेरगर्दी केवल ब्रिटेनमें ही नहीं थी। जब १८७९ में फ्रांसने हार खाई, सो केवल अपने लक्ष्मीके दास बने हुए सरदारोंकी वजहसे खाई थी। उस युद्धके समय फ्रांसीसी सरकारकी ओरसे प्रत्येक वस्तु तैयार रखी गई थी। प्रारम्भमें सारी व्यवस्था करनेमें लाखों और करोड़ों रुपये खर्च किये गये थे, लेकिन वह सारा खर्च गुप्त रूपसे किया गया था। जो-कुछ चीजें संचित की गई थीं वे सब केवल कागज पर ही। पैसा पानीकी तरह बहाया गया था। फिर भी लड़ाईमें आम उपयोगकी वस्तुएँ तब लड़ाईके आरम्भमें ही कम पड़ गई थीं। इस समयकी रूसी-जापानी लड़ाईकी खबरें भी हैरत-अंगेज हैं। गत अप्रैल मासमें मंचूरिया-स्थित फौजके और खाने-पीने और कपड़ेपर खर्च करनेके लिए ड्यूक ऑफ सरजेसको दस लाख रूबल दिये गये थे। मई मासमें सामानका यह थोक मंचूरियाको रवाना कर दिया गया, परन्तु वह वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मास्कोसे सीधा डेन्जिग पहुँच गया और वहाँसे

१. रूस और मित्र राष्ट्रों, अर्थात् तुर्की, इंग्लैंड, फ्रांस और सार्डीनियाके बीच हुई थी (१८५३–१८५६)।

करनेसे इनकार कर देना चाहिए जिससे भारतीयोंका अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार सीमित होता हो।

नेटालकी संसदमें इस समय जिस भारतीय-विरोधी कानूनपर विचार किया जा रहा है उससे स्थिति खतरनाक है यह पता चलता है। प्रायः हर *गज़टमें* उसके बारेमें कुछ-न-कुछ रहता है। बन्दूकें वगैरा रखनेके बारेमें भारतीय वतनी-विभागके अन्तर्गत लाये जायेंगे।

किसी भी देहाती जमीनपर, जिसके मालिक वे खुद नहीं हैं, जमीन-कर लगानेके उद्देश्यसे, उनका कब्जा कब्जा नहीं माना जायेगा।

डर्बन नगर-परिषद दूकानदारोंपर परवाने लादनेका अधिकार माँग रही है और उन्हें विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत ले आना चाहती है।

संयुक्त नगर-निगम अधिनियमका मंशा भारतीयोंको नगरपालिका-मताधिकारसे वंचित करना है।

नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* जो विधेयक अभी-अभी प्रकाशित हुए हैं उनका मंशा वतनी भोजनालयोंके मालिकोंको विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत लाना और फेरीवालोंके परवानोंके क्षेत्रको उस मजिस्ट्रेटी हलकेतक सीमित करना है, जिसमें वे जारी किये गये हों। (अबतक जिसके पास नगरपालिकाकी हदोंके बाहर फेरी करनेका परवाना होता था वह नगरपालिकाके क्षेत्रोंको छोड़कर उपनिवेशमें हर जगह फेरी लगा सकता था।)

इन कानूनोंको बनाना अनावश्यक और अपमानजनक है। इसलिए मेरा खयाल है कि, जैसा कि लॉर्ड कर्ज़नने अपने बजट-सम्बन्धी भाषणमें कहा था, यदि नेटाल-सरकार अपनी भारतीय-विरोधी कार्रवाइयोंको बन्द नहीं कर देती और विक्रेता-परवाना अधिनियममें सुधार करके कमसे-कम पीड़ित पक्षको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार नहीं देती तो अगला कदम उठानेका — अर्थात नेटालका गिरमिटिया भारतीयोंका प्रवास बन्द कर देनेका — समय अब आ गया है।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: ४१७, जिल्द ४१४, इंडिया ऑफिस।

४२८. लड़ाईके दिनोंकी अन्धेरगर्दी

यह ठीक है कि लड़ाईके दिनोंमें देशभक्तिकी भावना प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें जागृत होती है। इस भावनामें बहुत फायदा होता है। इसके नशेमें बहुत-से देश-हितैषी लोगोंने थोड़ी-थोड़ी फौज लेकर ऐसे काम कर दिखाये हैं जिनसे संसार चकित हो गया है। एक ओर जब कुछ स्थानोंमें ऐसी भावनाकी कुछ बाढ़ आई है तब दूसरी ओर युद्धमें काफी बन्दोबस्त करनेमें अधिकारियोंकी असमर्थताका फायदा उठानेवाले कुछ खुदगर्ज लोगोंकी कारगुजारियोंके फलस्वरूप सैकड़ों हजारों और लाखों लोगोंकी जानें चली गई हैं, और वे तबाह हो गये हैं या गुलाम बन गये हैं। लड़ाईके जमानेमें कुछ साधारण लोगोंने इस अन्धेरगर्दीसे लाभ उठाकर ऐसे काम किये हैं जिन्हें करनेकी बात वे किसी और समयमें सोच ही नहीं सकते थे; और, ऐसा करके उन्होंने इस अन्धेरगर्दीको और भी बढ़ाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लड़ाईके समय नीति और प्रामाणिकताके नियम मानो बिलकुल बिसर ही जाते हैं। छोटी लड़ाईके मुकाबले बड़ी लड़ाईके दिनोंमें इन नियमोंका उल्लंघन और भी ज्यादा देखनेमें आया है।

इसका कारण यह बताया जाता है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिकी परख संकटके समय होती है। जवतक किसीको सफलतापूर्वक अपराध करनेका मौका नहीं मिलता तवतक तो यही माना जाता है कि उसकी परीक्षा नहीं हुई। जव वह मौका मिलनेपर भी अचल रहे तभी यह गिना जाता है कि वह कसौटीपर खरा उतर गया। ऐन मौकेपर ऐसी अटल दृढ़ता क्वचित् और विरले लोगोंमें ही पाई जाती है।

लड़ाई ज्यों-ज्यों बड़ी होगी त्यों-त्यों अन्धेरगर्दीकी सीमा वढ़ेगी। क्रीमियाकी लड़ाई[1] के षड्यन्त्रोंका जो भेद खुला और छोटे-मोटे दूसरे तथ्य प्रकाशमें आये, वे अत्यन्त दुःखदायक जान पड़े। उस युद्धके समय सैनिकोंके लिए वहुतसे बूट थोकमें खरीदकर मोर्चेपर भेजे गये थे। सवके-सव बूट वायें पैरके थे। फौजके खानेके लिए ब्रिटेनसे वड़ी मात्रामें खाद्य-सामग्री रवाना की गई थी। वह खाद्य-सामग्री जव काममें लाई गई तव वह सहारा देनेके वदले नुकसानदिह सावित हुई क्योंकि उसमें वहुत दिनोंका रखा हुआ सड़ा मांस था। यही नहीं कि इसमें केवल व्यापारी ही लखपती वननेके लिए धोखाधड़ी करते थे; वल्कि स्वयं युद्धभूमिपर आये हुए सेनापति और वड़ी संख्यामें अमूल्य प्राणोंकी आहुति देनेके लिए कटिवद्ध राजनीतिज्ञ और राज्यके तथाकथित हितचिन्तक नेता एवं मुखिया भी थे। शय्याओंपर पड़े हुए मरणासन्न सैनिकों और सरदारोंके लिए विशाल मात्रामें रवाना की हुई उपयोगी ओषधियाँ उचित अस्पतालोंमें पहुँचनेके पहले ही अधवीच कहीं गायव हो गई थीं। उनका कहीं पतातक नहीं चला। व्यापारी और तथाकथित देशभक्त सरदार या राज्यतन्त्रके संचालक, देशकी खातिर घर-वार छोड़कर लड़ाईपर गये हुए सैकड़ों गरीव सैनिकोंकी वलि चढ़ाकर, अपनी खाली थैलियाँ भरनेके लिए सैकड़ों उपयोगी और कीमती वस्तुएँ इस प्रकार हजम करते रहे। सेवस्टपोलपर जो सेना पड़ी हुई थी उसका वर्णन करते हुए समाचारपत्रके एक संवाददाताने जव पूरी खवर लिखकर भेजी तव वहाँकी जनता इतनी अधिक उत्तेजित हो गई कि तत्कालीन मंत्रिमण्डलको त्यागपत्र देना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी भयंकर अत्याचारोंकी वहुत वड़ी सूची है। लेकिन वे घटनाएँ इस अन्तिम वोअर युद्धमें घटी घटनाओंके मुकाविले उपेक्षणीय हैं। इस अन्तिम युद्धमें फौजके उपयोगके लिए खाद्य पदार्थों और कपड़े आदि वस्तुओंके जो ठेके दिये जाते थे उनकी और उन ठेकोंकी पूर्ति किस प्रकार की जाती थी, इसकी वारीकीसे छानवीन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि जनताके पैसेकी निरी वरवादी ही हुई है। यह आपाधापी करनेवाले अधिकारियोंकी खरावियोंका ही नतीजा है। अपने परिचित और कृपापात्र ठेकेदारोंको ठेके देनेवाले विभागोंकी ओरसे आँख मींचकर ठेके दिये जाते थे। इनमें कुछ सामानपर ये लोग ५० प्रतिशतसे ५०० प्रतिशत-तक मुनाफा लेते थे। ऐसी अन्धेरगर्दी केवल ब्रिटेनमें ही नहीं थी। जव १८७१ में फ्रांसने हार खाई, सो केवल अपने लक्ष्मीके दास वने हुए सरदारोंकी वजहसे खाई थी। उस युद्धके समय फ्रांसीसी सरकारकी ओरसे प्रत्येक वस्तु तैयार रखी गई थी। प्रारम्भमें सारी व्यवस्था करनेमें लाखों और करोड़ों रुपये खर्च किये गये थे, लेकिन वह सारा खर्च गुप्त रूपसे किया गया था। जो-कुछ चीजें संचित की गई थीं वे सव केवल कागज पर ही। पैसा पानीकी तरह वहाया गया था। फिर भी लड़ाईमें आम उपयोगकी वस्तुएँ तव लड़ाईके आरम्भमें ही कम पड़ गई थीं। इस समयकी रूसी-जापानी लड़ाईकी खवरें भी हैरत-अंगेज हैं। गत अप्रैल मासमें मंचूरिया-स्थित फौजके और खाने-पीने और कपड़ेपर खर्च करनेके लिए ड्यूक ऑफ सरजेसको दस लाख रूवल दिये गये थे। मई मासमें सामानका यह थोक मंचूरियाको रवाना कर दिया गया, परन्तु वह वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मास्कोसे सीधा डेंन्जिग पहुँच गया और वहाँसे

१. रूस और मित्र राष्ट्रों, अर्थात् तुर्की, इंग्लैंड, फ्रांस और सार्डीनियाके बीच हुई थी (१८५३–१८५६)।

जर्मनीमें ले जाकर हजारों पौंड मूल्यका माल मिट्टीके मोल बेच दिया गया। युद्धमें मृत सैनिकों और सरदारोंकी विधवाओंके लिए बड़ी मात्रामें धन इकट्ठा किया गया था, परन्तु उसमें से गरीब विधवाओंके हाथ एक दमड़ी भी नहीं लगी। युद्ध-स्थलमें भेजी गई चीनीकी बोरियोंमें से चीनीके बजाय बालू निकली थी। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेकी लाइन बिछानेमें जो लाखों रूबल खर्च हुए वे कहाँ उड़ गये, इसका पता नहीं लगा। इसके अतिरिक्त रूसमें व्याप्त अन्धाधुन्धी और रिश्वत व भ्रष्टाचारके असंख्य किस्से लिखे गये हैं।

इसके मुकाबिलेमें जापानी लोगोंका आचरण इससे बिलकुल विपरीत है। वहाँ युद्धकी स्थितिका लाभ उठानेका इरादा किसी भी व्यापारी अथवा अधिकारीने नहीं किया, जिसका परिणाम यह हुआ है कि जापानी सेनाको बहुत थोड़े खर्चमें आवश्यक चीजें प्राप्त हो सकती हैं। दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईके सम्बन्धमें बटलर-आयोगने जो विवरण प्रकाशित किया है उसमें बताया गया है कि उस समय जो अन्धेरगर्दी चली थी वह रूसियोंसे किसी कदर कम नहीं थी। आम जनताके धनका जो उपयोग हुआ वह अत्यन्त खेदजनक समझा जायेगा। इसमें से अधिकतर नुकसान अयोग्य अधिकारियोंके कारण हुआ था। वे अनुभवहीन और अशिक्षित थे। आयोगने और भी बताया है कि ऐसी बड़ी भूलके लिए अधिकारी ही निन्दनीय कहे जाने चाहिए। देशकी जो दौलत भारी-भारी करोंके रूपमें एकत्र की गई थी, उसका बेहद दुरुपयोग किया गया था, और इसके लिए जो अधिकारी उत्तरदायी माने जाते थे वे अपनी आँख और कान बन्द किये बैठे रहे थे। इस सम्बन्धमें सर्वसाधारणके कामको चलानेमें प्रामाणिकता और न्यायके लिए अंग्रेजी राज्यका जो नाम था उसपर बहुत कालिख लगी है। उस समयके अन्धेर-गर्दी, भ्रष्टाचार व रिश्वत और अप्रामाणिकताकी कोई हद नहीं रही है। आशा है, सरकारकी आँख आयोगकी इस रिपोर्टसे खुलेगी और वह अब भी जो-कुछ हो सकता है, करेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–६–१९०५

४२९. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स नं० ६५२२
जोहानिसवर्ग
जून २६, १९०५

सेवामें
माननीय प्रोफेसर गोखले सी० आई० ई०
८४ व ८५ पेलेस चैम्बर्स
वेस्टमिन्स्टर

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

अवश्य ही अव आप इंग्लैंडमें अपने कार्यको सम्पादित करनेमें बहुत अधिक व्यस्त होंगे। मेरे मनमें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए आपके हृदयमें स्थान अवश्य होगा। क्या आपके लिए भारतवर्षको लौटते समय दक्षिण आफ्रिका होकर जाना सम्भव है? यदि आप ऐसा कर सकें और इसकी सूचना मुझे कृपा करके पहलेसे ही दें तो दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें आपको ठहरानेकी उपयुक्त व्यवस्था कर दी जायेगी। मेरा सुझाव है कि आप दक्षिण आफ्रिकाको एक मास दें। यदि आप आ सकें तो दक्षिण आफ्रिकामें आपके पर्यटनका खर्च यहाँका भारतीय समाज उठायेगा। आप केप टाउनमें उतरें, किम्बर्ले, ब्लूमफॉंटीन, जोहानिसवर्ग और प्रिटोरिया होकर गुजरें; वहाँसे नेटाल जायें और डर्बन और पीटरमैरित्सवर्ग देखें, तदनन्तर डेलागोआ-बे जायें, और फिर वहाँसे या तो पूर्वी तटपर होकर मोजाम्बीक, जंजीबार, लामू और मोम्बासाकी यात्रा करें, या लंका होकर जायें और मार्गमें मॉरिशसमें ठहरें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१०५) से।

४३०. पत्र : कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
जून २६, १९०५

सेवामें
श्री एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कं०
पो० ऑ० बॉ० १२६
डर्बन

प्रिय महोदय,

श्री डानककी मृत्युका समाचार पाकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। क्या आप कृपा करके उनके माता-पिताको उनके इस शोकमें मेरी सहानुभूति पहुँचा देंगे? मैं इस तथ्यको समझ नहीं सकता। आपके पत्रके साथ उनका भी एक पत्र मेरे सामने है। उन्होंने उसमें लिखा है कि उनका काम अच्छी तरह चल रहा है।

जब मैं वहाँ दादा अब्दुल्लाके कामकाजके सम्बन्धमें जाऊँगा तब यदि मेरे साथ श्री अब्दुल गनी चलें तो मुझे बहुत सुविधा होगी।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४३३।

४३१. पत्र : अब्दुल हक और कैखुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
जून २७, १९०५

श्री अब्दुल हक व कैखुसरू
श्री ५ भाई अब्दुल हक तथा कैखुसरू,

आप दोनोंके खिलाफ शिकायत आई है कि आप रविवारका बहुत-सा वक्त पत्ते खेलनेमें गँवा देते हैं, लोगोंको जवाब वगैरा देनेमें पूरी तरह विनययुक्त व्यवहार नहीं करते और सेठका काम जितनी चितासे देखना चाहिए उतनी चितासे नहीं देखते। मैं इसके बहुतसे अंशपर विश्वास नहीं करता। आपको पत्तोंका शौक हो तो मैं खुद उसपर रोक नहीं लगाना चाहता। आप सेठका काम अच्छी तरह करते हैं, मैं ऐसा मानता हूँ। आपमें विनय नहीं है, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। फिर भी जो मेरे कानोंमें आया है उसे अपने मनमें रख छोड़नेके बजाय आपको बताना ठीक समझता हूँ। पत्ते खेलते हों तो उसकी अपेक्षा अपने अवकाशके समयका उपयोग बाहर हवा खानेमें अथवा अच्छी पुस्तकें पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ानेमें करें तो बहुत अच्छा हो। पत्ते खेलने ही हों तो उसमें थोड़ा ही समय लगाये। आप रुस्तमजी सेठका स्वभाव जानते हैं। उन्हें पत्ते बिलकुल पसन्द नहीं है। अगर खेलते हों तो उनका मान रखनेके विचारसे भी बिलकुल बन्द करना ठीक है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें एक पत्र: अब्दुल हक और कैखुसरूके नाम।

ऊपरकी बात किसने लिखी होगी इसके बारेमें मनमें तनिक भी तर्क-वितर्क न करें। इससे किसीके ऊपर नाराज भी न हों। बल्कि जिसने लिखा है उसने हित-भावनासे लिखा है यह मानकर यदि कहीं खराबी सुधारने योग्य हो तो सुधार लें अथवा उस शिकायतके बारेमें आप अपना फर्ज अदा करते ही हैं, यह समझकर बेफिक्र रहें।

श्री नूरुद्दीनका पत्र फिर आया है। यदि इस रुक्केके सम्बन्धमें कुछ दावा न रहा हो, तो मैं इसे दे देना ठीक मानता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४४९।

४३२. पत्र: "स्टार" को

जोहानिसबर्ग
जून २७, १९०५

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय,

अन्तःउपनिवेशीय परिषदकी बैठकमें श्री लवडेने जो कुछ कहा था उसके सम्बन्धमें मैंने आपको एक पत्र लिखा था। उसपर आपके पॉचेफस्ट्रूमके संवाददाताने कुछ बातें कही हैं। आशा है, आप मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाकर उनका उत्तर देनेका अवसर प्रदान करेंगे। आपके संवाददाताका कहना है कि मुझे "भारतीयोंके, विशेषतः निचले वर्गके भारतीयोंके धारा-प्रवाह चले आनेका दुःख है।" मुझे अपने ऐसे किसी दुःख-प्रकाशनकी खबर नहीं है; और इसका सीधा-सादा कारण यह है कि मैंने पॉचेफस्ट्रूम या दूसरी किसी जगहमें भारतीयोंके धारा-प्रवाह चले आनेकी बातपर कभी विश्वास नहीं किया। मैं बड़ी संख्यामें ऐसे किसी भी प्रवेशकी बातको, निश्चित जानकारीके बलपर, अमान्य करता हूँ। यह ठीक है कि पॉचेफस्ट्रूम और दूसरी जगहोंमें भारतीय व्यापारियोंकी तादादमें कुछ बढ़ती हुई है; किन्तु भारतीय व्यापारियोंकी संख्यावृद्धिके मुकाबिलेमें गोरे व्यापारियोंकी संख्यावृद्धि प्रमाणहीन अनुपातमें हुई है। क्रूगर्सडॉर्पकी सभासे सम्बन्धित अपने संपादकीयमें आप कहते हैं कि, "निस्सन्देह पीटर्सबर्ग उन लोकप्रिय स्थानोंमें से है जहाँ पिछले कुछ दिनोंसे भारतीय व्यापारी आकर्षित होकर बसे हैं।" यह बात गलत सिद्ध करके दिखा दी गई है। तथ्य यह है कि युद्धके पहले पीटर्सबर्गमें भारतीय व्यापारी अच्छे अनुपातमें थे; किन्तु उसके बाद वे किसी बड़ी तादादमें वहाँ नहीं पहुँचे।

इस सम्बन्धमें मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय समाजने सुलह और समझौतेकी जो प्रवृत्ति सदा दिखाई है उसका पर्याप्त श्रेय उसे कभी नहीं मिला। तरह-तरहके असम्भव उपाय सुझाये जाते हैं; केवल उन दो अचूक उपायोंको अभीतक काममें नहीं लाया गया जो ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा सुझाये गये हैं। देशपर भारतीय "हमले" की सम्भावनाको रोकनेके विचारसे केपके ढंगपर एक प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका सुझाव दिया गया है। केवल यहाँ ही नहीं, आस्ट्रेलिया, नेटाल और अन्य स्थानोंपर यह प्रयोग किया गया है और वह सफल हुआ है। ऐसा कहना निरर्थक है कि सीमापर कड़ी निगरानी नहीं रखी

जा सकती। नेटाल यह निगरानी रखनेमें सफल हुआ है। अनेक भारतीयोंने नुकसान उठानेके बाद यह समझ लिया है कि यदि वे यह प्रमाणित न कर सके कि प्रवासी-अधिनियमके अन्तर्गत उन्हें उपनिवेशमें प्रवेश करनेका अधिकार है तो वे चार्ल्सटाउन अथवा अन्य किसी खुश्कीकी जगहसे नेटालके अंचलोंमें प्रवेश नहीं कर सकते। भारतीय किसी भी तरह यूरोपीय व्यापारको नहीं हथियाना चाहते, यह प्रमाणित करनेके लिए वे परवानोंपर हर नगरपालिकाका ऐसा नियन्त्रण स्वीकार करते हैं जिसमें नगरपालिकाको व्यापार करनेका परवाना देने या न देनेका अधिकार तो हो किन्तु आत्यन्तिक मामलोंमें उनपर सर्वोच्च न्यायालयमें पुनर्विचार हो सके। यह ठीक है कि यह कानून किसी वर्ग-विशेषके लिए नहीं होगा; बल्कि सबपर लागू होगा। किन्तु इसमें हानि क्या है? यदि सभी पक्ष मुख्य सिद्धान्तोंपर एकमत हो जायें तो यह बिना किसी झंझटके स्वीकृत हो सकता है; इससे उपनिवेशमें समय-समयपर एशियाइयोंके विरोधमें उठता रहनेवाला दूषित आन्दोलन समाप्त हो जायेगा। और भारतीयोंके मन स्थिर हो जायेंगे। हर प्रगतिशील सरकारके कानून परिवर्तनशील होते हैं। इसलिए, यदि उपर्युक्त दो उपाय काममें लाने पर उपयोगी सिद्ध न हों तो उस समय, और क्या आवश्यक है, इसपर विचार किया जा सकता है।

भारतीयोंको कोई अशोभनीय समझौता स्वीकार करनेकी जरूरत नहीं है; विशेषतः श्री लिटिलटनकी इस जोरदार घोषणाके बाद कि कोई भी ऐसी सुविधा जो उन्हें युद्धके पहले प्राप्त थी उनसे छीनी नहीं जा सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उन्हें बिना रुकावट आने और व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता थी। और यही वे दो मुद्दे हैं जिनको लेकर उन्होंने उपर्युक्त समझौतेकी बात चलाई है, बशर्ते कि १८८५ का अंग्रेजोंके लिए अत्यन्त अशोभनीय कानून ३ तथा वे अन्य कड़े और अनावश्यक नियम विधान-संहितासे हटा दिये जायें जिनका आर्थिक परिस्थितियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री ब्रॉड्रिकने[1] अभी हालमें ही कहा है कि ब्रिटेनका आस्ट्रेलिया, कैनेडा और दक्षिण आफ्रिका तीनोंके साथ मिलाकर जितना व्यापार है उसकी अपेक्षा अधिक व्यापार अकेले भारतसे है और इसलिए साम्राज्यकी दृष्टिसे देखनेपर ब्रिटेनके बाद भारतका ही स्थान आता है। क्या फिर भी उपनिवेशी लोग उस देशके निवासियोंको लगातार परेशान करते रहेंगे?

हमें मालूम हुआ है कि चीनी मजदूर-संघ अमरीकी सरकारको झुकानेमें सफल हुए हैं। लॉर्ड कर्ज़न बदला लेनेकी बात कह ही चुके हैं। तब, क्या यह समझना संभव नहीं है कि यदि भारत बदला लेनेपर उतारू हो जाये तो वह क्या कुछ कर सकता है? चीन और अमेरिका एक ही झंडेके तले नहीं है, किन्तु दक्षिण आफ्रिका और भारत हैं। यदि भारत सरकार और दक्षिण आफ्रिकाकी स्थानीय सरकारोंके बीच स्थायी मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाये और यदि लॉर्ड कर्ज़नने जो धमकी कलकत्तेमें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें सोच-समझकर दी है, वे उसको अमलमें ले आयें तो क्या यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात नहीं होगी? यदि उपनिवेशी लोगोंने उपर्युक्त समझौता-प्रस्तावके सीधे-सादे औचित्यको नहीं समझा तो ऐसी कोई बात होकर रहेगी।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-७-१९०५।

१. भारत-मन्त्री।

४३३. पत्र : "रैंड डेली मेल"को

जोहानिसबर्ग
जून २८, १९०५

सेवामें
श्री सम्पादक
रैंड डेली मेल

महोदय,

आपने २६ तारीखके *डेली मेलमें* क्रूगर्सडॉर्पकी एशियाई-विरोधी सभाके सम्बन्धमें जो अग्रलेख लिखा है, उसके बारेमें शायद आप मुझे कुछ कहनेकी इजाजत दे देंगे।

यह मान लेनेके पश्चात् कि युद्धसे पहले ब्रिटिश सरकारने ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें कुछ वादे किये थे, आपने उन्हें सलाह दी है कि "उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी स्पर्धासे बहुत-से गोरे व्यापारी व्यापारमें से निकल चुके हैं।" आपका पूरा सम्मान करते हुए भी मैं यह खयाल करनेका साहस करता हूँ कि आप भारतीय लोगोंको ऐसी बात स्वीकार करनेकी सलाह दे रहे हैं जो है ही नहीं। इन सभाओंमें से एकमें भी, कभी, किसी ऐसे गोरे व्यापारीका कोई विश्वसनीय उदाहरण पेश नहीं किया गया जो भारतीयोंकी स्पर्धासे व्यापारमें से निकला हो। यह बात इस आक्षेपकी जाँचके लिए एक आयोगकी नियुक्तिसे ही सिद्ध की जा सकती है। इस बीच खयाल पूर्णतः भारतीयोंके इस तर्कके पक्षमें है कि उनकी स्पर्धासे "गोरे लोगोंका व्यापार नष्ट" नहीं हुआ या कोई गोरा व्यापारी "व्यापारमें से नहीं निकला।" खुद ट्रान्सवालमें ही, युद्धसे पहले भी और पीछे भी, गोरे व्यापारी अपने व्यापारमें जमे हैं। केपमें, एशियाई व्यापारियोंको व्यापारकी अधिकतम स्वतन्त्रता दे देनेपर भी, गोरे व्यापारियोंकी बहुत अधिक प्रमुखता है। नेटालके बारेमें भी, जहाँ भारतीय आबादी सबसे अधिक है, सर जेम्स हुलेटने उस दिन अपनी गवाहीमें शपथपूर्वक कहा था कि भारतीय व्यापारियोंने गोरे व्यापारियोंको गम्भीर रूपसे प्रभावित नहीं किया है। मेरा निवेदन है कि यह स्पर्धा बिलकुल फायदेमन्द रही है, क्योंकि इससे जीवनकी जरूरी चीजोंका मूल्य नीचे स्तरपर कायम रहा है। मुझे यह मान लेनेमें कोई बाधा नहीं है कि भारतीय लोग अपने रहन-सहनकी सादगीके कारण बाजी मार ले जाते हैं, परन्तु इसकी तुलनामें, गोरे व्यापारियोंको अंग्रेजी भाषाके ज्ञान, अपने ऊँचे संगठन-कौशल और यूरोपकी थोक-फरोश पेढ़ियोंसे सीधे सम्बन्धकी अतिरिक्त सुविधाओंके कारण जो लाभ मिलते हैं उनसे उनका पलड़ा बहुत ज्यादा भारी हो जाता है।

परन्तु, महोदय, आप भारतीयोंसे जो-कुछ स्वीकार कराना चाहते हैं उसे स्वीकार करनेके अतिरिक्त, वे वह सब कुछ माननेके लिए तैयार हैं जिसकी उनसे उचित रूपसे आशा की जा सकती है। वे यह स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं कि १८८५ के कानून ३ और अन्य अनावश्यक रूपसे कठोर नियमोंके स्थानपर, सामान्य परवानोंका नियन्त्रण नगरपालिकाओंको सौंप दिया जाये। इससे परवाने मंजूर करने या नामंजूर करनेका अधिकार, स्थानीय संस्थाओंको मिल जायेगा, बशर्ते कि कुछ खास मामलोंमें उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके।

परेशानीका सबसे बड़ा कारण है उनके व्यापारिक अधिकार। यदि ऊपर सुझाये गये समझौतेको मान लिया जाये तो, किसी कठिनाई और किसी विलम्बके बिना, यह परेशानी दूर की जा सकती है।

आपका खयाल यह मालूम पड़ता है कि जो भारतीय इस समय यहाँ हैं उनके "कुछ नैतिक दावे हैं, और उनका निवटारा नये कानूनसे करना पड़ेगा।" परन्तु यह खयाल तथ्योंसे मेल नहीं खाता। निःसन्देह उनका नैतिक दावा यह है कि व्यापार, सम्पत्तिके स्वामित्व और आवागमनके अधिकारका जहाँतक सम्बन्ध है, उन्हें यूरोपीयोंके बराबर रखा जाये। किन्तु आज तो, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने फैसला दिया है, उन्हें जहाँ चाहें वहाँ रहने और व्यापार करनेका कानूनी अधिकार प्राप्त है, और, जैसा श्री लिटिलटन और श्री ब्रॉड्रिक दोनोंने कहा है, उसको नया कानून बनाकर सीमित नहीं किया जा सकता; परन्तु फिर भी, लोकमतसे मेल बैठानेके लिए, भारतीय लोग अपने व्यापारपर, ऊपर बताई गई शर्तोंके अनुसार, सामान्य और जातिभेद-रहित आधारपर पाबन्दी स्वीकार करनेके लिए तैयार है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९०५

४३४. पत्र : एम० एच० नाजरको

[जोहानिसबर्ग]
जून २९, १९०५

सेवामें
श्री एम० एच० नाजर
पो० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन

प्रिय श्री नाजर,

मैं इस पत्रके साथ १०८ पौंडका ड्राफ्ट ब्योरेके साथ भेज रहा हूँ। वह संक्षेपमें नीचे लिखे अनुसार है:

	पौं० शि० पें०
डोमन	२९–१७–०
सुभाव	२२–१८–०
टी० महाराज	५–१८–६
वंगड स्वामी	१६––७–०
दुबरी	३३––०–०
कुल	१०८––०–६

अन्य दावोंकी रकमें अभीतक प्राप्त नहीं हुई हैं। सुरम स्वामीके वकालतनामेका पता मुझे नहीं चल पाया है और न वेरा स्वामीके वकालतनामेका ही। वन्दीथुमुका वकालतनामा आयोगके पास भेज दिया गया है; परन्तु वे इस दावेको ढूंढ़ नहीं पाये हैं। क्या आप बता सकते हैं कि उस व्यक्तिको पहले कितनी रकम मिली? यदि आप ऐसा कर पाये तो मैं उस दावेकी रकम वसूल करनेमें समर्थ हूँगा।

मैंने नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें*, जो यहाँ आज मिला है, १९०३ के प्रवासी-अधिनियम संशोधन विधेयकके विषयमें प्रकाशित समाचार पढ़ा है। यह इस सप्ताहके *ओपिनियनमें* प्रकाशित होना चाहिए, परन्तु मुझे आशंका है कि ऐसा होगा नही। मेरा खयाल है कि यह आपका स्पष्ट कर्तव्य है कि आपको जिस दिन *गज़ट* मिले आप उसे उसी दिन देखें और उसमें जो कुछ महत्त्वपूर्ण मिले उसे फीनिक्स भेज दें। यह बिलकुल शोभा नहीं देता कि नेटालकी घटनाएँ घटित होनेके १५ दिन पश्चात् छपें। क्या आपने यह भी ध्यानमें रखा है कि ज्यों ही वे सब विधेयक, जिनके बारेमें हमने प्रार्थनापत्र भेजा है, कानून बन जायें या विधान-परिषदमें अंतिम [अवस्थाओंमें][1] स्वीकृत हो जायें, हमें [औपनिवेशिक] सचिवके पास आवेदनपत्र भेजना है? इस सूचनाके लिए [मुझे] आपपर ही पूरी तरह [निर्भर रहना है।]

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

संलग्न—२ कागज[2]

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४६८।

४३५. पत्र : मैक्स नाथनको

[जोहानिसबर्ग]

जून २९, १९०५

सेवामें

श्री मैक्स नाथन

कॉपसे बिल्डिंग्स

जोहानिसबर्ग

प्रिय श्री नाथन,

विषय : *मीर आलम ऐंड लेवे*

मेरे मुहर्रिर श्री पोलक मुझे[3] सूचित करते हैं कि वे इस मामलेमें जब-जब आपके पास गये, आपने तब-तब उनका अनादर किया है। यह दुःखद रूपसे आश्चर्यजनक है, क्योंकि मैं आपसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं करता था। वे आपके पास एक सीधी-सादी बात पूछनेके लिए गये थे और उन्होंने मुझे बताया है कि आपने रूखे स्वरमें उनसे मिलने या उनको किसी प्रकारकी जानकारी देनेसे इनकार कर दिया। आपने ऐसा क्यों किया है?

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४७०।

१. बड़े कोष्ठकोंमें लिखित यह शब्द तथा आगेके अन्य शब्द कार्यालयकी मूल प्रतिमें अस्पष्ट हैं। यहाँ इनकी पूर्ति हमने की है।

२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

३. श्री हेनरी एस० पोलक बादको गांधीजीके बहुत ही घनिष्ठ साथी बन गये। वे *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादक भी रहे। देखिए *आत्मकथा* भाग ४, अध्याय १८।

४३६. पत्र: पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

[सेवामें]
श्री रुस्तमजी जीवनजी
१२, खेतवाड़ी लेन
बम्बई

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आपका २० मईका पत्र मुझे मिला। आपने दो पत्र भेजे थे। उन्हें वापस भेजता हूँ। मैंने भाई कैखुसरू तथा अब्दुल हकको आपका और पत्र-लेखकका नाम बताये बिना चिट्ठी[1] लिखी है। जवाब आनेमें अभी एक-दो दिनकी देर है। आप इस पत्रको बहुत महत्त्व न दें। आपके पास जो हिसाब-किताबके आँकड़े आते हैं आप उनसे अधिक जान सकेंगे। उनमें कोई त्रुटि हो तो मुझे लिखिये। चाहे जो हो आप दूकानकी चिन्ता न करें। हाथमें लिया काम सानन्द पूरा करें।

यह लिखें कि बच्चोंकी पढ़ाईके बारेमें क्या किया है।

आप नहाने और घूमनेकी क्रिया जारी रख रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती है। बच्चोंको भी साथ ले जाते होंगे।

जामे-जमशेदकी जो प्रति भेजी है, उसमें अच्छा विवरण दिया है। मेरे सम्बन्धमें ब्यौरा देना जरूरी नहीं था। इस तरह आत्मविज्ञापनके बिना मैं अधिक अच्छी लोकसेवा कर सकता हूँ। आप इस विषयमें मेरे विचार जानते ही हैं।

श्री लॉटनका लाटीवालाके सम्बन्धमें बहुत बड़ा बिल[2] आया है। इस विषयमें मैं हस्त-क्षेप नहीं कर सकता। इसलिए मैंने दूकानको लिख दिया है कि श्री लॉटनके पास जायें और उनसे बिलकी रकममें उचित कमीकी प्रार्थना करें।

माजी को मेरा सलाम कहें। आप किस-किससे मिले, यह लिखें।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न—२

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४८१–८२।

१. देखिए "पत्र: अब्दुल हक और कैखुसरूको" जून २७, १९०५।
२. देखिए "पत्र: अल्भाई मोराबजी बदर्सको" जून २३, १९०५।

४३७. पत्र : ई० इब्राहीम ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

श्री ई० इब्राहीम ऐंड कं०
पो० बॉ० २७
स्टैंडर्टन

सेठ ई० इब्राहीमकी कम्पनी,

आपका पत्र मिला। पंचोंने कोई खर्च ही नहीं लिया। श्री इस्माइल काजीके कामका बहुत-सा खर्च नहीं लिया। परन्तु फैसलेके सम्बन्धमें जो चिट्ठियाँ लिखीं, आपसे और श्री काजीसे मिला, पंचोंको देनेके लिए कागजात तैयार किये और वे पंचोंके सामने पेश किये और बादमें पंचोंका काम किया — इस सबकी फीस ३० गिन्नी होती है। मैंने यह सारी फीस जुदा-जुदा तो नहीं लिखी; परन्तु जो कमसे-कम वाजिब लगी उतनी ही लिखी है। फिर भी अगर आप चाहें तो विगतवार बिल बनाकर भेज दूँगा। वह कितनी होगी सो नहीं कह सकता, क्योंकि जो ३० गिन्नी फीस नाम लिखी है वह इकट्ठी ही लिखी है।

आपका वकीलका खर्च नहीं मिल सकता क्योंकि उसके कामका सम्बन्ध पंचोंसे नहीं था। कुछ और पूछना हो तो पूछें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४८८।

४३८. पत्र : हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

श्री हाजी हबीब
पो० ऑ० बॉक्स ५७
प्रिटोरिया

श्री सेठ हाजी हबीब,

आपको इस्माइल आमदके बारेमें जवाब देना भूल गया। उसके विषयमें जबतक श्री लांग स्वीकार नहीं कर लेते तबतक क्या हो सकता है? मैंने उनसे कहा है, कुछ निश्चित होने पर लिखूँगा। मुझे लगता है कि आपको उतावली करनेकी आवश्यकता नहीं है। तमस्सुक (बॉंड) की जरूरत तुरन्त जान पड़े तो रुक्का पेश किये बिना तमस्सुक तैयार करा सकते हैं।

बीमेवाला बीमा करेगा। वह अपना एजेंट मकान देखनेके लिए भेजेगा। अगर मकान कसौटीपर ठीक उतरेगा तो बीमा करेगा, नहीं तो नहीं। वह जिस एजेंटको भेजेगा उसके आने और जानेका खर्च आपको देना चाहिए।

मेरे बिलका कुछ पैसा भेजेंगे तो आभारी होऊँगा। मुझे पैसेकी बहुत जरूरत है। सेठ हबीब मोटनसे भी कुछ भिजवा सकें तो आभार मानूंगा। मेरा सारा रुपया फीनिक्समें चला गया है और अब भी जाता है।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त गुजराती पत्रसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४९२।

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स : औपनिवेशिक कार्यालय, लन्दनके पुस्तकालयमें रक्षित कागजात, जिनमें दक्षिण आफ्रिकी राजकाज सम्बन्धी ज्यादातर सरकारी प्रलेख और कागजात भी शामिल हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय और पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गवर्नमेंट ऑफ साउथ आफ्रिका रेकर्ड्स, जो पीटरमैरित्सबर्ग और प्रिटोरिया आर्काइव्ज़में हैं।

इंडिया : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति, लन्दनका मुखपत्र, १८९०–१९२१। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१०।

इंडिया ऑफिस रेकर्ड्स : १९४७ तक लन्दन-स्थित इंडिया ऑफिसमें रक्षित उन भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित प्रलेख और कागजात, जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

इंडियन ओपिनियन : (१९०३–) : डर्बनमें स्थापित साप्ताहिक पत्र, जो १९१४ में दक्षिण आफ्रिकासे रवाना होनेतक लगभग गांधीजीके सम्पादनमें रहा। इसमें अंग्रेजी और गुजराती दो विभाग थे और कुछ समय तक हिन्दी और तमिल भी रहे।

पत्र-पुस्तिका (१९०५) : फीनिक्ससे प्राप्त गांधीजीके लगभग एक हजार पत्रोंकी कार्यालय-प्रतिका सजिल्द संग्रह। ये पत्र प्रायः व्यवसाय सम्बन्धी हैं और १० मई तथा १९ अगस्तके बीच १९०५ में लिखे गये थे।

आउटलुक : जोहानिसबर्गके कांग्रीगेशनल चर्चका मुखपत्र।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : पुस्तकालय और संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

स्टार : जोहानिसबर्गसे प्रकाशित दैनिक सान्ध्य पत्र।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१९०३ से १९०५)

१९०३

नवम्बर १ : गांधीजीने दादाभाई नौरोजीको लिखा कि चुने हुए *बाजार* दूर और दुर्गम स्थानोंमें हैं।

नवम्बर १६ : साप्ताहिक पत्रमें दादाभाई नौरोजीको सूचना दी कि लॉर्ड मिलनरके १९०३ के खरीतेमें निर्धारित नीति कार्यान्वित नहीं की जा रही है।

दिसम्बर १ : भारतीय राष्ट्रीय महासभाके मद्रास अधिवेशनको लिखा कि नेटालकी गम्भीर स्थिति अनुभव की जानी चाहिए और भारतीयोंके कष्ट दूर करनेके प्रयत्न तत्परता और लगनसे किये जाने चाहिए।

दिसम्बर ११ : ब्रिटिश भारतीयोंकी विशाल सभामें समस्त वर्तमान परवानोंको संरक्षण देनेकी प्रार्थना की गई।

दिसम्बर १२ : गांधीजीने दादाभाई नौरोजीको *बाजार*-सूचनामें सरकारके प्रस्तावित संशोधनके सम्बन्धमें तार दिया। इसमें यह सुझाव था कि कुछ भारतीय *बाजारों* या बस्तियोंमें व्यापार करनेकी बाध्यतासे मुक्त कर दिये जायें।

दिसम्बर १७ : प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्ससे बस्ती-कानूनमें संशोधनके सम्बन्धमें गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी अपील की गई।

१९०४

जनवरी १८ : ट्रान्सवाल विधान-परिषदके उस प्रस्तावपर, जिसमें भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंका नवीनीकरण सीमित करनेपर जोर दिया गया है, दादाभाई नौरोजीको पत्र लिखा।

फरवरी ११ : जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको भारतीय बस्तीमें गुंजाइशसे ज्यादा भीड़-भाड़ और गन्दी हालतके सम्बन्धमें पत्र लिखा और चेतावनी दी कि बस्तीमें भारी बीमारी फैलनेकी सम्भावना है।

फरवरी १५ (से पूर्व) : जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्रमें भारतीय बस्तीको देखा।

फरवरी १५ : जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीसे भारतीय बस्तीमें सफाईकी हालतमें सुधारकी कार्रवाई तुरन्त करनेका अनुरोध किया।

फरवरी २० : स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको अपने १५ फरवरीके पत्रमें अख्तियार किये गये रुखको दुहराते हुए फिर पत्र लिखा।

मार्च १ : स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको सूचित किया कि जोहानिसबर्गमें प्लेग आरम्भ हो गया है।

मार्च १८ : अधिकारियोंको खबर दी कि बस्तीमें कुछ "मृत या मरणासन्न" भारतीय लाकर "डाले" जा रहे हैं। डॉ॰ गॉडफ्रे, डॉ॰ पेरेरा और एक स्वास्थ्य-निरीक्षकके साथ सन्दिग्ध क्षेत्रका निरीक्षण किया।

मार्च १९ : टाउन क्लार्कने मुलाकात की और कहा कि नगर-परिषद कोई आर्थिक दायित्व नहीं ले सकती; अस्पतालकी व्यवस्थाकी और मिट्टीसे चिकित्सा करनेकी प्रेरणा दी; टाउन क्लार्कको बताया कि भारतीय प्लेगका मुकाबला करनेके लिए क्या-क्या कदम उठा रहे हैं।

मार्च २१ : स्टारके प्रतिनिधिने प्लेगकी समस्या पर मुलाकात की।

अप्रैल ५ : प्लेगकी महामारीके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके अखबारोंको पत्र लिखा; जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी डॉ० पोर्टरके साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया।

अप्रैल १४ : प्लेगके प्रश्नपर रैंड *डेली मेलको* पत्र लिखा।

अप्रैल १८ : लोक-स्वास्थ्य समितिको क्रूगर्सडॉर्पकी भारतीय बस्तीका तफसीलवार मूल्यांकन भेजा।

अप्रैल २० : प्लेग महारोगके सम्बन्धमें *इंडियाको* विस्तृत पत्र लिखा।

मई ११ : सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि १८८५ के कानून ३ में उल्लिखित "निवास" शब्दके अन्तर्गत व्यवसायका स्थान नहीं आता।

सितम्बर ३ (से पूर्व) *:* ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे उपनिवेश-सचिवको प्रार्थनापत्र भेजा।

सितम्बर ३ : दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नपर *स्टारको* पत्र लिखा।

सितम्बर ५ : दादाभाई नौरोजीको पत्र लिखा कि भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले "संकटापन्न स्थिति" में पहुँच चुके हैं।

अक्टूबर १ : इंडियन ओपिनियनकी पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और साथ ही उसका प्रबन्ध भी सँभाला। टोंगाट गये। डर्बनकी यात्रामें रस्किनकी *अनटू दिस लास्ट* पुस्तक पढ़ी। उसमें निर्दिष्ट आधारपर एक बस्ती बसानेका निश्चय किया।

अक्टूबर १० : डर्बनमें अपने और अन्य भारतीय नेताओंके सम्मानमें आयोजित भोजमें आत्म-त्यागपर भाषण दिया।

अक्टूबर १५ : इंडियन ओपिनियनके मालिक श्री मदनजीतको भारत वापस आनेसे पूर्व विदाई देनेके लिए डर्बनमें किये गये समारोहमें भाषण दिया।

नवम्बर ३ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र देनेकी तारीख पूछनेके लिए उपनिवेश सचिव, प्रिटोरियाको तार दिया।

नवम्बर १० : प्रिटोरियामें एशियाई-विरोधी सम्मेलन हुआ जिसमें ब्रिटिश भारतीयोंको उपनिवेशसे निकालनेके लिए कड़ी कार्रवाई करनेकी माँग की गई।

नवम्बर ११ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र दिया।

नवम्बर १७ : ब्रिटिश भारतीयोंकी उस सभामें भाग लिया जो ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके प्रवासके सम्बन्धमें आयोजित "सम्मेलन" की कार्रवाईका विरोध करनेके लिए की गई थी।

नवम्बर-दिसम्बर : फीनिक्स बस्तीकी स्थापना की।

दिसम्बर ३ : रैंड प्लेग-समितिके आदेशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके हर्जानेकी माँगोंके सम्बन्धमें कार्यवाहक लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजा।

दिसम्बर ९ : भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंके सम्बन्धमें *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर १४ : नेटाल भारतीय कांग्रेसकी बैठकमें परीक्षात्मक मुकदमेके सम्बन्धमें श्री हुंडामलको आर्थिक सहायता देनेका प्रस्ताव किया।

दिसम्बर २४ (से पूर्व) : एशियाई-विरोधी सम्मेलनमें भारतीयोंपर किये गये विद्वेषपूर्ण हमलेके जवाबमें *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर २४ : फीनिक्स बस्तीसे *इंडियन ओपीनियनका* पहला अंक निकाला।

१९०५

जनवरी १०: डर्बनमें पुस्तकालयके उद्घाटन-समारोहमें भाषण दिया।

जनवरी १३: *इंडियन ओपिनियनके* सम्बन्धमें श्री गोपाल कृष्ण गोखलेको पत्र लिखा और भारतीय बालकोंके लिए एक स्कूल खोलनेका इरादा व्यक्त किया।

फरवरी १७: पारसी रुस्तमजीके साथ केप टाउन गये; जोहानिसबर्गको रवाना हुए।

मार्च ४: जोहानिसबर्गकी थियोसॉफिकल सोसाइटीमें हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें पहला व्याख्यान दिया।

मार्च ९: एल० डब्ल्यू० रिचको विदाई देनेके लिए जोहानिसबर्गमें किये गये समारोहमें भाषण दिया।

मार्च ११: हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें दूसरा व्याख्यान।

मार्च १८: हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें तीसरा व्याख्यान।

मार्च २५: हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें चौथा और अन्तिम व्याख्यान।

अप्रैल ७: नेटाल विधानसभाको उन विधेयकोंके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजा जो "नगरपालिका निगमोंसे सम्बन्धित कानूनके संशोधन और समन्वय" और "बन्दूक आदि शस्त्रोंके प्रयोग" के नियमनके सम्बन्धमें रखे गये हैं।

मई : गांधीजी इन दिनोंके आसपास तमिल भाषा सीख रहे थे।

मई ६: भारतके भूचाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए धन-संग्रहके प्रयत्न किये।

जून ७: नये उच्चायुक्त लॉर्ड सेल्बोर्नको मानपत्र भेंट किया।

जून ९: (के बाद): डर्बन और फीनिक्स बस्ती गये।

जून १६: डर्बनमें नेटाल भारतीय कांग्रेसकी बैठकमें भाषण दिया।

सांकेतिका

इ

ई

ऐ

ओ

क

ख

ग

घ

च

ज

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

ध

न

भ

ल

ह
